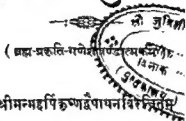


ब्रह्मवैवर्तपुराणम्



धीनाथादि गुरुत्रयं गणपति पीठत्रयम्भैरवम्,
सिद्धीधं चतुष्कत्रयम्पद्म्युगं द्वीतीकर्म मण्डलम् ।
वीरान्द्वयष्ट चतुष्कत्रयष्टि त्रयकं वीरावलीपञ्चकम्,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं धन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥



५, कृष्ण रो.
कलकत्ता

वैशाखाब्दः
२०११

प्रथमं संस्करणम्
५०००

खुस्ताब्दः
१६५४

Gurumandal Series No. XIV.

THE

Brahma Vaivarta Puranam

(Brahm prakriti-Ganeshkhandatmkam).

MAHARSHI KRISHNĀTMAVAIPARĪTAYĀSĀYAN

5, Clive Row,
Calcutta.

Vikram Era.
2011

First Edition.
5000

Christian Era.
1954

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री पुराणपुरोत्तमाय नमः ॥

समर्पणम्

श्रीमतां विविधज्ञानविज्ञानविचक्षणप्रभविष्णूनां अशेषशास्त्रपारायणैक-
दिव्यचक्षुषां तपसा त्यागेन ब्रह्मचर्यसा शमेन दमेन दयाया च प्रकाशित-
दिव्यगुणौघानां भजस्रं कर्मभक्तिज्ञानत्रियेणीधाराप्रवाहाय हृतभगीरथपरि-
धमाणां समस्तभारते स्वचिद्वत्ताप्रकाशेन चमत्कृतानेकचिद्वत्परिपक्वकपोत्कर्षयतां
शान्तिस्यद्धपाणां अधिभूमण्डलं भागवतधर्मप्रसाराय विजयवैजयन्तीसमुत्तोलन-
पराणां नानाविलक्षणयुक्तिवादेरपास्तनिर्विशेषप्रतिपक्षजन्मनां विद्वत्कुलभूषणानां
सनातनधर्मधुरंधराणां वैष्णवाग्रगण्यानां उत्तरप्रतिवादिमयङ्कुराणां धाराणसीस्थ
जगद्गुरुभगवद्गुरामानुजाचार्यपीठाधिपतीनां श्रीमतां १००८ पूज्यप्रवर भगवत्पाद
श्रीदेवनायकाचार्यस्वामिमहामागानां करकमलेषु श्रीगुरुमण्डलप्रण्यमालाचतुर्दश-
पुष्पोपहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणमिदं सादरं सचिनयञ्च समर्प्यते—

विजयैकादशीदिनम्
विक्रम सं० २०१२ ।

{

श्रीमतां चरणसेवकः
श्रीदामकिशिनम्रः—
राधाकृष्ण मोरः

५, कृष्ण रो, कलकत्ता

प्रारम्भे हसितं भुजभ्रमकृतैरोन्दोलनैर्विभक्तम् ।
 मुनं बाहुलतोपीपदनभिया प्रोद्धासने भ्रूतः ॥
 दत्ताः कृष्णकराब्जशायिनि नगे श्रेयांसि पुष्पन्तु व
 गोपीभिर्भुजवल्लिकङ्कण कण्टकारोत्तरास्तालिकाः ॥

आमुख

श्रीप्रभुकृपा से पूज्य पिताजी की यह दृढ़ निष्ठा रही है कि अ
 नि किसी न किसी श्रेष्ठ कर्म के आयोजन में कहीं रहते हुए भी
 सफलतातक लगे रहने का ही सदा प्रयत्न किया है। मनुष्य क
 मलापा है कि जीर्ण, जागूँ, जानूँ, अधिकार समर्थ बनूँ, आनन
 न्त्र रहूँ। इसकी विरोध व्याख्या तो विद्वज्जन ही करेंगे पर
 ेपणा, धनैपणा और पुत्रैपणा में उस इच्छा का कुछ-कुछ चित्रण
 जीवन को प्रशस्त करने में पुरुषार्थी महानुभाव इसमें कृतकार्य होते हैं
 । असफल। आपके दो मुख्य सिद्धान्त हैं; संसार में मनुष्य परम
 है अपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ज्ञानमय चाभी उसे सोंप कर प्रमु
 के क्रियाकलाप को देखते हैं। प्राणीमात्र की रक्षा का पूर्ण द
 कर निर्भर हो जाते हैं और उसके श्रेष्ठ कार्यों से प्रसन्न हो सदैव
 प्रशस्त करते हैं। इसके साथ-साथ मनुष्य अपनी ओर से
 प्रेम का पाठ जगत् के प्राणीमात्र को अपने सद् आचरण

री को "जीवो जीव जीने दो" की कला सिखाया है। सृष्टि में कोई भी प्राणी नहीं पाये इसके बिना अदृश्य कला से यथाराशि प्रथम जाता है। यमकी १३ प्राचीनराम से आरम्भ होकर आजाद नीने जिने विविधमार्ग करने में प्रकाश करते हुए भाग्यीय जनसंख्या में हिंसा को नष्ट का अहिंसा प्रारूप में रहती आई है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यद्विद्युः जगत्स्य जगत् ।

तेन त्वत्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कश्चिद्वदमम् ॥

[शुक्ल यजुर्वेद ४० अ० १ मन्त्र] ।

ईश्वर का कथन है कि सृष्टि के मारे प्राणी मेरी ही आत्मा है; ज्ञान रा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग, जो प्रति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है, भोगो। किसी भी प्राणी की शक्ति (दूध को) हरण करने की भायना मनमें भी न आने दो। यह क्रम महाशयस्वयं, पाराशर, गौतम, अत्रि, यशिष्ठ, पुलह और पुलस्त्य आदि महाभूतियों से स्वीकृत होता हुआ संसार के सभी मतमतान्तरों और सम्प्रदायों को सृष्टि के उत्थानकालतक बराबर चलता रहा जो आज भी विश्वसाक्षि सन्तवाणी के रूप में भारतीयों के विश्वभ्रातृत्व का उत्कृष्ट उदाहरण और हिंसक भावना का अपूर्व आदर्श है। विशेषतः यही है कि यह सत्त्व साधक अरविन्द, महर्षि रामण, विश्वचन्द्र राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, कबीर, श्रीराम और सुप्रसिद्ध अमर सेनानी सुभाष बाबू के ही भारत में विशेषरूप से चलिता हुआ। भगवान् बुद्ध, महावीर तीर्थङ्कर और सम्राट् अशोक के उदात्त आदर्श सिद्धान्तों को आज भी भारत सरकार ने "अहिंसा परमो धर्मः" के रूप में अशोक चक्र के राज्यचिह्न के रूप में प्रधानस्थान देकर अपना शान्तिमान प्रशस्त किया है यह एक अभूतपूर्व घटना है। ऐसे सभी वरेण्य मानव और

(म) के उद्धारक नरपुत्रों को हम अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते हैं।

जिनके निःस्वार्थ विश्वेयमाने मानव को दानव एवं पशु होने से सदा बचाया साथ
 प्राणिरक्षा के सामने अपने जीवन की भी आहुति दे मानव का गौरव बढ़ाया
 दूसरे सिद्धान्त का रूप है शास्त्रप्रचार—इसमें मानव की उदात्त भावनाओं
 का सभी दिशाओं में विकास होने से जीवनस्तर ऊँचा होगा और सभी प्रकार
 की आधिपत्याधियाँ सृष्टि से विदा हो जायगी। उन्हें यह श्रृष्टि है कि जिसे
 भारतीय साहित्य ने गङ्गा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती और पञ्चानु तथा कृष्णा और
 कावेरी आदि की रज में उद्भूत होकर विश्व का मार्ग दर्शन किया उसका प्रसार
 आज के विज्ञानयुग में अधिकाधिक प्रकाशन द्वारा किया जाय। इसी उद्देश्य से
 आपने अपने गार्हस्थ्यजीवन को कठिन अनुभवों की करौटी पर कसते हुए
 गम्भीर मनन और अध्ययन द्वारा शास्त्रचर्चा के व्याज से विद्वत्समुदाय की
 सहायता से विशुद्ध पवित्र विचारों का सङ्कलन ग्रन्थ 'गृहस्थधर्म' पत्र संस्कारात्मक
 वितरण किया। इसका स्पष्ट प्रभाव हिन्दीभाषी क्षेत्रों में लोकप्रियता और एक
 अपूर्व धार्मिक क्रान्ति, उत्साह की लहर, एवं जनजागृति के रूप में स्पष्ट हुआ जिनका
 प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे ग्रन्थप्रकाशन के सम्यन्ध में प्रतिदिन आनेवाले बीसियों
 प्रशंसिपत्र हैं जिनमें कितने हजार तो 'सम्मति और उद्गार' के आकार में गुरुमण्डल
 के आठवें पुण्य के रूप में सङ्कलित कर दो वर्ष पूर्व प्रकाशित भी किये गये हैं। मुझे
 आरम्भ से उनके सान्निध्य का लाभ मिला है और इसीलिये उनके अगाध वात्सल्य
 का पूर्ण अनुभव करने का सुयोग भी। उनकी इच्छानुसार जैसे मैं उनके
 पदचिह्नों पर चलकर आदर्श नागरिक होने का स्वप्न देखता हूँ, वसी प्रकार एक
 सच्चरित्र पिता में भगवत्सन्निधि समक पालन, पोषण शिक्षा और दीक्षा द्वारा
 अपने तुच्छ क्रियाकलाप से उनकी आज्ञा में रहते हुए एक आज्ञाकारी पुत्र होने
 का भी मुझे गौरव मिले इसके लिये प्रयत्नशील रहता हूँ। पूज्य पिताजी अपने
 सत्यवादपूर्ण जीवन में एक ओर तो अजेय हिमालय के समान सिद्धान्तरूप में
 अडिग हैं तो दूसरी ओर वसीसे निकलनेवाली कलकल शब्द से विश्व को

मुखरित करनेवाली श्वेताम् पवित्र निर्मल गङ्गा के समान अपने में विश्वधनुस् की भावना (सभी प्राणीमात्र के प्रति महानुभूतिपूर्ण उदार भाव) रखते हुए पुष्प से भी कोमल हृदय रखते हैं। अपने आदर्श वाक्य "कामये दुःखतमानां प्राणिनामर्तिनाशनम्" के द्वारा उठते-बैठते उन्हें प्राणीमात्र के दुःखको भेटने की याद दनी रहती है और उसीके लिये कृतसङ्कल्प हो दिन-रात भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

विक्रम सम्वत् २०१० के चैत्रमास में जब श्री पितुःश्री स्वास्थ्यसुधार के लिये नवलगढ़ गये हुए थे वहां पर अपने पण्डितद्वय श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी तथा पं० कजोड़ीलाल मिश्र के सहयोग से स्थानीय विद्याविद्यार्दन पुस्तकालय तथा सात्विकजीवनशाला के पुस्तकालय से प्रायः अठारह पुराणों के पारायण का उपक्रम किया। पुराण पूर्ण संख्या में न मिलने के कारण केवल बारह पुराणों की ही आवृत्ति हो सकी। जो लोग आपके स्वाध्याय क्षणों में साथ रहते और उन्हें शास्त्रचर्चा करने का अवसर देते हैं उन्हें शास्त्रीय परम्परानुमोदित नयीन-नयीन अनुसन्धानों से आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। मैं तो अपने पिताजी को ही इस सष का श्रेय दूँ तो अत्युक्ति नहीं; फिर भी जिनके निःस्वार्थ कार्यों का सहयोग इन सभी शास्त्रचर्चाओं में हुआ है उन सभी महानुभावों का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूँ। हाँ, तो पिताजी को जो धुन सवार होती है उसे वे करके रहते हैं। मत्स्यपुराण के शङ्खचूड़ आख्यान को बार-बार पढ़ते हुए उन्हें वर्तमान शासन की परिस्थिति और कलहप्रिय प्रजा का दयनीय दृश्य व्याकुल करने लगे। आपने सृष्टि को अपने पूर्व गौरवगाथा का स्मरण करा पुरुषार्थ द्वारा स्वर्गशुल्य बनाने के लिये 'मानवजीवन और अहिंसा'; 'गृहस्थधर्म के सिद्धान्त' और 'सृष्टि की रभिका मानुजाति' शीर्षक से कई लेखमालाये कलकत्ता के दैनिक 'सन्मार्ग', 'लोहमान्य' एवं 'विश्वधनु' पत्रों में निकाली। फिर तो मूल से ही सबको मानवता का धामन्त्य सन्देश मिले इस आशय से पुराणों के प्रकाशन का भीगनेश का

सार जहाँ व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योगधन्यों में उनके आशाकार यावन्त पुत्र के रूप में आदेश पालन करने का मैं अधिकारी हूँ वहाँ घर के कार्यों में उनका आदेश ईश्वराज्ञा रूप में ही हमें श्रुत होता है। यही वाक्प्रकाशन के प्रस्ताव के समय भी हुई। कलकत्ते में वावूजी के अन्यतम कृतों और उनके निरुक्त सृष्टि सन्दर्भ के सम्पादन में कार्य करनेवाले अपना जीवन का उपयोग शास्त्रों के स्वाध्याय में लगानेवाले श्री रामनाथदाधीश शास्त्री ण्ड निवासी ने निरन्तर परिश्रम कर वावूजी के स्वदेशवास के सात मास रूप अवधि में दश हजार श्लोकों के प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण को प्रकाशित का प्रयत्न किया। अपने उत्साह की सीमा का अक्रिमण कर श्रीमान् वावूजी, पथ में सुधार होते ही पुराण-परिचय से अपनी भूमिका तैयार की। इसमें ही पुराणों की संक्षिप्त विषय-सूची बड़ी गवेषणा और प्रामाणिकता के साथ आई। आपका यह लेख वास्तव में पुराणोक्त परिचय के सम्बन्ध में नई नई। यह प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के पुराण एवं भारतीय समाज के प्रति सम्माननीय सामयिक उद्घरणों से बहुत ही गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं मननीय सामग्री प्रस्तुत करता है। विषय की प्रगल्भता और दुरुहता से लम्बा होने पर भी पाठ्य-वस्तु का क्रम पठनीय है साथ ही चारों ओर के पुष्ट प्रमाणों द्वारा उसकी प्रतिपादन शैली विरोध मौढ़ हो गई है। वास्तव में पुराणों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री से सुसज्जित पूर्ण परिचय देनेवाली अपने ढंग की यह एक अभिनव रचना है। सदा की तरह ही इन महान् ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रेरक श्रीमान् वावूजी की इस प्रसवोत्सव महापुराण के विषयों को ध्यान में रखते हुए ही मान्यता रही है कि जो पाश्चात्य राष्ट्र शास्त्रचर्चा को विडायलि कर शास्त्र के षल पर परमाणु एवं उद्भजन जैसे संहारास्त्रों के हिंसक प्रयोगों षल पर शान्ति सुरक्षा और न्याय का दम मरते हैं उनकी आरंभ खोली य तथा उनका अनुकरण करनेवाली मध्यपूर्व, पूर्व और सुदूरपूर्व दक्षिण-पूर्वी

एशिया के अल्पविकसित आत्मनिर्भरता के पाश को प्रसन्न करनेवाले राष्ट्रों को न जागरण के प्रभात में ही इस अमूर्त्य देन से मन्वा मार्ग दर्शन हो; जिसकी आधार शिला विश्वशान्ति, विश्ववन्धुत्व, वन्द्याग और अहिंसा के अमर मन्देश देनेवाले इस ब्रह्माण्ड के प्राण इन महापुरुषों के पारायण से मन्थन की हुई विनारपा हो और जनताजनार्दन मन्ने अर्थात् मानवी गुणों को अपनाकर लोकहित में अपना पराया न समझकर लग जाय। इसी उद्देश्य से यह वृहत्प्रकारान् संशोधन प्रस्तुत है।

वैसे तो “न हि वस्तूरिकामोदः शपथेन विभाज्यते” इस अभिप्रायकोटि अनुसार किसी प्रकार विद्वत्समुदाय के सामने ब्रह्मवैवर्त के विषयों के लिये निवेदन करना सूर्य को दीपक दिखाना है फिर भी प्रसङ्गवशा ब्रह्मवैवर्त के विभिन्न खण्डों का परिचय देना आवश्यक है। यह महापुराण सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार और वैष्णवों के हृदय का द्वार है। इसके प्रतिपाद्य गोलोकनाथ परब्रह्म आनन्दकन्त श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आह्वादिनी शक्ति राधिकाजी हैं जो नित्य ही गोलोक में गोगोपीगोपगण के साथ रासकीड़ा करते हुए सङ्कट भक्तगण को अपूर्व अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं। इसमें चार खण्ड हैं—प्रथम ब्रह्मखण्ड, द्वितीय प्रकृतिखण्ड, तृतीय गणेशखण्ड और चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्ड है—

सारभूतपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रममञ्जनम् । हरिभक्तिप्रदं सर्वं तत्त्वज्ञानविवर्द्धनम् ।
कामिनां कामदञ्चेत्त्रं सुमुखूणाश्चमोक्षदम् । भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपम् ।
ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम् । व्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परात्परम् ।

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम् ।
ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम् ॥
जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम् ।
सासाध्व कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम् ॥

कीर्त्तैरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः ।
 सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत्स्थानं शुभाशुम् ॥
 वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणन्ततः ।
 सतो गणेशम्वण्डे च सज्जनभरिकीर्तितम् ॥
 अतीवाचूर्वचरितं धृतिवेदसुदुर्लभम् ॥६२॥
 गणेशभृगुसम्वाद्मर्वतत्त्वनिरूपणम् ।
 निगूढकथचस्तोत्र मन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥६३॥
 श्रीकृष्णजन्मखण्डश्च कीर्तितश्च ततः परम् ।
 भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीष्णजन्मकर्म च ॥
 मुघो भारावतरणं क्रीडाकौतुकमङ्गलम् ।
 सतां सेतुविधानश्च जन्मखण्डनिरूपितम् ॥
 सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम् ।
 विपुलं ब्रह्मकात्स्न्यश्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥
 ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रपद्यन्ति पुराविदः ॥

(उपक्रमाध्यायः)

इस बार ब्रह्मवैवर्त में विषय-सूची बहुत विस्तार से हिन्दी भाषाभाषी
 मता के लाभार्थ दी गई है । आशा है, पुराण-प्रेमियों को इससे सन्तोष होगा ।
 भी कुछ समय से ब्रह्मवैवर्त के तृतीयखण्ड का एक काशीरहस्यभाग बनारस से
 लाने की आशा है जो सम्पूर्ण ग्रन्थ को साङ्गोपाङ्ग बनाने और अथर्वक के
 वे ब्रह्मवैवर्त के संस्करणों में विशिष्टता रखनेवाला होगा । भगवत्कृपा से
 तको परिशिष्टरूप से ही सम्मिलित करने का विचार है इसके लिये हम ब्रह्मेय
 णिषाचार्य प्रतिष्ठादिभयंकर श्रीदेवनायकाचार्यजी महाराज भगवद्भक्तानुजयीठा-

धिपति, राजमन्दिर, यनाग के शुभाशीर्वाद में अनुगृहीत हुए हैं। इस प्रत्यक्ष
मादर सम्पन्न उन्हीं आचार्यगणों के करकर्मों में अर्पित कर में अपना कर्तव्य
पालन कर गन्तु होना है। अब इसके प्रकाशन के सम्बन्ध में दो शब्दलिख
उपसंहार करना चाहता हूँ।

इतने पड़े विस्तार को लेकर संग्रह के ग्रन्थों का मन्त्रादन वैसे ही करि
है। मूक संशोधन, भूमिका लेखन, विषय-सूची और मुद्रित्यत्र तैयार कर
में हमारे श्री मोरप्राप्य शोधप्रतिष्ठान की विद्वन्मण्डली का पूर्ण सहयोग रहा है।
प्रभु उन्हें हमारे इस कार्य की पूर्णता के लिये सतत सफल और अमता प्रदान
करते रहे और उनका सदा ही हमें पूर्ण सहयोग मिलता रहे यही शुभ कामना
है। पूज्यपाद १००८ श्रीमान् गुरुवर्य आचार्य कल्याणमय मरस्वनी और राजगुरु
पण्डित हरिदत्तजी शास्त्री देहरादून का कृतज्ञतापूर्ण आभार मानता हूँ। वर्य
विद्वद्भुरन्धर हैं इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, अद्भुत विवेचन, प्रतिभा, विलक्षण स्मृति
अपूर्व मेधा और विचित्र धार्मिकपूर्ण समन्वय शक्ति से हमें शङ्कास्रलों पर
विशेष प्रमाणों द्वारा सन्देह निवृत्ति के लिये अवसर और शुभाशीर्वाद
मिला है।

पुनः अपने सभी अनुमाहक सम्मान्य पाठक महानुभावों से अपनी मूर्खता
के लिये प्रार्थना करते हुए आप सभी को अभूल्य सत्परामर्शों के लिये बारम्बार
सामग्र्य अनुरोध करता हूँ जिनसे हमें भूलसुधार में सहायता मिलती रहे। अब
आप सभी गुणमण्डलक पञ्चपाती महानुभावों की सेवा में अपने परिवार की यह
अनुपम भेंट 'पुरा नवं भवति' कहते हुए मुझे आत्मसन्तोष एवं गौरव अनुभव

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सभी महानुभाव हमारी अपूर्णताओं को क्षमा करते हुए प्रतिदिन इस दिव्यवाणी के स्वाध्याय प्रसार द्वारा इस परिश्रम को सफल बनायेंगे और जो कुछ तुच्छ सेवा हमसे होगी उससे उन पुराणवक्ता महर्षिपरम आचार्यों के आदर्शवाक्यों से जनता का विशेष हित सम्पादन करेंगे।

“स्यदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये”

कार्तिक शुद्ध
द्वयोत्थापिनी एकादशी
विक्रम सम्वत् २०११

विद्वज्जनवरणसेवक—
राधाकृष्ण मोर
६, हाइव रो, कलकत्ता ।

श्रीराधाकृष्णौ प्रसीदेताम्

सम्पादकीयं निवेदनम्

श्रीभगवन्कृपया वैष्णवहृदयहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणं सहृदयधुरीणा
विद्वज्जनचूडामणीनां करकमलेषु प्रस्यूयमाना नितराहृदयतोषं प्रसन्नताश्चाऽनुभवाम
ग्रन्थेऽस्मिन् कियता विस्तारेण ज्ञानकर्मोपासनरहस्यानां गूढतमं तत्त्वं सवि
प्रकटीकृतमिति विद्वांस एवाऽवगच्छन्ति । गमिष्यन्ति च ग्रन्थस्य पारं प्रतिदिनं पाठ
यणैकशीलाः कृष्णभक्तिविलसितदेहभाजः सज्जनाः । श्रीमता भगवत्पाद रामानुज
चार्यपीठाधिपतिनां वाराणसेयप्रतिष्ठादिभयङ्करेत्यादिविविधचिरुदोषेतानां श्री
देवनायकाचार्यस्वामिमहाभानां करकमलेषु समर्पयन्तः श्रेष्ठिप्रवरवैदिकविचार
चर्चापरायणैक शास्त्रव्यवस्था प्रकाशननिपुणामां गीर्वाणबाणीसेवासक्तस्वनामधन
श्रीमन्मुखरायमोरमहोदयानां ज्येष्ठसुपुत्राः श्रीराधाकृष्णमोरमहाशयाः नित
धन्यवादाहः । स्थाने एव यत्सद्धर्मप्रचाराय कृतस्य प्रयत्नस्य पूर्ण
गोविन्दगुणानुवादकीर्तनपरायणानां विद्वद्भुरन्धराणां श्रीस्वामिसदृशाचार्यचरणा
मृतेऽपूर्वज्ञानविज्ञाननिधानयोः श्रीराधाकृष्णयोर्भक्तिप्रसङ्गात्मकस्य पुराणस्यास्य सम
विश्वकल्याणकारणपरमिति निश्चिनुमः । आशास्महेऽमाकं भ्रमप्रमादालस्यादि
दोषवशाद्ग्रन्थेऽस्मिन् त्रुटयः स्युस्ताः शुभप्रदणैरुपश्रुपातिनो विद्वांसो नि
संशोऽप्युत्तमं विचिन्त्यन्तीति ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण की विषय-सूची

ब्रह्मखण्ड

पृष्ठ	विषय	पृष्ठाङ्क
-------	------	-----------

गणेशप्रदेशमुद्देशोपाः पुराणं सर्वं मनसो मुनीन्द्राः ।

गणेशप्रीतिरिजिजादिकाभ नमस्ति देवाः प्रणमामि न विभुम् ॥

अनुक्रमणिकाऽध्यायवर्णनम्

‘माहात्म्यं, गणेश, गणेशम तथा देवी गणेश्वरी को प्रणाम कर जब (पुराण) बारण करे। मैमिवाखण्डमें शीतवादि ऋषियों ने तृतीय से पूछा कि तू आप वही से आये है आपके दरान से ही हमारा पुण्य दिन हुआ है पुराण कथाओं में सर्वश्रेष्ठ है तथा सब पुराणों को जानते है हमद्विदे प्रगवात् में हमारी निम्न भक्ति हो ऐसे पुराण का वर्णन कीजिये। शृष्टि की आकार तब निराकार का वर्णन, सैन्धव भक्त बड़ा ध्यान करते है तथा तब क्या ध्यान करते है, महति का आकार, दुर्गा का लक्षण, सरस्वति देव, गोघोक का तथा वैकुण्ठ लोक का वर्णन, गङ्गा, नदी, पहाड़ों की महति की कथाओं का वर्णन तथा अग्नि, दुर्गा, गरुडकी, राक्षसी, मादिकी विषय से आश्चर्य का वर्णन, जीवों से बर्षों का विषय, गणेशों का वर्णन, १ लण्डन तथा बनने मोछ तथा ब्रह्मा, ब्रह्मणी, बर्षी, गङ्गा, इन्द्रा की ओर

शास्त्रपामशिता की कथा, धर्माधर्म का वर्णन, गणेश का चरित्र तथा स्तोत्र का एवं मन्त्र तथा श्रीकृष्ण भगवान के जन्म चरित्रों का वर्णन कीजिये।

गूतजी ने कहा—शौनकजी! आपके प्रश्न को मैं अपनी भांति समझ पुरा आपका प्रश्न महावेदमें पुरान विनयक है। इसमें (१) ब्रह्मसूत्र में परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना, योगिगुरु तथा गुरु कहने हैं इन तीनों में कोई भेद नहीं।

मन्त्रो भवन्ति मन्त्रमन्त्राद् योगिमन्त्रेन योगिनः।

वेदमन्त्रा भवन्मन्त्रेन क्रमात् गुरुयोगिनः पराः॥

इसी खण्ड में देवी, देव तथा सर्व जीवों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(२) प्रकृति खण्ड में—देवियों का चरित्र, जीवों का कर्मविपाक, शास्त्रप्रमाण, धर्मेष्ट, कथ्य, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा का वर्णन, प्रकृति का सञ्जन मुक्तमी तथा मुक्तमी मनुष्यों के धर्मों का वर्णन, शुभाशुभ का वर्णन और नरकों का वर्णन किया है।

(३) गणेश खण्ड में—गणेश का जन्म तथा गणेश के अपूर्व चरित्रों का वर्णन, गणेश और धनु का संवाद और शुभ स्तोत्र मन्त्रतन्त्र कथ्यादिकों का वर्णन किया है।

(४) श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में—भारत में श्रीकृष्ण का जन्म तथा कर्म, श्रीकृष्ण का भारहरण एवं सज्जनों की मर्यादा का विधान वर्णित है।

हे शौनकजी! इस प्रकार चारखण्डों से मुक्त सर्व धर्मों का सारभूत, पुराण में श्रेष्ठ, सर्व आशाओं की पूर्ति करनेवाला यह ब्रह्मवेद पुराण है। इसमें सर्व प्रथम श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को दिया। ब्रह्माजी ने महातीर्थ पुष्कर में धर्म का धर्म ने अपने पुत्र नारायण को, नारायण ने नारदजी को और नारदजी ने व्यासजी को दिया। व्यासजी ने इस पुराण सूत्र को मुझे दिया और मैंने आप को कहा। इसमें अष्टादश हजार पाठ हैं सम्पूर्ण पुराण के श्रवण से जो फल मिलता है वह इस अध्याय में वर्णित है।

२

परब्रह्मनिरूपणम्

शौनकजी के प्रश्न करने पर कि ब्रह्म का निरूपण कीजिये तब सौ सृष्टि के बरादान कारण रूप में उसका प्रतिपादन किया और नामा लोक स्थिति बतलाई ।

३

सृष्टिनिरूपणम्

५

सृष्टि के रचना के सम्बन्ध में कई प्रचलित मत हैं कोई पहले जलजन्तु व पशुपशुओं की उत्पत्ति बताते हैं और चन्द्र मानुष आदि के बाद मनुष्य व पदुपते हैं । कोई कहते हैं कि अनादि परम्परा प्राप्त इस क्रम का पूरा पता आ मिलना कठिन है अनुसन्धान चल रहा है । यही ब्रह्मवैवर्त के मतानुसार सृ मक्रिया का सामयिक निरूपण पठनीय है :—

सृष्टि के आरम्भ में सम्पूर्ण विश्व शून्यमय निर्जन्तु होकर अन्धकारपू था; न कहीं पृथ्वी न पर्वत और न नदी नद्यादि का कहीं नाम था । जब महा हिरण्यगर्भ ने अपने आपको अकेला देखा तो खेय्या से “एकोऽहं बहु स्याम्” की भावना का प्रस्तुरण हुआ । उसके साथ ही सृष्टि के कारणस्वरूप मूर्तिमान् तीनो गुण आविर्भूत हुए; फिर महान् अहंकार, पञ्चतन्मात्रा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के साथ उत्पन्न हुए । फिर भगवान् नारायण स्वयं आविर्भूत हुए । वे भगवान् भीष्म के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे । मायव्रत पार्व से पाँच मुख एवं तीन नेत्रवाले शङ्करजी का आविर्भाव हुआ उन्होंने शङ्करजी की यही मूर्ति की ।

सौमिजी ने कहा फिर भगवान् भीष्म के नाभि कमल से महातपस्वी ब्रह्माजी का तथा पद्मस्यल से धर्म का आविर्भाव हुआ । वाय पार्व से हन्या आविर्भूत हुई, जो साभ्रान् गरस्त्री ही थी उनके मन में महालक्ष्मीजी परमात्मा की मुद्रि से सर्वाभिष्टाय देवी मूढ प्रहृति का आविर्भाव हुआ उनसे ।

नेत्रा, तृष्णा, क्षुत्पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि हुए। वह आदिशक्ति समस्त
पार्षद और आयुधों के साथ भगवती साक्षात् ही श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी
और आदि शक्ति वहीं विराजमान हो गई।

४

सृष्टि निरूपणम्

१२

प्रभु के रसना के आगे के भाग से देवी सावित्री का आविर्भाव हुआ और
फिर मानस से एक पुरुष मन्मथ कामदेव हुए उनके वाम पार्श्व से सबको मोहने
वाली रति हुई, उसके पास मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण, और उन्मादन नामक
पाँच बाण थे, उसने उन बाणों की परीक्षा लेने के लिये उन्हें छोड़ दिया जिससे
सभी काम के वशीभूत हो गये। इसी समय अग्नि का आविर्भाव हुआ इस लपेटे में
ब्रह्माजी आ गये उसको शान्त करने के लिये भगवान् ने जल को रचा एवं उसका
अधिष्ठाता वरुण को बनाया। अग्नि के वाम भाग से एक कन्या का आविर्भाव
हुआ जिसे अग्नि की पत्नी स्वाहा नाम दिया गया। वरुण के वामपार्श्व में वरुणाकी
और विष्णु के निःश्वास वायु से पवन का आविर्भाव हुआ उसकी पत्नी भी। कृष्ण के
काम बाण से दीर्घपात हुआ एक हजार वर्ष तक वह हिम्व रूप में रहा तब महान
विराट् हुए जो सम्पूर्ण विश्वों का आधार है जिसके एक लोमविस्तर में सारा विश्व
व्यवस्थित है। बड़े भारी समुद्र में शयन करते हुए भगवान् विष्णु के कान से रो
देव्य पैदा हुए और ब्रह्मा को ज्योंही मारना चाहा कि विष्णु ने उन्हें मार डाला।

५

सृष्टिप्रकारवर्णनम्

१४

शौनकाजी का प्रश्न "क्या गो, गोपी और सभी उनके सहचर गोलोक
में नित्य हैं कि कल्पित हैं ?" इस पर मोनि ने काल मान बतलाते हुए सृष्टि की
स्थिति बतलाई। इसके अनन्तर गोलोक का वर्णन, गोलोक के रासमण्डल में
रास का सुन्दर निः — । अथवा अविष्ठात्री रागेधरी राधा का वर्णन, वहीं पर

गोप, गोपी, माय, वत्स और उनके उपकरणों का सुन्दर वर्णन । फिर दिक्पाल ढाकिनी, योगिनी आदि की उत्पत्ति का वर्णन ।

६

सृष्टिप्रकरणम्

श्रीकृष्ण भगवान् ने नारायण के लिये सादर महालक्ष्मी और महासरस्वती सावित्री को ब्रह्माजी के लिये, मूर्ति को धर्म के लिये, रवि को कामदेव के । मनोरमा को कुबेर के लिये और अन्यान्य पुरुष देवताओं को उन-उन स्त्री । गण को आदरपूर्वक दे दिया । राक्षस जी को भगवती सिंहवाहिनी (अमितपराशरीला) देदी । इस पर भगवान् राक्षस ने प्रार्थना कर इस अनुपम भेंट को भगव की भक्ति में बाधक धत्ताकर टाटने को कहा ।

तपस्याच्छन्नरूपाश्च महामोहकरण्डिकाम् । भयकारागृहे धोरे दृष्टो निगडरूपिणीम्
 शरवद्विवुद्धिजननी सद्वुद्धिच्छेदकारिणीम् ।
 शरवद्विभागसाराश्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम् ॥
 नेच्छामि गृहिणीं नाथ ! वरं देहि मदीप्सितम् ॥

यह गृहिणी का समागम संसाररूपी घोर कारावास में हथकड़ी बेड़ी का काम करती है । सद्वुद्धि को छेदन करती है विषयों के प्रति इच्छा को बढ़ाने वाली है अतः हे नाथ गृहिणी को मैं नहीं चाहता । कृपया मेरा इच्छित वर मुझे दीजिये । आपके चरणों के सेवन, पूजन, वन्दन, और नाम कीर्तन से घड़कर संसार में दूसरी कोई वस्तु मैं नहीं चाहता । सारी कल्पावस्था तक आपके ध्यान में लगा रहकर नवधा भक्ति ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो । यह मेरी कामना है ।

“स्वत्सेवने पूजने च वन्दने नाम कीर्तने । सदोद्धतमेवाश्च विरतौ विरति लभेत् ॥१४॥
 स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः अवर्णजपः । त्वच्चारुपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥१५॥
 समर्पणश्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरं यरेश ! देहीर्न नवधा भक्तिलक्षणम् ॥”

मासि, मासोक्त, मास्य, मासोक्त, मास्य और मीमांसा में ही प्रकाश की
नियति एवं १८ गिटिनी है, मास्य में भव, लक्षण, विष्णुसूक्त और शिवसूक्त प्रकाश
में भक्ति की १६ थी कथा को भी प्रकाश की नहीं कर सकते ।

राष्ट्राजी को भगवान् कृष्ण का वरदान कि इस महाप्रति शिव के मत
प्रकार प्रकाशप्रतिभ में सम्बन्ध महा ही बना रहे । जो कृष्ण (नारायणी) होती है
हृन्मामी के गिये कलहकारिणी बन जाती है बाकी तो पुत्र की उत्पत्ति में आने
में पुत्र पौत्र की उत्पत्ति कर पति का सर्वथा वरदान करती है । शिव नाम
की महिमा और शिवभक्त भगवान् कृष्ण का अवयव ही प्रिय है । मिहिरादिनी
की कृष्ण भगवान् में अपने वही रंगकर कहा कि कल के बाद में मास्युक्त
प्रारम्भ में दक्ष की कन्या बन तुम राष्ट्र की स्त्री बनोगी उम्मी जन्म में सती के
रूप में शरीर को त्यागकर दिवालय की पत्नी के पार्वती रूप में आविर्भूत होकर
गन्धु के साथ विहार करोगी । सम्पूर्ण विश्व में शरत्काल में प्रति वर्ष सर्व
मुहारी पूजा हुआ करेगी, उसमें भगवती के पूजन करनेवाले को यश, कीर्ति, धर्म
और ऐश्वर्य सब कुछ मिलेगा भीमाया काम पीज भगवती को दिया । ऐसे ही
कामदेव, यम, कुबेर आदि को नानामन्त्र और सिद्धियाँ दी तथा पिता किया
अथ धृन्दायन में गोपी एवं गोपों के साथ निवास करने चले आये ।

७

सृष्टिप्रकरणम्

२२

ब्रह्माजी ने मधु-कैटभ के मेद से तपस्या कर पृथ्वी को रथ आठ पर्वत
समुद्र, नदी, नद, वृक्ष, वनस्पति, ग्राम, नगर सभी बनाये ।

“लवणेभ्युसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान्”

सात ऊर्ध्वलोक, सात पाताल, सप्तद्वीप बनाये इनकी गणना सम्भव
नहीं । ये सब अनादि परम्परावच्छेदेन कृत्रिम और स्वप्न के समान अनित्य
नश्वर हैं केवल सैव्य और शिवलोक से ऊपर गोलोक ही नित्य है ।

सृष्टि रचनेके बाद सावित्री के गर्भ से ब्रह्माजी ने मनोहर चारों वेदों, शास्त्रों, व्याकरण, एवं न्यायादि को ३६ राग एवं रागिणी चारों युग—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलहप्रधान कलि बनाये। वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण, रात, दिन, घाट, सन्ध्या, प्रातःकाल, मातृका, चारों प्रलयकाल, मृत्युकव्यका और व्याधिगण को उत्पन्न कर उन्हें पोषित किया। ब्रह्माजी के पीठ से अलक्ष्मी हुई। नाभि से विश्वकर्मा जो शिल्पी जाति के गुरु हुए। आठ यमु चारों कुमार आदि नाना अङ्गों से हुए। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा मनुष्यों के उत्पादन करने में प्रवृत्त हुए। ऋषियों की उत्पत्ति। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, अङ्गिरा, श्वि, भृगु, दक्ष, कर्दम, पञ्चशिख, वोदु, नारद, मरीचि, यशिष्ठ, ईस और यति हुए इन्हें सन्तान की वृद्धि का ब्रह्मा ने आदेश दिया। फिर नारदजी ने विषयरूपी विष एवं भक्ति रूपी अमृत की तुलना कर इन महर्षियों को बचाकर रखने के लिये अनुरोधपूर्वक निवेदन किया। इसपर ब्रह्माजी ने आप दिया कि मैं नाना जन्मों में भिन्न-भिन्न योनि ग्रहण कर अन्त में लोगों को ज्ञान बोटता करेगा इस पर नारदजी ने क्षमा-प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण की भक्ति का माहात्म्य।

ब्रह्माजी ने अपने सब पुत्रों को सृष्टि सम्भालन का आदेश दिया। मरीचि महर्षि के मानस पुत्र कश्यप प्रजापति हुए। अत्रि के नेत्रों के मल से समुद्र में चन्द्रमा उत्पन्न हुए। पुलस्त्यजी के मानसपुत्र मैत्रावरुण हुए मनु के शतरूपा में तीन कन्यायें हुईं आकूति, देवहूति और प्रसूति जो परम प्रसिद्ध पतिव्रता हुईं तथा श्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुआ जो परम धार्मिक

पर प्रसिद्ध हुआ । मनुजी ने आकृति को रुचि नामक ऋषिको व प्रसूति को
नापति दक्षको एवं देवहूति को कर्दम ऋषि को दिया जिसके गर्भ से भगवान्
ख्याचार्य कपिल हुये । प्रसूति में दक्ष के सकारा से ६० कन्यायें पैदा हुईं जिनमें
८ धर्म की, ११ रुद्र की, १ सती शिवजी की, १३ कश्यपजी की और बाकी २७
द्रुमा को प्रदान कीं । दक्ष कन्याओं के नाम एवं वंश का वर्णन । इस प्रकार
मनुजी ने सृष्टि क्रम का सुन्दर वर्णन किया ।

०	धनेशजन्मकथनम्	३१
	घृताचीविश्वकर्मासंवादवर्णनम्	३५
	संकरजात्युत्पत्ति विवरणम्	३७
	जातिसम्बन्धनिर्णयवर्णनम्	३९

भृगुजी के पुत्र च्यवन और शुक्र हुए, क्रतु की क्रिया नाम की स्त्री से
जलविलस्य हुए । अश्विरा के तीन पुत्र हुए बृहस्पति, उतप्य और शम्बर ।
सिष्ठ के पुत्र शक्ति हुए उनके पराशर हुए उनके सुपुत्र महाभागवत कृष्ण-
पायन साक्षात् भगवान् व्यासजी हुए । व्यासजी के शिवजी के वंशरूप शानी
वर शुक्रदेवजी हुए । पुलस्त्य के विश्वधवा और उसके धनेश्वर नामक पुत्र हुआ ।
विश्वधवा के पुत्र कुवेर, रायण, कुम्भकर्ण और विभीषण हुए । पुलह के पुत्र
रास्य और रुचि के शाण्डिल्य हुए, इनके पांच गोत्रवाले नाना जन हुए, ब्रह्मा के
पुत्र से ब्राह्मण जातियां वादुदेश से क्षत्रिय जातियां जह्वा से वैश्य और पैर से
पूज्य जातियां हुईं । (विशाल ब्रह्माण्ड में सभी पणों का विशिष्ट स्थान है इनमें
कोई दोष का कोई अन्तर नहीं सभी मानव अपने-अपने कर्मों से सुगति और
सुगति को प्राप्त होते हैं ।) उनकी संकरता से नाना वर्णसंकर जातियां हुईं ।
मज्जि जातियां और सप्पुत्र आदि की उत्पत्ति का इतिहास । सहस्र जातियों
की उत्पत्ति का विवरण एवं जातियों के सम्बन्ध में निर्णय ।

सुतपा नामक ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या एक लाख वर्ष तक की। कृष्ण की अलौकिक ज्योति का उसे अकस्मात् दर्शन हुआ और आकारा-
वाणी हुई कि हे ब्राह्मण तुम मोक्ष मत मांगना केवल लोकव्यवहार की परम्परा के
लिये विवाह करो बाद में अपनी भक्ति और दास्य में तुम्हें दूँगा। स्वयं ब्रह्मा ने पितरों
की मानसी कन्या को उसे दिया उसमें ब्राह्मण के द्वारा कल्याणमित्र का जन्म
हुआ। इस महापुरुष के स्मरण करने से ब्रह्म से भी भय नहीं रहता। वैष्णव
ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने से भगवान् नारायण स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं। ब्राह्मण प्रशंसा
के पद। विष्णुमन्त्र की दीक्षा गुरु से लेने से ही सब तरह की सिद्धि होती है।

उपवर्द्धन गन्धर्व के रूप में नारदजी का जन्म। पूर्व जन्म में नारदजी ने
पिता के साथ विरोधकर क्या किया और उसका परिणाम सुनाने के लिये
शौनकजी की प्रार्थना पर सौति ने बताया कि ब्रह्माजी की पूजा पुत्रों के
शाप देने से नहीं होती है। इसीलिये ब्रह्माजी की आराधना भी विद्वान्
छोड़ नहीं करते। नारदजी जिस प्रकार गुरुजनों के शाप से गन्धर्व हुए
उसकी कथा का प्रसङ्ग। गन्धर्व होकर भी वैभवं हुआ परन्तु पुत्र न हुआ इसपर
गुरुजी की आज्ञा से उन्होंने पुष्कर तीर्थ में भगवान् शङ्करजी की तपस्या की। भगवान्
शङ्करजी का मन्त्र उसे गुरुदेव वशिष्ठ ने दिया था। दिव्य सौ वर्ष तक उसका
जप करता हुआ गन्धर्वराज अन्त में शिवजी को प्रसन्न करने में सफल हुआ
भगवान् चन्द्रशेखर ने उसे घर मांगने को कहा तो गन्धर्व ने हरि भक्ति और परम
भागवत पुत्र की याचना की। भगवान् शङ्कर ने कहा कि श्रीकृष्ण की आराधना
करनेवाले को कभी कोई पाप ताप नहीं सता सकता अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो

रन्तु सुम दूधरा यह भांगो । गन्धर्वराज ने अपने पढ़ने बर्ग की पूर्ति न होने पर
 तार काट कर चढ़ाने की धमकी दी । तब भर्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवत्
 हृद ने पुर स्न की प्राप्ति का सुन्दर वस्त्रान दिया और अन्तर्धान कर गये ।

१३ उपवर्हणमायाया मालावत्या विनायक्यनम् ४१

गन्धर्वराज के पुत्र उपवर्हण को भी गुरु दीक्षा पर भगवान् विष्णु का मन
 भेला । एक बार गन्धर्वों की ६० पत्नियों ने उम युवक को इस प्रकार सुन्दर
 वस्त्र में ढेर कर मूर्च्छित होकर योग से प्राण छोड़ नया जन्म धारण कर विवस्व
 की कन्याओं के रूप में जन्म लिया । यद्दी होनेपर उन्होंने उपवर्हण गन्धर्व को
 अपना पति घर लिया जब यह सानन्द तीन लाख वर्ष तक जीवन बिताकर
 भगवान् में मन लगाने की तैयारी कर रहा था तो रम्भा के नव यौवन को देखकर
 उसका धीर्य स्थलन हो गया । इसपर मन्नाजी ने उसे शूद्र योनि की गति पाने का
 ताप दिया । उस गन्धर्व ने योग के द्वारा अपना शरीर छोड़ा और उसकी
 चत्वारस रानियों में प्रधान महिषी ने पति विरह में मार्मिक विलाप किया ।

१४ विष्णुमालावतीसम्वादवर्णनम् ४०

ब्राह्मण बालक के वेश में भगवान् विष्णु का मालावती के पास आना और
 उस ब्राह्मण बालक का मालावती के साथ सम्वाद होने के प्रसङ्ग में कर्मक
 का कथन ।

१५ मालावतीकालपुरुषसम्वादवर्णनम् ४३

ब्राह्मण ने रोग और व्याधि का बीज शास्त्रानुसार बताकर उसके दूर करने
 के उपाय बताये । मालावती के सामने कालपुरुष को प्रगट किया गया । व्याधि
 समूह और यमराज सभी उपस्थित हुए । मालावती ने सुले शब्दों में उससे पूछा

राज आप मेरे पतिदेव के हरने का कारण बताइये । यमराज ने इसपर
 ११ द्वारा मृत्यु कन्याओं को व्याधिरूप में मनुष्य एवं प्राणियों की मृत्यु का
 बताया ।

विष्णुमालावतीसंवादे व्याधिप्रणयनम्

५६

वैद्यकीसंहितावर्णनम्

मालावती के यह पूछने पर कि रोग की उत्पत्ति, शमन और उसे दूर करने
 में क्या बतलाईये तो ब्राह्मण ने परम्परानुसार जैसे आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ
 था और वेदाङ्ग के रूप में ही चिकित्सा को एक अङ्ग कहकर इसकी
 शांसा की । इसके १६ तन्त्रों में एक से एक बढ़कर रोगों की चिकित्सा
 दी है । व्याधि का ज्ञान और कष्ट का निग्रह करना यही वैद्य का वैद्यत्व है
 का मालिक नहीं है, फिर ज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ,
 ३, ज्वरातिसार, ग्रहणी, खांसी, श्वास, मूत्रकुच्छ, गुल्म (मोला) रक्तदोष
 घाले रोग, विषमेह, कुवद्रापन, गोद, गलगण्ड, भ्रमरी, सन्निपात,
 यदि ६४ भेद रोगों को बतलाये । पापों से रोगों की वृद्धि और मृत्यु का
 बतलाया और ईश्वरभक्ति से शमन ।

व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम् । कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराख्याधिविनाशनम्
 णं वह्निसेवां स्नानं करोति यः । बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति ॥
 क्स्तायी सेवते चन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तञ्च निदाघेऽनिल सेवनम्
 क्स्तायी धनतोयं च सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति
 गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत् । स्नातेस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति

स्नातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते ।

मुहुक्ते नवाग्रमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति ॥

मुहक्ते सदनं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलम् ।

नित्यं मुहक्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥

अधि दैवद्वयीनश्च नवनीतं तथा गुडम् । नित्यं मुहक्ते संयमी यो जरातं नोपगच्छति

अर्थात् नेत्रों को ठण्डे पानी से धोना, व्यायाम करना, तैल का पैरोट्टे तलवे में मर्दन, कान में तेल डालना, और शिर में अच्छे तैल की मालिश करना बुढ़ापा और रोग को दूर करता है । वसन्तऋतु में प्रातः सायं टहलने, चित्रक के सेवन और गहरी नींद लेने और समय पर वाला युवती के साथ सम्भोग करने से बुढ़ावस्था नहीं सताती । कूपजल, नदीजल अथवा तालाब या बाघड़ी के जल में स्नान, चन्दन का लेपन और गर्मी में ठण्डी वायु का सेवन ये बुढ़ावस्था से दूर रहने के साधन हैं । वर्षा में गर्म जल से स्नान और वर्षा के जल का सेवन तथा समय पर हित, मित और पथ्य आहार के सेवन का स्वास्थ्य पर बहुत सुन्दर प्रभाव होता है । शरदऋतु में सुन्दर औषध का सेवन, भ्रमणादि का वर्जन, नदी, झूआ, बाघड़ी या तालाब में ठण्डे जल से सदा स्नान करने से बुढ़ावस्था नहीं सताती । हेमन्त ऋतु में नदी झूआ, बाघड़ी या तालाब में स्नान और अभिषेक का सेवन, नवीन और गर्म मुपाच्य भोजन करनेवाले को बुढ़ावस्था नहीं आती । सातस्नान के साथ-साथ मुपाच्य रुचिकर और अच्छे अन्न का भूख लगने पर खानेवाला, प्यास लगने पर जल पीनेवाला और नित्य ताम्बूल (पान) का सेवन करनेवाला बुढ़ावस्था को नहीं प्राप्त करता । दही, बिना घी निकाला हुआ मक्खन नवनीत (मखन) और गुड़ का जो संयोजी व्यक्ति सेवन करता-है उसे बुढ़ावस्था नहीं गतानी ।

इस प्रकार सारी रोगविनाशक और शरीर वर्द्धक प्रक्रियाओं को सुन्दर मालावती ने उपर्युक्त की श्रुति का कारण ब्रह्माजी द्वारा शाप और संसार में मर्त्यत्व की प्राप्ति बिना के बिना नहीं हो सकती इस प्रकार जन्मान्तर से उन्नति होना बतलाया है ।

१७ देवानां समीपे विष्णोर्गमनम्

६०

मालावती के साथ ब्राह्मण वेप में विष्णु का देवताओं की सभा में जाना और उपवर्हण की मृत्यु का स्पष्टीकरण करने के लिये देवचन्द्र से पूछना । ब्रह्माजी ने उपवर्हण को शाप दिया उसका कारण बताया और महेश्वर ने तथा धर्म ने देवताओं के आगे विष्णु को न देखकर उस ब्राह्मण से कटाक्ष करते हुए कारण पूछा । इसपर भगवान् ने स्वयं को विष्णु बतलाकर गोलोक, वैकुण्ठ आदि की स्थिति बतलाई और उस गन्धर्व को जिलाने का आदेश दिया ।

१८ गन्धर्वाय जीवदानम्

६४

ब्रह्माजी ने कमण्डलु जल ज्योंही उसपर छिड़का त्योंही मन वाणी आदि का भ्रंश अवश्य हो गया परन्तु आत्मा के अधिष्ठान के बिना यह जड़वत् शब्दों के रूप में ही पड़ा रहा इसी समय ब्रह्माजी के वचन से साध्वी ने विष्णु को प्रसन्न किया और भगवान् की कृपा से यह उपवर्हण गन्धर्व उठ खड़ा हुआ अपने सामने पश्चित देव समूह तथा ब्राह्मण वेपधारी भगवान् विष्णु को प्रणाम किया । देवताओं के घरसे जीवित यह गन्धर्व अपनी राजधानी में लौट आया और इस लक्ष्य में बहुत आमोद प्रमोद के साथ खूब महोत्सव मनाया गया । इस महापुरुष स्तोत्र का वर्णन जो करता है उसकी सम्पूर्ण मनोकामनायें हरि भगवान् कृपा से पूर्ण हो जाती हैं ।

६ ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचम्

६७

शिवकवचवर्णनम्

६६

शिवस्तोत्रवर्णनम्

७१

ब्रह्माण्ड को पवित्र करनेवाले श्रीकृष्ण के कवच का वर्णन । इसके साथ ही

६१ २१

उपब्रह्मणजन्मान्तरकथनम्

७५

नारदशापविमोचनम्

७७

जब बालक होकर पाँच वर्ष का हुआ तो उसे पूर्वजन्मों की स्मृति बराबर वनी ही और वह निरन्तर ही जहाँ भगवान् कृष्ण की पवित्र कथा का अनुवाद होता तो वहाँ वह अवश्य ही पहुँचता है। उसे जब माता भी बुलाती तो वह यही कहता के आता हूँ थोड़ी भगवान् की पूजा कर लूँ। यह बालक नारद नाम से विख्यात हुआ। वह दिन रूना रात चौगुना यज्ञता गया। उसे जिसे कृष्ण मन्त्र की प्राप्ति हुई उसका वर्णन। इसके बाद नारदजी शाप से छुटकारा पा गये।

२२

ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनम्

७६

ब्रह्माजी के पुत्रों की नाना सुन्दर व्युत्पत्तियों का वर्णन।

२३

ब्रह्मनारदसम्वादवर्णनम्

८१

भगवान् ब्रह्माने अपने सब पुत्रों को सृष्टि के विधान में लगाकर नारदजी से सृष्टि करने को कहा। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण संसार में गृहस्थ ही प्रधान है और पुण्यशील है। यह स्त्री, पुत्र, पौत्रों का जो मन्दिर है वह बड़ी तपस्या का फल है देव पितर और ऋषि सभी गृहस्थ के नित्य, नैमित्तिक और काम्य विधियों से प्रसन्न होते हैं इसलिये गृहस्थ पालन करना आवश्यक है। नारदजी ने इसपर बहुत ही सुन्दर आदर्श बचन कहकर कि गृहस्थजीवन यदि कृष्णभक्ति विहीन है तो उसका ज्ञान का सारा जीवन ही व्यर्थ है ऐसे घृणित जीवन की भर्त्सना की। आगे उन्होंने बताया कि जीवन में स्त्री के साथ पाणिग्रहण दुःख के लिये है सुख के लिये नहीं तथ ही तप, स्वर्ग, भक्ति और मुक्ति के उन्नत मार्ग पर चलने के लिये बड़ी भारी कायट है। साध्वी, भोग्या, कुलटा तीन प्रकार की स्त्रियाँ बतलाई गई हैं। परलोक

हर में और कागनेह में केवल अपने पति की जो सेवा करती है, वह साध्वी है।
 २. अन्नहार, सुन्दर भिन्न आहार जपनक जिम स्त्री को मिलते हैं वह भोग्या
 और कुन्दा तो कुल की अहार होकर नित्य ही पति को जनाती रहती है।
 नरदजी कहते हैं सम्भोग में सेज नष्ट होता है 'दिनमें वान करने से यरा का भय
 ता है' अधिक प्रेम करने से घन का भय होना है और अनि आसक्ति होने से
 तीर का भय होता है। साथ रहने में पुरुषार्थ नष्ट होना है कलह में मान्यता
 प्राप्त होती है उनका विश्वास करने से सर्वनाश होता है हे पितः आप ही कहिये
 मात्र में क्या सुख है। इस प्रकार पिता से श्रमाप्रार्थनापूर्वक नारदजी ने
 स्या के लिये आशा मांगी। इसपर मर्याजी गड़े लिपटकर ऊंचे हार में रोने लगे
 स्वयं में मनुष्यों का विश्वास भी दुःसह (असह) होता है।

४ नारदम्प्रति दारपरिग्रहार्थं व्रक्षण उपदेशः ८३

तदनन्तर मर्याजी नारदजी को फिर समझाने लगे और दार परिग्रह के
 ये नाना उपदेशपूर्ण वचन से अपना मन्तव्य प्रगट कर कहा कि कृष्णमूक को
 र में ही तपस्या का फल मिल जाता है।

आदौ भवेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्ततः परम् ।

ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रमण्य श्रुतीश्रुतः ॥

गृहीभव मुनिश्रेष्ठ ! गृहीणा सर्वदासुखम् ।

कामिन्यां सुखसम्भोगः स्वर्गभोगात्सुदुर्लभः ॥

दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः । सर्वस्पर्शसुखान् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम् ॥

तः सुखतमं पुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने । नास्ति पुत्रात्परो बन्धुर्नास्ति पुत्रात्परः प्रियः ॥

सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेद् पुत्रादेकात्पराजयम् ॥

इसपर भी नारदजी थोड़े ही मानने वाले थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की
 अधना के लिये मन्त्रदीक्षा मांगी और इसके बाद ही दार परिग्रह करने की

वात कही तब ब्रह्माजी ने पति से, पिता से और विविक्त आश्रम (सन्यासी) वालों से मन्त्रदीक्षा न लेकर जन्मतः प्राप्त अपने इष्टगुरु से मन्त्र लेनेकी बात कही । क्योंकि त्र्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः । विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः नेपेकाहभ्यते मन्त्रो गुरुर्मर्त्ता च कामिनी । विद्या सुखं भयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च अयं महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं उनके पास जाकर भगवन्मन्त्र को लेकर फिर मेरे पास आओ । इसके बाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये ।

१५ नारदकृत शिवस्तुतिः शिवनारदसम्मेलनञ्च ८६
शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख पना हार्द (भाव) कहकर उनसे अपनेको दीक्षित करने की प्रार्थना की ।

६ शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ८८
आह्निकप्रकरणम् ६१

जब शिवजीने सम्पूर्ण स्तोत्र कथ्यच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कहा तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसङ्ग के सम्बन्ध में उपदेश देने की प्रार्थना की । भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त गया त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया मैं निम्नलिखित मुख्य हैं :—

गुरु इष्टदेव के ध्यानपूर्वक शौच निवृत्ति के लिये वन में एकान्त स्थान पर उत्तराभिमुखादि होकर जावे तदनन्तर जल से हाथ पैर धोकर १६ गण्डूय करे और दन्तमार्जन काष्ठ से अच्छी प्रकार दाँतों को साफ करे फिर जलस्नान कर प्रातः सन्ध्या करे । तर्पण, स्नान, दान, तप, होम, दैवपितृ कर्म के पहिले तिलक को अवश्य धारण करे । तदनन्तर तर्पण और आवश्यक नित्यकार्यों को सम्पादन कर वेद विहित शालग्राम की पूजा करे । शालग्राम शिला का माहात्म्य ।

दर में और कामधेय में केवल करने वृत्ति को जो संन्यास कहती है, वह मानी है।
 म, अलङ्कार, सुन्दर विनाश आदर वचना प्रिय की को मिलने है वर मंगल
 और सुख तो वृत्ति की अङ्कार होकर निवृत्ति ही वृत्ति को जगती रहती है।
 नारदजी कहते हैं सम्भोग में लेत मनु होना है किनमें पाप करने में मंग का क्या
 ना है अधिक प्रेम करने में भय का भय होना है और अति आगति होने में
 तीर का भय होना है। माध करने में सुखाने मनु होना है कछु में मान्य
 नाम होनी है उनका विभाग करने में सर्वनाम होना है वे निवृत्ति आन ही कति
 नेमात्र में क्या सुख है। इस प्रकार विना में समाप्तानापूर्वक नारदजी ने
 सरपा के लिये आहवा मांगी। इमपर मछात्री गते अितरकर कंचे मार में रोने लगे
 मानव में मनुष्यों का विद्रोह भी दुःख (अमय) होना है।

१४ नारदप्रति दारपग्निराहयं ब्रह्मण उपदेशः ८३

तदनन्तर प्रजाजी नारदजी को फिर समझाने लगे और दार परिमर के
 लिये नाना उपदेशपूर्ण वचनों से अपना मन्त्रव्य प्रगट कर कहा कि कुम्भमल को
 र में ही तपस्या का फल मिल जाता है।

आदौ भयेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्तनः परम् ।

ततस्तपस्वी मोक्षाय ब्रमण्य भुतोभुतः ॥

गृहीभय मुनिभेद ! गृहीणां सर्वदामुग्मम् ।

कामिन्यां सुखसम्भोगः स्वर्गभोगात्सुदुर्लभः ॥

दर्शनमुपस्पर्शं वाच्छन्त्येव मुमुक्षवः । सर्वस्पर्शसुखान् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम् ॥

ततः सुखतर्मपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने । नास्ति पुत्रात्परोवन्धुनांस्तिपुत्रात्परः प्रियः ॥

सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेद् पुत्रादेकात्पराजयम् ॥

इसपर भी नारदजी थोड़े ही मानने वाले थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की
 साधना के लिये ————— मांगी और उसके बाद ही तपः —————

वात कही तब ब्रह्माजी ने पति से, पिता से और विविक्त आश्रम (संन्यासी) वालों से मन्त्रदीक्षा न लेकर जन्मतः प्राप्त अपने इष्टगुरुसे मन्त्र लेनेकी बात कही । क्योंकि
 त्र्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृहीयाद् विचक्षणः । विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः
 नेपेकाहभ्यते मन्त्रो गुरुर्मर्त्ता च कामिनी । विद्या सुखंमयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च

अब महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं उनके पास जाकर भगवन्मय को लेकर फिर मेरे पास आओ । इसके बाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये ।

१५ नारदकृत शिवस्तुतिः शिवनारदसम्मेलनञ्च ८६

शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख पना हार्द (भाव) कहकर उनसे अपनेको दीक्षित करने की प्रार्थना की ।

६ शिवोक्ताहिकाचारवर्णनम् ८८
 आहिकप्रकरणम् ६१

जब शिवजीने सम्पूर्ण स्तोत्र कथ्यच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कहा तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसङ्ग के सम्बन्ध में उपदेश देने की प्रार्थना की । भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त आया त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया में निम्नलिखित मुख्य हैं :—

गुरु इष्टदेव के ध्यानपूर्वक शौच निवृत्ति के लिये घन में एकान्त स्थान पर अभिमुखादि होकर जाधे तदनन्तर जल से हाथ पैर धोकर १६ गणरूप करे और मार्जन काष्ठ से अच्छी प्रकार दाँतों को साफ करे फिर जलस्नान कर प्रातः रा करे । तर्पण, स्नान, दान, तप, होम, दैवपितृ कर्म के पहिले तिलक को य धारण करे । तदनन्तर तर्पण और आवश्यक नित्यकार्यों को सम्पादनकर वेदित शालग्राम की पूजा करे । शालग्राम शिला का माहात्म्य ।

शालग्राम शिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद । सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वनीर्यानि निर्व्रि

शालग्राम की षोडश उपचार या बारह वस्तुओं तथा पञ्चद्रव्यों से पूजा विधान आता है :—

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् । पुष्पं चन्दन धूपञ्च दीप नैवेद्यमुत्तमम् ॥६॥

गन्धं माल्यञ्च शय्याञ्च ललितां सुविलक्षणां ।

जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥६२॥

गन्धाम्रतल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश ।

पाद्यार्घ्यं जल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च ॥६३॥

प्रथम भूतशुद्धि कर प्राणायाम करे अङ्गन्यास एवं प्रत्यङ्गन्यास और म
न्यास करे । वर्णन्यास के बाद अर्घ्य प्रदान किया जाय ।

२७ नराणां भक्ष्याभक्ष्यकर्तव्याकर्तव्यं कथनम्

नारदजी के द्वारा द्विज, गृहस्थ, यति, वैष्णव, विधवा एवं ब्रह्मचारियों
लिये भक्ष्याभक्ष्य के विषय में पृष्ठने पर भगवान् महादेवजी ने कहा कि ब्राह्मण
के लिये भगवान् नारायण के प्रसादरूप में चढ़ाया हुआ हविष्य अन्न भोज्य
अन्य सब त्याज्य है, एकादशी को अन्न सर्वथा त्याज्य है ।

ब्राह्मणः कामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।

त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥७॥

जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी और एकादशी को उपवास करने
असमर्थ व्यक्ति अन्न का सेवन न करे ही पल्ल मूल जल का सेवन कर सकता है ।

नित्यं नैवेद्यभोजी यः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः ।

नित्यं शनोपयामानो जीवन्मुक्तः पल्लं लभेत् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण को नैवेद्य लगाकर भोजन करनेवाला मनुष्य सौ उपवासों का फल पाता है और वह जीवनमुक्त है। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और तपस्वी लोगों के लिये ताम्बूल का सेवन गोमांस के सेवन के बराबर है। ताम्रपात्र में पयःपान और लवण के साथ दुग्ध सेवन गोमांस के समान है। कांश्यपात्र में नारिकेल का जल और ताम्रपात्र में मधु और ईल्य का रस सुरा के समान है। जो द्विज धाये हाथ से जल पीते हैं वह सुरा पीनेवाले हैं।

अनिवेशं हरेरन्तं भुक्तोपश्च नित्यराः। पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥२५॥

मत्स्यादि का मांस सदा ही अभक्ष्य है। प्रतिपदा को कूर्माण्ड, द्वितीया को वृहती भोजन, और पटोल रात्रियों की वृद्धि करवा है तृतीया और चतुर्थी को मूलक का सेवन, पञ्चमी को बिल्व का सेवन, षष्ठी को निम्ब का भक्षण, सप्तमी को ताल का भक्षण शरीर नाशक है। नारिकेल फल का भक्षण अष्टमी के दिन वृद्धि में नाश करता है नवमी को तुम्बी (घिया) दशमी को कलम्विका, एकादशी को ताम्बीधान्य द्वादशी को पूतिका, त्रयोदशी को बैंगन का भक्षण पुत्र नाश करता है अतः वर्ज्य है, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या को मांसभक्षण सदा हापातक करनेवाला है अतः उसे कभी सेवन न करे।

सरसों का तैल, पकसैल का सेवन प्रातःस्नान में, विशेष रूप से पार्वण ब्राह्म ऋत के दिन, कुट्ट, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी को प्रशस्त है। पवार, ब्राह्म, ऋत के दिन स्त्रीसेवन और तिल तैल, मांस, रक्त शाक और कांश्य वर्तन में भोजन निषिद्ध है। सम्पूर्ण वर्षों के लिये दिन में स्त्रीप्रसङ्ग वर्जित है। ज्ञात्रे में दधि भक्षण, दोनों सन्ध्या में शयन, रजस्रला स्त्री में गमन ये नरक के कारण हैं।

रजस्रला और वीरान्न पुंश्रलि का अन्न, शूद्रयाजक और शूद्र के ब्राह्म का अन्न, पत्नीपति का अन्न, ज्योतिषी का अन्न और वैद्य का अन्न वर्जित है। अमावास्या,

श्रीगणेशाय नमः ।

२ प्रकृति खण्ड

विष्णु

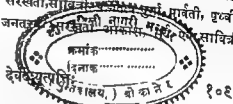
प्रकृतिचरितश्रवम्

सृष्टि में जो बुद्ध शक्ति विभूति का दर्शन होना है वह सब सर्व परब्रह्म की छादिनी शक्ति प्रकृति का ही विलाम है । उस अनन्त ब्रह्माण्ड नायिका महादेवी प्रकृति के सृष्टिविधि में पाँच प्रकार का रूप उपलब्ध है । गणेश जननी भगवती पार्वती, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी और सरस्वती एवं सावित्री सभी स्त्रियों में ये ओत-प्रोत हैं व्याप्त हैं । यह अनादिकाल से ही सृष्टि के पालन-पोषण में तत्पर हैं इनकी महिमा किसी से भी नहीं कही जा सकती । प्रकृति की यही व्युत्पत्ति है कि प्र=प्रकृष्ट का वाचक, कृति=सृष्टि का वाचक । प्रक्रिया में जो देवी प्रकर्ष रूप में विराजमान रहती हैं वह प्रकृति हैं ।

श्री मात्र की प्रतिनिधि वृष्वीरूपा है । जैसे वृष्वी अपने प्रणव श्वास से के द्वारा तीन गुण हैं, सत्त्व, रजस् और तमस् ! प्र=प्रकृष्ट सत्त्व कृति=तमस् त्रिगुणात्मिका सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न और सम्पूर्ण सृष्टि करने में प्रकृति कहलाती है । सृष्टि के आरम्भ में योग से विराट् ने अपना दो रूप दक्षिण अर्द्धाङ्ग से पुरुष और वामाङ्ग से प्रकृति हुई जैसे परमार्थतः श्री और का भेद नहीं है सम्पूर्ण संसार ही ब्रह्ममय है । सृष्टि रचने की इच्छा करने श्रीकृष्ण के द्वारा प्रकृति ईश्वरी पैदा हुई । उसकी आज्ञा से ही पञ्चविध भेद भक्तों पर ।

यह जड़ चेतन सब में अधिष्ठात्री रूप में रहती हैं। भगवान् की प्राणभूता हैं जो-जो
 दार्थों में प्राणियों में सत्त्व है वह सब इसी की प्रतिच्छाया है या यह सब यही
 क्रमशः दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, मार्वती, पृथ्वी,
 राधा राकिणी शक्ति, लक्ष्मी जनतन्त्र, सावित्री, मार्वती, पृथ्वी, सावित्री
 व विधिपूर्वक वर्णन ।

२



प्रकृति के बिना परमेश्वर कुछ भी नहीं कर सकते जैसे बिना सोने के स्वर्णकार
 गढ़ नहीं बना सकता और बिना मिट्टी के कुलाल बड़ा नहीं बना सकता
 वही प्रकृति के बिना ब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकता। समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति, यश
 नाम भाग है। उससे युक्त होने से प्रकृति भगवती और भगवती से युक्त
 भवान्। श्रीकृष्ण और राधा की विशेष नामों के साथ व्युत्पत्ति और उनकी
 शैविक झाड़िनी शक्ति राधा की विशेष प्रशंसा। भगवती राधा के साथ
 भवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी की आयु तक सुखसम्भोग किया उससे प्राण, अपान,
 गन, उदान और ध्यान तथा अधः प्राण हुए। इसके बाद उनके जिह्वा के
 भाग से शुद्धवर्ण की मनोहर कन्या का आविर्भाव हुआ यह पीतवस्त्र पहने हुए
 वीणा पुस्तकधारिणी रत्न आभूषणों से सजित सम्पूर्ण शास्त्रों की अधिदेवता
 । इसी के बाद श्रीकृष्ण द्विधा रूपवाले हो गये। दक्षिण अर्ध दो भुजावाला
 'चामार्द्ध' चार भुजावाला बन गया। उस वाणी को श्रीकृष्ण ने कहा कि
 इसकी कामिनी बनो। उन नारायण के साथ वह मनोहरा कन्या स्त्री रूप में
 'चण्डिका' में चली गई। सौ मन्यन्तरो तक स्वर्णमय द्विम्ब को राधिकाजी ने सेवन
 किया और उसे क्रोध से जल में फेंक दिया इस प्रकार ब्रह्माजीने शाप दिया कि
 तुमने कोपशील होकर उसको छोड़ दिया अतः अब तुम आगे से बिना पुत्रों
 की होजाओगी।

जब यह दिव्य (गर्भ का पिण्ड) ब्रह्माजी के सम्पूर्ण नयन तक जल में रहा तब गमय पर उसके दो रूप हो गये उसके बीच में से रोना हुआ एक शान्त अपने शरीर से बरोड़ों रूपों की जगमगाहट को भी पीका करता हुआ निहत्ता । वह रूप से व्याकुल था । उसने महाविराट् रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के १६ वें मंत्र से अपना रूप धारण किया । यह सम्पूर्ण विश्व का आधार है और उसके प्रत्येक अणु में सम्पूर्ण विश्व के ब्रह्माण्डों के प्रदेश स्थित हैं । उन विश्व संख्याओं को भगवान् भी नहीं बता सकते । प्रति विश्व में ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं पाताल से ब्रह्मलोक तक ब्रह्माण्ड है उससे ऊपर वैकुण्ठ है उससे ऊपर पंचाम कोटि योजन पर गोलोक है । सात द्वीपवाली पृथ्वी सात सागर युक्त ४६ द्वीप उपद्वीप सनेर सल्लय पर्वतों के साथ ऊपर स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक और नीचे सात पाताल, जलातल रसातल आदि उससे भी ब्रह्माण्ड से ऊपर तपोलोक, सत्यलोक और ब्रह्मलोक की स्थिति है । इस प्रकार से पृथ्वी के अन्तर में सब कुछ है । पृथ्वी के शरीर होने पर सब कुछ लय हो जाता है । यह विराट् भगवान् श्रीकृष्ण का व्यापन करने लगा और प्रभुके प्रगट होने से वरदान पाकर यह सृष्टि निर्माण में लग गया ।

सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च

११७

सरस्वती मूलमन्त्रः

११८

सरस्वतीकवचवर्णनम्

१२१

प्रकृति के पञ्चरूपों में से एक सरस्वती के सम्बन्ध में पूजादि विधान पूछने पर भगवान् नारायण ने संक्षेप से दुर्गा और भगवती राधा के सम्बन्ध में बताया और आरम्भ में सरस्वती पूजा का विधान बताया, जिसे करने से मूर्ख भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त है । जब श्रीकृष्ण की स्त्री के मुख से यह उत्पन्न हुई तो कामरूपिणी

इस देवी ने भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा की तब श्रीकृष्ण ने कहा हे साध्वि तुम मेरे अंश नारायण को भजो क्योंकि यहाँ पर रहने से राधा जैसी बलवती तुम मानिनी के सामने टिक नहीं सकोगी और न तुम्हारा कल्याण होगा। अतः नारायण की स्त्री बनकर रहो और तुम्हारी पूजा माघ शुद्ध पञ्चमी को विद्यारम्भ में सारे मनुष्य करेंगे यह मेरा वरदान है। इसके अनन्तर सरस्वती के मूलमन्त्र, और सरस्वती कवच का विधान बतलाया गया है। जिसको करने से मनुष्य त्रैलोक्य विजयी तथा बृहस्पति के समान महायाम्नी और कवीन्द्र हो जाता है। वास्तव में यह कवच सम्पूर्ण इच्छित वस्तुओं को देनेवाला है।

५

याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः

१२२

श्री याज्ञवल्क्य ने वामदेयी सरस्वती को जिस स्तोत्र से प्रसन्न किया उससे गगान् सूर्य के आदेश से उन्हें सिद्धि मिल गई। याज्ञवल्क्यजी के द्वारा जो गवती का स्तोत्र है उसकी फलश्रुति और विधान का वर्णन।

६

गङ्गा लक्ष्मी सरस्वतीनामुपाख्यानम् भक्तलक्षणञ्च

१२५

भगवती सरस्वती गङ्गा के शाप से भारत में नदी रूप में अवतीर्ण हुई और तै स्नान करने से अनन्त पुण्यों का फल। लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा ये तीन गगान् नारायण की स्त्री हैं। अपने सौतेले डाह के कारण गङ्गा और सरस्वती का वादविवाद और सरस्वती को मर्त्यलोक में नदी रूप में जाने के लिये गङ्गा का प और पदले में गङ्गा को सरस्वती का शाप। फिर नारायण द्वारा मद्दालक्ष्मी को मर्त्यलोक में जाकर त्रैलोक्यपावनी तुलसी रूप में रहने को आदेश करना। सभी को जाने के लिये नारायण का आदेश। गङ्गा को शिवस्थान के लिये और

स्वती को ब्रह्मा के स्थान पर जाने को कहा गया तदनन्तर स्त्री के वशीभूत रहनेवाले के पतन का वर्णन । फिर सरस्वती, गङ्गा तथा लक्ष्मी का भगवान् को अपने क में आने के लिये अवधि का पूछना और भगवान् का उन्हें आधे अंश से देने पास और आधे से मर्त्यलोक में रहकर जन कल्याण करने का आदेश देकर नन्वना देना । भगवान् के भक्तों के चरण जहां टिके वह स्थान पवित्र हो जाता भक्त अपने चरित्रों से संसार का कल्याण कर अन्त में भगवान् में मन लगाते हैं।

७

कालकालेश्वरगुणनिरूपणम्

१३०

भगवती गङ्गाजी द्वारा मर्त्यलोक के कल्याण के लिये संसार में अवतरण । गीर्ध के प्रयत्नों द्वारा भगवान् शङ्कर के शिर पर धारण कर सम्पूर्ण प्रवाह से मालय से निकलना । भगवती महालक्ष्मी पद्मावती नाम से और फिर तुलसी प से जनकल्याण के लिये इस लोक में आई । कलिक के पांच हजार वर्षों के बीतने बाद यहां पर रहकर भगवान् की आज्ञा से वैकुण्ठ में गमन । केवल कारी और वृन्दायन तीर्थ ही प्रधान रूप से यहां पर रहेंगे । सभी आस्तिक सम्प्रदाय को प्रसन्न करनेवाली परम्परायें धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो जायेंगी । इसके बाद सभी मनुष्य आधार हीन विष्णुभक्ति विमुख, शठ, क्रूर, दाम्भिक, हिंसक और भ्रष्टाचारी बन जायेंगे वहीं भी गुणोन्नत का आदर नहीं होगा । सभी सारपूर्ण मनुष्य निःसार हो जायेंगी । प्राणी वर्ग शीघ्र और प्रतापहीन हो जायेंगे । सभी बालक स्त्री और पुरुष कुत्सित एवं विकृताकार हो जायेंगे । आपस में बातचीत करते ही भी लोग अपराधों का प्रयोग करेंगे । सभी ग्रामों व नगरों में अरण्य के समान हो जायेंगे । सभी नागरिकों पर कर इतना लाद दिया जायगा कि वे उम्र भर से अपना जीवनभर कंचा नहीं बना सकेंगे और सभी स्थान कृषि से रहित हो जायेंगे । सभी मिथ्यावादी, धूर्त, अमन्यवादी होंगे । पापी लोग पुण्यात्मा माने जायेंगे, दण्ड पुरुष त्रितेन्द्रिय होंगे, पुण्डरी पतिव्रता मानी जायगी । पातक करनेवाले

सरपंच कहलायेंगे, भगवान् के नाम पर लोग कमाई करेंगे और कलि धाने पर म्हेच्छमय बन जायेंगे। एक हाथ के वृक्ष हो जायेंगे और अङ्गुष्ठमात्र हो जायेंगे ऐसे घोर समय में अध्वान के बाद जब पतन की चरम सीमा जायगी तो भगवान् नारायण की कला के अंश सम्पूर्ण बलिपुरी में श्रेष्ठ यशा नामक ब्राह्मण के पुत्र कल्की रूप में अवतार लेकर दुष्टों से शून्य इस भू को तीन रात में बना देंगे। उस समय घोर वर्षा होगी और बारह आवृत्त उदय होकर पृथ्वी को सुखा देंगे। इसके बाद कल्प के अनुसार सत्ययुग का अ होगा और फिर वेदप्रयुक्त धर्म का प्रचार होकर सभी प्राणियों का सा विकास होगा सभी धर्मपरम्पराओं का पालन करेंगे। भगवान् के बड़े भारी और श्रुति स्मृति पुराणों के अच्छे ज्ञाता सभी होंगे। अधर्मों का लेशमा फिर नहीं चलेगा। धर्म पूर्ण चारों पावों से युक्त सत्ययुग में होगा, व्रता में पादोषाला होगा, द्वापर में दो पाद का रहेगा, कलि में एक पाद वाला और भी फिर छुप्तप्राय हो जायगा। मनुष्यों के ३६० युग बीतने पर देवताओं एक युग होता है एवं देवताओं के ७१ दिव्ययुगों से एक मन्वन्तर या इन्द्र का प्रमाण बतलाया गया है १०८ ब्रह्मा की आयु बीतने पर प्राकृत लय हो है। भगवान् कृष्ण में सम्पूर्ण भूतप्राय लीन होता है अतः इसका नाम रखा गया यह सब भगवान् कृष्ण की कालकालेश्वर की लीला बतलाई है।

८

पृथिव्युपाख्यानम्

पृथिवी पूजामन्त्रः पृथिवीस्तोत्रम्

हरि के निमेष मात्र से ब्रह्मा का पात हुआ उसको प्राकृतिक प्रलय गया है। उस समय लीन ऋणी भगवान् में समा जाते हैं और पृथिवी की कहा रहती है और विधान के समय उसका आविर्भाव कैसे हो जाता है।

नार नारदजी के पृथ्वी पर नागागण ने भगवान् श्रीकृष्ण को ही मयरा उगति और रोमाय का स्थान बनलाया । मनुकैटभ के मेद से यह मृष्टि घनी तैमा कोई कदमेद से उत्पन्न होने से इसका नाम मेदिनी पड़ा । भगवान् धाराह फल में इसे मुद्र में से ऊपर ले आये । पृथ्वी की मुनि ।

६ भूमिदानफलतद्वरणेपापञ्च १३६

भूमिदान का फल यदि उसका हरण कोई करे तो नरक का गामी होता है—
दत्ता परवत्ताम्या प्रह्लादृत्तिहरेस्तु यः । स तिष्ठति कालसूयं यावन्नन्त्रदिवाकरौ ॥६॥

भूमि की निरुक्ति सम्पूर्ण प्राणियों का आवास होने से उसकी भूमि सञ्जा । यमु=धन रत्नादि देने से उसका यमुन्धरा नाम सार्थक है हरि के उर से यहानी गई इसलिये उर्यी नाम रक्खा गया और सम्पूर्ण प्राणिमात्र एवं स्थावरजङ्गम के धारण करने से धरा, धरित्री धरणी हुआ ।

१० गङ्गापारुषानम् १४०

कौथुमोक्त गङ्गाध्यानम् गङ्गास्तोत्रञ्च १४५

भगवती गङ्गा के अवतरण प्रसङ्ग में सगर के वंश का विस्तार से वर्णन
भगवती गङ्गा को सरस्वती केशाप से अनादिकाल में सगर के पुत्रों के उद्धार के लिये मर्त्यलोक में जाने के लिये श्रीकृष्ण भगवान् का आदेश । गङ्गा की अमिष हिमा सम्पूर्ण पापताप का नाश करनेवाली यह भगवती गङ्गा है । जाहूवी के टपर उसकी पवित्र वायु के सेवन से ही दशगुणा पुण्य लाभ होता है । सामान्य देवों में केवल स्नानमात्र से ही असंख्य पाप नष्ट होते हैं । विशेष पर्वों पर तो इनाही क्या । अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के अवसर पर चातुर्मास्य समय स्नान, दान एवं पुण्य का अनन्तकोटिगुणित फल कहा गया है ।

भगवती गङ्गा की स्तुति इसके पूर्व भगवान् ने गङ्गा जी को कई वरदान दिये जिसमें गङ्गा नाम स्मरणपूर्वक स्वर्गवासी होनेवाले मनुष्य की भगवान् के यहां सारण्य मुक्ति विशेष बताई है।

भगवती भागीरथी की भागीरथ ने जो कौशुमशाखा की स्तुति की उसका सविस्तर वर्णन।

गङ्गोपाख्यानम्

११	गङ्गारूपमोहित कृष्णप्रति राधाया उपालम्भः	१४७
	गङ्गाप्रति कुपितया राधया गङ्गासन्निपानम्	१४६
		१५१

भगवती गङ्गा की विभूति कलियुग के पांच हजार वर्ष बीतने पर कहा चली गई। इस पर नारायण ने गोलोक से गङ्गाजी की राधाकृष्ण के शरीर से उत्पत्ति बताकर उस परमपावन धारा की प्रशंसा की और गोलोक में रासेखरी राधा के श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दफन्द के बाएं अङ्ग में विराजने पर गङ्गाजी उनके रूप तथा गुणों पर मोहित हुई। इस पर राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप बार-बार गङ्गा को ही देख रहे हैं। अतः आप गोलोक से चले जाय आप इसे बहुत अधिक चाहते हैं और आप मेरे थोड़े शब्द से ही छिप गये। आपने बराबर सारे विषय के प्राणिबर्ग को कुछ न कुछ विभूति दी है आपका क्या क्या गुणानुवाद कहा जाय। राधा द्वारा गङ्गाजल के पान की इच्छा और ब्रह्मादि देवों द्वारा भगवती गङ्गा की प्रशंसा।

भगवान् नारायण को फिर नारदजी ने प्रश्न किया कि भगवान् शङ्कर के सङ्गीत से मुग्ध होकर जब श्रीकृष्ण एवं राधिका द्रव रूप में होगये तो क्या हुआ और उपस्थित लोगों ने क्या किया इसे विस्तार से समझाइये। भगवान् श्रीनारायण बोले—राधाजी के महोत्सव पर जब कार्तिकी पूर्णिमा का दिन या रासमण्डल की सुन्दर शोभा हो रही थी उसी समय भगवती वीणापाणी सरस्वती

सुन्दर शास्त्रीय गङ्गीन से घामावर्ण को विमुक्त कर दिया। इसपर ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण, राधिकाजी एवं लक्ष्मीजी अमूर्त्य रूप उन्हें मंत्रमाला दिये और भगवती दुर्गा ने विष्णुमक्ति दी। गंगा में उनके द्वारा धर्म वृद्धि के साथ यश अर्जन यह धर्म ने परदान दिया। अग्नि ने विशुद्ध धर्म दिये और वायु ने मणिमाला दिये। फिर ब्रह्माजी ने शङ्कर देवाधिदेव को रामोद्दामयुक्त श्रीकृष्ण सङ्गीन के अंगे रणा की। इसपर भगवान् शङ्कर ने इतना सुललित गान किया कि सभी देवताएँ खिन्न हो गये जैसे चित्र में चित्रित पुत्तलिका हो। एक क्षण में जब वेचना हुई तो वहाँ पर जल से पूर्ण स्थल को देखा तथा भीराधाकृष्ण को अन्तर्धान। इसपर सभी गोपगोपीवृन्द तथा देवता ब्राह्मण ऊँचे स्वर से रोने लगे। ध्यान लगाकर जब ब्रह्माजी ने देखा तो उन्हें सारा रहस्य हृदयङ्गम हुआ कि भगवती राधा के साथ श्रीकृष्ण पिपलकर जल रूप हो गये। तब ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीकृष्ण की आराधना की और उन्हें स्वरूप का दर्शन देकर वाञ्छित वर देने की प्रार्थना की। इसपर आकाशवाणी हुई कि सम्पूर्ण भक्तजन पर दया करनेवाली यह जलरूपा मेरी ही शक्ति है हम दोनों के रूप की फिर क्या आवश्यकता है। इसके दर्शनों से मेरा परम पद प्राप्त होगा। यदि आपलोग मुझे ही देखना चाहते हैं तो भगवान् शङ्कर मेरी आज्ञा का पालन करें और ब्रह्माजी भी वेदाङ्ग शास्त्र को धनाव। जिससे सार में सभी प्राणी लाभ उठाकर मुझे प्राप्त होव। यदि यह सच आप सबको मान्य हो तो मेरी प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन सुलभ हैं। इसपर ब्रह्मा ने शङ्करजी को समझ होकर कहा और शङ्करजी ने गङ्गाजल हाथ में लेकर सत्य प्रतिज्ञा की कि भगवान् विष्णु की मायादि के सम्बन्ध में मन्त्रशास्त्र की रचना कर वेदों का सार प्रस्थित करूँगा जिससे भगवान् कृष्ण की आज्ञा का पालन होसके। इसलिये कोई भी व्यक्ति गङ्गाजल लेकर झूठ न बोले नहीं तो ब्रह्मा के वय तक नरक में घुसा होगा।

इसपर भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी आज्ञादिनी शक्ति राधिका फिर

आविर्भूत हुए इस प्रकार गङ्गाजी की उत्पत्ति एवं उनकी महिमा के जगन्मान्य
रभाव का वर्णन हुआ—

१२

गङ्गाया विवाहः

१५६

लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और लोकपावनी तुलसी भगवान् नारायण की ये
चार प्रिया हैं। भगवती गङ्गा कैसे उनकी पत्नी बनी इस प्रकार नारदजी के
बुद्धि पर ब्रह्माजी के मुख से कहे गये उपाख्यान को नारायण भगवान् ने
तलाया। जब राधाकृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न गङ्गाजी को राधा ने मान से न
सना चाहा और उसे पान करने को अधीर हो गई तो गङ्गा श्रीकृष्ण भगवान् के
रणों में समा गई। भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण देवगण के मनका अभिप्राय जानकर
पने पैरों के नख के अग्रभाग से उसे गोलोक से बाहर निकाल दिया। इसे
धिका मन्त्र की दीक्षा दी और ब्रह्मा उसे लेकर नारायण को गान्धर्व विवाह
प्रदण कराने के लिये ले गये। इस प्रकार गङ्गाजी सहित तीन भार्या भगवान्
विष्णु के हुई और तुलसी के साथ चार का योग हो गया।

३

तुलस्पूपाख्यानम्

१५७

नारदजी द्वारा तुलसी के कुल, जन्म और प्रभाव के सम्बन्ध में पूछे जाने
भगवान् नारायण ने दक्ष सावर्णि मनु से लेकर धर्म सावर्णि, विष्णु सावर्णि,
सावर्णि, राज सावर्णि और वृषभ्यज की वंश परम्परा बतलाई। वृषभ्यज की
निष्ठा प्रसिद्ध थी उसने भगवान् नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती किमीको
अपना इष्टदेवता न माना। इसपर सूर्य ने उसे भ्रष्टा होने का शाप दिया।
पर सूर्य के पीछे भगवान् शङ्कर त्रिशूल लेकर दौड़े और उन्हें ब्रह्माजी तथा
शु के यहाँ शरण लेने को बाध्य किया। देवता लोग विष्णु की स्तुति करने
। तब विष्णु ने उन्हें अभय का आश्वामन दिया और शङ्करजी के आनेपर

विष्णु भगवान् की स्तुति करने पर भगवान् विष्णु ने उन्हें आने का कारण पूछा और वृषभ्यज को शाप देकर भागे हुए मृत्यु के पीछे आने का कारण बताया। विष्णु से वृषभ्यज के शाप के उद्धार का उपाय पूछा। इसपर भगवान् ने वृषभ्यज के प्रहंसभ्यज और दो पौत्र धर्मभ्यज एवं कुशभ्यज के बाद लक्ष्मी प्राप्ति की बात कह अन्तर्धान हो गये।

१४ वेदवत्याश्चरित्रम् १६०
वेदवत्याः सीतारूपेणजन्म १६०

भगवान् नारायण ने कहा कि धर्मभ्यज और कुशभ्यज दोनों ने कठिन तपस्या से लक्ष्मी को प्रसन्न कर उससे इच्छित वरदान प्राप्त किया। कुशभ्यज की त्री मालावती के कमला लक्ष्मी की अंशभूता एक कन्या उत्पन्न हुई। वह जन्मतेही लक्ष्मि करती हुई उठ खड़ी हुई इसलिये उसे वेदवती नाम से पुकारा जाता है। उसने भगवान् विष्णु की कठिन तपस्या पुष्करक्षेत्र में एक मन्वन्तर तक की। वस्त्री तपस्या से प्रसन्न होकर आकाशवाणी हुई।

हे सुन्दरी दूसरे जन्म में साक्षात् भगवान् हरि तुम्हारे पति होंगे फिर वह सन्तुष्ट नहीं हुई और गन्धमादन पर्वत पर जाकर पहले से भी कठिन तपस्या करने लगी। वहाँपर रायण को आया देख उसे अतिथि सुलभ सत्कार भावना से सुखाडु कन्दमूल फल और जल से सम्मानित किया। उस वापी ने एकान्त में ऐसी वीथन प्राप्त की को देख काममोहित होकर पूछा हे सुन्दरी तुम कौन हो? वह मूर्ख कामवाण से पीड़ित होकर उसे हाथ से ज्योंही खींचकर शृङ्गार करना चाहा वैसे ही उस सती ने कोप दृष्टि से उसे स्तम्भित कर दिया और भगवती पद्मा की आराधना से वह स्वस्थ हो गया और वह स्वयंयोगद्वारा देह को छोड़कर परमधाम सिधार गई। रावण भी उसे गङ्गाजी में प्रवाहित कर अपने घर चला गया मार्ग में वह नाना प्रकार से पश्चात्ताप करना हुआ विलाप करने लगा। वही

कालान्तर में साध्वी जनकपुत्री सीतारूप में अवतीर्ण हुई और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम को अपनी कठिन तपस्या से पतिरूप में पाकर धन्य-धन्य बन गईं। नही के कारण रावण अन्त में मारा गया। भगवती सीता के साथ अपने पिता श्री सत्य वचनों को पालन करने के लिये जब राज्यपाट को छोड़कर राघवेन्द्र रामचन्द्र वन को गये तो समुद्र के निकट विप्रवेपधारी अग्निदेव से उनका आशुकार हुआ। श्रीरामचन्द्र को इस प्रकार दुःखी देखकर यह बहुत दुःखी हुए और नौने श्रीराम से कहा कि भगवन् अब आपके लिये सीताहरण का समय आ गया है दैव दुर्निवार्य है मेरी पुत्री को मेरे पास छोड़कर उसकी छाया आप अपने स रक्खें, फिर परीक्षकाल आने पर आपको सीता देदूँगा देवताओं ने मुझे भोजा में आह्वान वेप में अग्नि हूँ। तब राम ने दुःखी होकर लक्ष्मण के बिना जाने इसे स्वीकार कर लिया और योग से अग्नि ने माया की सीता बनाकर उसी के समान गुण, रूपवाली श्रीराम को देदी। इसी समय रामने सोने का मृग देखा सीता ने उसे लाने के लिये श्रीरामजी को कहा। अब लक्ष्मण की देखरेख में सीता को छोड़ रामचन्द्र ने मायामृग के पीछे रहकर उसे मार दिया और वह परमधाम को चला गया। उसने मरते मरते लक्ष्मण को सम्बोधन कर प्राण छोड़े। इसपर जानकी ने भगवान् रामचन्द्र को खोजने के लिये लक्ष्मण को भेजा और अकेली सीता को पाकर दुष्ट रावण ने छलकर लङ्का में ले जाकर रक्खा। फिर राम ने जानकी का सारा पता पाकर वानरों की सहायता से उस दुष्ट रावण को मार डाला और सीता को प्राप्त किया। अग्निपरीक्षा के लिये जब सीताजी ने अग्निप्रवेश किया तो छाया की सीता ने अग्नि से अपना कर्तव्य पूछा। तब उन्होंने पुष्कर में जाकर तपस्या करने की आज्ञा दी और तीन लाख दिव्य वर्षों तक तप कर स्वर्ग में लक्ष्मी बन गईं। सत्ययुग में कुशावच की कन्या वेदवती, त्रेता में रामपत्नी और द्वापर में द्रौपदी रूप में हुई। अग्निप्रवेश के समय निकलकर जब शङ्करजी से पतिव्रत सीता ने ५ बार पति दो पति दो यह कहा तो शङ्कर ने पाँच पति होंगे यह घर

दिया। इन्हीं से वह पाण्डुरों की प्रिय स्त्री प्रीति हुई। भगवान् श्रीगणेश लंका में विभीषण को राज्य देकर अयोध्या लौट कर ११ हजार वर्ष तक राज्य वैकुण्ठ सिंघास गये।

१५

धर्मध्वजपत्न्या माधव्यातुलस्याजन्म

१६३

धर्मध्वज की पत्नी माधवी के पश्चिनी नामक मनोहर कन्या का जन्म हुआ। उनकी अमर्त्य शोभा से लोग उसकी तुलना करने में असमर्थ रहे। इसलिए उसे तुलसी नाम दिया गया। उसने भी भगवान् नारायण मेरे पति हो इस कामना से बहुत तपस्या की; गर्मी में पश्चात्ति तप, शरद में जल में रहकर और वर्षा में शमशानों में रहकर उसने कड़ी साधना की। कई हजार वर्ष तक कल और जल पर रही, फिर पत्तों पर, फिर धातु पर, फिर निराहार रहकर उसने भगवान् ब्रह्मा को वादे को प्रसन्न कर लिया। इसपर तुलसी ने पूर्वजन्म की कथा बतलाई और भगवान् नारायण को पति रूप में पाने की इच्छा कही। ब्रह्माने कहा भगवान् कृष्ण के आश्रय से उत्पन्न सुदामा नामक गोप का शंखचूड़ के रूप में राक्षस वंश में जन्म हुआ है और उसको तुम तपस्या से मिलोगी और बाद में तुलसी का पेड़ बन सारे संसार में पवित्र बन जाओगी। ब्रह्मा ने फिर तुलसी को राधा मन्त्र की दीक्षा दी और उसे बारह वर्ष जप कर तुलसी द्वारा तपस्या से विराम लेना।

१६

तुलस्या सह शङ्खचूडस्य मेलनं कथोपकथनञ्च

१६७

शङ्खचूडवृत्तान्तम्

जब तुलसी वन में एकान्तवास कर रही थी तो वह कामज्वर से पीड़ित रहने लगी। भगवान् विष्णु की तपस्या किया हुआ किसी शाप से मर्त्यलोक में दैत्य योनि पाकर शंखचूड़ श्रीकृष्ण के मन्त्र का जप कर विधि के विधान से वहाँ पर आ पहुँचा। इस प्रकार व्याकुल वह तुलसी अपने वस्त्र से अपना मुँह ढँककर

उस युवा पुरुष को बड़ी लज्जा से ध्यानपूर्वक देखने लगी। शङ्खचूड़ ने इस रमणी को देखकर एकान्त में आने का कारण पूछा और उसके सम्बन्ध में विस्तार से जानना चाहा। इसपर तुलसी ने व्यर्थ में ही किसी अज्ञात कुलवाली ललना से बातलाप करना उचित नहीं समझा और धर्मपुत्र की पुत्री के रूप में तपस्या करने की इच्छा से बन में आने का कारण बतलाया। साथ ही तुलसी ने स्त्रीजीवन की भर्त्सना की। इसपर स्त्री के दो रूपों की विशद विवेचना कर लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सार्वभौमी, राधा रूप में स्त्रीमात्र को बताकर उनसे होनेवाले सम्पूर्ण संसार के अतीव उपकार गिनाये जो सात्विकतापूर्ण हैं। कृत्त्यारूप में स्त्रियाँ संसार के लिये घातक हैं। शंखचूड़ ने ब्रह्माजी की आज्ञा से विवाह करने का अपना प्रस्ताव रक्खा इसपर तुलसी ने योग्य वर कन्या से ही आगामी गृहस्थ जीवन अच्छा रहता है और वर के लक्षण बतलाये। जब सारी बात हो गईं तो ब्रह्माजी प्रगट हुए उन्होंने शङ्खचूड़ को तुलसी के साथ गान्धर्व विवाह करने की बात कही क्योंकि चतुर मनुष्य का चतुर दक्ष स्त्री के साथ सङ्गम गुणवान् ही होता है। इसपर तुलसी का शङ्खचूड़ के साथ गान्धर्व विधि से विवाह सम्पन्न हो गया वह उसे तपोवन से दूसरे स्थान पर ले गया। वह दुर्दान्त दैत्य अपने नगर में जाकर स्वच्छन्द पिहार करने लगा। इससे देवतावृन्द बहुत व्यथित हुए और वे भी ब्रह्माजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी उनको साथ लेकर शिवलोक गये और हरजी के साथ वे सभी वैकुण्ठलोक में भगवान् विष्णु के यहाँ अपनी पुकार सुनाने गये। भगवान् के द्वारपालों ने जब शिवजी एवं ब्रह्माजी के साथ देवताओं का गमन सुनाया तो उनसे सचको अन्दर लिखाने की आज्ञा दी। इसपर सभी णु की सभा में चले गये और भगवान् के अलौकिक प्रभाव की प्रशंसा करते हुए ते आने की बात ब्रह्माजी को अपना प्रतिनिधि बनाकर कही। तब भगवान् शङ्खचूड़ के पूर्वजन्म की कथा कही कि किस प्रकार वह सुदामा नामक गोप और राधाजी के शाप से उसे दानवी योनि मिली। फिर राधा को बहुत

समझाया गया तो उन्होंने कहा कि एक आधे क्षण में शाय का पालन कर वह फिर आ जायगा परन्तु गोत्रोक्त का आधा क्षण तो एक मन्वन्तर के बराबर होता है। हे भगवान् ! मेरी शूल लेकर शङ्कर उमगे युद्धकर उमकी योनि छुड़ा दें तो परम कल्याण हो क्योंकि उसको यह घर दिया गया है कि जब तेरी पत्नी का सतीत्य भङ्ग होगा तो यही पर उमकी मृत्यु होजायगी। मैं तुलसी का मनीष भङ्ग करूँगा और उसके साथ ही तुलसी की योनि छूट जायगी तथा वह मेरी ही बनेगी। तब विष्णु ने शिव को गदा दी और देवता लोग भारत में चले आये।

१७ शिवेन सह शङ्खचूडस्य युद्धार्थं पुण्यदन्तप्रपणम् १७६

महाराजीने शिवजी को शङ्खचूड़ के संहार के लिये नियुक्त कर अपने लोक में पदार्पण किया। ऊपर शङ्करजी चन्द्रभागानदी के किनारे अपने कार्य के लिये और देवताओं के उद्धार के लिये जुट गये। इसके लिये उन्होंने अपने पुण्यदन्त को शङ्खचूड़ के पास दूतरूप में भेजा। पुण्यदन्त ने बड़ी कठिनता से उमके राज दरबार में प्रवेश कर शङ्कर के अभिमत युद्ध के मन्देश को कहा। उसका संक्षेपसार यही था कि सम्पूर्ण देवताओं को उनका राज्य दो। श्रीहरि ने शङ्कर को शूल देकर भेजा है कि यदि वह दैत्येश्वर ना कर दे तो युद्ध करके उन्हें राज्य दिलवा दिया जाय। शङ्खचूड़ ने हँसकर प्रातःकाल आकर युद्ध के आह्वान को स्वीकार किया। शङ्कर के साथ अब उनके पार्षद एवं गण लोग जुटने लगे। सभी अस्त्र, योगिनीकुल भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष, रक्ष और किन्नर लोग आगये। जब शङ्खचूड़ अपने अन्तःपुर में गया तब उस साध्वी तुलसी ने सब बातें सुनी तो उसने काल निकट है यह संकेत देकर सम्पूर्ण जीवन की मार घात करने को कहा। शङ्खचूड़ ने इसपर भगवान् काल की महिमा बताकर भगवान् कृष्ण के चरणों में दृढ़भक्ति करने का उपदेश दिया और अपने पूर्वजन्म की बात कहकर डाढ़

— और दोनों आनन्द से केलि विलास में मग्न हो गये।

फिर शङ्करजी ने भगवत्परायण होकर हरिगुणगान का उपदेश दिया क्योंकि वही संसार की आधि और व्याधि को छुड़ानेवाली अचूक रामबाण औषधि है। तब शङ्खचूड़ ने बड़ी विनय से शंकर भगवान् की बातों को मानते हुए कहा कि देव दानवों का यह शक्ति प्राप्ति के लिये युद्ध अनादिकाल से होता आया है। इसमें कभी उनकी जय कभी हमारी जय चली आई है। परन्तु हमारे साथ सदा ही बहुत बुरा बर्ताव हुआ है। आपको हमारे साथ होड़ लगी है जीतने पर कोई धाहवाही नहीं हारने पर बुराई होगी। शङ्कर ने सारी बातों का उत्तर देकर या तो बात मानने को कहा अन्यथा युद्ध करने की ही धमकी दी।

१७ शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूड़स्य कथोपकथनम् १८१

प्रातःकाल होते-होते शङ्खचूड़ ने नित्यकृत्य से निवृत्त होकर अपने पुत्र को राश्याभिषिक्त किया और तरह-तरह के अपूर्व दान युद्धयात्रा की सिद्धि के लिये दिये। उसने लम्बी चतुर्वाहिनी रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सेना इकट्ठी की और पश्चिम समुद्र की ओर बढ़कर भगवान् शङ्कर से युद्धार्थं चन्द्रभागा नदी के किनारे साक्षात् उपस्थित हुआ। भगवान् शङ्कर ने शङ्खचूड़ के पूर्व वरा का इतिहास बताते हुए उस की गौरवगाथा गाई और देवताओं तथा दानवों दोनों को ही अपने-अपने अधिकार घराबर मिलें इसके लिये शङ्खचूड़ को कहा। उन्होंने वृन्तति एवं अपनति दोनों को ही दिखाकर शङ्खचूड़ से देवतागणों के लिये अधिकार देने की बात कही।

१८ देवैः सह शङ्खचूड़स्य युद्धम् १८४

कालिकया सह शङ्खचूड़स्य युद्धम् १८७

शङ्खचूड़ने युद्ध के लिये पहले से ही पूरी तैयारी कर रखी थी। उसने शङ्कर को प्रणाम कर युद्ध की साजसज्जा से आगे आने को अपने अमात्य

लोगों को आशा दी। अब बड़ा भगदूर मच चुका था। देवता लोग भागते केवल कार्तिकेयस्वामी अकेले बच रहे। उनका शङ्खचूड़ के साथ घोर युद्ध हुआ इसमें दोनों दलों ने महान् घोरता दिगलया और नाना शक्तियाँ भी आ घमई कई दिनों तक जमकर युद्ध हुआ। अन्त में, आकाशवाणी हुई कि हे कार्तिकेय! वानव शङ्खचूड़ तुम से अवश्य ही मारा नहीं जा सकता।

२०

शिवशङ्खचूड़युद्धम्

१८६

शङ्करजी ने अपने गगों के साथ युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम कर वह युद्ध के लिये तैयार हो गया। युद्ध एक वर्ष तक चला। दोनों दलों में वह अनिर्णयात्मक रूप में ही चलता रहा। तब भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का रूप धरकर आये और शङ्खचूड़ से कवच की भिक्षा माँगी। शङ्खचूड़ ने कवच उन्हें दे दिया। विष्णु भगवान् उस कवच को लेकर शङ्खचूड़ के रूप में तुलसी के पास आये और माया से उसमें गर्भाधान किया और शंकरजी ने श्रीत्रिशूल से उस दैत्य को भस्म कर दिया। वह भी दिव्य शरीर धरकर गोलोक में कृष्ण भगवान् के यहाँ चला गया। वहाँ फिर सुदामा गोप बनकर श्रीकृष्णका पार्षद होकर सानन रहने लगा। शंकरजी ने वानव के अस्त्रिपञ्जर को अपने त्रिशूल से समुद्र में डाल दिया उन्हीं की शंख जाति घनी। इसी कारण से शङ्ख का जल तीर्थ जल के समान पवित्र है और लक्ष्मीकारक है। अपना काम पूरा कर शङ्करजी शिवलोक पधार गये।

२१

तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम्

१८७

शालग्रामचक्रनिर्देशस्तद्गुणकथनञ्च

१८८

नारद के यह पूछने पर कि तुलसी में नारायण ने किस रूप में गर्भाधान किया। इसपर नारायण ने कहा कि शङ्खचूड़ के पास से छल से कवच लेकर और

फिर उसीका रूप बनाकर तुलसी के द्वार पर विष्णु पहुंच गये। वहां उन्होंने विजय दुन्दुभी बजाई। जय शब्द सुनकर अपने पति को आया हुआ देख तुलसी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने छद्मवेषधारी विष्णु से अपनी विजय का कारण पूछा। विष्णु ने सारी मनगढ़न्त कहकर ब्रह्मा द्वारा बीचवचाय होने से शङ्करजी के साथ समझौता हो गया और देवतागण को अपना इच्छित अधिकार मिल गया। ऐसा सुखद समाद सुनाया। जब तुलसी के साथ भगवान् शङ्खचूड़ वेप में रमण करने लगे तो उसे कुछ दूसरा अनुभव हुआ और भगवान् को अपने सामने देखकर उसने शाप दिया कि आपने धर्म का भङ्ग कर मेरे स्वामी को मारा है आपमें दया की भावना तनिक भी नहीं है जाइये आप पापाण (पत्थर) के समान दयाहीन हो जाइये। आपको अपने भक्त का भी थोड़ासा खयाल नहीं रहता अतः एक जन्म में आप अपनेको भी भूल जायेंगे। जय वह महासखी जोर-जोर से रोने लगी और कण्ठ विलाप करने लगी। इसपर भगवान् नारायण ने उसे धोध दिया हे साध्वि ! तुमने पूर्वजन्म में मेरे लिये तपस्या की और शङ्खचूड़ ने तेरे लिये की अब सारा फलाफल भोगकर यह चला गया और तुम्हारे तप का फल देना बाकी है सो अब इस शरीर को छोड़कर दिव्य देह से रास में लक्ष्मी के बराबर शोभावाली तुम बनोगी और तेरे केश पास के तुलसी के पुण्य वृक्ष होंगे। तेरे ही नामपर उन्हें भी तुलसी कहा जायगा। हे बरानने सभी पशुपुष्पों में जो दैवपूजा के योग्य होंगे स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, वैकुण्ठ और मेरे पास गोलोक में तुलसी के वृक्ष प्रधान रूप में काम में आयेंगे। जहाँ पुण्यतीर्थस्नान है वहीं तुलसी के वृक्ष होंगे।

तुलसीपत्रतोयश्च मृत्युकाले च यो लभेत् ।

स मुच्यते सर्वपापान् विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥

तुलसी का प्रतिदिन सेवन और तुलसीकाष्ठमाला के जप से अनन्तकोटि पुण्य लाभ होता है। अपने लिये भगवान् विष्णु ने कहा कि गण्डकी नदी के तीरे के पास शैलरूप में मैं रहूंगा। वहापर नानारूप में मेरी शिला मिलेगी उसके पूजन

से शारे पाप ताप मष्ट हो जायेंगे । तुलसीदास का शान्दयाम शिवांग चढ़ाने का महान् पुण्य है जो इसे नहीं चढ़ायेगा उसको मान जन्म तक अपनी स्त्री में विद्धोह (वियोग) रहेगा । इसी प्रकार राजा के सम्बन्ध में भी हस्तिना का अविभाज्य अङ्ग कहकर बहुत प्रशंसा की गई है । एक बार भी प्रेम होने से किसी का वियोग महा नहीं जाता है । तुलसिके ! तुमने जो एक सम्बन्धन एक उमर का गृहस्थ भोगा है तब तो विरह अमर है ही परन्तु जाओ गुप्तारी पूर्वजन्म की साधना सकल हो । यह कहकर भगवान् पुनः हाँ गये और तुलसी ने अपना शरीर छोड़कर दिव्य शरीर धारण किया और भगवान् के साथ ही यह वैकुण्ठ लोक में चली गई । यह संक्षेप में लक्ष्मी, सरस्वती गङ्गा और तुलसी की कथा है जो भगवान् की भायाँ बनी और भगवान् के देह से गङ्गा की नदी पर शास्त्रमान शिलायें बनी जिनकी पूजा से आज भी भगवत्पूजा इच्छित फल पाया करते हैं ।

२२

तुलसीपूजाविधानम्

१६६

तुलसीवीजमन्त्रस्तोत्रम्

१६७

नारदजी के तुलसीपूजाविधान और स्तोत्र के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् नारायण ने जो तुलसी वीजमन्त्र, पूजाविधान और स्तोत्र बताया उसका संक्षेप से विवरण । तुलसी के दिव्य देह धारण करने पर भगवान् नारायण उसे भी लक्ष्मी के समान मानने लगे, इसपर लक्ष्मी ने अप्रसन्न होकर उसे मारा । इस अपमान से लज्जित होकर तुलसी अन्तर्हित हो गई । इसपर भगवान् स्वयं तुलसीवन में गये और तुलसी वीजाक्षर से सिद्धि प्राप्त की । इसके बाद तुलसी ध्यानस्तोत्र और पूजा का संक्षेप से विवरण है ।

सावित्रीपाख्यानम्

सावित्रीध्यानम् पूजाविधानञ्च

१६८

२०१

मद्र देश में महाराज अश्वपति एक प्रचल प्रतापी राजा हुए। उनके मालती नामकी प्रधान महिषी थी उसने गायत्री की आराधना वशिष्ठजी के उपदेश से की परन्तु कोई फल नहीं मिला। तब फिर सौ वर्ष तक राजा ने तपस्या की अन्तमें उसे आकाराधाणी हुई कि हे राजन् १० लाख गायत्री के जप करो। गायत्री जप का माहात्म्य। जपविधान में हाथ के द्वारा स्वनः करने के विशेष फल का वर्णन पराशरजी ने आकर बताया। गायत्री जपके पहले सन्ध्यायन्दन अवश्य कर्तव्य है अन्यथा फलहानि होती है। राजा ने तदनुसार सावित्री का जप और पूजा कर उसे प्रसन्न कर दिया उसका धर भी मिला। इसपर राजा अश्वपति के द्वारा गायत्री विधान का वर्णन।

द्वितीयमावित्र्या जन्मविवाहाद्युपाख्यानम्

२०३

राजा अश्वपति ने जब सावित्री को प्रसन्न किया तो वह प्रसन्न मुद्रा में स्वयं उपस्थित होकर राजा से बोली हे महाराज जो आपके मन में है और आपकी पत्नी को इच्छित है वह मैं दूंगी। तुम्हारी इच्छा पुत्रकी है और स्त्री की इच्छा पुत्री की है। तुम दोनों की ही पुत्री और पुत्र की इच्छा पूर्ण होगी। तब राजा के अपनी स्त्री मालती से कन्या हुई उसका नाम भी सावित्री रक्खा गया। वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई यहां तक कि उसकी विवाह के योग्य अवस्था हो गई। उसने भी शुभमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को घरने का घर लिया था इसलिये राजा अश्वपति ने उसका विवाह सत्यवान् से कर दिया और सूख दहेज के साथ अपनी पुत्री को श्वशुर गृह भेज दिया। एक वर्ष घीतने पर सत्यवान् अपने पिता की आज्ञा से काठ इन्धन लाने के लिये घन में गया उसी के साथ देवयोग से सावित्री भी थी।

दुर्भाग्य से पृथ्वी से गिरकर सत्यवान् मर गया। उसी समय यम भी अंगूठे के समान उसके जीव को लेकर अपने लोक में जाने लगा तो अपने पीछे आती हुई सती सावित्री को देखा। यमराज के द्वारा कर्मफल का विस्तार से वर्णन करते हुए सावित्री को यमलोक में जाने से रोकना यम द्वारा सत्यवान् की आयु क्षीन थी अतः अब यह कर्मफल के भोगने के लिये जाता है उसके लिये रोकने को मना करना।

२५ -

कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नः

२०५

सावित्री ने शुभ कर्म और अशुभ कर्म क्या है इसको लेकर प्रश्न किया। यमराज ने वेदविहित कर्म को ही मङ्गलकर और शुभ बतलाया तथा अवैदिक कर्मों को अशुभ कहा। कर्म को निर्मूल करनेवाली हरिभक्ति ही सच्ची है, हरिभक्त ही मुक्त है उसे किसी प्रकार की जन्म-मृत्यु एवं व्याधि की अवस्था से थोड़ा भी भय नहीं रहता। मुक्ति दो प्रकार की है एक निर्वाणरूप और दूसरी हरिभक्ति स्वरूप। कर्मरूप भगवान् विष्णु बीजरूप से विराजमान है अतः जीव कर्मफल भोगता है और आत्मा निर्लिप्त रहती है। देही आत्मा का प्रतिविम्ब है वही जीव है देह विनाश-शील है और पाञ्चभौतिक है। यह सब शरीर पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज रूप का विकार है। सृष्टिविधि में यह सब सूत्ररूप में रहते हैं इन सबका कारणरूप श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं है इसे जानकर बराबर स्थिर रहकर जीवनवर्षा बनाने से ही मनुष्यजीवन की सफलता है। इसपर सावित्री ने कहा आप तो मुद्रि के मागर हैं मुझे बतलाइये कि इस पतिदेव को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ। कहा यह समझाइये कि किन कर्मों से जीव किन-किन योनियों को प्राप्त करता है, किनसे मर्त्य मिलता है, किनसे नरकगामी होता है, किनसे भगवान् में भक्ति बढ़ती है और किन कर्मों में मुक्ति होती है। किन कर्म से रोगी और नीरोग होता है किनसे दीर्घायु और अल्पायु होता है। अङ्गहीन, काना, अन्धा, बहरा, कृपणः

प्रमादी, लोभी, पागल और नरघातक किन-किन कर्मों से होता है ? किस कर्म से चारों प्रकार की मुक्ति मिलती है ? किससे ब्राह्मणत्व और तपस्वी जीवन मिलता है ? स्वर्ग के भोग और वैकुण्ठ किनसे मिलते हैं ? गोलोक किस कर्म से मिलता है ? नरक कितने प्रकार का है ? उसके भेद बतलाइये । कौन नरकगामी होता है और कितने समयतक वहांपर रहता है । पापियों को किन-किन कर्मों से व्याधियां हो जाती हैं आदि-आदि मुझे समझाइये ।

२४

कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम्

२०७

सावित्री का ध्यान सुनकर विस्मित होकर यम ने कहा हे सावित्री १२ वर्ष की कन्या होकर भी तुम्हारा ज्ञान अपूर्व है मानो पहले के विद्वान् योगियों से भी बड़ी बढ़ी हो अतः मैं प्रसन्न हूँ और जैसे पूर्वकाल के असंख्य स्त्री पुरुषों ने जीवन धर्ममय बनाकर आदर्श रखा वैसे तुम भी सत्यवान् के साथ सौमन्यशीला बनो अब तुम्हें जो दूसरा घर इच्छित हो वह कहो । सावित्री ने इसपर कहा कि मेरे पति के ही औरस से मेरे १०० पुत्र हों, मेरे पिता के सौ पुत्र और शशुर के आँखें हो जाय और मेरा गृहस्थजीवन सुखपूर्वक व्यतीत होनेपर मैं अपने पतिदेव सत्यवान् के साथ एक लक्ष वर्ष के बाद विष्णुलोक में चली जाऊँ । इसके बाद आप क्रमशः मुझे जीवकर्मविपाक और विश्वविस्तारबीज विशेष रूप से समझाइये ।

यमराज ने तथास्तु कहकर जीवकर्मविपाक बताना आरम्भ किया । भारत में जन्म लेने से ही शुभ और अशुभ कर्मों का भोग भोगमा पड़ता है क्योंकि यही पुण्यक्षेत्र है और नहीं । देवता, राक्षस, गन्धर्व, दानव और मनुष्य ये कर्म भोगने की योनियाँ हैं परन्तु सभी समजीवी नहीं हैं । अच्छे कर्मों के प्रभाव से ऊँची योनियाँ मिलती हैं बुरे कर्मों के प्रभाव से नीच योनियाँ प्राप्त होती हैं । कर्म को बसाड़ फेंकने में दो प्रकार की युक्ति बतलाई गई है । एक निर्वाण परमपद और दूसरी कृष्णभगवान् की सेवा । जीव कर्म न करने से रोगी और शुभ कर्म

दुभाग्य मे शुभ मे गिरकर गम्यवान् भाग गया । उनी गमय
गमान उनके जीव को लेकर अपने लोक में जाने लगा तो अ-
गनी मायित्री को देखा । यमराज ने द्वारा कर्मरत्न का वि-
ह्वल सावित्री को यमलोक में जाने मे रोचना यम द्वारा माग्य
धी अतः अब यह कर्मरत्न के भोगने के लिये जाया है उ-
मना करना ।

२५ . कर्मविपाके मायित्रीप्रदः

सावित्री ने शुभ कर्म और अशुभ कर्म क्या है इसमें
यमराज ने वेदविहित कर्म को ही महत्त्वकर और शुभ यम
कर्मों को अशुभ कहा । कर्म को निर्मूल करनेवाली हरिभक्ति ही
मुक्त है उसे किसी प्रकार की जन्म-मृत्यु एवं व्याधि की अवस्था
रहता । मुक्ति दो प्रकार की है एक निष्ठांशरूप और दूसरी ह
भगवान् विष्णु बीजरूप से विराजमान हैं अतः जीव कर्म
आत्मा निर्लिप्त रहती है । देही आत्मा का प्रतिबिम्ब है य
शील है और पार्थिवभौतिक है । यह सब शरीर पृथिवी, वा
तेज रूप का विकार है । सृष्टिविधि में यह सब सूत्ररूप
कारणरूप श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं हैं इसे जानकर बराबर
यनाने से ही मनुष्यजीवन की सफलता है । इसपर सार
बुद्धि के सागर हैं मुझे बतलाइये कि इस पतिदेव को
कृपया यह समझाइये कि किन कर्मों से जीव किन-किन
है, किनसे स्वर्ग मिलता है, किनसे नरकगामी होता है,
बढ़ती है और किन कर्मों से मुक्ति है किससे ?

को प्राप्त कर विष्णुलोक में जाता है। फिर भूमिदान, स्वर्णदान, वापी, कूप तड़ाग और धर्मशाला आदि के निर्माण का जो पुण्य करता है वह कल्पान्तजीवी होकर महाराजराजेश्वर बनता है उसको विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। यथाशक्ति दानादि करसकने में यदि कोई व्यक्ति असमर्थ है तो उसे भगवान् विष्णु के दिव्य नामों का जप कर अपना ऐहिक कल्याण करना चाहिये। संसार में सभी नाश को प्राप्त होते हैं, परन्तु विष्णुभक्त कभी नष्ट नहीं होते। कार्तिक मास में जो तुलसी और भगवान् को दीप दान करता है उसे अक्षय पुण्य का लाभ मिलता है। माघ में गङ्गा स्नान जब अरुणोदय हो उस समय करनेवाला मनुष्य ६० हजार वर्ष तक भगवान् के मन्दिर में आनन्द करता है। फिर वारह मासों के नाना कृत्यों का वर्णन कर उनके फल बतलाये हैं। भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद के साथ यम ने सत्ययान् के साथ सावित्री को लौट जाने की आज्ञा दी।

२८

सावित्रीकृतं यमस्तोत्रम्

२१८

सावित्री ने यम के द्वारा भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद को सुनकर आँखों में आँसू पहाते हुए गद्गद् होकर भगवान् हरि के नामाश्रय की अमित महिमा स्वर्य अपनेआप गाई। सावित्री जैसी साध्वी के द्वारा कृष्ण गुणों की प्रशंसा स्वाभाविक है। उसने कृष्णभक्ति और भगवन्नाम कीर्तन से अपने कुल का उद्धार होना कहा और मुनने तथा धोलनेवाले सभी को समान रूप से उनके जन्म, मृत्यु और पुद्गापा को हरनेवाला होने के कारण लाभदायक बतलाया। भगवान् के कीर्तन से दान, धन, तपस्या और योगाभ्यास की सिद्धियाँ भी तुच्छ (छोटी) जान पड़ती हैं। मुक्ति, अमरता और सम्पूर्ण सिद्धियाँ भी श्रीकृष्ण भक्ति की १६ वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकती। फिर अशुभ कर्मविपाक के मध्यस्थ में पहुँचकर उसने वेदोक्त स्तोत्र से यमराज की स्तुति की। इस स्तुति को प्राप्त पढ़नेवाले को किसी प्रकार का पाप-ताप नहीं मताता।

यम ने मावित्री को विष्णुमन्त्र की दीक्षा विधिवत् देकर कर्माशुभविनाश के सम्बन्ध में विस्तार से बतलाया । कृष्णों को मदा नरक की गति मिलनी है । इसके सम्बन्ध में माना प्रकार के नरककुण्डों को विस्तार से पुर्णों में जहाँ-जहाँ वर्ण आया है उसे साररूप में यमराज ने मावित्री को बतलाया । ८०१ कुण्ड हैं, उनमें अमिकुण्ड, तमकुण्ड, क्षारकुण्ड, विद्रुकुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्रेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, यमाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, मरुक् कुण्ड, मधुकुण्ड और कान, आँख, आदि के मलों के कई कुण्ड, मज्जाकुण्ड मांसकुण्ड, नगरकुण्ड, लोमकुण्ड, केराकुण्ड, और दुःखद अथि कुण्ड, ताम्रकुण्ड, लौहकुण्ड, तीक्ष्णकण्टककुण्ड, विषकुण्ड, चर्मकुण्ड (ताप का कुण्ड) तप्तसुराकुण्ड, प्रतप्ततैलकुण्ड, दन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड पूयकुण्ड, सर्पकुण्ड, मशरकुण्ड, दशकुण्ड, गरलकुण्ड, यमईष्ट्री जीवों का कुण्ड, विच्छुत्रों का कुण्ड, शरकुण्ड, शूल कुण्ड, खड्गाकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, काककुण्ड, मध्वालकुण्ड, घात्रकुण्ड, दुस्तर-बन्धककुण्ड, तप्तपापाणकुण्ड, तीक्ष्णपापाणकुण्ड, छार का कुण्ड, असिकुण्ड, पूर्ण-कुण्ड, चक्रकुण्ड, घसकुण्ड, कूर्मकुण्ड, उशालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, पूतिकुण्ड, तप्तशक्तयप्यसी-पात्र, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोधामुख, नक्रमुख, गजदंश, गोमुग्न, कुम्भीपाक, कालसूत्रनरक, अवटोद, अरुन्तुद पांशुभोज, पाशवेष्ट, शूलमोत, उल्कामुख, अन्धकूप, वैधन, दण्डताड़न, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषणद्वार, सर्पज्वालामुख, जिम्भ, धूमन्ध, और नागवेष्टन इन कुण्डों का विचरण दिया तथा यहाँपर किङ्कर लोक बराबर रक्षक रूप से नियुक्त हैं । वे अपने हाथ में दण्ड, शक्ति, शूल, पाश, गदा लेकर मदोन्मत्त होकर निर्दयता से पापी जीवों के पूर्वकृत पापों का भोग करवाते हैं । आगे किन-किन पापों से किन-किन कुण्डों का चास होता है यह बताया जायगा ।

पापिनां नरकनिरूपणम्

संसार में जो भगवान् की सेवा में लगजाता है मन, बुद्धि और शरीर से शुद्ध है, योगी, सिद्ध और व्रती, तपस्वी एवं ब्रह्मचारी है वह कभी भी नरकगामी नहीं होता है। अपने बन्धुबान्धवों को जो कड़ी याणी से और दुष्टता से व्यवहार करता है यह अग्निकुण्ड को जाता है। शरीर में जितने लोम हैं उतनी संख्या के वर्षों तक उसमें नरक भोगकर तीन जन्मों तक पशुयोनि पाता है। भूखे व्यासे ब्राह्मण को जो अपने घरपर अतिथि सत्कार के अनुरूप भोजन नहीं कराता, यह तप्तकुण्ड का गामी होता है और शरीर के जितने रोम हैं उतने वर्षों तक रहकर फिर सात जन्म तक पक्षी होता है। रविवार, अर्क की संक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्ध के दिन जो कोई अपने कपड़ों में क्षार वा साबुन लगाकर सफाई करता है वह क्षारकुण्ड में जितने कपड़े में सूत के धागे हैं उतने वर्ष तक रहता है याद में धोषी की योनि पाता है। अपनी दी गई या दूसरे की दी गई ब्राह्मण की वृत्ति को जो हरता है वह ६० हजार वर्ष तक विट् कुण्ड में रहता है। वही उसका भोजन होता है फिर ६० हजार वर्ष तक पृथ्वी पर विष्ठा का कीड़ा बनता है। दूसरे के बनाये गये तालाब पर यदि तड़ाग बनाया जाता है तो दैवदोष का अपराध होने से वह मूत्र कुण्ड में जाता है। जितनी पृथ्वी की रेणुका हैं उतने वर्ष तक उसे खाने वाला कीड़ा बनकर वहीं रहता है, फिर भगरमच्छ की योनि सात जन्म तक लेकर उससे छुटकारा पाता है। अकेला यदि कोई मिष्टान्न खाता है तो श्लेष्म कुण्ड में जाता है और पूरे सौ वर्ष तक उसे खाते हुए अपना जीवन बिताता है फिर सौ वर्ष तक भारत में प्रेत योनि में जाता है श्लेष्म, मूत्र, गर को खाकर फिर छूटता है। पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अपनी पुत्री को अनायासया में जो पालन नहीं करता वह गर कुण्ड में पड़ता है और वहीं सहस्र वर्ष तक रहकर फिर भूत योनि सौ वर्ष तक भोगकर शुद्ध बनता है। जो अतिथि को देखकर

मुद्ग मोड़ता है या टेढ़ी नजर से अपमान करता है उम पापी के यहाँ देवता और पितर जल नहीं लेते । ब्रह्महत्यादि जैसे जघन्य पापों का फल इसी जीवन में मिलता है । अन्त में दूषिका कुण्ड में गिरने से शुद्ध होता है ऐसा आदमी सात जन्म तक दरिद्र बनता है । ब्राह्मण को दिया हुआ धन यदि दूसरे को दिया जाय तो उसको देनेवाला २०० वर्ष तक वसाकुण्ड में गिरता है फिर चाण्डाल योनि में तीन जन्म रहकर शुद्ध होता है और भारत में गिरगिट योनि सात जन्म तक लेकर फिर दरिद्र और अलगायु होता है । स्त्री-पुरुष को रज या पुरुष-स्त्री को यदि शुक्र पिलाता है तो शुक्र कुण्ड में गिरता है । १०० वर्ष तक उस कुण्ड का कीड़ा बनकर फिर पृथ्वी का कीड़ा बनता है और शुद्ध होता है चाद में सात जन्म तक व्याध के यहाँ पैदा होकर क्रम से शुद्ध होता है । भगवान् के भक्त को जो भक्ति से विह्वल और अश्रुपातादि से गद्गद हो गया हो यदि कोई उसकी हँसी करता है तो १०० वर्ष तक अश्रुकुण्ड में कीड़ा होता है फिर तीन जन्म तक चाण्डाल होकर शुद्ध होता है । मदा दुष्टता करनेवाला १० वर्ष तक शरीर के मलस्थानों के कुण्ड में गिरता है फिर तीन जन्म में गधा और तीन जन्म में शृगाल (सियार) बनकर शुद्ध होता है । जो बहरे की हँसी या अपमान तथा निन्दा करता है वह कानों के मल के कुण्ड में १०० वर्ष तक रहता है और फिर सात जन्म तक दरित्री और बहुरा होता है और सात जन्म तक अन्नहीन होकर शुद्ध होता है । जो लोभ से अपना पालन करने के लिये जीव को मारता है वह लाख वर्ष तक मज्जा कुण्ड में कीड़ा होता है । अपनी कन्या का पालन कर बेचनेवाला मोम कुण्ड में पड़ता है, ऐसा व्यक्ति ६० हजार वर्ष तक व्याध होता है फिर बराह, कुत्ता, भेड़क, जौक, और कौआ भान-मान जन्म तक होकर शुद्ध होता है । घन, उपवास, आद्यादि में मंगम न कर और कर्म करना है वह कभी शुद्ध नहीं होता उसे कहीं भी कर्म करने का अधिकार नहीं । इस प्रकार सम्पूर्ण पापों के नाना कुण्डों की गति और परिणाम का विस्तार से वर्णन किया गया है । पाप पुण्य के याम्य और अनिदेशों के सम्बन्ध

में सावित्री ने जब यम से पूछा तो उसे यह बतलाया गया कि अतिदेशिक से वास्तव का चार गुना हत्या अधिक पाप का फल देती है। जो व्यक्ति किसी भी देवता के मन्त्र की दीक्षा नहीं लेता वह अदीक्षित है उसका कहीं भी अधिकार नहीं। प्रमत्त, पतित आदि के भेद का वर्णन।

३१

सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः

२३०

हरि सेवा के बिना कर्म का खण्डन नहीं होता। शुभकर्म स्वर्ग का जनक है और कुकर्म नरक का जनक है। पुष्कल्यान्न, वेश्यान्न आदि के खानेवाली की गतियाँ घतलाई और अगम्यागमन का सेवन करनेवाले का यज्ञ पाप नया योनि भोगने पर भी नहीं छूटता इसलिये सदा इनसे बचते रहना मनुष्य का परम धर्म है। पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज और तोय देही उनके शरीरों के मूल हैं और सृष्टिविधि में ये ही कारण हैं। पृथिवी आदि पञ्चभूतों से देह निर्मित है वह नश्वर और कृत्रिम है तथा भस्मीभूत हो जाता है। वृद्ध के अक्षुब्ध के प्रमाणवाला जीव पुरुषाकार में सूक्ष्म देह धारण कर नाना योनियों में जाता है। यह सूक्ष्म देह न शस्त्र से क्षिप्त है न अग्नि से जलता है न जल में लोहित है। यही भोग योनियों में जाता हुआ प्रभु की कृपा से प्रमुरारण होकर भगवान् के रूप में एकाकार हो जाता है। भक्तों को चार प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं उसका निरूपण किया और निष्काम भक्ति की सर्वत्र प्रशंसा की। तदनन्तर सत्यवान् को जिलाकर यमराज ने जाने की तैयारी की। मञ्जन पुरुष का वियोग सदा ही दुःखदायी होता है दोनों ही इस सज्जन सङ्गम से प्रभावित हुए और विदा के समय दुःखी होकर रोने लगे। तब यमराज ने सावित्री को कहा कि छाल वर्ष तक भारत में भ्रमणपूर्वक जीवन बिताकर अन्त में गोलोक में जाओगी। अब तुम पर आकर सावित्री का व्रत करो। चौदह वर्ष तक ज्येष्ठ मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यह सावित्री का महल व्रत है। मात्र शुक्र की अष्टमी को महालक्ष्मी का व्रत आठ वर्ष

एक महात्मार करने में भगवान् में भक्ति होकर जन्म में उनके मोक्ष की है। प्रणि माग प्रणि महान्धार को शुद्धात्मा की पत्नी को महान् पत्नी विधान है और इसी प्रकार आषाढ़ की संक्रान्ति में सावित्री देनेवाला तथा कार्तिक शुद्धात्मा में शशेधरी राधा का प्रण करना और प्रणिमाग की अष्टमी को विष्णुसाया भगवती दुर्गा का उपासना मन, सम्मान और को देनेवाला है। इसे तुम अवश्य करना इस प्रकार कह कर समराजभक्त तथा सावित्री सायवान् के साथ अपने घर को चली गई। सावित्री के पुत्रों की प्राप्ति हुई और उसके स्वगुरु को आंगों की उपासना मिल गई वह धन्या पतिव्रता एक लाख वर्ष तक मुग में गृहस्थ जीवन बिताकर गोलोक में चली गई। सूर्य की अधिदेवी तथा गुरु मन्त्रों की अधिष्ठा होने से उसका नाम सावित्री सार्वक हुआ।

३२

यमसावित्री सम्वादवर्णनम्

फिर सावित्री ने इन नरककुण्डों में न जाने का उपाय पूछा और भौतिक देह के जलजाने के बाद मनुष्य कैसे और किम शरीर से शुभ और कर्मों का भोग भोगते हैं फिर दीर्घकाल तक भोग भोगने पर भी देह का होता है आदि बातें मुझे संक्षेप से बतलाइये। सम्पूर्ण चारों वेद, धर्मों का सार, पुराण, इतिहास, पञ्चरात्र आदि में तथा वेदाङ्ग और १८ में सम्पूर्ण इष्टों का सार महान्धार कृष्णसेवन बतलाया है। यह भगवत्कीर्तन भजन, ध्यान, मनुष्य का जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, शोक और सन्ताप से मुक्त करवा देता है। यह सर्वमङ्गलरूप है, परम आनन्द का कारण है, भक्ति का यह अङ्कुर है और सम्पूर्ण कर्मवृक्ष को जड़मूल से छेदन करनेवाला है कुण्ड, यमदूत, यम और यम के नौकरों को कृष्ण भक्त कभी नहीं देखते। ती की सन्ध्या करनेवाले आचार में लगे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का मार्ग प्र

३३

कुण्डानां मानलक्षणवर्णनम्

२३५

भिन्न-भिन्न नरककुण्डों की लम्बाई चौड़ाई और गहराई का वर्णन ।

३४

श्रीकृष्णगुणकीर्तनम्

२४१

सावित्री ने जब कृष्णगुणकीर्तन के सम्बन्ध में यमराज से पूछा तो भगवान् के नामगुणकीर्तन का जो सुन्दर निरूपण किया वह पठनीय है । सावित्री ने अपनी कमी बतलाते हुए धर्मज्ञान से शून्य होने की बात कही और ज्ञान को मिटानेवाले कृष्णकीर्तन ज्ञान की पूरी कथा के लिये आमह किया । यम ने पूर्वपुरुषों की लम्बी सूची देकर कृष्णभक्तों का गुणानुवाद करते हुए इस शास्त्र के प्रवर्तकों का नाम निर्देश किया उन्होंने सूर्य से प्राप्त भुक्ति मुक्ति के कारण भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद का सविस्तर वर्णन किया । भगवान् विष्णु सम्पूर्ण सृष्टि के मूल हैं पालनकर्ता हैं और संहारक हैं इनके आवेश से ही सृष्टि में सम्पूर्ण कार्यक्रम विधिविधान से चलता है । सृष्टि, स्थिति और लय भी उनके द्वारा होता है । भगवान् में ही सारा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है ।

३५

लक्ष्म्युपाख्यानम्

२४६

नारदजी ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान के लिये भगवान् नारायण से प्रार्थना की । तब भगवान् नारायण ने लक्ष्मीजी के उपाख्यान को विस्तार से बतलाया । सृष्टि के आरम्भ में श्रीकृष्ण के वामांश से रासमण्डल में इस भगवती का आविर्भाव हुआ । वैकुण्ठ में नारायण विष्णु चतुर्भुज और गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण द्विभुज राधा और गोप गोपियों के साथ आनन्द से विहार करते हैं । ही की कला समस्त संसार में स्त्रीमात्र में विराजमान हैं । सम्पूर्ण संसार में ही देवी की पूजा होती है । सर्व प्रथम क्षीर समुद्र में विष्णु ने इन्हें पूजा कर

गन्धर्वादि तथा नागों ने पाताल में इनकी पूजा की। भाद्रपद की शुद्धपक्ष की अष्टमी को ब्रह्मा ने एक पक्ष तक भक्ति से इनकी पूजा की। चैत्र, पौष और भाद्रपद के मङ्गलवार के दिन भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित इस महालक्ष्मी देवी की पूजा तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गई। पौष मास की संक्रान्ति में मनु ने इस सुवन पावनी की पूजा की जो अबतक भी पूजी जाती है और सद्यः फल देती है। राजेन्द्र मङ्गल ने इसे पूजा। केदार, नल, नील, सुबल सभी ने इसकी अर्पण लिये पूजा की। ध्रुव ने भी, जो उत्तानपाद का पुत्र था, इसे पूजा। कश्यप, इक्ष्वाकु, मनु, विवस्वाम्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि, बरुण सबने अपने-अपने इच्छित फल पाने के लिये भगवती की साक्षात् पूजा की। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य, विभूति और सम्पत्ति को देनेवाली है।

२६

इन्द्रमृतिदुर्वाससःशापः

२४८

मुनिन्द्रसुरेन्द्रसम्वादः

२४९

भगवती महालक्ष्मीजी पृथिवी पर सिन्धु कन्या किस प्रकार हुई इस प्रश्न के उत्तर में नारायण भगवान् ने इन्द्र को दुर्वासस के द्वारा शाप देनेपर जब उसकी स्त्री जाकर वैकुण्ठ में महालक्ष्मी में मिल गई तो देवता लोग दुःखित होकर ब्रह्माजी के यहाँ गये और ब्रह्माजी के नेतृत्व में भगवान् नारायण की शरण में जाकर उनसे अपनी कष्टकथा सुनाई, तब विष्णु की आज्ञा से देवराज इन्द्र की सम्पत्ति रूपिणी लक्ष्मी सिन्धु की कन्या हुई और क्षीरसागर के मन्थन के समय लक्ष्मी ने घर पाकर लक्ष्मी को यहाँ देखा। दुर्वासस के शाप का कारण पूछने पर भगवान् नारायण ने कहा कि लक्ष्मी के साथ इन्द्र मद्यपान कर रमण करता था। दुर्वासस आये और प्रणाम करते हुए इन्द्रको पारिव्रात पुण्य से शुभाशीर्वाद दिया और प्रमादी इन्द्र ने यह पुण्य अपने हाथी के मन्त्रक पर धर दिया जिससे यह शोक

८ अन्यत्र चला गया इसी पर इन्द्रको शाप दिया। संसारके आवागमन से छुड़ाने उपाय दुर्वासा ने इन्द्र को भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना बताया। जन्म लेकर मरण पर्यन्त सभी अवस्थाओं का वर्णन और सभी का स्वरूप वर्णन।

७

हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्पृहानप्राप्तिः

२५७

भगवान् हरि के गुणों को सुनकर इन्द्र को स्वरूप का ज्ञान हुआ और राग्य में अपना मन लगाया और अमरावती में जाकर उसकी सारी दुर्दशा ली। तब भगवान् देवगुरु बृहस्पति के पास आकर उसने सारी अवस्था सुनाई। बृहस्पति ने इन्द्र को सान्त्वना देते हुए पूर्वजन्म के सुकृत से सम्पत्ति और दुष्कृत विपत्ति जाती है। पहिले की घुरी के समान उत्थान पतन सभी के साथ होता है। बिना भोगे हुए कर्म करोड़ों जन्म तक भी क्षीण नहीं होते उनका भोग आवश्यकता है।

मा भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिरातैरपि।

अथदयमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१॥

सामवेद की कौथुम शाखा में इसका प्रतिपादन भीष्मपुत्र भगवान् ने बेलार से किया है। कालभेद, देशभेद, और पात्रभेद से कर्मों की न्यूनता और अधिकता होती रहती है; जैसे, सामान्य दिन में धिप्र को दान देने से समफल होता है। अमावास्या, रवि की संक्रान्ति में उसीका सौगुना फल होता है। गतुर्मास्य की पौर्णमासी को अनन्त फल होता है। सूर्यप्रदण के समय उसी गत का करोड़गुना फल सूर्यप्रदण में उसका दशगुना फल होता है। सामान्य रा में दान का सामान्य फल विशेष देश में जैसे—गंगा देश में दश, सौ और अनन्त गुना फल होता है। सामान्य प्रादण को देने से सामान्य फल होता है जितेन्द्रिय पण्डित को देने से छापगुना फल होता है। जैसे—दण्ड, सूत्र, राय, जल और चाक से मिट्टी को टेंकर कृम्भ (पड़ा) बनता है यही बात कर्म

प्रगट करना । ग्वाहा की पूजा करने का विधान एवं फलभूति । ग्वाहा के पोटग
नामों को पढ़ने से सर्वगति की प्राप्ति होती है ।

४१

स्वधोपाग्यानम्

२७३

स्वधा के ध्यान का कथन । मृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने मात्र पिता को
उत्तरा किया तथा उनके लिये भाद्र का अन्न एवं तर्पण का जल ही आहार बनाया।
सुधित विप्रेधरों का ब्रह्मा के पास गमन और अपना दुःख प्रकट करना । ब्रह्मा
द्वारा मानसी कन्या का प्रकट होना । कन्या ने विप्रेधरों का दान कर ब्राह्मणों
के लिये उपदेश किया कि विप्रेधरों को स्वधा शब्द के उच्चारण ॥ ही धृति है।
स्वधा की पूजा विधि । भाद्र समय स्वधा स्तोत्र को पढ़ने का फल । स्वधा स्तोत्र
को सुनने से वेद पठन के समान फल ।

४२

दक्षिणोपाख्यानम्

२७३

दक्षिणास्तोत्रम्

२७७

दक्षिणा के आख्यान का कथन । गोलोक में सुरीला नाम की गोपी
रहती थी । वह अत्यन्त सुन्दरी एवं गुणवती एवं श्रीकृष्ण को प्रिय थी । सुरीला
को देख राधा का कुपित होना । दोनों के विरोध के भय से श्रीकृष्ण का अन्त-
र्धान । राधा ने श्रीकृष्ण के वियोग में विलाप करते हुए कहा कि हे श्रीकृष्ण आप
कहाँ गये हैं । स्त्रियों के पति ही एकमात्र देव हैं जैसे—

पतिर्धन्नुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः ।

परं सम्पत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमान् ॥ इत्यादि

दक्षिणा देवी का गोलोक से गमन । दक्षिणा की तपस्या एवं कमला का
शरीर में प्रवेश । ब्रह्मा की प्रार्थना से दक्षिणा का प्रादुर्भाव । उससे किये कर्मों
का पूर्ण फल । कर्म कराकर दक्षिणा उसी वक्त दे देनी चाहिये नहीं देने से दुर्गा
भर में दुर्गुनी हो जाती है । यज्ञकृत दक्षिणा स्तोत्र का वर्णन एवं फल कथन ।

पद्मी का उपाख्यान का कथन । पद्मी देवी की उत्पत्ति प्रकृति के छूटे से है । स्वायम्भुव मनु का पुत्र प्रियव्रत राजा था । यह तपस्या में ही लगा था । ब्रह्मा की आज्ञा से राजा ने विवाह किया । राजा को पुत्रेष्टि यज्ञ से मृत पुत्र की प्राप्ति । उससे अन्य नारीगण एवं रानी को महा दुःख । तत्पश्चात् विमान का आगमन । राजा को देवी का दर्शन । राजा के द्वारा देवी की स्तुति । प्रसन्न हुई देवसेना द्वारा राजा को पुत्र प्राप्ति । राजा ने देवी की पूजा कर ब्राह्मणों को द्रव्यदान किया । प्रत्येक मास में शुद्ध पद्मी में राजा द्वारा देवी की पूजा । पद्मी देवी की स्तुति एवं फल कथन ।

मङ्गलचण्डी का उपाख्यान भी भगवान् नारायण ने कहते हुए बताया कि मङ्गल नामक मनु की पूज्य अभीष्ट देवी होने से इसका नाम मङ्गल हुआ । सर्व प्रथम भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर के यध के अवसर पर विष्णु भास्कर की प्रेरणा से पूजा की । त्रिपुर ने शंकरजी के यान को आकाश से गिरा उस समय ब्रह्मा विष्णु के उपदेश से दुर्गा की आराधना की और भगवती दुर्गा अभय देकर मङ्गलचण्डी नाम से प्रसिद्ध होकर शंकर की सहायता की । विष्णु के दिये हुए अस्त्र से शंकर ने उस दैत्य को मार डाला । शंकर जी तापून्द् ने पुण्य वृष्टि की । शंकरजी द्वारा मङ्गलचण्डी का मूलमन्त्र चण्डी मंत्र उसका फल कथन ।

४५

मनसादेव्युपाख्यानम्

२८४

किर कथाप्रगल्भ से मनसा का उपाख्यान भी सुनाया। यह कथन की मानसी कन्या होने से मनसा नाम से विख्यात हुई। इमने मनमें भाग्यार श्रीकृष्ण की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न कर वाञ्छित वरदान प्राप्त किया। स्वर्ग, नागलोक और पृथिवी में गौरी रूप में, नागेश्वरी और नागभगिनी के रूप में पूजा होती है। यही आस्तिक भावा प्रसिद्ध है जो जरत्कार मुनि की स्त्री थी। मनसा के चारह नामों का पल इससे भयों का भय नहीं रहता।

४६

मनसापूजाविधानम्

२८५

इन्द्रकृत मनसाम्तांत्रम्

२८६

मनसादेवी का पूजा विधान। मनसा को पहले करपजी ने जरत्कार मुनि को विना याचना किये ही दे दी। एक दिन सायंकाल पुष्कर तीर्थ में बट के मूल में थक कर मनसा की गोद में सिर रखकर ही जरत्कार सो गये। धर्म लोप न हो इस भय से उसने अपने धर्मनिष्ठ पतिदेव को सन्ध्या के लिये जगाया इसपर जरत्कार ने नाराज होकर पति का अप्रिय करनेवाली स्त्री को भला-बुरा कहा। मनसा ने इसपर कहा कि सन्ध्या के लोप भय से ही आपको जगाया अब मुझे आप क्षमा करें और स्वामी के चरणों में लोटकर विलाप करने लगी। जब मुनि सूर्य को शाप देने के लिये तैयार हुए तो स्वयं भगवान् सूर्य ने उपस्थित होकर क्षमा याचना की और श्रीकृष्ण भक्ति की प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। अब मनसा को जरत्कार ने छोड़ दिया परन्तु ब्रह्मा, शंकर और करपजी के समझाने पर जरत्कार ने गर्भाधान होने तक मनसा के यहाँ रहना स्वीकार कर लिया और योग द्वारा नाभिस्पर्श कर गर्भ धारण करवा दिया। जरत्कार ने को वरदान दिया कि उसकी यह सन्तान तेजस्वी विष्णुभक्त होगी और

प्रेम में विह्वल रहेगी यही जनमेजय के नाग यज्ञ में आस्तिक होकर नारों
प्राणकर्ता हुआ। मनसा का स्तोत्र।

४७

सुरम्युपाख्यानम्

नारद ने गोलोक से आई हुई सुरभी के विषय में पूछा तो नारायण भगवान् ने गोमात्र की अधिष्ठात्री गौओं की प्रधान यह सुरभी गोलोक में प्रधान हु
बतलाया। एक दिन राधिकानाथ को राधाजी के साथ क्षीरपान की इच्छा
अपने वाम पार्श्व से लीला से ही भगवान् ने सुरभी वत्सयुक्त उत्पन्न की और स
ने उसका दूध रत्नभाण्ड में दूह लिया वहीं भगवान् ने पी लिया और भा
उलट जाने से उसका क्षीरसरोवर प्रसिद्ध हो गया। वहीं भगवान् की क
लक्षकोटि गायें हो गईं उनसे संसार धारण किया जाता है। उनका मूल
पूजा और स्तोत्र।

४८

राधिकाख्यानम्

प्राचीनकाल में गोलोक में रासमण्डल में मालती मणिका के
भगवान् श्रीकृष्ण रत्नसिंहासन में विराजमान थे। उन्हें रमण करने की
। तब भगवान् के दो स्वरूप हुए दक्षिणाङ्ग में कृष्ण और वामाङ्ग में राधि
। आविर्भाव हुआ। भगवती राधा सम्पूर्ण भक्तियों की देनेवाली हैं।
दाल्क्ष्मी और गृहलक्ष्मी रूप में सर्वत्र विराजमान है। वहीं राधा सुद
। आप से गोलोक से पृथिवी पर आ गईं। धृषभानु के गृह में जन्म लिया
। गता का नाम कलावती थी।

४९

हरगौरीसम्वादे राधोपाख्यानम्

भृत्य ने किस प्रकार राधा को शाप दिया इसपर भगवान् ने वि
सारी कथा समझाई। भगवान् गोलोक में राधिकाजी के साथ रास व

लगे हुए थे। उसी समय सुरत के आनन्द में राधिका को चार दूतियों ने जल और क्रोधित हो राधिका ने हरि को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण भी उसी राति तिरोधान हो गये और मर्त्यलोक में सरिद्रूप से अवतीर्ण हुए। जब श्रीकृष्ण आठ गोपों के साथ अपने घर आये तो उन्होंने राधिका को नहीं देखा अन्तःपुर में गये। वहाँ पर श्रीकृष्ण को राधिकाजी ने फटकारा और बद सुदामा ने उसी समय राधा की भर्त्सना की। तब राधा ने सुदामा को होने का शाप दिया। आगे शंखचूड़ रूप में तब सुलसी के पति के रूप में सुदामा हुआ और धृपमानु के यहाँ राधा ने जन्म लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा के भार को हल्का करने के लिये अवतार लेने पर वृन्दावन में सुन्दर रास राधा की आह्लादिनी शक्ति का अलौकिक चमत्कार संसार को दिखाया।

५०

सुयशोपाख्यानम्

३०

पार्वतीजी के प्रश्न करने पर कि सुयश नामक राजा कौन था वह भगवान् श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति राधा को विप्र शाप से रात होकर भी किया जिनके दर्शनों के लिये भगवान् ब्रह्मा को भी ६० हजार वर्ष तक पुष्कर में उनकी चरणकमलों की रेणु में तप करना पड़ा था। हे शंकरजी आप भी जिनके दर्शन नहीं कर सकते उनको इस महालक्ष्मी का दर्शन कैसे हुआ भगवान् शंकरजी ने स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से आरम्भ कर उत्तानपथि के पुत्र ध्रुव और उसका पुत्र उत्कल जिसने पुष्कर में हजारों राजसूय बराये उसीने सम्पूर्ण धन रत्न आदि प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को दे दिये उस शोभन यश को देखकर मुरसंसदू में सुयश को उस स्थान दिखाया। वही सुयश राजा अन्नदान, रत्नदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देनेवाला तथा ब्रालाख गायों सींग पर रत्न बांधा उन्हें सामग्री से मजाकर दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को देता था उसे इन बड़े भारी दानों को देने पर भी दुःख नहीं होती थी। इस प्रकार धर्मजीव

विताते हुए उसके पास एक दिन मलिन वस्त्र पहने कण्ठ, ओष्ठ और तालु जिसके कृपा से व्याकुल होनेसे सूख गये हैं, ऐसे ब्राह्मणदेव आये और प्रसन्न चित्त से उन्होंने ने मुयज्ञ को आशीर्वाद दिया। राजा ने उसे प्रणाम अवश्य किया परन्तु अभिवादन के लिये थोड़ासा भी खड़ा नहीं हुआ न सभासद ही खड़े हुए उलटे हैंसे। इसपर मुनिदेवगण को नमस्कार कर उस द्विजराज ने क्रोध से राजा को शाप दिया कि हे पामर ! यहाँ से दूर जाओ और राज्य से च्युत हो जाओ। साथ ही गलत्कुलवाली बुद्धि हो तथा अस्थिर चित्त होओ। जैसे ही उसने सभासदों को, जो हैंसे थे उनको शाप देना चाहा तो सवने परिहार किया और ब्राह्मण देवता शान्त हो गये। फिर राजा ने अपनी ओर से क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की और सभा से जानेवाले उस ब्राह्मण को सभी मुनियों ने समझाने का प्रयत्न किया।

११

नृपमुनिसम्वाद

३०४

ब्राह्मण को सनत्कुमार ने कहा कि राजा आपके शाप से भ्रष्टव्री हो गया। आप आशुतोष हैं उसपर कृपा कीजिये। आप अतिथि रूप में आये। आपका जा के द्वारा स्वागत होना चाहिये। पुलस्त्य ने राजा का दोष बनाकर उसे मा करनेको कहा। पुलह, वसु, अहिरा, मरीचि, कश्यप, प्रचेत्, दुर्वासा ने तिथि, ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि को अभिवादन न करनेवाले का अपराध क्षमा नही होता ऐसा कहा। फिर भी आप हम सब के कहने से इसका अपराध न करें और आतिथ्य ग्रहण करें। राजा ने गोम्र, स्त्रीम्र, हृत्तम्र, गुरुस्त्री-मियों और ब्रह्मम्र लोगों को क्या दोष लगता है इस तरह प्रश्न किया। इसके वे वशिष्ठ ने गोहत्यारे को एक वर्ष तक तीर्थों में धूमकर और जौ के ही अन्न अपना गुजारा करे और हाथ से जल पीये ऐसा बनाया। सौ गायों को दक्षिणा त दान करने से उस पाप से छुटकारा हो जाना है। शुक्राचार्य ने गोहत्या से

दुगुना पाप स्वीकृत्या में कहा है। शूद्रमणि ने स्त्रीहत्या में दुगुना पाप प्रकृत्या में कहा। शूद्रम उमसे चारगुना पापी है। फिर राजा ने कृतार्थों के भेद पूछे। शूद्र्य शूद्र ने एक प्रकार के कृतार्थ मामवेष्ट के अनुसार बतलाये फिर कात्यायन-सनन्द सनातन ने कृतार्थों के सम्बन्ध में विस्तार से समझाया। शूद्रार्थ भोजन, उनके शयन जलाने, और शूद्र स्त्री गमन के दोष पूछे तब परारार, जरत्कार ने सारी बातें विस्तार से बताकर उपरोक्त दोषों से मुक्ति बनने को कहा। भरद्वाज और विभाण्डक ने शूद्रों का शयन दाह करनेवाले और शूद्रों के यहाँ पितृभ्रातृ में भोजन करनेवालों को कृतार्थ बतलाया है। उन्हें देव और पितृकायों को करने का अधिकार नहीं रहता।

५२

हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम्

३०६

पार्वतीजी ने कृतार्थों के अन्य-अन्य कर्मफलों के सम्बन्ध में पूछा, तो महेश्वर ने नारायण, नारद, देवल, जैगीपथ्य, वाल्मीकि, आस्तिक आदि महर्षियों ने कृतार्थ पुरुषों के कर्म विपाक बताकर कभी भी कृतार्थ न बनने को कहा और राजा से ब्राह्मण को प्रणाम करने के लिये कहा और घर जाकर तपस्या कर फिर आनन्द से ब्रह्मशाप से छूटकर कृतकृत्य हो जाओगे। यह कह सब विदा हो गये।

५३

सुतपः सुयज्ञसम्वादेवर्णनम्

३१२

पार्वतीजी के महेश्वर को इसके बाद क्या हुआ ऐसे पूछने पर महेश्वर ने कहा कि निन्दाप्रलू राजा धरिष्ठजी के द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के पैरों परक्षमा याचना के लिये दण्डवत् गिर गया और ब्राह्मण ने क्रोध को त्यागकर आशीर्वाद दिया। इसपर राजा ने आँखों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर ब्राह्मण से उसके विषय का सारा हाल पूछा और कहा कि आप अपना राज्य, कोष, अपने नौकर चाकर पुत्र और स्त्री को अपने अधिकार में कर लीजिये और मुझे अपना नौकर

रख लीजिये। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उसके पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के पुत्रों ने देवत्व प्राप्त किया। उनमें महाह्वानी त्वष्टा हुए जिन्होंने दिव्य हजार वर्षों तक पुष्कर में तपस्या की। उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवदेव भगवान् हरि की पूजा की। भगवान् से वर पाकर उनके तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम विश्वरूप रखा, विश्वरूप अतीव कीर्तिशाली थे। उसके विरूप मेरे पिष्टपाव हुए उनमें सुतपा नामवाला वैरागी में हुआ। मेरे गुरुदेव महादेव हैं जिनके अभीष्ट देव सर्वात्मा श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। मुझे तो उनके चरणकमलों की चिन्ता है किसी सम्पत्ति की परवाह मैं नहीं करता। मुझे सभी भुक्तियाँ, ब्रह्मत्व या अमरत्व उन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति के बिना मिले तो मैं उन्हें सहर्ष छोड़ दूँगा। संसार के बड़े-से-बड़े अधिकार मुझे जलविम्ब के समान मिथ्या मालूम होते हैं। मुनियों का आपके यहाँ आना सुनकर उनसे विष्णु भक्ति का आनन्द लूटने को मैं आया था। मुझे शाप न देकर तेरा हित ही साधन किया गया है। हे राजन् अब विशेष विलम्ब मत करो, घर के सभा उत्तरदायित्व बेटे को सौंपकर बाहर हो जाओ और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में ध्यान लगाओ क्योंकि यही परम तत्व है बाकी तो ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्त मिथ्या है। भगवान् की ही माया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टिको रचते, पालते और संहार करते हैं। समय पर वर्षा होती है काल, अग्नि आदि पाक करते हैं। प्रति ब्रह्माण्ड में सृष्टि की यह क्रिया चालू है। भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूपों में ही ब्रह्माण्डों के ब्रह्मादि समाये हुए हैं। महान् विराट् सुद्र विराट् सभी भगवान् कृष्ण की अनुगामिनी प्रकृति के आधार से चलते हैं यही सव की धीजरूपा है। काल की अखण्ड साधना से ही वे भगवान् श्रीकृष्ण में लीन होते हैं। इस प्रकार सभी कालभीत होकर आविर्भूत और तिरोभूत होते हैं। इसी भांति महेश द्वारा दिये गये सारे दुर्लभ महा ज्ञान को बतलाया।

राजा ने महाविष्णु का आधार और श्रुत विराट् मन्त्रा और प्रकृति, मनु-इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा की आयु का मान पूछा और कहा कि सम्पूर्ण विश्वों के ऊपर कौनसा लोक है उसे मुझे ममकाइये। सम्पूर्ण विश्वों का गोलोक आकारा के समान व्यापक सदा द्विम्य रूप श्रीकृष्ण की इच्छा से समुद्रभूत श्रीकृष्ण के मुख बिन्दु जड़ से परिपूर्ण यह गोलोक महाविष्णु का मूल है। यह राघवेश्वर श्रीकृष्ण का पोटराश कहा गया है। विष्णु से ऊपर नित्य वैकुण्ठ है यह भी आकारा के समान निःसीम है। यहाँ नारायण भगवान् चतुर्भुज रूप में निवास करते हैं। गोलोक गोलोक है और सुन्दर-सुन्दर रत्नमाणिक्य से जड़े गृह महलों से शोभित है भगवान् के पार्षद, गोप गोपियाँ यहाँ पर रहते हैं। शिशुरूप में गोपाल-वेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी रासेश्वरी राधिकाजी के साथ रहते हैं। इस प्रकार वैकुण्ठ और गोलोक का वर्णन कर दण्ड, मुहूर्त, घड़ी, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष, उत्तरायण और दक्षिणायन, इनका निरूपण किया गया। फिर कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगों के परिमाण बतलाये। मन्यन्तर आदि का वर्णन किया। आद्यमनु ब्रह्माजी के पुत्र मनु हुए शतरूपा उनकी धर्मपत्नी वह सब गुणों से युक्त हुआ। उसने बड़े-बड़े अश्वमेध, नरमेध और गोमेध यज्ञ किये एवं भगवान् शंकर दुर्लभ कृष्ण मन्त्र को प्राप्त कर श्रीकृष्ण का दास्य पाकर गोलोक में चले गये। अपने पुत्र स्वायम्भुव के इस प्रकार मुक्त होने पर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उसके प्रियव्रत हुआ प्रियव्रत के वाद दो मनु बिष्णुभक्ति परायण इसके बाद पाँचवाँ मनु हैवत छठा चाक्षुष मनु, सातवाँ परमभागवत सूर्य का पुत्र आद्भदेव हुआ। आठवाँ सूर्यपुत्र सावर्णि हुआ, नवम दक्षसावर्णि हुआ, दशम ब्रह्मसावर्णि हुआ, ग्यारहवाँ धर्मसावर्णि और बारहवाँ रुद्रसावर्णि, तेरहवाँ देवसावर्णि और चौदहवाँ चन्द्रमावर्णि हुआ। जबतक मनु और इन्द्रों की आयु है उतना

ब्रह्मा का दिन उतने ही समय तक ब्रह्मा की रात्रि है। ब्रह्मा का दिन क्षुद्रकल्प कहा जाता है। ब्रह्मा ने रात बीतने पर फिर सृष्टि की रचना की इस ब्रह्मनिशा को क्षुद्रप्रलय कहा जाता है। ऐसे ३० दिन रात तक ब्रह्मा का मास कहा जाता है। कालरात्रि का वर्णन पहले आया है। १२ मास का एक ब्रह्मा का वर्ष और १५ वर्ष के बाद फिर प्रलय होता है यही मोहरात्रि वेदों में बही गई है। ब्रह्मा के निपात के बाद महाकल्प होता है वही महारात्रि कही जाती है। प्रकृति का निमेषकाल भी यही होता है निमेष के अन्त में श्रीकृष्ण की इच्छा से सृष्टि का निर्माण होता है। श्रीकृष्ण निमेष रहित हैं और श्रीकृष्ण में ही सारी प्रकृति आकर युगों के बाद लीन होती है तब उसे प्राकृतिक लय कहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों का संहार कर यह स्वयं कृष्ण के चक्षुस्थल में लीन हो जाती है वही मूल प्रकृति और ईश्वरी है इसे ही दुर्गा, नारायणी और सनातनी कहते हैं। इसीमें भी सबकुछ समाया है यह ईश्वर में समाई है। सभी क्षुद्र वैष्णवमय हैं विष्णु में लीन हैं महाविष्णु प्रकृति में और वही परमात्मा में लीन है। प्रकृति योगनिश्वारूप में श्रीकृष्ण के नेत्रों में इस इच्छा से अधिष्ठान करने लगी। प्रकृति का एक दिन का जितना काल है उतने समय तक वृन्दावन में श्रीकृष्ण की निशा होती है यही प्रलयकाल है। उनके जागने पर सर्व सृष्टि होती है उनका बन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन, कीर्तन और उनके गुणों का स्मरण महापातक नाशन है। इसके बाद सुयज्ञ के द्वारा भगवान् शिव का प्राकृतलय के समय में लीन होने पर भी मृत्युञ्जय नाम कैसे हुआ यह पूछने पर सुतपा ने सारा सृष्टिक्रम विस्तार से बतलाया।

ब्रह्मा के वय के अन्त में मृत्युकन्या जलविन्ध्य के समान नष्ट हो गई यह सब लोकों की संहर्त्री है और ब्रह्मादिको अपने में समेट लेती है। भगवान् शंकर ने मृत्युकन्या को जीता न कि शम्भु को मृत्यु ने। पुण्य वृन्दावन में कृष्ण ने प्रलयकाल के अपने चामारा से उत्पन्न राधिका में गर्भाधान किया। ब्रह्मा के उत्पत्यन्त राधा

ने गर्भ धारण किया तब गोलोक में उस डिम्ब को जन्म दिया फिर दुखी राजा
 से उस डिम्ब को विश्वगोलोक में भेजा अपने पुत्र को इस प्रकार छोड़ने से
 थार-थार महादेवी राधा रोने लगी। श्रीकृष्ण ने उसे कई प्रकार योग
 समझाया। उस डिम्ब से सबका आधार महाविराट् हुआ। इस प्रकार सृष्टि
 सृष्टि का वर्णन सुनकर सुयज्ञ राजा कृतकृत्य हुआ और भगवान् शंकर की शरण
 जाने के लिये गुरुजी के विषय में पूछने लगा। भगवान् कृष्ण की भक्ति से ही शंकर
 भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। इसके बाद राजा को सुतपा ने राधाजी की
 पूजा विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र और सामवेदोक्त ध्यान बतलाया। इसे देख
 तपस्या के लिये भेज दिया। सब को विलाप करते छोड़ राजा वन में तप करने
 चला गया। एक सौ दिव्य वर्ष तक उसने परम मन्त्र का जप करते हुए वन में
 तपस्या की। तब रथ में विराजती हुई परमेश्वरी को देखा उनके दर्शनमात्र
 ही यह निष्पाप हो गया। सुतपा मनुष्य का शरीर छोड़कर दिव्य मूर्ति धारण
 देवीजी के विमान से ही गोलोक चला गया। उसने वहाँ सभी अलौकिक विमान
 मूर्तिसम्पन्न गोप गोपीकृन्द से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्म को देखा
 उन्हें देख राजा ने तुरन्त रथ से उतरकर अधु गद्गद् नेत्र से प्रणाम किया और
 परमात्मा ने अपना हास्य प्रदान किया तथा इच्छित वर से राजा कृतार्थ
 गया। श्रीराधामाधव भगवान् का स्मरण करनेवाला सब ही उनका भक्त होकर
 आनन्द लाभ करता है।

५५

राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम्

३२

भगवान् शंकरजी ने पार्वतीजी के पूछने पर बताया कि श्रीकृष्ण जी
 मेरे रथों राधा मन्त्र को ही क्यों ग्रहण किया। इसका कारण यह था कि
 मन्त्र से अति शक्ति मिल जाती है। इस प्रकार राधिका मन्त्र की शक्ति
 देकर ध्यान, पूजा, जप का प्रकार बताकर भगवान् शंकर ने राधाजी की

कही। फिर श्रीकृष्ण और राधिका के वार्तालाप के रूप में श्रीकृष्ण द्वारा राधाजी के रूप, गुण और प्रभाव का दिव्य वर्णन। इस राधा गुणाख्यान के द्वारा सभी दक्षकन्या परमात्मा को मिलीं व सावित्री ब्रह्मा को। इसका प्रतिदिन पाठ करनेवाला पुत्रार्थी पुत्र पाता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है। कार्तिक की पूर्णिमा को राधा की पूजा कर पढ़नेवाले को अचल लक्ष्मी और राज्यश्री मिलती है। श्री सुननेवाली स्वामी के सौभाग्य को पाती है। इस स्तोत्र को भक्ति से सुननेवालों को बन्धन से छुटकारा होता है और अन्त में गोलोक में परमपद प्राप्त करता है।

५६

राधाकवचवर्णनम्

३२६

भगवती पार्वती ने राधापूजा विधान सुनकर शंकरजी से राधाकवच के विषय में पूजा और भगवान् शंकर ने कवच की महिमा बतलाकर उसके पाठ का फल बताया। जगन्मङ्गल इस कवच का प्रजापति रूपि है। रासेश्वरी स्वयं गायत्री देवी हैं श्रीकृष्णभक्ति सम्प्राप्ति का विनियोग है। इस कवच को हर प्रकार से गोपनीय रखना चाहिये। सभी को भगवती राधा के स्तोत्र का जप करने से सबसे उच्च पद प्राप्त होता है।

५७

दुर्गापाख्यानम्

३३२

भगवती राधा के १६ नामों का विस्तार से वर्णन। इन १६ नामों की प्रथम सृष्टि के आदि में गोलोक में रासमण्डल में पूजा की गई। फिर मधुकैटभ से डरकर ब्रह्मा ने, फिर त्रिपुरारि भगवान् शंकर ने त्रिपुर से प्रेरित होकर फिर दुर्वासा के शाप से भ्रष्ट्री होकर महेन्द्र ने पूजा की और भगवती ने सम्पूर्ण धाधि-दैविक, भौतिक एवं दैहिक पापतापों से संसार का उद्धार किया। दूसरे कल्पों में मुरारि राजा और मेघम के शिष्य समाधि वैश्य ने वेदोक्त प्रकार से राधाकवच

के द्वारा भगवती की मृगमयी मूर्ति बनाकर पूजा की। राजा और वैराग्यवेष्ठितन घर दिया। राजा अपने लोभे हुए राज्य पाकर राजपाद करने और वैश्य अपना शरीर त्यागकर मोक्षोक्त में भगवती दुर्गा के घर में गया। यह माना भोग भोगकर हमारे कल्प में माधर्जि मनु हुआ।

५८

दुर्गापाख्यानं तारापाख्यानम्

३३

सुरथ, समधि और मेघम ऋषि के सम्बन्ध में नारद के पुत्रों नारायण ने अत्रि के पुत्र चन्द्रमा से कुछ तारा में उत्पन्न हुए। कुछ के पुत्र और चैत्र का सुरथ हुआ। नारद ने बृहस्पतिजी की पत्नी तारा में चन्द्रमा कैसे कुछ हुए हम व्यतिग्रह का कारण पूछा। इस प्रकार कामयौवनोत्पत्ति चन्द्रमा द्वारा आसक्त होकर तारा के साथ सम्भोग मलात्कार से ही होता था। तारा ने बहुत रोका परन्तु लम्पट अपने दुरामह से नहीं माना। शुक्र ने चन्द्रमा को सत्यमार्ग बताया और विप्रपत्नीगमन में महापातक बलवान् फिर शुक्र ने चन्द्रमा को अपने तपोबल से शुद्ध किया। बहुतसे महापातकों का चन्द्रमा के गुरुपत्नी के साथ अनुगमन करने के महापातकों का वर्णन। शुक्र द्वारा चन्द्र को शुद्ध करने पर तारा को समझामुझाकर बृहस्पति के पास भेजना

५९

बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिवप्रेषणम्

तारा के नदी से स्नान करके आने में विलम्ब होते देख बृहस्पतिजी बहुत अधिक चिन्ता हुई उन्होंने अपने शिष्य को ताराको खोजने के लिये नदी के किनारे भेजा। चन्द्र के इस दुःसाहसपूर्ण निन्दित कर्म की सूचना बृहस्पति को मिली तो वे मूर्छित हो गये और फिर चेतना पाकर अपने मन उद्गार शिष्यों को कहने लगे।

स्त्री विना घर वन के समान है। जिस घर में सती स्त्री प्रिय बोलनेवाली

पतिव्रता न हो वह घर धन है । जिसकी पतिसाध्वी पतिव्रता को देवने हर लिया उसका घर धन के समान है ।

यस्यमातागृहेनास्ति गृहणी वा सुशासिता । अरप्यन्तेनगन्तव्यं यथाऽरप्यं तथा गृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणचन्धुभिः । अरप्यन्तेनगन्तव्यं यथाऽरप्यं तथा गृहम् ॥
भार्याशून्यावनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः ।

प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी ॥

शक्तिहीनो यथा जीवो यथात्मा च तनुं विना ।

विना ऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेराः प्रकृतिम्विना ॥

। च राक्षो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणाम्बिना । कर्मणांचफलं दातुं सामग्रीमूलमेवच
विनास्त्रणं स्वर्णकारो यथाशकः स्वकर्मणि ।

भार्याः मूलाः क्रियाः सर्वाः भार्यामूलागृहास्तथा ॥

भार्या मूलं सुखंसर्वं गृहस्थानां गृहे सदा । भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलश्चमङ्गलम्
भार्यामूलश्चसंसारो भार्यामूलश्च सौरभम् । यथा रथश्च रथिनां गृहिणां च तथा गृहम्
यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा ।

• तथैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीम्विना ॥

गृह की लक्ष्मी न रहने से संसार में सबकुछ सूना है क्योंकि देव, पितर और सभी माङ्गलिकार्यों में उसकी आवश्यकता रहती है । इस पर बृहस्पति ने इन्द्र को अपना भाव कहा और इन्द्र ने तुरन्त तारा को लानेकी बात कहकर उसके लिये प्रयत्न करने लगे । वे दोनों ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मा ने उन्हें गुरुरूप में तदुपदेरा दिया और तारा के गर्भ को शुद्ध करने के लिये सनत्कुमार भगवान् ने से उसका व्रत करवाया । इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने तारा के सामने आकर से इच्छित वर प्रदान किया ।

शिष्यजी के पास जाकर बृहस्पति ने क्या कहा इसका उत्तर नारायण
 दिया कि शंकर के पास जाते ही बृहस्पति का अभिवादन किया गया और
 आसन पर बैठाकर भारी घाते पूछी गईं । शंकर ने उनके शोक का कारण
 क्या श्रेयशोध में तपस्याहीन हो गई कि गन्ध्याहीन हो गये ? क्या भगवान्
 में भक्ति नहीं रही क्या अनिधिमैया नहीं हुई ? आपने शिष्य इन्द्र देव
 और गुरु भगवान् वशिष्ठ हैं । गन्धजन पर प्रसन्न होते हैं ।

पुत्रेशरामितोये च समृद्धे च पराक्रमे । ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिपते ।

वपनेषु च मुद्धौ च स्वभावे च परित्ततः ।

आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥

यादृग्येषां च हृदयं तादृक् तेषां च महत्तमम् ।

यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृक् तेषां च मानसम् ॥२२॥

अतः आप इसका कारण बतलाइये । बृहस्पति ने कर्मवश की बात
 अपना आत्मनिवेदन किया । इसपर शंकर ने वैष्णवभक्तों का कष्ट हटाने में
 दूर करते हैं बता भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों की प्रशंसा की । भगवान् शंकर
 श्रीकृष्णभक्त बृहस्पति को लक्ष्मी माया का कामबीज प्रदान । बृहस्पति
 भगवान् श्रीकृष्ण में मन लगाने की बात कहना । इन्द्र के द्वारा भगवान्
 के यहाँ जाकर सारी बात कहकर तारा को प्राप्त करने का उपाय ।

६१

ब्रह्मणः शुक्रगृहेगमनम्

गुरुपत्नी के लिये शुक्राचार्य के यहाँ ब्रह्मा का जाना । शुक्र ने ब्रह्मा
 आते देखकर उनकी स्तुति की और अभिवादनपूर्वक सत्कार किया और ब्रह्मा
 आने का कारण पूछा । ब्रह्माने शुक्र से गुरुपत्नी तारा को चन्द्रमा द्वारा हरने की
 कही और उसका पक्ष भी शुक्राचार्य ले रहे हैं । अतः मैं देवताओं की ओर से
 कहने आया हूँ कि या तो तारा को दो या कामी चन्द्र को छोड़ो । शुक्र

शङ्करजी को छोड़कर सभी देववृन्द को सुला आह्वान किया कि वे युद्ध करें। ब्रह्मा ने फिर कहा कि भगवती काली और शिव के पार्षद वीरभद्रादि तथा कालामित्र रुद्र तथा राधा कवच कण्ठवाले श्रीविष्णु के युद्ध में आते ही तुम दैत्यों में कौन उनके सामने टिक सकेगा।

प्रह्लाद ने ब्रह्माजी को विनय से प्रत्युत्तर दिया कि अवश्य ही भगवान् विष्णु मधुकैटभ और हिरण्यकशिपु को मारनेवाले हैं फिर भी यह परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की ही कला है। यही सबके अन्तरात्मा अपने सुदर्शनचक्र से सभी की रक्षा करते हैं। उनसे तो कोई भी बलवान् नहीं कहा जा सकता। श्रीकृष्ण की शरण में होकर सभी को युद्ध के लिये आह्वान करता हूँ। भगवान् की कृपा का ही सारा बल है। यदि मेरे पिता मरे तो वे विष्णु की निन्दा से। खचूड़ निर्यन्त्र (अभिमान से) मधुकैटभ झूठे दर्प से। त्रिपुर तो हमारा सेवक। फिर भी शंकर प्रेरित वह मरा था। तब ब्रह्मा ने दोनों पक्षों को युद्ध से शक्ति, बल और सैन्य का दुरुपयोग बतलाकर दैत्यराज प्रह्लाद से तारा की भिक्षा मांगी और विमुख भिक्षुक के जाने पर गृहस्थ भी पापों का भागी होता है यह कहा। फिर सनत्कुमार, सनन्दन, सनक और ऋषियों ने भी बृहस्पति की स्त्री तारा को लौटाने की धर्मसङ्गत मांग की। इसपर प्रह्लाद ने शुक्राचार्य से ही यह कार्य हो सकता है, यह बताकर उन्हीं के पास जानेको ब्रह्मादि देवगण और ऋषि मुनियों को सत्परामर्श दिया। तब सब शुक्रजी से प्रार्थना करने लगे और उन्होंने तारा तथा चन्द्र को लौटा दिया। प्रह्लाद सभी ब्रह्मादि देवगण व ब्रह्माजी के चरणों पर गिर पड़े। चन्द्रमा को अपनी भूल स्वीकार करने पर ब्रह्मा ने क्षमापूर्वक गोद में उठा लिया और कृपालु ब्रह्माजी ने कहा हे तारे अब हरो मत तुम सौभाग्ययुक्त बनोगी क्योंकि प्रायश्चित्त ही दुर्बलों का जो बलीजन से हरी गई एकमात्र उपाय है।

दुर्वला बलिनामस्ता निष्कामात्प्रच्युता भवेत् ।
 प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुःप्यति ॥
 सकामा कामतो जारं भजते स्वमुखेन च ।
 प्रायश्चित्तात् शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता ॥

उन्होंने उसके गर्भ की स्थिति किस से हुई यह पूछा तो तारा ने चन्द्रमा को उसका कारण यतलाया । इसके बाद तारा ने सुन्दर कुमार को 'जन्म दिया और चन्द्रमा उसे लेकर ब्रह्माजी को प्रणाम कर चला गया । ब्रह्माजी तारा को देवगुरु बृहस्पतिजी को देकर तथा देवगण को अभय दान कर अपने भवन सिन्धु के तट पर चले गये ।

एक बार युध ने युवक होने पर घृताची के गर्भ से उत्पन्न कुबेर की इन्द्राचित्रा को नन्दनवन में देखा । यह बारह वर्ष की यौवन के उद्गम अवस्था में थी । उस चन्द्रमा के पुत्र युध ने उसे गान्धर्व विधि से ग्रहण कर एकान्तस्थान में उसमें वीर्याधान कर दिया । उसके चैत्र नामक पुत्र हुआ जो धर्मात्मा, प्रतापी दानी हुआ । चैत्र को राजाधिरथ उसके सुरथ हुआ इसी सुरथ ने वैश्यसमाज के साथ भगवती दुर्गा की सरिता के किनारे पूजा की थी । यह वैश्य धर्मात्मा जयी और क्रिया कुशल था परन्तु दुर्दैव से धन के लोभ में आफर स्त्री पुत्रादि सभी ने इरे घर के बाहर निकाला । भगवती दुर्गा के ध्यान से यह फिर समृद्धि शाही हुआ । राजा को मनुष्य और निष्कण्टक राज्य मिला ।

६२

राज्ञः मुरधस्य वैश्यममाधेश विवरणम्

३४६

राज्ञा का मेधस मुनि से ज्ञान प्राप्ति और वैश्य को मुक्ति कैसे मिली नारदजी के इस प्रश्न के उत्तर में नारायण ने कहा कि ध्रुव का पौत्र उत्तम पुत्र नन्दि महा प्रतापी था । उसने मुरध राजा के देशों पर अधिकार किया । वह मुरध धकेटा रह गया तो यह रात्रि में थोड़े पर चढ़कर दौड़ा ।

जङ्गल में निकल गया। पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसने वैश्य को देखा और उनमें गहरी मित्रता हो गई। पुष्कर क्षेत्र में वैश्य के साथ राजा मेधस ऋषि के आश्रम में गया। वहाँ अपने आश्रम में शिष्यवृन्द को उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मतत्त्व समझाते हुए देखा। राजा सुरथ और वैश्य समाधि ने मुनिको प्रणाम किया। मुनि ने उनको शुभाशीर्वादपूर्वक अभिवादन किया और उनको कुराल प्रश्न पूछा तो राजा ने अपना राज्य निष्कासन का वृत्तान्त बतलाया और राज्य प्राप्ति का उपाय पूछा और वैश्य के सम्बन्ध में बतलाया कि यह वैश्य धन के लोभी स्त्री पुत्रादि से निकाला गया है। क्योंकि प्रतिदिन अपने उपार्जित धन में से वह अपने स्त्री पुत्रादिकों के मना करने पर भी खूब रत्न, मणिमाणिक्य प्रतिदिन भाक्षणों को दिया करता था। जब उन बेटे, पोते, भाई वन्धुओं ने इसे लोचकर पर जाने को आग्रह किया तो यह ज्ञान पाकर ऊँचा वैराग्य का अभ्यास करने का हृद् निश्चय कर भगवान् में भक्ति करने का उपाय ढूँढ़ रहा है। बाद में उसके पुत्र भी अपने पिता के वियोग में शोक से दुःखी होकर यन में जाकर रागी हो गये। अब इसे निष्काम भगवान् का दासत्व मिले ऐसा उपाय तलाशिये। मेधस ने भगवती कृपामयी कृष्ण की विष्णुमाया का चमत्कारपूर्ण भाव बताकर उन्हीं की कृपा से कृष्णभक्ति का आनन्द लाभ हो सकता है यह सिद्धान्त कहा। नाना जन्मों के बाद शंकर की भक्ति से विष्णु भक्ति का और विष्णुभक्ति से निर्गुण कृष्ण की भक्ति के सफल मार्ग का रहस्यपूर्ण वर्णन कर मेधस ने कृष्णभक्त से ही कृष्ण मन्त्र को लेकर अपना मार्ग प्रशस्त करने को कहा। भगवान् की भक्ति दो प्रकार की है एक विवेचना और दूसरी आवरण। प्रथम भक्त को दी जाती है और दूसरी आवरण से सारा जगत् लीला नाटक के आधार से संचालित होकर अपना भाग ग्रहण करता है। मैं भी भगवान् तर से कृष्णभक्ति का ज्ञान लेकर अपना जन्म सफल करने में लगा हूँ। जाओ भवती की आराधना करो। नदी तीर पर जाकर वही तुम्हें कामनापूर्ण

परती मुट्टि देगी जिसमें सब डीक हो जायगा। जिन्हाम बेग को भगवती
 वना शक्ति देगी जिसमें उसे भगवती के चरणों का महत्त्व ही लाभ होगा।
 पर उन दोनों में दुर्गास्तोत्र और कवच द्वारा भगवती को प्रमत्त किया।
 य को मुक्ति और राजा को मनु का पद तथा इष्टितन देयमें मिला।

३. **सुरथममाधिमेधमग्नादे प्रकृतिर्यमग्नादः** ३१८

राजा को जैसे प्रकृति की भक्ति का लाभ हुआ और बेग को हिम पूजा
 ध्यान, मन्त्र, जप, स्तोत्र, और कवच में हुआ इगंठ विषय में जिज्ञासा करने पर
 नारायण ने कहा कि राजा और बेग दोनों को सुमेधम ने ज्ञान, स्तोत्र, कवच का
 उपदेश किया। उसकी ही पुष्कर में एक वर्ष तक तीन काल उन दोनों की
 साधना की। भगवती ने प्रमत्त होकर उन्हें गयेण्ड परदान दिया। बेग के
 जितना देकर जय भगवती ने घर भागने को कहा तो उसने भगवती चरण में रहकर
 भी नारा न होनेवाले सम्पूर्ण यन्त्रुओं का भार घर मांगा। प्रकृति ने भगवती
 की नयना भक्ति का वर्णन कर उसकी साधना करनेवाले मफल मुनीरवर देवा
 का परिगणन किया और भगवान् कृष्ण की भक्ति का उपदेश दिया। "कृष्ण
 इस नाम का पुष्कर में दशालास के जप का आदेश दिया जिसे पूर्ण कर बेग
 भगवान् कृष्ण का परमपद पाकर उनका दास बना।

६४ **राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम्** २६१

फिर नारायण ने राजा के द्वारा भगवती के पूजन का विस्तार से वर्णन
 किया। सुरथ ने स्नान, आचमन और न्यासत्रय कर (कर, अङ्ग अङ्गाङ्ग, न्यास
 मूतशुद्धि की तथा प्राणायाम कर शंखशोधन किया। फिर भगवती की मिट्टी की
 मूर्ति बनाकर उनका आवाहन किया। फिर देवी के दक्षिण भाग में कमलालय की
 की और गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती छत्रों देवों की पू

विधिविधान से की। फिर मूल प्रकृति ईश्वरी का सुन्दर ध्यान किया। इसे भक्तों को सुरयवैश्य की पूजा के अनुसार ही सदा कर आनन्द लूटना चाहिये। स्तोत्र का विधान पूजा तीन प्रकार की है। सात्विकी, राजसी और तामसी। वैष्णवों की सात्विकी, शाक्तादि की राजसी व अदीक्षित और अन्य सज्जन लोगों की तामसी पूजा है। “दुर्गा” यह नामजप मात्र से ही कष्टों का विनाश हो जाता है। पूजा षोडश उपचार से की जानी चाहिये। इसी प्रकार ऋत्यों देवताओं की, फिर जगदम्बिका, अष्टनायिका, अष्टदलकमल में स्थापित कर आराधना करे। इसके बाद महामैरव, असिताङ्ग मैरव, ससमैरव, कालमैरव, क्रोधमैरव, वासुचूड़ और चन्द्रचूड़ की पूजा करे। फिर नवशक्ति जैसे वैष्णवी, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, रौद्री, नारसिंही, वाराही इन्द्राणी कार्तिकी तथा सर्वमङ्गला की पूजा कर फिर शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण और देवी की दासी तथा वटुक और चतुःपट्टि योगिनी की विधिविधान से पूजा करे। कवच को गले में बांधकर पठन करे। फिर बलिदान विधान कर भगवती को प्रसन्न करे। बलिदान के बाद भगवती को प्रणामादि कर नमस्कार को दक्षिणा देवे।

६५

दुर्गोपाख्याने दानकथनम्

३६६

श्रीनारायण ने नारदजी द्वारा स्तोत्र, कवच, पूजा के फल को जानने की इच्छा पर आर्द्रा में देवी को बोधन कर मूल से प्रवेश करे और भवण में विसर्जन करे, यह कहा। भगवती के बोधनोत्सव का आर्द्रायुक्त नयमी को यदि कोई करता है तो उसे शतवार्षिकी पूजा का फल मिलता है। सुरथ की पूजा से भगवती सन्तुष्ट हुई और राजा से यथेच्छ वर मांगने को कहा। उसे अभीष्ट राज्य और शत्रुनाश होने का वर देकर अन्त में ज्ञानरूप कृष्णभक्ति का उपदेश किया। कृष्ण नाम के गुण प्रभाव का वर्णन कर भगवती अन्तर्धान कर गई। राजा भी अपनी आराध्या को प्रणाम कर राज्य पाकर घर चला गया।

प्रकृति के कवच स्तोत्र के सम्बन्ध में नारदजी द्वारा पृथ्वी पर श्रीनारायण जय-जय श्रीकृष्ण ने गोलोक रासमण्डल में राधा की स्तुति की तथा मधुकैटव में विष्णु ने फिर त्रिपुरारि शंकर ने एवं वृत्रासुरवध के समय देवराज इन्द्र मनुष्यों, देवतावृन्द और सुरथादि राजाओं ने कल्प-कल्प में आराधना। स्तोत्र को बताया। इसकी फलश्रुति सर्वत्र विजय ही प्रकृति की साधना का पद उनके श्रीचरणों में भक्ति द्वारा भक्त का उद्धार बतलाया गया।

७ प्रकृतिकवचापरनामक ब्रह्माण्डमोहन कवचम् ३७

नारदजी के अनुरोध से श्रीनारायण ने प्रकृति कवच अथवा ब्रह्माण्डमोहन कवच का उपदेश किया। सिद्धकवच करने के लिये इसका पांच लाल जप कर आवश्यक है। गणपति मूलप्रकृति के ही पुत्र हैं उनके आधिर्भाव के भगवान् श्रीकृष्ण ही श्वास से मूल कारण हैं। ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखण्ड को सुनकर नानाप्रकार का भक्षण भोजन, दान और जपतप करानेवालों को अनन्त कल और पुत्रपौत्रों की अनन्तकाल तक प्राप्ति तथा अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण में निश्चला भाव होकर गोलोक में परमपद की प्राप्ति होती है।

॥ शुभम्भूयान् ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

अध्याय

विषय

पृष्ठाङ्क

१

गणेशजन्मविषयक प्रश्नविचारः

३७३

श्रीकृष्ण परब्रह्म की कृपा से गणेशजननी भगवती पार्वतीजी की असीम अनुकम्पा से गणेश आविर्भाव के घृत्तान्त की विषयसूची का वर्णन प्रस्तुत है—

श्री नारदजी ने प्रकृतिलखण्ड के अमृत समुद्रमय आख्यान में तब स्नान कर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए गणेशखण्ड के लिये श्रीमन्नारायण से सादर निवेदन किया । उन्होंने गणेश के भगवती पार्वती के गर्भ से जन्म को लेकर प्रश्न किया । उनका प्रादुर्भाव किस देव के अंश से हुआ यह योनि सम्भव है कि अयोनि सम्भव ? उनका तेज, पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल धरा कैसा है ? सभी नारायण, ब्रह्मा, शिवशंकर आदि के विद्यमान रहते हुए उनकी पूजा क्यों प्रथम विहित है ? इनका जन्म पुराणों में सारपूर्ण और रहस्यमय गाया गया है । यह हाथी के मुखवाले और एकदन्त क्यों हैं आदि प्रश्नों की झड़ी लगादी । भगवान् नारायण ने कहना आरम्भ किया कि सभी देवों का संहार कर जब दक्षकन्या भगवती ने अपने स्वामी की निन्दा को सहन न कर दक्ष यज्ञ में देह छोड़ दिया तो योग से वह हिमालय के यहां कन्या रूप में उत्पन्न हुई । विवाहयोग्य अवस्था में हिमालय ने उनका विवाह भगवान् शंकर से कर दिया । भगवान् शंकर और भगवती पार्वती नर्मदा के तट पर सुन्दर पुष्प उद्यान में देवों के हजार वर्ष पर्यन्त शृङ्गारपूर्ण रतिलीला में मग्न हो गये ।

महोदुःखमेव द्वितीयं पीयूषमयम् । द्वाविधेऽहं गच्छन्तुर्गमनस्यताम् ।
 आदरे रहते मुझे शक्तिमहः पीयूषमय और पुत्र न होने के बीच-बीच दुःख

इसमें अधिक दुःख संसार में मेरे लिये और क्या होसकता है ।

प्रेमोक्त के ग्यामी आपको यदि पाकर भी मेरे सम्मान न हो, तब मैं
 रतिगुण से प्राप्त सम्मान न हो उसका जन्म कथन है । मर्त्यग में मनुष्य ही
 हृत्थ का शय पुत्र है कुतुहल तो पुत्र का अज्ञात है, नाग कर्मेश्वर है । सभी
 अपने वंश से अपनी स्त्री के गर्भ से जन्म लेता है । माया भी माना के समान
 देवकारिणी है । अमाप्यो देवी के समान सम्मान देनेवाली है । "मुनियुक्ता
 मेनिदुष्टा चैवाऽमाप्यति हि भूता" अब आप ही बताइये मैं क्या उपाय करूँ ।
 तबपर शंकरजी ने हंसकर पार्श्वीजी को मान्यता देते हुए कहा—

३ पार्श्वीम्प्रति दृग्प्रतकृणाय शिवम्प्रापदंशः ३७७

महादेवजी ने कार्यमिद्धि के लिये उपाय बतलाया । उन्होंने पुष्पक
 नामक व्रत को भगवान् हरि की आराधना करते हुए करनेका परामर्श दिया ।
 यह घाण्ड्याकल्पवृक्ष है, मयका मार है, मुसदेने वाला और पुत्रदाता है, मर्त्य
 सम्पत्ति का दाता भी यही है । इसलिए इसको पालन करो तुम्हें व्रत के आराध
 कृष्ण अवश्य वाञ्छित फल होंगे । अब तुम हरि मन्त्र को लो पितरों के मुख-
 कारण इस व्रत को करते हुए इष्टमिद्धि पाओगी । यह कहकर उन्होंने शीघ्र गङ्गाजी
 के तटपर जाकर बड़े प्रेम से भगवान् श्रीकृष्ण के स्तोत्रयुक्त कवच और पूजाविधान
 के नियमों को बताया ।

भगवती श्रीपार्वती ने सम्पूर्ण व्रतविधान सुनकर इसका विस्तार से वर्णन जानना चाहा । पिता अपनी कन्या को कौमारादस्था में सब प्रकार से भरण-पोषण कर योग्य बना देता है । युवावस्था में पति उसकी शक्ति का हास नहीं होने देता और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी सेवाकर अपना जन्म सफल करते हैं । सुन्दर पति को देकर कन्यापिता धन्य होता है । पति गृहस्थ में उसे सब प्रकार सुखीकर वृद्धावस्था में पुत्रों को उसका भार सौंपकर वृत्तव्यपालन करता है । तीन भाईयों की महान भाग्यवती है, उससे कम भाग्यशालिनी दो भाई वाली, उससे कम एक भाई वाली और एक भी न होनेपर तो वह बेचारी अधमा है । मुझे पुत्ररत्न की आवश्यकता है आप कृपाकर उसकी व्यवस्था कीजिये । तब शंकरजी ने पुण्यक व्रत का आरम्भ माप धुठ प्रयोदशी को करने का विधान कहा । प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर स्वस्तिगायन के साथ घटस्थापन किया जाय । पुरोहित को वरण कर पोहरोपचार से भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन हो । इसका विधान साम्नोपास्य होना चाहिये । थोड़ीसी भी त्रुटि होने से अङ्गहानि होती है तो फल में भी हानि सम्भव है । नाना द्रव्यों से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा का माना फल सहस्रलक्ष में श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ कहना चाहिये । पुष्पाञ्जलि के बाद सौ प्रणाम करे और छ मास तक द्रव्य अन्न खावे । एक पक्ष तक दधि जल का पान करे । रात्रि में कुशासन पर बैठकर जागरण करे आठ तरह के मैथुनों को छोड़ दे । व्रत की समाप्ति पर पूर्ण सामग्री सजाकर दिल होम पर स्नान भोजन और दक्षिणा देवे । इन व्रत का यही फल है कि भगवान् में हृदय अथवा भक्ति होती है और भगवान् हरि के समान ही सर्वगुणनिधान पुत्र उत्पन्न होता है और व्रत करनेवाली स्त्री को मौन्दर्य, स्वामी का सौभाग्य, देवर्ध और विदुष घन की प्राप्ति होती है । अब महेश्वरी तुम व्रत करो तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी ।

५

प्रतयिधान को सुनकर पार्वतीजी की उत्कण्ठा व्रतमाहात्म्य को सुनने सम्बन्ध में हुई। महादेवजी ने कथा आरम्भ की। प्राचीन समय में शतर ने जो मनु की पत्नी थी यह पुत्र न होने से अत्यन्त दुःखित होकर ब्रह्माजी के पास जा बन्ध्या के पुत्र होने का सफल उपाय पूछा।

तज्जन्मनिष्फलं ब्रह्मन्मैश्वर्यधनमेव च । किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणा च ।

पुत्र के बिना सब सूना है। पुत्र सुखदेनेवाला, मोक्षदाता व प्रीतिदाता। अपुत्र का सुख कोई नहीं देखना चाहता। स्वयं वह भी लज्जित होता है। ब्रह्मा ने उसे माघ शुद्ध त्रयोदशी को सुपुण्यक व्रत करने का आदेश किया। एक वर्ष तक लगातार करना चाहिये और इसकी समाप्ति बताई।

पार्वत्याव्रतारम्भोद्योगः

शिवस्य विष्णुसमीपे वरप्रार्थनम्

व्रताज्ञाग्रहणम्

नारदजी द्वारा व्रत के आरम्भ का विधान पूछने पर नारायण भगवान् दिव्य कथा और व्रत का विधान कहा। जब भगवान् शंकर साक्षात् उपस्थित करने चले गये तो भगवती पार्वती ने शंकरजी की आज्ञा से पुण्यक व्रत आरम्भ किया। इस अवसर पर ब्रह्माजी विष्णु आदि देवगण सनक, सन व सनकुमार आदि बड़े-बड़े ऋषि महर्षि उपस्थित हुए। उस समय बड़ी

और उसमें नाना प्रकार के गीत, नृत्यवादित्रों से शंकरजी ने व्रत करने की इच्छा की बात कही। उन्होंने अपने रतिभङ्ग और पार्वती

के शोक, क्रोधयुक्त वचनों को ब्रह्माजी से कहा और पुत्राभिलाषा होने से उसे पूर्ण करने का उपाय जानना चाहा, साथ ही स्त्री स्वभाव को लेकर अपना मतव्य रखता ।

दुर्निवार्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः ।

दुस्त्यजं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्त्रिभिः ॥२४॥

स्त्रीस्वभाव अत्यन्त चपल होता है वह किसी के समझाये नहीं ठीक होता। इतना होनेपर भी स्त्रीरूप के घरा में योगी लोग सिद्धगण और हम तपस्त्री भी हैं। यह मोह का कारण है, सम्पूर्ण माया का पिटारा कामयर्द्धन का कारण कामदेव का ब्रह्मास्त्र, मोक्ष के द्वार को बन्द करने का कियाड़ और हरिभक्ति को रोकने-वाला यह है। वैराग्य नारा का बीज है, रागादि को बढ़ाता है। साहसों का समूह, दोषों का घर, अविश्वासों का क्षेत्र और स्वयं मूर्तिमान् कपट है। अहङ्कार का आश्रय सदा ही मुख में अमृत लगे हुए विष्णुकोष्ठ के समान यह रहती है। सभी के लिये असाध्य है, दुस्त्याध्य कलह के अङ्कुर का बीज है। अतः आपलोग पार्वतीजी के लिये परिणाम में सुखावह कोई पुत्र प्राप्ति का सुन्दर उपाय बता दीजिये। इसपर भगवान् विष्णु ने सुपुण्यक व्रत का माहात्म्य बतलाया और श्रीकृष्णभक्ति का अमोघ रहस्य कहकर श्रीकृष्ण भर्ता का मार्ग सदैव निष्कण्ठक बतलाया और भगवती पार्वती के लिये इस व्रत को करने का विधान बतलाकर उसके प्रभाव से गोलोकनाथ श्रीकृष्ण स्वयं पार्वती के गर्भ से उत्पन्न होंगे यही गणेश नाम से प्रसिद्ध हो जायेंगे यह कहा। गजानन, एकदन्त आदि नामों की कथा ।

७

हरेरादेशान् व्रतविधानम्	३६१
व्रतान्ते पुरोहिनेन स्वामिदक्षिणायाचनम्	३६२
देवान्प्रति नागयणवाक्यम्	३६३
पार्वतीकृतं श्रीनारायणस्तोत्रम्	३६४

भगवान् विष्णु के आदेश से शङ्करजी ने पार्वतीजी को प्रा का दिया बताया। उन्होंने सुन्दर वेषभूषा पहनकर शुभ दिन में रत्नरत्नरादि की स्थापना कर मुनिवृन्द की विधिविधान से पूजन कर पुरोहित, आचार्य, दिक्पाल, देव, नान मनुष्य एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि की पूजा कर स्वस्तिवाचन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का मङ्गल पद में आवाहन किया और पोढ़रा (सोलहों) उबघारों में भक्तिपूर्वक पूजा की। इस व्रत में जो उपकरण (सामग्री) देने की थी उसे सुत्र सती पार्वती ने मन्त्र सहित प्रदान की। तिल और घृत की तीन लाख आहुति देने से हवन किया। देवता, अतिथि और ब्राह्मणों की सम्पूर्ण साधनों से पूजा की यह क्रम एक वर्ष तक प्रतिदिन चलता रहा। एक वर्ष के बाद समाप्ति दिवस पर पुरोहित ने भगवती पार्वती से पति को दक्षिणा में मांगा। भगवती इसपर मुँहि होकर गिर पड़ी। तब शङ्करजी ने उन्हें दक्षिणा न देने पर फलदान का आदेश बताया और धर्म, देवता, मुनिवृन्द ने दक्षिणा के विषय में पार्वती को समझाया तब भगवती ने पति को दक्षिणारूप में मांगने पर आपत्ति उठाई कि पति के वें से स्त्री के पास फिर रह क्या जायगा।

भर्तृवशाश्चतनयः केवलं भर्तृभूलकः। यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यश्च निष्फलम्॥

इस प्रकार जब पार्वतीजी एवं धर्म, देवता और मुनिगणों का दक्षिणा के विषय में विचार चल रहा था तो भगवान् चतुर्भुज श्रीकृष्ण रथ से वहाँ उपस्थित

देववृन्द ने प्रणाम किया और उन्होंने देववृन्द को सृष्टि का स्वरूप बताया। तब शङ्करजी का कारण बताया। सम्पूर्ण प्राणिमात्र का आधार प्रकृति

बताकर गोलोकनाथ द्विभुज और वैकुण्ठनाथ चतुर्भुज विष्णुरूप का महत्त्व समझाया और पार्वतीजी को अपने प्राणनाथ शङ्करजी को देकर फिर उचित रूप द्वारा उन्हें पुनः प्राप्त करने का उपाय कहा । गौरी विष्णु की देहरूपा हैं वही विष्णु के साक्षात् शरीर हैं अतः आप गोमूल्य देकर स्वामी को प्रदण । पार्वतीजी ने वैसा ही किया और एक लाख गौओं को बदले में देकर शङ्करजी को फिर मांगा । इसपर सनत्कुमार ने ना किया इससे पार्वती को क्रोध आया । उन्होंने शङ्कर का ध्यान किया और सामने महत्तेजः पुञ्ज भगवान् का रूप दृष्ट हुआ । उसकी क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, धर्म, देवता, मुनिगण, स्वर्ग, सावित्री, लक्ष्मी, हिमालय और पार्वतीजी ने भक्तिभाव से स्तुति की । पार्वती ने भगवान् शङ्कर के तीन जन्म में पति होने के विषय को लेकर इस जन्म में सौभाग्य से उनके पति होने एवं पुत्र न होने का प्रकरण कहकर स्तुति की । पार्वती ने भगवान् से उनके समान ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हो यह कामना की । इस वीकृत स्तोत्र को संयत होकर सुननेवाले को भगवान् विष्णु के समान पुत्ररत्न प्राप्ति होती है । एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर इस व्रत को करनेवाले को एक ब्रह्म का अवश्य ही फल मिलता है ।

स्त्वप्रीतेन कुण्डेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रदानम् - ३६६

षट्प्रविप्रातिथिरूपेण विष्णोरागमनम् ४०१

गणेशोत्पत्तिः ४०३

भगवती पार्वती के स्तवन से प्रसन्न होकर देवाधिदेव श्रीकृष्ण ने अपना दुर्लभ अनुपम सौन्दर्य सौकुमार्यपूर्ण रूप दिखाया उनके साथ चारों ओर गोप एवं गोपिका बैठे हैं और राधा उनके पास विराजमान हैं । उस रूप को देख मुग्ध होकर ऐसे ही सुन्दर पुत्र की अभिलाषा करने की । भगवान् 'तयास्तु'

कहकर अन्तर्धान करगये । उन्होंने फिर भगवत्को यथाविधि मन्त्रोत्तर किया । प्रभूतदान से सबको सुख किया । स्वयं शङ्करजी के साथ ब्राह्मणों को मोक्ष दक्षिणा से राजीकर आप प्रसाद पाकर सुन्दर शय्या पर पार्वतीजी को ले कर वस रतिलीला के अन्त में वीर्यपतन काल में विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का चेहरा प्रगट आ पहुँचे और सब तरह से शङ्कर को तथा पार्वती को उद्बोधन दिया । इस पार्वती और शङ्करजी बीच में ही बैठकर यज्ञ पहनकर उस रतिभवन के द्वार खड़े ब्राह्मण के पास गये और उसे आने का कारण पूछा । शङ्करजी ने स्वयं नामपन्था पूछा और पार्वतीजी ने अपने द्वार पर आये हुए वृद्ध अतिथि से स्तुति कर अतिथि पूजन का फल बतलाते हुए अपनेको धन्य कहा ।

अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते ।

पितृदेवाम्रयः पश्चाद् गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥ ६ ॥

यनि फानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

तानिसर्वाणि लभते नाभ्यर्च्योतिथिमीप्सितम् ॥

ब्राह्मण ने भूल-प्यास से पीड़ित अपनेको बतलाकर आहार पाने की बड़ा इच्छा प्रगट की । ब्राह्मण ने पाँच प्रकार के पिता बतलाये ।

विद्यादाताऽऽज्ञाता च भयत्राता च जन्मदः ।

कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥

गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुः श्वसा ।

श्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्याऽन्नदायिका ॥

भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः ।

धमेपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥ ४ ॥

मैं बुढ़ा ब्राह्मण आपके शरण में आया हूँ मेरा अब अन्न से उपकरण कीजिये । आगे उसने भगवद्भक्ति की प्रशंसा कर उनके चरणों की भक्ति माँगी । ने कर्म के भोगादि से लेकर भगवत्स्मरण एवं भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म की प्रशंसा

करते हुए हरिभक्ति एवं विष्णु मन्त्र की अपूर्व प्रशंसा की और भगवान् की भक्ति में एकमात्र कारण ही उसने पार्वतीजी को बतलाया और उनके पुत्र गणेश को साक्षात्कृष्ण का ही रूप कहा। उनकी उत्पत्ति श्रीकृष्ण भगवान् के अंश से हुई है। इसके पूर्व ही यह ब्राह्मण अन्तर्धान कर गया और उनके रूप साधुर्ष का सुन्दर वर्णन किया।

६	हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम्	४०४
	पार्वत्या शिवेन च गणेशदर्शनम्	४०५

बृद्ध ब्राह्मण के रूप में श्रीविष्णु के द्वारा बिना पूजा लिये ही बड़े जातेपर भगवती पार्वती ने उनकी बहुत खोज की पर कहीं पता न चला इसपर आकाशा-गणी हुई कि हे पार्वति ! आप शान्त होइये और शय्या पर अपने घर में लेटे ए सुपुत्र को देखिये। यह सुन्हारे द्वारा किये गये पुण्यक व्रत का फल है और हे ब्राह्मण भूखा नहीं स्वयं साक्षात् विष्णु ये। इस पर पार्वतीजी अपने भवन में छोट आईं और अपने पुत्र को उमा-उमा कहकर स्नान के लिये रोते हुए देखा। भगवती पार्वती शङ्करजी के पास गईं और उनसे गणेशजन्म का सारा वृत्तान्त कहा। शङ्करजी अपने पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पुत्रप्राप्ति की बहुत प्रकार से प्रशंसा की। भगवती पार्वती ने उस बालक को गोद में लेकर स्नान पान कराया।

१०	सर्वेभ्यो बहुविधदानम्	४०६
	विष्णुप्रभृतिभिर्देवैराशीर्वादप्रयोगः	

पुत्र प्राप्ति के उत्सव पर भगवती पार्वती और शङ्करजी ने अधिकारी ब्राह्मण और याचक धर्मों को प्रचुर मात्रा में दान दिया। इसी प्रकार हिमालय ने भी अपने नाती के जन्म के उपलक्ष्य में खूब दान दिया। सभी गणेशजी की महल

कामना करते हुए लौटे और सभी देवगण ने इस उदमय का अभिनय ब
लुटा । सभी देवगण, विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, हिम
मेनका, धनुर्वाता, वृद्धो और भगवतो पार्वती ने मंगलाशामनपूर्वक शुभांश
दिया एवं ब्राह्मण घन्टोत्तन ने मङ्गल कामना की । गणेशजन्म की इस मुग
ध्याय के पड़नेवाले का सदा मङ्गल होता है । इसके पाठ करनेवाले की इ
मङ्गल कामना पूर्ण होती है । यह मङ्गलाध्याय जिस किसी के यहाँ हो
उसका मङ्गल होता है । यात्रा में पुण्यार्द्र के दिन इसको मन लगाकर सुनने
को सब अभीष्ट मिलते हैं ।

११ गणेशदर्शनार्थ शनैश्चरागमनम् ४

शनिपार्वतीसम्वादः ४

जब गणेशजन्म के उपलक्ष्य में शङ्करजी के यहाँ देवगण आनन्दपूर्वक उ
मना रहे थे उसी समय महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर यहाँ पहुँच गये । स्वाम
शनैश्चर अहर्निश भगवान् कृष्ण के नाम में लगे हुए सभी देवगण को प्रणाम
उनकी आज्ञा से शङ्करजी के भवन में श्रीगणेश को देखने गये । द्वार पर हा
त्रिशूलधारी विशालाक्ष को देखकर उससे अन्दर जाने की आज्ञा माँ
विशालाक्ष ने पार्वतीजीको आज्ञा से शनैश्चर को जाने दिया । अन्दर जा
गणेशजी की मङ्गल कामना करते हुए आशीर्वाद देकर नीचा शिरकर बह
बैठ गये । जब पार्वतीजी ने नीचे शिर करने का कारण पूछा तो कर्म की गति
घर्षण करते हुए शनैश्चर ने अपनी स्त्री चित्ररथ की पुत्री के द्वारा उसके श्रुतुल
होनेपर न जानेपर जो शाप दिया उसीके कारण किसीको देखने से वह नारा
जाता है यह कहा । यद्यपि बाद में उसे मनाया भी गया परन्तु वह शाप
लौटा न सकी ।

शनिनां बालकदर्शनम्

विमोपखण्डनम्

४११

४१३

पार्वतीजी ने हँसी में टालते हुए शनि से बालक को देखने के लिये जोर दिया। शनैश्चर ने ज्यों ही अपनी दक्षिण आँख के कोण से बालक के शिर को देखा वैसे ही उसका शिर अलग होगया और गोलोक में श्रीकृष्ण के यहाँ चला गया। इस दुर्घटना से पार्वतीजी को बड़ा भारी खेद और शोक हुआ। सभी देवगण को इस अघटित घटना से विस्मय हुआ। सभी लोग मूर्छित हो गये। इसपर भगवान् विष्णु ने गरुड़ पर चढ़कर पुष्पभद्रानदी के किनारे एक वन में हथिनी के साथ सोये हुए गजेन्द्र को देखा। अपने सुदर्शनचक्र से उसका शिर छेदकर गरुड़ के ऊपर चढ़कर वे पार्वती के यहाँ जाने लगे। इधर वह हस्तिनी पक्षों के साथ अपने पति के अङ्ग विच्छेद से क्रोधित होकर बिलाप करने और रोने-पीडने लगी। इससे विष्णु ने उसको दूसरे हाथी का सिर लगा दिया और उसको कल्प पर्यन्त आनन्द से जीवन बिताने का वरदान दिया। कैलास पर आकर पार्वतीजी को जगाकर शिशुको गोद में रख उसके हाथी का शिर लगा दिया और बालक को आध्यात्मिक ज्ञान दिया। विष्णु भगवान् द्वारा कर्म के शुभाशुभ फलों के भोगों का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द को कलाओं का महत्तरपूर्ण वर्णन और उन्हीं के कलाभरा होने से गणेशजी की प्रशंसा। ब्रह्मा, विष्णु और देवगण सभी ने गणेशजी को भूरि-भूरि आशीर्वाद दिये। शङ्करजी ने मृतजीवित बालक की शान्ति करने के लिये ब्राह्मणों को खूब दान दिया। हिमालय ने भी इसी प्रकार ब्राह्मणभोजनादि से सब मङ्गल साधन जुगाये। श्रीविष्णु ने इस अवसर पर वेदों और पुराणों का पाठ करवाया। श्रीसुलभ स्वभाववशा पार्वतीजी ने क्रुद्ध होकर शनैश्चर को शाप दिया कि जाओ तुम अङ्गहीन बन जाओ। इसपर सूर्य, चन्द्र और यम रुष्ट होकर सभा से

ठहर चले गये। जब ब्रह्मा उन्हें मनाने गये तो परमेश्वर ने कहा कि शनि का बालक की माता के अनुरोध करने पर देवने से कोई दण्ड नहीं। सूर्य ने अपने पुत्र के अहङ्गीन होने की बातपर शनि को निम्नपराध कहकर बरने में गणेशजी के अहङ्गीन होने का शाप दिया। यमने कहा कि यह कहाँ का न्याय है कि देवने का आज्ञा देने पर और सारी बात जानने पर भी शनि को शाप दिया गया। इस पर भी शाप देते हैं मारनेवाले को मारने में क्या कोई अपराध है ? ब्रह्माजी ने बीच-बीच में समझाया कि स्त्री के चपल स्वभाव से यह भय हुआ आप लोग ब्रह्मा और पार्वती को कहा कि अपने बालक को देवने की आज्ञा देकर निर्दोष अतिथि के आपने क्यों शाप दिया ? ब्रह्माजी के समझाने-बुझाने पर पार्वतीजी ने शाप छुड़ाने का और पर देने का उपक्रम किया। इसपर शनि को महाराज होने, विरंजी और हरिमल्लिकपरायण होने का परदान दिया गया। शाप के अमोघ होने में थोड़ा-थोड़ा खड़ा होओगे यह कहा। इस प्रकार आपसकी समझौते की भावना आनन्द छा गया और शनि विदा हो गये।

१३

विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं

४१।

विष्णुकृतं गणेशकवचम्

४१।

विष्णु भगवान् ने शुभ समय में देवगणों के साथ बालक गणेश की पूजा और सबसे प्रथम देवगण में उनकी पूजा होने एवं सर्वपूज्य होने का वरदान दिया। भगवान् विष्णु ने विष्णेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदंत, शूर्पकर्ण और विनायक आदि नाम निकाले तथा खूब शुभाशीर्वाद दिये। धर्म सिद्धासन, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शङ्कर ने योगपट्ट और दुर्लभतत्त्वज्ञान, इन्द्र रत्नसिद्धासन, सूर्य ने मणिकुण्डल, चरुण आदि देवताओं ने नाना आभूषण और ने वाहन के लिये मूपक दिया। सभी ने भक्ति से पूजा की और देवगण

रामन्त्रों से गणेशजी को स्नान कराया और गणेशमन्त्र से हिमालय ने पूजा और दान दिया । तब विष्णु ने गणेशजी का स्तोत्र और कवच पाठ किया और पठन करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है ।

१४

कार्तिकेय प्रवृत्तिप्राप्ति:

४२

प्रथम आदि सर्ग में जो रतिसङ्गम भगवती पार्वती एवं शंकरजी ने किया, उससे प्राप्त शङ्कर के अमोघ वीर्य के विषय में पार्वतीजी ने विष्णु भगवान् जेहासा की और विष्णु भगवान् ने देववृन्द को उस वीर्य की खोज करने को विनम्र होकर रो दिया । सभी देवगण ने उस वीर्य के हरनेवाले को भला पुरा कहा, तब विष्णु ने कहा कि जब देवताओं ने उसे नहीं लिया तो फिर किसने लिया, तब धर्म ने कहा वह पृथ्वी पर गिरा; पृथ्वी ने कहा मैंने उसे धारण कर सकने के कारण अग्नि में डाल दिया । अग्नि ने भी अपनी असमर्थता बताकर उसे शरों के बन में डाल दिया । वायु ने उस वीर्य से सुन्दर बातें बोलने की बात कही । चन्द्र ने कृतिकागण द्वारा उसके पावन-पोषण की बातें बोलने की और उसका कार्तिक नाम का रहस्य बतलाया । इसपर पार्वती प्रसन्न होकर अति मात्रा में दान दिया ।

१५

शिवदूतैः कृतिकामवनगमनम् कार्तिकवादिसंवादश्च

४३

पार्वतीजी के साथ शङ्कर ने कार्तिक के जन्म की बात सुनकर अत्यन्त मङ्गलशाली धीरभद्र, विशालाक्ष आदि पार्षदों को कृतिकागण के भवन में ले जाने के लिये भेजा । इसपर कृतिकागण डर गईं और कार्तिक को सारा वृत्तांत बतला दिया । नन्दिकेश्वर ने कार्तिक को कहा कि गणेशजन्म के मङ्गलोत्सव का अवसर तुम्हारे प्रकरण को लेकर खोजने की आज्ञा देने पर अमराः कृतिका स्थान पर तुम्हारा ठीक ठिकाना बताया गया अतः अब तुम हमारे साथ चलो । कृतिका

को लेकर विष्णु त्रेयनाभों के साथ गुम्दारा शभिनेक कर्मों और तुम्हें मारने के लिये सब प्रकार के साम्राज्य दूँगे । अतः महत्त्वपूर्ण जीवनपात्रे मर पुरर करी पुरान्न में थोड़े ही रहते हैं । ऐसा समझकर हमारे साथ पड़ोस पर कार्तिक ने पूर्व जन्मों की मारी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृतिभरी गाभाण पार्वतीजी को अपनी माता कहा क्योंकि उसके स्वामी भगवान् शङ्कर के धर्म से मेरा जन्म हुआ है और कृत्तिकागण का मैं पोष्यपुत्र हूँ क्योंकि उनके स्तनपान से ही मैं पालापोसा गया हूँ । हे मन्दिरेधरा ! मैं शैलकन्या पार्वती के गर्भ से उत्पन्न नहीं हूँ । यह मेरी धर्म-माता हैं और ये सर्वगम्य मातायें हैं- स्तनदात्री, गर्भदात्री, भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया । अमीष्टदेवपत्नी य पितुः पत्नी य कन्यक सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रतुः । मातुर्माता पितुर्माता मोदरस्य प्रिया तप मातुः पितुश्चभगिनी मातुलानी तथैव च । जनानां वेदविहिता मातरः पोडरात्मनः

ये कृत्तिका कोई छोटी माया नहीं हैं । ये ब्रह्माजी की कन्या हैं और महाविभूति सम्पन्न हैं । ये तीनों लोकों में पूजित हैं । जब विष्णु ने तुम्हें कहा है तो मैं शङ्करजी का पुत्र हूँ आओ चलो देवगण के दर्शन करें ।

१६

कार्तिकगमनम्

४३६

कार्तिक ने कृत्तिकागण को सारी अच्छी तरह से सान्त्वना देकर उन्हें शङ्करजी के यहाँ जाने के लिये आज्ञा मांगी और सम्पूर्ण जगत् देवाधीन कहकर उन्हें भगवान् कृष्ण के भोजन करने की बातें कही । यह जगत् जलबुद्बुद समान अनित्य हैं । मूर्ख लोग माया से सबकुछ करते रहते हैं । जब वे विदा होने की तैयारी करने लगे तो सुन्दर रथ वहाँ आगया और कृत्तिकागण ने दुःखी हृदय से अपना प्रेम का भाव प्रगट किया और अपने पुत्र के गमन वियोग से मूर्छित होकर गिर पड़ी । कार्तिक ने उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा से

... होकर यात्रा की । मार्ग में पूर्ण पूर्णकलश, द्विज, वेरवा

सफेद धान्य, दर्पण, दधि, घृत, मधु, लाज, फूल, दूध, अक्षत आदि शुभराकुन के पदार्थ मिले। कैलास पहुंचने पर भगवती पार्वती को उनके भद्रलारासन के लिये प्रचुर सज्जा करते हुए देखा। सभी को उपस्थित देख पार्वती के सामने रथ से उतर कर कार्तिक ने प्रणाम किया और क्रमशः सबको दण्डवत् प्रणाम के साथ अभिवादन किया। सभी ने कार्तिक को शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया।

१७

कुमाराभिषेकः

४२८

अब विष्णु ने शुभलक्ष्म में रत्नसिंहासन पर कार्तिक को बिठाकर वेदमन्त्र से अभिषिक्त तीर्थों के जल से स्नान कराया। ब्रह्मा ने उसे ब्रह्मा एवं सन्ध्यामन्त्र, विष्णुमन्त्र और कषच, स्तोत्रादि वेदों ने दिये शङ्करजी ने पाशुपत संहारास्त्र आदि दिये। अन्य सभी देवतागण ने उन्हें अपने-अपने विशेष आयुध दिये और कार्तिक का अभिषेक कर अपने-अपने घर चले गये। समय आने पर भगवान् शङ्कर ने स्कन्दकार्तिक और गणेश का विवाह कर दिया। इस प्रकार संक्षेप में, कार्तिक के मिलने से सारे देवगणों में आनन्द और उत्साह की लहर दौड़ गई।

१८

विघ्नेशविघ्नकथनम्

४३०

नारदजी ने भगवान् विघ्नाशक गणेशजी के सस्तक छेदन के विघ्न को लेकर प्रश्न किया। इसपर पुराने इतिहास से भगवान् नारायण ने उनका समाधान किया। उन्होंने कहा कि पुराकल्प में एक बार शङ्करजी ने अपने भक्त माली और तुमाली के मारने सूर्य के ऊपर शूल से प्रहार किया। इसपर वह मूर्छित होकर रथ से गिर पड़ा। उसे इस अवस्था में कश्यपजी ने देखा और अपनी गोद में लेकर शोक से अतीव बिलाप किया। अपने निष्प्रभ पुत्र की हीन अवस्था देखकर कश्यपजी ने शङ्करजी को शाप दिया कि जैसे मेरे पुत्र को छाती में प्रहार कर उसे बिलस किया है वैसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर क्षिप्त होगा।

जब आशुतोष भगवान् शङ्कर का क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने ब्रह्मज्ञान द्वारा सूर्य को उसी क्षण जिला दिया। सूर्य भगवान् चेतना पाकर उठे और कल्पजी एवं शङ्करजी को सामने देखकर भक्ति से प्रणाम किया और शङ्कर को दिये गये शाप का वर्णन सुनकर सूर्य ने अपने पिता को भला-धुरा कहा और सभी सूर्य को आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान को चले गये। माली और मुमाली के कोढ़ निकल आई उन्हें ब्रह्मा ने सूर्य की प्रार्थना करने की बात कही और सूर्य कवच के पाठ से स्वस्थ होने का रहस्य कहा। वे दोनों पुष्कर जाकर त्रिकल स्नान कर सूर्य के मन्त्र का जप करते रहे। सूर्य को भक्ति से सन्तुष्ट कर उन्हें पूर्व स्वरूप मिल गया और वे आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे।

१६

भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च

४३२

नारद ने सूर्य पूजा का स्तोत्र, कवच आदि को विस्तार से बताने के लिये जो प्रश्न किया उसके उत्तर में ब्रह्माजी द्वारा सूर्य कवच के पारायण की विधि का विस्तार से वर्णन बताया। इसे बृहस्पति ने इन्द्र को हजार भग होने पर प्रीतिपूर्वक साधन करनेको बतलाया था। इस कवच का अनन्त फल सभी रोगों से छुटकारा और इष्टसिद्धि की प्राप्ति होती है।

२०

गजमुखयोजनहेतुकथनम्

४३३

फिर नारदजी ने गणेशजी के हाथी के मुख को छगाने के विषय में पूरा इमपर भीनारायण ने पाञ्चद्वय का पुरातन इतिहास समझाया। एक बार पुष्पभद्रानदी के किनारे, महेन्द्र देवराज बैठे थे। उस समय रम्भा को गजजी-मज्राई देखकर उनको कामबिहार हो गया और उसने इन्द्रिय चपला बुझाया और कई प्रकार के फुमलानेवाले चादुकारी वाक्यों से १ का प्रयत्न किया। इमपर रम्भा ने कामी को भ्रमर के समान २

पुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्प पर बैठने की वृत्तिवाला कहकर फिर अपना मनका राव कहा। इन्द्र ने कामराष्ट्रानुसार उसके साथ रति की। इस प्रकार वह गममत्त इन्द्र सुख से दिन बिताने लगा। एक दिन दुर्वासा संयोग से आगये न्होंने भगवान् विष्णु के यहां से लाये गये पुष्प को इन्द्र को उपहार देकर पुष्पारण का माहात्म्य कहा। देवराज ने उपेक्षा करके इस पुष्प को रम्भा को दिया। रम्भा ने इसे हाथी के मस्तक पर रख दिया। जब रम्भा ने देवराज को भ्रष्टात्री देखा तो वह देवगण के यहां स्वर्ग में चली गई। देवराज को ड़िकर वह महाबली हाथी उस फूल को फेंककर जंगल में चला गया हां पर एक हथिनी के साथ कामोन्मत्त होकर खूब आनन्द से रमण किया और उसके सन्तान फैलने लगी। भगवान् विष्णु ने उस पुष्प के प्रभाव से उका मस्तक गजेश के मस्तक के स्थान पर लगाया। यही मस्तक का रहस्य है।

१

शक्रलक्ष्मीप्राप्ति

४३८

नारद ने ब्रह्माजी के शाप से देवता कैसे लक्ष्मी हीन हो गये और फिर कैसे उन्हें लक्ष्मी प्राप्त हो गई इसके लिये पूजा इसपर श्रीनारायण ने कहा कि रम्भा से पराभूत वह इन्द्र जब अमरावती आया तो यहां सब प्रकार से दैत्यमत्त बन्धुहीन और बैरिगण से घिरी हुई पुरी को देखकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ। अपने दूत से नगरी की सारी दुर्दशा सुनकर वह बृहस्पतिजी के पास गया। वहां से वह इन्द्र के साथ ब्रह्माजी की सभा में चले गये और ब्रह्माजी की स्तुति कर अपने धाने का सारा वृत्तान्त कहा। इसपर ब्रह्माजी ने अपने प्रपौत्र सम्बन्ध का स्मरण कराकर इन्द्र के दुराचार सम्बन्धी दुष्कृत्यों को फल समेत कहा और भीहीनता का कारण दुर्वासा द्वारा दिये गये भगवान् विष्णु के पुष्प के उपहार को गजेन्द्र के सिरपर उपेक्षा बुद्धि से डालना ही बताया और परस्त्री सेवन से मनुष्य को सदा ही वृद्धि होना पड़ता है। इसका उपाय उन्होंने

भगवान् नारायण का भक्तिभाव से भजन कराया। जगन्नाथी ने जो माराग का कवच दिया। उसने देवगुरु कृष्णपतिजी के साथ देवनागण को लेकर सग्न और कवच का पुष्कर में जप किया। उसने एक वर्ष तक निराहार रह साधना की। इसपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि माधवान् प्रगट हो गये और इन्द्र को इच्छानुसार घर दिया, साथ ही लक्ष्मीस्तोत्र, कवच और वैष्णवार्चन म दिया। इन्द्र ने श्रीरसागर में जाकर उस लक्ष्मीस्तोत्र और कवच का विधान से पाठ कर लक्ष्मीजी की पिर कृपा प्राप्त की। और अमरावती अधिकार किये हुए देवों को दरा कर देवगण को अपने-अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया।

२२

लक्ष्मीस्तोत्रं कवचञ्च

श्रीनारायण ने कदा पुष्कर में तपस्या करते हुए इन्द्र के सामने साक्षात् प्रगट हुए और इच्छित घर मांगने को कहा। इन्द्र ने लक्ष्मी प्राप्ति का घर इसपर भगवान् ने इन्द्र को महालक्ष्मी कवच और लक्ष्मीस्तोत्र दिया और अन्तर्धान हो गये और इन्द्र लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिये देवगण के भीविष्णु की आज्ञा से क्षीरसागर के तटपर चले गये।

२३

महालक्ष्मीचरितम्

इन्द्र ने महालक्ष्मी के कवच को सद्गुणटिका में रखकर अपने पापकर मनसे दिव्यस्तवन का स्मरण करते हुए भगवती को प्रसन्न करने लगाया। देवगण भी अति दीन भाव से आँसों में आँसू लाकर और होकर जगद्गन्त्री की पूजा में लगे। भगवती प्रसन्न होकर प्रगट हुईं और यदि उनके पास रहने की आज्ञा दें तो रहने का आवासन दिया सभी प्राणज वहाँ उपस्थित हो गये। इनमें अहिरा, प्रचेता, वसु, भू

रीचि, और अत्रि आदि प्रमुख हैं। इन्होंने ईश्वरी लक्ष्मी की पूजा विधिविधान की और लक्ष्मीजी से देवमवन तथा मर्त्यलोक में जाने की प्रार्थना की। इसके बाद महालक्ष्मीजी ने पुण्यवान्, मुनीति को जाननेवाले गृहस्थ और राजा लोगों पास रहने की बात कहकर जिनके पाम वह नहीं रहतीं उन व्यक्तियों और जातों की विस्तार से गणना की। इसपर देवता, ऋषियों एवं मुनिगण ने भगवती को गम किया। फिर देवगण को निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति हो गई।

४

गणेशस्य एकदन्तस्य विवरणम्

४४४

नारदजी ने भगवान् नारायण से गणेशजी के एकदन्त होने के सम्बन्ध में पूछा। भगवान् ने कहा एक बार कर्तवीर्य जङ्गल में शिकार खेलने के लिये गया। वहाँ बहुत मृगों की शिकार कर वह बहुत थक गया। दिन बीतने पर सन्ध्या के समय वह जमदग्नि ऋषि के आश्रम के निकट अपनी सेना के साथ ठहर गया। प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या से निवृत्त होकर उमने दत्तात्रेय द्वारा दिये गये मन्त्र का जाप किया। मुनि ने राजा को शुष्क औष्ठ, कण्ठ, तालु-पाछा देखकर प्रेम से कुराल पूछा। राजा ने सादर विनम्र प्रणाम किया और ऋषि ने उन्हें शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया। राजा ने अपने अनुराग का सारा इत्थान्त कह सुनाया। राजा को मुनि ने निमन्त्रण दिया और कामधेनु से आकर सारी बातें कह दीं। माता कामधेनु से सान्त्वना पाकर जमदग्नि प्रसन्न हुए। उस कामधेनु ने सम्पूर्ण भोज्य सामग्री और पाकपात्र दिये। महर्षि ने राजा को सेना सहित भोजन कराया। इसपर विस्मित होकर राजा ने पूछा कि मेरे से असाध्य इतनी विराल सामग्रियाँ कहाँ से आईं। इसपर उसके ऋषि ने कपिला गौ का ही सारा महत्त्व बतलाया। इसपर लोभी राजा ने महर्षि जमदग्नि से उस कामधेनु को माँगा। कर्म की विचित्र गति है पुण्य कर्म से

पुण्यगति और पापकर्म में दुर्गति होती है। कर्म में बन्ने जीव की गति विस्तार का कोई पता नहीं। अतः सज्जन पुण्य मन्त्र ही कर्म का भय दिया।

सा विद्या तत्तयोक्तानं तं गुरुः स न वान्धवः ।

सा माता स पितापुत्रमन्त्रभयं काम्येषु यः ॥

इस कर्मभोग के रोग को कृष्णभक्ति रसायन में भक्त वेद ही शमन दे। भगवती जगद्धात्री महामाया ही इगमें प्रधान है। कार्तवीर्य माया से होकर महर्षि जमदग्नि से कामधेनु को मांगने के लिये पड़ी अनुनय बिनय लगे। मुनि ने धातुन टालमटोल की। अन्त में राजा ने हठ से कामधेनु को लिये नौकर को भेजा। महर्षि ने कपिला के पास जाकर अपना दुःख इसपर कामधेनु ने कहा कि यदि राजी होकर आप राजा को मुक्त देंगे तो जाऊँगी नहीं तो कभी भी नहीं जाऊँगी। आप मन्ताप करें। यह कामधेनु ने कई शस्त्र अस्त्र और बड़ी सेना रच डाली। उसके शरीर कोटि नाना भील जातियाँ उत्पन्न हुई। मुनि को अब निर्भय रहने का आश्रय दिया। इस सब तैयारी का पता राजा के नौकरों ने उसे तत्काल दिया। उसे बड़ी चिन्ता हुई।

२५

जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम्

महर्षि जमदग्नि के पास दुःखित हृदय से कार्तवीर्य ने अपना दूत भेजकर मुक्त अतिथि को चाहे तो आप युद्ध दें चाहे अपनी कामधेनु। मुनि ने कामधेनु को बलात् राजा मांगता है तो मैं उसे युद्ध ही देना चाहता हूँ। पूरी तैयारी के बाद राजा ने महर्षि को प्रणाम किया और तुमुल युद्ध राजा मूर्छित होकर गिरपड़ा, तब कृपानिधि महर्षि ने अपनी सारी सेना को लिया और कमण्डलुजल से शरीर को छिड़क कर आशीर्वाद दिया कि

य हो। फिर राजा ने प्रणाम कर महर्षि से आशीर्वाद लिया और राजा को
 ान, भोजन कराकर जाने के लिये कहा। ब्राह्मण स्वभाव से ही कोमल
 ते हैं। दूसरे लोग धूरे की धारा के समान असाध्यवदाध्य। राजा नहीं माना
 १२ अपने हठ को फिर से दोहराया “या तो युद्ध करो या कामधेनु दो।”

६ पुनः जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम् ४४६

महर्षि ने राजा की हठ भरी बातों को सुनकर उसे नीतियुक्त वचन कहे।
 राजन् देखो तुम्हारा कितना आतिथ्य किया गया। जय तुम युद्ध में मूर्छित
 गये तो तुम्हें आशीर्वाद देकर चेतना दी। इसपर भी युद्ध करने की बात को
 राजा ने बार-बार दोहराया। युद्ध आरम्भ हुआ। कपिला कामधेनु के प्रताप
 से महर्षि ने राजा को मूर्छित कर दिया। फिर क्रमशः राजा ने अग्निबाण, यहणास्त्र,
 गान्धर्व, नागास्त्र, गारुडास्त्र, माहेश्वर, वैष्णव, जगन्मयास्त्र एवं नारायणास्त्रों
 का प्रयोग किया जिनका समुचित उत्तर उन-उन शस्त्रों के प्रतिकार के अस्त्रों को
 काम में लेकर मुनि ने दिया। राजा फिर मूर्छित होकर गिर गया। इसपर
 मुनि ने दया कर उसे चेतना प्रदान की। उठते ही राजा ने अपनी शूल को
 लेकर मुनि के ऊपर आक्रमण किया पर मुनि ने उसे बीच में ही काट दिया। ब्रह्माजी
 ने आकर बीचवचाव किया और उनके कहने से वह घर लौट गया।

२७ ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ४४७

घर से लौटकर फिर जमदग्नि के आश्रम में पूरी सेना की तैयारी कर राजा
 गया। इस विशाल सेना की सामग्री को देखकर महर्षि जमदग्नि के आश्रम के
 लोग मूर्छित हो गये और राजा बल से धेनु को लेकर घर जाने को तैयार हो गया।
 महर्षि ने वाणों का एक ऐसा जाल बिछाया कि सारी सेना बिध गई। राजा
 बार-बार मूर्छित हुआ परन्तु मुनि ने उसे नहीं मारा परन्तु उस दुष्टात्मा ने अपने

मग शत्रुओं की आत्माओं की परीक्षा कर फिर अन्न में शक्तिराज का उद-
 किया । उसने मुनि की आत्मा को पार कर अपने स्थान में हरि के पाम शक्त
 और मूर्धित होकर मुनि के वही प्राणायाम उड़ गये वह ब्रह्मांड में बड़े म-
 राजा ने ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर अपनी राजधानी की ओर प्राधान दिव
 कधर कपिला भी तात ! तात !! कदनी हुई गाँवोंक चली गई और वही भी
 को यह सारी घटना उसने कह सुनाई । कामधेनु को कृष्ण ने ब्रह्माजी को दि
 ब्रह्माजी ने भृगु को, और भृगु ने प्रमथ होकर पुनरुत्थे में जमदग्नि को दि
 इधर रेणुका ने पति को स्वर्गत मुनिर महर्षि जमदग्नि के शय के पाम जाकर ।
 गोद में लेकर विलाप किया और मूर्धित हो गई । रेणुका ने अपने पुत्र परशुर
 को याद किया । योग के प्रभाव से परशुराम ने पुनरुत्थे से आकर बहुत विज
 किया और सुन्दर पिता तैयार की । रेणुका ने राम को छाती से लगाया व
 कपोल तथा शिर में चुम्बन कर जोर-जोर से रुदन किया और परशुराम ।
 तपस्या करने के लिये कहा । परशुरामजी ने माता की आज्ञा को अनमनी व
 २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दूँगा यह प्रतिज्ञा की । इस पर भी
 आततायी लोगों को मारने की वेद आज्ञा देते हैं । इससे प्रसन्न होने
 माता से कहा ।

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम् । यो न हन्ति महामूढो रौरवं स ब्रजेऽयम्
 अमिदो गरदश्चैव रात्रपाणिर्धनापहा । क्षेत्रवारापहारी च पितृमन्धुर्विहितकः ॥१॥
 सततं मन्दकारी च मिन्दकः कटुवाचकः । एकादशैते पापिष्ठा बघार्हा वेदसम्मतः ॥२॥
 द्विजानां द्विषादानं स्थानान्निर्वासनं सति । वपनं ताडनञ्चैव धर्ममाहुर्मतेषां ॥३॥

रोते हुए परशुरामजी को रेणुका ने ज्ञान दिया और कर्मबन्धन के लि
 भगवद्भक्ति को ही एक मात्र उपाय बतलाया ।

रेणुका ने भृगु से कहा कि श्रुतधर्म का आज चतुर्थ दिवस है अतः तुम प्रकस्मात् ही पूर्व पुण्यों के प्रताप से उपस्थित हो गये हो अतः मेरे स्वामी के साथ तत्ती होने की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय दो । इसपर भृगुजी ने चतुर्थदिवस रवि के लिये शुद्ध कहा गया है न कि दैव और पितृकार्यों के लिये । इसलिये नर्पि के साथ सती होकर स्वर्गयात्रा करने की प्रार्थना की ।

स पुत्रो भक्तिदाता यः साचक्षीयाऽनुगच्छति ।

स यन्धुदानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत् ॥

सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेन् स राजा पालयेत्प्रजाः ।

स च स्वामी प्रियाधर्मे मतिं दातुमिहेश्वरः ॥

स गुरुधर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः । एते प्रशंसा वेदेषु पुराणेषु च निम्नितम् ॥

फिर भृगु से रेणुका ने स्वामी के साथ जाने योग्य और न जाने योग्य स्त्रियों के लिये पूछा । इसपर भृगु ने बालक पुत्रबाली, गर्भिणी, अश्रुतमती, रजस्वला, कुलटा, गलित व्याधियाली पतिसेवाहीन, कटु बोलनेवाली अभक्त स्त्री अयोग्य है तथा दूसरी सब पति को प्राप्त करती हैं । कृष्णभक्त पति के पीछे साध्वी उसे प्राप्त करती है । फिर रेणुका ने भृगुजी के धर्मयुक्त वचन अपने जीवन में पालने के लिये कहा और पति के साथ सती होकर ब्रह्मलोक को गई । तब फिर ब्रह्माजी के यहाँ जाकर परशुरामजी ने कार्तवीर्य की दुष्टता और पिताजीकी स्वर्गगति का वर्णन किया और अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई । ब्रह्माजी ने प्रकृतिगत जन्म-मरण के इस अनादि प्रवाह ॥ इस प्रतिज्ञा को बाधक कहकर शिवजी के पास जाकर स्नाप पूजने को कहा ।

२६

परशुरामस्य शिवगर्भाणिगमनम् नाम्नीयोगंश्च

४१६

परशुराम मद्राजी से आता तेहर शिवलोक को गये। यहाँ द्वार पर ही भगवान्क आहूतिवाले द्वारपालों को उन्होंने देगकर मनमें डरते हुए कहा कि मैं साथ कार्तवीर्य का सद्गुण बैट पिनाजी के द्वारा अग्नि व्यवहार करने पर भी उन्हें मारने के कारण हो गया है। इसपर मद्राजी ने मुझे भगवान् शंकरजी के दर्शनों के लिये कहा है मुझे शिवजी से मिलने का अवसर हो। शङ्करजी ने परशुरामजी को लिवालाने की आज्ञा दी और उनसे शङ्करजी की सभा में पार्व- गण, कार्तिकेय, गणेश, माता पार्वती आदि को देगकर विनम्र भाव से प्रणाम किया और भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति की। भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और परशुरामजी को आशीर्वाद प्रदान किया।

३०

शिवशिवस्तमीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम्

४६२

पार्वती एवं शङ्करजी के यहाँ जानेपर शङ्करजी ने परशुराम को आने का कारण पूछा। परशुराम ने पिता के असामयिक दारुण मृत्यु का आदि से अन्त तक वर्णन कर कार्तवीर्य की कृतव्रता की निन्दा की और २१ बार निःशत्रिय भूति को करने की अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा कहकर अपनी रक्षा करने और शरण में आनेकी बात कही। शङ्कर पार्वती दोनों ही इस विषय को सुनकर हक्के-बक्के रह गये और परशुराम को हर सम्भव उपाय से समझाया। परन्तु परशुराम ने मरने की कड़ी धमकी दी और अपने नितार का उपाय पूछा। इसपर शङ्करजी ने पार्वती और भद्रकाली को समझाकर उनके निर्देश से भृगु को त्रैलोक्यविजय नामक कवच, पूजाविद्या, मन्त्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या सिलाई। परशुराम ने दीर्घकालतक विद्यायें सीखकर, और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि कर शङ्कर को प्रणाम कर अपने स्थान की ओर गमन किया।



३१

तुष्टेन शिवेन स्वकवचादिदानम्

४६४

राक्षस ने प्रसन्न होकर जो कवच दिया उसके सम्बन्ध में नारदजी ने विस्तार से पूछा। इसपर श्रीनारायण ने त्रैलोक्यविजय कवच का अविकल विधान पाठ और सिद्धि विधान कहा। इसको सिद्ध करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। कवच की अद्वितीय फलश्रुति।

३२

परशुरामाय स्तोत्रमन्त्रपूजाप्रदानम्

४६७

परशुराम ने इसके बाद स्तोत्र, मन्त्र और पूजाविधान पूछा। इसपर राक्षसजी ने “ॐ श्री नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च” यह सोलह अक्षरों का मन्त्र बताया। इसकी पांच लाख संख्या जपने से सिद्धि होजाती है साथ ही इसके जप का दशांश हवन, उसका दशांश अभिषेक, उसका दशांश तर्पण और उसका दशांश मार्जन करना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण की राधा सहित सम्पूर्ण ईशगण ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के साथ पूजा की गई। गणेश, दिनेश, अग्नि, पार्वती, वैष्णु एवं शिव की पूजा कर सामवेदोक्त स्तोत्र बताया। इसको कहकर उन्होंने दुष्करराज में जाकर तपस्या करने को आदेश दिया। जिससे मन्त्रसिद्धि के साथ सन्पूर्ण धाब्धित मिलेगा।

३३

परशुरामस्य तपश्चरणम्

४७२

परशुराम पुष्कर तीर्थ में गये और भगवती दुर्गा एवं काली समेत राक्षसजी को प्रणाम कर इस मन्त्रराज को भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए प्रणायामादि से मन और शरीर को संयम कर सिद्ध किया। इसपर श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर प्रगट हुए। परशुराम ने तब २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करूं यह वर मांगा और श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति मांगी। 'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्ण

अन्तर्धान हो गये। उमी समय भगवान् को ज्योंही भक्तिपूर्वक प्रणाम कर रहे कि उनका ददिना अह्न फटकने लगा। महलमूचक मुखन आये और समय प्रतीक्षा कर कार्तवीर्य से युद्ध करनेकी यह तैयारी करने लगे। जाते समय महलकारी शुभ शकुन हुए। रात्रि में भी जयमुखक महलमय स्त्रियों के दर्शन होने से उन्हें अपनी विजय के लिये मनमें हृदयिरवाम हो गया।

३४

परशुरामस्य राजसर्भापे दूतप्रपणम्

४७४

नर्मदा के किनारे अपने भाई-बन्धुओं के साथ आकर परशुराम ने अपने दूत युद्ध के आह्वान के लिये और २१ वार बिना भत्रियों की वृष्ठी बना देने की प्रतिज्ञा को पताने के लिये राजा के पास भेजा। युद्ध का आमन्त्रण मानकर ज्योंही राजा तैयारी कर जाने लगा तो उसकी स्त्री ने रोका। इसपर कार्तवीर्य ने अपनी आशंकामूल भीति को रानी से कहकर अपने दुःस्वप्नों की बातें विस्तार से कही। इसपर उसकी स्त्री मनोरमा ने युद्ध न करने के लिये अपने पति कार्तवीर्य को समझाया। विप्र के साथ विरोध न कर सदा विनम्रभाव से हुकने में ही अपना सब फा हित है। सती स्त्रियों के लिये सौ पुर्यों से भी अधिक प्रिय पति ही वेदों में साक्षात् भगवान् हरि ने बतलाया है। कार्तवीर्य ने अपनी स्त्री को बार-बार न रोकने के लिये समझाया और काल की विचित्र गति कहकर अपनी मृत्यु जब परशुराम के हाथ में ही लिखी है तो फिर टालनेवाला कौन है। इस प्रकार सान्त्वना देकर अपनी अक्षौहिणी सेना को लेकर कार्तवीर्यार्जुन ने गले से गले मिलकर स्त्री से युद्ध के लिये विदा मांगी।

३५

राज्ञो युद्धयात्रा

४७५

राजा के जाने के पहले ही मनोरमा ने अपने शरीर को योगमाया से भेदन कह परमेश्वर में अपनेको मिला लिया। राजा ने उस सती

हो मृत देखकर बहुत विलाप किया परन्तु अब क्या होसकता था। इसपर प्राकाशवाणी हुई और उसने घोषणा की कि हे राजन् स्थिर रहो रोदन मत करो। दत्तात्रेय तुम्हारे गुरु हैं तुम ज्ञानी जनमें श्रेष्ठ हो यह संसार जल के छत्रुओं के समान है। वह मनोरमा कमलालय के यहां चली गई अब तुम भी यीश्व ही युद्ध में जाकर वैकुण्ठ का मार्ग ग्रहण करो। इसपर शोक को छोड़कर राजा अपनी प्राणप्यारी मनोरमा के लिये चन्दनकाष्ठ की चिता बनाई और अपने पुत्र उस का वाह संस्कार करवाया और और्ध्वदेहिक क्रिया के बाद मनोरमा के शरीर से ब्राह्मणादि को प्रचुर धनधान्य प्रदान किया। राजा दुःखी हृदय से भूमि में गया परन्तु मार्ग में उसे अशुभ राकुन होते चले गये। युद्धक्षेत्र में जाकर राजा ने भृगु एवं परशुराम को प्रणाम किया और राजा को भृगु ने स्वर्ग जाओ यह आशीर्वाद दिया। फिर रथ पर चढ़कर ब्राह्मणों को उसने युद्ध करने के पहले प्रचुर मात्रा में दान दिया। परशुराम ने कार्तवीर्य से उसके इस दुष्टाचरण का कारण पूछा। इसपर राजा ने ब्राह्मण, मुनि, योगी, भक्त चारों धर्मों की परिभाषा बताकर कामधेनु के प्रति आकर्षण ही राजसी राजा के लोभ का और महर्षि जमदग्नि की मृत्यु का कारण बना। इसके बाद युद्ध में कार्तवीर्य मारा गया और उससे शिव कवच लिया। शिवकवच का वर्णन।

३६

मुचन्द्रण नृपतिना सह रामस्पृद्धम् •

४०६

मत्स्यराज के बाद कार्तवीर्य ने नाना देशों के राजाओं को लड़ने के लिये भेजा परन्तु सभी परशुराम के सामने हतवीर्य हो गये। तीन रात तक राजाओं के साथ युद्ध किया और बारह अशोहिणी सेना को अपने फरशे से मार गिराया। अब सूर्यवंशी राजा मुचन्द्र इन राजाओं का मर देख अपने एक लाख राजाओं के साथ आया। उसे भी परशुराम ने सेना समेत फरशे से मौत के पाट उतारा। परन्तु मुचन्द्र के गले में कालीकवच होने से उसकी रक्षा साक्षात् भगवती काली

४१

भार्गवस्य कैलाशगमनम्

५०

कैलाशप्रवर्णनम्

५०

अथ अपनी प्रतिष्ठा पूरी कर परशुराम कैलाश पर भगवान् परम गुरु रि को नमस्कार करने गये वहाँ पर माता पार्वती, गणेश, और कार्तिकेय मग देखा सबसे घातघीत कर उर्वोही परशुराम जाने लगे तो गणेश ने उन्हें रो और भगवान् शंकर अभी निद्रित है उनके जागने पर उनसे आज्ञा लेकर मैं साथ ही चलूंगा इसलिये कुछ समय तक ठहरने की सलाह दी। इसपर परशुराम ने वृद्धरूपि समान युक्तियुक्त वचन कहा।

४२

गणेश्वरसमीपे रामस्य शिवशिवादिदर्शनप्रार्थनम्

तयोः कथोपकथनञ्च

५०१

ज्ञाननिरूपणम्

५०१

जिन भगवान् शंकर के प्रसाद से मैंने २१ बार वृद्धी को क्षत्रियों से दूत कर दिया और महावीर कार्तवीर्य तथा सुचन्द्र को मारा उनके दर्शन और माताजी के दर्शनों से कृतकृत्य हो मैं शीघ्र ही परपर जाऊँगा। जिन महादेवाधिदेव जगद्गुरु शंकरजी ने नानाविधा और दुर्लभ शास्त्रों को पढ़ा वह परम गुरु शंकरजी के दर्शन करने की इच्छा है। इसके उत्तर में श्रीगणेश ने कहा हे भ्रातः ! कुछ क्षण ठहरो। एकान्त में स्वीयुक्त पुरुष को न देखे। उनके रङ्ग में भङ्ग करनेवाला कालसूत्रनामक नरक में जबतक सूर्य, चन्द्रमा की शिवि है तबतक रहता है। विशेष रूप से माता, पिता, गुरु और राजा को मुखसङ्ग में बिलकुल न देखे। ऐसा करनेवाले का सात जन्म तक स्त्री विच्छेद होता है।

श्रोणीवक्षःस्थलं वपत्रं यः पश्यति परस्त्रियाः।

कामतोऽपि विमूढश्च सोऽप्यो भवति निश्चितम्॥

इसपर भृगुनन्दन परशुरामजी ने कहा हे गणेश निर्विकार बालक का अपने माता-पिता के पास जानेका कोई डर नहीं। ये पार्वती परमेश्वर केवल तुम्हारे ही नहीं सारे जगत् के माता-पिता हैं। अतः बालक से माता-पिता को क्या संकोच है ? फिर हँसकर परशुरामजी ने अन्तःपुर में जाने की इच्छा प्रकट की। अब गणेशजी भी कुछ शान्त हो गये। उन्होंने ने कहा कि अज्ञानी मनुष्य ज्ञानवान् से ही ज्ञान पाता है और पिता, भाई के मुख से भाग्यशाली ही ज्ञान सुनता है परन्तु मुक्त मन्दबुद्धि का भी हे भ्रातः निवेदन सुनो जो निर्गुण है, वह निर्लिप्त है। शक्तियों से वह संयुक्त नहीं है, परन्तु परमशक्तिस्वरूप आनन्दकन्द सच्चिदानन्द जब अपनी ज्योति से प्रकृति में अपना वीर्य छोड़ते हैं तो डिम्ब होता है, वह दिव्य लाख वर्ष तक रहकर परब्रह्म के निःश्वास से धायु फिर मुख, बिन्दु और उससे सहसा जल होजाता है और उसमें डिम्ब एक लाख वर्ष तक डिम्ब रहकर फिर सारे विश्वों का आधार महा विराट् उत्पन्न होता है। उस कृष्ण के गात्रलोम के समान संख्यावाले ब्रह्माण्ड हैं उन सब में प्रत्येक ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवगण हैं। अपने स्वाशकला से भगवान् हरि नानारूपधारी होते हैं। ज्ञात्री की पञ्चप्रकृतियां क्षीमात्र में सर्वव्याप्त हैं। राधा, यक्षा, सावित्री, दुर्गादेवी तथा सरस्वतीरूप में विराजमान हैं, क्या उनकी छद्मा कहीं चली जाती है ? इस प्रकार परमप्रभु श्रीकृष्ण के गुणानुवाद को कहकर श्री परशुराम से कुछ ठहरने को कहा।

४३

गमनव्याघाते रामस्य गणेशेन सह वाग्युद्धम्
गणेशं प्रति परशुनिक्षेपायोद्योगः

५०८

५०६

इसी बीच में परशुराम ने जाने की शीघ्रता की, परन्तु श्रीगणेश ने उन्हें रोका और दोनों का वाग्युद्ध हुआ। इसपर गणेश पर अपने फरसे से आक्रमण करने की पूरी तैयारी की परन्तु कार्तिकेय के बीच में पड़ने से कुछ सुलभ हो गई

श्रीमण्येसाय नमः ।

श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीतम् ।

ब्रह्मवैवर्त पुराणम् ।

तत्रादौ प्रथमं ब्रह्मखण्डं प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीगुणायनपाय नमः ।

तत्रादौ महतापरम् ।

गणेशायनेतापुरेतातेयाः सुराश्च सर्वे मनयो मुनिन्द्राः ॥
सप्तस्वर्गाधीनिज्जादिकाश्च भवन्ति देवाः सप्तमासि ते विभुम् ॥
गूढान् गूढगन्धान् तनुं दधानं विराजं विष्णुनि श्रीमद्विपरीतु महान्तमात्मम् ॥
एतरोन्मुखाः स्वचन्द्राणि सप्तत्रं सूर्यानि निपां समेव हृदि दग्धमात्रं भवन्ति ॥
ध्यायन्ते ध्यायन्निष्टाः सुरभक्तमनयो योगिनी योगवृद्धाः,
सन्तः स्वधेऽपि सन्तं कश्चित्तिज्जनिमिषं न पश्यन्ति तज्ज्वा ॥
ध्याये स्थेय्यामये ते त्रिगुणवर्णमते निषिञ्जते विराट्,
महोपायैकरोतोनिष्ठमहर्बिरह्यामहर्षं दधानम् ॥

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः । आविर्भवभूयः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
 प्रमृतपरमपूर्यं भगवतीकामधेनुं ध्रुतिगणवृत्तवत्सो व्यासदेवो दुदोह ॥
 प्रतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्तमेतत् पिबत पिबत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ भारते नैमिषारण्ये श्रवणं शौनकादयः ।

नित्यां नैमित्तिकीं कृत्वा क्रियामूयुः कुरासने ॥ १ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सौत्तिमागच्छन्तं यदृच्छया । प्रणतं सुविनीतं तं विलोप्य ददुरासनम् ॥
 तंसम्पूज्यातिथिभक्त्याशौनकोमुनिपुङ्गवः । यमच्छकुशलं शान्तं शान्तः पौराणिकं मुदा
 यत्तर्मायासविनिर्मुक्तं घसन्तं सुस्थिरासने । सञ्चितं सर्वतत्त्वज्ञं पुराणानां पुराणवित् ॥
 परं कृष्णकथोपेतं पुराणं ध्रुतिसुन्दरम् । मङ्गलं मङ्गलार्हञ्च सर्वदा मङ्गलालयम् ॥
 सर्वमङ्गलपीजञ्च सर्वदा मङ्गलप्रदम् । सर्वामङ्गलविघ्नञ्च सर्वसम्पत्कारं वरम् ॥ ६ ॥
 हरिभक्तिप्रदं शश्वत् सुखदं मोक्षदं मयेत् । तत्त्वज्ञानप्रदं शारपुत्रपीत्रविघ्ननम् ॥ ७ ॥
 यमच्छ सुविनीतञ्च विनीतो मुनिसंसदि । यथाकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते ॥
 शौनक उवाच ।

प्रस्थानं भवंतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम् । किमस्माकंपुण्यदिनंयत्स ! त्वद्दर्शनं व
 धयमेव बलीं मीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः । मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्थमिहगताः ॥
 भवान् सार्धुर्महामागः पुराणेषु पुराणवित् । सर्वेषु ॥ पुराणेषु निष्णातोऽतिरूपातिथिः
 धीरुणो निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती ।

तन् कथ्यतां महामाग ! पुराणं ज्ञानपरदनम् ॥ १२ ॥

गरीयसी या मोक्षाय धर्ममूलनिवृत्तनी । संसारसन्निवहनां निगङ्गच्छेदहन्तनी ॥
 भवदायाग्रिदधानांपीयूषवृष्टिर्विणी । सुखदानन्ददा सौते ! शश्वच्चेतसिजीविनाम् ॥
 रवादीं सर्वपीजञ्चपद्मप्रदानिकपणम् । तस्य सृष्ट्योन्मुक्त्यापिसृष्टेरूपीर्त्तनं वरम् ॥
 नाकारंवानिराकारंपद्मान्मस्वरूपकम् । विमाकारञ्च तद्ब्रह्मतत्त्वज्ञानं किञ्च भावनम् ॥

प्रथमोऽध्यायः] * अनुवक्त्रणिकाध्यायवर्णनम् *

... ध्यायन्ते वैष्णवाः किम्वा किम्वा सन्तश्च योगिनः ।

मत्तं प्रधानं केयं वा गूढं वेदे निरूपितम् ॥ १७ ॥

प्रवृत्तेश्च य आकाशे यत्र घटस्य ! निरूपितः । गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश निर्णयः ।
गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम् । वर्णनं त्रिवलोकस्य यत्रान्यत् स्वर्गवर्णनं ।
अंशपनाञ्चकलानाञ्चयत्रसीते ! निरूपणम् । के प्राकृताःकाप्रकृतिःकभास्मा प्रवृत्तेःप
निगूढं जन्मपेयांवादेवानांविषयोपिताम् । समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरिताम् ।

के पांशाः प्रवृत्तेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः ।

तासाञ्च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम् ॥ २२ ॥

दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणाञ्च वर्णनम् । यत्रैव राधिकाख्यातमत्यपूयं सुधोषम् ।
जीवकर्मविपाकञ्च मरकाणाञ्च वर्णनम् । कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्षः ।

देवाञ्च जीविनां यत् यत् स्थानं यत्र शुभाशुभम् ।

जीविनां कर्मणो यस्मात् यासु यासु च योनिषु ॥ २५ ॥

जीविनां कर्मणो यस्मात् यो यो रोगो भवेद्विद्व ।

मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषाञ्च तन्निरूपय ॥ २६ ॥

मत्तसातुलसीकालीगङ्गापृथ्वीवसुन्धरा । आसां यत्र शुभाख्यातमन्यासामपि यत्र ।
शालग्रामशिलानाञ्च दानानाञ्चनिरूपणम् । अपूर्वं यत्र वा सीते ! धर्माधर्मनिरूपणम् ।
लोभरस्य चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च । कथ्यस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णनम् ।
द्विपूर्वमुपाख्यानमश्रुतं परमाद्भुतम् । हृत्पा मन्त्रसि सत् सर्वे साम्प्रतं धत्तुमर्हसि ॥
त्र जन्मस्रमी विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते । परिपूर्णतमस्यापि हृत्पास्य परमात्मनः ।
तन्म कस्यगृहेलब्धपुण्येपुण्यवतो मुने । मुतं प्रसूता का धन्या मान्यापुण्यवतीसु ।
माधिभूय च तद्गृहे क्व गतः केन हेतुना । गत्वा किं कृतवान्स्तत्र कथं वा पुनरागतः ।

मायवतरणं केन प्रार्थितो मोक्षकार सः ।

विधाय किं वा सेतुञ्च गोलोकं गतवान् पुनः ॥ ३४ ॥

तीदमन्यदाख्यातं पुराणं धुतिदुर्लभम् । दुर्विषयेयं मुनीनाञ्च मनोनिर्मलकारणम् ॥

सामानाहु यन्मया पृष्टमपृष्टं वा शुभाशुभम् । सद्यो वीरगन्धजननं तन्मे ध्यात्वा

शिष्यपृष्टमपृष्टं वा ध्यात्वा न कुर्वते न यः ।

स सद्गुरुः सतां धेष्टो योग्यायोग्ये च यः समः ॥ ३७ ॥

सौतिरुवाच ।

सर्वं कुशलमस्माकं त्यत्पादपद्मदर्शनात् । सिद्धक्षेत्राद्गतोऽहं यामि नारायण

दृष्ट्वा विप्रसमृद्धञ्च नमस्कृतुमिहागतः । द्रष्टुञ्च नैमिषारण्यं पुण्यवक्ष्यामि भाते

वेधं विप्रं गुह्यं दृष्ट्वा न नमोऽयं यस्तु मंत्रमात् ।

स कालसूत्रं व्रजति यावच्छन्ददियाकरं ॥ ४० ॥

हरिर्ब्राह्मणरूपेण शम्भुः भ्रमति भारते । सुहृती प्रणमेत् पुण्यात् ब्राह्मणं हरिरूपि

भगवन् ! यत्तया पृष्टं ज्ञातं सर्वममीप्सितम् । सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्त

पुराणोऽपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम् । हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्त्वज्ञानविषयं नम् ॥

कामिनां कामदञ्चेदं मुमुक्षुणाञ्च मोक्षदम् । भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षसदृ

ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम् । ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत् परा

वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिक्षाश्च शौनक ।

स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः ब्रह्मात् ॥ ४६ ॥

सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिस्तङ्गेन योगिनः ।

वैष्णवा भक्तसङ्गेन ब्रह्मात् सद्गुयोगिनः पराः ॥ ४७ ॥

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम् । ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं

जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम् । तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्

प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम् । कीर्तयितुं तासां प्रभावश्च निरूपि

मुहूर्तानां दुष्टहर्तृणां यद् यत् स्थानं शुभाशुभम् ।

वर्णनं नरकाणाञ्च योगाणां मोक्षणं ततः ॥ ५१ ॥

ततो गणेशखण्डे च तज्ज्ञानं परिकीर्तितम् । अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम्

निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च कीर्तितञ्च ततः परम् । भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च
 भुयो भारवतरणं क्रीडाकौतुकमद्भुतम् । सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डे निरूपितम् ॥
 इदं ते कथितं विप्र ! पुराणप्रवरं वरम् । चतुःखण्डपरिमितं सर्वधर्मनिरूपितम् ॥ ५३ ॥
 सर्वेयामीप्सिततमं सर्वांशापूर्णकारणम् । ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ ५४ ॥
 सात्त्विकं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम् । विवृतं ब्रह्मकात्स्न्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥
 ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रयदन्ति पुराविदः । इदं पुराणसूत्रञ्च पुरा दत्तञ्च ब्रह्मणे ॥ ५६ ॥
 निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना । महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा ॥
 धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च । नारायणर्मिर्मगधान् प्रददौ नारदाय च ॥ ६१ ॥
 नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाद्वर्षिष्ठे । व्यासः पुराणसूत्रं सत् संव्यस्य विपुलं महत् ॥
 महं ददौ सिद्धक्षेत्रे पुण्यदे सुमनोहरम् । मयेदं कथितं ब्रह्मन् ! तत् समग्रं निशामय ॥
 अष्टादशसहस्रन्तु व्यासेनेदं पुराणकम् । पुराणकात्स्न्यं ध्वजने यत् फलं लभते नरः ।
 तत् फलं लभते नूतनध्यायध्वजनेन च ॥ ६४ ॥

इति धीब्रह्मवैवर्त्तं महापुराणे सौत्रिर्शौमिकस्तंवादे ब्रह्मखण्डेऽनुक्रमणिका
 नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

परब्रह्मनिरूपणम्

शौनकउवाच ।

किमपूर्वं धृतं सौते ! परमाद्भुतमीप्सितम् । सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ॥ १ ॥

सौनिरुवाच ।

पन्दुरुरोःपद्मप्रम्व्यासस्यामिततेजसः । हृदिदेवान् विजानन्स्थापयमान् पश्येत्सदात्मनः
 यत् धृतं ध्यातुं परब्रह्मेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् । भजानमथ तपोध्वंसि ज्ञानयन्प्रदीपकम् ॥

उयोतिःसमुद्गं प्रत्ये पुगर्सान् वेपलं छिज । त्र्यकोटिप्रमं नियममन्यविपरा
 म्येच्छामयम् ॥ विभोस्तत्र्योतिरुपायनं महन् ।

उयोतिरभ्यन्तरे श्लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥ ५ ॥

तेषामुपरि गोलोचं नियमीश्वरयद् छिज । त्रिकोटियोजनानामविस्तीर्णं मण्डला
 तेजःस्यमं सुमहद्वामभूमिमयं परम् । महत्तं योगिनिः स्यन्ने दृश्यं गम्यञ्च यैष्य
 योगेन धृतमीशेन द्यान्तरीक्षस्थितं परम् । आधिपत्याधिजगामृग्युशोकर्मातिविजितम्
 सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम् । त्रये कृष्णयुतं सृष्टौ पापगोपीभिरावृतम्
 तदधो दक्षिणे त्रये पञ्चायान्कोटियोजनान् ।

चैकुण्ठं शिवलोकञ्च तत्समं सुमनोहरम् ॥ १० ॥

कोटियोजनविस्तीर्णं चैकुण्ठं मण्डलावृति ।

त्रये शून्यञ्च सृष्टौ च तद्दर्शानारायणान्वितम् ॥ ११ ॥

चतुर्भुजैः पार्षदेश्च जरामृत्स्थ्यादिवर्जितम् । सत्येचशिवलोकञ्च कोटियोजनविस्तृत
 त्रये शून्यञ्च सृष्टौ च सपार्षदेशियान्वितम् । गोलोकाभ्यन्तरे उयोतिरर्तीयसुमनोहर
 परमाहादकं शश्वत् परमानन्दकारणम् । ध्यायन्ते योगिनः शाश्वद् योगेन ज्ञानयुक्त
 तद्देवानन्दजनकं निराकारं परात्परम् । तज्ज्योतिरन्तरे रूपमर्तीयसुमनोहरम् ॥ १५
 नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम् । शार्दीयपार्वणेन्दुशोभातिलोचनाननम् ॥ १६
 कोटिकन्दर्पलायणं लीलाधाम मनोरमम् । द्विभुजं मुखलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम्
 सद्रत्नभूषणीयेन भूषितं भक्तयत्सलम् । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥ १७
 धीयत्सवशःसंभ्राजत्कोस्तुभेन विराजितम् । सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटो गञ्जलम्
 रत्नसिंहासनस्थञ्च घनमालाचिभूषितम् । तमेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २०
 स्वेच्छामयं सर्वर्षीजं सर्वाधारं परात्परम् । किन्नोरवयसं शश्वद्गोपवेशविंशायकम्
 कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकातरम् । निरीहं निर्विकारञ्च परिपूर्णतमं विभुम्
 वासमण्डलमध्यस्थं शान्तं राशेश्वरं धम् । मङ्गल्यं मङ्गलार्हञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम्
 परमानन्दर्वाजञ्च सत्यमभ्रमव्ययम् । सर्वसिद्धीश्वरं सर्वसिद्धिरुपञ्च सिद्धिदम् ॥ २४

तृतीयोऽध्यायः]

* सृष्टिनिरूपणम् *

७

तेः परमीरानं निर्गुणं नित्यविग्रहम् । आद्यं पुर्यमध्यतं पुरुषतं पुरुषुतम् ॥ २५ ॥
सत्यं स्यतन्त्रमेकञ्च परमात्मस्वरूपकम् ।

ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत् परमायणम् ॥ २६ ॥

रूपं परं विभ्रद्वगवानेक एव सः । दिग्भिश्च नभसा सार्द्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह ॥
तिथी ग्रहवैषत्ते महापुराणे सौत्तिशीनकसंवादे ब्रह्मखण्डे पञ्चहानिरूपणं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

सृष्टिनिरूपणम्

सौत्तिख्याय ।

शून्यमयं विश्वं गोलोकञ्च भयङ्करम् । निर्जन्तु निर्जलं घोरं निर्वातं त्र्यंसावृतम्
लसमुद्रादिविहीनं विहृताहतम् । निर्मूर्तिकञ्च निर्घातु निःशस्यं निम्सुणं द्विज ॥
य मनसा सर्वमेक एवासहायवान् । स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः
यंभूयः सर्पादौ पुंसो दक्षिणपार्श्वतः । भवकारणरूपाश्च मूर्तिमन्त्रयौ शुणाः
मदानहङ्कारः पञ्चतन्मात्र एव ॥ ५ ॥
रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाभ्यवेतिसङ्काः ॥ ५ ॥
यंभूय तत्पश्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः । श्यामो युवा पीतयासा घनमालीचतुर्भुजः
कदापन्नधरः स्मेरमुत्थाम्युजः । रत्नभूषणभूषणः शङ्खो कौस्तुभभूषणः ॥ ७ ॥
सयशः धीवांसः धीनिधिः धीविभाषणः । शारदेन्दुप्रभायुष्मुष्मेन्दुसुमनोहरः ॥
यप्रभायुष्करूपलावण्यसुन्दरः । श्रीरुष्णपुरतः स्थित्वा तुण्य तं पुटाञ्जलिः ॥ ६ ॥
नारायण उवाच ।

यं परत्वं पराहं धरकारणम् । कंठं धारणानाञ्च कर्म तत्कर्मकारणम् ॥ १० ॥
एतत् शक्त्युत्पत्तिनाञ्च तापसम् । वन्दे नयनश्यामं स्यात्प्रागमं मनोहरम् ॥

सौतिरिष्याच ।

आविर्बभूव तत्पद्मात् कृष्णस्य नामिपद्भुजात् । महातपस्वी वृद्धश्च कम्पद्भुजकरो वरः
शुक्रयासाः शुक्रदन्तः शुक्रवेज्राप्तवतुमुंक्तः । योगीशः शिल्पिनामीशः सर्वेषां जनको शुक्रः
तपसां फलदाता च प्रदातासर्वसम्पदाम् । कृष्टा विधाता कर्त्ताचहर्त्ताचसर्वकर्मणाम् ॥
घाता वतुर्षां वेदानां घाता वेदप्रसूयति । शान्तः सरस्वतीकान्तः सुरीलस्त्वहमानिधिः
धीकृष्णपुस्तः स्थित्वा तुष्टाद्य तं पुष्टाङ्गलिः । पुलकाङ्गिससर्वाङ्गो भवितुम्रात्मकमधरः
प्रश्नोवाच ।

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षयम् । मन्वकमन्ययंभ्यकं गोपवैशविधायिनम् ॥ ३५ ॥
किशोरपदसंशान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् । नवीननीलदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥
वृन्दावननान्यर्णं शसमण्डलसंस्थितम् । रासेश्वरं रासदासं यत्सौहार्दसमुत्सुकम्
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने धरे । नारायणेशो संभाष्य स उवाच उदाहृया ॥

इति ब्रह्मवृत्तं स्तोत्रं प्रातस्तथाय यः पठेत् ।

पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥ ३६ ॥

मर्किमवति गोविन्दे पुत्रपौत्रपियर्दनी ।

अकीर्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्त्तिर्वन्दते विरम् ॥ ३७ ॥

इति ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मवृत्तं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरिष्याच ।

आविर्बभूव तत्पद्मात् रक्षसः परमात्मानकः । सस्मितः पुरुषः कञ्चित् शुद्धवर्णोज्जटाधरः
सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकारणम् । समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविषाद्वितः
धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत् । स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मकलोद्वहः ॥
धीकृष्णपुस्तः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद्भुवि । तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम्
कृष्णं चिण्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम् । गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षयमच्युतम् ॥
गोपेश्वरञ्च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विशुम् । गवामीशञ्च गोष्ठस्थंगोष्ठसपुच्छधारिणम्
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुल्लोचनम् । वन्दे नवधनश्यामं रासदासं मनोहरम् ॥

अनुष्ठानं समुत्तिष्ठन् रत्नसिंहासने धरे । प्रत्यविष्णुपदेनाम्नान् सम्प्राप्य न उवाच
 अनुविशति मामानि धर्मयज्ञोद्गतानि च । यः पठेत् प्रातस्तथा न सुखी सार्धं न
 मृत्युपात्रे हरेर्नाम तस्य सात्यं भवेद्दुःखम् । मयान्यन्ते हरेः स्मार्तं हरिदाम्भवेद्भुजम्
 नित्यं धर्मस्तं पठते नाथं न तदतिर्ममेव । धनुर्गंगम् तस्य शङ्खम् वज्रम् भवेत् ।
 तं हृत् । सर्वपापानि पदायन्ते भवेन च । भवामि मीढ नृणां चैतनेयमिदं गङ्गाः ॥३॥
 इति प्रत्ययैवर्तं धर्मवृत्तं धीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौमित्राय ।

आविर्बभूव बभ्रुवैका धर्मस्य धामपार्थिवः । मूर्तिमूर्तिमर्ता साक्षात् द्वितीरचमन्त्र्य
 आविर्बभूव तन्वध्यान् मुक्तः परमात्मनः । एका देवी शुद्ध्यणां वीणापुष्करपात्री
 कौटिल्यैर्ननुशोभाय साक्ष्यं पूज्योद्यता । यद्विशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणमूर्ति ॥१॥
 सस्मिता मुदती श्यामा सुन्दरीणाञ्जसुन्दरी । धेष्टाधुनीनां शास्त्राणां चिकुरा जननीया
 पागधिष्ठातृदेवी सा कर्षामासिष्टदेवता । शुद्धसत्यम्यरुपा च शान्तरुपा सारस्वती ॥२॥
 गोविन्दपुरतः स्थित्या जगौ प्रथमतः शुभम् । तन्नामगुणर्षीतिञ्च वीणया सा तनसं व
 एतानि यानि कर्माणि जन्मे जन्मे युगे युगे । तानिसर्वाणि हरिणा मुष्टाय संपुटाञ्जलि
 सरस्वत्युवाच ।

रासमण्डलमध्यस्थं रासोत्ससप्तमुत्सुखम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणमूर्तिम् ॥३॥
 रासेश्वरं रासकरं धरं रासेश्वरीश्वरम् । रासाधिष्ठातृदेवञ्च वन्दे रासविनोदितम् ॥४॥
 रासोत्ससप्तपरिधान्तं रासरासविहारिणम् । रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तमनोहरम्
 प्रणम्य तं तानीत्युक्त्वा ब्रह्मदत्ता सती । उवाच सा सकामा च रत्नसिंहासने धरे ॥

इति पाणीकृतं स्तोत्रं प्रातस्तथाय यः पठेत् ।

बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा ॥ ६४ ॥

इति ब्रह्मवैवर्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौमित्राय ।

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः ।

एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ६५ ॥

पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा ॥

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ ६६ ॥

सा हटेपुरतः स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम् । तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिमन्नात्मकान्धरा
महालक्ष्मीस्वाव ।

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं सनातनम् । सत्याधारं च सत्यहं सत्यमूलं नमाम्यहम् ॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्या सा खोपास सुवासने ।

ततकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशो दश ॥ ६७ ॥

भाविर्बभूव तत्पद्मात् बुद्धेश्च परमात्मनः । सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥

ततकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा । ईषदास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना ॥ ७१ ॥

लवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता । निद्रातृष्णा श्रुत्पिपासा दया धृद्धाक्षमादिकाः ॥

तासाञ्च सर्वशक्तीनामीशाधिष्ठातृदेवता । भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

भात्मनः शक्तिकया सा जगतां जननीपरा । त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गं धनुः खड्गशराणि च

शङ्खचक्रगदापद्मशमालां कमण्डलुम् । यज्ञमङ्कुराशशञ्च भुशुण्डीदण्डतौमरम् ॥ ७५ ॥

भारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा । पाञ्चन्यं वारुणं बाह्यं गान्धर्वं विभ्रती सती

कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा तुष्टाय तं मुदान्विता ॥ ७६ ॥

प्रकृतिस्वाव ।

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वरूपिणी । सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥

तस्या सृष्टा न स्यतन्ना त्यमेवजगतांपतिः । गतिश्च पाता नष्टा च संहर्ता च पुनर्धिधिः

परमानन्दरूपं त्वां धन्दे चानन्दपूर्वकम् । चक्षुर्निमेषकाले च द्रष्टव्यः पतनं भवेत् ॥ ७९ ॥

तस्यप्रभावमतुलं वर्णितुं कः क्षमो विमो ! । भूमङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं रज्जेत्तु यः

चराचरांश्च विश्वेषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान् । मद्विधाः कतिवादेवीः स्तुष्टुं शक्यन्तीलया

परिपूर्णतमं स्वीड्यं धन्दे चानन्दपूर्वकम् ।

महान् विराट् यत्कलांशो विभ्वासंख्याश्रयो विमो ! ॥

धन्दे चानन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ८२ ॥

यथा मनोनुममानाश्च अथर्विण्डुशिरादयः ।

येदा भास्व पाणी च यन्त्रे तं प्रहृतेः पद्मम् ॥ ८३ ॥

येदाश्च विदुषां धेनुः स्तोत्रं शक्ता न ममनः ।

निर्द्वयं कः इमः स्तोत्रं तं निर्दिष्टं ममाग्रहम् ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रघुसिंहासनेधरे । उवाच मन्वा धीरुष्णं तुष्टुष्टुस्तोत्रम्
इति दुर्गाष्टोत्रं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः । यः पठेदर्थनाशकाले स जयी सर्वतः ।

दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन ।

मपाध्वी यशसा भाति पात्यन्ते धीदरेः पुरम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीब्रह्मर्यषेणं महापुराणे ब्रह्मण्डे सौमित्राक्षरु संवादे

सृष्टिनिरूपणे दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सृष्टि निरूपणम्

सौतिर्याव ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य रसनाग्रतः । शुद्धस्फटिकसङ्कुशा देवी वैका मने
शुद्धवत्पदीधाना सर्वाङ्गद्वारभूषिता । विभ्रती जयमालाश्च सा सावित्री प्रकीर्ति
सा तुष्टाव पुर स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम् । पुटाञ्जलिपरा साध्वी भदिनब्राह्मण

सावित्र्युवाच ।

नमामि सर्पबीजं त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निर
श्रुत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने धरे । उवाच श्रीदर्शित्वा पुनरेव धुक्प्र
आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य परमात्मनः । मानसाद्य पुमानेकस्तत्काश्चनसन्नि
मनोमध्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम् । तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीसि

तस्य पुंसोवामपार्श्वात् कामस्य कामिनी वरा । यभूयार्तावललिता सर्वेषां मोदकारिणी
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम् । रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः
हरि स्तुत्या तथा सादंसउपासहरेः पुरः । रत्नसिंहासने रम्ये पञ्चपाणो धनुर्दरः ॥१०॥
मारणं स्तम्भनञ्चैव जृम्भनं शोषणन्तथा । उन्मादनं पञ्चपाणान् पञ्चपाणो विभर्ति सः
बाष्पांश्चिदेषे सयांश्च कामो याणपरीक्षया । सद्यः सर्वे सकामाश्च यभूयुरीद्वरेष्ट्या
रतिर्दृष्ट्वा प्रहृष्टाश्च रेतःपातो बभूव ह । तत्र तस्यो महायोगी पक्षेणाच्छाद्य लज्जया
पक्षं दृष्ट्वा समुत्तस्थो ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ।

काटितालप्रमाणश्च समिलश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥

कृष्णस्तद्वर्दनं दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया ।

निःश्वासवायुना सादं मुलविन्दुं समुद्रिन् ॥ १५ ॥

विभ्रौषं द्वाययामास मुखविन्दुजलं द्विज । तस्य किञ्चिज्जलकणं वह्निं शान्तं चकार ह ॥
ततः प्रभूति तेनाग्निस्तोयाग्निर्वापतां प्रजेत् । आविमूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेयता ॥
उत्तस्थौ तज्जलादेकः पुमान्सपरुणः स्मृतः । जलाधिष्ठातृदेवोऽसौ सर्वेषां दादसाम्पतिः ॥
आविर्बभूव कन्यैका तत्तद्देवामपार्श्वतः । सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

जलेशस्य वामपार्श्वात् कन्या चैका बभूव सा ।

वरुजानीति विख्याता परुणस्य प्रिया सती ॥ २० ॥

बभूव पवनः श्रीमान् विभोर्निःश्वासवायुना ।

स प्रमाणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः ॥ २१ ॥

तस्यवायोर्धामपार्श्वात् कन्याचैका बभूव ह । वायोः पत्नी सा च देवी वायवी परिकीर्तिता ॥
कृष्णस्य कामपाणेन रेतःपातो बभूव ह । जले तदेवनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते सङ्गम्यरूपं बभूव ह । ततो महान् विराट् जज्ञे विभ्रौषाधार एव सः ॥
यस्यैकलोमविचरे विश्वैकस्य व्यवस्थितिः । स्पृष्टात् स्पृष्टतमः सोऽपि महाप्राण्यस्ततः परः
एव योऽंशोऽपि कृष्णस्य परमात्मनः । महाविष्णुः स विज्ञेयः सर्वाधारः सनातनः ॥
महार्णवे शयानः स पद्मपत्रं यथा जले । यभूवतुस्तौ द्वौ दैतौ तस्य कर्णमलोद्भवौ ॥

तौ जलाद्यसमुत्थाय ब्रह्माण्डं हन्तुमुच्यते । नारायणश्च भगवान् जग्रते तौ जघन ॥

यमूष मेदिनी इत्युक्त्वा कार्त्तुस्येन मेदसा तयोः ।

तत्रैष सन्ति विभ्यानि सा च देवी वसुन्धरा ॥ २६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्थिपौनवत्संवादे सृष्टिनिर्मुक्तये

चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकारवर्णनम्

शौनक उवाच ।

गौगोपगोप्यो गोल्लोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः ।

मम सन्देहमेदार्यं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

सौतिरुवाच ।

सर्पादिसृष्टौ ताः पल्लवाः प्रलये प्रलये स्थिताः । सर्पादिसृष्टिकथनं यन्मया कथितं द्विज ।
सर्पादिसृष्टौ क्लृप्तौ च नारायणमहेश्वरी । प्रलये प्रलये व्यती स्थितौ तौ प्रकृतिस्वसा ।
सर्पादींश्च वक्ष्ये न्यचरितं कथितं द्विज । धाराहपात्रकल्पा द्वौ कथयिष्यामि श्रोष्यसि ।
ब्राह्मपागहपात्राश्च कल्पाश्च त्रिविधा मुने । यथायुगानि च त्वास्मिन्नेन कथितानि च ।
सम्यग्नेता ह्यपञ्च कल्पिष्येति चतुर्युगम् । त्रिशतैश्च पञ्चवधिकैर्युगैर्दिव्यं युगं स्मृतम् ।
मन्यन्तस्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । चतुर्दशानु मनुष्ये गतेषु ब्रह्मणो दिनम् ॥ ३ ॥
त्रिशतैश्च पञ्चवधिकैर्दिनैर्वर्षं च ब्रह्मणः । अष्टोत्तरं वर्षं शतं विवेगायुर्निरूपितम् ॥ ४ ॥
एतन्निमेषकालं स्तु कृष्णस्य परमाग्रतः । ब्रह्मणश्चानुषा कल्पः कालविद्विर्निरूपितः ॥
शुद्धकल्पा यतुगाम्ने संवत्सराश्च स्मृताः । सप्तकल्पान्तर्जार्वा च मार्गण्डेयस्य तन्मतम् ॥

प्रलयश्च दिनेनेव स कल्पः परिकीर्तितः । विधेस्व सप्तदिवसे मुनेययुर्निरूपितम् ॥११॥

प्राज्ञपाराहपाचाश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः । कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशाम्य

प्राज्ञे च मेदिनीं सृष्ट्या स्रष्टा सृष्टिं चकार सः ।

मधुकैटमयोश्चैव मेदसा चाश्रया प्रभोः ॥१२॥

पारादे तां समुद्रस्य लुप्तां मत्तां रसात्पलात् । विष्णोर्व्योमहरूपस्य द्वाप आच्छिद्यततः

पात्रेविष्णोर्नामिपमेस्रष्टा सृष्टिर्विनिर्ममे । त्रिलोकीं प्रस्रष्टो कालान्तित्यलोकत्रयं पिना ॥

एतन्नु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिर्निरूपणे । किञ्चिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

शौनक उवाच ।

अतः परन्तु गोलोके गोलोकेऽसौ महान् विभुः ।

पतान् सृष्ट्या किञ्चकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १३ ॥

शौनक उवाच ।

एतान् सृष्ट्या जगामासी सुरम्यं रासमण्डलम् । पतैः समेतो भगवानतीवकम्पनीयकम्

व्यापारकल्पवृक्षाणामध्वेऽतीवमनोहरम् । सुधिस्तीर्णञ्च सुसमं सुकिर्धमण्डलाकृतम् ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्थितम् । दधिलाम्राशुङ्गधान्यदूषांपर्णपरिप्लुतम् ॥१०॥

पटुस्त्रप्रग्वियुक्तनयचन्दनपल्लवैः । संयुक्तमस्मास्तम्भानां समूहैः परियेष्टितम् ॥ २१ ॥

सप्रज्ञसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः । रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधियासितैः ॥२२॥

पद्मापहर्भोगवस्तुसमूहपरियेष्टितैः । अतीवढलितकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥ २३ ॥

तत्र गत्या च तैः सार्द्धं समुपास्य जगत्पतिः ।

हृष्ट्या रासं विस्मितास्ते यमूयुर्मुनिसत्तम ! ॥ २४ ॥

गविर्वभूव कन्येका कृष्णस्य धामपार्श्वतः । धावित्या पुण्यमानीय द्वापवर्ष्यप्रभोः पदे

सि संभूय गोलोके सा दद्याव हरेः पुरः । तेन राधासमाख्याता पुरविद्विद्धिजोत्तम ॥

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ।

आविर्वभूव प्राणेश्वरः प्राणेश्वरोऽपि गरीयसी ॥ २७ ॥

पी वोद्गशर्पया नवयौवनसंयुता । वद्विमुद्रांशुकाद्याना सस्मिता सुमनोहरा ॥२८॥

मेमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी । बृहधितम्बभारार्ता पीनंश्रोणीपयोधरा ॥
 पुञ्जीधजितारक्तसुन्दरोष्ठाधरा वरा । मुकापंक्तिजिता चारुदन्तपंक्तिर्मनोहरा ॥३०॥
 त्पार्श्वकोटीन्दुशोभामुष्टशुभानना । चारुसीमन्तिनी चारुशरत्पङ्कजलोचना ॥३१॥
 न्द्रचञ्चुचिजितचारुनासा मनोहरा । स्थर्णगेण्डूकविजिते गण्डयुग्मे च विभ्रती ।
 ती चारुकर्णे च रत्नाभरणभूषिते । चन्दनागुरुकस्तूरीयुक्तकुङ्कुमविन्दुमिः ॥ ३२ ॥
 न्द्रविन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा । सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम् ॥ ३३ ॥
 न्द्रकवरीमारं सुन्दरं दधती सती । स्वरूपप्रमामुष्टं पादगुणमञ्जु विभ्रती ॥ ३४ ॥
 नं कुर्वती सा च हंसखञ्जनगञ्जनम् । सद्रत्नसारनिर्माणं धनमालां मनोहराम् ॥३५॥
 रं हीरकनिर्माणं रत्नकेयूरकङ्कणम् । सद्रत्नसारनिर्माणं पाशाकं मुमनोहरम् ॥ ३६ ॥
 मूल्यरत्ननिर्माणं कण्ठमञ्जीररञ्जितम् । नानाप्रकारचित्राढ्यं सुन्दरं परिविभ्रती ॥३७॥
 सा च सम्माप्य गोविन्दं रत्नसिंहासने वरे ।

उवाच सस्मिता भर्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥ ३८ ॥

म्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गनागणः । आचिर्यभूय रूपेण वेशेनैव च तत्समः ।
 श्चकोटिपरिमितः शश्वत्सुखिरयौवनः । संख्याविद्विधसंख्यातो गोलोके गोपिकानागणः ।
 णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणो मुने । आचिर्यभूय रूपेण वेशेनैव च तत्समः ।
 श्चकोटिपरिमितः कमनीयो मनोहरः । संख्याविद्विधसंख्यातो बहुयानां गणः शुभो ।
 णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाचिर्यभूय ह । नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुखिरयौवनः ।
 पलीपदाः सुरभ्यश्च घटसा नानाविधाः शुभाः ।

अतीवललिताः श्यामा बह्वश्च कामधेनवः ॥ ४१ ॥

ते गमैर्कं पलीपदं कोटिसिंहासनं बले । शिवाय प्रददौ कृष्णो बाहनाय मनोहरम् ॥ ४२ ॥
 एजाङ्घ्रिजलपद्मेभ्यो हंसपंक्तिर्मनोहरा । आचिर्यभूय सहसा स्त्रीपुंस्ससमन्विता ।
 ते गमैर्कं राजहंसं महाबलपराक्रमम् । बाहनाय ददौ कृष्णो ग्रहाणे च तपस्थिने ॥ ४३ ॥
 धामकर्णस्य पिपरात् कृष्णस्य परमात्मनः । गणः श्वेततुरङ्गनामापिर्मनूतो मनोहरः ।
 धमाय बाहनाय च । ददौ गोपाङ्गनेराश्च संग्रीत्या मुत्संसदि ।

रक्षकर्णस्य विरपात् पुंसश्च सुरसंसदि । आधिर्भूता सिंहपंक्तिर्महाबलपराक्रमा ॥५१॥
 तेषामेकं ददौ रुष्णः प्रहृत्यै परमादरम् । अमूल्यवामाल्यश्च धरं यदमिवाञ्छितम् ॥
 ५२॥ यो गेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम् । शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम् ॥
 रक्षयोजनमूढध्वं च प्रस्ये च शतयोजनम् । लक्षचक्रं घायुरहं लक्षश्रीङ्गागृहान्वितम् ॥
 द्वापार्दमोगवस्तुतत्प्रासं व्यसमन्वितम् । रत्नप्रदीपलक्षणां धाजिमिश्रं विराजितम् ॥
 'लाचित्रधिविश्रादय' सश्रवकलसोज्ज्वलम् । रत्नदर्पणभूषाढ्यं शोभितं श्वेतचामरैः ॥
 किशुवांशुकैश्चैर्मालाजालैर्धिभूषितम् । मणीन्द्रमुक्तामाणिष्पहीराहारविराजितम् ॥
 रत्नयर्जरत्नेन्द्रसारनिर्माणरुचिभिः । पद्मजानामसंलभैश्च सुन्दरैश्च सुशोभितम् ॥५८॥
 सौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम ! । एकं दत्त्वा राधिकायै ररक्ष शेषमात्मने ॥
 विधर्मूष रुष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम् । पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥६०॥
 आधिर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यकाः स्मृताः ।

यः पुमान् स कुबेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः ॥ ६१ ॥

एष कन्यका वीका कुबेरपामपाश्र्वतः । कुबेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा ॥६२॥
 प्रेतपिशाचाश्च कुष्माण्डप्रहराक्षताः । घेताला विहतास्तस्याधिर्भूता गुह्यदेशतः ॥६३॥
 चक्रगदापद्मधारिणो धनमालिनः । पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥ ६४ ॥
 पीडितः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः । आधिर्भूताः पार्श्वदाश्च रुष्णस्यमुत्ततो मुने ॥
 चतुर्भुजान् पार्श्वदाश्च ददौ नारायणाय च । गुह्यकान् गुह्यदेशाय भूतादीन् शङ्कराय च ॥
 विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा धराः । ध्यायन्तश्चरणाम्भोजं रुष्णस्य सन्ततं मुदा
 दास्ये नियुक्ता दासाश्चैवार्घ्यमादाय यज्ञतः ।

आधिर्भूता घैष्णवाश्च सर्वे रुष्णपरायणाः ॥ ६८ ॥

पुलकाङ्कितसर्पाङ्गाः साधुनेत्राः सगद्गदाः । आधिर्भूताः पादपद्मात् पादपद्मेकमानसाः ॥
 माविर्धमूढुः रुष्णस्य दक्षनेत्राद्वयङ्कुराः । त्रिशूलपट्टिशधरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥७०॥
 देगम्बरामहाकायाज्ज्वलद्गिशिखोपमाः । ते मेखामहामाणाः शिष्यतुल्यास्त्व तेजसा ॥
 रत्नसंहराकालाख्यामसितक्रोधमीषणाः । महामैखल्यत्वाङ्गावित्यष्टौ मेखयाः स्मृताः ।

विर्चयन् कृष्णस्य धामनेश्वर्यद्वयः । विशूल्यपट्टिशव्याघ्रचर्माम्भगदाघटः ॥ ६१ ॥

गम्यरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः । स ईशानो महामागो दिव्यपालनामपीश्वरः ॥ ६२ ॥

डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः ।

आविर्भूयुः कृष्णस्य नासिकाधिवरोदरात् ॥ ६५ ॥

तस्मिन्निदिसंख्याताः दिव्यमूर्तिवरा वराः । आविर्भूयुः सहसा दुंसस्वः कृष्टेभ्यः ॥ ६६ ॥

इति श्रीश्रद्धावैवर्त्ते महापुराणे सौत्तिके-शौनके-संवादे सृष्टि-निरूपणे प्रहसतप्ते

पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

सृष्टि प्रकरणम् ।

सौत्तिके-वाच ।

य कृष्णो महालक्ष्मीं सादत्तुसस्वर्णाम् । नारायणाय प्रददी रत्नेन्द्रमालया सह ॥ १ ॥

तस्मिन्निदिसंख्याताः दिव्यमूर्तिवरा वराः । आविर्भूयुः सहसा दुंसस्वः कृष्टेभ्यः ॥ २ ॥

अन्याश्च वा वा अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः ।

तस्मै तस्मै ददी कृष्णस्तां तां रूपयती सतीम् ॥ ३ ॥

तः शङ्खमादय सर्वेशो योगिनां गुरुम् । उवाच प्रियमित्येवं गृहाण सिंहपादिनीम् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा श्रद्धां नीललोहितः । उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशोऽब्रुवन्नु

श्रीमहेश्वर उवाच ।

अनुनादं न गृह्णामि प्रहृतिं प्राहृतो यया ।

स्वद्वन्द्वैकव्यवहृतां दास्यमार्गविरोधिनीम् ॥ ६ ॥

तत्पञ्चानसमाच्छ्रित्वा योगद्वारकपाटिकाम् ।

सुदीप्यात्सर्वतदपाञ्च सज्जामां कामपर्दनीम् ॥ ७ ॥

पस्याच्छन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम् ॥
 यदि बुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्भिर्भागसाराञ्च विपवेच्छाविचर्हिनीम्
 चामि गृहिणीनाथ ! परदेहि मदीप्सितम् । यस्य यद्वाञ्छितं तस्मै तद्ददाति सदीश्वर
 द्वकिविषये दास्ये लालसा धर्ततेऽनिशम् । तृतिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११॥
 प्रामं पञ्चवक्त्रेण गुणञ्च मङ्गलालयम् । स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन् गायन् भ्रमान्यहम्
 कल्पकोटिकोटिञ्च तद्रूपधनतत्पाम् । भोगेच्छाविषये नैव योगेतपसि मन्मथः ॥१२॥
 तसेवने पूजने च धन्द्वे नामकीर्तने । सदोहसितमेवाञ्च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१३॥
 रणं कीर्तनं नामगुणयोः ध्वनं जपः । त्वञ्चरूपध्यानं तत्पदासेवाभियन्दनम् ॥
 णिञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । परंपरेश ! देहीनं नवधा भक्तिलक्षणम् ॥१४॥
 पैलालोत्पलारूपसामीप्यसम्बलीनताम् । षडन्तिषड्विधां मुक्तिमुक्तामुक्तिविदो विमो
 गमा लघिमाप्राप्तिः प्राकाम्यं हिमा तथा । ईशित्यञ्च धरित्यञ्च सर्वकामावसायिता
 हदूरध्वनं परकायप्रवेशनम् । पाप्मसिद्धिः कल्पवृक्षत्वं सप्तं संहर्तुमीशता ॥ १५ ॥
 त्वञ्च सर्वाङ्गं सिद्धयोऽष्टादशस्मृताः । योगास्तपांसि सर्वाणि वदानि च व्रतानि च
 कीर्तिर्धनः सत्यं धर्माभ्यन्तरानि च । भ्रमणं सर्वतीर्थेषु ज्ञानमन्यसुरार्चनम् ॥
 चां दर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम् । ज्ञानं सर्वसमुदेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥ २२ ॥
 भ्रमत्यज्यैव ह्यत्यं पिप्पुह्यञ्च परंपदम् । अतोऽनिर्यदनीयानि वाञ्छनीयानि सत्तिवा
 सर्वाण्येतानि सर्वेश ! कथितानि च यानि च । तव भक्तिकलांशस्य कलानाहन्ति षोडशीम्
 शर्वस्य ध्वनं धृत्या कृष्णस्तं योगिनां गुरुम् । ग्रहस्योपाय ध्वनं सत्यं सर्वं मुक्तप्रदम्

धीमगवानुवाच ।

नत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदांवर । कल्पकोटिस्तं यावत् पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥
 परस्तपहिनां त्वञ्च सिद्धानां योगिनां तथा । ज्ञानिनां वैष्णवानाञ्च सुराणाञ्च सुरेश्वर
 मरत्यं लभ भव ! भव मृत्युञ्जयो महान् । सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वशक्त्यञ्च मदरात् ॥
 नसंख्यप्रह्वणां पातं लीलया घत्स ! द्रव्यसि । भव प्रभृति ज्ञानेन तेजसा ध्वनसा शिव

मायिर्भूतः कृतश्च भगवोऽप्युद्वेगः । विदुःशक्तिर्यथाज्ञानमभ्यस्यते ॥ १ ॥
 विद्यायां महाकायस्मिन्नेकज्ञानप्रदीपः । यः ईशानो महाभागो विदुःशक्तिर्यथा
 इति श्रुत्वा नैव योगिनः क्षीयन्तः सदाशक्तः ।
 मायिर्भूतः कृतश्च भगवोऽप्युद्वेगः ॥ ८९ ॥
 तुरागिरोऽपि भगवतः दिव्यमूर्तिवरा वराः । भगवोऽप्युद्वेगः सदाशक्तः पुनस्तु दृष्टो
 इति श्रीमद्भगवद्गीतायां महाभारतार्थे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रुतिप्रमाणे प्रथमोऽध्यायः ।

पष्ठोऽध्यायः ।

सृष्टि प्रकरणम् ।

सौतेर्याय ।

यः कृष्णो महाबलश्चैव सादृष्टसत्त्वस्यनीम् । नारायणाय प्रददी रत्नेन्द्रमालया सह ॥
 विविची प्रसूते प्रादान्मूर्तिं धर्माय सादृष्टम् । रति कामायरूपाद्यां बुधेराय मनोऽन्म
 अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः ।
 तस्मै तस्मै ददी कृष्णस्तां तां रूपयतीं सतीम् ॥ ३ ॥
 शङ्करमाहूय सर्वेशो योगिनां शुभम् । उवाच प्रियमित्येवं गृहाण सिंहपाहिनीम् ॥
 कृष्णाय वचः श्रुत्वा प्रहस्य नीललोहितः । उवाच भीरुः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमञ्जुलम्
 श्रीमहेश्वर उवाच ।

अधुनाहं न गृह्णामि प्रवृत्तिं प्राकृतो यथा ।
 त्वद्वक्तृवैकल्यवहितां दास्यमार्गचिरोधिनीम् ॥ ६ ॥
 तत्त्वज्ञानसमाच्छ्रितां योगद्वारकपाटिकाम् ।
 मुक्तीच्छास्यं सरूपाञ्च सकामां कामवर्द्धनीम् ॥ ७ ॥

तस्याच्छन्नरूपान्त्र महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम् ॥
 शश्वद्विमुद्दिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्विभागसाराञ्च विषयेच्छाविषदिनीम्
 नेच्छामि गृहिणीनाथ ! धरदेहि मदीस्तितम् । यस्य यद्वाञ्छितं तस्मै तद्ददाति सदीश्वरः
 त्वद्वक्तृविषये दास्ये लालसा धर्द्धतेऽनिशम् । तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११॥
 त्वन्नाम पञ्चवक्त्रेण गुणञ्च मङ्गलालयम् । स्वप्ने जागरणे शश्वद्वायन् गायन् भ्रमान्धम्
 प्राकल्पकोटिकोटिञ्च सद्रूपऽनततपम् । मोमेच्छाविषये नयं योगेतपसि मन्मथः ॥१३॥
 त्वत्सेवने पूजने च धन्दने नामकीर्तने । सदोहसितमेपाञ्च विरक्तो विरतिं लभेत् ॥१४॥
 जराणां कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः । त्वच्चारूपध्यानं स्वत्पादसेवाभियन्दनम् ॥
 समर्पणञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । धरं चरंश ! देहीवं नयथा भक्तिलक्षणम् ॥१६॥
 सार्पितालोत्पत्ताकल्पसाम्प्राप्यसाग्यलभताम् । वदन्ति वडविधां मुक्तिमुक्तामुक्तिविदो विमो
 गणिमा लघिमाप्राप्तिः प्राकाशममहिमा तथा । ईशित्यञ्च धशित्यञ्च सर्वकामायसायिता
 सर्वज्ञदूरधरणं परकायप्रवेशनम् । वाक् सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्तुमीशता ॥ १६ ॥
 अमरत्वञ्च सर्वाण्युं सिद्धयोऽष्टादशस्मृताः । योगास्तपांसि सर्वाविद्वानि च यतानि च
 यशः कीर्त्तिर्यशः सत्यं धर्माभ्यनयनानि च । धनं सर्वतीर्थेषु ज्ञानमन्यगुरार्चनम् ॥
 सुरार्चां दर्शनं सततद्वीपसतप्रदक्षिणम् । ज्ञानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥ २२ ॥
 प्रहस्यन्मैव खट्वं विष्णुत्थञ्च परंपदम् । अतोऽनिर्घटनीयानि धाञ्छनीयानि सत्त्वा
 सर्वाप्येतानि सर्वेश ! कथितानि च यामि च । त्वमभक्तिकलांशस्य कलानार्हन्ति षोडशीम्
 शर्वस्य धवनं ध्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरम् । प्रहस्योवाच धवनं सत्यं सर्वं सुखप्रदम्

श्रीभगवानुवाच ।

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदांवर । कल्पकोटिप्रातं यावत् पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥
 वरस्तपहिनां त्वञ्च सिद्धानां योगिनांतथा । ज्ञानिनां वैष्णवानाञ्च सुराणाञ्च सुरेश्वर
 अमरत्वं लभ भव ! भव मृत्युञ्जयो महान् । सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वभूतञ्च महद्गत् ॥
 सर्वसंख्यब्रह्मणां पातं लीलया घत्स ! द्रष्टव्यसि । अथ प्रभृति ज्ञानेन तेजसा धयसा शिव

येन यशसा महता मन्त्राभा भव । प्राणानमधिकस्त्यश न भवत्यतःपरो मम ॥
 ते सास्त्रिणे प्रेयसास्त्य महीशमनयः । यैर्यमिन्नुन्ति वापिप्राप्तानहीना विनेतनाः
 ते कात्यायनेन वाप्यश्वत्थिवाकरी । कल्पकोटिशतानि च ग्रहीष्यसि शिष्यां शिष्य

कोटिजन्मादितं पारं तस्य मस्यति निश्चितम् । इत्युक्त्यपूलिने कृष्णोदस्या कल्पतल्लम्

सत्त्वज्ञानं मृत्युजयमुवाच सिंहवाहिनीम् ॥ ५४ ॥

श्रीमगवानुवाच ।

अधुनातिष्ठतस्ते ! त्वंगोलोपे मम सज्जिघी । कालेमजिप्यसि शिवं शिषदञ्च शिषाय
तेजःसु सर्वदेष्टानामापिभूय परानने ! । संहृत्य दैत्यान् सर्वाञ्च भविता सर्वपूजिता
ततः कल्पयिष्ये च सत्यं सत्ययुगे सति । भविता दक्षकन्या त्वं सुराला शम्भुनेहि
ततः शरीरं संत्यज्य यज्ञे भक्तुञ्च निन्दया । मेनायां शैलभाय्यायां भवितापार्यतीति च
दिव्यं धर्षसहस्रञ्च विहरिष्यसि शम्भुना । पूर्णं ततः सर्वकालमभेदत्वं लभिष्यसि
काले सर्वेषु पित्र्येषु महापूजा च पूजिते । भविता प्रतिययं ॥ शारदीया सुरेश्वरि !
ग्रामेषु नगरेष्वेव पूजिता ग्रामदेयता । भवती भवितेत्येवं नामभेदेन धारणा ॥ ६१
मदाज्ञया शिवरुतैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि । पूजाविधिं विधास्यामि कथञ्च स्तोत्रसंयुतम्
भविष्यन्ति महान्तञ्च तत्रैव परिचायकाः । धर्मार्यकाममोक्षाणां सिद्धाञ्च फलभागिनः
पैत्यां मातर्मजिप्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते । तेषां यथाञ्च कीर्तिञ्च धर्मैश्वर्यञ्च वर्धते
इत्युक्त्वा प्रवृत्तिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम् । दत्त्वा सकामपीजञ्च मन्त्रराजमनुत्तमम्
चकारापिपिना ध्यानमर्चं भक्तानुकम्पया । श्रीमाया कामवीजान्त्वं ददौमन्त्रं दशाक्षरं
सृष्टीपयोगिकीर्तितसर्वसिद्धिञ्चकामदाम् । तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वज्ञानतत्त्वैर्ददौपि
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं दत्त्वा तस्मै जगत्पतिः । कथञ्च स्तोत्रसहितं शाङ्कराय तथा द्विज
दत्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च । कामाय चतुष्टये चैव कुबेराय च वायवे ॥
एवं कुबेरादिभ्यस्तु दत्त्वा मन्त्रादिकं परम् । विधिञ्चोवाच सृष्ट्यर्थं विधातुर्विधिरैष

श्रीमगवानुवाच ।

मदीयञ्च तपः कृत्वा दिव्यं धर्षसहस्रकम् । सृष्टिं कुरु महामाग विधे नानाविधां परा
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौमालो मनोरमाम् । जगन्मसादङ्गोपीभिर्गोपैर्वाचनं यन्म
इति धीः स्रज्वैचर्यं महापुराणे सौति-शीनक-संवादे ब्रह्मवैवर्ते सृष्टिनिर्माणं
नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

सृष्टिप्रकरणम् ।

सौमित्रव्यास ।

यथा तपः कृत्या सिद्धिं प्राप्य यथेप्सितान् । सप्तमे सृष्टिर्यामासां प्रगुर्विमनेदना
 जे पर्यन्तान् प्रयत्नान् सुगमोदरान् । शुद्धानसंख्यानं चिद्रूपः प्रधानाख्या निरामय
 रज्ज्वीय फैलासं मलयज्ज हिमालयम् । उदयज्ज तथाऽस्तज्ज सुषेत् नख्यम दगम् ॥
 दान् सप्तमे सप्त गदान् कतिपिधा नदीः । वृक्षाश्च प्राप्तेनगरं समुद्राख्या निरामय
 नेधुसुरासर्विधिधुग्धजलार्णवान् । संश्रयोजनमानेन हिङ्गुणाश्च परात्परम् ॥ ५ ॥
 द्वीपाश्च तद्भूमिमण्डले कमलारुने । उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमशीलाश्च सा ॥ ॥
 तेच विप्र द्वीपाख्यापुरा या विधिना कृता । जम्बुशाकतुन्दाक्षत्रौज्यप्रोधांश्चकृत
 रश्चसु श्रद्धेयु सप्तमेऽष्टौ पुरीः प्रभुः । अष्टानां लोकपालानां विहास्य मनारराः ॥
 ऽनन्तन्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः । ऊर्ध्वं स्वर्गाश्च सप्तैव नैवामाख्या निराम
 र्गैकज्ज भुवर्लोकं स्थल्लोकं सुमनोहरम् । जनलोकं तपोलोकं सत्यलोकज्ज शौनक
 ह्मसृष्टिर्नि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम् । तद्दुर्ध्वं ध्रुवलोकज्ज सप्तैव सुमनोहरम् ।
 तथः सप्तपातालान्निर्ममे जगदीश्वरः । स्वर्गातिरिक्तमोगाद्वानघोऽथः क्रयतो मुने
 जैलं पितलज्जैव सुतलज्ज तलतलम् । महातलज्ज पातालं रसातलमथस्ततः ॥ १३ ॥
 तद्वीपैः सप्तस्वर्गैः सप्तपातालसंश्रुतैः । एमिल्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकार्येव च ॥
 वज्रास्तंभ्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च । महाविष्णोश्च लोमाञ्चविवरेषु च शौनक !
 तिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सुरा नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मातय
 ह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः । न शङ्करो न धर्मश्च न च विष्णुश्च न सुर
 ङ्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथापि सः । विश्वाकाशदिशाञ्चैवसर्वतोऽप्यपि

कृत्रिमाणि च विभ्यानि विश्वस्यानि च यानि च ।
 अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नस्वरानि च ॥ १६ ॥
 वैकुण्ठः शिखलोकश्च गोलोकश्च तयोः परः । नित्यो विश्ववर्हिर्मूलधारमाकाशदिशीयया
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौत्तिशौनक-संवादे ब्रह्मसंख्ये सृष्टिनिरूपणं
 नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

सृष्टि प्रकरणम् ।

सौत्तिख्यात् ।

ब्रह्मा दिव्यं विनिर्माय सावित्र्यां परयोपिति ।

अकार धीर्ध्याधानश्च कामुकम् कामुको यथा ॥ १ ॥

सा दिव्यं शतर्षभं धृत्या गर्भं सुदुःसाहम् । सुप्रसूता च सुपुत्रे चतुर्पदान् मनोहरान् ॥

विविधान् शास्त्रसङ्गान् तर्कव्याकरणादिकान् ।

पटञ्जिरानुसंख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥ ३ ॥

पद्मगान् सुन्दरां त्यैव भानातालसमन्वितान् । सत्यव्रतादापरांश्च कलिञ्च कन्दम्विकम्

वरं मातृपुत्रञ्चैव तिष्ठिं वृणुष्वभाद्रिकम् । दिनं रात्रिञ्च धाराञ्च सगव्यामुपसमेव च

पुष्टिञ्च देवसेनाञ्च मेधाञ्च विजयां जयाम् । पङ्कजिकाञ्च योगाञ्च करणाञ्च तरोधनम्

देवसेनां महापृष्ठीं कार्त्तिकेयमिषां सतीम् । मातृकासु प्रधाना सा चालानामिष्टदेवता ॥

प्राज्ञं पात्रञ्च पापाहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम् । नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्विपरार्धञ्च प्राहृतम्

चतुर्विधञ्च प्रलयं कालञ्च मृत्युफण्यकाम् । सर्वान् ध्यायित्वा सर्ववसा प्रसूय स्तनं हृदी

मये धातुः पृष्ठरोमादूर्ध्वः समजायत । अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वोदुक्कूरस्तस्य कामिनी ॥

नामिदेशादित्यकर्मा बभूव शिल्पिनां गुरुः । महान्तो पशयोऽष्टौ च महाकरपरार्धमाह

मय घातुश्च मनस भाविर्मुताः कुमारेकाः । अथाप पञ्चरौपा उरुवमो प्रप्रेतस्त
सनकश्च सनन्दश्च पुनीषश्च सनातनः । सनरूपमाते मगधोऽयमु र्ही नामिनो पट ॥
भाविर्भूव गुणनः कुमाटः जनकवमः । दिग्गद्विषट धीमान् सप्रीतः सुन्दरो युगः
क्षत्रियाणो धीमत्स्यो नाम्ना स्वायम्भुवो मनुः ।

या ग्रीः सा शलक्या च रूपान्ता वसन्त्यावता ॥ १५ ॥

सप्रीकश्च मनुस्तप्यो घात्रानावपिालकः । स्वयं पिबता पुत्राश्च तानुवाच प्रहस्तिम्
सृष्टिं कर्तुं महामातो महामागयतान् द्वित्रः । जम्बुद्वीपे च नदी युज्यतान् कृष्णपरायणा
पुकोप हेतुना तेन पिबता जगती पतिः । कोवासकस्य च पिदेव्यन्तो प्रप्रेतस्ता
भाविर्मुता ललाटाश्च दश एकादश प्रमो । कालाग्निदशः संहर्ता तेवामेरुः प्रकीर्तित
सर्वेवामेर पिश्वानो स पयतामसः स्मृतः राजसब्ध स्वयं प्रजाशिवो विष्णुश्च सात्यकि
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रहनेः पट । परमानानिनो भूर्वा दक्षन्तितामसं प्रियम्
शुद्धसत्यस्यरूपश्च निर्मलं धेष्णवाग्रगीन् । शृगु नामानि दशानां वेदोक्तानि च यानि च
महान् महारत्ना मतिमान् मीपणश्च मरुट्टः । मातुष्यसद्योऽनुर्ध्ववेशः पिङ्गलाक्षोऽविशुवि
पुलस्त्यो दक्षकर्णाश्च पुच्छो यमकर्णतः । दक्षनेत्रात् पाऽग्निश्च यामनेत्रान् क्रतुः स्वयम्
मरणिर्वासिकाणश्च दक्षिराश्च मुखादुचिः । भृगुश्च यामपार्ष्णाश्च दक्षो दक्षिणपार्श्वत
छायायाः कर्मो जातो नामेः पञ्चशिखस्तथा । दक्षसत्त्वेव घोडुश्च कण्ठदेशात् नास
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरात्मा गलात् । वशिष्ठो रसनदेशात् प्रचेता मघरोष्ठ
हंसश्च यामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्गतेः स्वयम् । सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकाराहो सुतान्त्रि
पितुर्याक्यं समाकर्ण्य तमुवाच स नारदः ॥ २८ ॥

नारद उवाच ।

पूर्वमानयमज्येष्ठान् सनकादीन् पितामह । कारयित्वा दारयुक्तनस्मान् यद जगत्पते !
पित्रा ते तपसे युक्ताः संसाराय धयं कथम् । अहो हन्त ! प्रमोर्बुद्धिर्धिपरीताय कल्पते
कस्मै पुत्राय पीयूषात् परंदत्तं तपोऽधुना । कस्मै ददासि विषयं विषमञ्च विषाधिकम्

भतीधनिम्ने घोरे ॥ मयाधौ यः पतेन् पितः ।

निष्कृतेस्तस्य मास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च ॥ ३२ ॥

प्राणीजं सर्वेषां धीजश्च पुरुषोत्तमम् । सर्वदं भक्तिदं दास्यदं सत्यं कृपामयम् ॥

भरारणं भक्तपरत्नं स्वच्छमेव च । भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३४ ॥

राज्यं भक्तासाध्यं विहाय परमेधवरम् । मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारं

रुक्मसेवाञ्च पीयूषादधिकं प्रियाम् । कोमूढो विषमन्नाति विषमं विषयामिधा

नद्वयं तुच्छमसत्यं नाशकारणम् । यथा दीपशिखाग्रश्च कीटानां सुमनोहरम् ।

घडिशमांसश्च भस्वपाततुल्यप्रदम् । तथा विषयिणां तात विषयं मृत्युकारणम्

या नारदस्तत्र पिरराम विद्येः पुरः । तस्यो तातं नमस्तस्य उल्लसन्निशिषोपमः ॥

होपरतीतश्च शशाप सनयं द्विज । उवाच कम्पिताङ्गश्च रक्ताक्षः स्फुटिताधरः ॥

ब्रह्मोवाच ।

। शान्तोपस्ते मच्छपेन च नारद । श्रीहामृगस्त्यं साध्यश्च योपिरुग्धश्च हम्पट

यिनयुक्तानां कुरादयमां मनोहरः । पञ्चाग्रहकामिनीनाञ्च भर्ता च प्राणधत्तमः

प्राद्वेत्ता च महादृष्टारलोलुपः । नानाप्रकारभृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरुः ॥

पञ्चाग्रहश्च सुख्यश्च सुगणनः । धीजायादनसन्दर्भनेष्णातः स्थिरयौवनः ॥

पुरुषात् शान्तः सुशीलः सुन्दरः सुधीः । भविष्यसि न सन्देहो नामतश्चोपघर्षणः

न्यं लक्ष्म्युर्न विद्वद्य निजने धने । पुनर्मदीयशापेन दासीपुत्रश्च सत्वरः ॥ ४६ ॥

अपसंसर्गात् वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् । पुनःकृष्णप्रसादेन भविष्यसिममामजः

स्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम् । अधुना भव नरस्त्वं भक्तसुतो निपत ध्रुवम्

या सुतं धिप्र पिरराम जगत्पतिः । करोद् नारदस्तातमुवाच संपुटाञ्जलिः ॥

नारद उवाच ।

। र संहरास्ताततात जगद्गुरो । स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो कोधोऽयमप्यना

त्यजेत् पिद्वाद् पुत्रमुत्पन्नमामिनेम् । तपस्विनं सुतं शत्रुं कथमर्हसि वा

। मे ब्रह्म दास्य यासु च योनिषु । न जहातु हरेर्मच्छिमिव देहि मे धरा

पुत्रश्चेज्जगतां धानुर्नाग्नि भगिर्गदः पदे । शूकराश्चनिमित्तम् सांध्यमो भाते भुवि ।
 जातिमार्गं हरेर्भक्तियुक्तः शूकरयोनिषु । जनिर्भवेन न प्रारं मोक्षोक्तं यानि कर्मणः
 गोपित्वापरणात्मोक्तमभिजायिस्मीप्सिगम् । मित्रां वैष्णवादीनां स्मरंभूतान्मुन्य
 मीमांसिष्यामिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह । वायानां वापिदृष्ट्याः शूकराश्चान्नमन्त्रि
 मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुत्तमश्च भाते । केश कोटिपुर्णः पूर्णः सर्वं हरेर्हो ॥
 कोटिजगत्सर्जितात् पापान्मन्त्रप्राप्तमावृतः । मुक्ताः शुभ्रानि यत्पूर्वं कर्म निरूपयन्ति न
 पुत्रान् दारांश्चशिष्यांश्चसेवकान्पात्रध्यात्मन्या यो दर्शयन्मन्त्रमात्रं मन्त्रनिस्तम्भेन्युपम
 यो दर्शयत्यस्तमामं शिष्यैर्पिशासिगोगुरुः । कुर्मापाकेन्धितिस्रहरयापचन्द्रद्विवाकी

स किं गुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः ।

यः धीरुष्णपद्मभोजे भक्तिं दानुमनीरपट ॥ ६१ ॥

शतो निरपराधेन त्वयाऽहं धनुरानन । मया शतं त्वमुचितं व्रतं व्रतंयपि पण्डिताः ।
 कथयस्तोत्रपूजामिः सहितान् मनुर्मनोः । लुप्तं मयत्तु मच्छापात् प्रतिपिश्येदुनिश्चितम्
 मपूष्यो मय विश्येत् पापत् कथ्यत्रयं पितः । गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्यपूष्यो मविष्यति
 अधुना यज्ञमागस्ते मतादिष्यपि सुव्रत । पूजनं ध्यान्तु मामेकं पत्न्यो मय सुपदिमिः
 इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम पितुः पुटः । तन्वो समायां स विधिर्द्वयेन विदूषता
 उपवर्हणगन्धर्वा नारदस्तेन हेतुना । दासीपुत्रश्च शापेन पितुरेष च शौनक ॥ ६२ ॥
 ततः पुनर्नारदश्च स यभूय महानृपिः । धानं प्राप्य पितुः पश्चात् कथयिष्यामि वायुन
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मवर्ण्डे ब्रह्म-नारदशापोपक्रमे
 नाम अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिव्याच ।

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश स सृष्टये । सृष्टिं प्रचक्षुस्ते सर्वे विरेन्द्र नारदं विना ।
 मरीचैर्मनसो जातः कथ्यपश्च प्रजापतिः । अत्रैर्नवमलाचन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह ॥ १ ॥

प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च यभूय ह । पुलस्त्यमानसः पुत्रो मैत्रायण एव च ॥२७॥
मनोश्च शतरूपायां निम्बः कन्याः प्रजसिरे । भाकृतिर्वैद्यहृतिश्च प्रसृतिस्ताः पतिप्रताः ॥
प्रियप्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरी । उत्तानपादनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥ ५ ॥
भाकृति स्त्वये प्रदान् दत्ताय च प्रमृतिकाम् । देवहृति कर्त्तव्यं यन्पुत्रः फणिलः स्ययम्
प्रसृत्यां दक्षर्षाजेन पष्टिकन्याः प्रजसिरे । अष्टौ धर्माय प्रदर्शे रुद्रापेकादश स्मृताः ॥३१॥
प्रियायैकां सतीं प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान्
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्रनिशामय । शान्तिःपुष्टिर्भूतिस्तुष्टिःशमाश्रयामतिःस्मृतिः
प्राप्तेः पुत्रश्च सन्तोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत् । धृतेर्वैद्यश्च तुरेश्च हर्षदर्पां सुतो स्मृतौ
तमापुत्रः सहिष्णुश्च धडापुत्रश्च धार्मिकः । मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतैर्जातिस्मरोमहान्
पूर्वपत्न्याश्च मृत्याश्च नृणारायणावृषी । यभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक ॥ १२ ॥
नामानि रुद्रपत्नीनां सायधानं निबोध मे । कला कलायती काष्ठा कालिका कलहप्रिया
कन्दली भीषणा राक्षा प्रमोघा भूषणा शुक्ली । एतासां बहवः पुत्रा यभूवुः शिष्यपार्षदाः
सा सती स्वामिनिन्दायां ननु तत्याज यज्ञतः । पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे च शङ्करं पतिम्
कश्यपस्य प्रियाणाश्च नामानिष्टु धार्मिक । भदितिर्वैद्यमाना या वैत्यमाताविनिस्तथा
सर्पमाता तथा कद्रुर्विन्ता पक्षिसूतथा । मुरभिश्च गया माता महिषाणाश्च निश्चिन्ता
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूधतुष्पदाम् । वतुः प्रसूतानवानामन्याधैत्येयमादिकाः ।
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने ! । कथिताश्चादितेः पुत्रा महाघनपराक्रमा
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च ब्रह्मन् शक्यामजायत । आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मेण
शनैश्चरयोः पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा । उपेन्द्रार्थीर्यात् पृथ्व्यान्तु मङ्गलः समजायत
शौनक उवाच ।
कथं सीते स चोपेन्द्रान्मङ्गलः समजायत । वसुन्धरायां धलवान् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि
सौतिरुवाच ।
उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्त्ता च वसुन्धरा । विधाय सुन्दरविशमश्रुता प्रौढयौवना २३॥
मलये निर्जने रम्ये चाखन्दनपङ्क्तये । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २४ ॥

शीलंशयानश्चशान्तंसस्मितमीप्सितम् । सस्मिता तस्य तल्पेव सहस्रसमुपस्थिता
यां मालतीमालां ददौ तस्मै धरानना । सुगन्धि चन्दनं चारु फस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्
इस्तन्मनो हात्वा कामि मन्मथपीडितम् । नानाप्रकारशृङ्गारं चकार च तथा सह
सङ्गसंसका मूर्च्छां प्राप सती तदा । मृनेव निद्रितेवासौ पीडाघानं हृने हर्षे ॥
बेलगाञ्चसुश्रोणीसुखसम्मोगमूर्च्छिताम् । बृहन्मुक्तनितम्बाञ्चसस्मिताविपुलस्तीर्णम्
पक्षसि कृत्या तां तदोष्ठञ्च चुचुभ्य ह । विहाय तत्र रहसि जगाम पुण्योत्तमः ॥१॥
शी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने ! । साचपप्रच्छवृत्तान्तंकथयामासमूढताम
यं संवरणं कर्तुं सा याशक्ता च दुर्बला । प्रवालस्याफरेत्रस्तार्वाधन्यासंचकारस
प्रवालवर्णञ्च कुमारः समपद्यत । तेजसा सूर्यसदृशो नारायणस्तुतो महान् ॥३॥
न्यस्य प्रिया मेधा तस्य घण्टेश्वरो महान् । प्रणदातेति तेजस्वी विष्णुतुल्योभूया
रिहिरण्यकशिपुहिरण्याक्षौ महाबलौ । कन्या च सिंहिका विप्र सैहिकेयञ्च तत्सुत
मूर्तिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः । शूकरेणहिरण्याक्षोऽप्यनपत्योमृतोयुष
रण्यकशिपोः पुत्रः प्रहादो वैष्णवाग्रणीः । विरोचनञ्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रश्चपतिःस्यम् ।
तेः पुत्रो महायोगी ज्ञानी शङ्करकिङ्करः । द्वित्यंशञ्च कथितः कद्रुवंशो नियोध सै ।
नन्तं पातुकिञ्चैव कार्त्तिकञ्च घनञ्चयम् । फर्कोटकं तक्षकञ्च पद्ममैरारतं तथा ॥३॥
दापमञ्च शङ्खञ्च शङ्खं संपण्णन्तया । धृतराष्ट्रञ्च दुर्जयं दुर्जयं दुर्मूलं दलम् ॥४॥
हर्षं गोकामुत्तरभ्यं चिकुपादीञ्च शौनक । एतेषां प्रचराभ्यं याचत्यः सर्पजातयः ।
न्यका मनसा देवी कमलाशसमुद्रया । तपस्विनीनां प्रचरा महत्तेजस्विनी शुभा ।
पतिञ्च जलकायर्त्तारायणकन्दोद्वयः । आस्तीकस्तनयो यस्या विष्णुतुल्यञ्च तेजस
तेषां नाममात्रेण नास्ति नागमयं नृणाम् । कद्रुवंशोनिगदितो चिन्तायाञ्च ध्रुवताम् ।
नतेयारण्यो पुत्री विष्णुतुल्यपराग्रमी । कद्रुवभूयुः क्रमेणैव याचत्यः पक्षिजातयः ॥५॥
तापञ्च मदिगार्धेय सुरमिप्रचरा इमे । सर्वे ये सारमेयाञ्च यभूयुः सरमास्तुताः ॥४॥
तापञ्च दनोरंशा भग्यासामन्यज्जालयः । उक्तः कश्यपवंशञ्च बन्ध्याख्यातं नियोधः ।
नानि चन्द्रपर्त्तानां माधवानं निशामय । अरयपूर्यञ्च धरितं पुराणेषु पुरातनम् ॥४॥

भरिष्वनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणीतथा । मृगशीर्षा तथाद्राच पूज्यासाध्वीपुनर्वसुः
पुष्यमग्रेया मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी । हस्ताचित्रातथास्वाती विशाखाचानुराधिका
ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढा चैवोत्तरा स्मृता । ध्रुवणाच घनिष्ठाच तथारतमिषा शुभा
पूर्वोत्तरमाद्रपदी रेवत्यन्ता विधुमिषाः । तासां मध्ये च शुभगा रोहिणी रत्तिका परा
सन्तर्ग रसमादेन चकार शशिनं यराम् । रोहिण्युपगतश्चन्द्रो न यात्यन्याञ्च कामिनीम्
सर्पा भगिन्याः पितरं कथयामासुराहताः । सप्तर्षीवृत्तसन्तापं प्राणनाशकरं परम् ॥५४॥
दक्षः प्रहृषितश्चन्द्रं शराप मन्त्रपूर्वकम् । द्रुतं श्वशुष्यापेन यश्मप्रस्तो बभूव सः ॥५५॥
दिने दिने यश्मना स क्षीयमाणश्च दुःखितः । वपुष्यर्द्धं क्षयमाणे शङ्करं शरणं ययौ
द्वा चन्द्रं शङ्करश्च ह्येवितं शरणागतम् । करुणासागरस्तस्मै कृपया वामयं ददौ ॥५६॥
निर्मुक्तं यश्मना वृत्त्या स्वकपोले स्थलंददौ । भगणेनिर्मयोभूया सतस्थोऽश्विरोखरे
तंशिवः शोणरे वृत्त्या बभूव चन्द्रशेखरः । नास्ति देवेषु लोकेषु शिवात् शरणपञ्च ॥
दक्षकन्याः पतिं मुक्तं द्वा य वरुणः पुनः । आजमुः शरणं ततं दक्षं तेजस्थिनां वयम् ॥
उषेञ्च वरुणं तदा निहत्याह्वं पुनः पुनः । तमूचुः कातरं दीना दीननाथं पित्रेः सुतम् ॥

दक्षकन्या ऊचुः ।

स्यामिसीमाभ्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्माभिरेष च ।

सीमाभ्यमस्तु नस्तात ! गतः स्वामी गुणान्वितः ॥ ६२ ॥

स्थिते चक्षुषि हेतात ! दृष्टं ध्वान्तमयं जगत् । विज्ञातमधुना स्त्रीणां पतिरेव हि लोचनम्
पतिरेव गतः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च सम्पदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवो
परिर्नारायणः स्त्रीणां प्रथमधर्मः सनातनः । सर्वकर्म कृपातासां स्यामिनां विमुखाध्याः
ज्ञानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा । सर्वदानानि पुण्यानि प्रदानि नियमानि च ॥
देवार्चनं चानशनं सर्वाणिव तपांसेव । स्वामिनः पादसेवायां कलांनार्हान्त पोद्गशीम्
सर्वेषां बान्धवानाञ्च त्रियपुत्रश्च योपिताम् । सपथ स्वामिनोऽप्राश्च शतपुत्रात् परःपतिः
असद्वंशदृष्टा या सा द्वेष्टि स्वामिनं सदा । यस्या मन्त्रहलं दुष्टं स्मृतं परपूरुषे ॥
पतितं रोहिणं दुरं निर्धनं गुणहीनकम् । युधानंचैव वृद्धं वा भजेत्तं न रक्षेत् रुती ॥

सर्वं त्यक्तुं समर्थाऽहं न स्वधर्मं जगन्प्रभो ! । धर्म्यधर्मविहीनश्च सत्यं सर्वं परिहृत्य ॥
 यद्य धर्मं सदा रक्षेत् धर्मं सर्वं परिहृत्य । धर्मं वेदेत्यत्र त्वय्य किं मां प्रीतिं स्वमायया ॥
 सर्वं सर्वं रक्षां रक्षत्य हन्ताय परिणमते । त्वयि मन्त्रेण ददाय स्वगतस्य पाप्माद्वधं मये ॥
 शत्रुहारायः शुभं यथा यथा नृणां सर्वमाययेत् । यन्त्रं यन्त्राद्विनिष्कृत्य दत्ताय प्रददीदृशः ॥
 प्रत्यक्षं दत्तं यद्य निर्व्याधिः सितशेखरे । निर्व्याह कं यन्त्रं पिप्पुदन्तं प्रज्ञापयि ॥
 यत्प्रत्यक्षं तं ह ॥ दत्तस्तुष्टं य माधयन् । पक्षे पूर्णं शर्तं पक्षे तं यकार दृष्टिस्ययम् ॥
 कृष्णसोऽयं यत् दत्तः । जगाम हरस्तुष्टं हतः । दत्तं यन्त्रं गृहीत्यान कन्याम्यः प्रददीपुः ॥
 यन्त्रालापयिष्ये विजहार दिवा नित्यम् । सर्वं दत्ताताः सर्वास्तन्मभूयैव कर्मिणः ॥
 शपेत् कर्मिणं सर्वं किञ्चित् कृष्टिर्धर्मं मुने ! । धृत्य गुरुकर्मणं पुष्करे मुनिं सर्वदि ॥
 इति धीमत्प्रथमं महापुण्ये सौमित्रानकर्मपादे प्रथमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

धनेशजन्मकथनम् ।

सौमित्रपादः ।

धृतिः पुत्राय दत्तः पुत्राय जामिनाय । जामिनाय विद्यायाः कर्मणि जगत्पुत्रः ॥
 यः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः । दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः ॥ २ ॥
 दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः । दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः ॥ ३ ॥
 दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः । दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः ॥ ४ ॥

सौमित्रः दत्तः ।

सौमित्रः ! पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः । दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः ॥ ५ ॥
 दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः । दत्तः पुत्राय दत्तः सौमित्रं जगत्पुत्रः ॥ ६ ॥

बृहन्निम्बमायतां मुनिमानसमोहिनीम् । अतिवैगर्क्याक्षेणलोलाकामातिपीडिताम् ॥
 'सख्योर्णी कठिनां दृष्ट्वा पायूनां शुक्लसंहवाम् । अतीवज्वरेस्तनयुगं कठिनां तुलाहृतम् ।
 'सस्मितं चारुमन्त्रं शरच्चन्द्रचिन्दिदम् । पक्वमिषं पलाशकमोष्ठाघरं मनोहरम् ॥ २६ ॥

सिन्दूरविन्दुसंयुक्तं कस्तूरीविन्दुभिः सह ।

कपालमुज्ज्वलं शश्वत् कपोलं मणिकुण्डलम् ॥ ३० ॥

तमुवाचमियां शान्तां कामशास्त्रप्रियाख्यः । कामाग्निषड्भोगो गिबन्धुति सुन्दरम् ॥

विश्वकर्मापाद्य ।

अपि क यासि ललिते भगवन्नायिके प्रिये । भगवन्नायिकापहृत्य स्थितामघ क्षणं शुभे ॥
 त्वयैवाप्येवमहृत्वा भगवन्नायिकां जगतीतलम् । स्वभगवन्नायिकापहृत्योऽहंता न दृष्टावताशने ॥
 त्वयासीति कामलाकं धृत्या भगवन्नायिकापहृत्योऽहंता । भगवन्नायिकापहृत्योऽहंता न दृष्टावताशने ॥
 'महो संरक्षतीतीदं पुष्पोद्याने मनोहरे । सुगन्धिप्रमन्दीतेन पायुनां सुरभीरुते ॥ ३५ ॥
 'यकान्तेभ्यां सप्तयूनाकान्तेन शोभने । विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणयान् भवेत् ॥
 'स्थिरयोषनसंयुक्तं स्वमेव चिरजीविनी । कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीषु च सुन्दरी
 'सूतपुत्रपदरेण्यं मृत्युकन्या जितयामया । कुयेरभयं हृत्वा चर्नलघं कुयेरतः ॥ ३८ ॥
 'रत्नमाला च वरुणाद्यायोः क्षीरजभूषम् । बह्विशुद्धं यस्त्रयुगं पङ्कः प्रातश्चयेतनात् ॥ ३९ ॥
 'कामशास्त्रं कामदेवाद्योपिद्रव्यजनकारणम् । भृङ्गारशिल्पं यत्किञ्चित् लब्धं चन्द्राद्यवुल्लम्
 'रत्नमाला यस्त्रयुगं सर्वाणिभूषणानि च । तुभ्यं दातुं हृदि हृतं प्रातस्तत्क्षण एव च ॥
 'गृहेतान्येवं सस्याप्यवागतोऽन्येवने भवे । विरामे सुखसम्भोगे तुभ्यं दास्यामि सास्त्रम्
 'कामुकस्य यद्यः धृत्या घृताची सस्मितामुने ! । ददौ प्रत्युत्तरं प्रीतिं नीतिपुक्तं मनोहरम् ॥

घृताव्युपाय ।

त्वया यदुक्तं मद्रन्तत् स्वीकारोऽप्यधुनाऽपि च ।

किन्तु सामयिकं वाक्यं प्रविष्यामि स्मरातुर ॥ ४४ ॥

कामदेवालयं यामि हृतं घृताञ्च स्तुते । यद्दिने यत्कृते यामो भयतिपाञ्च योषितः ॥

भयाद् कामपत्नी च गुरुयत्नी तदाधुना । त्वयोक्तमधुनेदञ्च पठितं कामदेवतः ॥ ४६ ॥

विद्यादाता मन्त्रदाता गुह्यज्ञगुणैः पितुः । मातुः संहस्रगुणतो मांस्यन्यस्तत्सर्मागु-
 गुरोः शतगुणैः पूज्या गुह्यतनी धृतौ धृता । पितुः शतगुणैः पूज्या यथा माता विनश्य
 मात्रा सहितशृङ्गारे पापानद्दोषः धृतौ धृतः । ततो संस्रगुणो दोषो गुह्यतनीसमागमे
 मातरित्येष शब्देन याञ्चसम्मापते तत् । सा मातृतुल्या सत्येन धर्मः साक्षी सतामपि ।
 त्वया सहितशृङ्गारे फालसूत्रं प्रयाति सः । तत्र घोरे पतत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
 माता सहितशृङ्गारे-ततो-दोषश्चतुर्गुणः । सार्द्धञ्च गुह्यतन्या च संहस्रगुणैः एव च ।
 कुम्भीपाके पतत्येष यावद् ये ब्रह्मजो ययः । प्रायश्चित्तं पापिनश्च तस्य नैव धृतौ धृतम्

॥ ५७ ॥ अक्राकारं कुलालस्यः तीक्ष्णघातञ्च ब्रह्मपत् । सा मातृतुल्या सतामपि
 ॥ ५८ ॥ पसामूत्रपुरीषञ्च परिपूर्णं सुदुस्तम् ॥ ५८ ॥
 शूलयत्तु मिसंयुक्तं तत्तमग्निसमद्रवम् । पापिनां संहिहातञ्च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ।
 यायानद्दोषो हि पुंसाञ्च गुह्यतनीसमागमे । तावाञ्च गुह्यतन्याश्च तत्रैव कामुकी यदि ।
 अथ यास्यामि कामस्य मन्दिरं तस्य कामिनी । येशंहृद्यागमिष्यामि तत्तत्तुष्टौ दिवात्तैः
 घृताचीयचर्नधुत्वा विश्वकर्मादरोपताम् । शरापशूद्रयोनिञ्च ब्रजेति जगतीतले ॥ ५९ ॥
 घृताची तद्वचः धुत्वा तं शराप सुदारुणम् । छम जन्म भवे त्वञ्च स्वर्गसिंष्टोमयेति च
 घृताचीत्येषमुक्त्या च जगाम काममन्दिरम् । कामेन सुरतंहृत्वा कथयामास तां कथम्
 सा मातृतु च कामोक्त्या गोपस्यमन्दनस्य च । पत्नीप्रयागे नगरे स्थिताम जन्मशौनवम्
 जानिस्मरा तत्रागता बभूव च तपस्विनी । वरं न वन्दे धर्मिण्या तपस्यायामनो ह्यपी ।
 नृपञ्चकारं तपसा तप्तकाञ्चनसन्निभाम् । दिव्यञ्च शतधरं सां गंगातीरे मनोमये ॥ ६० ॥
 ॥ ६१ ॥ धीर्येण मुखारोह नव पुत्रान् प्रसूयं सा । ॥ ६१ ॥

पुनः म्यलोकं गत्वा च सा घृताची बभूव ह ॥ ६४ ॥

शौनक उवाच । ॥ ६५ ॥

कथं पीप्यंसादधाम मुखारोस्तपस्विनी । पुत्रान्नवप्रसूता च कुत्र या कलिया दिवात् ।

सीनिरुवाच । ॥ ६६ ॥

विश्वकर्मां नु तच्छरणं समाकर्ण्य वयान्वितः । जगाम ब्रह्मणः स्थानं शोकेन हतनेत्रः ।

॥ ११ ॥ ब्रह्मा स्तुत्या च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम् ।

॥ १२ ॥ ब्रह्म जन्म ब्राह्मण्यां पृथिव्यामाजया विधेः ॥ १३ ॥

स एव ब्राह्मणो भूत्या भुवि कार्यमूच ह । नृपाणाञ्च गृहस्थानां नानाशिल्पं चकार ॥

शिल्पञ्च कारयामास सर्वांश्च सर्वतः सदा । विचित्रं विविधं शिल्पमाध्यं सुमनोहरम्

एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च । ज्ञातुं जगाम गङ्गाञ्च ददर्श तत्र कामिनीम्

धृताचीं नवरूपाञ्च सुवर्ति तां तपस्विनीम् । जातिस्मरां तां युयुधे स च जातिस्मरो द्विज

गङ्गा सकामः सहसा यभूय हतचेतनः । उवाच मधुरं शान्तः शान्तां ताञ्च तपस्विनीम्

ब्रह्मण उवाच ।

महोऽधुना त्वमत्रैव धृताचि सुमनोहरे । मा मां स्मरसि रम्भोर विश्वकर्माऽहमेव च

शापमोक्षं करिष्यमि भज मां तव सुन्दरि । त्यक्तृन्तेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः

द्विजस्य ध्वनं धृत्या धृताची नवरूपिणी । उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं वचः ॥

गोपिकोपाव ।

सद्दिने कामकान्ताहमधुना च तपस्विनी । कथं दास्यामि शृङ्गारं गङ्गातीरे च भारते ॥

विश्वकर्मान्निद्रं पुण्यं कर्मक्षेत्रञ्च भारतम् । अत्र यत् क्रियते कर्मभोगोऽन्यत्र शुभाशुभम्

धर्मी मोक्षहते जन्म संलभ्य तपसः फलात् । निषदः कुल्ले कर्म मोहितो विष्णुमायया

माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत् ।

तस्मै ददाति धीकृष्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम् ॥ ७६ ॥

यो मुहो विषयासक्तो लब्धजन्मा च भारते । विहाय कृष्णं सर्वेशं समुन्धो विष्णुमायया

सर्वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा । धृताची सुरवेश्याहमधुना गोपिकन्यका ॥

तपः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे । नात्रस्थलञ्च क्रीडायाः स्थिरस्य मय कामुक

मन्यत्र कृतपापञ्च गङ्गायाञ्च चिन्तयति । गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत् ॥

तनु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति । यत्रैव कामतः कृत्वा निवृत्तश्च भवेत् पुनः ॥

धृताचीवचनं धृत्या विश्वकर्मा निषकृतिः । जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम्

रम्पायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे । पुष्पचन्दनवातेन सन्ततं सुरभीहते ॥ ८६ ॥

चकार सुखसम्भोगं तथा सह सुनिर्मेत । पूर्णं द्वादशवर्षं पुत्रं न दद्यात् ।
 यमूय गर्भः कामिन्यां परिपूर्णः सुदुर्वहः । सा सुपां च तत्रैव पुत्रान्नय मनोहरम् ।
 हस्तशिखितशिल्पांश्च शानयुक्तांश्च शौनक । पूर्वप्राक्तनतोयुग्यान् यलयुक्तांश्च विचक्षणान्
 मालाकारकर्मकसंश्रद्धाकारकुचिन्दकान् । कुम्भकारसूत्रधारस्वर्णचित्रकारांस्तथा ॥ १० ॥

तौ च तेभ्यो धरं दत्त्वा तान् संस्थाप्य महीतले ।

मानयीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥ ११ ॥

स्वर्णकारः स्वर्णवीर्यात् ब्राह्मणानां द्विजोत्तम । यमूय पतितः सद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा
 सूत्रधारो द्विजानान्तु शापेन पतितो भुवि । शीघ्रञ्च यज्ञकाष्ठानि न ददी तेन हेतुना ॥
 व्यतिक्रमेण चित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा । पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानाञ्च कोपतः ॥
 कश्चिद्वृषणिविशेषश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः । स्वर्णवीर्याद्विदोषेण पतितो ब्रह्मशापतः
 कुलटायाञ्च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्यतः । यमूयादालिकाकारः पतितो जारदोपतः ॥
 भट्टालिकाकारपीडात् कुम्भकारस्य योपिति । यमूय कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः
 कुम्भकारस्य पीजेन सद्यः कोटकयोपिति । यमूय तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि ॥
 सद्यः क्षत्रियपीजेन राजपुत्रस्य योपिति । यमूय तीवरश्चैव पतितो जारदोपतः ॥ १२ ॥
 तीवरस्य तु पीजेन तैलकारस्य योपिति । यमूय पतितो दस्युर्लटश्च परिकीर्तितः ॥
 देहन्तीपरकन्यायां जनयामास यमरात् । ब्रह्मन्त्रं मातारश्चमङ्गं कोलं फलद्वयम् ॥
 ब्राह्मण्यां शूद्रपीर्येण पतितोजारदोपतः । सद्यो यमूय चण्डालः सर्वस्मादधमोऽप्युक्ति
 तीवरेण च चाण्डाल्यां चर्मकारो यमूय ह । चर्मकाट्यांश्च चण्डालान्मांसघ्नो दोषदुः ॥

मांसच्छेदां तीवरेण कौं चश्च परिकीर्तितः ।

कौं चक्षियान्तु कौं चक्षान् कर्तारः परिकीर्तितः ॥ १०४ ॥

सद्यश्चण्डालकन्यायां देहपीर्येण शौनक । यमूयतुम्बो ह्यौ पुत्रौ दुष्टौ दृष्टिमी तथा
 क्रमेण दृष्टिकन्यायां सद्यश्चण्डालपीर्यतः । यमूयः पञ्चपुत्राश्च दुष्टा यमराश्च ते ॥
 देहन्तीपरकन्यायां गङ्गातीरे च शौनक । यमूय सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्तितः
 गङ्गापुत्रस्य कन्यायां पीर्येण येशपारिणः । यमूय येशपारी च पुत्रो युक्ती प्रकीर्तितः ॥

वैश्याद्वीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी बभूव ह । शुण्डीयोपिति वैश्यात् पुण्ड्रकश्च बभूव ह ।
 क्षत्रात् करणकन्यायां राजपुत्रो बभूव ह । राजपुत्र्यान्तु करणादागरीति प्रकीर्तितः ।
 तत्रवीर्येण वैश्यायां कौवर्तः परिकीर्तितः । कलौ तीवरसंसर्गात् भीषरः पतितो भुवि ।
 विष्यां भीषरात् पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः । रजस्यां तीवराद्यैश्च कोयालीति बभूव ह ।
 पितात् गोपकन्यायां सर्वस्वीतस्य योपिति । क्षत्राद्बभूव व्याघ्रश्च यलयान्मृगहंसकः ।
 त्वरात् शुण्डिकन्यायां बभूवः सप्तपुत्रकाः । तेकलौ हस्तिंसंसर्गात् बभूवुर्हस्यः सदा ।
 ह्यप्यामृषिवीर्येण स्मृतोः प्रथमयासरे । कुरिसतश्चोदरे जातः कूदरस्तेन कीर्तितः ॥
 दशौचं विप्रतुल्यं पतितो मृतुदोपतः । सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले ॥ ११६ ॥
 क्षत्रवीर्येण वैश्यायामृतोः प्रथमयासरे । जातः पुत्रो महादस्त्वुर्वलवांश्च धनुर्धरः ॥
 वकारं प्रागतीतञ्च क्षत्रियेणापि धारितः । तेन जात्याः सपुत्रश्च प्रागतीतः प्रकीर्तितः ।
 क्षत्रवीर्येण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः । बल्यन्तो बुरन्ताश्च बभूवुर्बुध्नात्जातयः ॥ ११७ ॥
 भविद्वकर्णाः मूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः । शोचाचारविहीनाश्च दुर्दर्पा धर्मवर्जिताः ।
 मृच्छात् कुचिन्दकन्यायां जोलाजातिर्वभूव ह ।
 जोलात् कुचिन्दकन्यायां शराकः परिकीर्तितः ॥ १२१ ॥
 वृणसङ्कटदोषेण बह्वश्च धृतजातयः । तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुं क्षमो द्विज ।
 वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातश्च विप्रयोपिति । वीर्यवीर्येण शूद्रायां बभूवुर्बह्वो जनाः ॥
 तेन प्रामम्यगुणहाश्च मन्त्रीपथिपरायणाः । तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालप्राहिणो भुवि ।
 शौनक उवाच ॥
 कर्षं ब्राह्मणपत्न्यान्तु सूर्यपुत्रोऽश्विनीसुतः । महो केन विपाकेन वीर्याधानञ्चकार ह ।
 सीतिश्याञ्च ॥
 गच्छन्तीं तीर्ययात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः । ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्याने च निर्जने ।
 स्या निवारितो यज्ञात् बलेन बलवान् सुरः । अतीवसुन्दरीं हृष्टा वीर्याधानञ्चकार स ।
 द्रुतं कल्याणं गतं सा पुष्पोद्याने मनोहरे । सद्यो बभूव पुत्रश्च कश्चाञ्जनसन्निभः ॥ १२८ ॥
 सपुत्रा स्वामिनो गेहं जगाम व्रीडितासदा । स्वामिन् कन्यायामास यन्मार्गो दीपसङ्कटम् ॥

वेप्रो रोपेण तत्याजं तच्छुपुत्रं स्वर्कामिनीम् । सखिदुग्धमूयं प्रोमेनसाच गोदावरी स्मृता
 पुत्रं चिकित्साशोस्त्रश्च पाठयामास यत्नतः । नानाशिल्पिञ्च मन्त्रञ्च स्वर्पसं रचितन्दनं
 वेप्रश्च ज्योतिर्गणनाद्वेत्तनाद्यं निरुत्तम् । वेदधर्मपरित्यक्तो बभूव गणको मुवि ॥१३२॥
 डोमी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान् । ग्रहणे मृतदानानामप्रदानी बभूव सः ॥
 कश्चित् पुमान् ग्रहायज्ञेयसंकुण्डलात् समुत्थितः । ससूतोधर्मयक्ता च मत्पूर्वपुत्रः स्मृतः
 पुराणं पाठयामास सञ्जग्रहा रुपाणिधिः । पुराणयक्ता सूत्रश्च यश्चकुण्डसमुद्भवः ॥१३३॥
 वैश्यायां सूतधीर्ल्येण पुमानेको बभूव ह । स महो धायदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः ॥
 एतत्तेकथितं किञ्चित् पृथिव्यांजातिनिर्णयम् । वर्णसङ्ख्यदोषेण बहोऽन्याः सन्तिजातयः
 सम्यग्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु सर्वतः । तत्त्वं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितं पुरा
 पिता तातस्तु जनको जग्मदातरि वर्त्तते । अम्या माता च जननी गर्भस्थान्यां प्रसूति
 पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः । अत उद्बुध्यं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्त्तिताः
 मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च । मातामहस्य जनकस्तत्पिता बृहत्पूर्वकः ॥१३४॥
 पितामही पितुर्माता तत्स्थबभूव प्रपितामही । तत्स्थभूश्च परिक्षेया सा बृहत्प्रपितामही
 मातामही मातृमाता मातुल्या च पूजिता । प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी ॥
 बृहत्मातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा । पितृपिता पितृव्यश्च मातृपिता ॥ मातुल
 पितृस्थसा पितृमग्री मातृमग्री च मातुरी । सनुश्च तनयः पुत्रो दायादश्चात्मजस्तथा
 धनमागधीर्व्यज्ज्यैव पुंसिजन्ये च वर्त्तते । अन्यायांदुहिताकन्या चात्मजा परिकीर्त्तिता
 पुत्रपत्नी पपुत्रेया जामाता दुहितुःपतिः । पतिः प्रियश्च भर्ता च स्वामी कान्तेच वर्त्तते
 देवदत्त्वाभिनीघ्रातान्नन्द्ग्यामिनः स्वसा । श्वशुरः स्व्यामिनस्तातश्चभूश्च स्व्यामिनाश्च
 भाव्यां जाया प्रिया कान्ता स्वीरश्च पत्न्याश्च वर्त्तते ।

पत्नीघ्राता श्वालकश्चपत्नीमग्री च श्यालिका ॥ १३६ ॥

पत्नीमातातया श्वधूमन्पिता श्वशुरः स्मृतः । सगर्भः सोदरोघ्रातासगर्भामिनी स्मृता
 भगिनीपुत्रो भगिनीयो घ्रातुपुत्रश्चघ्रातुजः । श्वाभ्यन्तुभगिनीकान्तो भगिनीपतिश्च
 श्वालीपनिन्तु घ्राता च श्वशुरैकश्च हेतुना । श्वशुरेन्तु पिताभयो जग्मदानुः समीपे

मन्त्रदाता मन्त्रदाता यतीतातस्तथैव च । पित्रादाता जन्मदाता पञ्चते पितरो नृणाम् ॥
 मन्त्रदातुरथवा यती मगिनी गुरुकामिनी । माता च तत्पुत्रपत्नी च कन्या पुत्रप्रियातया
 मातुर्माता पितुर्माता श्वघ्नैः पित्रोः स्वसो तथा । पितृप्यानी मातुलानी मातृपचतुर्दश
 पौत्रस्तुपुत्रपुत्रे च प्रपौत्रस्तन्तुनेऽपि च । तत्पुत्रायाश्च ये वंशाः कुलजाश्च प्रकीर्तिताः
 कन्यापुत्रस्य दौहित्रस्तन्पुत्रायाश्च वाम्बधाः । मागिनेयसुतायाश्च पुत्राणाम्बधाः स्मृताः
 पुत्रपुत्रस्य पुत्रायास्ते पुनर्जातयः स्मृताः । गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पौष्यः परम्यान्बधः ॥
 गुरुकन्या च मगिनीपौष्या मातृसमामुने । पुत्रस्य च गुरुभ्रातापौष्यः सुजिग्म्यान्बधः
 प्रस्यरूपगुरोभ्राता बन्धुर्येयादिकः स्मृतः । कन्यायाः श्वगुरेचैव तत्सम्बन्धः प्रकीर्तितः
 पुत्रश्च कन्यकायाश्च भ्राता सुसिन्ध्यान्बधः । गुरुश्च गुरुभ्रातृणां गुरुतुल्यः प्रकीर्तितः
 बन्धुता येन सार्द्धञ्च तन्मित्रं परिकीर्तितम् । मित्रं सुखप्रदं ह्येयं दुःखदोऽपि दुर्लभम् ॥
 बान्धवो दुःखदोऽपि पात् निःसम्बन्धो सुखप्रदः । सम्बन्धास्त्रिविधाः पुंसां पित्रेन्द्रजगतीकळे
 विद्याजो योनिर्जन्मैः प्रीतिजन्म प्रकीर्तितः । मित्रन्तु प्रीतिर्ज्ञेयं स सम्बन्धः सुदुर्लभः
 मित्रमाता मित्रमाप्यामातृतुल्या न संशयः । मित्रभ्राता मित्रपिता पितृभ्रातृसमो नृणाम्
 बन्धुर्यं नाम सम्बन्धमित्याह कमलोद्भवः । जारब्धोपपत्तिर्यन्धुर्दुष्टसम्मोगकर्त्तरि ॥
 उपपत्त्या न यज्ञा च प्रेयसी चित्रहारिणी । स्वामितुल्यश्च जारब्ध न यज्ञा गृहिणीसमा
 सम्बन्धो देशभेदे च सर्वदेशे विगर्हितः । भवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः
 दुस्त्वजस्तु महद्भिस्तु देशभेदे च सञ्चरेत् । अकीर्तितजनकः पुंसां योऽपिताश्च पित्रोक्तः
 तेजीयसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे ॥ १०० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।

॥ १०० ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०१ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०२ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०३ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०४ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०५ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०६ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०७ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०८ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ १०९ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।
 ॥ ११० ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां दशमोऽध्यायः ।

एकादशाऽध्यायः ।

विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा ।

शौनक उवाच ।

द्विजः समाप्यासंत्यज्य किञ्चकारावशेषतः । अश्विनोर्ध्वमहामागः क्लृप्तमकस्यवराजः ।

सौतिरुवाच ।

द्वेजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः । तपश्चकार कृष्णस्य लक्ष्यपं हिमालये ॥२॥
रहातपस्यी तेजस्यी प्रज्वलन् प्रद्योतेजसा । ज्योतिर्दर्शनं कृष्णस्य गाने सहसा समम्
वरं सपथे निर्लिप्तमात्मानं प्रकृतेः पथम् । आच मोक्षं यथाचे तं दास्यं भविष्य तिष्ठत्यम्
धनूयाकाशवाणीति कुरु दारपण्डितम् । पद्माहास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगक्षये द्विज ।
पितृणां मानसीं कन्यां ददौ तस्मै विधिः स्वयम् । तस्यां कल्याणमित्रश्च धनूय मुनिपुत्रश्च
यस्य स्मरणमात्रेण न भवेत् कुलिशद्वयम् । न द्रष्टव्यं यन्धुमात्रं नूनं तत्स्मरणक्षये
कल्याणमित्रजननीं पत्नियस्य महामुनिः । शशाप सूर्यपुत्रश्च यज्ञमावर्जितो भव ।
सप्तोदरद्वयवापूय्यो भवेति च सुतपम् । व्याधिप्रस्तोजङ्गाङ्गश्च भवतेऽकीर्तिमानिति ।
दत्तुश्च सुतपागौदे प्रतस्यी सुनुनासह । अश्विन्यांसहितः सूर्यः प्रयती च तदन्तिकम्

पुत्राभ्यां व्याधिपुत्राभ्यां सूर्यस्त्रिजगताभ्यतिः ।

मुनीन्द्रं च सुतपम् प्रनुष्टाप च शौनक ॥३॥

सूर्य उवाच ।

स्मस्य भगवन् पित्र विष्णुरूप युगे युगे । ममपुत्रापरापञ्च भारद्वाजमुनीश्वर ॥४॥
अपिष्णुर्देहायाः सुराः सर्वे च सन्ततम् । मुत्रनेविप्रवसन्तु पञ्चपुण्ड्रजलादिकम् ।
देवाः शस्त्रप्रियेषु पूजिताः । न च विप्रान् परोक्षेण विप्ररूपीत्ययं हि
च नुष्टो नातायजः स्वयम् । नातायजे च सन्तुष्टे सन्तुष्टाः सर्वदेवताः

रक्षाश्चोऽध्यायः] . . . विष्णुवैष्णवप्राज्ञप्रशंसा .

४१

अस्ति गंगासमंतीर्थं न च कृष्णात् पटसुतः । न शोडशद्वयैष्णवस्रसद्विष्णुर्धरापरा ॥

१०० न च सत्यात् परोधर्मो न साध्वी पार्वती पटः ।

१०१ न दैषात् घटवान् कश्चित् न च पुत्रात् पटः प्रियः ॥ १०२ ॥

च ध्यायिष्यतः शत्रुर्न च पूज्योः गुणोः पटः । नास्ति मातृसमो बन्धुर्न च मित्रं पितुः परम् ।

कादशीप्रतपरा तपोः नान्यनात्परम् । परं सर्वधनं रत्नं विद्याज्ञात्परा यथा ॥ १०३ ॥

प्राथम्यपरो विप्रो नास्ति विप्रसमो गुरुः । वेदवेदाङ्गस्यार्थमित्याह कमलोद्भवः ॥

प्यस्य पवनं धृत्या माय्याजो ननाम तम् । निरजो वापित्पुत्री चकार तपसः फलात् ॥

प्रायतय पुत्री च यज्ञमाजी भविष्यतः । इत्युत्पत्तञ्जसुतया प्रणम्य मास्करं मुनिः ॥

गाम गङ्गां स प्रस्तो हरिसेधनतत्पटः । पुत्राभ्यां सहितः सूर्यो जगाम निजमन्दिरम् ॥

शुषस्तु स्त्री पूज्यौ च यज्ञभाजी द्विजाग्रया । पतत्सूर्यं हृतं विप्रस्तोत्रं यो मानयः पटेत् ॥

१०४ विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २४ ॥

ज्ञेयस्यो नम इति प्रातस्तथाय यः पठेत् । स ज्ञातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥

पूयिष्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे । सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥

विप्रपादोदकं पीत्वा याचति प्रति मेदिनी । सायत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥

विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तञ्च यः पिबेत् । स ज्ञातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥

महत्तोगी यदि पिबेत् विप्रपादोदकं द्विज । मुच्यते सर्वरोगाश्च मासमेकान्तु भक्तितः ॥

अधिघो वा सविघो वा सन्ध्यापूतो द्वि यो द्विजः ।

स पय विष्णुसङ्गो न हरौ-विमुखो यदि ॥ ३० ॥

प्रतं विप्रं शपत्तं वा न हन्याद्य च तं शपेत् । गोमयः शतगुणं पूज्यो हरिमकश्च प्राज्ञवान् ॥

पादोदकञ्च नैवेद्यं मुहूर्ते विप्रस्य यो द्विज । नित्यं नैवेद्यमोजी यो राजसूयफलं लभेत् ॥

एकादश्यां न मुहूर्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत् ।

तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेत् ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

१०५ तस्यो मुहूर्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यमोजनम् ।

१०६ तस्यो मुहूर्ते भोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यमोजनम् ।

मम विद्यां पयो भूत्रं यद्विष्णोर्निवेदिताम् । द्विजानां कुलजातानामित्याहं कमलोद्भवः ।
 अथा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः । ब्राह्मणस्तत्कुले जातो विमुक्तश्च हरौकथम् ।
 पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्च वा । दोषेण विमुक्ताः कृष्णे विप्राज्जीवन्मृतारवते ।
 स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा । स किं राजा स किं वरुणं दद्याद् यो हरौ मतिम् ॥ ३८ ॥
 स वैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः । स वैष्णवश्चैव भूतलोकस्य भूतलोकस्य ।
 स गणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ३९ ॥
 सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुक्तो द्विज । सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुक्तो द्विज ।
 स एव ब्राह्मणमापो विपहीनो ययोरगः ॥ ४० ॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णं प्रविश्यति । तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं पदेद्विधिः ।
 पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्द्धं हरैः पदम् । प्रयाति वैष्णवः पुंसांमात्मनःकुलकोटिभिः ।
 ब्रह्मक्षत्रियविदूषाश्चतस्रो जातयो यथा । स्वतन्त्राजातिरेकाश्च विरहैषु वैष्णवाभिधा ।
 व्यापन्ते वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपादपङ्कजम् । व्यापन्ते तारुण गोविन्दः शश्वत्सेनाश्च सन्निधौ ॥ ४४ ॥
 सुन्दरान् संनियोज्य भक्तानां रक्षणेन च । तथापि नहि निश्चिन्तोऽपतिष्ठेद्भक्तसन्निधौ ।
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सीतिशौनक-संवादे ब्रह्मवर्णने विष्णुवैष्णवब्राह्मण-

प्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः ।

॥ ४५ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वरात्रस्यप्रशंसा ।

॥ ४६ ॥

श्विभ्रातृप्रसङ्गेन बभूवुर्विविधाः क्रियाः । उपश्रममेव प्रस्तोतवन् क्रौतुकेन धृता मया ।
 प्रभावा सत्पुङ्गवोऽर्जुनैस्तारुणं कथयन् । विद्या सहे विरोधेन भावः किञ्चकार स-

पितुः शारेण पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः । पितुर्वा पुत्रशारेण सीते ननु कथ्येतां शुभम्
सीतिरुवाच ।

हंसीयतिधारणिश्च योदुः पद्मशिवास्तथा । अपान्तरत्तमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनकाः ॥
एतेर्षिना च बहवो ब्रह्मपुत्राश्च सन्ततम् । सांसारिकाः प्रजापन्तो गुर्वाज्ञापत्तिपालकाः ॥
अपूरयः पुत्रशारेण स्वयं ब्रह्माप्रजापतिः । तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं गोपासन्ते विपश्चिताः ॥
नारदो गुह्यशारेण गन्धर्वाश्च यभूय सः । कथयामि सुविस्तीर्णं तनुवृत्तान्तं निशामय ॥
गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां परोमहान् । परमैश्वर्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा ॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना । तपश्चकार शम्भोश्च ह्यणो दीनमानसः ॥
शिवस्य कथञ्च स्तोत्रं मन्त्रञ्च द्वादशाक्षरम् । ददौ गन्धर्वराजाय वशिष्ठश्च कृपानिधिः ॥
जज्ञाप परमं मन्त्रं दिव्यं धर्मशतं मुने ! । पुष्करे स निपहात् पुत्रदुःखेन तापितः ॥११॥
धिरामे शतपर्यस्य ददर्श पुरतः शिवम् । भासयन्तं दशदिशौ ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१२॥
शब्दवेजः स्वरूपञ्च भगवन्तं सनातनम् । ईषदास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥
तपोरूपं तपोपीजं तपस्या फलदं फलम् । शरणागतमकाय दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
त्रिगुलपट्टिशधरं धूम्रमस्यं दिगम्बरम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्ररोवरम् ॥१५॥
कृतस्पर्णप्रभामुष्टजटाजालधरं वरम् । नीलकण्ठञ्च सर्वज्ञं नागयज्ञोपवीतकम् ॥१६॥
संहर्ताञ्च सर्वेषां कालं मृत्युञ्जयं वरम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिसङ्काशमीश्वरम् ॥
तत्पद्मानमन्दं शान्तं मुक्तिदं हरिमचिदम् । इहा ननाम सहसा गन्धर्वोद्विष्टश्च मुनिः ॥
बबिष्टदत्तस्तोत्रेण तुष्टाय परमैश्वर्यम् । वरं कृणुष्वेति शिषस्तमुवाच कृपानिधिः ॥
स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमैश्वर्यम् ॥ १६ ॥

गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा जहास चन्द्ररोवरः । उवाच दीनं दीनिशो दीनबन्धुः सनातनम् ॥
श्रीमहादेवे उवाच ।
कृतार्थस्त्वं वरादेकादन्यश्च वित्तवर्धनम् । गन्धर्वराजं कृणुष्वे को वा त्वमोऽतिमङ्गले ॥
यस्य भक्तिहरीं वत्सं सुदृढा सर्वमंगला । स समर्थः सर्वविश्वं कर्तुञ्च लीलया ॥२२॥
मातामनःकुलकोटिञ्जयते मातामहस्य च । पुरुषाणां समुद्रवृत्त्यगालोकं वातिनिश्चितम् ॥

त्रयोदशोऽध्यायः] * उपवर्हणभार्यायां भालावत्याविलापकथनम् *

प्रकुलमानसाः सर्वे मानवाः सिद्धकर्मणः । नारदस्तस्य भार्यायां लेभे जन्म च भार्या
सुराव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादने । गुरुर्वशिष्ठो भगवान् नाम धृक् यथोचित
बालकस्य च तस्यैव मङ्गलं मंगले दिने । उपशब्दोपिकार्यश्च पूज्ये च वर्हणः पुम
पूज्यनामाधिको बालस्तेनोपवर्हणमिधः ॥ ४५ ॥
इति धीप्रहर्षैषत् महापुत्राणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं
द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

उपवर्हणभार्यायां भालावत्या विलापकथनम् ।

सौतिव्याच ।

पुत्रोत्सवे च रत्नानि घनानि विविधानि च । गन्धर्वराजः शर्वरीं ब्राह्मणेभ्यो मुदा
उपवर्हणस्तु कालेन हरिर्मन्त्रं सुदुर्लभम् । वशिष्ठद्वारा सम्प्राप्य चकार दुष्कृतं तपः
एकदा गण्डकीतीरे तच्च सम्प्राप्तयौवनम् । गन्धर्वपत्न्यो दहशुभ्रं कर्मापुत्रं तत्क्षण
तत्सतीत्यं तपः कृत्वा प्राप्यान् संत्यज्य योगतः । पञ्चाशत्तं यभुवुध कन्याश्चित्ररथस
उपवर्हणगन्धर्वं ताञ्च तं यद्विरे पतिम् । मुदा माला ददुस्तस्मै कामुकयः पितुरात्
गृहीत्वा ताञ्च गन्धर्वो युवा सुस्थिरयौवनः । दिव्यं त्रिलक्षवर्णं रेमे रदसि का
ततोऽपि सुविंशत्यवृत्त्या तामिः संहामिश्रम् । जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगांधीं जग
हं स संमारमोहनर्तने कठिनं स्तनम् । बभूव स्ववर्तनं तस्यः गन्धर्वस्य महात्म
दुतं तत्पात्रं सेद्वीतं मूर्च्छां प्राप समातले । उच्चैः प्रजहसुर्देवा ब्रह्माकोपात् शशा
मेज त्वं शूद्रयोनिश्च गन्धर्वी तनुमुत्सृज । काले वैष्णवसंसर्गात् मत्पुत्रस्त्वं भविष्य
यिना विपत्तेर्महिमा पुंसां नेय मयेत् सुत । सुखं दुःखञ्च सर्वेषां क्रमेण प्रमवेदिति

॥ श्रीशोऽध्यायः ॥

॥ मालायत्याचिल्लापवर्णनम् ॥

॥ ४४ ॥

ततोऽपत्यविंयोगो हि मरणादतिरिज्यते । सर्वस्मात् पतिभेदो हि तत्परं नास्ति सङ्कटम् ।
 शयने भोजने स्नाने स्वेप्ने जागरणेऽपि च । स्वामिविच्छेददुःखञ्च नूतनं च दिने दिने
 सर्वशोकविस्मरेत् स्त्रीस्यामिसंयोगमाश्रितः । कथुमन्यं न पश्यामितं हृद्वाविस्मरेत्पतिम् ।
 नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं स्वामिना विना । साध्यानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥ ३८ ॥
 हे दिगीराब्ज विष्णुला हे धर्म हे प्रजापते । गिरीश कमलाकोन्तःपतिश्चानञ्च देहि मे
 इत्युक्त्वा विरहात्तां सा कन्या विप्रसूयत्येव । मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने घने
 विचेतना तत्र तस्यै कान्तं इत्या स्पृशसि । परिपूर्णं दिवानकं सर्वदेवैश्च रक्षिता ॥
 प्रमाते चेतनां प्राप्य विललाप मृशं मुहुः । इत्युक्त्वा पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती
 मालायत्युक्त्वा च ।
 हे कृष्णं जगतां माय नाथ नाहं जगद्धृदि । त्वमेव जगतां पाता मां न पाहि कथं प्रभो
 भयं भर्तास्व भाव्योऽहं भवेति तव मायया । त्वमेव सम्भवो भर्ता सर्वेषां सर्वकारणः
 शब्दार्थः कर्मणा कान्तः कान्ताहमस्य कर्मणा ।
 तव गतः कर्म भोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम् ॥ ४५ ॥
 को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो ।
 सर्वयुक्तं पिघाता च वियुक्तं च कर्मणा ॥ ४६ ॥
 सर्वयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसङ्कटम् । शश्वज्जगति मूर्खस्य नात्मारामस्य निश्चिन्तम्
 नश्यतो विषयः सत्यं भोगश्च बान्धवो भुवि ।
 स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखायैव त्याजितः परैः ॥ ४८ ॥
 तस्मात् सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्यमीप्सितम् ।
 ध्यायन्ते सन्तस्तं कृष्णपादपदं निरुपदम् ॥ ४९ ॥
 सर्वत्र ज्ञानिनः सन्तः कां स्त्री ज्ञानवती भुवि ।
 ततो मह्यं विमूढायै दानुमर्हति चाञ्छितम् ॥ ५० ॥
 न मे पाञ्छामत्येव शत्रुत्वे मोक्षवर्त्तनि । इमं कान्तं परं देहि चतुर्वर्गकरं परम् ॥ ५१ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

विष्णुमालावतीसंवादवर्णनम् ।

सौतिरयाम ।

तत्र मित्या क्षणं देवा प्रवेशानुरोगमाः । ययुर्मान्वायतीमूर्त्तं परं मंगलदायकाः ॥ १ ॥
मालावती सुरान् इहा प्रजनाम् पतिष्यता । स्तोदकान्तं संस्थाप्यदेवानां सत्रिचीमुने ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रः कश्चिदुग्रप्रज्जवालकः । भाजगाम सुराणाञ्च समामतिमनोदृष्ट ॥
दण्डी छत्री शुक्लयासा विप्रसिलपमुग्रजलम् । क्षीणपुस्तकहस्ताश्च सुप्रशान्तश्चसस्मिन् ॥
घन्दनोक्षितसर्पाङ्गः प्रज्जालन्प्रहतेजसा । सुरान्संमाप्यतत्रैव विस्मितान् विष्णुमायया ॥
तत्रोपास समामध्ये तारामध्येयया शयी । उपाव देवान् सर्पांश्च मालतीञ्च विचक्षण ॥

ब्राह्मण उवाच ।

कथमत्र सुराः सर्वे प्रवेशानुरोगमाः । स्वयं पिपाता जगतां सृष्टाऽत्र केन कर्मजा ॥
सर्वप्रक्ष्णाण्डसंहर्ता शम्भुरत्र स्वयं विभुः । महो त्रिजगतां साक्षी धर्मश्च सर्वकर्मजाम् ॥
कथं रषिः कथं बन्धुः कथमत्र हुताश्रमः । कथं कालो मृत्युकन्या कथं पाऽत्र यमादयः ॥
॥ १ ॥ ॥ ॥ हे मालावति त्वत्क्रोडे शयः कस्तेऽतिशुषिकतः ।

जीवितायाः कथं मूले योषितश्च पुमान् शवः ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा तांश्च तां विप्रो विररामसमातले । मालावती तं प्रणम्य समुपावविचक्षणम् ॥
मालावत्युवाच ।

आनन्दपूर्वकं घन्दे विप्ररूपं जनार्दनम् । तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च ॥ २१ ॥
अघघानकुण्डविमो ! शोकात्तांथानिवेदने । समा कृपासतांशश्चतुर्ग्यायोग्येष्टपाषाणम् ॥
कन्या चित्ररथस्य च । सर्वे मालावतीं कृत्वा घदन्ति विप्रपुङ्गव ॥
लक्षयुगं रम्ये स्थाने स्थाने मनोहरे । कृता कीडा च स्वच्छन्दमनेन स्वामिना सदा ॥

प्रिये क्षेत्रे हि साध्वीनां पावान् विभेन्द्र योषिताम् ।

सर्वं शास्त्रानुसारेण जानासि त्वं विचक्षण ॥ १६ ॥

अकस्मात् प्रहणःशापात् प्राणांस्तत्याजमत्पतिः । देवानुद्दिश्यविलपे यथाजीवतिमत्पतिः ।
सकार्प्यसाधने सर्वे व्यप्राश्च जगतीतले । भावामार्थं न जानन्ति केवलंस्वार्थतत्पराः ॥

सुखं दुःखं भयं शोकः सन्तापः कर्मणां मृणाम् ।

येध्वयं परमानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम् ॥ १७ ॥

देवाश्च सर्वजनका दातारः कर्मणां फलम् । कर्तारः कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदश्चलीलया ॥

न हि देवात्परोऽयन्धुर्न हि देवात्परो यती । दयावान् न हि देवाश्च न च दाता ततः परः ।
सर्वान् देवानहं याचे पतिदानं प्रमेक्षितम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदाश्चसुरेन्दुमान् ॥

यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदानं ययेप्सितम् ।

भद्रं तदान्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीश्वं धुयम् ।

शपिष्यामि च सर्वाश्च दाहणं दुर्निवारकम् ।

दुर्निवार्यः सतीशापस्तपसा केन धार्यते ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा मालतीसाध्वीशोकार्तासुरसंसदि । विरराम द्विजध्रेष्ठस्तामुयाच च शौनक ॥

ब्राह्मण उवाच ।

कर्मणां फलदातारो देवाः सत्यश्च मालति । सद्यः सुचिरेणैव धान्यं कृपकथनृणाम् ।

पृष्टी च कृपकक्षारा क्षेत्रेधान्यं धपेत् सति । तद्दुहो भयेत्कालेकालेवृक्षः फलव्यपि ॥

काले सुपकं मेवति काले प्राप्नोति तद्दुहो । एवं सर्वं समुधेयं विरेण कर्मणः फलम् ॥

मष्टी वपति संसारे गृहस्थो विष्णुप्रायया । काले तद्दुहोवृक्षः कालेप्राप्नोति तत्फलम् ।

पुण्यवान् पुण्यमूरी च करोति सुचिरन्तपः । तेषाञ्च फलदातारो देवाः सत्यं न संशयः ।

प्रहणानामुल्ले क्षेत्रे ध्रेष्ठेऽनूपरण्य च । यो यज्जुहोतिमक्वथा च स तत् प्राप्नोतिनिश्चितम् ।

न फलं न च सौन्दर्यं नैध्वयं न धनं सुतः । नैषस्त्री न च सत्कान्तः किंमयेत्तपसा विना ।

सेयंतेप्रहृतिपोदि मत्वाजन्मनिजन्मनि । सलमेत् सुन्दरीकान्तांविनीताश्चगुणान्विताम् ।

थियश्च निघलां पुत्रं पौत्रं भूमिं धनं प्रजाम् । प्रहृतेषु वरेणैव लभेद्भक्तोऽपलीलया ॥

चिदंशोऽध्यायः] * मालावतीकालपुरुषसंवादनं ॥

५३

यद्यदु गृही च भोगार्थं यावत्कृष्णं न सेषते । मुख्यवत्राद्विष्णुमन्त्रो यस्यकर्णे प्रविश्यति
मस्तल्लिवनं दूरं करोति तत्क्षणं मिया । मधुपर्कादिकं ग्रहा पुरैव तद्वियोजयेत् ६०
हो विलङ्घ्य महोक्तं मार्गेणानेन यास्यति । तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि
रितानि च भीतानि कोटिजन्मवृत्तानि च । तं विहाय पलायन्ते त्वेनतेयं यथोरगाः ॥
रातनं कृतं कर्म यदु यत्तस्य शुभाशुभम् । छिनत्ति कृष्णचक्रेण तीक्ष्णधारेण सन्ततम्
विहाय जरां मृत्युर्याति चक्रमिया सति । अन्यथा शतखण्डं तां कुरुते च सुदर्शनः ॥
शङ्को यातिगोलोक्तं विहाय मानवीतनुम् । गत्यादिष्व्यां तनुधृत्या श्रीकृष्णंसेषतेसदा
यत् कृष्णोहिगोलोक्ते तावदुभयो पसेत् सदा । निमेषमन्यते दासोऽनभरं ग्रहणोचयः
श्रीग्रहवैयर्थं महापुराणे ग्रहखण्डे सौतिशौनकसंवादे विष्णुमालतीसंवादो नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

मालावतीकालपुरुषसंवादनं ।

ब्राह्मण उवाच ।

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि ! तव प्रियः ।

सर्वरोगचिकित्साञ्जं जानामि च चिकित्सकः ॥ १ ॥

तुल्यं मृतं रोगात् सप्ताहान्तरं सति । महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यपल्लवा ॥
मृत्युं यमं कालं व्याधिमानय त्वत्पुत्रः । निवध्यदातुं शक्नोऽहं व्याधौ यदुध्यापराधया
न सञ्चरेद् व्याधिर्देहेषु देहधारिणाम् । व्याधीनां कारणं यदुपयत् सर्वं जानामिसुन्दरि
न सञ्चरेद् व्याधिवीजं दुष्टममङ्गलम् । तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः ॥
योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च । तस्य तं जीवन्तोपायं जानामि योगधर्मतः ॥
तस्य पचः धृत्या स्फीतामालावतीसती । सस्मितास्त्रिग्विज्ञा सा समुवाचप्रद्विप्तिता

सन्ध्यावन्दनम् ।

महो धूमं विमलभाषी तमसं वन्द्यवक्त्रः । तमसाऽग्निमिन्दुं बौ ब्रह्म गौतमिनां वन्द्यम् ।
स्वराहनाप्रविष्टान् कालं जीवयितुं मय । विरगिर्न न सत्पावनं मनुजानां जीवितम् ।
जीवयिष्यति मनुकान् पद्माश्रेविहां वरः । यदुगन्तुञ्चासि हरिरागद्वान्धवमूर्ति ।
समाप्तो जीविने कामेकस्य तीक्ष्णस्य सप्रिया । स्नादि धर्मं न शक्यं विष्णवे मूर्ति ।
यने प्रसादो देवा विष्णुमात्मैव संसृति । तस्य वैद्विषां श्रेष्ठो न न कश्चिन्मनीष्यत ।
मार्तारहस्यमसांघेन न कोऽपि विद्विष्यत्तुल्यः प्राणिकगोमिनि । स न कोऽपि रिल्लामुनि
वर्षद्विषेयुनो शक्तिशब्देन प्रद्वन्द्वयोः । स्त्रीपुम्मात्रं चोदयः स्वामीकर्तारगोमिनि
स्वामीकर्ता च हस्तां च शान्ता पोषाव रक्षिता । अमीरदेवः पूज्यश्च गुरुम्यामिनः पद
कन्या राजकुलजाता या सा कान्तप्रापिनी ।

या स्वतन्त्रा च सा पुष्टा न्यमापान् कुन्त्या भूयम् ॥ ११ ॥

पुष्टा पशुमांसञ्च सेषते या नराधमा । सा निन्दति वनि राघवसुन्दरप्रभूतिका ॥ १२ ॥
उपवर्द्धनं माप्याहं कन्या विप्ररथस्य च । यदुगन्तुं रात्रम्य कान्तप्रका सदा द्विज ॥ १३ ॥
सर्वकालयितुं शक्यस्त्वञ्च वेदविदां वर । कालं यमं गृह्युक्त्यामदम्यामं समन्वय ॥ १४ ॥
मालापतीपथः धृष्टा विप्रो वेदविदां वर । समामध्ये समाहूय तान् प्रत्यहं वकार ॥ १५ ॥
ददर्श मृत्युफन्याञ्च प्रथमं मालती सती । कृष्णवर्णां धोररूपां रत्नप्ररथरां वरम् ।
सस्मितां पद्भुजां शान्तां दयायुक्तां महासतीम् ।

कालस्य स्वामिनो धामे चतुर्धिसुतान्विताम् ॥ २२ ॥

कालं नारायणांशञ्च ददर्श सुरता सती । महोत्सवं विकटं श्रीमसूर्यसमप्रभम् ॥ २३ ॥
पद्मवक्त्रं पौडराभुजं चतुर्विंशतिलोचनम् । पद्मादं कृष्णवर्णञ्च रत्नान्वधरं पद्म् ॥ २४ ॥
देवस्य देवं विहृतं सर्वसंहाररूपिणम् । कालाधिदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम् ॥ २५ ॥
ईशस्य प्रसन्नास्यमक्षमालाकरं धरम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥ २६ ॥

सती ददर्श सुखो व्याधिसंधान् सुदुर्जयान् ।
वयसाऽतिमहावृद्धान् स्तनधान् मातृसन्निधौ ॥ २७ ॥

मूलपादं कृष्णवर्णं धर्मिष्ठं विनन्दन् । अपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २८ ॥
 माधर्मविचारं परं धर्मस्वरूपिणम् । पापिनामपि शास्तरं ददर्श पुरतो यमम् ॥ २९ ॥
 अथ हृदा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम् । मालावती महासाध्वी प्रहृष्टवदनेक्षणा ॥

मालावत्युवाच ।

धर्मराज धर्मिष्ठ धर्मशास्त्रविशाद । कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विमो ॥ ३१ ॥
 यम उवाच ।

प्रातःकालो त्रियते न कश्चिज्जगतीतले । ईश्वरार्हां विना साध्यं नामृतं चालयाम्यहम्
 कालो मृत्युकन्या व्याधयन् सुदुर्जयाः । निपेकेन प्रातःकालं कालपन्तीभ्यस्तस्या
 मृत्युकन्या विचारणा यं प्राप्नोति निपेक्तः । तमहं कालयाम्येव पृच्छ तां केन हेतुना ॥
 मालावत्युवाच ।

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्यामिषेदन्म् ।

कथं हरसि मत्कान्तं जीयितायां मयि प्रिये ॥ ३५ ॥

मृत्युकन्योवाच ।

विभ्वसृजा सुराऽप्यहमेवात्र कर्मणि । न च क्षमा परित्यक्तुं शक्नुना तपसा सति ॥
 सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्थिनी वरा । मामेव भस्मसात् कर्तुं क्षमा यदि मयेद्वये
 पृच्छन्तिरेवेह तदा भयति सुन्दरि । पुत्राणां स्वामिनः पश्चात् भविता यद्वपिष्यति
 तेन प्रेरिताऽहञ्च मृत्युवा व्याधयन्मयी । न मत्सुतानां दोषश्च न च मे भृत्यु निश्चितम्
 कालं महात्मानं धर्मज्ञं धर्मसंसदि । तदा यदुचितं भदे तत्करिष्यसि निश्चितम्
 मालावत्युवाच ।

तल कर्मणां साक्षिन् कर्मरूप सनातन । नारायणांशो भगवन् भवस्तुभ्यं पश्य ॥
 हरसि मत्कान्तं जीयितायां मयि प्रमो । जानासि सर्वदुःखञ्च सर्ववस्तुषु ह्यपानिधे
 कालपुरुष उवाच ।

याऽहंकोयमाका च मृत्युकन्या च व्याधयः । धर्मसंभारः सत्कर्मशास्त्रपरिपालकाः
 सुरा च प्रकृतिर्गदपिष्णुशिवादयः । सुरा मुनीन्द्रा मनयो मानवाः सर्वव्रन्तयः ॥

यद् तत् पृष्टमपृष्टं वा ज्ञातमज्ञातमेव वा । सर्वं कथय्य तद्भद्रं त्वं गुरुर्देनवत्सलः ॥ ५ ॥
मालावतीपत्रः धृत्या विप्ररूपी जनार्दनः । संहितां चकुमारेमे संहितार्थञ्च वैद्यकीम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

मन्दे तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् । वेदवेदाङ्गबीजस्य बीजं श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥
त ईराध्वतुरो वेदान् ससृजे मङ्गलालयान् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यबीजरूपः सनातनः ॥ ८ ॥
अग्रेजयुःसामाध्याय्यान् इडा-वेदान् प्रजापतिः । विचिन्त्यतेषामर्थञ्चैवायुर्वेदं चकार सः
हृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः । स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्चकार सः
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदस्य संहिताम् । प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्तत्र
तेषां नामानि विभुषां तन्त्राणितनूतानि च । व्याधिप्रणाशयीजानिसाधिमत्तो निशामय
धन्वन्तरिर्द्वयोदासः काशीराजोऽरिषनीसुती । नकुलः सहदेवोऽकिरच्यवनो जनको बुधः
जायालौ जाजलिः पैलः करधोऽगमस्य पथ च । पतेवेदाङ्गवेदज्ञाः पौंड्रश्रयाधिनाशकाः
चिकित्सातत्त्वपिज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् । धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति
चिकित्सावर्णनं नाम द्वयोदासश्चकार सः । चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशीराजश्चकार सः
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमर्ध्न वाशिपनीसुती । तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुधिमर्दनम् । ज्ञानार्णवं महातन्त्रं धमराजश्चकार ह ॥ १८
च्यवनो जीवदानश्च चकार भगवानृषिः । चकार जनको योगी वैद्यसन्देहमञ्जनम् ॥ १९
सर्वसारं चन्द्रसुतो जायालस्तन्त्रसारकम् । वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं करपस्तन्त्रं सर्वधरं परम् । द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुन्मसम्मयः ॥ २१
विकित्साशास्त्रबीजानितन्त्राण्येतानि योऽयम् । व्याधिप्रणाशयीजानियलाधानकराणि च
मथित्या ज्ञानमन्त्रेणैवायुर्वेदपयोनिधिम् । ततस्तस्मादुदाजहर्नयनीतानि कोविदाः ॥
एतानि क्रमशो इडा दिव्यां भास्करसंहिताम् । आयुर्वेदं सर्वपीजं सर्वजानांसि सुन्दरि
व्याधेस्तत्र परिज्ञानं वेदानां याश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रमुपयुयः ॥ २५
आयुर्वेदस्य पिशाता चिकित्सासु यथार्थवित् । धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्तितः
जनकः सर्वरोगाणां दुर्बारो दाहणोज्वरः । शिष्यमवश्च योगी च निष्ठुरो विद्वताहतिः

भीमस्त्रिपादस्त्रिचिरः पद्भुजो नयलोचनः । मस्मप्रहरणो यौत्रः कालान्तक्यमोषमः ।
 मन्दाग्निरस्तस्य अनघोमन्दान्नेर्जनकास्त्रयः । पित्तश्लेष्मसमीपश्च प्राणिनां दुःखायका
 धायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च । ज्वरमेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः ।
 पाण्डुश्च कामलः कुष्ठः शोथः मृदा च शूलकः । ज्वरपित्तसारप्रहणीकासमण्डलीमकः
 मूत्ररुक्श्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः । विषमेदश्च कुष्ठश्च गोदश्च गलमाण्डकः ॥१३॥
 घ्नमरी सन्निपातश्च पिच्छी दाहणी सति । एषां मेदप्रमेदेन चतुःपटी रुजः स्मृताः ॥
 मृत्युकन्यासुताश्चैते जरातस्याश्चकन्यका । जराचक्षातुभिः सार्द्धं शायद्व घ्नमति मूलम्
 एते खोपायवेत्तारं न गच्छन्ति न संयतम् । पलायन्ते च तं दृष्ट्वा घ्नन्ते यमिरीणाः ॥
 चक्षुर्जलश्च व्यायामः पादाघस्तैलमर्दनम् । कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराध्याधिघ्निरात्म
 पसन्ते घ्नमणं पङ्क्तिसेषां स्वप्नं करोति यः । बालाश्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति ॥
 खातग्रीतोदकलायी सेवते घ्नन्दनद्रवम् । नोपयाति जरा तश्च निदाघेऽनिलसेवकम् ॥
 प्राविष्णुनोदकलायी घ्नन्तोऽयं च सेवते । समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
 शय्योद्ग्रेहं न गृह्णाति घ्नमणं तत्र पङ्क्तिवेत् । खातलायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति ॥
 खातलायी च हेमन्ते काले पङ्क्तिश्च सेवते । भुङ्क्ते नयान्मुष्णश्च जरा तं नोपगच्छति ॥
 शिशिरं शुष्कपङ्क्तिश्च नोपप्यान्तश्च सेवते । यत्र धोष्णोदकलायी जरा तं नोपगच्छति ॥
 सघोमांसं नयान्तश्च बालाग्रीहीरमोजनम् । घृतश्च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति ॥
 भुङ्क्ते सदनं क्षुत्काले तृष्णायां पीयतेऽनलम् । नित्यं भुङ्क्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥
 दधि ह्रैयङ्गीनश्च नयनीतं तयागुडम् । नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति ॥
 शुष्कमांसं त्रियं घृदां बालार्कं तण्डुलं दधि । संसेवन्तं जरा याति प्रहृष्टा घ्रातिमिः ॥
 रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्पलाः । तानुपेति जरा दृष्ट्वा घ्रातुभिः सह सुखं ॥
 रजस्पला च सुलटा घ्राणीषा जारदूतिका । मृदपात्रकपली या शत्रुहीना च या सति ॥
 यो हि तासामन्नमोत्री प्रहृष्टा लभेत्तु साः । तेन पापेन सार्द्धं सा जरा तमुपगच्छति ॥
 पापानां ध्याधिभिः सार्द्धं मित्रता सन्तं ध्रुवम् । पापं ध्याधिजरापीतं पित्रपीतं शनिभिः ॥
 पापेन जायते ध्याधिः पापेन जायते जरा । पापेन जायते देव्यं दुःखं शोको मयद्व

तस्मात् पापं महावैरं दोषवीजममङ्गलम् । भारते सन्ततं सन्तो नावरन्ति भयातुराः ॥
 स्वधर्माचारयुक्तञ्च दीक्षितं हरिसेवकम् । गुणैषातिथीनाञ्च भक्तं सक्तं तपःसु च ॥ ५३ ॥
 प्रतोषवासयुक्तञ्च सदा तीर्थनिषेवकम् । रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिषोरोगाः ॥ ५४ ॥
 एतान् जरा न सेयेत् व्याधिसंघञ्च दुर्जयः । सर्वं बोध्यमसमये काले सर्वं प्रसिष्यति
 त्वञ्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति । पित्तश्लेष्मसमीपञ्च ज्वरस्य जनकात्मकः
 सते यथा सञ्चरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु । तमेव विविधोपायं साधयि मत्तो निशामय
 क्षुधि जागृत्यमानायामाहाराभाघ एव च । प्राणिनां जायते पित्तं बभ्रु च मणिपूरके
 तालविल्वफलं भुङ्क्ता जलपानञ्च तत्क्षणम् । तदेव तु भवेत् पित्तं सद्यःप्राणहरं परम्
 ततोदकञ्च शरदि भाद्रे तित्तं विशेषतः । दैवप्रस्तञ्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते ॥
 शर्कराञ्च घन्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम् । वनकं सख्यगव्यञ्च दधि तक्रधियर्जितम्
 विल्वतालफलं पक्वं सर्वमैक्ष्वमेव च । भार्द्रकं मुद्गपूरञ्च तिलपिष्टं शर्कराम् ॥ ६२ ॥
 पित्तक्षयकरं सद्योपलुपिष्टम् परम् । पित्तनाशञ्च तद्धीजमुक्तमन्यं नियोध मे ॥ ६३ ॥
 भोजनानन्तरं क्षानं जलपानं विना तृणा । तिलतैलं क्षिण्धतैलं क्षिण्धमामलकीद्रवम् ॥
 पय्युपित्तान्नं तक्रञ्च पक्वं रम्भाफलं दधि । मेघाम्बु शर्करातोयं सुक्षिण्धजलसेधनम् ॥
 नारिकेलोदकं, रक्तज्ञानं पय्युपिते जले । तत्समुज्जापकफलं सुपक्वं कक्करोदीफलम् ॥ ६६ ॥
 वातज्ञानञ्च, धर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम् । श्वरलभ्रे च तन्नम् महद्वीर्यविनाशनम् ॥
 बहिस्यैवं स्रष्टमङ्गं पक्तैलविशेषकम् । भ्रमणं शुष्कमक्षञ्च शुष्कपकहरीतकी ॥ ६८ ॥
 पिण्डारकमपकञ्च रम्भाफलमपककम् । विसयारः सिन्धुघार भनाहारमपानकम् ॥ ६९ ॥
 सधृतं रोचनाचूर्णं सधृतं शुष्कशर्कराम् । मरीचं पिप्पलं शुष्कभार्द्रकं जीवकं मधु ॥ ७० ॥
 द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि ! सद्यःश्लेष्महराणि च । धलपुष्टिकरण्येव वायुधीजं निशामय
 भोजनानन्तरं सद्योगमनं घ्राणनं तथा । छेदनं वह्नितापञ्च शश्वदुन्नमणमैयुनम् ॥ ७२ ॥
 वृद्धास्त्रीगमनञ्चैव मनःसन्ताप एव च । अतिरुक्षमनाहारं युद्धं कलहमेव च ॥ ७३ ॥
 कटुधावयं, मयं शोकः केवलं वायुकारणम् । आद्याख्यञ्च तन्नम् निशामय तद्विषयम्
 पक्वं रम्भाफलञ्चैव सवीजं शर्करोदकम् । नारिकेलोदकञ्चैव सद्यस्तप्तः सुपिष्टकम् ॥

आदिर्न इति मिथ्या चेन्न वा सत्यम् । मयःपश्यन्तिनामस्य सौवीरं शक्तिरित्युक्तम् ।
 एकमेवविद्येयम् । तिस्रोऽनञ्चेन्न । आहूनीत्यादिनामस्यैवमामन्कीदृशम् । ३१
 शीतलोष्णोदकानां सुस्निग्धवन्मद्रूपम् । ग्लान्यपानप्रकृतं सुस्निग्धवन्मद्रूपम् ।
 एतत्ते कथितं धर्मे ! तपोवागुपजायमानम् । वागवस्त्रिचिन्ताः पुंसां हेतुस्तत्प्राप्तयः ।
 व्याधिर्गन्धश्च कथितस्तत्राणि विविधानि च । तानि व्याधिप्रजाशाय हानिस्तद्विचि-
 तन्नाप्येतानि सर्वाणि व्याधिशयकराणि च । रसायनार्थो मेतु गोपायाश्चमुकुल-
 न शतः कथितुं शक्यः । वाचाप्यं परसरेण च । तेषां सर्वमर्थमत्राहृतानाञ्चविनश्य-
 चेत् रोगेण स्थन्कास्तो मृतः कथय शोभने ! तदुपायं करिष्यामि येन जीयेत् सर्वं ।
 सौतिरुवाच ।

ब्राह्मणस्य ययः श्रुत्वा कन्या विप्रस्यस्य च । कथां कथितुमारेभे सा गान्धर्व्यप्रह्विता ।
 मालायत्युपायम् ।

योगेन प्राणास्तत्याज ब्रह्मणः श्रापहेतुना । समायां लज्जितः कान्तो मम विप्रनिप्रातः ।
 सर्वं श्रुतमपूर्वं च शुभाख्यानं मनोहरम् । मयेद्वये कृतः केयां महत्तम्यं विपदुषिता । ३२
 अधुना मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण । नत्वा यस्यामिनासादयास्यामित्यपूर्वम् ।
 मालायतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । समो जगामदेवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिकम् ।
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मण्डे सौत्प्रिर्षौनकसंवादे मालायतीविष्णुसंवादे
 विपित्साप्रणयने षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

देवानांसमीपेविष्णोर्गमनम् ।

सौतिरुवाच ।

ब्रह्मा द्विजं देवसंघः प्रत्युत्थानं वकार च । परस्परञ्च सम्भाषा यभूत् तत्र संसर्पि-
 मा तं बुबुधिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम् । प्रीर्वापभ्यं विस्मृताश्चमोहिताविष्णुमाप-
 न्ति ।

सुरान् सम्बोध्य विप्रश्च वाचा मधुरयाऽद्विज । उवाच सत्यं परमं प्राणिनां यत् शुभावहम्
प्राज्ञेन उवाच ।

उपवर्हणमाख्येयं कन्या विप्रस्यस्य च । यथावे जीवदानञ्च स्वामिनः शोककर्षिता ॥
अधुना किमनुष्ठानमस्य कार्प्यस्य निश्चितम् । तन्मां ब्रूहि सुराः सर्वे नित्यं यत् समयोचितम्
शतकामा सुरान् सर्वान् साध्वीतेजस्थिनीवरा । अहं क्षेमाय युष्माकमागतो बोधितासदी
स्तुतिः कृता च युष्माभिः श्वेतद्वीपे हरेरपि । युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नागतः
बभूवाकाशघापीति पश्चाद् यास्यति केशवः । विपरीतं कथम्भूतं घापीघाषयमचञ्चलम्
प्राज्ञेनस्य पचः ध्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः । उवाच यत्नतं सत्यं हितं परममङ्गलम् ॥
प्राज्ञोवाच ।

प्रत्युत्रो नारदः शतौ गन्धर्वञ्चोपवर्हणः । योगेन प्राणांस्तत्वाज पुनः शापान्ममैव हि
कालं लक्षयुगं व्याप्य स्तिरित्य महीतले । शूद्रयोनिं कृतः प्राप्य भवितामस्तुतः पुनः
मस्य कालायशेदस्य कश्चिदस्ति द्विजोत्तम । तत्तु धरं सहस्रञ्चैवायुरस्यास्ति साम्प्रतम्
वास्यामि जीवदानञ्च स्वयं विष्णोः प्रसादतः ।

पथेन न स्पृशेत् शापस्तत् करिष्यामि निश्चितम् ॥ १३ ॥
नागतो हरिरत्रेति त्यया यत् कथितं द्विज ! हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विप्रहःकुत भात्मनः
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः । सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः ॥
विः पञ्चव्यातिपद्यनोऽप्युच्चसर्वत्रपायकः । सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुः प्रकीर्तितः

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतः पुमान् ।
भक्त्या च यस्मरेद्विष्णुं स पाह्याम्यन्तरं शुचिः ॥ १७ ॥
कर्मात्मने च मध्ये वा शेवे विष्णुञ्च यः स्मरेत् । परिपूर्णतस्य कर्म यैदिकञ्च मयेद्विज
महं क्षणं च जगतां विधाता संहरो हृत् । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याज्ञापरिपालकः
कालः संहरो लोकान् यमः शास्ता च पापिनाम् ।

उपैति मृत्युः सर्वांश्च भिया यस्य म्रियते सदा ॥ २० ॥
तर्वेशा या च सर्वापाप्रकृतिः सर्वस्य पुरा । सा भीता यस्य पुरतो यस्यैवापरिपालिका

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भवान् । वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कः सात्त्विकः ।
शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य कस्त्यं नाम्ना च भो द्विज !

विमर्त्यकातिरिक्तञ्च शिशुरूपोऽसि साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

विद्वन्मयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम् । हृदिष्यञ्च न जानासि परमात्मानमीश्वरम् ।
यस्मिन् गते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि । प्रयान्ति सर्वे तत्पश्चात् न रूपायुगाः ।

जीवस्तत्प्रतिविम्बश्च मनो ज्ञानञ्च चेतना । प्राणाश्चेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मेधाधृतिः स्मृतिः ।
निद्राद्या च तन्ना च क्षुत्सृज्जापुष्टिरेव च । भ्रष्टासंतुष्टिरिच्छाचक्षुमालंज्जादिकाः स्मृताः ।

प्रयाति यत्पुनः शक्तिरीश्वरे गमनोन्मुखे । एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याज्ञापरिपालकाः ।
ईश्वरे च स्थिते देही ह्यमश्च सर्वकर्मसु । गतेऽस्पृश्यः शवस्त्याज्यः कस्तं वेहीन मन्यते ।

ह्ययं ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः । पदारविन्दमनिशं ध्यायते प्रपुनश्चमः ॥ २४ ॥
युगलक्षं तपस्तप्तं धीरुष्णस्य च वेपसा । तदा यभूय ज्ञानी च जगत् कष्टे ह्यमस्तदा ।

असंकथकालं सुचिरं तपस्तप्तं हरेर्मया । तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले ॥ २५ ॥
अधुना पञ्चवयस्रेण यन्नामगुणकीर्तनम् । गायन् भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु ।

मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्तनात् । शर्वज्ञपन्तं तन्नाम हृद्वा मृत्युः पलायते ।
सर्वप्रज्ञाण्डसंहर्ताऽप्यहं मृत्युञ्जयामिधः । सुचिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्तनम् ।

काले तत्र विन्तीनोऽहमाविर्मृतस्ततः पुनः । न कालो मम संहर्ता न मृत्युर्यत्प्रसादात् ।
गौलोके यः स यैकुण्डे श्वेतर्षाणि स एव च । वंशांशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्पह्निस्कुल्लिङ्गणम् ।

मन्यन्तज्जु विद्यानां युगानामेकस्तमतिः । अष्टाविंशतिमे शक्ते गते च ब्रह्मणो दिनम् ।
पतन्मन्त्र्याविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः । पाते लोथनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मनः ।

अहं कदाचिन्मृगयः कृष्णस्य परमात्मनः । परं महिम्नः को गच्छेत्त जानामि च किञ्चन ।
इत्युत्था शङ्कुरस्तत्र विरामं च शौनक । धर्मश्च धनुमारेभे यः साक्षी सर्वकर्मणाम् ।
धर्म एवाय च ।

यत्पाणिपादौ सर्वत्र बन्धुश्च सर्वदात्मन् । सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च पुरात्मनः ।

मधुनाऽपि स मा विष्णुर्नायाति इति यद्वक्तव्यं । तद्योक्तं तत्कथां बुद्ध्या मुनीनाञ्चमतिश्रमः ।
महानिन्दां भवेद्यत्र नैव साधुऽऽश्रितोऽस्ति । निन्दकाश्चोत्रेभिः सार्द्धं कुम्भीपाकं ब्रजेदुयुगम् ।
श्रुत्वा देवान् महान्निन्दां श्रीविष्णोः स्मरणाद्बुधः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति दुर्लभम् ।
हामतोऽकामतो वापि विष्णुनिन्दां करोति यः । यऽऽश्रितोऽस्ति हसति वा समामध्येन राधमः ।
कुम्भीपाके पचति स यापयति ब्रह्मणो घयः । खलं भवेदपूतञ्च सुरापानं यथा द्विजम् ॥
शीबनरकं पाति धृतन्तत्रैव चेदुधुषम् । विष्णुनिन्दाच्च त्रिविधा ब्रह्मणा कथिता पुरा ॥
प्रत्यक्षञ्च कुरुते किं वा तच्च न मन्यते । देवान्यसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः ॥
स्यान्न निहतितानां स्तिवाय दुयै ब्रह्मणः शतम् । गुरोर्निन्दां यः करोति पितुर्निन्दानराधमः ॥
स पाति कालसूत्रञ्च यावच्छन्द्रदिवा करोति ॥ ५० ॥
विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः । पोष्टा पाता भयशता धरदाता जगत्त्रये ॥
एषाञ्च घबर्नश्रुत्या त्रयाणां विप्रपुंगवः । ग्रहस्योपाचक्षान् देवान् वाचामधुरया पुनः ॥

ब्राह्मण उवाच ।

का हता विष्णुनिन्दाऽहो हे देवाधर्मशालिनः । नागतो हरिरेति व्यर्था काशसरस्यती ॥
इति द्योक्तं मया भद्रं द्रुत धर्माध्यमीश्वराः । सभायां पाशिकाः सन्तोऽग्नन्ति स्म शतपूरयम् ॥
यूयञ्च भायका द्रुत विष्णुः सर्वत्र सन्ततम् । इति चेत् तत्कथयताः श्वेतद्वीपं धराय च
भशांशिनोर्न भेदश्चेदात्मनश्चेति निश्चितम् । फलांहित्वानिपेयन्ते सन्तः पूर्णतमं कथम्
कोटिजन्मदुराराध्यमसाध्यमसतामपि । आशा धलयती पुंसां कृष्णं सेषितुमिच्छति ॥
किं क्षुद्राः किं महान्तश्च पाश्र्चान्तिपरमपदम् । लघुमिच्छति चन्द्रश्च यादुभ्यां वामनो यथा
यो विष्णुर्विषयी विश्वे श्वेतद्वीपनियासहृत् । पूर्वं प्रवेशधर्माध्यदिक्पालाश्च महेश्वराः
यत्नविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्च एवराः । एषं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेषु सन्ततम्
विधानाश्च सुरणाञ्च कः संख्यां कर्तुमीश्वर । सर्वेषामीश्वरः कृष्णो भक्तानुग्रहविप्रः
ऊर्ध्वश्च सर्वप्रलाण्डात् वैकुण्ठं सख्यमीप्सितम् ।
तस्माद्दुर्ध्वश्च गोलोकः पञ्चाशत् कोटियोजनम् ॥ ६२ ॥
तुमुञ्जश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः । सुनन्दनश्च मुदुपार्यदादिमिरावृतः ॥ ६३ ॥

लोके विभुजः कृष्णो रघुनाकांतः सनातनः । गोपाङ्गनादिभिर्मृतोद्विमुक्तैर्गोपपार्श्वैः
परिपूर्णतमं ब्रह्म स चात्मा सर्वदेहिनाम् । स्वेच्छामयश्च विहरेद्रासे घृन्दाघने सदा ॥
तज्ज्योतिर्मण्डलाकारं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् । ध्यायन्तेयोगिनः सन्तः सन्ततञ्च निरामयम्
तर्धनीनीरुदयाम् द्विभुजं पीतवाससम् । फोटिफन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहयम् ॥ १ ॥
किशोरवयसं शश्वत्शान्तं सस्मितमीश्वरम् । ध्यायन्ते वैष्णवाः सन्तः सेवन्ते सत्यविग्रहं
यूयञ्च वैष्णवा ब्रूहि कस्य वंशोद्भवो मयान् । शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्येत्येयमाञ्च पुनः पुनः
यस्य वंशोद्भवोऽहञ्च यस्य शिष्यश्च बालकः । तस्येहं वचनं ध्यानं दैवसंघा निबोधत ।
शीर्षं जीयय गन्धर्वं देवेष्वर सुरेश्वर । व्यक्तोपिचारैः मूर्धः फो घाग्युद्धे किप्रयोजन
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विप्रकृपी जनार्दनः । विरराम समामध्ये प्रजहास च शौनक ॥
इति श्रीमद्भगवद्गीते महापुराणे ब्रह्मसूत्रे विष्णु-सुरसंघसंवादे विष्णुप्रशंसाप्रज्ञयने
सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

गन्धर्वाय जीवदानम् ।

सौतिश्याय ।

देवाः सादं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया । प्रययुर्मालिनीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥
ब्रह्मा कामण्डलुजलं ददौ गात्रे शयस्य च । सञ्चारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः ॥
ज्ञानदानं ददौ तस्मै ज्ञानानन्दः शिष्यः स्वयम् । धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानञ्च ब्राह्म
यद्दिदर्शनमात्रेण यमूय जठरातलः । कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥
तस्य पायोरेधिष्ठानाञ्जगत्प्राणलहरिणः । निःस्वासस्य च सञ्चारः प्राणानाञ्च यमूय
सूर्य्याधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्वमूय ह । वाक्पथं वाणीदर्शनेन शोभा धीदर्शनेन च ॥

शस्तयापि नोत्तमो यथा शेते जडस्तथा । विशिष्टबोधं न प्राप चाधिष्ठानं विनात्मनः ।
प्रहजो पचनात् साध्यानुष्टावपरमेश्वरम् । स्नात्यग्नीध्रं सरित्तोयेधृत्याधौते यथासंसी ।
मालावत्युवाच ।

घ्ने तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम् । विना येन शयाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले ॥
निर्लिङ्गं साक्षिरूपञ्च सर्वेषां सर्वकर्मणु । विद्यामानं न दृष्टञ्च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ॥१०॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वोधारा परात्परा । प्रहविष्णुशिष्यादीनां प्रसूर्यां त्रिगुणात्मिका ।
जगत्प्रष्टा स्वयंप्रह्ला निपतोयस्य सेषया । पाता विष्णुश्च जगतां संहर्ता शङ्करः स्वयम् ।
ध्यायन्ते यं सुताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । सिद्धाश्च योगिनः सन्तः सन्ततं प्रवृत्तैः परम् ।
साकारश्च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम् । परं परेण्यं धरद् धराहं धरकारणम् ॥१४॥
तपफलं तपोयीजं तपसाञ्च फलप्रदम् । स्वयं तपःस्वरूपञ्च सर्वरूपञ्च सर्वतः ॥ १५ ॥
सर्वाधारं सर्वयीजं कर्म तत्कर्मणां फलम् । तेषाञ्च फलदातारं तद्वीजं क्षयकारणम् ॥
स्वयं तेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । सेषाध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना १७
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । धर्तीवरुमनीपञ्च रूपं तत्र मनोहरम् ॥१८॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीपञ्चास्यसमन्वितम् ॥१९॥
कौटिकन्दर्पलाघव्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२०॥
दिमुजं मुखलीहस्तं पीतकीरीयवाससम् । किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम् ॥२१॥
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने धने । कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिप्रेषितम् ॥ २२ ॥
कुत्रचिद् गोपवेशश्च वेष्टितं गोपबालकैः । शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे रम्ये वृन्दावने धने ॥२३॥
नेकरं कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम् । गोलोके विरज्जातीरे पारिजातवने धने ॥२४॥
कुत्रचिद् कणन्तं मयुरं गोपीसम्मोहकारणम् । निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम् ॥
धर्मीकान्तं पार्यदैश्च सेवितञ्च चतुर्भुजैः । कुत्रचित् स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च ॥
वैतदीपे विष्णुरूपं पद्मया परिप्रेषितम् । कुत्रचित् स्वांशकल्या ग्रहाण्डे ग्रहारूपिणम् ।
वयस्वरूपं शिवद् स्वांशेन शिवरूपिणम् । स्वात्मनः षोडशंशेन सर्वाधारं परात्परम् ॥
यं महद्विराटरूपं विश्वीर्यं यस्य लोमसु । लीलया स्वांशकल्या जगतां पालनाय च

नानापतारविभ्रतं धीर्ज्ञं तेषां सनातनम् । यस्मिन् कृत्रनिम् नमनी योगिनां हृदये सनात् ।
 प्राणरूपं प्राणिनाञ्च परमान्मानमीश्वरम् । तञ्च स्तोनुमस्तत्तादृमवशा निर्गुणं त्रिमुक् ।
 निर्लेश्यञ्च निरीदञ्च सारं पाद्वनसोः परम् । यं स्तोनुमश्चमोऽनन्तः सदृशवदनेन च ।
 पञ्चपत्रत्रयगुणैश्च त्रयैश्च गजपत्रत्रयदाननः । यं स्तोनुं न क्षमामाया मोहिनायस्य मायया
 यं स्तोनुं न क्षमाध्रीञ्च जङ्घामूना सगम्यती । यैश्च न शक्यं स्तोनुं के वा विद्वांश्चरेदपि
 किं स्तोमि तमनीहञ्च शोकासां स्त्री परान्तरम् ।

इत्युक्त्वा सा च गन्धर्वो विरराम रनोद् ॥ ३५ ॥

रूपानिधिं प्रणनाम भयात्तां च पुनः पुनः । रुष्णञ्च शक्तिभिः सार्द्धमभिष्टानं वकाय
 भर्तुं रम्यन्तरे तस्याः परमान्मा निगरुतिः ।
 उत्थाय शीघ्रं धीणाञ्च धृत्या ज्ञात्वा च वाससी ॥ ३६ ॥

प्रणनाम देवसङ्घं ब्राह्मणं पुरतः स्तितम् । नेदुर्दुग्धुमयो देवाः पुण्यवृष्टिञ्च चक्रिरे ॥ ३७ ॥
 हृष्टा घोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिरम् । गन्धर्वो देवपुरतो मनसं च जगौ हृष्टम्
 जीवितं पुरतः प्राप देवानाञ्च घरेण च । जगाम पत्न्या सार्द्धञ्च पिता माता च हर्षितः
 उपवर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालायतीं रत्नकोटिं धनानि विविधानि च ॥ ३८ ॥
 प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान् सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम्
 महोत्सवञ्च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जम्बुद्वीपाञ्च स्थस्थानं विप्ररूपी हरिः स्वयम्
 एतत्ते कथितं सर्वं स्तवराजञ्च शीनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत्
 हरिर्भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वैष्णवो जनः । धरार्थो यः पठेद्भक्त्या चास्तिकः परमात्मना

धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते कलम् ।

विद्यार्थो लभते विद्यां धनार्थो लभते धनम् ॥ ४६ ॥

भार्यार्थो लभते भार्यां पुत्रार्थो लभते सुतम् । धर्मार्थो लभते धर्मं यशोऽर्थो लभते यशम्

मृष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजास्रष्टः प्रजां लभेत् ।

रोगातो मुच्यते रोगाद् यदो मुच्येत बन्धनात् ॥ ४८ ॥

अविंशोऽध्यायः]

* श्रीकृष्णकवचवर्णनम् *

६७

यान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत् । दस्युग्रस्तो महारण्ये हिस्रजन्तुसमन्वितः ॥
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे ॥ ४६ ॥
ति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे गन्धर्वजीवदाने महापुरुरस्तोत्रप्रणयनं नाम
अष्टादशोऽध्यायः ।

अविंशोऽध्यायः ।

ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचम् ।

सौतिरुवाच ।

मालावती धनं दृष्ट्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रहर्षिता । वकारविचिर्घवेशां स्वात्मनः स्थामिनः कृते ॥
भक्तुं वकार शुभ्रपां पूजाञ्च समयोचिताम् । तेन सार्द्धं सुरसिका रमे सा सुचिरं मुदा ॥
महापुरुरस्तोत्रञ्च पूजाञ्च कवचं मनुम् । विस्मृतं बोधयामास स्ययं रहसि सुप्रता ॥
पुरा दत्तं घशिष्ठेन स्तोत्रपूजादिकं हरेः । गन्धर्वाय च मालत्यै मन्त्रमेकञ्च पुष्करे ॥ ५ ॥
विस्मृतं स्तोत्रकवचं घशिष्ठश्च कृपानिधिः । गन्धर्वराजं रहसि बोधयामास शूलिनः ॥
एवञ्चकार राज्यञ्च कुबेरमवनोपमे । आश्रमे परमानन्दो गन्धर्वो धान्धर्वैः सह ॥ ६ ॥
यथातथागतामिह स्त्रीभिर्न्यामिरेव च । आगत्य तामिः स्वस्वामी संप्रातः परया मुदा ॥
शौनक उवाच ।

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा ।

दत्तो घशिष्ठैस्ताम्याञ्जनं भवान् घक्तुमर्हति ॥ ८ ॥

ब्रह्मशास्त्रमन्त्रञ्च शूलिनः कवचादिकम् । दत्तं गन्धर्वराजाय घशिष्ठेन च किंपुरा ॥ ९ ॥
अपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम । शङ्करस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम् ॥ १० ॥

सौतिरुवाच ।

एव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम् । तदेव स्तोत्रं दत्तञ्च मन्त्रञ्च कथञ्च शृणु ॥११॥
 नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोडशाक्षरम् ॥
 रा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हटे । पुरा दत्तञ्च कृष्णेन गोलोके शङ्कराय च ॥१२॥
 यानञ्च विष्णोर्बेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम् । मूलेन सर्वं देवञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम् ॥
 तृतीयगुप्तकवचं पितुर्यपन्नान्मया धृतम् । पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना ध्रुवम् ॥
 शूलिने ब्रह्मणे दत्तं गोलोके रासमण्डले । धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमादुतम् ॥१३॥

ब्रह्मोवाच ।

राधाकान्त महाभाग कथञ्च यत् प्रकाशितम् । ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रमोद ॥
 मां महेशञ्च धर्मञ्च भक्तञ्च भक्त्यत्सल । त्वत्प्रसादेन पुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेरा धर्मदं कथञ्च परम् । अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
 यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि । यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कथयेऽपि च ॥
 कुप्य दृष्टिमिमंभृत्या धाना त्रिजगतां भव त्वन्दत्तां भव हे रामो मम तुल्योभयेभ्यः ॥
 हे धर्म! त्वमिमंभृत्या भव साक्षी यः धर्मजाम् । तपसां परलदाताय यूयं भयतमश्चरान् ॥
 ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कथयन्महतिः स्वयम् । अग्निश्छन्दश्च मायत्रो देवोऽहं जगदीश्वरः ॥
 धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः । त्रिलक्षवारपठनान् सिद्धिदं कथञ्च विप्रैः ॥
 योमयेन् सिद्धपथोऽयं मम तुभ्यो भवेन्नु मः । तत्रैतां सिद्धियोगेन धामेन विक्रमेण च ॥
 प्रणयो हि शिवः पातु ममो रागेभ्यराय च । मातुं पापान्नेत्रयुग्मं नमो राधेऽराय च ॥
 कृष्णं पापान् धात्रयुग्मं हे हरे प्राणमेव च । त्रिदिव्यं यद्विज्ञायातु कृष्णायैतिलसर्पत ॥
 श्रीकृष्णायैतिलसर्पतः । श्री कृष्णाय नमो यत्तद्वत् । पूर्वध्रुवजटायम् ॥
 नमो गोपाङ्गुलाय स्वयं पातु ममोऽराय च । दम्पतीन्मोहयुग्मं नमो गोपीधराय च ॥
 नमो गोपाङ्गुलाय स्वयं पातु ममोऽराय च । दम्पतीन्मोहयुग्मं नमो गोपीधराय च ॥
 कथं युग्मं ममोऽराय । श्री विष्णवे स्वाहेति च कटुलसर्पतोऽयम् ॥

उत्तमविशोऽध्यायः]

ॐ शिवं कथं च वचनम् ॐ

ओं हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽचतु । ॐ गोवर्द्धनधारिणे स्याद्वा सर्वशरीरकम् ।

प्राच्यां मां पातु धीरुष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः ।

दक्षिणे पातु गोर्षाशो नैऋत्यां नन्दनन्दनः ॥ ३३ ॥

पारुण्यां पातु गोविन्दो घायव्यां राधिकेभ्यः । उत्तरेषां तु रासेऽप्येष्ट्यामव्युतः स्वयम् ॥

सन्तनं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम् । इति ते कथितं ब्रह्मन् कथय परमाद्भुतम् ॥

मम जीयतनुष्वञ्च युष्मभ्यं इत्तमेव च । अथमेघसहस्राणि धाजपेयशतानि च ॥

कदा नार्हन्ति तान्येव कथयस्वैव धारणान् ॥ ३६ ॥

शुक्लमभ्यर्च्य विधिबद्धस्त्राण्डद्वारचन्दनैः । स्नात्वा तञ्च नमस्कृत्य कथय धारयेन् सुधीः ॥

कथयत्येव प्रसादेन जीयन्मुक्तो भवेन्नरः । यदि स्यात्सिद्धकथयो विष्णुरेव मयेदृष्टिजः ॥

इति धीमत्प्रयैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मगण्डे महापुरुष-ब्रह्माण्डपावनं नाम धीरुष्णकथयं
समाप्तम् ।

सौमिरव्याच ।

शिवस्य कथयं स्तोत्रं धूयतामिति शौनक । वशिष्ठेन च यदुक्तं गण्डर्पायं च यो मनुः ।

ओं नमो भगवते शिवाय स्यादेति च मनुः । दत्तो वशिष्ठेन पुरा पुष्करे कृत्वा यमो ॥

भयं मन्त्रो रायणाय प्रदत्तो ब्राह्मणा पुरा । मयं शम्भुश्च बाणाय तथा दुर्पांससेपुरा ॥

मूलेन सर्वं देयञ्च मयेद्यादिषुमुत्तमम् । ध्यायेद्विन्वादिषु ध्यानं वेदेनैव सर्वसम्मतम् ॥

ओं नमो महादेवाय ।

वागेश्वर उवाच ।

महेश्वर महाभाग कथयं यन् प्रकाशितम् । संसारपावनं नाम हरया कथय प्रभो ॥ ४३ ॥

महेश्वर उवाच ।

१२७ पश्यामि हे पत्न ! कथयं परमाद्भुतम् । भट्टं नृपं प्रदाम्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥

पुरा दुर्पांससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च । ममैषेदं कथयं भक्त्या यो धारयेन् सुधीः ॥

अनुं शत्रोति त्रैलोक्यं भगवन्नयतीत्यादि ॥ ४६ ॥

संसारपापतप्यान् कथयन् प्रजापतिः । अग्निगन्धर्व गायत्री देवाऽहम् महेभ्यः ।

धर्माधिकाप्रमोक्षेयु चिनिर्गोमः प्रकीर्तितः ॥ ४७ ॥

गङ्गानक्षत्रपेनैव मिदित् कथनं भवेत् ।

यो भवेत् मिदिकथनो मम तुल्यो भवेद्भुवि । तेजसा मिदिरोगं न तन्मापि प्रमत्तम् ।

शम्भुर्मे मस्तकं पातु शुभं पातु महेभ्यः । दन्तर्निः नीलकण्ठोऽप्यपरोष्ठं ह्यः स्यम् ।

कण्ठं पातु सन्द्रचूडः श्वर्धो मृगमयाहनः । यशःश्वत् नीलकण्ठः पातु दृष्टं दिग्गच्छ ।

सर्पाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिशु न मर्यदा । स्वर्जं आगच्छे श्वत् शम्भुर्मे पातु सत्त्वम् ।

इति ते कथितं घाण कथयं परमावुधुनाम् । पार्श्वं पार्श्वं न क्षान्त्वं गोपनीयं प्रयत्नतः ।

यत् फलं सर्वतीर्थानां दानेन लभते नरः । तत् फलं लभते नूनं कथयन्मयाचारणम् ।

इदं कथयमनात्पा भजेन्मायः सुमन्दर्षी । शतलक्षप्रजतोऽपि न मन्त्रः मिद्विदायकः ।

इति श्रीप्रह्वयैवतं शङ्करकथयं समाप्तम् ।

सौतिरयम् ।

इदञ्च कथयं प्रोक्तं स्तोत्रञ्च शृणु शौनक । मन्त्रराजः कथ्यतरत्यंशिष्ठो दत्तवान् पुरा ।

ओं नमः शिवाय ।

घाणेभ्य उवाच ।

यन्दे सुराणां सास्त्रं सुरेशं नीललोहितम् । योगीश्वरं योगवीजं योगिनाञ्च गुरोर्गुह्यम् ।

ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानवीजं सनातनम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥ ५३ ॥

तपोरूपं तपोवीजं तपोधनधनं धरम् । धरं धरेण्यं धरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः ॥ ५४ ॥

कारणं भक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम् ॥ ५५ ॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ५६ ॥

विषयाणां विभेदेन विभ्रन्तं बहुरूपकम् । जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम् ॥ ५७ ॥

घायुरूपं चन्द्ररूपं सूर्यरूपं महत्प्रभुम् । आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया ॥ ५८ ॥

मत्तानुग्रहकातरम् । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तोमि तं प्रभुम् ॥

अपरिच्छिन्नाग्निमान्महो पाद्वनतोः परम् ।

प्राज्ञचर्माम्बरधरं कृष्णस्यं दिग्गम्भाम् । त्रिशूलवद्विशपरं सस्मिन् चन्द्रदोणम् ॥ ६४ ॥

सुतया स्तपराजेन निव्यं पाणः सुखं यतः । प्रणमेन्शङ्करं मनयादुर्पासाधमुनीश्वरः ॥

तं दत्तं पश्यान् गन्धर्वाय पुरा मुने । कथितञ्च महागन्तोत्रं शृण्वितः परमाद्भुतम् ॥

तं स्तोत्रं महापुण्यं पठेद्भक्त्या यः यो नरः । शान्त्यस्य सर्वतीर्थानां फलप्राप्तो निनिश्चितम् ।

अपुत्रो लभते पुत्रं परमैकं शृणोति यः ॥ ६६ ॥

संयतञ्च हविष्याशीं प्रणम्य शङ्करं गुहम् ।

गल्लक्ष्मो महागुली परमैकं शृणोति यः । अवश्यं मुच्यते रोगान्ध्यासपाक्वमिति धृतम् ।

काणगादेऽपि यदोपोनैष प्राप्नोति निवृत्तिम् । स्तोत्रं धृत्वा मासमेकं मुच्यते वन्धनाद्भुयम् ।

घृष्टराग्यो लभेद्वाग्यं भक्त्या मार्गं शृणोति यः । मार्गं धृत्वा संयतञ्च लभेद्घृष्टपत्नीधनम् ।

यस्मिन् प्रसक्तो परमैकमाप्तिर्यो यः शृणोति च । निश्चितं मुच्यते रोगान्शङ्करस्य प्रसादतः ।

यः शृणोति सदा भक्त्या स्तपराजमिमं द्विज । तस्यास्तावत्त्रिभुवनेनास्ति पि क्षिप्रशौनकः ।

यदाचिद्गुपिच्छेदां न भवेत्तस्य भारते । अथर्वं परमैश्वर्यं लभते तत्र संशयः ॥

सुखं यतोऽस्ति भक्त्या यः मासमेकं शृणोति यः । अभाष्यो लभते भाष्यां सुपिनीतां सतीं पराम् ।

महामूर्खञ्च दुर्मेधो मासमेकं शृणोति यः । बुद्धिं धियाञ्च लभते गुरुपदेशमाश्रितः ॥ ७३ ॥

कर्मदुःखी दद्विधं मार्गं भक्त्या शृणोति यः । धुर्यं वित्तं भवेत्तस्य शङ्करस्य प्रसादतः ।

इह लोके सुखं भुङ्क्त्वा हृत्वा कौत्सिमुदुलंभाम् । नानाप्रकारधर्मं ज्ञात्वा त्यक्ते शङ्करालयम् ।

पार्यदप्रयतो भूत्वा सेवते तत्र शङ्करम् । यः शृणोति त्रिसन्ध्यञ्च नित्यं स्तोत्रमनुत्तमम् ।

इति श्रीप्रह्लादचरितं महापुराणे प्रह्लादखण्डे सौति-शौनक-संवादे स्तपराजोऽय-

मूनर्विशोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः ।

उपवर्हणजन्मकथनम् ।

सौतिस्त्वाच ।

मुदा मालावतीसार्द्धं गन्धर्वञ्चोपवर्हणः । रेमेकालावशेषञ्च तामिच्छ निजने वने ॥ १
गन्धर्वराजो मुमुदे पुत्रदारादिभिः सह । नानाविधं कृत्यवरं महत् पुण्यं धकार ॥ २
राजस्य धुमुजे राजा कुवेरभवनोपमे । रेमे सुशीलया सार्द्धं स्त्रियीघनयुक्तया ॥ ३
गन्धर्वराजः काले च गङ्गातीरे मनोहरे । पत्न्या सार्द्धमसूंस्यक्तया वैकुण्ठञ्च ययौमुद
शैवः शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया । यमूय दासो वैकुण्ठे विष्णोः श्यामचतुर्भुजः
कृत्वा पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वञ्चोपवर्हणः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ विप्रधनानि विविधानि ॥ ४
काले स्वयं ब्रह्मशापात् प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः । स यत्ने वृषलीगर्भे ब्रह्मवीजेन शौनर
मालावती वद्विकुण्डे पुष्करे भारते भुवि । कृत्वा तु वाञ्छितं कामं प्राणांस्तत्याजसा सत
सुज्ञयस्य तु पत्न्याश्च मनुवंशोद्भवस्य च । जज्ञे नृपस्य स्त्राध्वीसापुण्याजातिस्मराव
उपवर्हणगन्धर्वः पतिर्मे भवितेति च । इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीयरा ॥
शौनक उवाच ।

ब्रह्मवीर्यान् शूद्रपत्न्यां गन्धर्वञ्चोपवर्हणः । जातः केन प्रकाणं तद्व्यान् धत्तुमर्हति ॥
सौतिगवाच ।

कान्यकुब्जे च देशे च दुर्मिनी नाम राजकः । कलावती तस्यपत्नी यन्ध्याद्यापिपतिव्रता
स्वामिदोषेण सा यन्ध्या काले च मर्त्यराश्या । उपन्येयनेघोरे नारदं काश्यपं मुनिम
ज्यायमानश्च धीरुत्तं ज्यन्तं प्रयत्नेजसा । तप्ती सुवेशो कृत्वा साध्यानान्तश्च मुनेःपुर
प्रीत्यप्रज्याह्मार्चण्डप्रभातुयेन तेजसा । तप्तं दूततोऽप्येवं समीपं गन्तुमशमा
ध्यातान्ते च मुनिधेयः परः कृष्णवराहः । ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्त्रियीघनाम्
धारत्यागवपसांभां शरन्तू जलोचनाम् । शरन्तूयं जगन्नाम्नां शरन्तूयं भूषिताम्

गृहश्रितम्यभारतां पीनश्रोणिपयोधराम् । शोमितां पीतवस्त्रेण सस्मितां रक्तलोचनाम् ।
मोहितां मुनिरूपेण कामवाणप्रपीडिताम् । दर्शयन्तीं स्तनश्रोणीं मैथुनासक्तचेतसा ॥
सिन्दूरविन्दुभूषाढ्यामुच्चारुक्ज्वलोज्ज्वलाम् । पदालकशोभाढ्यां रूपेणैव यथोर्वशीम् ।
मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने । कस्य पत्नी कथं यात्र सत्यं ब्रूहि च पुंश्चलि ।
मुनेश्च घचनं धृत्या कम्पिता च कलावती । उवाच विनयेनैव कृत्वा च धीहरिं हृदि ॥
कलावत्युवाच ।

गोपिकाहं द्विजश्रेष्ठ दुमिलस्य च कामिनी । पुत्रार्थिनी चागताहं त्वन्मूलं भर्तुराज्ञया ।
घोर्प्याधानं कुरु मयि स्त्रीमोपेक्षा ह्युपस्थिता । तेजीयसां न दोषाय बह्वैः सर्वमुजोयथा ।
घृणलीबचनं धृत्या शुकोप मुनिसत्तमः । उवाच नीतं सत्यञ्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥
काश्यप उवाच ।

यः स्थलक्ष्मीञ्च भोगार्हां पराय दातुमिच्छति । तं सा त्यजति मूढश्च वेद्यादरतिधुयम् ।
न त्वं दुमिलमोगार्हां पुनरेव भविष्यसि । विरक्तेन स्वयं त्यक्ता न गृह्णाति च त्वां पुनः ।
॥ शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः । स चण्डालो भवेत् सत्यं न कर्माहो द्विजातिषु ।
पितृभ्रात्रे च यदेव शिलास्पर्शं सुरार्चने । नाधिकारश्च तस्मैव मित्याह कमलोद्भवः ॥ २६ ॥
कुम्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरयान् ।

मातामहान् स्वात्मनश्च दश पूर्वान् दशापरान् ॥ ३० ॥

सर्वपणं मूत्रमेव पिण्डं सद्यः पुरीषकम् । शालग्रामस्य तन्स्पर्शं चोपवाप्तः विरात्रकम् ॥
सर्विष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम् । सन्यासिनां ब्राह्मणानां तदन्नञ्च पुरीषवत् ॥
कुम्भीपाके पच्यते स शकान्तं यावदेव हि । एकविंशतिपुल्यैः सार्द्धं सत्यञ्च पुंश्चलि ॥

पत्रोच्छिष्टञ्च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाधमः ।

तत्तुल्योऽघरभोजी चैवेत्याङ्गिरसमाप्तिम् ॥ ३४ ॥

शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः । स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राधृतुर्दशाः ॥
अष्टादशेन्द्रावच्छिन्नं कालञ्च कालसूत्रके । ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता किमिति धुयम् ॥
सतश्चण्डालयोनी च लब्धा जन्म च ब्राह्मणी । शूद्रश्च कुप्यो भवति क्षातिमिः परिवर्जितः ॥

अनुग्राहा न मुनिप्रेष्ठो विराम्य न शीनक । वृन्दी तन् पुत्राणां भौ मुनिप्रेष्ठोऽनुग्राहः ।
 एतस्मिन्मन्त्रे नेन यथा यानि ॥ मेनका । तस्या उरं स्पर्शं कृत्वा मुनेर्गोत्रं पात ॥
 अनुग्राहा न वृन्दी पीत्वा तत्र क्षणं मुदा । मुनि प्रणम्य प्रहृष्टा प्रार्थी मन्तुरनिष्कम् ।
 गत्वा प्रणम्य द्रुमिन् काला कान्तं मनोहम् । सर्वं निवेद्यामास वृत्तान्तं गर्भदेवम् ।
 कलापनीयम् : धृत्या प्रहृष्टवर्नेक्षणः । उद्यान कान्तो मन्तुर् वसिष्ठामनुग्राहम् ॥४८॥

द्रुमिन् उवाच ।

विप्रस्य पीत्यं तद्गर्भं घेष्णवस्य महात्मनः । घेष्णवो भविता बालः स्वश्च भाग्यवती सती ।

यद्गर्भं घेष्णवो जातो यस्य पीत्यं वा सति ! ।

तयोर्वाति न घेकुण्डं पुरगार्जा शनं शतम् ॥

तौ च विष्णुविमानेन सद्गन्निर्मितेन च । यानौ घेकुण्डनगरं जन्ममृग्युजगाहम् ॥४९॥

कस्यचित् प्राहणस्यैव गेहं गच्छ शुमानेन । पञ्चान्ममान्निहतं मन्त्रे याम्यसीति हरेः पुत्रम् ।

इत्युत्था गोपराजश्च स्नान्वा कृत्वा तु तर्पणम् ।

संपूज्यामीष्टेयश्च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४९ ॥

अध्वानाश्च वनुर्लक्षं गजानां लक्षमेव च । शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥५०॥

उच्चैःश्रवःपञ्चलक्षं रथानाश्च सहस्रकम् । शकटानां त्रिलक्षश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

गवां द्वादशलक्षश्च महिषाणां त्रिलक्षकम् । त्रिलक्षं राजहंस्तानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

पारावतानां लक्षश्च शुकानाश्च शतं मुने । लक्षश्च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ।

प्रामाणाश्च सहस्रश्च नगराणां शतं शतम् । धान्यतण्डुलशैलश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानाश्च सहस्रकम् । मुद्राणां कोटिकलसं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

ददौ तैजसपत्राणां भूषणानामसंख्यकम् । तां स्त्रियं रत्नभूषाढ्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्वाहो हरिं स्मरन् ।

जगाम घदरीं गोपो मनोगामी मुदान्वितः ॥ ५५ ॥

तत्र मासं तपः कृत्वा गङ्गातीरे मनोहरे । प्राणांस्तत्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः ॥

च विष्णुविमानेन खेन्द्रनिर्मितेन च । संयुक्तो विष्णुदूतैश्च घेकुण्डश्च जगाम ॥५६॥

तत्र प्रायः हरेर्दास्यं हरिदासो बभूव सः । वृत्तान्तञ्च कलाचत्वाः धूयतामिति शौनक ॥
 गते कलाचती नाथे उच्चैश्च प्रहरोद ह । वही प्राणांस्थितुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता ॥
 ब्राह्मणोमातरित्युक्त्या तां गृहीत्वा मुदान्वितः । जगाम रत्नपूर्णञ्च स्वगेहञ्च क्षणेन च ॥
 सा विप्रगेहे साध्वी च सुपावतनयं धरम् । तत्तत्काञ्चनवर्णामं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥६१॥
 तत्रस्था योषितः सर्वा ददृशुर्चालकं शुभम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा ॥
 कामदेवाधिकं रूपे चन्द्राधिकशुभाननम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥६२॥
 हस्तापादादिललितं सुकपोलं मनोहरम् । पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं चाऽतुलमुज्ज्वलम् ॥
 करयुग्मं चाऽतुलञ्च रुदन्तञ्च स्तनार्धिनम् । योषितो बालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा ।
 पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टञ्च मनसं ह । स बालो बभूवे तत्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥६३॥
 पुपोव ब्राह्मणन्ताञ्च सपुत्राञ्च यथा सुताम् ॥६४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मण्डे सौत्तिशौनकसंवादे उपवर्णजन्मकथनं
 नाम विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

उपवर्णजन्मान्तरकथनम् ।

सौत्तिस्वाच ।

मूय काले बालञ्च क्रमेण पञ्चहायनः । जातिस्मरौ ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रः स्मृतः सदा ॥१॥
 गते सततं रुष्णयशोनामगुणादिकम् । क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः ॥२॥
 रुष्णसम्बन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै ।
 तत्सम्बन्धि पुराणञ्च तत्र तिष्ठति बालकः ॥ ३ ॥
 लेपूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेदमीप्सितम् । धूलिषु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेदपि ॥४॥

एकदाशिशुमाता च गच्छन्तीनिशिघर्त्मनि । ममार सर्पदष्टा च तत्क्षणं स्मरतीहरिम् ॥
सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती । विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्रत्ननिर्मितेन च ॥
प्रातर्यालो द्विजैःसाङ्गं प्रययौ विप्रमन्दिरान् । तत्त्वज्ञानं ददुस्तस्मैब्राह्मणाश्च कृपालवः ॥
ब्रह्मपुराःशिशुं त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल । महाज्ञानी शिष्यस्तस्मैगङ्गातीरे मनोहरे ॥
तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जज्ञाप सः । श्रुत्विपासारोगशोकहरं वेदेषु दुर्लभम् ॥
महारण्ये च घोरे च अभवत्थमूलसन्निधौ । हृत्पायोगासनं तस्मै सुचिरं तत्र बालकः ॥

शौनक उवाच ।

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥
सौति उवाच ।

कृष्णेन दत्तो गोलोके कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ॥
तद्ब्रह्मा ददौ भक्त्या कुमाराय च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ॥
श्रीं श्रीं नमो भगवते रासमण्डलेश्वराय । धीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥
महापुरुषस्तोत्रश्च पूर्वोक्तं कथञ्चन्यत् । अस्योपयोगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ॥ ३१ ॥
तैजोमण्डलरूपे च सूर्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्याने योगैः सिद्धगणैः सुरैः ॥
ध्यायन्ते धैर्येण च तदभ्यन्तरसन्निधौ । अतीयकमनीया निर्वचनीयं मनोहरम् ॥
नवीनजलद्रव्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्-पार्वणचन्द्रास्यं एकविंश्याधिकाधरम् ॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ।

सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तावलम्बनेन च ॥ ३५ ॥

कोटि-कन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्ष्मभाजुर्ध्वं पुण्ध्रीयुक्तविग्रहम् ॥
त्रिमङ्गुलमङ्गिमायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम् । रत्नकेयूरचलयरत्ननूपुरभूषितम् ॥ ३७ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डसलविराजितम् । मयूरपुच्छचूडश्च रत्नमालाविभूषितम् ॥ ३८ ॥
शोभितं जानुपर्यन्तं मालतीयनमालया । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुहकारकम् ॥ ३९ ॥
मणिनाभौस्तु मेन्द्रेण चक्षुष्यलसमुज्ज्वलम् । वीक्षितं गोपिकाभिश्च शब्दद्विजमलोचनैः ॥
सिरयौयनयुक्ताभिर्येष्टितामिश्च सन्ततम् । भूषणैर्मणितामिश्च राधावशः सलसितम् ॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मपुत्रन्युत्पत्तिकथनम् ।

सौति उवाच ।

कतिकल्पान्तरेऽतीतेऽब्रह्मः सृष्टिविधौ पुनः । मरीचिमिथैर्मुनिभिः सार्द्धं कण्ठात् यभूयसः ॥
 विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशात् यभूय सः । मारुदध्वेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना ॥
 यः पुत्रश्चेत्तसो धातुर्ध्रुव मुनिपुङ्गवः । तेन प्रचेता इति च नामचक्रं पितामहः ॥ ३ ॥
 यभूय धातुर्ध्रुवः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः । सर्धकर्मणि दक्षश्च तेन दक्षः प्रकीर्तितः ॥
 वेदेषु कर्दमः शशश्रृङ्गायायां पर्वते स्फुटः । यभूय कर्दमात् बालः कर्दमस्तेन कीर्तितः ॥
 तेजोभेदे मरीचिश्च वेदेषु पर्वते स्फुटम् । जातः सद्योऽतितेजसी मरीचिस्तेन कीर्तितः ॥
 क्रतुसंघश्च बालेन हृतो जन्मान्तरेऽधुना । ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते ॥
 प्रघनाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्च बालकः । इरस्तेजस्वि यच्चनोऽप्यङ्गिरास्तेन कीर्तितः ॥
 अतितेजस्विनि भृगुर्यर्चते नाम्नि शौनक ! ।
 जातः सद्योऽतितेजस्यी भृगुस्तेन प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥
 बालोऽप्यदणवर्णश्च जातः सद्योऽतिनेत्रसा । प्रज्वलन् दूर्ध्वतपसा चारुणिस्तेन कीर्तितः ॥
 हंसा आत्मवशायस्य योगेन योगिनीध्रुवम् । बालः पद्मयोगीन्द्रस्तेन हंसी प्रकीर्तितः ॥
 पद्मामृतश्च शिष्यश्च जातः सद्यो हि बालकः । अतिप्रियश्च धातुश्च पशितस्तेन कीर्तितः ॥
 सततं यस्य यज्ञश्च तपःसु बालकस्य च । प्रकीर्तितो यतिस्तेन संयतः सर्धकर्मसु ॥
 पुलस्तपःसु वेदेषु यतते हः स्फुटेऽपि च । स्फुटस्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः ॥
 पुलस्तपः समूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम् । तपःसंघस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालकः ॥
 त्रिगुणायां प्रकृत्यां त्रिविष्णवाश्च प्रवर्तते । तयोर्मक्तिः समाप्यस्य तेन बालोऽत्रिदध्यते ॥
 जटावह्निशिखारूपाः पञ्च सन्ति च मस्तके । तपस्तेजोमवायस्य सच पञ्चशिखः स्मृतः ॥
 अपान्तरतमे देशे तपस्तेषां जन्यजन्मनि । अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्तितम् ॥

इयं सतः समाप्ता नि वल्लभं प्राप्तेत्यगन् ।

ऊर्ध्वं समायतामग्निं वायुमग्नेन प्रकीर्तितः ॥ १८ ॥

अथ शरीरस्य भूतानि प्रकाशितानि ॥ २८ ॥
 तत्राप्येवमवाच्यं ॥ शरीरस्य भूतानि ॥ तत्राप्येवमवाच्यं ॥
 शरीरस्य भूतानि ॥ तत्राप्येवमवाच्यं ॥

इदं प्रथमोऽध्यायः । मन्त्रैर्दत्तेषु मार्गैः ।
सौमित्रव्यासः ।

विष्णुः सत्यगुणः पाताप्रहान्प्रशमोऽगुणः । तमोगुणान्ने रुद्राश्च दुर्निशान्मपदूतः ।
कालाग्निद्वः संहर्ता तेष्वेकः शङ्खगणेशकः । शुद्धमयम्यरुद्र शिवश्च शिवदः सनान् ।
भक्त्ये कृष्णस्य च कालास्तापंशोविष्णुशङ्खरी । गर्भोऽस्यम्यरुद्रोऽपिपूर्णतमस्य च ।
उक्तंन्द्रोद्घेकाले कथं विस्मरसि द्विज । मायया मोहिता सर्वे मुनीनाञ्च मतिव्रजः ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२६॥
ब्रह्मास्त्रपुं पुर्यपुत्रानुयाच ते न सेहिरे । तेनप्रकोपितोधाता रुद्राः कोपोद्घवा मुने ।
सनकश्चसनन्दश्च तौ द्वापानन्दयाचको । भानन्दिनोचयालो ह्यौ भक्तिपूर्णतमौसह ।
सनातनश्चश्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमःस्ययम् । तद्भक्तस्तत्समःसत्यंतेन बालःसनातनः ।
सनत्सु नित्ययचनः कुमारः शिशुवाचकः । सनत्कुमारं तेनेममुयाच कमलोद्घवः ॥ २७ ॥

ब्रह्मणो धातुकानाञ्च व्युत्पत्तिः कथिता मुने ।

साम्प्रतं नारदाख्यानं श्रूयताञ्च यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्थानिकसंवादे ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनं
अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

ब्रह्मनारदसंवादवर्णनम् ।

सौतिश्रवाच ।

श्रेष्ठा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वबालकान् । नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्तुंश्च शौनक ॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखायहम् । उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारंगम् ॥ २ ॥
प्रश्नोवाच ।

पहि यत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणयत्नम् । ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारकम् ॥ ३ ॥
सर्वेषामपि बन्धानां जनकः परमो गुरुः । विद्यादाता मन्त्रदाता ह्यौ समौ च पितुःपरी
षदाह जनकः पुत्रः पिद्यादाता च पालकः । ममाज्ञया च मत्प्रीत्या कुत दारपत्निहम् ॥

स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाज्ञां पालयेद्गुरोः ।

न क्षेमं तस्य मृदस्य यो गुरोर्यचस्करः ॥ ६ ॥

स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान् ।

गुरोर्यचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे ॥ ७ ॥

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च प्रधानः पुण्यवान् गृही । स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तञ्च मन्दिरं तपसः फलम्
पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः । सर्वे गृहस्थमापान्ति निपानमिष धेनवः ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा । इह पतन् सुखं पुण्यं स्वर्गमोगःपरप्रव
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः । यशस्वी पुण्यवाञ्छेयकीर्तिमान्धनधानसुखी
यशस्वी कीर्तिमान् यो हि मृतो जीवति सन्ततम् ।

यशः कीर्तिविहीनो हि जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ १२ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्या नारदो मुनिसत्तमः । उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठोऽष्टतालुफः ॥
नारद उवाच ।

एषदा धाम्निरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः । दानिर्भूय दैवेन महती वायशाम्करी ॥ १४ ॥
यया प्रातश्च स्वनशापान्गान्धर्वशौद्रमेव च । जन्मकर्म च मन्त्रशापान्मृत्युमपूज्योमवेमय

यभूय शापो मुक्तो मे काले मे मन्त्रिता विजे । दोषाय कल्पने शत्रुद्वितीयो न ।
स पिता स गुणेश्वरः स पुत्रः स मदीश्वरः । यः श्रोतुं श्रुत्वात्तमं हृदयमन्त्रितम्
असद्वर्त्मनि चाज्ञानानु गच्छन्ति यदि बालकाः । निवर्तयन्ति तानि स पिताकलः ।

कागदित्या कृष्णपादे भक्तिग्यागञ्च यः पिता ।

अन्यस्मिन् विषये पुत्रं स किं हन्त प्रयत्नयेत् ॥ १६ ॥

दागप्रदो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च । नः स्वर्गमक्तिमुक्तिकर्मणा व्यप
योगितस्त्रिपिपा ग्रामन् गृहिणां मृदुचेतसाम् ।

साध्वी भोग्या च कुलदाम्नाः सर्वाः स्वार्थतत्पराः ॥ १७ ॥

परलोकमिया साध्वी तथेहयशसात्मनः । कामस्नेहाद्य कुले भक्तुः सेपाञ्च स
भोग्याभोगार्थिनीशयत् कामस्नेहेनकेवलम् । कुले कान्तसेपाञ्च नच भोग्या
पञ्चालङ्कारसम्भोगं सुस्निग्धाहारमुत्तमम् । यावन्प्रदोति सा भोग्यातायव्यया
कुलालङ्कारसमानारी कुलटा कुलनाशिनी । कपटान् कुले सेवां स्यामिनो न च
सदा पुंयोगमार्शसुर्मनसा मदनातुरा । आहारादधिकं जारं प्रार्थयन्ती नयं नयम
जारार्थं स्वपतिं तातद्वन्तुमिच्छति पुञ्चली । तस्यां यो विश्वसेन्मूढो जीयन्तस्य नि
कथितापोपितः सर्पाः उत्तमाधममध्यमाः । स्वात्मरामाधिज्ञानन्तिमनस्त्रासां नय
हृदयं क्षुरधारामं शरत्पद्मोत्सवं मुखम् । सुधासमं सुमधुरं घघनं स्वार्थसिद्धये
प्रकोपे विषतुल्यञ्च विश्वासे सर्वनाशनम् । दुर्बलं तदमिश्रायं निगूढं कर्म केवलं
सदा तासामधिनयः प्रबलं साहसं परम् । दोषोत्कर्षो हलोत्कर्षः शश्वन्मायादु
पुंसश्चाष्टगुणः कामः शश्वत्कामोजगद्गुरो । आहारो द्विगुणो नित्यं नैष्ठिक्यञ्च व
कोपः पुंसः षड्गुणश्च व्यवसायश्च निश्चितम् । यत्रेमे दोषनिवहाः कास्या तत्र पि
का मीडा किं सुखं पुंसो विष्णुत्रपूयवेश्मनि । तेजः प्रणष्टं सम्भोगे दिवालापेय
धनक्षयोऽतिमप्रीतो चात्यासक्तौ वपुःक्षयः । साहित्ये पीडनं नष्टं कलहे मान्यत

१. १. विश्वासे ब्रह्मन्तारीषु किंसुखम् । यावद्वनी च तेजस्योत्प्रीकोयोप

गिणं निर्द्वन्द्वं वृद्धं योषिदु वा प्रेक्षते प्रियम् । लोकावागमयात्तस्मै ददात्पाहाय्मत्पक्वम्
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्नात्मगमो यथा ॥ ३८ ॥

सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वान्मायमेश्वरो भवान् ।

अनुग्रहं कुरु विमो ! विद्वान् देहि साधनम् ।

हृत्पुण्यमर्त्तिं प्रार्थयामि त्वयि कलङ्कनरोः परे ॥ ३९ ॥

पुनरा नारदस्तत्र भूत्वा तत्तत्पदाम्बुजम् । भागां यवाचैः पितरं गन्तुं तपसि मङ्गले ॥

द्वात्रिंशत्युतो भूत्वा भक्तिमन्नात्मकन्धरः । हृत्वा प्रदक्षिणं नृत्या ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः

पञ्चलं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतां मुने । दतीदौघैर्मृककण्ठं महासांसारिको यथा ॥

नि भूत्वा समादिङ्गाद्यं धुधुम्बं च पुनः पुनः । चिरं यश्नसि हृत्वा च वासयामास जानुनि

स्वान्मारामेश्वरो ब्रह्मा योसिन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

भैरवं सोढुं न शशाकं पिच्छेन्दो दुःसहो नृणाम् ॥ ४० ॥

कालः पुनर्भेदेन मोहितो विष्णुमायया । शोकात्तां वक्तुमारिभे सुतं सम्बोध्य शीतक

इति धीमन्प्रवृत्तिर्न महापुण्ये ब्रह्मण्यष्टे ब्रह्मनारदसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

नारदं प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्राह्मण उपदेशः ।

धर्मप्रदीपः ।

यं गच्छ नारदं प्रवृत्तिर्न सारकपञ्चि । अहं वाक्यमिदं श्रोतुं कं विजानुं हृत्पुण्यमीदृशम्

वनकाद्यं सतन्त्रं च तृतीयं सतन्त्रम् । सतन्त्रमाग्रे धैर्यात्तां चतुर्गुणं एव च ॥ २ ॥

लोकां दंती वाक्यमिदं श्रोतुं पञ्चमिदं गच्छ । पुत्रान्मायिपिनः सर्वं किं मे संसारकर्मणि

प्राप्तये मरीचिर्न भङ्गिनाद्यं भृगुमनसा । दन्तिरितिः कर्ममयं प्रवेष्टाद्यं कर्तुमनुः ॥

शिष्टो घशगः शश्वत् सर्वेषु च सुतेषु च । अन्येविवेकिनोऽसाध्याविमेसंसारकर्मणि
नेवोप यत्स घक्ष्यामि घेदोक्तं वचनं शुभम् । पारम्पर्यकमपरं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६ ॥
प्रमार्थकाममोक्षांश्च सर्वे वाञ्छन्तिपण्डिताः । वेदप्रणिहिताश्वेतान्समासुचप्रशंसितान्

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ ७ ॥

मादौ विप्रो यत्सूत्रं परिधाय सुखं सुखे । समधीत्य ततो वेदान् ददाति गुह्यदक्षिणम्
ततः ब्रह्मकुलजां सुविनीतां समुद्रहेत् ॥ ८ ॥

सा साध्वी कुलजाया च पतिसैवासु तपसा ।

सहस्रो दुर्धिनीता च प्रभयेन्न कदाचन । आकरे पञ्चरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ।
भसद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नास्त् । दुर्धिनीता च सा दुष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु ।
न घत्स दुष्टाः सर्वाश्च योयितः कमलाकलाः । स(स्थ)र्धेश्याशाश्च कुलटा भसद्वंशसमुद्भवाः
निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति । न सेवते च कुलटा म्रियन्तिन्दतिसद्गुणम्
साधुः सहस्राजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत् । तस्यां पुत्रान् समुत्पाद्य धृष्टस्तुतपसे प्रजेत्
परं हुतयद् वासः सत्ययक्त्रे च कण्टके । धर्मेभ्यो दुःखदो वासःस्त्रिया दुर्मुखाया सह
त्यमधीतो मयायेदो महाश्च गुरुदक्षिणाम् । पुत्रं देहीदमेवेह कुरु दारपरिग्रहम् ॥ ११ ॥
धन्व ! त्वं कुलजाताश्च पूर्यपत्नीश्च मालतीम् । विषाहं कुरु कदवाण कल्याणैवदिनाणै
मनुवंशीद्वयम्येद सञ्जयस्य गृहे सती । स्वहृत्ने जन्म लब्ध्वा च कुरुते भारते तपः ।
प्रदत्तं कुलजां व्रजमानाश्च कमलाकलाम् । भारते न भयेद् इदं जनानां तपसः पश्यम् ।
भार्ताभयेद् गृहीतोपतो धानप्रस्थस्तनःपरम् । तत्स्नपयाम्योमोक्षाय धम्मपरः धूर्तोभूतः ।

प्रेम्णयानां हृदेभ्यो तपस्या च धूर्तो भूता ॥ २१ ॥

प्रेम्णय त्वं गृहे तिष्ठ कुरु कृष्णपदार्चनम् । अन्तर्दाहो हृत्विष्य तस्य किं तपसा सुता
मान्तर्दाहोहृत्विष्य तस्य किं तपसा गृया । तपसा हृत्तिरागदो नान्यः कथं न विप्रे
यत्र तत्र हृत्ने कृष्णगोयने वारं तपः । धन्वा ! मद्रवनेनेव गृहे निश्चयाद् हृत्ति मज्ज ॥ २४ ॥
गृहीतव्यं मुनिप्रेष्टगृहीतां गव्यं दामुतम् । कामिन्यामुत्तममोक्तः स्वधर्ममोक्षान् ॥ २५ ॥
मुमुक्षवः । सत्येभ्योऽनुष्ठान् मनीषादुःखमर्गं मुत्तं पाम् ।

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः] * नारदंप्रतिदारपश्चिद्वायं ब्रह्मण उपदेशः *

ततः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने । सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्त्तिता ॥
पुत्रप्रयोजनाकान्ता शतकान्ताप्रियः सुतः । नास्ति पुत्रात्परो बन्धुर्नास्ति पुत्रात्परः प्रियः

सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत् पुत्रादेकात् पराजयम् ।

न चात्मनि प्रियोऽर्थश्च तस्मादपि प्रियः सुतः ॥ २६ ॥

अतः प्रियतमे पुत्रे न्यसेदत्मपरं धनम् । इत्येवमुक्त्या स ब्रह्मा विरराम च शौनक ॥ ३०

नारद उवाच

उवाच वचनं तातं नारदो ज्ञानिनां वरः । स्वयं विहाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने ॥

प्रवर्त्तयत्यसन्मार्गे स दयालुः कथं पिता ॥ ३१ ॥

जलशुद्धुदयत् सर्वसंसारमिति नश्यम् । जलरेखायथा मिथ्या तथा ब्रह्मजगतत्रयम् ॥

विहाय हृदिास्यश्च विषये यन्मनश्चलत् । दुर्लभं मानवं जन्म यभूव तस्य निष्फलम् ॥

का वा कस्य प्रिया पुत्रो बन्धुः को वा भवार्णवे ।

कर्मोर्मिमियोजना च तदपायो वियोजना ॥ ३४ ॥

सुकर्मकारयेद् यो हितनिर्भरं स पिता शुभः । विवृद्धिकारयेद् यो हितरिपुश्च कथं पिता ।

इत्येवं कथितं तात ! वेदधीर्जं यथागमम् । धृवं तथापि कर्त्तव्यं तवाहापरिपालनम् ॥

प्रादौ यास्यामि भगवन्नरायणधामम् । नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंप्रहम् ॥

इत्येवमुक्त्या स मुनिर्विरराम पितुः पुरः । पुष्पवृष्टिस्तदुपरि तन्क्षणेन यभूव ह ॥ ३८ ॥

तर्णं पितुः पुरः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच च पुनर्वेदं वचनं महत्प्रबम् ॥ ३९

श्रीनारद उवाच ।

हिमे कृष्णमन्त्रश्च यन्मनोवाञ्छितं मम । तत्सायन्धिष्व यज्ञज्ञानं यत्र तद्गुणवर्णनम्

ततः प्रधत् करिष्यामि त्वत्प्रीत्या दारसंप्रहम् ।

मानसे परिपूर्णं ॥ कार्यं कर्त्तुं पुमान् सुधी ॥ ४१ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः कमलोद्भवः । उवाच पुनर्वेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः ॥ ४२ ॥

ब्रह्मोवाच ।

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न शृण्वीयाद् विचक्षणः । विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः ॥

निपेकादभ्यतेमन्त्रो गुह्यमर्त्ता य कामिनी । विद्या सुगमं दुःखं पुनः स्वेच्छया न
महेश्वरस्तथ गुह्यः प्राक्तनो नः पुरातनः । गच्छ यन्सशिवं ज्ञानं शिवं ज्ञानिनां गुह्यम्
तत्रैव भगवन्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुण्यतनात् । नारायणकथां श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ मदगृहम्
इत्युत्तथा जगतां धाता विरराम य शौनक । प्रणम्य किरं मनसा शिवलोकं ययामुनिः ॥
इति श्रीप्रहस्ययस्य महापुगणे प्रहस्यपण्डे सौनि-शौनकसंवादे अनुविंशतिप्रमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

नारदकृतशिवस्तुतिः शिवनान्दमम्मिलनञ्च ।

सौतिरुवाच ।

क्षणेन विप्रधरो मुद्यान्वितो जगाम शम्भोः सदनं मनोहरम् ।
ऊह्ये ध्रुवाद् योजनलक्षमीप्सिनं रत्नेन निर्माणरुज्ज शूलिना ॥ १ ॥
निराधये योगवलेन शम्भुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम् ।
दृष्टं स्वपुण्याशयसाधकैर्वै-र्मुनीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम् ॥ २ ॥
मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव केवलम् ।
प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्द्धितै-रखैरसंख्यप्रमितैः शिखोच्चलैः ॥ ३ ॥
पुरं धरं योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा ।
विराजितं हीरकसारनिर्मितै-श्चित्रैर्विचित्रैर्विविधैर्मनोहरैः ॥ ४ ॥
माणिक्यमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः ।
आकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनै-र्निपेचितं सन्ततमेव शौनक ॥ ५ ॥
सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षकैस्त्रिकोटिलक्षैश्च युतं स्वपार्यदेः ।
युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च मेरुवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशतैश्च वेष्टितम् ॥ ६ ॥
सुरदुर्मेर्वेष्टितमेव सन्ततं मन्दारवृक्षधरैः सुपुष्पितैः ।

विमानैः सप्तशतैर्विमानैः सप्तशतैर्विमानैः ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किमत्र चित्रं बुधियोगिनां शुरी ।
 लोकं त्रिलोकाच्च विलक्षणं परं मीमृत्युरोगार्तिजराहरं वरम् ॥ ८ ॥
 दूरे समामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोहरम् ।
 पद्मत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम् ॥ ९ ॥
 प्रतप्तहेमामजटाधरं विभुं दिगम्बरं शुभ्रमनन्तमक्षरम् ।
 मन्दाकिनीपुष्करपीजमालया कृष्णेति नामैव मुदा जपन्तम् ॥ १० ॥
 सुवीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम् ।
 सिद्धेश्वरं सिद्धिविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम् ॥ ११ ॥
 प्रसन्नहास्यास्यमनोहरं परं विश्वोद्घर्तनां शिवदं वरप्रदम् ।
 सदाशुतोषं भयरोषवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैकयन्धुम् ॥ १२ ॥
 गत्वा समीपं मुनिरेव शूलिजं ननाम मूर्धा पुलकाङ्कुषिप्रहम् ।
 घीणां त्रितन्त्रीं कृण्वन् पुनर्जंगी कृष्णं प्रनुष्टाय कलहंसकण्ठः ॥ १३ ॥
 दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरञ्च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां वरिष्ठम् ।
 योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह जवेन पीडादुदतिष्ठदृश्यत् ॥ १४ ॥
 ददौ च तस्मै मुनये ससम्प्रममालिङ्गनञ्चाशियमासनादिष्वम् ।
 पप्रच्छ भद्रं गमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसाञ्च शौनक ॥ १५ ॥
 सद्रासिहासनमुन्दरेव रे शोयास शम्भुर्धन्यापदैः सह ।
 शोयास घ्नन्नुस्तनयः पुदाञ्जलिम्नुष्टाय भक्त्या प्रणतः प्रभुं द्विज ॥ १६ ॥
 गन्धर्वराजेन हृतेन नारदो वेदोक्तस्तोत्रेण शुभप्रदेन च ।
 स्तुत्या प्रणामं पुनरेव हृत्वा भवाक्षयोषास भवस्य धामतः ॥ १७ ॥
 चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽमिलायं भवकामपूरके ।
 धृत्या मुनेस्तद्वचनं कृपानिधिर्दुर्नं प्रतिष्ठां प्रचकार नोमिनि ॥ १८ ॥

इति धीमत्प्रप्रेषत् महापुराणे ध्यायण्डे सौन्दर्यलोकमन्वादे शिवनारदसम्मिलनं नाम
 पञ्चविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

पड्विंशतितमोऽध्यायः ।

प्रियांक्तादिकाचारवर्णनम् ।

मौनियोगः ।

मौन्यं कथनं मात्रं पूजाविधि परम् । त्वं यस्याने देवर्षिर्ध्यामश्च ज्ञानमेव न ॥
यश्च कथनं मात्रं ध्यातुं पूजाविधानकम् । तद्दानत्राणं ज्ञातश्चर्चति महेन्द्रः ॥
प्राप्य मुनिप्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः । उद्यानं प्रणतो मनसा गुरुं प्रणतयन्मनः ॥
नाम उद्यानम् ।

तस्मात्प्राहणानाञ्च यद्देवर्षिर्ध्यायः । स्वयमेवाप्यनन्तरं यतो भवति नित्यशः ॥१॥
ध्यामहेत्यत्र उद्यानम् ।

प्राप्य प्राहये मुहूर्ते ब्रह्मसम्पत्पदद्वये । मूर्ध्ने महत्प्रभे च निर्मले म्लानिर्वाजिते ॥१॥
यथासं परित्यज्यगुरुं तत्रैव चिन्तयेत् । ध्यायामुदात्तं प्रीतिं सन्निधौ शिष्यवत्सलम् ॥
अथ दत्तं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपं शिष्याणां चिन्तयेन्मदा ॥
त्या त्वद्गुरुमादाय हृदयमे निर्मले सिने । सहस्रपत्रे विस्तार्य देवमिष्टं विचिन्तयेत् ॥
य देवस्य यद्गुह्यं यद्गुह्यं तद्विचिन्तयेत् । गृह्णान्मनुष्याश्च कर्तव्यं समयोचितम् ॥
तीर्थाद्यागुरुं तत्पूज्यविधिपूर्वकम् । पश्चात्तदागमादाय ध्यायेद्दिष्टं प्रपूजयेत् ॥१॥
प्रदर्शितो देवो मन्त्रपूजाविधिर्जपः । न देवेन गुरुर्ह्यस्तस्मात् देवान् गुरुः परः ॥
ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः प्रकृतिरीशश्च गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः ॥२॥
व्यायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत् । गुरोरेव परं ब्रह्मन्नास्ति पूज्यो गुरोः परः ॥
तीर्थदेवरूपे च समर्थो रक्षणे गुरुः । न समर्था गुरो रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः ॥३॥
य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे । यस्य रुष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा ॥
तंपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद्ब्रह्ममात् । ब्रह्महत्यांशानं पापं लभते नात्र संशयः ॥४॥
देवो च भगवानित्युवाच हृदि स्वयम् । तस्माद्मोष्टदेवाश्च गुरुः पूज्यतमः परः ॥

रुमिष्टस्यंध्यात्वास्तुत्वावसाधकोमुने । वेदोक्तस्थलमासाद्यविष्मूत्रमुत्सृजेन्मुदा ॥
 लं जलसमीपञ्च सरन्नं प्राणिसन्निधिम् । देवालयेसमीपञ्च वृक्षमूलञ्च वर्त्म च ॥१६॥
 श्रोतृर्कर्मस्थलञ्चैव शस्यक्षेत्रञ्च गोष्ठकम् । नदीकन्दरगर्मञ्च पुष्पोद्यानञ्चपङ्क्तिम् ॥२०॥
 मायम्यन्तरञ्चैव नृणां गृहसमीपकम् । शङ्कुं सेतुं शरवतं श्मशानंवह्निसन्निधिम् ॥२१॥
 डास्यलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलंतथा । वृक्षच्छायावनुनस्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम् ॥
 स्थानं कुशस्थानं घल्मीकस्थानमेव च । वृक्षारोपणभूमिञ्चकाप्यार्थञ्चपरिष्कृतम् ॥
 नृस्यं परित्यज्य सूर्य्यन्तापयिवर्जितम् । कृत्वा रासं पुरीषञ्च मूत्रञ्च परित्यजेत् ॥
 पृथ्वीतर्गाञ्चदियाकुर्ध्यादुदङ्मुखः । पश्चिमामिमुखोरात्रौसन्ध्यायादक्षिणामुखः ॥

मौनी भूत्या च निःश्वासं यथा गन्धो न सञ्चरेत् ।

त्यक्त्या मृदा समाच्छाद्य शीचं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २६ ॥

॥ तु लोष्टशीचञ्च जलशीचं ततः परम् । मृदयुक्तं तज्जलञ्चैव तन्प्रमाणं निशामय ॥
 । लिङ्गे मृदं दद्याद् वामहस्ते चतुष्टयम् । उभयोर्दस्तयोर्द्वैतुमूत्रशीचंप्रकीर्तितम् ॥२८॥
 मूत्रशीचञ्च द्विगुणं मैथुनातन्तरं यदि । मैथुनातन्तरे शीचं मूत्रशीचं चतुर्गुणम् ॥ २९ ॥
 एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरं ददा । उभयोः सत दातव्याः पादः पष्ठेन शुष्यति ॥
 पुरीषशीचं विमाणां गृहिणामिदमेव च । विधवानाञ्च द्विगुणं शीचमेवं प्रकीर्तितम् ॥३१॥
 यतीनां वैष्णवानाञ्च ब्रह्मर्षेर्ब्रह्मचारिणाम् । चतुर्गुणञ्च गृहिणां तेषां शीचंप्रकीर्तितम् ॥
 नो वाचदुपनीयेत द्विजः शूद्रस्तथाङ्गना । गन्धलेपक्षयकरं तेषां शीचं प्रकीर्तितम् ॥३३॥
 शीचं क्षत्रपिशोश्चैव द्विजानां गृहिणांसमम् । द्विगुणंवैष्णवादीनामुनीनांपरिकीर्तितम्
 न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शीचं शुद्धिमभीप्सता । प्रायश्चित्तं प्रयुज्येत विहितातिव्रतमेव ॥
 शीचं तन्निग्रमं मत्तः सावधानं निशामय । मृन्शीचेचशुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्च अतिव्रतमे ॥
 रस्मीकमृषिकीर्त्तातां मृदमन्तर्गलां तथा । शीचावशिष्टांगेहाचनदद्याल्लेपसम्भवाम् ॥
 मन्तःप्राण्यवपर्णाञ्चल्लोत्खातांचिरोरतः । कुशमूलोत्थिताञ्चैवदूर्वामूलोत्थितान्तथा ॥

अथत्यमूलार्जिताञ्च तथैवशयनोत्थिताम् ।

शुष्पपाद्य गोष्ठानां मीषदानांतथैव च । शस्यस्थलानां क्षेत्राणामुद्यानानांमृदंत्यजेत्

जातो वाप्यधपाप्मातोविप्रः शौचेनशुष्यति । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु
वृत्त्याशौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेन् सुधीः ॥४१॥

भार्गो वोऽशगण्डूगैर्मुण्डशुद्धिं विधाय च । दन्तकाष्ठेन दन्तञ्च सत्पश्चात् परिमार्जयेत् ।
पुनः वोऽशगण्डूगैर्मुण्डशुद्धिसमाचरेत् । दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ! ॥४२॥

निरूपितं सामवेदे हरिणा चाह्निकक्रमे । अपामागं सिन्धुचारमात्रञ्च कर्षीरकम् ॥४३॥
रादिरञ्च शिरीषञ्च जातिपुत्रागशालकम् । अशोकमर्जुनञ्चैव क्षीरीवृक्षं फल्ग्वकम् ॥४४॥
जम्बूकं यकुलं चोड् पलाशञ्च प्रशस्तकम् । यदरीं पारिमद्रञ्चमन्दारंशास्त्रमलितया ॥४५॥

वृक्षं फण्टफयुक्तञ्च लतादिपरिर्जितम् ॥ ४७ ॥
विप्पलञ्च पियालञ्च तिलिङ्गीकञ्च ताडकम् । खजूरं नारिकेलञ्च तालञ्च परिर्जितम् ।
दन्तशौचविहीनञ्च सर्वशौचविहीनकः । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥४८॥

वृत्त्या शौचं शुचिर्विप्रो धृत्या धौते च वाससी ।
प्रक्षाल्य पादमाचम्य प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ ५० ॥

एवंत्रिसन्ध्यं सन्ध्याञ्चकुरुतेकुलजो द्विजः । सप्तातःसर्वतीर्थेषु त्रिसन्ध्यं च समाचरेत् ।
त्रिसन्ध्यहीनोऽप्यशुचिर्नर्हः सर्वकर्मसु । यद्वा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ।

नौपतिष्ठतियः पूर्वानोपास्ते यस्तुपश्चिमाम् । स शूद्रयद्वहिःकार्यः सर्वस्माद्विजकर्मन
पूर्वसन्ध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमांतथा । इहहत्यामात्रमहत्यांप्रत्यहं लभते द्विज
एकादशीविहीनोयः सन्ध्याहीनधयो द्विजः । कल्प्यं व्रजेत् कालसूत्रं यथाहिदृष्टलीपतिः ।

विधायप्रातः सन्ध्याञ्चगुरुमिष्टं सुरं रविम् । ग्रहणाणामीशं विष्णुञ्चमायां पद्मोत्तरस्यनृप
प्रणम्य गुरुमाज्यञ्च दर्पणं मधुकाञ्चनम् । स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्व्यात्साधकसत्तन
पुष्करिण्यान्तुवाप्यान्तु यदास्नानं समाचरेत् । समुद्रतः पञ्चपिण्डानादौघर्मो विनश्यत्

नद्यां नदे चन्द्रेया तीर्थेया स्नानमाचरेत् । कुर्व्यान् स्नान्या तु सङ्कल्पं ततः स्नानं पुनर्नृप
धौतं स्नानं प्रीतिरामधौ धौतयानां महान्प्रणामः । सङ्कल्पो गृहोणाञ्चैव वृत्त्यातकनाराणम्
विना तु सङ्कल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत् । वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिं हृतेन च ॥

विष्णुक्रान्तेषु सुन्दरे । शुकिके हर मेपाथं यमया दुधृतं इत्य

उद्धृतासि घराहेण कृष्णेन शतबाहुना । आख्या मम गात्राणि सर्वं पापं प्रमोचय ॥६३॥
पुण्यदेहिमहाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम् । इत्युक्त्वाच जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम् ।
चतुर्हस्तप्रमाणाञ्च धृत्या मण्डलिकां शुभाम् । तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तंदत्वा तपोधनं
यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते ॥ ६६ ॥

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिकुल ॥
नलिनी नन्दिनी सीतामालिनी च महापथा । विष्णुपादार्यसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥
पद्मावती भोगवती स्वर्णरेखा च वीरिणी । दक्षापृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता ॥

विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी ।

क्षेमा च वैष्णवी शान्ता शान्तिदा गौमती सती ॥ ७० ॥

सावित्री तु लसी दुर्गा महालक्ष्मीः सरस्वती । कृष्णप्राणाधिका राधा लोपामुद्रादितिरतिः ।
ब्रह्मया चादितीः संज्ञास्थया स्वाहाप्यरूपती । शतरूपा देवहूतीत्येवमाद्याः स्मरेत्सुधीः
प्रात्यास्नात्वा महापूतः कुर्यात्तु तिलकं बुधः । बाहोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशे च यक्षसि
जानंदनं तपो होमं वैद्यश्च पितृकर्मसु । तत् सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना ॥

प्राज्ञास्तिलकं हरयः कुर्यात् सन्ध्याञ्च तर्पणम् ।

नमस्तस्य सुरान् भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदान्वितः ॥ ७५ ॥

क्षाल्य पादं यज्ञेन धृत्या घृतिच वाससी । मन्दिरं प्रविशेत् प्राज्ञ इत्याह हरिरेव च ॥
पेनापादौ च प्रक्षाल्य स्नात्वा विरातिमन्दिरम् । तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमश्च पञ्चमम् ।
परिधाय स्निग्धवस्त्रं गृहञ्च प्रविशेद् गृहो । कृष्णलक्ष्मीं गृहादुयाति शापंदस्यासुदारुणम् ।
ऊर्ध्वजङ्घे च यो विप्रः पादौ प्रक्षालयेत् यदि । तावद्भवति चाण्डलो यावद् गङ्गान पश्यति
उपविश्या सने ब्रह्मन्नाचम्य साधकः शुचिः । पूजां कुर्यात्तु वेदोक्तं भक्तियुक्तो हि संयतः ॥
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां जले लले । गोपृष्ठे या गुरो विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरे ॥
सर्वप्रशस्ता पूजा च शालग्रामे च नास्ति । सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च । ८१ ॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामोदकेनैव योऽभियेकं समाचरेत् ॥ ८३ ॥
शालग्रामे जलं भक्त्या नित्यमध्यातिथौ नरः । जीवन्मुक्तः स च भवेद् यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम्

लप्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद । सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चिन्तम् ।
 यो हि मृतो देही क्षान्नाज्ञानेन दैवतः । रत्ननिर्माणयानेन स याति धौहरेः पदम् ॥ ८० ॥
 लप्रामं विनान्यचक्रः साधुः पूजयेद्धरिम् । कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्णं फलं लेभे ॥
 साधारञ्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः । हरेः पूजां यद्भुमतां कथयामि यथागमम् ॥ ८१ ॥

कश्चिद् ददाति हरये चोपचारांश्च षोडश ।

सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं मनया च वैष्णवः ॥ ८२ ॥

चिद् द्वादश द्रव्याणि पञ्चयस्तूनि कञ्चन । येयामेव यथाशक्तिर्मैकमूलञ्च पूजने ॥ ८३ ॥
 तस्य वसनं पाद्यमर्घ्यमाद्यमनोयकम् । पुष्पं चन्दनभूपञ्च दीपनैवेद्यमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

गन्धं माल्यञ्च शय्याञ्च ललितां सुविलक्षणाम् ।

जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥ ८५ ॥

गन्धान्ततल्पताम्बूलं विनाद्रव्याणि द्वादश । पाद्यार्घ्यजलं नैवेद्यं पुष्पाण्येतानि पञ्च च
 र्पाण्येतानि मूलेन दद्यात् साधकसत्तमः । गुरुपदिष्टं मूलञ्च प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥ ८६ ॥
 तदी कृत्वा भूतगुडिं प्राणयामं ततः परम् । अङ्गुष्ठमङ्गुल्यासञ्च मन्त्रग्यासंततः परम् ॥
 षण्म्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत् । त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्रकूर्मं प्रपूजयेत् ॥
 त्रेतापूर्व्यं शङ्खञ्च तत्र संस्थापयेद् द्विजः । जलं संपूज्य विधिवन्तीर्धान्यावाहयेत्तत् ॥
 ज्योपकरणं तेन जलेन क्षालयेत् पुनः । ततो गृहीत्या पुष्पञ्च कृत्वा योगासनं शुक्लं ॥

ध्यानेन गुरुदत्तेन ध्यायेन् कृष्णमनन्यधीः ।

ध्यात्वा पाद्यादिकं सर्वं दद्यान्मूलेन साधकः ॥ ८७ ॥

गङ्गापद्मद्विपञ्च सन्धोक्तं पूजयेद्धरिम् । मूलं जप्त्वा यथाशक्तिः देयमन्त्रं विसर्जयेत् ॥
 त्र्योपहारं विविधं स्तुत्या च कथयंपठेत् । ततः कृत्वा परीहारं मृदुर्ध्ना च प्रणमेद्भुवि ॥
 त्र्या च देवपूजाक्षयमङ्गुल्याङ्गुलिविचक्षणः । श्रोतस्मात्तांशियुक्तञ्च बलिदद्यात्तनो मुने ॥
 नैव्यध्वाद् यथाशक्तिदानं विज्ञानुरूपकम् । कृत्वा कृती च विहरेत् प्रमदमभ्युत्तमम् ॥

इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम् ।

आद्विषम्य च विप्राणां किं भूयः धोनुमिच्छसि ॥ १०४ ॥

महापुराणे ब्रह्मण्डे शिवनारदसंवादे आद्विषप्रकरणे कथितं तत्र
 गङ्गाशक्तिस्तोत्राध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

नराणां भक्ष्याभक्ष्य-कर्तव्याकर्तव्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

भक्ष्यं किं धाप्यभक्ष्यञ्च द्विजानां गृहिणां प्रभो ।

यतीनां वैष्णवानाञ्च विधवाग्रहचारिणाम् ॥ १ ॥

कै कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव या । सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारणम् ॥

महादेव उवाच ।

क्षितपत्न्यो विप्रश्चनिराहारी चिन्मुनिः । कश्चित् समीरणाहारीफलाहारी च कश्चन ॥

अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिणीयुतः ।

येयामिच्छा च या ब्रह्मन् ख्यातां विविधा गतिः ॥ ४ ॥

वेप्यान् प्राह्वणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा । नारायणोच्छिष्टमिष्टमनिवेद्यमभक्षकम् ॥

न विष्टा जलं मूत्रं यदुविष्णोरनिवेदितम् । विष्णूत्रं सर्वपापोक्तमन्नञ्च हरिवासरै ॥

प्राह्वणः फामतोऽन्नञ्च यो भुङ्क्ते हरिवासरै ।

प्रेलोप्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥ ७ ॥

भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यञ्च नारद । गृहिभिर्ब्राह्मणैरन्नं संप्राप्ते हरिवासरै । ८ ॥

शेषञ्च शाक्तश्च प्राह्वणो ज्ञानदुर्बलः । प्रयातिकालसूयञ्च भुक्त्वा च हरिवासरै ॥

रेमिः शालमानैश्च मक्षितस्तत्र तिष्ठति । विष्णूत्रमोजनं कृत्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश

राष्टमी दिने रामनवमी दिवसेहरे । शिररात्रौ च योभुङ्क्तेसोऽपिद्विगुणपातकी ॥

यासासमर्थश्च फलमूलजलं दिवेत् । नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चात्मघातकः ॥ १२ ॥

भुङ्क्तेहविष्यान्नंविष्णोर्नैवेद्यमेवच । न भवेत्पत्यवापी स चोषवासरालंभेत् ॥

दश्यामनाहारं गृही विश्वं भारते । स च तिष्ठति चैकुण्ठे यावदुवै ब्रह्मणो धयः ॥

यां शैवशाक्तानामिदमुक्तञ्च नारद । विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥

रथौ धादे यतादे च दुष्टं स्त्री तिलतैलकम् ।

मांसञ्च रक्तशाकञ्च कांश्यपात्रे च भोजनम् ॥ ३८ ॥

तेपिद्धं शयने चैव कूर्ममांसञ्च प्रोक्षितम् । निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिशेवनम् ।

श्री च वृधिमक्ष्यञ्च शयनं सन्ध्ययोर्दिने । रजःस्वलाह्वीगमनमेतन्नरककारणम् ॥ ३९ ॥

जःस्वलाह्वीरान्तञ्च पुंश्वल्पन्नममक्षरम् । शूद्राणां याजकान्तञ्च शूद्रश्राद्धान्तमेव च ॥

मक्ष्यान्तञ्च विप्रैः । यदन्नं कृपलापनेः । ग्रहान् वादुर्धुगिकान्तञ्च गणकान्तममक्षकम् ।

प्रदानिद्विमान्तञ्च चिकित्साकारकस्य च । हस्ताचिवाहरीतैज्यमप्राहज्याण्यमक्षकम् ।

एते मृगे माद्रपदे मांसं गोमांसतुल्यकम् । अमायां कृत्तिकायाञ्चद्विजैः क्षीरं पिबजितम् ।

ज्या तु मैथुने क्षीरं यो देवास्तर्पयेत् पितृन् । रुधिरं तद्वयेत्तोषं क्षता च नरकं व्रजेत् ।

यत् कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं यद्गोत्रं यदभोज्यकम् ।

सर्वं तुभ्यं निगदिनं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४६ ॥

नि धीरहरेयसं महापुराणे ग्रहप्रवृत्ते सति सति रूपं वादे शिवतारदसं वादे कर्त्तव्या-

कर्त्तव्यकथनं नाम सतविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

ग्रहानिरूपणम् ।

भारद् उवाच ।

धूर्तं सर्वं जगन्नाथ स्वप्नप्रसादज्ञगदुमुने । भवान् ग्रहान्वरुणञ्च यद् ग्रहानिरूपणम् ॥ १ ॥

प्रमो किं ग्रह साकारं किं निराकारमाश्रयम् । किं तद्विशेषं किं चाप्यविशेषमेव च ।

किं वा दृश्यमदृश्यं वा तिष्ठन् देहिषु किं न वा । किं वा तद्विशेषात्तदेवेति किं निरूपणम् ।

ग्रहानि रिप्ता ग्रहानिः किं वा ग्रहान्वरुणिणी । ग्रहनिर्देशनं किं वा सारधूर्तधूर्तधूर्तम् ।

कस्य सूर्यो च प्राधान्यं द्रवोर्मध्ये धरं परम् । विचार्य्य मनसा सर्वसर्वप्रपदमाधुपम् ॥

तदस्य वनः ध्रुवा पञ्चायनः प्रहस्य च । भगवान् वक्तुमारभे तं प्रपञ्चिष्यन् ।
महादेव उवाच ।

यत् पृष्टं त्वया यत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् । गूढं मम वेदेषु पुण्येषु च तदा ।
अहं ब्रह्मा ॥ विष्णुश्च शेषो धर्मो महान् विराट् ।
सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्ममामिः धूमिर्मिर्न वा ॥ ८ ॥

द्विशेषणयुक्तञ्च दृश्यं प्रत्यक्षमेव च । तन्निरूपितमममामिर्दे वेदविदां पर ॥ १ ॥
कुण्डे च पुरा पृष्टे धर्मेण प्रह्वणा मया । यदुवाच हगिः किञ्चिन्निर्वाच कथयामि ते
तारभूतञ्च तत्त्वानामज्ञानान्धकारोच्यतम् । द्वैधस्रमनमोर्ध्वसमुद्रकृष्टप्रदीपकम् ॥ ११ ॥
परमात्मस्वरूपञ्च परं ब्रह्म सनातनम् । सर्वदेहस्थितं साक्षिर्मयरूपं देहिकर्मणाम् ॥ १२ ॥
गणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्माप्रजापतिः । सर्वज्ञानम्यरूपोऽहं शक्तिश्चरित्तिर्यया ।
मातार्थीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिंश्च संवृताः । गते गताश्च परमे नारदैषमिवानुगाः
तीव्रस्तत्प्रतिपिम्बश्च स च भोगी च फर्मणाम् । यथार्कचन्द्रयोर्यिष्यो जलपूर्णवदेषु च
वेद्यो घटेषु भग्नेषु प्रलीनश्चन्द्रसूर्ययोः । तथा सूर्यो च भग्नार्वाजीयो ब्रह्मणि लीनो
एकमेव परं ब्रह्म शेषे घटस भवक्षये । ययं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतद्यराचरम् ॥ १७ ॥
तच्च ज्योतिःस्वरूपञ्च मण्डलाकारमेव च । ग्रीष्ममध्याह्नमात्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ।
आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम् । सुखदृश्यं यथा चन्द्रविभ्यं योगिर्मिरेव च
वदन्ति योगिनस्तत्तु परं ब्रह्म सनातनम् । दिवानिशञ्च ध्यायन्ते सत्यं तत् सर्वमङ्गलम्
निरीहञ्च निराकारं परमात्मनमीश्वरम् । स्वेच्छामयं स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् ।
परमानन्दरूपञ्च परमानन्दकारणम् । परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।

तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी ॥ २२ ॥

यथाग्नी दाहिका शक्तिः प्रमा सूर्यो यथा मुने । यथा दुग्धे च घावत्यंजले शैत्यं यथैव
यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा । तथाहि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तत्र
सृष्ट्यनुमुखे न तद्ब्रह्मवांशेन पुरुषः स्मृतः । स एव सगुणो वत्स ! प्राकृतो विषयी स्मृतः
सा च तत्रैव त्रिगुणा परा छाया मयी स्मृता ॥ २६ ॥

यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्तुं क्षमः सदा । तथा ब्रह्म तदुग्रह सृष्टिं स्रष्टुं क्षमो मुने ।
स्वर्णेन कुण्डलं कर्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा । तथा ब्रह्म तयासादं सृष्टिं कर्तुमिहेश्वरः ।
कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या एव सनातनी । न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णञ्च नित्यमेव च ।
नित्यं तन् परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता ।

द्वयोः समञ्च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ३० ॥

इदं स्वर्णं समाहर्तुं कुलालस्वर्णकारकौ । न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥
स्मात्तदुग्रह प्रकृतेः परमेव च नास्ति ! । इति केचिद्वदन्त्येव द्वयोश्च नित्यता ध्रुवम् ॥
केचिद्वदन्ति तदुग्रह स्वयञ्च प्रकृतिः पुमान् । ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ।
दुग्रह परमं धाम सर्वकारणकारणम् । तदुग्रहलक्षणं ब्रह्मनिदं किञ्चित् ध्रुतौ ध्रुतम् ॥
लघात्मा च सर्वेषां निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् । सर्वग्रामी च सर्वादिलक्षणञ्च ध्रुतौ ध्रुतम् ।
दुग्रहशक्तिः प्रकृतिः सर्वधीजस्वरूपिणी । यतस्तच्छक्तिमदुग्रह चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥
तेजोरूपञ्च तदुग्रह ध्यायन्ते योगिनः सदा ।

ज्वालास्तत्र मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मयुद्धयः । तत्तेजः कस्य वाध्वप्यध्यायन्ते पुरुषं विना ॥
रणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्भवे । ध्यायन्ते धैर्येण वास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम् ॥
च्छामयस्य पुंसश्च साकारस्यात्मनः सदा । तत्तेजो मण्डलाकारेऽस्यैकोदिसमप्रभे ॥
यं स्थूलञ्च प्रच्छन्नं गोलोकामिध्रमेव च । लक्षकोटियोजनञ्च चतुरस्रं मनोहरम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीनामावृतं सदा ।

एवं घटकुलालकारं यथैव चन्द्रमण्डलम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं निराधारञ्च स्वेच्छया ॥
ध्वञ्च नित्यं यैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम् । गोगोपगोपीसंयुक्तकल्पवृक्षसमन्वितम् ॥
येनुमिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् । वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टितं मुने ॥ ४३ ॥
यद्द्वं शतशृङ्गैः सुदीप्तं दीप्तमीप्सितम् । लक्षकोटिपरिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः ॥ ४४ ॥
शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥

ारपरिसायुक्तं पारिजातवनान्वितम् । कीस्तुमेन्द्रेण मणिना निर्माणकलसोऽज्यलैः
सारविनिर्माणसोपानसंघसुन्दरैः । मणीन्द्रसारनिर्माणैः कपाटदर्पणान्वितैः ॥ ४७ ॥

नानाचित्रविचित्राद्वयैराश्रमश्च सुसंहतम् । षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं रत्नदीपकैः ॥३८॥
 रत्नसिंहासने रम्ये चामूल्यरत्ननिर्मिते । नानाचित्रविचित्राद्वये घसन्तमीश्वरं वाम् ॥३९॥
 नयोननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् । शरन्मध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोचनलोचनम् ॥४०॥
 शरत्पार्वणपूर्णैन्दुशोभाच्छादयमाननम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितमुदम् ॥४१॥
 कोटिचन्द्रप्रभायुष्पुष्पश्रीयुक्तविग्रहम् । सस्मितं मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम् ॥४२॥
 वह्निसंस्कारपीतांशुयुगलेन समुज्ज्वलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥४३॥
 भाजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् । त्रिमङ्गभङ्गिमायुक्तं मणिमाणिसमूहितम् ॥४४॥
 मयूरपुच्छचूडश्च सद्वज्रमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥४५॥
 रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डम्वलसुशोभितम् । मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदशनं सुमनोहरम् ॥४६॥
 पद्मविम्याधरोष्ठश्च नासिकोन्नतशोभनम् । षोडशतंगोपिकाभिध्वयेष्टिताभिध्वसन्तम् ॥४७॥
 स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम् । भूषिताभिश्च सद्वज्रनिर्माणभूषणेन च ॥४८॥
 सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिमिर्मानवेन्द्रकैः । ब्रह्माविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितं मुनिभिः ॥४९॥
 भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकातरम् । रासेश्वरं सुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥५०॥
 परंरूपमकरं तं ध्यायन्ते वैष्णवा मुने । सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम् ॥५१॥
 भक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । स्वेच्छामयं निगुणञ्च निरीदं प्रकृतेः परम् ॥५२॥
 सर्वाचारं सर्वपीतं सर्वज्ञं सर्वमेव च । सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकारकम् ॥५३॥
 स एव भगवानादिर्गोलोकेऽतिभुजः स्वयम् । गोपवेशश्च गोपालः पार्षदेः परिवेष्टितः ॥५४॥
 परिपूर्णतमः धर्मात्मा धीरुत्तमोराधिकेश्वरः । सर्वान्तरात्मासर्वप्रपत्यक्षः सर्वगः स्मृतः ॥५५॥
 रुद्रिश्च सर्वपयनो नकाराध्यात्मवाचकः । सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥५६॥
 रुद्रिश्च सर्वपयनो नकाराध्यात्मवाचकः । सर्वादिपुण्यो व्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥५७॥
 स एवांशेन भगवान् वैकुण्ठे च यतुर्भुजः । यतुर्भुजैः पार्षदेस्नेरायूतः कमलापतिः ॥५८॥
 एव कण्ठ्या पिप्पुः पाला च जगतां प्रभुः । श्वेतद्वीपेसिन्धुकन्यापतिरेव यतुर्भुजः ॥५९॥
 रुद्रिश्च सर्वं परं ब्रह्म निरूपयन् । अस्माकं चिन्तनीयञ्च सेव्यं चिन्तनीयम् ॥६०॥
 ॥ शङ्कराक्षश्च विररामश्च शौनकः । गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टाय तञ्च नारदः ॥६१॥

मुनिस्तोत्रेण सन्तुष्टो भगवानादिरच्युतः । ज्ञानं मृत्युञ्जयस्तस्मै प्रददौ वरमीप्सितम् ॥
 तं प्रणम्य मुनीन्द्रश्च ग्रहणवदनेक्षणः । तदाज्ञया पुण्यरूपं यथौ नारायणाश्रमम् ॥ ७३ ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्थिशीनकसंवादे नारदप्रस्थानं नामाष्टा-
 विंशतितमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

नारायणं प्रति नारदप्रश्नः ।

सौत्थिरवाच ।

विश्वश्रममाधर्ष्यं देवविनारदस्तथा । ऋषिर्नारायणस्यैव यदरीचनसंयुतम् ॥ १ ॥
 आनायुक्तकलाकीर्णं पुंस्कोकिच्छन्धुम् । शरमेन्द्रैः केसरीन्द्रेण्योग्रौघैः परिवेष्टितम् ॥
 इरीन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयवियोजितम् । महारण्यमगम्यश्च स्वर्गाधिकमनोहरम् ॥ ३ ॥
 तद्देन्द्राणामुनीन्द्राणामाश्रमाणात्रिकोटिभिः । आवृतंचन्द्रनारण्यपारिजातघनान्वितम् ॥
 दृश्यं तमृषीन्द्रश्च सभामध्ये मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थश्च यत्नतं योगिनां शुचम् ॥
 यत्नतं परमं ब्रह्म कृष्णात्मनमीश्वरम् । प्रणनाम यत्तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक ॥ ६ ॥
 त्वाय सहस्राब्दिद्वयं युयुजे परमाश्रितम् । पप्रच्छ कुशलं स्नेहाद्यकारानियिपूजनम् ॥
 नसिंहासने राधे वासवामास नारदम् । निवसन्नासने रम्ये धर्मधमवियोजितः ॥ ८ ॥
 राय तमृषिभ्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम् । अर्षीतयेशान् सर्वान्श्च विनुःस्थाने मुदुर्गमान् ॥
 तं सम्प्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रश्च शङ्करादिभ्यो । मनो मेनहितुमोनिदुर्नियोज्यश्चक्षुः ॥
 ! मया तत्पदार्ज्जुनसत्प्रेरितेन च । किञ्चित्ज्ञानविशेषश्च लब्धुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥

यत्र कृष्णगुणारूपानं जन्ममृत्युजराहरम् ॥ १२ ॥

शिविष्णुशिवाद्याश्च सुरेन्द्रश्च सुरा विभो । कं चित्तयन्निमुनशोमनवद्भविचक्षणाः ॥
 त्मान् सृष्टिश्च प्रमवेत् कुत्रपाविप्रलीयते । कोवासर्येभ्यरोविष्णुः सर्वकारणकारकः ॥

तान्येवाम्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते । निनाशं मननामयं तद्वशात् पशु

नारदस्य धनः ध्रुवा प्रहस्य भगवान्मुनिः ।

कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनरावर्तनाम् ॥ १६ ॥

इति श्रीप्रह्लादचरितं महापुराणे प्रह्लादपण्डे सौमित्राचार्यकर्मवादे नारायणप्रतिपाद

नाम उन्निशतमोऽध्यायः ।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीनारायणकृतः स्तवः ।

श्रीनारायण उवाच ।

लघोदरो हरिस्त्मापतिरिशोषा प्रह्लादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः ।

घापी शिष्या त्रिषधगा कमलादिका या सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ १ ॥

संसारसागरमतीवगमीरघोरं दावाग्निस्तपपरिवेष्टितचेष्टिताङ्गम् ।

संलङ्घ्य गन्तुमभियाच्छतियो दिदास्यं सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ २ ॥

गोघर्दनोद्धरणकीर्त्तिरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाप्रकरेण क्षिन्ना ।

विभवानि लोमविवरेषु विभक्तुरादेः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ३ ॥

गोपाङ्गनावदनपङ्कजम्पदस्य रासेश्वरस्य रसिकारम्भणस्य पुंसः ।

घृन्दावने विहस्तो ध्रजवेशविष्णोः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ४ ॥

चञ्चुनिमेषपतितो जगतां विघाता तत्कर्मघरस कथितं भुवि कः समर्थः ।

स शब्देन नारदमुने परमादरेण सञ्चिन्तनं कुर्यादश्चरणारविन्दम् ॥ ५ ॥

तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः ।

मवपारमुष्या महान् विराड्यस्य कलाविशेषः ॥ ६ ॥

शार्तः शिरसः प्रदेशे विभक्तिं सिद्ध्यत्यस्य च विभम् ।

कूर्मे ॥ शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः ॥ ७ ॥
 गोलोकनाथस्य विमोर्यशोऽमलं ध्रुवो पुराणे न हि किञ्चन स्फुटम् ।
 न पादमुल्याः कश्चिन् समर्थाः सर्वेश्वरं नं भज पादमुप्यम् ॥ ८ ॥
 विभ्वेषु सर्वेषु च विभ्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः ।
 तेषाञ्च संख्याः धृतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज ॥ ९ ॥
 करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसम् ।
 ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां धीं प्रकृतिं भजन्ति ॥ १० ॥
 ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न मिन्ता यथा च सृष्टिं कुरुते सनातनः ।
 प्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तथा विमोहिताः ॥ ११ ॥
 नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च ।
 आत्मेश्वरश्चापि यथा च शक्तिमांस्तथा विना स्रष्टुमशक्त एव ॥ १२ ॥
 गत्वा विचारं कुरु यस्तु साम्प्रतं कर्तुं प्रयुक्तञ्च पितुर्निवेशम् ।
 गुरोर्निवेशं प्रतिपालकोभवेत् सर्वप्रपूज्यो विजयी च सन्ततम् ॥ १३ ॥
 वपस्वी पूजयेद् योहि यत्नालङ्कारचन्दनैः । प्रकृतिस्तस्य सन्तुष्टा यथाकृष्णो द्विजार्धने ॥
 । च योषित्स्वरूपा च प्रतिविभ्वेषु मायया । योषितामपमानेन पराभूता च सा भवेत् ।
 ज्या स्त्री पूजिता येन पतिपुत्रयती सती । प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमंगलदायिनी ॥
 उग्रप्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी । सृष्टी पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी ॥
 प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः ।
 सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा परिकीर्तिता ॥ १८ ॥
 रायणप्रियालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी । रागाधिष्ठातृदेवी या साचपूज्या सरस्वती ॥
 । धित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया । शङ्करस्य प्रियादुर्गा यस्याः पुत्रो गणेश्वर ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौत्थीनैकसंवादे त्रिशत्तमोऽध्यायः ।
 ब्रह्मखण्डं समाप्तम् ।

अथ द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः ।

प्रकृतिचरितप्रथम् ।

नारायण उवाच ।

गणेशभक्तनानुगा राधा लक्ष्मीः सख्यती । सावित्री च सृष्टिविधीप्रवृत्तिः पञ्चवाम्बुताः
मायिर्बभूव सायेल कायासाधानिनामग । किंवा ननु भवन्त्यस्य ! को वा यत्तुं समो भवेः

किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यन् धृतं रत्नवक्त्रतः ॥ ३ ॥

प्रकृत्याचकः प्रथमं कृतिश्च सृष्ट्याचकः । मूर्तो प्रकृष्टाया देवी प्रवृत्तिः सा प्रकीर्तिता ।
गुणे प्रकृत्यस्यैव च प्रशब्दो वर्तते धृतो । मध्यमे रजसि कृत्वा तिराजस्तमसि स्मृतः ।

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता । प्रधानसृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ।
प्रथमे वर्तते प्रथमं कृतिश्च सृष्ट्याचकः । सृष्टेराद्या च या देवी प्रवृत्तिः सा प्रकीर्तिता ।

योगेनात्मसृष्टिविधी द्विधारूपो बभूव सः । पुमांश्च दक्षिणाङ्गाङ्गो यामाङ्गप्रवृत्तिः स्मृतः ।
साचग्रहस्यरूपा च माया नित्यसनातनी । यथात्मा च यथा शक्तिर्यथाग्री दाहिका स्मृता ।

अतप्य हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते । सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शब्दं पश्यति नायं ।
स्वेच्छामयस्येच्छया च धीकृष्णस्य सिद्धिस्तथा । साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ।

तदाशया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः । अथ भक्तानुरोधाद् वा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया । नारायणी विष्णुमाया पूर्णग्रहस्वरूपिणी ।

अथ विदेहीरिति निर्गुणसिद्धिः कथिता मया । अर्वाविदेहीरिति वा नारायणसनातनी ॥ १४ ॥

जातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी । ब्राह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥
 रूपाद्वरजसां पूतं जगत् सर्वञ्च नारद । देवी चतुर्या कथिता पञ्चमी वर्णयामि ते ।
 प्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी । प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाद्यासुन्दरी घरा ॥३॥
 र्वसोभाययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता । चामार्द्धाङ्गस्वरूपा च शुणेन तेजसा मया ।
 त्वघरा सर्वप्रता परमाद्या सनातनी । परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४॥
 सप्तोद्गाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः । रासमण्डलसंभूता रासमण्डलमण्डिता ॥
 सेश्वरीसुरसिका रासवासनिवासिनी । गोलोकयासिनी देवी गोपीपेशविधायिमा
 माहावरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी । निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी ॥५॥
 रीहा निरुद्धारा भक्तानुग्रहप्रिया । वेदानुसारध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥६॥
 ऐदृष्टा सहस्रेषु सुतेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः । बह्विशुद्धांशुकाधाना रत्नालङ्कारभूयिता ॥ ७॥
 तेदिचन्द्रप्रभामुद्युर्ध्वयुक्तभक्तप्रिया । र्धाकृष्णभक्तदास्यैकदात्रिका सर्वसम्पदाम् ॥८॥
 पतारे च पाराहे धृक्भानुसुता च या । यन्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च यसुन्दरा ॥ ९॥
 ह्यादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते । स्त्रीरक्षसारसंभूता कृष्णपद्मःस्थलरिता ॥

तथा घने तयघने लोला सीदामिनां मुने ॥ ५१ ॥

ष्टिं घनसहस्राणि प्रतनं प्रत्यक्षा पुरा । यन्पादपद्मनखरदृष्टये घातमशुद्धये ॥
 नय दृष्टञ्च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥ ५२ ॥

नैष तपसा दृष्टा भूरि वृन्दावने घने । कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्तिता ॥
 शरूपा कलारूपा वन्द्यशायसमुद्भवा । प्रकृतेः प्रनिविश्येषु देवी च सर्पयोधितः ॥५॥
 रिपूजन्तमाः पद्मविधा देव्यश्च कीर्त्तिताः । या या प्रधानोक्तया वर्णयामि निशामय ॥
 घान्तरायरूपा च गङ्गा भुवनरावती । विष्णुविग्रहसंभूता द्वयरूपा सनातनी ॥६॥
 गिरिपद्मपदादप अलदिग्धनरूपिणी । दर्शम्वर्शग्रानयाने निर्वाणपद्मायिनी ॥ ७॥
 तिलोक्तकान्तस्वतन्मुरोपातम्यरूपिणी । पवित्ररूपा र्त्तार्थानां रागिताञ्च परापरा ॥

शम्भुर्मात्रिजटायिमुक्तानिश्चररूपिणी ॥ ५८ ॥

राः रागादनी रागो भारते च तन्निवनाम् । शङ्खपद्मीरनिता शुद्धमन्यम्यरूपिणी ॥

निर्मला निवृद्धा साध्या भारापयप्रिया ॥ ५६ ॥

प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुरागिनी । विष्णुभूषणरूपा च विष्णुवाद्यविता स्वर्गी ॥
ततः सङ्कल्पपूजादिभ्यः सम्पादनी मुने । सागभूता च पुण्याणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥
दशान्तस्पर्शनाभ्याञ्च सप्तोनिर्वाणदायिनी । कल्ला कलुषशुक्लेष्मादादनायाग्निरूपिणी ॥ ५७ ॥
यन्मन्त्रादप्यमन्त्राणां सप्तः पूजायमुपधा । यन्मन्त्रादप्यमन्त्राणां सप्तः पूजायमुपधा ॥

यथा पिना च विभेषु तथैव कर्मानिनिष्पद्यते ।

मोक्षदा च मुमुक्षुणां कामिनां सर्वकामदा ॥ ५८ ॥

कल्पवृक्षस्वरूपा च भाग्ये विजयरूपिणी । प्राणाय भाग्यानाञ्च पूजानां परदेवता ॥
प्रधानांशस्वरूपा च मनसा कल्पपारमजा । शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानपिशारदा ॥
नागेश्वरप्रान्तन्तस्य मणिनी नागपूजिता । नागेभ्यो नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥
नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता । नागेन्द्रयन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी ॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापराधना । ततः स्वरूपा तपसां कल्लादारी तपस्विनी ॥
दिव्यं विलसत्सर्वं जगत्तनं यथा हरेः । तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भाग्ये ॥
सर्वमन्त्राधिदेवी च उपलब्धी । प्रपन्नप्रदा । प्रपन्नस्वरूपा परमा प्रपन्नप्राप्तनन्तरा ॥ ५९ ॥
जान्कात्ममुनेः परां कृष्णशम्भुप्रतिप्रदा । भास्तीकल्प मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ।
प्रधानांशस्वरूपा या देवमेता च नागद । मातृकामु पूज्यतमा साच पृष्टी प्रकीर्तिता । ६० ॥
शिखीप्रतिविशेषु प्रतिपालनकारिणी । तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्त्तिकेयस्यकामिनी ।
गङ्गाशरूपा प्रवृत्तेनैव पृष्टी प्रकीर्तिता । पुत्रपौत्राप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा । ६१ ॥
सुन्दरी युवती रम्या सततं मन्तुरन्तिके । स्थाने शिखी परमा धृदरूपा च योगिनी ॥
[सा दादशमामेपु यस्याः यष्टप्राम्नुसन्ततम् । पूजाय नृत्तिकागारे परपृष्टदिने शिशोः ॥
अधियानिमे चैव पूजा कल्याणहेतुका । शश्वप्रियमिता चैव नित्या काम्याप्यतः परा ।
नृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी । जले स्थले चान्तरीक्षे शिखीनां स्वप्रगोचरा ॥
धानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका । प्रवृत्तेर्मुहसंभूता सर्वमङ्गलदा सदा ॥ ६२ ॥
पृष्टी मङ्गलरूपा च संहारे कोपकृषिणी । तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्तिता ॥

तिमङ्गल्यारेषु प्रनिविश्येषु पूजिता । यशोपनारिमन्तयान् योनिभिः परिपूजिता ॥१८॥
 पुत्रपौत्रधनैश्चर्यं यशोमंगलदायिनी । शोकमन्तापराधानिदुःखदाग्निनागिनी ॥१९॥
 अग्निपुत्रा सर्वयाज्ञाप्रदात्री सर्वयोनिताम् । कृपाश्रमेन गंहन्तुं शक्ता विभ्यं महेन्दरी ॥
 प्रधानांशस्यरूपाय कार्त्तिकमन्त्रलोचना । दुर्गांश्यादृग्भूता रणे शुम्भनिगुम्भगोः ॥२०॥
 दुर्गांश्यांशस्यरूपाय गुणेन तेजसा समा । कोटिगूर्यं प्रभामुष्णपुष्टजायत्यविप्रा ॥२१॥
 प्रधाना सर्वहोतीनां धरा कल्पयती परा । सर्वमिद्विप्रदा देवी परमा मिद्वियोगिनी ॥
 कृष्णमकारुण्यतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः । कृष्णभायनयदाश्रयन् कृष्णवर्णासनानी ॥
 संहन्तुं सर्वप्रदाण्डं शक्ता निःश्यासमायनः । रणदेव्यैः समनस्याः कीदृयाणां रक्षया ॥
 धर्मार्थकाममोक्षाश्चदानुशक्ता च पूजिता । प्रत्नादिभिः स्तूयमाना मुनिर्मर्मनुमिर्नरे ॥
 प्रधानांशस्यरूपा च प्रहृतेश्च वसुन्धरा । आयाग्भूता सर्वेणां सर्वशस्यप्रमूढिका ॥२३॥
 रत्नाकारा रत्नगर्भा सर्वगन्तापराश्रया । प्रत्नादिभिः प्रजेर्योश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥
 सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी । यया विना जगन् सर्वं निराधारं वरुणम् ॥

प्रहृतेश्च कला या याला निबोध मुनीश्वर ।

यस्य यस्य च या पन्न्यस्ता सर्वा वर्णयामि ते ॥ ६४ ॥

स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता । यया विना हविर्दत्तं न ब्रह्मैतुं सुराक्षनाः ॥
 दक्षिणा यक्षपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता । यया विना विश्वेषु सर्वं कर्मच निष्फलम् ॥
 स्वधा पितृणां पत्नी च मुनिर्मर्मनुमिर्नरे । पूजिता पितृदानञ्च निर्णयलञ्च ययाविना ॥
 स्वस्तिदेवी घायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता । आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च ययाविना ॥
 पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले । यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योदितोपि च ॥
 अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजितावन्दितासदा । यया विना न सन्तुष्टा सर्वलोकाश्च सर्वतः ॥
 ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्जरे । सर्वे लोकादरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ॥
 भृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्रपूजिता । सर्वलोका अघैर्य्याश्च जगत्सु च ययाविना ॥
 सुशीला सर्वपूजिता । समुन्मत्ताश्चरुणाश्च सर्वलोका ययाविना ॥
 कामपत्नीरतिःसती । केलिकौतुकहीनाश्च सर्वलोका ययाविना ॥

सत्यपत्नी सती मुक्तिपूजिता जगतांप्रिया । यथापिना मयेतोको बन्धुता रहितः सदा ।
मोक्षपत्नी दयासाध्यापूजिता ॥ जगत्प्रिया । सर्वलोकाश्च सर्वत्र निन्दुराश्च यथापिना ।
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता । यथापिना जगत् सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ।
सुखसंपत्नी कीर्त्तिरूपध्यामान्या च पूजिता । यथापिना जगत् सर्वं यशोहीनमृत्पथा ।
क्रिया लोकापत्नी च पूजिता सर्वमद्विता । यथापिना जगत् सर्वमुच्छन्नमिव मातृ ।
भयमपत्नी मिथ्यासा सर्वभूषणं पूजिता । यथापिना जगत् सर्वमुच्छन्नमिविधिनिर्मितम् ।
उत्थे भद्रांताया च जेतायां मृन्मदपिनी । भद्रांथयकरूपा ॥ द्वापरे संवृता हि सा ।
कन्यामहाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिकास्मान् । कपटं न समं ज्ञाता भ्रमरयेव गृहे गृहे ।

शान्तिर्नञ्जा च भार्य्ये द्वे सुखान्तिम्य च पूजिते ।

याभ्यां पिना जगत् सर्वमुत्तममिव मातृ ॥ ११३ ॥

मानस्य निद्रो भार्य्याश्च बुद्धिर्मधा स्मृतिस्तथा ।

यामिपिना जगत् सर्वं मृदं मृतसमं सदा ॥ ११४ ॥

मूर्तिरूपमपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा । परमात्मा च विदर्शयानिराधाराययापिना ।
सर्वत्ररामाकृपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती । धीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता ।
कालान्तरद्वारनीचनिद्रासा सिद्धयांगिनाम् । सर्वलोकाः समाच्छ्रमायायोगेन रात्रिषु ।
कालस्य निद्रो भार्य्याश्च सन्ध्या रात्रिर्द्वितानि च ।

यामिपिना विधात्रा च संख्यां कर्तुं न शक्यते ॥ ११८ ॥

धुम्पिपासेलोमभार्य्यधन्येमान्येव पूजिते । याभ्यां व्याप्तं जगत् क्षोभयुक्तं चिन्तितमेव च ।
मान्यदादिकाचैव द्वे भार्य्येते जसस्तथा । याभ्यां पिना जगत् स्रष्टुं विधाता च न हीश्वरः ।
कालवन्द्ये मृत्युजरे प्रत्यक्षे प्रिये प्रिये । याभ्यां जगत् समुच्छन्नं विधात्रा निर्मिते विधौ ।

निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये ।

याम्यां व्याप्तं जगत् सर्वं विधिपुत्रविधेर्विधौ ॥ १२२ ॥

पैराग्यस्य च द्वे भार्य्ये धन्या भक्तिश्च पूजिते ।

याम्यां शब्दं जगत् सर्वं जीवन्मुक्तिमिदं मुने ॥ १२३ ॥

दिविर्दयमाता न सुखमिह गवां प्रभूः । दिविभ्यो वैश्यजननी कटूभ्यो गिता दनुः ॥
 पुत्राः सृष्टिर्विर्षाणताभ्यर्चनेः कलाः । कलाभ्यान्वाः सन्निवहन्मातुकाभिप्रियां प्रमे ।
 हेर्षीन्मद्रवर्षीन् गन्ध्या सृष्टंस्वकामिनी । जनन्या मनोर्भाष्या शर्माद्रभ्यन् गेहिनी ॥
 तद्वहन्नेर्भाष्यां वशिष्ठस्याप्यभ्यर्चनी । महत्या गौतमयां माप्यनम्यात्रिकामिनी ॥
 हृती कर्म्मस्य प्रगुनिर्देशकामिनी । विनूनां माननी कन्या मेनका माग्निकाप्रभूः ॥
 यामुद्रा तथाहृती कुक्षेकामिनो तथा । यदजानी यमयो गवदेर्विन्ध्यावर्षीनि न ॥
 नीन्मद्रमवर्षीनि यशोदादेयकीरणी । गान्धारीर्द्रोपर्वीश्या सावित्रीमत्यवर्षीया ॥
 मानुप्रियासाध्या राशामाता कलाधनी । मन्दोर्दराय कौशल्या गुमद्राकैटर्मनया ॥
 ती सत्यभामाय कालिन्दी लक्ष्मणातया । जाभ्यनी नाप्रजिनो मित्रविन्द्यातया ॥
 रमणादविमणीसीतास्वर्णलक्ष्मीप्रकीर्तिता । कलायां जनगन्ध्यामन्यासमानामहासती ॥
 णपुत्रा तयोवाच विश्वरेखाय तत्सती । प्रमाथती भानुमती तथा मादायती सती ॥
 युकाय भृगोर्माता हलिमाताय रोहिणी । एकानंशाचदुर्गासा श्रीकृष्णमणिनी सती ॥
 रम्यः सन्ति कलाधैर्यं प्रहृतेरेष भागते । यायाश्च प्रावदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रहृतेः कला ॥
 लांशांशसमुद्भूताः प्रतिविष्टेषु योयितः । योयितामपमानेन प्रहृतेध्वराभवः ॥ १३७ ॥
 हृणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती । प्रकृतिः पूजिता तेन यत्नालङ्कारचन्दनैः ॥
 मारी चाष्टवर्षीया यत्नालङ्कारचन्दनैः । पूजितायेन विश्रम्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥
 र्वाः प्रकृतिसम्भूता उत्समाधममध्यमाः । सत्त्वांशाश्चोत्तमाः क्षेयाः सुशीलाश्च पतिप्रताः ॥
 मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः ।
 सुखसम्भोगवत्यश्च स्वकार्यतत्पराः सदा ॥ १४१ ॥
 धमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसम्भवाः । दुर्मुखाः कुलटा धूर्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः ॥
 धिष्यां कुलटायाश्च स्वर्गे चाप्सरसांगणाः । प्रहृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः ॥
 र्वं निगदितं सर्वं प्रहृतेः परिकीर्तनम् । ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्यां पुण्यक्षेत्रेचमारते ॥
 पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । द्वितीये रामचन्द्रेण रावणस्यै यथार्थिना ॥
 तन्मातृ तन्मातां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ।

ते देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुंश्च निन्दया । जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥
 गेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो घिष्णुकलोद्भवः । वभूवतुस्ती तनयो वधास्तस्याश्चनारदः ।
 शर्मामङ्गलभूषेन प्रथमे परिपूजिता । त्रिषु लोकेषु तत्पश्चात् देवतामुनिमानवैः ॥१४१॥
 चित्रा अपि प्रथमे भक्त्या च परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥
 तदीं सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥
 यमे पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले । पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेनपरमात्मना
 ऐपिकामिध गोपैश्च बालिकामिध बालकैः । गद्यां गणैःसुरगणैस्तत्पश्चात्माययाहरेः
 दा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा । पुण्यधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा ॥
 घिष्ण्यां प्रथमे देवी सयज्ञेन च पूजिता । शङ्करेणोपविष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥१५॥
 त्रेषु लोकेषु तत्पश्चादप्यया परमात्मनः । पुण्यधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः
 तला या याः तुसंभूता पूजितास्ताश्च भारते । पूजिताग्रामदेश्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥
 एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् । यथागतं लक्षणञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
 इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखण्डे नारायण-नारदसंवादे प्रकृतिवर्तितसूत्रं नाम
 प्रथमोऽध्यायः ।

—०—

द्वितीयोऽध्यायः ।

देवदेव्युत्पत्तिः ।

नारद उवाच ।

समासेन धृतं सद्यं दर्पिनां चरितं विभो ! । विचोधनाय योषस्य व्यासेन पदुमर्हसि
 सृष्टिराद्या सृष्टिपिपौ कथमाविर्भूय ह । कथं वा पञ्चधा भूता यद् वेदविदांवर ॥२॥

भूता वा याश्च ब्रह्मया तथा त्रिगुणया भवे ।

व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि साग्रतम् ॥ ३ ॥

तासां जगमानुषज्जनं ध्यानं पूजापिधि परम् । स्तोत्रं कथनमैश्वर्य्यंशौच्यंघर्णय मङ्गलम्

धीनागम्य उवाच ।

निष्ठागमा न मातो निष्ठाकान्तां निष्ठां विशो यथा ।

विश्वेशो गोकुलं निष्ठां निष्ठां गोकुलं त्वं न ॥ १५ ॥

गदेकदेशो गोकुण्डो मय्यमागः न निष्ठाकः । तमेव प्रहृतिनिष्ठया ब्रह्मन्तीना मय
यथासीं द्राहिका नन्दे यथे शोभाप्रमाण्यो । शत्रुयुक्ता मभिप्रासात्ताप्रहृति
पिना म्यर्णं म्यर्णकारः कुण्डलं कर्तुमशमः । पिनामृदा कुलालोहि पदं कर्तुं न
न हि शमस्तथा प्रत्य भृष्टि म्रुत्तुं तथा पिना । सर्वशक्तिम्यरूपामानयान्शक्तिम
पेशपर्यययनः शब्दं च तिः पराप्रमयाचकः । तन्मयरूपा तयोदांभीयासाशनिःप्रय
समृद्धिपुष्टिसम्पत्तिपरासं पयनीं भगः । तेन शक्तिर्मगयतीं भगरूपा न सा सदा

तथा युक्तः सदात्मा च भगवोस्तेन कथ्यते ।

स च स्वेच्छामयः कृष्णः सात्काग्न्य निराहृतिः ॥ १६ ॥

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा । यदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीदृश
भट्टं सर्वपदकारं सर्वं सर्वकारणम् । सर्वदं सर्वरूपान्तरमयं सर्वपौषकम् ॥
यैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्वक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः । यदन्तीति कस्य तेजस्तेयनेजस्विने
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम् । स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारण
अतीवसुन्दरं रम्यं विभ्रतं सुमनोहरम् । किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्
नवीननीरदामासं रासिकश्यामसुन्दरम् । शरन्मध्याह्नपद्मोभोभामोचनलोचनम् ॥
मुक्तासारविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् । मयूरपुच्छचूडञ्च मालतीमाल्यमण्डित
सुनसं सस्मितं शश्वद्वक्त्रानुग्रहकातरम् । ज्वलद्ग्निरिविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम्
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् । सर्वाचारञ्च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥
सर्वेश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम् । परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारणम्

ॐ

शब्ददेवैरूपं सनातनम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परं

कृषिश्च सर्ववचनो नकारो धीजवाचकः । सर्वे धीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥२६॥
 असंख्यग्रहाणां पातेकालेऽतीतेऽपिनारद । यद्गुणान्नां नास्ति नाशस्तत्समानो गुणेन च ॥
 स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादीं सिस्त्रुद्रेक एव च । सृष्ट्योन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः ॥
 स्येच्छामयः स्येच्छया च द्विधारूपो यमूषह । स्त्रीरूपा वामभागांशादक्षिणांशः पुमान् स्मृतः ॥
 सां ददर्श महाकामो कामाधारः सनातनः । भतीचकमनीयाश्च चाद्यव्यक्तसन्निभाम् ॥
 चन्द्रविष्यदिनिन्दैकनिन्दययुगलां पराम् । सुचारकदलीस्तम्भनिन्दितधोणिसुन्दरीम् ॥
 धीयुक्तध्रीफलकारस्तनयुग्ममनोरमाम् । पुष्ट्या युक्तास्तुलितामध्यक्षीणां मनोहराम् ॥
 भतीयसुन्दरीशान्तांसस्मितां प्रबलोचनाम् । वह्निशुद्धां शुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
 शोभयभुधकोराम्भापिषन्तीसन्ततमुदा । कृष्णस्य मुखवन्दश्च वन्द्यकोटिदिनिन्दितम् ॥
 कस्तूरीचिन्दुभिः सार्द्धमध्यन्दनचिन्दुना । नमं सिन्दूरचिन्दुश्च भालमयैच विघ्नतीम् ॥
 पङ्क्तिं कयरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नेन्द्रसारहारश्च दधतीं फान्तकामुकीम् ॥
 कौटिचन्द्रप्रमामुष्टपुष्टशोभासमन्विताम् । गमने च राजहंसगजवज्रनगजनीम् ॥ ३७ ॥
 इष्टिमात्रं तया सार्द्धं रासेशो रासमण्डले । रासोत्सारेषु रहसि रासकीडां वफार ह ॥
 नानाप्रकाण्डद्वारं शृङ्गारो मूर्तिमानिव । वफार सुखसम्भोगं याषद्वै प्रहणो वयः ॥
 ततः सद्यधिधानस्तस्यायोनीजगन्निषा । वफार वीर्याधानश्च नित्यानन्दः शुभक्षणो ॥
 रात्रतो योयितस्तस्याः सुरतान्ने च सुमनः । निःससारधमज्जलं धान्तायास्तेजसाहरैः ॥
 महात्मजकिट्टाया निःश्वासश्च यमूष ह । तदाधारधमज्जलं तन् सर्वं चिद्वचनोदयम् ॥
 ■ च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो यमूष ह । निःश्वासवायुः सर्वैराजीविनाञ्च मयेपुत्र ॥
 यमूषमूर्तिमद्वायोर्वामाङ्गान्प्राणवत्तमा । सत्पत्नीसाचनत्पुत्राः प्राणाः पञ्चवर्जीविनाम् ॥
 प्राणोऽपानः समानस्त्वैवोदानो ध्यान एव च । यमूषुरेव नत्पुत्रावधः प्राणाश्च पञ्च च ॥
 धर्मतोषाधिदेवश्च यमूष परणो महान् । सद्भवामाङ्गाश्च सत्पत्नी वरुणाती यमूष सा ॥
 अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाङ्गैर्दधार ह । शतमन्यन्तरं यावद्व्यलन्ती प्रत्यनेजसा ॥

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ।

कृष्णस्य सङ्गिनी शरणं कृष्णवदः स्थलस्थिता ॥४८॥

मन्वन्तरातीतकालेऽतीतेऽपि सुन्दरी । सुषाव डिम्बं स्वर्णामंघ्रिवाधारालयं परम् ॥
 १ डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विभूषिता । उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले ॥
 २ कृष्णञ्च सत्यागं हाहाकारं चकार ह । शशाप देवीं देवेशस्तन्मूढाश्च यथोचितम् ॥
 ३ तेऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे । भयत्वमनपत्यापि चाद्यप्रभृतिनिक्षितम् ॥
 ४ यास्तदशं रुपा चमधिष्यन्ति सुरस्त्रियः । अनपत्याधृताः सर्वास्तस्मान्मित्ययीषणाः ॥
 ५ स्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाप्रात् सहसा ततः । आविर्बभूव कन्यका शुक्रवर्णा मनोहरा ॥
 ६ त्वत्परीधाना धीणापुस्तकधारिणी । रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५॥
 ७ कालान्तरे सा च द्विधारूपाथभूष ह । धामार्द्धाङ्गा च कमलाक्षिणा र्द्धाचराधिका ॥
 ८ स्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो यभूव ह । दक्षिणार्द्धञ्च द्विभुजो धामार्द्धञ्च चतुर्भुजः ॥
 ९ त्व धार्यो श्रीकृष्णस्त्यमस्य कामिनी भव । भवैवमानिनीराधानैव भद्रं भविष्यति ॥
 १० लक्ष्मीञ्च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च । स जगाम च यैकुण्ठं ताम्भ्यासाद्वैजगत्पतिः ॥
 ११ पत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसम्मया । भूता नारायणाङ्गाश्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥
 १२ सा धयसा रूपगुणाम्भ्याञ्च समा हरेः । यभूवुः कमलाङ्गाश्च दासीकोटयश्च तत्समाः ॥
 १३ गोलोकनाथस्य लोकां विपरतो मुने । भूताश्चासंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥
 १४ न च गुणेनैव धेनेन विक्रमेण च । प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे यभूवुः पार्षदा विभोः ॥
 १५ त्कूलो मकूपेभ्यो यभूवुर्गोपकन्यकाः । राधातुल्याश्च सर्वास्ताः राधातुल्याः प्रियंवदाः ॥
 १६ रूपणभूषाढ्याः शयनसुस्थिरयीषणाः । अनपत्याधृताः सर्वाः पुंसः शपेन सन्ततम् ॥
 १७ स्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः । आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥
 १८ नारायणीशानी सर्वशक्तिम्यरूपिणी । बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
 १९ नां धीजरूपा च मूलप्रवृत्तिरीश्वरी । परिपूर्णतया तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥
 २० ताश्च नवर्णामा सूर्यकोटिसमप्रमा । ईषदाभ्यप्रसन्नाम्या सहस्रभुजसंयुता ॥ ६६ ॥
 २१ शास्त्राभिनिकरं विप्रती सा त्रिलोचना । धद्भिगुडाङ्गुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥
 २२ राधांशशफलया यभूवुः सर्वयोगिनिः । सर्वविषयस्थिता लोका मोहिता मायया यया
 २३ द्यव्यं प्रदात्री ॥ कामिनां गृहपासिनाम् । कृष्णमनिप्रदात्री च यैष्णवानाञ्च यैः शर्पा

मुमुक्षूणां मोक्षदात्रीसुखिनांसुखदायिनी । स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीः सागृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ
तपस्थिषु तपस्या च श्रीरूपासा नृपेषु च । या चाम्नीदाहिकारूपा प्रभाकरा च भास्करे
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना । सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णे परमात्मनि ॥

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत् ।

यया विना जगत् सत्यं जीवन्मृतमिष स्थितम् ॥ ७६ ॥

या च संसारवृद्धस्य धीजरूपासनातनी । स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥

क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः ।

शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी ॥ ७८ ॥

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुत्रः समुयास ह । रत्नसिंहासने तस्यै प्रददी राधिकेश्वरः ॥

पतस्मिन्नन्तरं तत्र सखीकञ्च चतुर्मुखः । पद्मनाभो नाभिपद्माग्निः संसारं पुमान् मुने ॥

कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी क्षान्तिनो धरः । चतुर्मुखस्तं तुष्टाय प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥

सुन्दरी सुन्दरीश्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा । वह्निगुडांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥ ८२ ॥

रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् । उयास स्वामिना सादं कृष्णस्य पुत्रोमुद ॥

पतस्मिन्नन्तरं कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः । धामार्द्धाङ्गमहादेवोदक्षिणो गोपिकापति ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरधिप्रभः । त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः ॥ ८५ ॥

सतकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः । भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥ ८६ ॥

विगम्यरो नीलकण्ठः सर्वभूषणभूषितः । विभ्रदक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्तृताम् ॥

प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥

कारणं कारणानाञ्च सर्वमङ्गलमङ्गलम् । जन्ममृत्युजघन्यात्रिशोकभीतिहरपरम् ॥ ८८ ॥

संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातोमृत्युञ्जयामिघः । रत्नसिंहासने रम्ये समुयास हरेःपुत्रः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिनांम

द्वितीयोऽध्यायः ।

चिन्तामवाप क्षद्वयुक्तो रुरीद च पुनः पुनः । ज्ञानं प्राप्य तदादध्यौरुष्णः परमपूरुषम् ॥
 सतो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२॥
 सस्मितं मुक्लीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम् । जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥
 धरं तस्मै ददौ तुष्टो परेशः समयोचितम् । मत्समो ज्ञानयुक्तश्चक्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥

ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव घत्स लयावधि ।

निष्कामी निर्भयश्चैव सर्वेषां बखोद्यतः । जपभृत्युरोगशोकपीडाविपरिवर्जितः ॥२५॥
 इत्युक्त्वा तद्वक्षर्कं महामन्त्रं पङ्कजम् । विः कृत्वा प्रजजापाद्रीयेद्रागमधरं परम् ॥२६॥
 प्रणवादिबतुर्ध्वन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । बह्निश्चालान्तमिष्टञ्च सर्वविग्रहरं परम् ॥२७॥
 मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै प्रभुः । धूपतां तनुब्रह्मपुत्र निबोधकथयामि ते ॥
 प्रतिविश्वे यन्मैवेष्टं ददाति वैष्णवो जनः । षोडशारांविषयिणोविष्णोः पञ्चदशास्यवै ॥
 निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च । नैवेद्येन च कृष्णस्य नहिकिञ्चित्प्रयोजनम् ॥
 यदु ददाति च नैवेद्यं तस्मै देवाय यो जनः । सचखादतितत्सर्वलक्ष्मीदृष्ट्वा पुनर्मथेत् ॥
 तञ्च मन्त्रं धरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्षिभुः । धरमन्यं किमिष्टन्ते तन्मे ब्रूहि ददामि ते ॥३०॥
 कृष्णस्य घद्यनं ध्रुत्वा तमुवाच महाविराट् । अदन्तो बालकस्तत्र घद्यनं समयोचितम् ॥

महाविराट् उवाच ।

धरं मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला । सन्ततं याचदापुमं क्षणं वा सुखिच्छया ।
 त्वद्वक्तियुक्तो यो लोकेर्जायन्मुक्तः स सन्ततम् । त्वद्वक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपिमृतो हि सः ।
 किं तद्वपेन तपसा यजेन पूजनेन च । मतेनैवोपधासेन पुण्येन तोयंसे यया ॥ ३६ ॥
 कृष्णमक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं धृया । येनात्मना जीवितश्च तमेव न हि मन्यते ॥३७॥
 याचदात्माशरीरेऽस्तितवत्सशक्तिसंयतः । पञ्चादुयान्तिपतेतस्मिन्नस्य तन्त्राश्च शक्तयः ।
 स च त्वञ्चमहामागसर्वार्त्ताप्रकृतेः परः । स्वेच्छामयश्च सर्वार्थो ब्रह्मज्योतिः सनातनः ।
 इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विराम्य च नारद । उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिमधुरां धृतिसुन्दरीम् ॥

धीरुष्ण उवाच ।

सुचिरं सुखिरं त्विदं यथाहं त्वं तथा भव । ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्तेन भविष्यति ।

भंशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वञ्च पुत्र विराट् भव । त्वन्नामिषमेवब्रह्मात्त्वविश्वसृष्टाभविष्यति ॥
 ग्लोष्टे ब्रह्माण्डचैव रद्वश्चैकादशैव तु । शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसञ्चरणाय वै ॥४३॥
 ग्लोष्टिस्तेष्वेको विश्वसंहागकारकः । पाताविष्णुश्च विष्णुश्रुद्वांशेनभविष्यति ॥
 द्वक्तियुक्तः सततं भविष्यसि चरेण मे । ध्यानेन कमनीयं मानित्यंद्रक्ष्यसिनिश्चितम् ॥
 तत्तं कमनीयाञ्जममयक्षःस्थलस्थिताम् । यामिलोकंतिष्ठयत्सेत्युक्तवासोऽन्तरर्थायत ॥
 त्वा स्वर्लोके ब्रह्माणं शङ्करं स उवाच ह । स्रग्वरं स्रष्टुमीशञ्च सहस्रारञ्चतन्क्षणम् ॥
 श्रीकृष्ण उवाच ।

एहि स्रष्टुं गच्छ घत्स नामिषमोद्भवोभव । महाविराट्लोमकूपे श्रुद्रस्यचविधेःशृणु ॥
 च्छ घत्स महादेवं ब्रह्मभालोद्भवो भव । भंशेन च महाभाग स्वयञ्च सुविरं तपः ॥
 युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुतः । जगामनन्वातंब्रह्माशिषश्चशिषदायकः ॥
 हाविराट्लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले । स यभूव विराट् श्रुद्रोविराट्शंशेनसाभ्यतम् ॥
 यामो युधा पीतवासाःशयानोजलतल्पके । ईषद्वास्थःप्रसन्नास्थोविश्वकर्षाजनायनः ॥
 नामिकमले ब्रह्मा यभूव कमलोद्भवः । संभूय पद्मदण्डञ्च यन्नाम युगलक्षकः ॥ ५३ ॥
 न्तं जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः । नामिजस्य च पद्मस्यचिन्तामापपितामहः ॥
 म्भानं पुनरागत्य दधौ कृष्णपदाम्बुजम् । ततो ददर्श श्रुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥
 तानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते । यलोमकूपे ब्रह्माण्डं तञ्च तन् परमीभ्यरम् ॥५४॥
 कृष्णञ्चापि गोलोकं गोवगोपीसमन्वितम् । तं संस्तूय यःप्रापततःसृष्टिचकारसः ।
 मुधुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः । ततो रद्राः कपालाश्च शिवांशैकादशसृताः ।
 य पाता विष्णुश्च श्रुद्रस्य धामपार्श्वतः । चतुर्भुजश्च भगवानश्वेतद्वोपनिवासरत्न ॥
 दस्य नामिदमेव न ग्रहं विषयं ससर्ज सः । स्वर्गमर्त्यञ्जपातालंत्रिलोकंसचराचरम् ॥
 ईसर्पेलोमकूपे विष्टं प्रत्येकमेव च । प्रतिविष्टे श्रुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥
 येयं कथितं घत्स कृष्णसद्वृत्तनं शुभम् । सुखदंमोक्षदंसारंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
 ति श्रीश्रद्धवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखण्डेनारायणनारदसंवादेविश्वनिर्णयपर्वणनाम
 तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः

सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वमपूर्वञ्च त्वत्प्रसादात् सुधोषमम् । अथुना प्रकृतीनाञ्च व्यासं धर्णय पूजनम् ॥

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता ।

केन या पूजिता काया केन का वा स्तुता मुने ॥ २ ॥

कवचस्तोत्रमन्त्रश्च प्रभावं चरितं शुभम् । कामिः काम्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

गणेशजतनीदुर्गाराधा लक्ष्मीः सरस्वती । सावित्री च खट्विधिः प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥

आसीत् पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः । सुधोषमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥

प्रवृत्त्यंशाः कलायाश्च तासाञ्च चरितं शुभम् । सर्वेष्वप्यामि ते ब्रह्मन् साधधानं निशामय ॥

घाणी वसुन्धरा गङ्गा पद्मी मङ्गलवण्डिका । तुलसीमनसा निद्रास्वाहास्वधा च दक्षिणा ॥

तेजसा मन्त्रमास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥ ८ ॥

संक्षेपमासाञ्चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् । जीवकर्मविपाकञ्च तच्च घट्यामि सुन्दरम् ॥

तुलायाध्वै च राधाया विस्तीर्णं चरितं महत् । तच्च पठ्यान् प्रवक्ष्यामि संक्षेपं क्रमतः शृणु ॥

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता । यत्प्रसादान्मुनिधेष्ट मूर्खो भवति पण्डितः ॥

आचिर्मूता यदा देवी ववव्रतः कृष्णयो गितः । इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरुपिणी ॥

स च विनाय उद्गाय सर्वज्ञः सर्वमात्मन् । तामुवाच हितं सत्यं परिणामसुखाद्यहम् ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मञ्ज नापपणं साध्वि ! मद्देशञ्च चतुर्मुजम् । युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तञ्च मन्त्रमम् ॥

कामदं कामिनीनाञ्च तासाञ्च कामपूरकम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं स्त्रीलान्यकृतमीधरम् ॥

फान्ते फान्तश्चमार्हत्या यदि स्थातुमिहेच्छसि । त्वसौ पलवती राधा नने मद्रं मविष्यति ।

गामात्रुयन्तान्याणि । ततोऽप्यंगक्षिर्नुक्षमः । कर्षणगानमाधयतिगदित्ययमनीश्वरः ॥
 र्येशः सर्वशास्ताहं राधा राधितुमक्षमः । नेत्रमा मन्ममा माध रूपेण च गुणेन च ॥
 पाधिष्ठातृदेवीमाप्राणान्मयन्क्षकःक्षमः । प्राणनोऽपिप्रियःकुम्भकेरावास्तिवक्षत ॥
 भद्रेगच्छ येकुण्ठं तयमद्रं भविष्यति । पत्स्त्रिमीश्वरं हृत्वा मोक्षम्यमुनिरं मुगम् ॥
 भमोहकामकोपमानहिताधिपतिना । नेत्रमा मन्ममा मन्ममा रूपेण च गुणेन च ।
 तासांममय मन्मयाशयन् कालप्रवाहप्रति । गौर्यममङ्गरान् नून्यं कल्पित्यतिरतिर्द्वयोः ॥
 तेषिश्येषु ते पूजा महतीति मुदान्विताः । माधम्य शुभ्रगञ्ज्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥
 तयामनयोदेया मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः । सन्तश्चयोगिनः सिद्धानागगन्धर्वकिन्नराः ॥
 र्तेण करिष्यन्तिकाले कल्पेयथाविधि । भक्तियुक्ताश्च दस्वार्थं न्योपचारगङ्गागोइश ॥
 प्यशाग्नौकविधिता ध्यानेनस्तवनेनच । जितेन्द्रियाःसंयताश्च घटेनपुष्पकेऽपिच ॥
 चासुपर्णशुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम् । कवचगन्धे प्रहीष्यन्तिकण्ठे वा क्षिणे भुजे ॥
 प्यन्तिच विद्वांसः पूजाकालेच पूजिते । इत्युनया पूजयामास तां देवीं सर्वपूजितः ।
 स्तनपूजनं बहुप्रक्षिप्युमहेश्यराः । अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ।२१।
 देवाश्च मनयो नृपाश्च मानवादयः । बभूव पूजिता नितया सर्वलोकाः सरस्वती ॥
 नारद उवाच ।

विधानं स्तवनं ध्यानं कवचमीप्सितम् । पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पञ्च गन्धनादिकम् ॥
 धैर्यविदां श्रेष्ठं श्रोतुं कीर्तुहलं मम । धर्मेते साम्प्रतं शश्वत् किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥
 नारायण उवाच ।

शृणु नारद घट्ट्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।

जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३३ ॥

स्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च । पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्राहि संयतः शुचिः ॥
या नित्यक्रियां कृत्व घटं संस्थाप्य भक्तिः । संपूज्य देवपद्कञ्च नैवेद्यादिभिरेषवा
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ संपूज्य संयतोऽग्नेव ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥

॥ ध्यात्वा वाङ्मनसैर्वचः । ध्यात्वा पनः षोडशोपचारेण पूजयेद्ब्रह्मती ॥

पूजोपयुक्तनैवेद्यं यद्वयद्वेदे निरूपितम् । पद्यामिसाम्प्रतं किञ्चिद्वयधार्पातयधामम् ॥
 नवनीतं दधिक्षीरं लाजाञ्च तिललङ्घुकम् । श्लुमिश्रुरसं शुक्लवर्णं पद्मगुडं मधु ॥३६॥
 स्वस्तिकं शर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् । अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ॥
 घृतसेन्धयसंस्कारैर्हविष्यान्नञ्च ध्यञ्जनैः । यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥३७॥
 पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पङ्कजमाफलस्य च । परमान्नञ्च सगृहमिष्टान्नञ्च सुधोषणम् ॥
 नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमाद्रकम् । पङ्कजमाफलं चाप्यधीफलं यद्वरीफलम् ॥
 फालदेशोद्धवं पद्मफलं शुक्लं सुसंस्कृतम् ॥ ३८ ॥

सुगन्धिं शुक्लपुष्पाञ्च सुगन्धिं शुक्लचन्दनम् । कर्पानशुक्लवस्त्रञ्च कङ्कञ्च सुमनोहरम् ॥
 मातुङ्गञ्च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारञ्च भूषणम् ॥ ३९ ॥
 यद्दृष्टञ्च धूर्तौ ध्यानं प्रशस्यं धृतिसुन्दरम् । तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ॥
 सगरपतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहरम् । कोटिचन्द्रप्रमामुष्टपुष्टधीयुक्तधिग्रहाम् ॥४०॥
 यद्विशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम् । रत्नसारैर्नूनिर्माणवत्भूषणभूषिताम् ॥४१॥
 सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । वन्दे भक्त्या वन्दित्वा तां मुनीन्द्रप्रनुमानयैः ॥
 एवं ध्यात्वाद्यन्मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः । संन्यस्य यत्तत्त्वं भूत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥
 येषाञ्चेष्टमिष्टदेयी तेषां निष्पक्रिया मुने । विद्यायामेव सर्वेषां वर्णान्तं पञ्चमीदिने ॥४०॥
 सर्वोपयुक्तो मूलञ्च वैदिपाष्टाक्षरः परः । तेषां धेनोपदेशो वा तेषां स मूल एव वा ॥
 सरस्वतीयानुवर्त्यन्तो यद्विज्ञायान्त एव वा ॥ ४१ ॥

धीं ह्रीं स्वस्त्वस्वीं स्वाहा । तर्ह्यमावादिक्त्वेव मन्त्रोऽयं कथ्यपादकः ॥ ४२ ॥
 पुरा नारायणश्चेमं धार्मीकाय कृपानिधिः । प्रददौ जाह्नवीनरे पुण्यक्षेत्रे च मारुते ॥
 भृगुरदौ च शुकाय पुष्करे मूर्त्यपर्वणि । चन्द्रपर्वणि मार्गस्यो ददौ धावतये मुदा ॥
 भृगयेच ददौ कुष्ठो ब्रह्मा यद्वरिकाधमे । भान्तिकाय जरत्कारददौ क्षीरोदसनिधौ ॥
 विभाण्डको ददौ मेरौ ब्रह्मगृह्णाय धीमने ॥ ४५ ॥

शिपः कलादमुनये गौतमाय ददौ मुने । मूर्त्यञ्च याज्ञवल्क्याय तथा बाल्यायनाय च ॥
 शेषः पाणिनयेचैव मरुद्वाजाय धीमने । ददौ शाकटायनाय शुक्रदे यत्किमसदि ॥ ४७ ॥

तुलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्मवेन्नृणाम् । यदिस्यात् सिद्धमन्त्रोहि बृहस्पतिसमोभवेत् ॥
 षचंष्टु विप्रेन्द्र यद् दत्तं विधिना पुरा । विश्वघ्रेष्ठं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥
 भृगुस्त्वाच ।

अन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशाख । सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥
 रस्यत्याश्च कथंच ब्रहि विश्वजयं प्रभो । भजातमायमन्त्राणां सम्पूहसंयुतं परम् ॥
 ब्रह्मोवाच ।

एष पत्स प्रवक्ष्यामि कथंच सर्वकामदम् । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥
 कं कृष्णेन गोलोके मह्यं घृन्दायने घने । रासेश्वरेण विभुना रासेन रासमण्डले ॥ ६१ ॥
 र्वाधगोपनीयश्च कल्पवृक्षसमं परम् । अभूताद्भुतमन्त्राणां सम्पूहैश्च समन्वितम् ॥ ६२ ॥
 इत्यापटनाद् ब्रह्मन् बुद्धिर्माश्च बृहस्पतिः । यद्धत्वा भगवान् शुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः ।
 पटनाद्वारणाद् घाग्मी कर्वाण्ड्रो घात्मिको मुनिः ।

म्यायम्भुयो भनुश्चैव यद् धृत्या सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥

फणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाफ्टायनः ।

प्रत्यञ्जकार यद् धृत्या दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥ ६७ ॥

चा येद्विभागश्च पुराणान्यविलानि च । चकार ललाटमात्रेण कृष्णक्षैपायनः स्वयम् ।
 तातपश्च संपत्तीं घशिष्ठश्च पगशारः । यद् धृत्या पटनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥
 व्यग्रहो भग्नराजश्चास्तीको देवलस्तथा । जैर्मरुतोऽथ राजायातिर्यद् धृत्या सर्वपूजितः
 प्रयस्याम्य विप्रेन्द्र क्षत्रियैः प्रजापतिः । स्वयं बृहस्पतिरब्रह्मो देवो रासेश्वरः प्रभुः
 रतत्पपरिग्रान्तसर्वायं साधनेषु च । कविनामु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
 हो मरुत्यय्ये म्याहा शिरोमे यानुसर्वतः । धो घादेवतायै म्याहा मातं मे सर्वदायतु
 भो मरुत्यय्ये म्याहेनि धोत्रं पानु निगन्तरम् ।

भो धो हो मात्यय्ये म्याहा नेत्रयुग्मं सदायतु ॥ ७३ ॥

ऐ हो वाय्यादिन्ये म्याहा नामो मे सर्वनोऽयतु ।

हो विद्याधिष्ठान्देव्ये म्याहा भोष्टं सदायतु ॥ ७५ ॥

ओं श्रीं ह्रीं ब्राह्म्ये स्यादेति दन्तर्पकीः सदायतु । ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो ममकण्ठसदायतु
ओं ह्रीं ह्रीं पातुमे प्रीत्यास्वन्धमे श्रीसदायतु । श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहायज्ञः सदायतु
ओं ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।

ओं ह्रीं ह्रीं घाण्यै स्यादेति मम पृष्ठं सदायतु ॥ ७८ ॥

~ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदायतु । ओं रागाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदायतु ॥

ओं सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदायतु ।

ओं ह्रीं जिह्वाप्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥

ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै ध्रुवजनन्यै स्वाहा । सतर्प मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदायतु ॥

ओं ह्रीं श्रीं ज्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदायतु ।

कविजिह्वाप्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽयतु ॥ ८२ ॥

सदाग्नििकायै स्वाहापायत्र्ये मां सदायतु । ओं गणपदवासिन्यै स्वाहामामुत्तरेऽयतु

। सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदायतु । ओं ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहाबोद्धुर्ध्वं सदायतु

ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽथो मां सदायतु ।

ओं ग्रन्थपीठरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽयतु ॥ ८५ ॥

ते ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रीघविग्रहम् । इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मकविणम् ॥

॥ ध्रुतं धर्मवक्त्रम् पर्यते गन्धमादने । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रयत्नम् ॥ कल्पचित्

स्मभ्यर्च्य विधियद्दु घस्त्रालङ्कारवन्दनैः । प्रणम्य वण्डयदुर्मौ कवचं धारयेन्सुधीः

क्षलक्षत्रपेनैव सिद्धन्तु कवचं भवेत् । यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्

हृष्यामी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् । शक्नोति सर्वं जेतुं ॥ कवचस्य प्रसादनः

इदं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने । स्तोत्रं पूजाविधानश्च ध्यानश्च घन्दनं तथा

इति धीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिस्रष्टे नारायण-नारदसंवादे सरस्वतीकवचं नाम

चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः ।

भागवत उवाच ।

पात्रेषतायाः स्तवर्न भूयतां सर्वकामदम् । महामुनिर्यात्रयत्कयां येन नृपय तो पुनः
गुग्गुपायाश्च न मुनिर्हन्तविधो यभूव ह । तस्य जगाम दुःशास्त्रं रविम्यानश्च पुण्यदम्
संप्राप्य तपसा शूर्यं फोणाकं दृष्टिगोचरे । नृपय शूर्यं शोभेन करोद् च पुनः पुनः
शूर्यं पाटयामास वेदवेदाङ्गमादयः । उवाच मुनिर्हि वादेयी भक्त्या च स्मृतिहेतुं
समित्युक्तया श्रितनाथोऽन्तर्द्धानं चकार सः । मुनिः श्राप्या च नृपयभक्तिप्रारम्भकन्धर

याज्ञवल्क्य उवाच ।

एषां कुत जगन्मातर्मामेव हतचेतसम् । गुग्गुपायां स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनञ्च दुःशितम् ।
ज्ञानं देहि स्मृतिदेहि विद्यां विद्याधिदेयते । प्रतिष्ठां कवितां देहि शक्तिशिष्यप्रयोजिकाम्
ग्रन्थकर्तृकशक्तिञ्च सन्निधिं सुप्रतिष्ठितम् । प्रतिभां सत्समायाञ्च विचारक्षमतां शुभाम्
लुप्तं सर्वं दैवयशाप्रवीभूतं पुनः कुत । यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देयता पुनः ॥ ६ ॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी । सर्वविद्याधिदेयी या तस्यै वाण्यै नमो नमः
यया विना जगत् सर्वं शश्वद्गुजीवन्मृतं सदा । ज्ञानाधिदेयीयातस्यै सत्सत्यै नमो नमः
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत् सदा । वागधिष्ठातृदेयी या तस्यै वाण्यै नमो नमः
हिमवन्न्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । वर्णाधिदेयी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः ।
विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च । तदधिष्ठात्री या देवी भारत्यै ते नमो नमः ॥

यया विना च संस्थाकृत् संख्यां कर्तुं न शक्यते ।

कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

व्याख्यास्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृदेवता । भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः
स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी । प्रतिभा कल्पनाशक्तिया च तस्यै नमो नमः
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पश्येत् यत्र वै । यभूव जडवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुं नक्षमः

तदा जगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः । उवाच सततं स्तोत्रं वाणीमितिप्रजापतिम्
 स च तृष्टाय त्वां ब्रह्मा चाक्षया परमात्मनः । चकारत्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्
 यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ह्यन्तमेकं वसुधैव कुटुम्बकम् । यमूच मूकचत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्त्तुमशमः
 तदा त्वाञ्च स तृष्टाय संप्रस्तः कश्यपाक्षया । ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं ब्रह्मभजनम्
 ध्यासः पुराणसूत्रञ्च पप्रच्छ धात्मिकं यदा । मौनीभूतः स सस्मारात्त्वामेवजगदम्बिकाम्
 तदा चकार सिद्धान्तं महरेण मुनीश्वरः । संप्राप निर्मलं ज्ञानं प्रमादध्वंसकारणम् ॥
 पुराणसूत्रं श्रुत्वा स ध्यासः कृष्णकुलोद्भवः । त्वां सिपेव दध्मी च शतवर्षञ्च पुष्करे ॥

तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो यमूच ह ॥ २५ ॥

तदा वेदविभागाञ्च पुराणानि चकार ह । यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिष्याशिष्यम् ॥
 क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तत्त्वैज्ञानं ददौ विभुः । पप्रच्छशब्दशास्त्रञ्च महेन्द्रश्चबृहस्पतिम्
 दिव्यं वर्षसहस्रञ्च स त्वां दध्मी च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यं वर्षसहस्रकम्

उवाच शब्दशास्त्रञ्च तदर्थञ्च सुरेश्वरम् ॥ २८ ॥

अध्यापिताश्च येः शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥ २९ ॥

ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरि ।

त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवैः । दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः
 जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः । यां स्तोतुं किमहं स्तोमितामेकास्येनमानयः
 इत्युक्त्या याज्ञवल्क्यश्च भक्तिजन्मात्मकन्धरः । प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥
 तदा उद्योतिःस्वरूपासातेनादृष्टाप्युवाच तम् । सुकवीन्द्रो भवेत्युक्तवायैकुण्डश्चजगामह
 याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रं यः संयतः पठेत् । सुकवीन्द्रोमहाधाम्नी बृहस्पतिसमो भवेत्
 महामूर्खश्च दुर्मध्यो वर्णमेकश्च यः पठेत् । स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्दुष्टुयम्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलक्षणे नारायणनारदसंवादे याज्ञवल्क्योक्तवाणी-

स्तवो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

पष्ठोऽध्यायः

सरस्वत्युपाख्यानम् सर्वासां कलहश्च ।

नारद उवाच ।

सरस्वती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके । गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारतेसरित् ॥
 पुण्यदा पुण्यजननी पुण्यतीर्थस्वरूपिणी । पुण्ययद्विनिर्देश्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥
 पस्थिनां तपोरूपा तपस्याकाररूपिणी । वृतपापेधमदाहाय ज्वलदग्निस्यरूपिणी ॥३॥
 नै सरस्वतीतोये मृतं यैर्मानवैर्भुवि । तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥४॥
 भारतेवृत्तपार्षा च स्नात्वा तत्रापलीलया । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेयसेविभ्यः ॥
 तुर्दश्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये । व्यतीपातेचग्रहणेऽन्यस्मिन् पुण्यदिनेऽपिच ॥
 रातुपङ्केन यः स्नाति हेलयाभ्रद्वयापिवा । सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥७॥
 नरस्यतीमन्त्रकश्च मासमेकन्तु यो जपेत् । महामूर्खः कवीन्द्रश्च सभयेन्नात्र संशयः ।
 नेत्यं सरस्वतीतोये यः स्नाति मुण्डयेऽनरः । न गर्भयासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥
 त्येयं कथिनं किञ्चिद्भारतीगुणकीर्तनम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयःश्रोतुमिच्छसि ।
 नारायणयवः धृत्या नारदो मुनिसत्तमः । पुनः पप्रक्ष्य सन्देहच्छेदं शौनक सत्यरम् ॥

नारद उवाच ।

कथं सरस्वती देयी गङ्गाशापेन भारते । कलया कलहेनैव यभूव पुण्यदा सरित् ॥१॥
 प्रपणे धुनिसाराणां वर्द्धते कौतुकं मम । कथामृगानां नो वृत्तिः केन श्रेयसि कृष्यते ॥
 कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम् ।
 शान्तसत्यम्यरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम् ॥ १४ ॥
 नेज्जम्बिन्योर्द्वयोर्पादकारणं धुनिमुन्दरम् । सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥
 नारायण उवाच ।

३०० यस्यामि कथामेतांपुरातनीम् । यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ।
 ३०१ नारम्यत्रीगङ्गानिम्बोभाष्याहरेरपि । श्रेष्ठासमाम्नामिदृग्निसत्तर्नहरिमनिषी ।

चकारसैकदागङ्गाविष्णोर्मुखनिरीक्षणम् । सस्मितातिसकामा च सकटाक्षं पुनःपुनः ॥
विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं मुदा । क्षमाञ्चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती
योधयामास तां पद्मा सत्वरूपा च सस्मिता ।

क्रोधाविष्टा च सा घाणी न च शान्ता बभूव ह ॥ २० ॥

उवाच गङ्गां भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना । कम्पिता कोपवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥
सरस्वत्युवाच ।

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भक्तुः कामिनीः प्रति । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च ।
शतं सौभाग्यमधिकं गङ्गायान्ते गदाधर । कमलायाञ्च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयिप्रभो ।
गङ्गायाः पद्मया साहचं प्रीतिश्चापि सुसम्पता । क्षमाञ्चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥
किं जीवनेन मेऽत्रैवदुर्भगायाश्चसाम्प्रतम् । निष्फलं जीवनंतस्या या पर्युः प्रेमवञ्चिता ।
त्वां सर्वेशं सत्यरूपं ये वदन्ति मनोयिणः । ते च भूर्वा न वेदन्ता न जानन्तिमर्तितव ।
सरस्वतीयचः धृत्या दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् ।

मनसा स समालोच्य प्रजगाम बहिः समाम् ॥ २१ ॥

ते नारायणे गङ्गामुवाच निर्भयं रुपा । रागाधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम् ॥
हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम् ।
अधिकं स्यामिसौभाग्यं पिशापयितुमिच्छसि ॥ २२ ॥

।नचूर्णं करिष्यामि तवाद्यहरिसिन्धौ । किं करिष्यति ते कान्तो ममैवकात्तवत्तमे ।
त्येवमुक्त्वा गङ्गायाः केशं प्रहीतुमुद्यता । धारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती ॥
शाप घाणी तां पद्मां महाकोपवती सती । वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किञ्चिन्न वक्तुमर्हसि । सन्तिष्ठसि सभामग्रेययावृक्षो यथासरित् ॥
तप धृत्या च सा देवी न शशापचुकोपन । तत्रैवदुःखितातस्थोवाणीभूत्वाकरेण च ॥
अत्युदताञ्च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरितानना । उवाच गङ्गा तां देवीं पद्माञ्चपद्मलोचना ॥
गङ्गोवाच ।

त्वमुत्सृज महोग्राञ्च पद्मे किं मे करिष्यति । वाग्दुष्टावागधिष्ठात्रीदेवीयंकलहप्रिया ॥

गङ्गाशापेन सा घाणी यदि गाम्यति भागम् ।

कदा शापातिनिर्मुन्य तमिष्यसि पदं तव ॥ ८० ॥

तां घाणीं प्रह्लादपुत्रं गङ्गां वा शिवमन्दिनम् । गन्तुं वदमि हे नाथ ! तन्ममम्यन्ते वनः
इत्युक्त्वा कमलाकान्तपदं धृत्वा ननाम न । ग्यत्रैश्वर्येष्टमिष्या ॥ स्त्रोद च पुनः पुनः ॥
उषाच पद्मनाभस्तो पद्मां वृत्त्वा व्यवक्षति । ईषदाभ्यः प्रसन्नाभ्यो भक्तानुग्रहकारकः ॥

नारायण उवाच ।

त्यद्वाप्यमात्ररिष्यमि मयास्वञ्च सुरेश्वरि । समग्राञ्च करिष्यामि शृणु तत्प्रममेवच ॥
भारती यानु कलया सरिट्टपा च भागम् । भर्ता शा प्रह्लादपुत्रं स्वयं तिष्ठतु मद्वद्वे ॥
भर्गारथेन नीता सा गङ्गा याम्यति भागम् । पूर्णं कर्तुं प्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्वद्वे ॥
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मूर्तिप्राप्यतिदुर्लभम् । ततः स्वमायतः पूनाप्यतिपूना भविष्यति ॥
कलाशाशेन त्वं गच्छ भारते कमलोद्भवे । पद्मावती सरिट्टपा तुलसां वृक्षरूपिणी ॥ ८१ ॥
फलैः पञ्चसहस्रे च गतेष्वेवमोक्षणम् । युष्माकंसरितांभूयोमद्वद्वेद्यागमिष्यथ ॥ ८२ ॥
सम्पदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् । विना विपत्तेर्महिमा केयां पद्मे भवेद्भवे ॥
मन्मन्त्रोपासकानाञ्च सतांस्त्राणाघगाहनात् । युष्माकमोक्षणं पापान्पापिदस्ताश्च स्पर्शनात्
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सन्त्यसंख्यानि मुन्दरि । भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
मन्मन्त्रोपासका भक्ता भ्रमन्ति भारते सति । पूर्णं कर्तुं भारतञ्च सुपवित्रां वसुन्धराम् ॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च । तन्स्थानञ्च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्बुधम् ॥
स्त्रीभ्यो गोभ्यः वृत्तप्रश्च ग्रहप्रोगुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहानोऽप्यनास्तिकः । नरघाती भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
असिजीवी मसिजीवी घावकः शूद्रयाजकः । वृषवाहो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः । स्थाप्यहारी भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
ऋणग्रस्तो घातुपिको जारजः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः । अदीक्षितो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
मद्भक्तनिन्दकस्तथा । अनिवेद्यभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥

मातरं पितरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम् । गुरोः जुहुलञ्चमग्निनीवंशहीनक्षयाम्धवम् ॥
 श्वश्रूञ्च श्वशुरञ्चैव यो न पुष्पाति नारद । स महर्षोत्तमः पूतोऽहं मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
 देवद्रव्यापहारीचविप्रद्रव्यापहारकः । लक्षालोहरत्नानि च विभ्रष्टा दुहितुस्तथा ॥ १०५ ॥
 महापातकिनश्चेत् शूद्राणां शवदाहकः । भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ १०५ ॥

लक्ष्मीख्याच ।

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक । येषां सन्दर्शनम्पर्शात् सद्यःपूता नराधमाः ॥
 हरिभक्तिविहीनाश्च महादङ्कारसंयुताः । स्वप्रशंसोक्ता धूर्ताः शठाश्चसाधुनिन्दकाः ॥
 पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां ज्ञानाधयाहनात् । येषाञ्च पादोज्जसा पूता पादोदकान्मही ॥
 येषां सन्दर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते । स येषां परमोलाभो वैष्णवानां समागमः ॥
 न ह्यम्भयानि तीर्थानि न देवामृच्छिलामयाः । तेषु नैव युक्तकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥
 सौतिरुवाच ।

महालक्ष्मीययः धृत्या लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः । निगूढतत्त्वं कथितुमपि मे प्रोपचक्रमै ॥

श्रीनारायण उवाच ।

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं धृतिपुराणयोः । सुप्रसूचस्वर्णपत्रार्जुनसुखदं भक्तिमुक्तिदम् ॥
 सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं न लेपु च । तयो प्रविशति प्राणतुल्यां कथयामि निशामये ॥
 गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति । तद्विद् वेदवेदाङ्गास्तो प्रविशन्तरोचमम् ॥
 पुराणाणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममाव्रतः । स्वर्गं तत्र नरकस्थं वा मुक्तिं प्राप्नोति तत्क्षणम् ॥
 यैः कश्चिद् यत्र याजन्मलार्धयेषु वज्रमसु । जीवन्मुक्तश्चेत्पूजायान्तिहालेहरेः प्रदम् ॥
 मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणान्दास्यनीयश्चमन्ति विष्टयस्तन्तम् ॥
 मद्गुणधृतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः । समद्वन्द्वः सप्रभुनेवः स्वस्वमविसृज्य प्रेष खे ॥
 न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिसालोत्पादितं ययम् । मत्तत्त्वममरं न वा प्रदं मृदामासेषने ॥
 इन्द्रत्वञ्च मनुत्यञ्च देवत्वञ्च सुदुर्लभम् । स्वर्गं वा द्वादिभोगञ्च स्वप्नेन हि वाञ्छति ॥
 प्रहाण्डानि विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा । कन्याणमभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रपश्यति ॥

समन्ति भार्गवेभ्यः प्रह्लादश्च जन्मसु दुर्ममम् । नेऽपि यान्ति प्रहो भूषानराग्नीर्गममान्
इत्येतन् कथितं मयं कुरु पद्मे यगोन्निवम् । तदा तानाद्य ताश्चार्हं गमिष्यती सुमान्
इति धीप्रह्लादेयत्तं महापुण्ये प्रह्लादिगण्डे नागयण-नारदगंधादे मरम्यगुणभ्याम्

गद्योऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

कालकालेश्वरगुणनिरूपणम् ।

नारायण उवाच ।

सरस्वती पुण्यक्षेत्रे आजगाम च भारतम् । गङ्गाशापेन कलया स्वयं तर्षणीहरेः पदम्
भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया । वागधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी च कीर्तिता
सर्वविश्वं परिध्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते । हरिः सरन्तु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती
सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपा तिपावनी । पापिपापेभ्यः दाहाय जलदमिष्य रूपिणी ॥ १ ॥
पश्चाद्गङ्गा रधानीता महीं भार्गीरधी शुभा । समाजगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥
तत्रैव समये ताञ्च दधार शिरसा शिवः । वेगं सोऽदुमशक्ताया भुधः प्रार्थयता विभुः ॥
पद्माजगाम कलया सा च पद्मावती नदी । भारतं भारतीशापान् स्वयंतस्थौ हरेः पदम्
ततोऽन्यथा सा कलया ललाभजन्मभारते । धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्दिव्या ता तुलसीति च
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चादपि शापतः । यभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥ २ ॥
कलेः पञ्चसहस्रञ्च वषट् स्थित्वा च भारतम् । जम्बुस्तत्र सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम्
यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीवृन्दावनं विना । यास्यन्ति सार्द्धं तामिध्वं वैकुण्ठमात्रयाहरेः
शालग्रामो हरेर्मुक्तिर्जगन्नाथश्च भारतम् । कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदम्
वैष्णवाश्च पुराणानि शङ्खाश्च आदत्तर्पणम् । वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तेः सार्द्धमेव
हरिपूजा हरेर्नाम तत्कीर्त्तिगुणकीर्त्तनम् । वेदाङ्गानि च शास्त्राणि ययुस्तेः सार्द्धमेव च ॥

तत्त्वञ्च सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ब्राम्हदेवताः । व्रतं तपस्यानशनं ययुस्तेः सार्द्धमेव च ॥
 ब्राम्हान्धारताः सर्वे मिथ्याकाण्ड्यसंयुताः । तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यति ततः परम् ।
 रकादशीविहीनाश्च सर्वे धर्मविचर्जिताः । हस्त्रिसङ्गविमुक्ताः भविष्यन्ति ततः परम् ॥
 शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः । धौपश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यन्ति ततः परम्
 पुंसो मेदश्च क्लोमेदो विवाहो वापि निर्णयः ।

स्वस्यामिमेदो यस्तूता न भविष्यति तत्परम् ॥ १९ ॥

सर्वेजनाः स्त्रीवशाश्च पुंश्चल्यश्च गृहेगृहे । तर्जनेर्मर्न्सनैः शयत् स्वामिनं ताडयन्ति च ॥
 गृहेभ्वराचगृहिणी गृही भृत्याधिकोऽयम् । चेटीभृत्यसर्मा वज्याः शधूश्च शूरस्तथा ॥
 फलारो यलिनो गेहे योनिसम्यन्धियान्धवाः ।

विद्यासम्यन्धिमिः सार्द्धं सम्भासोऽपि न विद्यते ॥ २० ॥

यापरिवितालोकास्तथा पुंसश्च यान्धवाः । सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योनित्रामाश्रयायिता
 षष्ठ्यान्ध्रपटिपन्तिम्यशास्त्राणि पिहाय च । ब्रह्मज्ञत्रविशार्वशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ
 त्रकारा भवन्ति धापकाः पृथ्वाहकाः । सत्यहीना जनाः सर्वे शस्यहीनाश्च मेदिनी ॥
 तत्पदीनाश्च नरयोऽपत्यहीनाश्च योनिनः । क्षीरहीनास्तथागायः क्षीरं सर्पिर्पिर्जितम् ॥
 स्पतीप्रीतिहीनो च गृहिणः सुखवर्जिताः । प्रतापहीना भूताश्च प्रजाश्च करपीडिताः ॥
 ज्ञातहीना नदाः नयो र्धाधिकः कल्पादयः । धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चान्यार पपया
 उर्युपुण्यवान् कोऽपि नित्यनिनः परम् । कुन्तितापि रत्नाकारानरा भार्यश्च बालकाः ॥
 कुन्तार्याः कुन्तितशत्रा भविष्यन्ति ततः परम् । केचिन्नुग्रमाश्च नगरा नरान्द्रामयानकाः ।
 केचिन् स्फुल्लकुटीरेण मरेण च समन्विताः । अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च ॥
 अरण्ययासिनः सर्वे जनाश्च कर्षादिताः । शस्यानि च भविष्यन्ति तद्गणेषु नदीषु च ॥
 ग्रहणानि च क्षेत्राणि शस्यहीनास्तथा परम् । हीनाः ग्रहणा घनिनो पन्थनमन्विताः ॥
 ग्रहण्यंशजाहीना भविष्यन्ति वज्रीयुगे । अलीकयादिनो धूर्ताः शठाश्च सत्ययादिनः ॥
 पापिनः पुण्यपन्थ्याप्यशिराः शिरा पपय । जिनेन्द्रियाल्लङ्घ्याश्च पुंश्चनश्च पन्थिनाः
 नरस्यनः पातकिनो विष्णुमका भविष्यताः । अहिंसका दयायुक्ताश्चाराश्च नरपातिनः

भ्रुवेशधरा धूर्ता निन्दन्त्युपदसन्ति च । भूतादिसेवानिपुणा जनानां मन्दकारिणः ॥
 जेतास्तेभविष्यन्ति वञ्चकाज्ञानदुर्बलाः । धामना व्याधियुक्ताश्चनरानार्थश्चसर्वतः ॥
 ल्यायुपो जरायुका यौवनेषु कलौ युगे । पलिताः पोङ्गशे वर्षे महावृद्धास्तुविंशती ।
 एवर्षाच युवती रजोयुक्ताच गर्भिणी । वनसरान्ते प्रसूता स्त्री पोङ्गशेन जरान्विता ॥
 ताःकाश्चिन् सहस्रेषुवन्ध्याश्चापिकलौयुगे । कन्याविक्रयिणः सर्ववर्णाश्चत्यार्षवचा ॥
 तृजायावपूनाश्च जारोपार्जनमश्रुकाः । कन्यानां भगिर्नानाश्च जारोपार्जनजीवितः ॥
 रैर्नामविक्रयिणो भविष्यन्ति कलौयुगे । स्वयमुत्सृज्य दामश्च कीर्त्तिवर्द्धनहेतवे ॥
 त्पश्चान्मनसालोच्य स्वयमुल्लङ्घयिष्यति । देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥
 चदत्तांपरदत्तां वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति । कन्याकागामिनःकेचित् केचिच्च श्वभूगामिनः ॥
 केचित् श्वभूगामिनश्च केचिच्च सर्पगामिनः । भगिर्नागामिनःकेचित् सपत्नीमातृगामिनः ॥
 त्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौयुगे । भगवदागमनश्चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे ॥५॥
 मात्मयोनिपरित्यज्य विहरिष्यन्तिसर्वतः । पत्नीनांनिर्णयोनास्ति भर्तृणाश्चकलौयुगे ॥
 प्रजानाश्चैव प्रामाणां वस्तूनाश्च विशेषतः । अलंकयादिनः सर्वेसर्वे घौराश्च लपटाः ॥
 परस्परं हिंसकाश्च सर्वेच मग्धातिनः । ब्रह्मभूत्रविशो वंशा भविष्यन्तिच पापिनः ॥५०॥
 लडाहालौहस्तानाश्च व्यापारं लयनम्यच । वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शयदाहिनः ॥
 शूद्राप्रभोजिनः सर्वे सर्वेच वृषलीगताः । पञ्च सर्वेपरित्यक्ताः कुहराश्चैव भोजिनः ॥५२॥

यस्यगृहपिर्हनाश्च मग्ध्याशौचविहीनकाः ॥ ५३ ॥

पुंश्चलैश्चार्यता गृद्धा कुट्टनैश्चरजम्बला । विप्राणां रघवनागते भविष्यन्तिचपाशिका ।
 भगवतोनिर्णयो नास्ति योगीनाश्चविशेषतः । भात्रमाणांजनानाश्चसर्वे श्लेच्छाकलौयुगे ॥
 एषः कलौसंप्रवृत्ते सर्वे श्लेच्छमया भवे । हरनप्रमाणे गृहे नाद्रुष्टमाते, च मानवे ॥५५॥
 विप्रस्यविष्णुपरासः पुत्रः कन्यामपिपति । तारायणशङ्काशश्च भगपोद्बहिर्नोद्वेष्टी ॥
 श्लेच्छाश्रुतज्ञानं च निष्यति । भगवत्कलययापुत्रा, दसगुप्रस्ताभविष्यति ॥
 प्रदुर्गं चपांयागमुता मही । लोकदृष्ट्या वृक्षभूष्या गृहदृष्ट्या भविष्यति ॥

ततश्चाद्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयं मुने । प्राप्नोति शुक्लां पृथ्वीं समावेगाञ्च तेजसा ॥

कलौ गते च तु देवैः संप्रवृत्ते कृते युगे ।

तपःसत्यसमायुक्तो धर्मपूर्णो भविष्यति ॥ ६२ ॥

तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदाशा ब्राह्मणा भुवि । पवित्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे ॥
राजातः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताः स्वधर्मिणः । प्रतापवन्तो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा ॥
वैद्या घाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः । भूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः ॥
विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञपरायणाः । विष्णुमन्त्ररताः सर्वे विष्णुभक्ताश्च येष्णवाः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञाः श्रुतुगामिनः । लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णं कृते युगे ॥
धर्मस्त्रिषाद्य त्रेतायां द्विषाद्य द्वापरे स्मृतः । कलौ प्रवृत्ते चैकवात्सर्वलुप्तस्ततः परम् ॥
घाराः सत इधा विप्र तिथयः पौडश स्मृताः । यथा द्वादशमासाश्च भूतवधश्च देवच ॥
द्वी पक्षी वापने द्वे च चतुर्भिः प्रहरेर्दिनम् । चतुर्भिः प्रहरेरात्रिमासत्रिंशद्दिनस्तथा ॥
शतत्रये षष्ट्यधिके नराणाञ्च युगे गते । दीवताञ्च युगो द्वेयः कालश्च न्यायिदां मतः ॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसततिः । मन्वन्तरसमं ज्ञेयश्चेन्द्रायुः परिकीर्तितम् ॥
अष्टाविंशतिमे वन्दे गते ब्रह्मविधानिशम् । अष्टोत्तरे वर्षं शते गते पातश्च ब्रह्मणः ॥ ६३ ॥
प्रलयः प्राकृतो द्वेयस्तत्राद्दृष्टाः पसुन्धरा । जलप्लुतानि विध्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
श्रुपयो जीवितः सर्वे लीनाः कृष्णे परात्परे । तत्रैव ब्रह्मलीनो तेन प्राकृतिको लयः ॥
लये प्राकृतिकेऽर्तते एते च ब्रह्मणो मुने । निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
पर्यन्तश्च नित्यसर्वाणि द्वाण्डान्यखिलानि च । निमेषमात्रोऽयं कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम् । निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः प्रमेयच ॥
एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा । कनिष्ठो गतायातः संख्यां ज्ञानातिव्युमान् ॥
सृष्टीनाञ्च कलानाञ्च ब्रह्माण्डानाञ्च नास्ति । ब्रह्मर्षीनाञ्च ब्रह्माण्डे संख्यां ज्ञानातिव्युमान् ॥
ब्रह्माण्डानाञ्च सर्वे नामीभ्यश्चैक एव सः । सर्वेषां परमात्मा च यीहृणः प्रकृतेः परः ॥

ब्रह्मादयश्च तस्यांशान्तस्यांशश्च महाविराट् ।

तस्यांशश्च विराट् भुवस्तस्यांशा ब्रह्मणि स्मृता ॥ ६४ ॥

स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्चैककुण्डेगोलोकेद्विभुजः स्ययम् ।
 ब्रह्मादितृणपर्व्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् । यद् यन् प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नभ्वरमेव च ।
 एवं विद्धि सृष्टिहेतुं सत्यं नित्यं सनातनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्लिप्तं निर्गुणं परम् ।
 निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहविप्रहम् । अतीव कमनीयञ्च नवीननीरदप्रभम् ॥ ८६ ॥
 द्विभुजं मुरलीहस्तं गोपघेशं विशोरकम् । सर्वज्ञं सर्वसेव्यञ्च परमान्मननीश्वरम् ॥ ८७ ॥
 करोति ब्रह्मा ब्रह्माण्डं ब्रह्मात्मा कमलोद्भवः । शिवो मृत्युञ्जयश्चैव मंहर्ता सर्वतत्त्वयित् ।
 यस्य ज्ञानाद् यत्तपसा सर्वेशस्तत्समो महान् । महायिभूनि युक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदा स्ययम् ।
 सर्वव्यापी सर्वपाताप्रदाता सर्वसम्पदाम् । विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान् यस्य ज्ञानाद् जगत्पतिः ।
 महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमती श्वरी । यज्ञज्ञानाद् यस्य तपसा यद् व्रतया यम्यसेवया ।
 सा वित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता । सर्वप्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ।
 सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेश प्राप या पतिम् । सर्वस्तुता च सर्वशादुर्गादुर्गतिनाशिनी ।
 कृष्णचामांशसम्भूता कृष्णप्रेमाधिदेवता । कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णाराधिका कृष्णसेवया ।
 सर्वाधिकञ्च रूपञ्च सौभाग्यमानगौरवम् । कृष्णयज्ञः स्थलस्थानं पत्नीर्त्यपापसेवया ।
 तपश्चकार सा पूर्वं शतदृष्टे च पर्वते । दिव्यं युगसहस्रञ्च निराहारा च क्लिश्यति ॥ ८८ ॥
 दृशा निःश्वासरहितां दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम् । कृष्णो यज्ञः स्थले कृत्वा दरोदकपया विभुः ।
 परं तस्यैव ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् । मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयितेभक्तिरस्त्विति ।
 सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा च गौरवेण च । त्वं मे प्रेष्टा च प्रेयेष्टा च सर्वपापघ्नी ॥ ८९ ॥
 पतिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया । सन्ततं तव साध्योऽहं व्याध्यश्च प्राणवत्प्रभम् ।
 इत्युत्तया जगतां नाथश्चकार चेतनां ततः । सपर्कारहितां ताञ्च चकार प्राणवत्प्रभम् ।
 येषां या याश्च देव्यश्च पूजितास्तस्यसेवया । तपस्यायादृशीयासां तासां तादृक्फलं मुने ।
 दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तपस्तप्त्वा हिमालये । दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्याय भूय ॥ ९० ॥
 सरयती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने । लक्षवर्षञ्च दिव्यञ्च सर्ववन्द्या यभूय सा ॥ ९१ ॥
 दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे । सर्वसम्पत्प्रदात्री च यभूय तस्य सेवया ॥ ९२ ॥
 मलये तप्त्वा द्विजपूज्या यभूय सा । पट्टिर्गसहस्रञ्च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम् ॥ ९३ ॥

शतमन्वन्तरं तत् शङ्खरेण पुरा विमो ।

शतमन्वन्तरञ्चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तिः । शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ॥ १॥

शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह । मन्वन्तरस्तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद ॥

मन्वन्तरञ्च सूर्यश्च शक्रश्चन्द्रस्तथैव च ॥ १०६ ॥

दिव्यं सतयुगञ्चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तिः । सर्वप्राणःसर्वपूज्यःसर्वाधारोबभूवसः ॥

एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः । मुनयो मानवा भूया ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः

एवं ते कथितं सर्वं पुराणञ्चतयागमम् । मुख्यकथाद्वययाज्ञार्तकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे कालकालेश्वरगुण-

निरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

पृथिव्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च । तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥१॥

प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्राहृष्टा वसुन्धरा । जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाद्वरायिति ॥

वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति । सृष्टेर्बिधानसमये साविर्भूता कथं पुनः ॥३॥

कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रयाजया । तस्याश्च जन्मकथनंवदमङ्गलकारणम् ॥

धीनारायण उवाच ।

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति धृतिः ।

आविर्माघस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥

धूपतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम् । विप्रनिष्कर्षं पापनाशनं पुण्यवर्द्धनम् ॥ ६ ॥

अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा । बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥ ७ ॥

उत्पत्तौ पुनः विष्णुं तुरीयं मुनेन मंत्रया । आसी जहि न यत्रोर्वीपमामं मुनेति ।
 त्रयोर्वीपमामनेन प्रत्यक्षाः च मयेन स्फुटम् । ततो यधु मंत्रा मन्त्रानन्तानां ।
 मिद्विनीतिः च विष्णोस्तु यथा । येन नमः शृणु । जन्मोत्पत्त्या वृक्षा पूर्णवर्द्धितामेवम
 कथयामि च तत्तन्म सार्यकं सर्वसम्भ्रमम् । पुनश्च ननु धृगुक्तं धर्मपञ्चाश पुनरे
 महाविषादशरीरस्य जलस्यस्य विं स्फुटम् । मन्त्रोपबृत्तान्तेन मन्त्राङ्गुलान्तोऽप्यु
 ॥ न मे विष्टः सर्वेषां तद्गोप्ता विष्टेषु च । कालेन मन्त्रा सन्माद् यधु वधुया मुने
 प्राश्नेकं प्रच्छिद्योऽप्युक्तं केषु वा स्थितानि च । मायिभूता निर्गमूता सगलानुतः पु
 मायिभूता वृष्टिकाते तद्गोप्ता पदर्वपन्विता । प्रत्ययेन निर्गमूता जलस्यन्तत्यन्विता

प्रतिविश्येषु यमुधा शीतकाननसंयुता ।

सप्तसागरसंयुता मनोर्षमिता सर्वा ॥ १६ ॥

हिमाद्रिमेघसंयुता प्रदचन्द्रार्कसंयुता । प्रक्षिप्नु शिवाये च सुरैर्लोकैस्तथानया ॥ १७ ॥
 पुण्यतीर्थसमायुता पुण्यभागतसंयुता । काञ्चनाभूमिसंयुता सर्वदुर्गसमन्विता ॥ १८ ॥
 पातालः सप्त तदधमूदुर्ध्वं ब्रह्मलोककः । भूधलोकश्च तथैव सर्वविश्यश्च तत्र वै ॥ १९ ॥

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्या निर्मितानि वै ।

उदुर्ध्वं गोलोकवैकुण्ठी निर्व्या विश्वपरी च ती ॥ २० ॥

॥ ११ ॥ तान्तेति निर्गमूताणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि च ।

॥ १२ ॥ तान्तेति प्रलये प्राप्ते ब्रह्मन् ब्रह्मणश्च निपातने ॥ २१ ॥

महाविषादादिमृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना । नित्ये स्थितः स प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैः स
 पथिष्ठात्तदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः । मनुभिर्मुनिभिर्विप्रेर्गन्धर्वादिमिरैश्च ॥ २२ ॥
 गोर्वराहरूपस्य पत्नी सा धृतिसम्भवा । तन्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः

नारद उवाच ।

केनः रूपेण वाराहे च सुरैर्मही । वाराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाधया सती ॥

पूजाधिधावज्ञाप्यधश्चोद्धरणकमम् । मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो

नारायण उवाच ।

इं च वराहश्च प्रक्षणा संस्तुतः पुरा । उद्धारं महौं हत्वा हिरण्यार्ध-रसात्तलान् ॥
तां स्नापयामास पद्मपत्रं यथार्णवे । तत्रैव निर्ममे धृष्टा सर्वविश्वं मनोहरम् ॥२८॥
तद्धिदेवीञ्च सकामां कामुको हरिः । वराहरूपी भगवान् कीदृशसूर्यसमप्रभः ॥
रत्निकरीं शय्यां मूर्त्तिञ्च सुमनोहराम् । कीडाञ्चकार रहसि दिव्यवर्णमहर्निशम् ।
भोगसंस्पर्शान् मूर्च्छां सम्प्राप सुन्दरी । विश्वयाविदग्धेनसङ्गमोऽग्निसुखप्रदः
स्तदङ्गत्वंस्नेहाद् युयुधे न दिवानिशम् । यर्षास्तेज्जेतनांप्राप्यकामीतत्प्राप्तकामुकीम्
ञ्च वाराहं वधारं वाचलीलया । पूजाञ्चकार मनया च ध्यात्वा च धरणीं सतीम्
ञ्च नैवेद्यैः सिन्दूरैस्तुलेपनैः । पद्मे पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥

महावराह उवाच ।

रा भव शुभे सर्वैः संपूजिता शुभम् । मुनिभिर्मनुमिर्देवैः सिद्धैश्च मानवादिभिः
चित्पागदिने गृहारम्भप्रवेशने । पापीतङ्गागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥
। करिष्यन्ति मद्भरेण सुरादयः । मृदा ये न करिष्यन्ति याम्यन्ति नरकञ्च ते ॥

पशुधोषाय ।

सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाश्रया । लीलामात्रेण भगवन् विश्वञ्च स्वराज्यम् ॥
ते हरेर्क्यां शिवलिङ्गे शिष्टान्तथा । शङ्खं प्रदीपं रत्नञ्च मानिषयंहारकंमणिम्
। पुष्पञ्च पुस्तकं मुलसीदलम् । जपमालां पुष्पमालां कर्पूरञ्च सुवर्णकम् ॥४०॥
। बन्दतञ्च शालग्रामजन्तथा । एतान् पौदुमरत्नाहं क्रिष्टा ॥ भगवन् भृशु

धर्मभगवानुवाच ।

नि ये मृदा भर्षयिष्यन्ति सुन्दरि । ते याम्यन्तिवातमूर्ध्वदिष्यंयर्षणं स्वयि
रा भगवान् विरगम च मारु । बभूव तेन गर्भेण नेत्रम्यां मद्भृतप्रदः ॥४३॥
पृथिव्याञ्च ते सर्वे व्याघ्रया हरेः । पाण्यशागोतष्यानेन मुप्युवुः स्नयनेन च
तत्रेण नैवेद्यादिकमेव च । संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता स्ता यभुव ॥४४॥

नारद उवाच ।

किं ध्यानं स्तवनं किं वा तस्य मूलञ्च किं वद । गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं

नारायण उवाच ।

आदौ च पृथिवी देवी धराहेण च पूजिता । ततो हि ब्रह्मणा पश्चात् ततश्च पृथुना
ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः । ध्यानञ्च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद
ओं ह्रीं श्रीं वा वसुधायै स्वाहा । इत्यनेन मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥ ४ ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । चन्दनोक्षिप्तसर्वाङ्गीं सर्वभूषणभूषिताम्
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्यिताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां घन्दितां
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिता भवेत् । स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेव
विष्णुस्याच ।

यज्ञशूकरजाया च जयं देहि जयावहे । जये जये जयाधारे जयशीले जयप्रदे ॥ ५३ ॥
सर्वाधारे सर्वधीजे सर्वशक्तिसमन्विते । सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भये ॥ ५४ ॥
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे । सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भये
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्यमङ्गलप्रदे । मङ्गलार्थे मङ्गलाशे मङ्गलं देहि मे भये ॥ ५५ ॥
भूमे भूमिपसर्वस्ये भूमिपालपरायणे । भूमिपादद्वाररूपे भूमिं देहि च भूमिदे ॥ ५६ ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं तां संपूज्य च यः पठेत् । कोटि कोटि जन्मजन्मसमयेद्भूमिपैर्यथा
भूमिदानदत्तं पुण्यं लभते पट्नाञ्जनः । भूमिदानहरात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥
भूमौ दीप्यत्यागपापाद् भूमौ दीपादिस्थापनात् । पापेन मुच्यते प्राज्ञः स्तोत्रस्य पठनान्मुने

अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रवृत्तिखण्डे पृथिव्युपाख्याने पृथिवीरतोत्रं नाम
अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः

भूमिदानफलतद्वरणेपापञ्च ।

नारद उवाच ।

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्वरणेन यत् । परभूमौ धाद्वरुणं कृपे कृपदञ्जं तथा ॥ १ ॥
अम्बुयाचीभूषननर्वाजस्यागजमेव च । दीपादिस्थापनात् पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥
अग्न्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत् प्रकृतः परम् । यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदांवर ॥ ३ ॥

नारायण उवाच ।

वितस्तिमात्रं भूमिञ्च योददाति च भारते । सन्ध्यापूतायविश्राय सयातिविष्णुमन्दिरम्
भूमिञ्च सर्वशस्याद्यां ब्राह्मणाय ददाति यः । भूमिरेणुप्रमाणञ्च वर्षं विष्णुपदे स्थितिः
ग्रामं भूमिञ्च धान्यञ्च योददात्याददाति यः । सर्वपापाद्भिर्मुक्तौचोभौवैकुण्ठवासिनी
भूमिं दातुञ्च यत्काले यः साधुध्यानुमोदते । स प्रयातिवचैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः ॥
सदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स तिष्ठति कालसूत्रं याचयन्द्रविषाकरौ ॥ ८ ॥
तन्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्मूमिहीनः श्रिया हतः । पुत्रहीनो दद्रिद्ध अन्ते याति च रौरवम् ॥ ९ ॥
गर्वाभ्यां विनिष्कृष्य यश्च शस्त्रं ददाति सः । दिव्यं धर्मशानं चैवकुम्भीपाकेन तिष्ठति ॥
गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गं शस्त्रं ददाति यः । सच तिष्ठत्यसीपत्रे याचयन्द्राधुर्दश ॥
परकीयतडागे च पङ्कमुदभृत्य द्यौर्मुखेन । रेणुप्रमाणवर्षञ्च ब्रह्मलोके धसेनरः ॥ १२ ॥
विण्डं विष्ट्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः । धाद्वं करोति योमृदोमरकं याति निश्चितम् ॥
भूमौ प्रदीपं योऽर्पयति सोऽन्धः सप्तजन्मसु । भूमौ शङ्खञ्च संस्थाप्य कुण्डं जन्मान्तरैरमेत् ॥
मुक्तमाणिष्यदीर्घञ्च सुवर्णञ्च मणिन्त्या । यश्च संस्थापयेद् भूमौ दद्रिः सप्तजन्मसु ॥
शैवलिङ्गं शिलामूर्त्यां यश्चार्पयति भूतले । शतमन्वन्तरं यावत् रुमिमक्षे स तिष्ठति ॥
सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पञ्च तुलसीदलम् । यश्चार्पयति भूमौ च ॥ तिष्ठेन्नरकं युगम् ॥
तपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनान्तथा । योमृद्व्यार्पयेद् भूमौ ॥ याति नरकं ध्रुवम् ॥

एककन्या चैकपुत्रो यमूय सुमनोहरः । असमञ्जा इति ख्यातः शीघ्रायां कुलवर्धनः ॥ ६ ॥
 अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी । यमूय गर्भस्तस्याश्च शिवस्य च वरेण च ॥
 गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुपावसा । तद्ब्रह्मावशिवंध्यात्वारोदोद्यैः पुनः पुनः ॥
 शम्भुर्बाह्यणरूपेण तत्समीपं जगाम ह । चकार संविभज्यैतन् पिण्डं पटिसहस्रधा ॥ ६ ॥
 सर्वे यमूयः पुत्राश्च महावलपरत्नमाः । श्रीपद्मध्याह्मार्त्तण्डप्रभायुष्कलेवराः ॥ १० ॥
 कपिलस्य कोपदूषया यमूयर्धस्मसाद्य तैः । राजा हरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं शुच्या ॥
 तपश्चकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥ १२ ॥
 दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययी लोकान्तरं नृपः ॥
 अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥ १४ ॥
 भर्गोत्थस्तस्य पुत्रो महाभागधतः सुधोः । यैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजगामतः ॥
 तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणम् । ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १६ ॥
 द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपयेशकम् । परमात्मानर्मशश्च भक्तानुग्रहविप्रहम् ॥ १७ ॥
 श्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्पुतम् ॥
 नेहिनं साक्षिपञ्च निर्गुणं प्रकृतैः परम् । ईषद्भास्वं प्रसन्नस्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ १९ ॥
 बहिःशुद्धाशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥

एतावद्ब्रह्मा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः । लोलया च परं प्राप्यवाञ्छितं वंशतारणम् ॥
 प्राजगाम गङ्गा सा स्मरणात् परमात्मनः । तं प्रणम्यप्रतस्थो च तन् पुरः संपुडाञ्जलिः ॥
 याव भगवांस्तत्र तां ब्रह्मा सुमनोहराम् । कुर्वती स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्जितविप्रहाम् ॥
 श्रीकृष्ण उवाच ।

एतं भारतीयापात् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि । सगरस्य सुतान् सर्वान् पूतान् कुस्ममाश्रया ॥
 स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति ममन्द्रिग्म् । विघ्नतो दिव्यमूर्तिन्ने दिव्यस्यन्दनगामिनः ॥
 त्वार्पदा मयि प्यन्ति सर्वकालं निगमयान् । समुच्छिद्य कर्मभोगं हन्तं जन्मनि जन्मनि ॥
 ऐदिन्मार्जितं पापं भारते यत् कृतं तुणाम् । गङ्गायाः स्पर्शवादे वतश्च यत्रिभुतीभुतम् ॥
 निजामांशम् । स्पर्शानुदर्शनादेत्याः पुण्यं दशगुणं दत्तम् ॥ इत्यनेन ब्रह्माक्षिप्तिनिर्दिष्टम्

मौपलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् । शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

जन्मासंख्याजितान्येवकामतोऽपि कृतानि च । तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौपलस्नानतो नृणाम् ।

पुण्याहस्नानजं पुण्यं चेदा नैव वदन्ति च । केचिद्वदन्ति ते देवि ! फलमेव यथागमम् ।

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च । सामान्यदिवसस्नानं सकृद्वत् शृणु सुन्दरि ।

पुण्यं दशगुणञ्चैव मौपलस्नानतः परम् । तत्तस्मिन् दशगुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥१२॥

अमायाश्चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने । ततो दशगुणं पुण्यं नाराणामुत्तरायणे ।

चातुर्मास्यो पीर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च । ब्रह्मवायाञ्च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम् ।

असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् । सामान्यदिवसस्नानात् ज्ञानाच्छतगुणफलम् ॥

मन्वन्तरायां देवेशि युगाद्यायां तथैव च । तथाप्यशोकाष्टम्याञ्च नवम्याञ्च तथा हरे ।

ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तथ दुर्लभे । दशहरादशम्याञ्च युगादाविसमं फलम् ।

नन्दासप्तमञ्च वारुण्यां महन्पूर्वं चतुर्गुणम् । ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहन्पूर्वके सति ॥

पुण्यं कौटिल्यं चैव सामान्यस्नानतो हि यत् । चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः ।

पुण्योऽप्यर्द्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् । सर्वेषामेव सकृद्व्योचैष्णव्यानां विपर्ययः ।

फलसन्धानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः । मन्प्रीतिभक्तिकामास्ते सर्वदा सर्वकर्मसु ।

शुरुषकञ्च द्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति । जीवन्मुक्तं वैष्णवन्तं वेदाः सर्वेष्वदन्ति ।

पुरुषाणां शनं पूर्वं पैतृकञ्च परं शनम् । मातामहस्य च शनं मातरं मातृमातरम् ॥४३॥

भगिनीं भ्रातरञ्चैव भगिनीयञ्च मातुलम् । भ्रातृञ्च भ्रातृश्वैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् ।

गुरुञ्च ज्ञानदातां मित्रञ्च सहचारिणम् । भृत्यं शिष्यं तथा चेट्टीप्रजाः स्वाश्रमसन्निधौ ।

उद्धरेदात्मना साहं मन्त्रग्रहणमाश्रितः । मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४६॥

तस्य संस्पर्शानां पूतं तीर्थञ्च भुवि मागतम् । तस्यैव पादरजसा सयः पूतावसुन्धरा ॥

पादोदकपतनस्थानं तीर्थमेव भवेदु ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

अथ विष्ठा जलं मूत्रं यज्जिष्णोरग्निवेदिनम् । येष्णवाश्च न म्वादन्ति नैवेद्यमोजितः सदा ॥

नित्यं ये मुञ्चन्ते नराः । पूतानि सर्वतीर्थानि तेषाञ्च स्पर्शानादहो ॥

विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः । तेषां सन्दर्शनमात्रेण पूतञ्च भुवनत्रयम्
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं शतनं तांश्च रक्षति ॥ ५१ ॥

मद्गुणधराणां ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः । गङ्गदाः साधुनेत्रास्तेनराध्वैष्णवोत्तमाः ॥
पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निजन्तरम् । गृहाद्याध्वमयिन्यस्तास्तेनराध्वैष्णवोत्तमाः ॥
आग्रहस्तम्भपर्यन्तं मया सर्वं चराचरम् । सर्वेषामहमात्मेश इतिज्ञा धैष्णवोत्तमाः ॥
असंख्यकोटिप्रह्लाण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रलये मयिलीयन्तेचेतिज्ञा धैष्णवोत्तमाः ॥
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहप्रदम् । स्थेच्छामयं निर्गुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥ ५६ ॥
सर्वे प्राकृतिकामलः भायिमूलास्तिरोहिताः । इतिज्ञानन्तिदेवैः ! तेनराध्वैष्णवोत्तमाः ॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः । उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥

गङ्गोवाच ।

यामि द्वेद्वात्तं नाथ भारतीशापनः पुरा । तवाङ्गया च राजेन्द्र तपसा धैर्यं साम्प्रतम् ॥
दारुणन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च । तानिमेकेननश्यन्तितदुपायं वदप्रभो ॥
कतिकालं परिमित्रं स्थितिर्मे तत्र भारते । कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमंपदम् ॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद् यन् सर्वजानासिसर्वयित् । सर्वान्तरात्मन्सर्ववृत्ततदुपायं वदप्रभो ॥
धीकृष्ण उवाच ।

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरैश्चरि । पतिस्ते द्दरूपोऽयं लवणोदोभविष्यति ॥
ममैवांशसमुद्रश्च त्वश्च लक्ष्मीस्वरूपिणी । विदध्यायाविदधेनसङ्गमो गुणयान् भुवि ॥
यावत्पुत्रः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते । सौभाग्यं तव तास्येव लवणोदस्य सौरते
वचप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम् । सर्वं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥
नित्यं वार्षिधिना सार्द्धं करिष्यसिहो रतिम् । त्वमेवरसिकादेवीरसिकेन्द्रेण संयुता ॥
त्यां स्तोप्यन्ति च स्तोत्रेणमगौरपकृतेन च । भारतस्याजनाः सर्वपूजयिष्यन्तिभक्तिः ॥
कीयुमोक्तेनश्रानेनऽपराधत्वात्पूजयिष्यति । यः स्तोतिप्रणमेन्नित्यं सोऽभ्यमेधफलं लभेत्
गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शनैरपि । मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥
सहस्रपापिनां स्नानाद् यत्पापं ते भविष्यति । मद्भक्तैकदर्शनेन तदेव हि चिन्तयति ॥ ७१ ॥

मोऽध्यायः] * कौमुदीस्तोत्राध्यायानाम् गङ्गास्तोत्रञ्च *

शं विप्रनाशाय निष्पापाय दिवाकरम् । बर्हि ह्यशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेन्न
वंशानायज्ञानेश शिवाञ्च बुद्धिवृद्धये । सम्पूज्यैतद्भवेत् प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्य
राघनेन तदुध्यानं शृणु नारद तत्त्वतः । ध्यानञ्च कौमुदीस्तञ्च सर्वपापप्रणाशन
तच्चम्पकवर्णामां गङ्गां पापप्रणाशिलीम् । कृष्णविग्रहसम्भूतां कृष्णतुल्यापरास्ता
हेतुङ्गां शुभाधानां रत्नभूषणभूषिताम् । शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभायुष्टकलेखराम् ॥ १ ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयीवनाम् ।

नारायणप्रियां शान्तां सन्सौभाग्यसमन्विताम् ॥ १८ ॥

क्षतीं कपरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् । सिन्दूरचिन्दुललितां सार्द्धं चन्द्रनयिन्
स्तूरीपत्रकं गण्डे नानान्विजसमन्विताम् । एकविम्बविनिन्दैकचार्यौष्ठपुटमुत्त
कार्पकिप्रभायुष्टदन्तपंक्तिमनोहराम् । सुचारुवज्रनयनां सफटाक्षमनोरमाम् ॥ १ ॥
द्विनेध्रीफलकाकरंस्तनयुग्मं सपत्रकम् । बृहच्छोणीसुकडिनीरुमास्तम्भपिनिन्दि
यलपत्रप्रभायुष्टपादपत्रयुग्मं धरम् । रत्नपाशकसंयुक्तं कुङ्कुमाकं सपापकम् ॥ १ ॥
चैन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकजालम् । सुरसिद्धमुनीन्द्रैश्च दत्तार्घ्यसंयुतां सदा ॥
वस्त्रिमौलिनिकरध्वमरधेर्णासंयुताम् । सुविभ्रदं मुमुक्षूणां कामिनीं स्वर्गभोगदम
तां घरेण्यां धरदां भक्तानुग्रहकालराम् । श्रीविष्णोः पद्मदामीञ्च भजे विष्णुपदीस
त्यनेनच ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम् । दत्त्वा संपूजयेद् ब्रह्मन्तुपहाराञ्च
प्रासन्नपादमर्घ्यञ्च क्षानीयञ्चानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं ज
पसतं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् । मनोहरं मुत्तलञ्च देवान्येतानिरोद्धृश
दत्त्वा भक्त्याच प्रणमेत् संस्मृत्यसंपुष्टाङ्गतिः । संपूज्यैव प्रकारेण सोऽश्यमेधपल्लव
स्तोत्रञ्चकौमुदीस्तञ्च संवादं विष्णुग्रन्थोः । शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नञ्चसुपु

धीप्रसोधाच ।

धोनुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्तजगन्प्रभो ।

विष्णोः विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥ १.१.२॥

श्रीनारायण उवाच ।

शिवसंगीतसंमुग्धधीकृष्णाङ्गद्रवोद्वहाम् । राधाङ्गद्रवसम्भूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 यजन्मखण्डेरादौ च गोलोके रासमण्डले । सन्निधाने शङ्करस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 गोपैर्गोपीमिराकीर्णेशु मे राधामहोत्सवे । कार्तिकीपूर्णिमाज्ञातां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 कोटियोजनविस्तीर्णां दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः । समावृता या गोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 पट्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । समावृता या वैकुण्ठं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 विशालक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । आवृता ब्रह्मलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 त्रिशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः । आवृता शिवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 षड्योजनविस्तीर्णां या दैर्घ्ये दशगुणा ततः । मन्दकिनी येन्द्रलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 लक्षयोजनविस्तीर्णां दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता ध्रुवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 लक्षयोजनविस्तीर्णां दैर्घ्ये चण्डगुणा ततः । आवृता चन्द्रलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 पट्टिलक्षयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः । आवृता सूर्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 श्लक्षयोजनविस्तीर्णां दैर्घ्ये चण्डगुणा ततः । आवृता सत्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः ।

आवृता या त्रिलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ १२५ ॥

तद्वस्त्रयोजना या च दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता जललोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 तद्वस्त्रयोजना यासां दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृताया च कैलासं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 गताले यामो गवर्नी विस्तीर्णां दशयोजना । ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 गोरीकम्पाप्रविस्तीर्णां ततः क्षीणान् कुचविन् । क्षिणौ चान्दकन्ददायातां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 तस्ये या क्षीरवर्णाय त्रेतायामिन्दुमन्त्रिणा । द्वारे चन्दनामाय तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 तत्प्रसादनीया या न नान्यदवृत्तिर्विन्दते । स्वर्गं च निर्वर्त्य क्षीरमा तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 तस्याः प्रसादाद्भानुः पुराणे च धृतो धृतः । या पुण्यदायापहर्षितां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ।
 पाणिनाञ्च विनामह । ब्रह्मद्व्यादिकं पारं कोटितन्माजितं दरेत् ।
 गङ्गापैकविशतिम् । स्तोत्ररूपञ्च पारमं पापघ्नं पुण्यपीतकम् ॥

वित्थं यो हि पठेद् भक्त्या संपूज्य च सुखेवरीम् ।

अथमेवफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥ १३५ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम् । रोगान्मुच्येत रोगी च बद्धो मुच्येत बन्धनात्

अल्पपक्षीक्षिः सुप्रशाम्बुर्धो भवति रण्डितः । यः पठेत् प्रातस्तथाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम्

शुभं भवेत्तु दुःस्वप्नं गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ १३८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

नारायण उवाच ।

भगीरथोऽनयास्तुत्या स्तुत्या गङ्गाञ्जनात् । जगाम तां गृहीत्वा च यत्र मष्टाश्च सागराः ॥

यैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शोपायुना । भगीरथेन सा नीता तेन भगीरथी स्मृता ॥

इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम् । पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

शिवसङ्गीतसंमुखे श्रीकृष्णे द्रवतां गते । द्रवताञ्च गतायाञ्च राधायां किं यभूव ह ॥

तत्र तत्राञ्जना ये ये ते च किं व्यकुलतमम् । एतन् सर्वं सुविस्तीर्णं कृत्या यत्कुमिदार्हसि ।

नारायण उवाच ।

कालिकापूर्णिमायाञ्च राधायाः स्नमदोत्सवे । कृष्णः संपूज्यतां राधामुवाच रासमण्डले ।

कृष्णेन पूजितां तान्तु संपूज्य दृष्टमानसाः । ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे श्रवणः सनकादयः ॥ १४६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसंगतिञ्च सरस्यती । जगाम सुन्दरतानेन वीणया च मनोहरम् ॥ १४६ ॥

तुष्टो ब्रह्मा वदो तस्यै रत्नेन्द्रसारहारकम् । शिरोमणीन्द्रसारञ्च सर्वप्रमाण्डुर्लभम् ॥

कृष्णः कौस्तुभरत्नाञ्च सर्वरत्नान् परं परम् । अमृत्यरत्नानिर्माणहारसारञ्च राधिका ॥

नारायणश्च भगवान् धनमाली मनोहरम् । अमृत्यरत्नानिर्माणं लक्ष्मीर्मकरकुण्डलम् ॥

विष्णुमाया भगवती मृत्युवृत्तिरिष्यती । दुर्गा नारायणशान्ती विष्णुमक्तिः सुदुर्लभाम् ।

धर्मवृद्धिञ्च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे । धर्म्मिशुद्धांशुकं धर्म्मिवांशुश्च भगिनीपुरम् ॥ १५१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः । जगाम धीकृष्णसंगतिं रासोत्ताससमन्वितम् ॥

मूर्च्छां प्रापुः सुताः सर्वे विप्रपुत्रलिङ्गा यथा । हजेन चेत्तनां प्राप्य दृष्ट्वा रासमण्डलम्

स्फलंसर्वं जटाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् । अगुघोरदुः सर्वे गोपवोप्यः सुपदिवाः ॥

न प्रह्लादा युयुधे सत्यमेवममीप्सितम् । गतञ्च राधया मार्गे श्रीहृण्णोद्वनामिति ॥
 प्रह्लादयः सत्यं तुष्टुयुः परमेष्ठ्वाम् । म्यमूर्त्तिदर्शय विमो वाञ्छितं वामेय नः ॥१६॥
 त्वमग्रन्तरेतत्र वाग् यमूवाशरीणिनी । तामेव शुश्रुवुः सत्यं सुप्यन्ता मयुगान्विताम् ॥
 त्माहमियं शक्तिर्मक्तानुग्रहविग्रहा । ममाप्यन्याश्च न देवा देहेन न विभावयोः ॥
 नो मानवाः सत्यं गुणयश्चेय वैष्णवाः । मग्मन्त्रपूना मां दृष्टुमागमिष्यन्ति मन्त्रदम् ॥
 द्रष्टुञ्च सुप्यन्ता यूयं यदि सुरेधवाः । करोति शम्भुस्तत्रैव मर्दणं वाक्पपालनम् ॥
 विधाता त्वं प्रह्लादाश्चानु जगद्गुरो । कर्तुं शास्त्रविदोऽथ वेदाङ्गं सुमतोऽहम् ॥
 यमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः । स्तोत्रैश्च कवचैश्चानिर्गुनं पूजाविधिप्रभैः ॥१७॥
 मन्त्रकवचस्तोत्रं वृष्ट्वा यत्नेन गोपय । भयन्तिविमुग्धा येन जनानां तन् करिष्यति ॥
 स्त्रैपुशतेष्वेवामग्मन्त्रोपासको भवेत् । तेनैव जना मन्त्रपूताश्चागमिष्यन्ति मन्त्रदम् ॥
 यथाचमयिष्यन्ति सर्वे गोलोकधासिनः । निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्माण्डञ्चैव ब्रह्मणः ॥
 षः पञ्चप्रकाराश्च युक्ताः स्त्रपुर्भवेमये । पृथिव्यां वासिनः केचिन् केचिन्स्वर्गनिवासिनः ॥
 रोनिवासिनः केचित् ब्रह्मलोकनिवासिनः । केचिद्वा वैष्णवाः केचिन्ममलोकनिवासिनः ॥
 कर्तुं महादेवः करोतु देवसंसदि । प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्त्तिञ्च द्रक्ष्यसि ॥
 देवमुत्तवा गगने विरराम सनातनः । तद् दृष्ट्वा च जगन्नाथस्तमुयाच शिर्यं मुदा ॥१८॥
 प्रणोयचन्भृत्यः हानेशो हानिनां घरः । गङ्गातोयं करे धृत्वा स्यात्काञ्च चकारसः ॥
 पुक्तं विष्णुमायाधर्मन्त्राद्यैः शास्त्रमुत्तमम् । वेदसारं करिष्यामि कृष्णाशापालनाय च ॥
 गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः । सयाति कालसूत्रञ्च यावद्द्वै ब्रह्मणो वषाः ॥
 युक्ते शङ्करे ब्रह्मन् गोलोकेश्वरसंसदि । आविर्भूय श्रीहृण्णो राधया सह तत्परः ॥
 तं दृष्ट्वा संहृष्टाः संस्तूय पुरुषोत्तमम् । परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनस्तत्सवम् ॥
 तलेन शम्भुर्भगवान् शास्त्रदीपं चकारसः । इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यञ्च सुदुर्लभम् ॥
 त एव द्रवरूपा या गङ्गा गोलोकसम्भवा । राधाकृष्णाङ्गसम्भूता भक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥
 यानेस्थानेस्थापितासा कृष्णेन परमात्मना । कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजिता ॥
 श्रीब्रह्मदेवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गङ्गोपाख्यानं
 नाम दशमोऽध्यायः ॥

एकादशोऽध्यायः

गङ्गारूपमोदितं कृष्णं प्रति राधाया उपालम्भः ।

नारद उवाच ।

ललितः पद्मसहस्रे सा समनीते सुरेश्वरी । क गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

नारायण उवाच ।

मार्तं भारतीशापान् समागत्येश्वरैच्छया । जगाम तच्च यैकुण्ठं शापान्ते पुनरेव सा ॥

मार्तं भारती ह्यनया जगाम न हरेः पदम् । पद्मावती च शापान्ते वङ्गायाश्चैव नारद ॥

गंगा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिम्रः प्रिया हरेः ।

मुद्रसीसहिता ब्रह्मक्षन्धः कीर्तिताः धृती ॥ ४ ॥

नारद उवाच ।

भूय सा मुनिध्रेष्ठ गंगा नारायणप्रिया । बहो बन्ध प्रकलेष तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

रावभूय मौलीके सा गंगा द्रव्यगिणी । राधाहृष्याद्रुन्मभूता नर्दता तन्मयकपिणी ।

धाधिष्ठातृरूपा वा रूपेणाप्रनिमा भुवि । नववीचनसम्पदा स्नाभरणभूषिता ॥ ७ ॥

व्याह्वपद्माभ्यासम्भिता सुमनोहरा । तनकाञ्चनवर्णांभा शनचन्द्रसमप्रभा ॥ ८ ॥

प्रमानितुङ्गिण्या शुद्धसम्पत्त्यकपिणी । सुपीनकटिनध्रोणी सुनिम्बपुगं परम् ॥

घनं सुफटिनं स्नानगुम्भं सुवर्णलम् । सुचारुनेत्रपुगलं सकरातं सुपद्मिणम् ॥ १० ॥

नै कपरीभारं मालतीमान्यमंयुतम् । सिन्दूरपिन्दुललितं सासं चन्दनपिन्दुमिः ॥

रूपत्रिषायुकं गण्डयुग्मं मनोहरम् । बन्धूकृतसुमाकारयज्वरौघञ्च सुन्दरम् ॥ १२ ॥

रुद्रिग्वदीजामदन्तंनिसमुत्पन्नम् । पालसी वङ्गिमुद्गे च मरीचपुनोन्मेषित्वती ॥

सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुपास सयज्जिता ।

वाससा मुक्ताप्युपाय मीघनाभ्यां पिभोमंभम् ।

निमेरुद्विताभ्याञ्च विषन्ती स्वर्णं मुदा ॥ १४ ॥

प्रमुखापदना ह्योभवेसङ्गेमलोलसा । मूर्च्छिता प्रमुखेण पुनर्काङ्क्षितविप्रदा ॥ १५ ॥
 एतन्मिधन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका । गोपीप्रियम्कोटिगुक्ता कोटिचन्द्रममप्रमा
 कोपेन रत्नप्रदाया रत्नवद्भूतलोचना । श्वेतनभ्यवयवर्णाभा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥ १६ ॥

भूमन्यरदानिर्माणनानामाणमृष्टिना ॥ १८ ॥

भूमन्यगन्धिने हारममूल्यं पहिशीचकम् । पीतामषम्प्रयुगलं नीर्यायुक्तञ्च विभ्रती ॥ १९ ॥
 स्थलारमप्रमायुष्मन्मलञ्च सुरजिगम् । कृष्णदत्तार्घ्यमंगुक्तं विन्यम्यन्ती पदाम्बुजम् ।
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानाद्वरहा च । संख्यमाना च सर्गामिः श्वेतचामरघायुना ॥ २० ॥
 कस्तूरीचिन्दुमिषुक्तं चन्दनेन्दुसमन्वितम् । क्षीमदीपप्रभाकारं सिन्दूरचिन्दुसुन्दरम् ॥
 दधती भालमध्ये च सीमन्ताचस्तयोऽज्यदे । पारिजानप्रगूतानां मणियुक्तं सुषङ्गिम
 सुचारकयरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता । सुचारत्रासारमंगुलमोष्ठं कम्पयती रया ॥
 गत्वोपास कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने धरे । सर्वानाञ्च समूर्द्धं परिपूर्णां विभोः समा
 ताञ्च हृद्वा समुत्सर्षी कृष्णः सादरपूर्वकम् । संभाष्य मधुराभायैः सस्मितश्चसमन्त्रम
 प्रणेतुरभिसन्त्रस्ता गोपा नम्रारमकन्धरा । तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेद्वय ॥
 उत्थाय गङ्गा सहसा सम्भाषाञ्च चकार सा । कुशलं परिप्रच्छ भीतातिविनयेन च ॥
 नम्रभायस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठीष्टतालुका । ध्यानेन शरणापन्नाध्रीकृष्णचरणाभ्युजै
 तद्बधूदुपमेस्थितः कृष्णो भीतायै चामयंददौ । यभूयस्थिरचित्ता सा सर्वेभ्वरपरेण च
 उदुर्ध्वसिंहासनस्थाश्चरायां गङ्गाददर्श सा । सुस्निग्धासुखदृश्याञ्ज्यलन्तीं ब्रह्मतेजसा
 असंख्यब्रह्मणामायां चादिसृष्टिं सनातनीम् । यथा ह्यदशधर्षीयां कन्याञ्च नवयौवनाम्
 विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च । शान्ताकान्तामनन्तान्तामाद्यन्तरहितां सतीम्
 शुभां शुभद्रां सुमगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् ।

सौन्दर्यं सुन्दरीध्रेष्ठां सर्वासु सुन्दरीषु च ॥ २४ ॥

कृष्णाद्वाङ्गां कृष्णसमांतेजसावयसात्पिषा । पूजिताञ्चमहालक्ष्मीं महालक्ष्मीश्वरेण च
 समामीशस्य सुप्रभाम् । सखीदत्तं भुक्त्वतीं ताम्बुलमन्यदुर्लभम्
 मानिनीम् । कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च प्राणप्रियतमांरमा

एकादशोऽध्यायः] * गङ्गाप्रति कुपितया राघवया गङ्गासलिलपानम् * १५१

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी । निमेषरहिताभ्याञ्च लोचनाभ्यां पपीच ताम्
एतस्मिन्नन्तरे राघ्वा जगदीशमुवाच सा । वाचा मधुरयाशान्ता विनीता सस्मिता मुने
राधिकोवाच ।

केयं प्राणेशकल्याणीसस्मितात्वन्मुखाभ्युजम् । पश्यन्ती सततं पार्श्वे सकामारक्तलोचना
मूच्छां प्राप्नोतिरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । बल्लेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः
त्वञ्चापि मां सन्निरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा ।

मयि जीवति गोलोके भूता दुर्बृत्तिरीदृशी ॥ ४२ ॥

त्वमेव चैवं दुर्बृत्त्यारंभारं करोषि च । क्षमां करोमिप्रेम्णा च स्त्रीजातिः क्षिण्वमानसा
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकादुगच्छ लम्पट । अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति प्रजेः श्वर
दृष्टस्त्वं विद्वत्पायुक्तो भया चन्दनकानने । क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां धननादहो ॥
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा । देहं सन्नययि विरजा नदीरूपा यभूष सा
कोटियोजनविस्तीर्णां ततो दैर्घ्यं चतुर्गुणा । भयापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिकपिणी
गृहं मयि गतायाञ्च पुनर्गत्वा तदन्तिकम् । उच्चैरोसीर्धिरजे विरजेति च संस्मरन् ॥

तदा तोयात् समुत्थाय सा योगान् सिद्धयोगिनी ।

सालङ्कारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यञ्च दर्शनम् ॥ ४६ ॥

ततस्ताञ्च समान्वित्प्य धीर्ध्याधानं कृतं त्वया । ततो यभूषस्तस्याञ्च समुद्राः सप्तयवश्च
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चन्द्रमककानने । सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया
शोभादेहं परित्यज्य जगाम चन्द्रमण्डलम् । ततस्तस्याः शरीरञ्च क्षिण्वं तेजो यभूष इ
संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता । स्नाय किञ्चित् स्वर्णाय किञ्चिन्मणिधराय च
किञ्चित् स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किञ्चिद्रात्रे च किञ्चन ।

किञ्चित् प्रहृष्टबलेभ्यो रौप्येभ्यश्चापि किञ्चन ॥ ५४ ॥

किञ्चिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किञ्चन । किञ्चिन्विशलेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किञ्चन
किञ्चित् फलेभ्यः शस्येभ्यः सुपकेभ्यश्च किञ्चन । नृपदैवगृहेभ्यश्च संस्मृतैभ्यश्च किञ्चन
दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो धृन्दावने वने । सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया

प्रभादेहं परित्यज्य जगाम गूर्ध्वमण्डलम् । तन्मनसाः शरीरञ्च मीढ्वं नेजेन यन्मू ॥
 संचिमज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा न च्छदा पुरा । विश्वेभ्यश्चन्द्रोर्ध्वं लज्जया तद्वयेन च
 हुताशनाय किञ्चिन्नृपेभ्यश्चापि किञ्चन । किञ्चिन्पुण्यमपेक्ष्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन
 किञ्चिदस्सुगणेभ्यश्च मानेभ्यश्चापि किञ्चन । ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्चान्येभ्यश्च किञ्चन
 स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्तेभ्योऽप्येवमन्येभ्यश्च किञ्चन । तद्यदस्वायसरेभ्यः पूर्य रोदितुमुपतः
 शान्त्या गोप्या युगन्मयञ्च दृष्टोऽत्र राममण्डले ।

यसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवाञ्छन्दनोद्भिन्नाः ॥ ६३ ॥

रत्नमदीपैर्युक्तञ्च रत्ननिर्माणमन्दिरे । रत्नभूषणमूराल्यां रत्नभूषितया सह ॥ ६४ ॥
 त्वया दत्तञ्च तामूलं भुक्तयन्वासुरस्य च । तथा दत्तञ्चतामूलं भुक्तयान्त्वंपुरा विभो ॥
 सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिस्रोधानं हृतं त्वया । शान्तिर्देहं परित्यज्य भियालीनारथयिप्रभो ॥
 ततस्तस्याः शरीरञ्च गुणध्रेष्ठं यभूय ह । संचिमज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा न च्छदा पुरा ॥
 विश्वेविपयिणे किञ्चिन्सत्स्वरूपाय विष्णवे । शुद्धसत्स्वरूपैर्किञ्चिद्दृष्ट्यैः पुरा विभो ॥
 त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन । तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किञ्चन ॥
 मया पूर्वं च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह । सुवेशयुक्तो माल्यवान्पद्मचन्दनसंयुतः ॥
 रत्नभूषितया गन्धचन्दनोक्षितया तथा । सुखेन मूर्च्छितस्तस्यैः पुष्पचन्दनसंयुते ॥ ७१ ॥
 दिल्लोऽभूजिद्रया सद्यः सुखेन नवसंगमाम् । मया प्रशोधिता सा च मया च स्मरणं कुरु ॥
 गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुखी च मनोहर । धनमाला कौस्तुभञ्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥
 पद्मात् प्रदत्तं प्रेम्णा वसन्तीनां वचनाद्दहो । लज्जया हृष्णयणोऽभूद्दारापि धमवान् प्रभो ॥
 क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता । ततस्तस्याः शरीरञ्च गुणध्रेष्ठं यभूय ह ॥ ७५ ॥
 संचिमज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा न च्छदा पुरा । किञ्चिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन ॥
 धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किञ्चन । तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किञ्चन ॥
 एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । त्वद्गुणञ्च बहुतरं जानामि वापरं प्रभो ॥
 सा राधा रत्नपट्टजलोचना । गंगां च कुंसमारेमेन प्रास्यालं जिहासंतीम् ॥
 गंगा रहस्यं विजय योगेन सिद्धयोगिनी ।

तिरोभूय समामभ्यात् स्वजलंप्रविशेत् सा ॥ ८० ॥

राधायोगेनविश्रायसर्वत्रावस्थिताञ्जनाम् । पानं कर्तुं समारंभेणष्टुपात्सिद्धयोगिनी ॥
गङ्गा रहस्यं विश्राय योगेन सिद्धयोगिनी । श्रोतृष्णचरणाम्भोजे विवेश शरणं धर्षी ॥
गोलोकञ्चैव घैकुण्ठं प्रस्रलोकादिकं तथा । ददर्श राधासर्वत्रनैवगङ्गा ददर्श सा ॥ ८१ ॥
सर्वतो जलशून्यञ्च शुष्कपङ्कजगोलकम् । जलगन्तुसमृद्धेश्वैवमृतदेहैः समन्वितम् ॥ ८४ ॥
ब्रह्मविष्णुशिखानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः । मनयो मानवाः सर्वे देवाःसिद्धास्तपस्विनः ॥
गोलोकञ्चसमाजग्मुः शुष्ककण्ठौघनालुकाः । सर्वे प्रणमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रहृतेःपगम् ॥
परं परेण्यं परत्वं धरिष्टं परकारणम् । परेशञ्च बरार्हञ्च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥ ८७ ॥
निरीहञ्च निराकारं निर्लिप्तञ्च निराश्रयम् । निर्गुणञ्च निष्कसाहं निर्व्यूहञ्च निरञ्जनम् ॥
स्वेच्छामयञ्च साकारं भक्तानुग्रहयिन्नहम् । सत्यस्वरूपं सारयेशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥
परं परेशं परमं परमात्मनमोभयम् । प्रणम्य नुष्टुपुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥ ९० ॥
सगद्गदाः साधुनैत्राः पुलकाञ्जिनविग्रहाः । सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ॥
उद्योतिर्मये परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । भग्न्यरत्ननिर्माणविभ्रसिद्धासनस्थितम् ॥ ९२ ॥
सेव्यमानञ्च गोपालैः श्येतवामरषायुना । गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मिन्तमुदा ॥
परितो व्यावृत्तं शब्दद्वेषैश्च शतकोटिभिः । चन्द्रनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ९४ ॥
नवीननीरदश्यामं किशोरं पीतवाससम् । यथाद्वादशवर्षीयबालं गोपालरूपिणम् ॥ ९५ ॥
कोटिचन्द्रप्रभायुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । स्वतेजसा परिवृत्तं सुसाद्वरं मनोहरम् ॥ ९६ ॥
कोटिकन्तर्पेसौन्दर्यलीलाखण्डधामकम् । दृश्यमानञ्चगोपीभिःसस्मिताभिश्चसन्ततम्
भूषणैर्भूषिताभिश्च रत्नैर्द्रसामनिर्मितैः । विशन्तीमिलोचनान्ध्यां मुखचन्द्रं प्रभोमुंदा ॥
प्राणाधिकप्रियतमाराधावज्रःस्थलस्थितम् । तथा प्रदत्तं ताम्बूलंमुकवन्तंसुधासितम् ॥

परिपूर्णतमं रासे ददृशुः सर्वतः सुराः ॥ ९६ ॥

मुनयो मानवाः सिद्धास्तपसा च तपस्विनः । प्रदृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्
परस्परं समालोच्य ते समुबुध्यतुर्मग्नम् । निवेदितुं जगन्नाथं स्वामिप्रायमभीक्षितम् ॥
ब्रह्मा ब्रह्मचरं धृत्या बिष्णुं कृष्णस्यदक्षिणे । वामतोवामदेवञ्चजगामकृष्णसन्निधिम् ॥

परमानन्दयुक्तञ्च परमानन्दरूपकम् । सर्वं कृष्णमयं धाताद्दर्श रासमण्डले ॥१०३॥

सर्वं समानवेशञ्च समानासनसंस्थितम् ॥१०४॥

द्विभुजं मुरलीहस्तं घनमालाविभूषितम् । मयूरपुच्छचूडञ्च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०५॥

अर्तावकमनीयञ्च सुन्दरं शान्तविग्रहम् । गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विया ॥१०६॥

पाससा यशसाकृत्पा मूर्त्या भङ्गिमया समम् । परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैर्भव्यैर्यसमन्वितम् ॥

कं सेव्यं सेवकं कं वा दृष्ट्वा निर्विक्रमक्षमः । क्षणतेजःस्वरूपञ्च रूपराशियुतं क्षणम् ॥

एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम् । प्रत्येकासनसंस्थञ्च तथा च सहितं क्षणम् ॥

राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम् । किं श्रीरूपञ्च पुंरूपं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥

हृत्पद्मस्थञ्च श्रीकृष्णं धाता ध्यानेन चेतसा । चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥

ततः स चक्षुरमूल्य पुनश्च तदनुत्तरा । ददर्श कृष्णमेकञ्च राधायक्षः स्थलस्थितम् ॥

स्युपायैः परिपूतं गोपीमण्डलमण्डितम् । पुनः प्रणेमुन्तं दृष्ट्वा तुष्टुपुनश्च पुनश्च ते ॥

विनाय तद्विप्रायं तानुपायं सुरेश्वरः । सर्वात्मा सर्वयज्ञेशः सर्वेशः सर्वभाषनः ॥११४॥

श्रीभगवानुवाच ।

भागच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापनं । इहागच्छ महादेव शश्वन् कुशलमस्तुयः ॥

भागताः स्यमहाभागान्गङ्गानयनकारणान् । गङ्गामधरणाग्मोजे भवेन शरणं गता ॥११५॥

राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मनुस्सन्निधानतः । शम्यर्मांसायद्विदृष्ट्यायूयंकुलनिर्गन्ताम् ॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः । तुष्टाय सर्वां राध्यास्तारभांशोऽश्रून्पूजितान् ॥

वचनैश्चतुर्भिः संसृत्य भक्तिप्रपन्नमवस्थितः । धाता मनुजीं धेयानामुपायचतुराननः ॥

ब्रह्मोवाच ।

गंगा न्यदङ्गसम्भूता प्रमोद्य राममण्डले । द्वयरूपा च राजातामुपध्याशङ्करमयान् ॥

कृष्णांसा च न्यर्दशा च स्थान्कन्यामदृशीश्रिया । तन्मन्त्रग्रहणं हृत्पाफरोनुत्तरपूजनम् ॥

भविष्यति पतिग्नस्यैकुण्ठे च चतुर्भुजः । मृगतायाः कन्यायाश्च वयसोदधयार्जिभिः ॥

गोसोऽश्वत्थायपाराधासर्वत्रस्थानवाग्निके । मन्त्रमिषात्सर्वदेवैरित्ययं दायनयामजा ॥

ब्रह्मो वचनं श्रुत्वा र्थ्यावधार च सस्मिता । परिर्वभूव सा कृष्णपादाङ्गुलनवापनः ॥

तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषाञ्च मध्यतः । उवास तीयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥
 तत्तोयं ब्रह्मणाकिञ्चित्स्थापितञ्चकमण्डली । किञ्चिद्धारशिरसिचन्द्रार्द्धेचन्द्रशेखरः ॥
 गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः । तत्स्तोत्रं कवचं पूजाविधानं ध्यानमेव च ॥
 स्वयं तत् सामवेदोक्तं पुरश्चर्य्याधमं तथा । गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती ॥
 लक्ष्मीः सरस्वती गंगा मुलसी विभवाधनी । एता नारायणस्यैव चतस्रोऽप्यपितोमुने ॥
 अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच ह । सर्वकालस्यवृत्तान्तं दुर्बोध्यमधिपञ्चिताम्
 श्रीकृष्ण उवाच ।

एहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर । शृणुकालस्यवृत्तान्तं यदतीतं निशामय ॥
 द्यूञ्च येऽन्यदेवाञ्च मुनयो मनयस्तथा । सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥
 ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविजिते । जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये ॥
 ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि । वैकुण्ठञ्च दिनासर्वसजलं पश्य पद्मज ॥
 गत्वा खृष्टिं कुर्व पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् । सप्रह्लाण्डं विरचय पञ्चाङ्गनाथ यास्यसि ॥
 पद्ममन्येषु विश्वेषु खट्वा ब्रह्मादिकं पुनः । कर्तोऽप्यहं पुनः खृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह ॥
 मद्यादुयोर्निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । गताः कतिपिधास्ते च भविष्यन्ति च देवसः ॥
 इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने । देवा गत्वा पुनः खृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥
 गोलोके स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोके । ब्रह्मलोकेऽप्यान्यत्र यत्र तत्र पुरा स्थिता ॥
 तत्रैव सा गता गङ्गा चात्रयापरमात्मनः । निर्मिताविष्णुपादाञ्जान्मेनविष्णुपद्मीं स्मृता ॥
 इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम् ।

सुखं मोक्षं सारं किञ्चिदुत्तुमिच्छसि ॥ १४१ ॥

इति धामप्रदवैवर्त्त महापुराणे प्रह्लादखण्डे नारायणनारद संवादे गङ्गोपाख्याने
 एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः

गङ्गाया विवाहः ।

नाम् उवाच ।

इक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा मुन्दरी लोकपालिनी ।
पत्नी नारायणस्यैव ननम्रप्रियाति
गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुत्वा मया ।
कर्णं स्यात्तस्य पत्नी न बभूवेति न न श्रुत्वा
नारायण उवाच ।

गङ्गा जगाम वैकुण्ठं सत्पञ्चाङ्गगताविधिः ।
गन्धोद्याननयास्तार्क्ष्यप्रणम्यजगदीश्वरम्
ब्रह्मोवाच ।

तथाकृष्णांगसम्भूता या देवी द्रव्यरूपिणी ।
सदधिष्ठानदेवीपं रूपेणा प्रतिमा भुवि ॥
विर्योधनसम्पन्ना सुशीला सुन्दरी वरा ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च कोष्ठाहङ्कारवर्जिता ॥
द्वैतसम्मया नाभ्यं कृणोतीत्यञ्ज तं विना ।
तत्रापि मानिनी राधा महातेजसिनी धरा
अमुद्यता पातुमिमां मन्त्रेयं बुद्धिपूर्वकम् ।
विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः
अयं विशुक्लं गोलोकं दृष्ट्वाहमगमन्तदा ।
गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तप्राप्तये
सर्वान्तरात्मा सर्वं नो ज्ञात्वामिप्रायमेव च ।

बहिष्कार गङ्गाञ्च पादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ ६ ॥

स्वास्त्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम् ।
संप्रणम्य च राधेशंगृहीत्याध्यागमं विमं
तान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमांसुरेश्वरीम् ।
सुरेश्वरस्त्वं रत्निक रत्निकां रत्नमावतः
पुं रत्नं पुंसु देवेषु स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती ।

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ १२ ॥

अस्थिताञ्च यः कन्यां न गृह्णातिमदेन च ।
तं विहायमहालक्ष्मीरुद्रायाति न संशयः
यो भवेत् पण्डितः सोऽपि प्रहृतिं नावमन्यते ।

सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रहृतेः कलाः ॥ १४ ॥

वमेव मगधानाद्यो निर्गुणः प्रहृते परः ।
अर्द्धाङ्गो द्विमुजः कृष्णोऽप्यर्द्धांगेन चतुर्भुजः

कृष्णचामांशसम्भूता यभूवराधिका पुरा । दक्षिणांशास्वयंसाञ्च चामांशा कमला यथा
तेन त्वां सा धृणोत्येव यतस्त्वदेहसम्भवा । एकांगश्चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरयः ।

इत्येवमुक्त्वा घाता च तां समर्थं जगाम सः ।

गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥ १८ ॥

यां रतिपतीं श्रुत्या पुष्पचन्दनवर्चिताम् । रेमे रमापतिस्तत्र गंगया सहितोमुद्रा ।

गां पृथ्वीञ्च गता यस्मान् स्वस्थानं पुनरागता ।

निगता विष्णुपादाद्य गङ्गा विष्णुपद्मे स्मृता ॥ २० ॥

ज्ज्वां सम्प्राप सा देवी नयसंयममाश्रुतः । रसिका सुखसम्मोहाद्रसिकेश्वरसंयुता
इहहा दुःखिता पाणी सा पद्मेर्वाविर्जिता । नित्यमीर्ष्यतितावाणीनवगङ्गासरस्वती
ङ्गाया सहितस्यैव तिस्रो भाष्यां रमापतेः । सादं तुलस्या पद्माश्च चतस्रस्तां यभूविदे
इति श्रीब्रह्मचैपर्स महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गङ्गोपाख्यानं नाम

द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः

तुलस्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा ॥ यभूव ह । तुलसी कुण्डसम्भूताकायासापूर्ध्वजन्मनि ॥
कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्यातपस्विनी । वेनवातपसासावसंप्रापप्रकृतेः परम् ।
निर्घिकल्पं निरीदृशं सर्वसाक्षिस्वरूपकम् । नारायणं परं ब्रह्म परमात्मनमीश्वरम् ॥ ३ ॥
सर्वाण्यञ्च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम् । सर्वाण्यारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥ ४ ॥
कथमेतद्दृष्ट्वा देवो वृक्षत्वं समवाप ह । कथं साप्यसुखस्ता संयभूव तपस्विनी ॥ ५ ॥
सन्दिग्धं मे मनो द्योतं प्रेत्येन्मां मुहुर्मुहुः । छेतुमर्हसि सन्देहं सर्वसन्देहमञ्जनं ॥ ६ ॥

नारायण उवाच ।

अनुभूयसायर्णिः पुण्ययान्त्रेण्यः शुचिः । यशस्वी कीर्तिमोक्षनीयविष्णोः शसमुद्भवः ॥
 तत्पुत्रो धर्मसायर्णिः चर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः । तन्पुत्रो विष्णुमात्रजिर्वैष्णवश्चक्रिनेन्द्रियः ॥
 तन्पुत्रो देवसायर्णिः विष्णुमनपरायणः । तन्पुत्रो गजमात्रजिः महाविष्णुपरायणः ॥
 धृतराष्ट्रश्च तन्पुत्रो धृतराष्ट्रपरायणः । यस्याग्रमे म्ययं शम्भुरासीद्वैष्णुगणप्रथमः ॥१०॥
 पुत्रादपि परस्मिन् नृपे तस्मिन् शिवस्य च । न च नारायणमिनेन यत्कर्मोत्तममस्मिन् ॥
 पूजाश्च सर्वदेवतां दूरीभूतां चकार सः । माद्रे मासि महादशमीपूजां यतोऽयमज्ञः ॥
 माघे सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः । यमञ्च विष्णुपूजाञ्च निनिन्द न यत्नार सः ॥
 न कोऽपि देवो भूषेन्द्रं शशाप शिवकारणात् । अष्टधर्मस्य भूषेति शशाप तं दिवाकरः ॥
 शूलं गृहीत्वा तं सूर्यं दधार शङ्करः स्वयम् । विशा सादं दिने शञ्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥
 शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ मुखा । ब्रह्मा सूर्यं पुरस्तस्य ये कुण्डलपयौ मिया ॥
 शूलं गृहीत्वा तं सूर्यं दधार शङ्करः स्वयम् । ब्रह्मकश्यपमार्तण्डाः श्वन्तः शुकतालुकाः ॥
 नारायणश्च सर्वेश ते ययुः शरणं मिया । मूर्ध्नां ग्रणे मुस्ते गत्वा तुष्टुवञ्च पुनः पुनः ॥
 सर्वे निवेदनञ्च कर्मस्य कारणं हरेः ॥११॥

नारायणश्च कृपया तैम्यो हि अभयं ददौ । स्थिरा भवतहेमीताभयं किञ्चोमयि स्थिते ॥
 स्मरन्ति ये यत्र तत्र मां विपत्तौ भवान्विताः । तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥
 पाताहं जगतां देवाः कर्ताहं सततं सदा । कष्टाश्च ब्रह्मरूपेण संहतां शिवरूपतः ॥२२॥
 शिवोऽहं त्वमहञ्चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः । विधाय नाना रूपञ्च करोमि सृष्टिपालनम् ॥
 सूर्यं गच्छत भद्रं धो भविष्यति भयं कुतः ।

अथ प्रवृत्ति धो नास्ति महारात् शङ्कराद्वयम् ॥ २४ ॥

आशुतोषः स भगवान् शङ्करश्च सतां गतिः । मकाधीनश्च मकेशो भक्तात्मा यत्नवत्सलः ॥
 सुदर्शनं शिवश्चैव मम प्राणाधिकप्रियौ । ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्मनयोः परः ॥

घण्टुं महादेवः सूर्यकोटिञ्च लीलया । कोटिञ्च ब्रह्मणामेवं किमसाध्यं च शूलिना ॥

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

वं विन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् । ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्
स्वरूपो भगवान् शिवाधिष्ठातृदेवकः । शिवी भवति तस्माच्च शिर्व्यंतेन विदुर्बुधाः ।
मन्त्रान्तरं तत्राजगाम शङ्करः स्वयम् । शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपंकजलोचनः ॥ ३१ ॥
हा वृषात्पुं भक्तिप्रदात्मकन्धरः । ननाममकथा तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्पद्यम् ।
हासनस्थश्च रत्नालङ्कारभूषितम् । किरीटिनं कुण्डलिनं चकिर्णं धनमालिनम् ॥
नवीननीरुदश्यामं सुन्दरञ्च चतुर्भुजम् ।

चतुर्भुजैः सेवितञ्च श्वेतचामरबाधुना ॥ ३४ ॥

रक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा । लक्ष्मीप्रदस्ताम्बूलं भुज्यन्तञ्च मारद ॥ ३५ ॥
रसीनृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा । ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहप्रियहम् ॥ ३६ ॥
म महादेवो प्रह्लाणञ्च ननाम सः । ननाम सूर्यो मत्पथाच संव्रस्तध्वन्द्रशेखरम् ॥
अ महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम यः । शिष्यः संस्तूय सर्वेशं समुपास सुखासने ॥
ति सुखासीनं पिधान्तं ध्वन्द्रशेखरम् । श्वेतचामरपातेन सेवितं विष्णुपादंभेः ॥
सहस्रसंसारं प्रसन्नं सस्मितमुदा । स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम्
। प्रसन्नतमा प्रसन्नं सुरसंसदि । पीयूषतुल्यं मधुरं दधनं सुमनोहरम् ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पुण्यहास्यञ्चमिदमर्थं शिवेशिवम् । लौकिकं वैदिकं प्रथं त्वांपृच्छामितयापिशम् ॥
उत्तरातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । सप्रभूप्रभं तपःप्रभ्रमयोग्यं त्वाञ्च साम्प्रतम् ।
इये सर्वमे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा । निरापदि विपन्प्रभ्रमलं मृत्युञ्जये हरे ॥
प्राप्येन प्रभ्रमलं स्यात्प्रयमाममे । भागतोऽसि कथं व्रस्त इत्येवं वद कारणम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

तु मद्भक्तं मम प्राणाधिकप्रियम् । सूर्यः शरणा इति मे वारणं त्रासकोपयोः ॥
अशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः । स प्रह्लाणं प्रपद्यध समुप्यध विधिस्त्वयि ।
शरणापन्ना ध्यानेन वचसापि या । निरापदस्ते निशङ्का नरा मृत्युध तेजितः ।
'शरणपन्नास्तत्पूजं किं वदामि भोः । हरिस्मृतिप्रामयदा सर्वममूलदासदा ॥

कं मे भक्त्या भविता तस्मै प्रदि जगन्ममो । श्रीहनुमन्मयमृदुम्य सर्वाशान्तेहेतुना
धोमगयानुधान ।

शान्तोऽनिधानो दैवेन गुणानामेकधिरासिः । येकृण्डे गट्टिकादेन शीघ्रं यथा नृपान्धम
वृक्षधजो मृतः कालाद् दुर्निवाप्याग मुदाह्वयम् ।
हंसजज्जध तन्पुत्रो मृतः सोऽपि धिया हतः ॥ ५२ ॥

तन्पुत्रो च महामार्गो धर्मजज्जकुशध्वजो । हनधियो मूर्धशापातो न परमव्यप्ययो
राज्यघ्नोधिपाघ्नो कमलातापसाधुमो । तयोधमाप्ययोर्लक्ष्मीः कल्याचजन्यति
सम्पद्युक्तौ तदा तौ च नृपध्वजौ भविष्यतः । मृतस्ते सेवकः शम्भो गच्छयूषञ्च गच्छ
इत्युत्तपाद्य सलक्ष्मीकः समालोऽत्यन्तरं गतः । देवाज्जम्बुध संहृष्टाः स्वाधमं परममु
शिवध तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमं यथा ॥ ५३ ॥

इति धीप्रह्लादवैर्ते महापुराणे प्रकृतिलण्डे नारायणनादमन्वादे तुलस्युपाख्यानं
त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः

वेदवत्याश्चरित्रम् ।

नारायण उवाच ।

लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने । धरमिष्टञ्च प्रत्येकं संप्राप्तुमीप्सितम् ।
महालक्ष्म्या धरेणैव तौ पृथ्वीशो बभूवतुः । धनवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ २
कुशध्वजस्यपत्नी च देवी मालावतीसती । सासुपावच कालेन कमलांशांमुतांसतीम् ।
साच भूमिप्रमात्रेण हानयुक्ता बभूव ॥ इत्या वेदध्वनि स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकाण्डे ।
वेदध्वनि सा चकार जातमात्रेण कल्पका । तस्मात्ताञ्च वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः ।



जातमात्रेण सुव्राता जगाम तपसे धनम् । सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥ ६ ॥
 एकमन्यन्तश्चैव पुष्करेव तपस्विनी । अत्युग्राञ्च तपस्याञ्च लीलया च वकार सा ॥ ७ ॥
 तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता । शुधाव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥
 जन्मान्तरेतेमर्ता च भविष्यतिहृदिस्वयम् । ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसिसुन्दरि
 इति श्रुत्वा तु सा दृष्टा वकार च पुनस्तपः । अतीवनिर्जनस्थाने पर्यते गन्धमादने ॥ १० ॥
 तत्रैव सुचिरं तप्या पिश्यास्य समुवाससा । ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निधारणम् ॥
 दृष्ट्वा सातिथिमचया च पापं तस्मै वदीकिल । सुस्यादुफलमूलञ्च जलञ्चापि सुशीतलम्
 तच्च भुक्त्वासपापिष्टधोवास तन्समीपतः । चकाप्यग्रमितितांकात्थं कल्याणि चेति च
 ताञ्चदृष्ट्वा घराटोहा पीनोन्नतपयोधराम् । शरत्पद्मोत्सवास्याञ्च सस्मितांसुवर्तीसर्तीम् ॥
 मूर्च्छामयाप रूपणः कामबाणप्रवीडितः । तां करेण समाकृष्य भृङ्गारं कस्तुमुद्यतः ॥
 सा सती कोपदृष्ट्या च स्तम्भितं तञ्चकार ह । शयाप च मदर्थं स्थं विलङ्घ्यसि सयान्धयः
 स्पृष्टादञ्च त्वया कामाद्विखुजाम्यवलोक्य । स जङ्घो हस्तपादैश्च किञ्चिद्वक्तुं न च क्षमः ॥
 तुष्टाय मनसा देयौ पद्माशां पद्मलोचनाम् । सा तन्स्तवेन सन्तुष्टा प्रहृतं तञ्चकार ह ॥
 इत्युत्वा सा च योगेन देहत्यागं वकार ह । गङ्गायां तां च संन्यस्य स्यगृहं राषणोययौ
 भवो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वा मयाधुना । इति संचिन्त्य संस्मृत्य विललाप पुनः पुनः
 सा य कालान्तरे साध्वी यभूवजनकात्मजा । सीतादेवीति विख्याता यदर्थं राषणोदतः
 महातपस्विनी सा च तपसा पूर्यजग्मनः । लेभे रामञ्च भर्तारं परिपूर्णतमं हृदि ॥ २२ ॥
 तंप्राप्य तपसाराध्य स्वामिनञ्च जगत्पतिम् । सा रमा सुचिरं रेमे रामेन सह सुन्दरी ।
 नातिस्मया च स्मरति तपसश्च वरं पुरा । सुखेन तञ्जही सर्वं दुःखञ्चापि सुखं लेभेत्
 तानाप्रकारयिमवञ्चकार सुचिरं सती । सम्प्राप्य सुनुय्याग्तमतीवनर्योचनम् ॥ २५ ॥
 येतुसत्यपालनार्थं सत्यसन्धो रघूत्तमः । जगाम वाननं पञ्चान् कालेन च पत्नीयसाण
 स्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च । ददर्श तत्र पङ्क्तिं विप्ररूपधरं हृदि ॥ २८ ॥
 रामं दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी यभूव ह । उवाच किञ्चिद् सत्यं सत्यं सत्यपारायणः

वद्विषयान् ।

भगवन् भूषणां धारणं कालेन यदुपनिषत्तम् । सीताहरणकालोऽर्थात्तत्रैव ममुपनिषत्तः ॥
 देवश्च दुर्निवार्यश्च न ॥ देवान्तरं यत्नम् । मन्त्रान् मयि मन्त्राय साधारणान्तिकेऽप्युत
 दास्यामि सीतां मुष्यश्च परीक्षासमये पुनः । देवैः प्रस्थापितोऽहम् नन विप्रो हुताशनः
 रामस्तद्व्यनं भुग्या न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् । स्वीनकार च स्थय्यन्दं हृदयेन विदूयता
 वद्विषयेन सीताया मायासीताञ्चकार ह । ननु ग्यगुणरूपां तां ददौ रामाय तारद ॥

सीतां गृहीत्या स ययौ गोप्यं यत्नं निरेष्य च ।

लक्ष्मणो नैष बुबुधे गोप्यमन्यम्य का कथा ॥ ३५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श यत्नकं मृगम् । सीतां तं प्रेत्यामास तदर्थं यत्नपूर्वकम् ॥ ३६ ॥
 संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या गच्छणे यने । स्वयं जगामहन्तुं ॥ विध्याचसायकेन च
 लक्ष्मणेति च शब्दश्च कृत्वा च माययामृतः । प्राणांस्तस्याज सहसापुरोदृष्ट्वाहर्त्स्मान्
 मृगरूपं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च । रत्ननिर्माणयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह ॥ ३७ ॥
 वैकुण्ठद्वारे छाप्यासीन् किङ्करो द्वारपालयोः । जयाविजययोश्चैव बलयाञ्जितामिष्य
 शापेन सनकादीनां सम्प्राप्य राक्षसीं तनुम् । पुनर्जगाम तद्द्वारमादौ स द्वारपालयोः
 भय शब्दश्च सा भुत्वालक्ष्मणेति च विह्वलम् । सीतां तं प्रेत्यामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ
 गते च लक्ष्मणे रामं राघवो दुर्निवारणः । सीतां गृहीत्या प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया
 विपसाद च रामश्च यने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् । तूर्णञ्च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्शतः
 मूर्च्छां सम्प्राप्य सुखिरं विललाप भृशं पुनः । पुनर्वैभ्राम गहने तदन्धेष्वपपूर्वकम् ॥ ४१ ॥
 काले संप्राप्य तद्वातां पश्चिद्वाता नदीतटे । सहायं धानरं कृत्वा यकथ सागरं हरिः ॥
 लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च । सषान्धवं रावणञ्च सीतां सम्प्रापदुःखिताम्
 ताञ्च वद्विपरीक्षाञ्च कारयामास सत्वरम् । हुताशनस्तत्रकाले वास्तवो जानकीं ददर्श ॥
 उवाच छाया वद्विश्च रामश्च विनयान्विता । करिष्यामीति किमहं सद्युपायं घदस्य मे ॥
 वद्विष्यां च ।

३ तपसे देवि ! बुष्कञ्च सुपुण्यदम् । कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीं विष्यति

चतुर्दशोऽध्यायः]

* वेदवत्याःसीतारूपेणजन्म *

सा च तद्वचने धृत्या प्रतप्य पुष्करे तपः । दिव्यं त्रिलोक्यवर्षञ्च स्वर्गं लक्ष्मीर्वभूव
सा ॥ कालेन तपसा यक्षकुण्डसमुद्भवा । कामिनी पाण्डवानाञ्च द्रौपदी द्रुपदात्म
कृते युगे वेदवती कुशाब्जसुता शुभा । व्रितायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्म
तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा । त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना यु
नारद उवाच ।

प्रियाः पञ्च कथं तस्या यमृषुर्मुनिपुङ्गव । इति मे चित्तसन्देहं भञ्ज सन्देहभञ्जन ॥

नारायण उवाच ।

लङ्कायां वास्तव्यो सीतारामं संप्राप्य नारद । रूपयौवनसम्पन्ना छाया च यदुचिन्ति
रामान्योराख्या सत्त्वा ययान्ने शङ्करं वरम् । कामानुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुन
पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन । पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारञ्चकार
शिवस्तत्प्रार्थनं धृत्या सस्मिन्ने रसिकेभ्यः । प्रिये तव प्रियाः पञ्च भयन्तीति प
तेन सा पाण्डवानाञ्च यभूव कामिनी प्रिया । इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तव्य

अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् ।

विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥ ६१ ॥

एकादशसहस्राब्दं कृत्वा रामश्च भारते । जगाम सर्वलोकैश्च सार्धं वीकुण्डमेव
कमलांशः वेदवती कमलायां विवेश सा । कथितं पुण्यमालयानं पुण्यदं पापनाश
सततं मूर्तिमस्तश्च वेदाश्चत्वार एव च । सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती
कुशाब्जसुताऽननमुकं संशेरतस्तव । घर्मोष्णसुताऽननं निबोध कथयामि
इति धीमत्प्रवेवर्त्ते महापुण्ये प्रकृतिवण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्या

वेदवतीप्रस्तावे चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः

धर्मध्वजपत्न्यां माधव्यां तुलस्या जन्म ।

नारायण उवाच ।

धर्मध्वजस्य पत्नी ॥ माधवीति न विदुता । नृपेण सायं सा रामा मे न गन्धमादने
शय्यां रतिकरीं एवमा पुण्यमन्दनचरिताम् । चन्द्रनोदितसर्वाङ्गी पुण्यमन्दनयायुता ॥
स्त्रीरहामतिचार्यङ्गी रत्नमूर्णमूर्तिता । कामुकी रतिकश्रेष्ठा रतिकेन्द्रेण संयुता ॥ ३ ॥
सुरनिर्विरतिर्नामि तयोः सुरतविजयोः । गर्भं यन् शनं दैवं तां न जानां दिवानिशम् ।

ततो रजोमतिं प्राप्य सुरताद्विरराम सः ।

कामुकी सुन्दरी किञ्चिन् न च नृतिं जगाम सा ॥ ५ ॥

दधार गर्भं सा सद्यो देवाद्दशतर्कं सती । श्रीगर्भां धीयुता सा च संयमूय दिने दिने ।
शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते । शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्यामिगृहान्विते ॥ ७ ॥
कार्तिकीपूर्णिमायाश्च सितवारेच पञ्चमे । सुपायसा च पद्मांशां पद्मिनीं सुमनोहराम् ॥
पादपद्मयुगे चैव पद्मरत्नाधिराजिताम् । राजराजेश्वरीलक्ष्मीं सर्वाङ्गसंगिमायुताम् ॥
राजलक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां राजलक्ष्म्यधिदेवताम् । शरत्पार्वणचन्द्राम्भ्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्
पद्मिण्याधरोष्ठीञ्च पश्यन्तां सस्मितां गृहम् । हस्तपादतलारकां निम्ननाभिमनोरमाम्
सदधस्त्रिवलीयुक्तां नित्ययुग्मवसुलाम् । शीतेसुखोष्णसर्वाङ्गीं धीमे च सुखशीतलाम्
श्यामां सुकेशां रुचिरां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् । श्वेतचम्पकवर्णां मां सुन्दरीष्वेकसुन्दरीम्
नरनारप्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनांदातुमक्षमाः । तेन नाम्ना च तुलसां तां च दन्तिपुराविदः ।
सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्याह्वीप्रकृतिर्वया । सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम धद्रीचनम् ॥ ५ ॥
तत्र दैवादलक्षश्च चकार परमन्तपः । मम नारायणस्वामी भवितेति च निश्चिता ॥ ६ ॥

धीमे पञ्च गाः शीते तोयावस्था च प्रावृषि ।

श्मशानस्था वृष्टिघातं सहन्तीति दिवानिशम् ॥ १७ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः]

* तुलस्यै वरप्रदानम् *

विशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा । त्रिशत्शतसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विन्य
यत्पार्श्वोत्सहस्राब्दं धायुहारा रुशोदरी । ततो दशसहस्राब्दं निराहारा वभूव स
निलक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः । समापयो परं दातुं परं बदरिकाश्रम
चतुर्मुखश्च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् । तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामा
ग्रहोवाच ।

परं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम् । हरिमक्तिञ्च मुक्तिं धाप्यजरामरताम्
तुलस्युवाच ।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम् ।

सर्वशस्यापि पुरतः का लज्जा मम साम्प्रताम् ॥ २३ ॥

महं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ।

हृण्णप्रिया किङ्करी च सदाशा तत्सखी प्रिया ॥ २४ ॥

गोविन्देन सहासकामतृतां माञ्च मूर्च्छिताम् । रासेश्वरीसमागत्य ददर्श रासमण
गोविन्दं भस्त्रंयामास मां शम्भाप खगन्विता । याहित्वं मानवीयोनिमित्येवञ्चपि
मामुवाच स गोविन्दो मदर्शं त्वं चतुर्मुखम् । लभिष्यसितमस्तपसाभारतेब्रह्मणो
इत्येवमुक्तपादैवेशोऽप्यन्तर्धानचकारसः । देव्या भियातनुं त्यक्त्वा लब्धं जन्ममया
महं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । साम्प्रतं लब्धुमिच्छामि धरमेवञ्च दे
ग्रहोवाच ।

सुदामा नाम गोपश्च धीहृण्णाङ्गसमुद्भवः । तदर्शश्चातितेजसी ललाभ जन्म मा
साम्प्रतं राविकाशापहनुवंशसमुद्भवः । शङ्खचूड इति ख्यातस्त्रैलोक्ये ॥ च तत
गोलोकेत्यां पुरादृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः । विलङ्घितुं न शशाकराधिकायाः प्रम
सचजातिस्मरस्तप्त्या त्याल्लभामवरेणच । जातिस्मरापित्यमपिसर्वं जनासिसुन
अधुनातस्पपत्नी च भव भाविनिशोभने । पञ्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लमिप
शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः । मविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपा
प्रधानासर्वपुण्याणां चिष्णुप्राणाधिकामवेत् । त्वयाविनाचसर्वे रांपूजाव्यफिलाभ

वृन्दाघनेवृक्षरूपा नास्मा वृन्दायनीतिच । तत्पत्रैर्गोपिकागोपाः पूजयिष्यन्तिमाधवम् ।
 वृक्षाधिदेवीरूपेण सौन्दर्यं कृष्णेन सन्ततम् । विहरिष्यसि गोपेन स्यच्छन्दं मढरेण च
 इत्येवं धवनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा । प्रणनाम च ब्रह्माणं तञ्च किञ्चिदुवाच ह ।

तुलस्युवाच ।

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे । सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजम् ।
 भक्तसाहस्रं गोविन्दे देवात् शृङ्गारमङ्कृतः । गोविन्दस्यैव धवनात् प्रार्थयामि चतुर्भुजम् ।
 तत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् । ध्रुपमेवं लमिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ।

ब्रह्मोवाच ।

गृहाण राधिकामन्त्रं ददामि षोडशाक्षरम् । तस्याश्च प्राणतुल्यात्वं मढरेणमविष्यसि ।
 शृङ्गारं युययोगोप्यमाज्ञास्यति च राधिका । राधासमात्वं शुभगागोविन्दस्यमविष्यसि ।
 इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्याश्च षोडशाक्षरम् । मन्त्रं तस्यै जगद्धाता स्तोत्रञ्च कवचं परम् ।
 सर्वं पूजाविधानञ्च पुरश्चर्य्याविधिक्रमम् । परं शुभाशिरं कृत्वा सोऽन्तर्धानञ्चकार ह ॥
 सा च ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये यदरिकाश्रमे । जज्ञाप परमं मन्त्रं यदिष्टं पूर्यजग्मतः ॥ ४७ ॥
 दिव्यं द्वादशवर्षं पूजाञ्चैव चकार सा । यभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रत्यादेशमाप च ॥
 सिद्धे तपसि मन्त्रे च परं प्राप्य यथेप्सितम् । धुभुजे च महाभागं यद्विश्येपु सुदुर्लभम् ।
 प्रसन्नमानसा देर्षी तस्याज तपसः क्लमम् । सिद्धे फले नराणाञ्च दुःखञ्च सुखमुत्तमम् ।
 भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनञ्च चकार सा । तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनवर्चिते ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
 तुलसीचरणदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः

तुलस्या सह शङ्खचूडस्य मेलनं कथोपकथनञ्च ।

नारायण उवाच ।

तुलसी परितुष्टा च सुखापहृष्टमानसा । नवर्षोचनसम्पन्ना प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥
निश्चेष पञ्चबाणञ्च पञ्चबाणञ्च तां प्रति । पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चिता
पुलकाञ्जितसर्वाङ्गी कम्पितारक्तलोचना । क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छां प्रधाप
क्षणमुद्विगतां प्राप क्षणं तन्नां सुखाबहाम् । क्षणं सा दाहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्ता
क्षणसाचेतनां प्राप क्षणं प्रापविषण्णताम् । उत्तिष्ठन्ती क्षणं तस्याद् गच्छन्ती निकटं
भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगाद्विषसन्ती क्षणं पुनः । क्षणमेव समुद्वेगात् सुध्याप पुनरेव
पुष्पचन्दनतल्पञ्च तद् यभूवातिकण्टकम् । विषमाहारसुस्याद् दुर्दिव्यरुपं फलं जल
नित्यञ्च निराकारः सूक्ष्मयस्त्रं हुताशनः । सिन्दूरपत्रकञ्चैव प्रणतुल्यञ्च दुःखद
क्षणं ददर्श तन्नायो सुवेशं पुरयं सती । सुन्दरञ्च युवानञ्च सत्स्मिन् रसिकेयवम्
चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । भागच्छन्तं माल्यचन्तं पदयन्तं तन्मुखाम्बु
कथयन्तं रतिकर्मां शुभ्यन्तमधरं मुहुः । शयानयन्तं तल्पे च समाश्लिष्यन्तमीलित
पुनरेव तु गच्छन्तमगच्छन्तं वसन्तकम् । कान्तं कं यासि प्रापेश तिष्ठेत्येवमुपाच
पुनः स्वचेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः । पथं तपोयने सा च तस्यो तत्रैव ना

शङ्खचूडो महायोगी जैगीपञ्चान्मनोरमम् ।

कृष्णस्य भन्त्रं सम्प्राप्य हृत्पा सिद्धिन्तु पुष्करे ॥ १४ ॥

कथयञ्च गले बहुधा सर्वमङ्गलमङ्गलम् । प्रह्लेशाच्च धरं प्राप्य यत्नमनसि धाञ्जित

माद्रया प्रह्वणः सोऽपि वदतीञ्च समाययौ ॥ १६ ॥

भागच्छन्तं शङ्खचूडं ददर्श तुलसी मुने । नवर्षोचनसम्पन्नं कामदेवसमप्रमम् ॥

श्वेतनम्पकपर्णामं रत्नभूषणभूषितम् । शरत्पार्ष्णचन्द्रास्यं शङ्खपट्टजलोचनम्

ग्रामागनिर्माणविमानार्थं मनोहरम् । शत्रुकुण्डलपुष्पमेन गण्डस्थलविगर्जितम् ॥१॥
 पारिजातपुष्पमानी मान्यवन्तश्च सम्मिलम् । कामूर्गीकुङ्कुमगुणं सुगन्धिगन्दान्वितम् ।
 स्त इहागन्धिधाने तं सुगमास्त्राय पागमा । सम्मिलानं निरीक्षन्ती गच्छार्थं पुनःपुनः
 यभूरागित्तमुनी मयसङ्गमन्त्रिणा । कामुकी कामवाणेन गीङ्गिता पुनःकान्विता ॥२॥
 विपन्ती लम्पुगागमोर्जं मोननाभ्याश्च गन्तव्यम् । ददर्श शङ्खचूडाम् कन्यामैकाङ्गोपने ॥

पुष्पगन्धनगरभां परमली पासमागृताम् ।

पश्यन्ती लम्पुगं शदपन् सम्मिलं सुमनोहरम् ॥ २३ ॥

सुपीनकटिनध्रोणीं गीनोघ्नतथोपगम् । मुनतापहनिप्रभायुषदन्ताहन्तिमुषिघ्नम् ॥
 पक्षपिण्याधरोष्ठीश्च मुनासां सुन्दरीं धराम् । तनकाञ्चनपर्णामां शरभन्द्रसमप्रभाम् ॥
 स्यतेजसा परितृतां सुगदृश्यां मनोगमाम् । कामूर्गीविन्दुभिः सार्द्धमपञ्चन्दनविन्दुना
 सिन्दूरविन्दुना शय्यत् सीमन्ताधःस्थलोऽज्यलाम् ।

निम्ननाभिगभीराश्च तदधस्त्रिचलीयुताम् ॥ २८ ॥

फल्गुप्रतलारक्तां नगचन्द्रैर्विभूषिताम् । स्थलपद्मप्रभायुक्तं पादपद्मञ्च विभ्रतीम् ॥ २९ ॥
 आरक्तवर्णं ललितमलकफसमप्रभम् । ऊर्ध्वपद्मस्थलपद्मप्रभराजविराजिताम् ॥ ३० ॥
 शरदिन्दुधिनिन्दैकनखेन्दुराजिराजिताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणपाथकाथलिसंयुताम् ॥ ३१ ॥
 मर्णान्द्रसारनिर्माणकणमञ्जीररजिताम् ॥ ३२ ॥

वृषंतीं कथरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिरूपिणा ॥ ३३ ॥
 चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोऽज्यलाम् ॥ ३४ ॥
 रत्नकुण्डलकेयूराङ्गभूषणभूषिताम् । रत्नाङ्गुलीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्याबलिराजिताम् ॥ ३५ ॥
 दृष्ट्वा तां ललितां ख्यां सुशीलां सुदतीं सतीम् । उवाच तत्समीपे च मधुरं तामुवाच सः
 शङ्खचूड उवाच ।

का त्वमत्र कस्य कन्या धन्ये मान्ये सुयोपिताम् ।

का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि ॥ ३७ ॥

स्वर्गभोगादिसारेति विहारे हाररूपिणि । संसारदारसारे च मायाधारे मनोहरे ॥ ३८ ॥

जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीन्द्रमोहकारिणि । मौनीभूते किङ्करं मां सम्भाषां कुरु सुन्दरि ॥
इत्येवं घञ्चनं धृत्या सकामा धामलोचना । सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥

तुलस्युवाच ।

धर्मव्यजसुताऽहञ्च तपस्यायां तपोधने । तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्
कामिनीकुलजाताञ्च रहस्ये कामिनीं सतीम् । न पृच्छति कुले जात एयमेव धृतीं धृतम्
लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थविषर्जितः । येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः सकामीच्छतिकामिनीम्
भाषातमधुरामन्ते भन्तकां पुरुषस्य ताम् । विषकुम्भाकाररूपाममृतास्याञ्च सन्ततम् ॥
हृदये क्षुरधारामां शश्वन्मधुरभारिणीम् । स्वकार्यवर्तिनिष्पन्नतत्परां सततं सदा ॥
कार्यार्थं स्वामिदशगामन्यर्थवाचशां सदा । स्वान्तर्मलिनरूपाञ्च प्रसन्नवदनेक्षणां ॥
धृतीं पुराणे यासाञ्च चरित्रप्रनिरूपितम् । तामु को विश्वसेत् प्राप्नो ह्यमाञ्च इव सर्वदा
तासां को वा रिपुभिर्भ्रं प्रार्थयन्तीं नयं नवम् । इडां सुवेशं पुरयमिच्छन्तीं हृदये सदा ॥
बाहो स्वात्मसतीत्यञ्च तापयन्तीं प्रयत्नतः । शश्वत्कामाञ्च यमाञ्च कामाभारामनौहराम्
धातो छलाच्छाद्यन्तीं स्वान्तर्मधुनलालसाम् ।

कान्तं प्रसन्तीं रहसि बाहोऽतीवमुलसिताम् ॥ ५० ॥

मानिनीमैधुनामविकोपिनीकलहाङ्कुराम् । संमीतामूरिसम्भोगात् स्वल्पमैधुनदुःखिताम्
सुमिश्रायात् शीततोयाशकांश्चन्तीवमानसे । सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा
सुतान् परमतिशेहं कुर्वन्ती रतिकर्तरि । प्राणाधिकप्रियतमं सम्भोगकुशलं प्रियम् ॥
पश्यन्ती रिपुनुव्यञ्जं धृष्टं वा मैथुनाक्षमम् । कलहं कुर्वन्ती शश्वन् येन साहसुकोपताम्
थर्त्तया प्रक्षयन्तीं तं भीलाश इव गोरवः । दुःसाहसम्बरूपाञ्च सर्वदोषाध्यायां सदा ॥
शश्वत्कपटरूपाञ्च सर्वदोषाध्यायांसदा । प्रक्षयिष्णुशिवार्दीनां दुस्त्याग्यामोहकपिणीम् ।

तपोमार्गमंलां शश्वन्मुक्तिद्वारववाटिकाम् ॥ ५१ ॥

हरेर्मतिलपदितां सर्वमायाकरण्डिकाम् । संसारकारागारे च शश्वन्निगङ्गरूपिणीम् ॥
इन्द्रजालस्थरूपाञ्च मिथ्यापादिस्वरूपिणीम् । विघ्नतीं वाहसौन्दर्यमध्याह्नमतिकुसितम्
मानाविष्णुप्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् । दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रत्नाकरमसंस्तरम् ॥ ५२ ॥

मायारूपं मायिनाञ्च विधिना निर्मितं पुरा । विपरुषां मुमुक्षूनामदृश्याञ्चैव
इत्युक्तया तुलसी तच्च विरयम च नारद । सस्मितः शङ्खचूडश्च प्रयत्नुपयवक्रमे

शङ्खचूड उवाच ।

स्वपापत्कथितं देविनच सर्वमलौकिकम् । किञ्चित्सत्यमलोकञ्चकिञ्चिन्मत्तोनि
निर्मितं द्विविधं धाम्ना स्त्रीरूपंसर्वमोहनम् । कृत्यारूपं वास्तवञ्च प्रशंस्यञ्चाप्रशं
लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिकम् ।

सृष्टिसूत्रस्वरूपञ्चाप्याद्यं स्वप्ना तत् तु विनिर्मितम् ॥ ६५ ॥

एतांसामंशरूपं यत् स्त्रीरूपं वास्तव्यं स्मृतम् । तन् प्रशंस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलका
शतकया देयहती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा । छायावती रोहिणी च वरुणानीं शची
कुबेरचायुपती साप्यदितिश्च दितिस्तथा । लोपामुद्रानसूया च कौटमी तुलसी त
भद्रव्याकृन्धती मेना तारा मन्दोदरी परा । दमयन्ती वेदवती गङ्गा च मनसा त
पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च यमुन्धरा । यष्टीमङ्गलचण्डीचमूर्तिश्चधर्मका
स्वस्तिः श्रद्धा च कान्तिश्च तुष्टिः कान्तिस्तथापरा ।

निद्रा तन्द्रा क्षुत् पिपासा सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ॥ ७१ ॥

सम्पत्तिवृत्तिर्कार्त्तव्यश्च क्रियाशोभाप्रमांशिकम् । यत् स्त्रीरूपञ्च सम्भूतमुत्तमं तदुपुमे
कृत्यास्वरूपं तद् यत्तु स्वर्वेण्यादिकमेव च । तदप्रशंस्यं विश्वेषु पुंशलीरूपमेव च
सत्यप्रधानं यदृषं तच्च शुद्धं स्वभाषतः । तदुत्तमञ्च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम्
तद् वास्तुपञ्च विशेषं प्रवदन्ति मनीषिणः । रजोरूपं तमोरूपं हस्त्यासु द्विविधं स्मृ
स्थानाभावात् क्षणमायात्मज्यवृत्तेरभाषतः । देहदेहेण रोगेण सन्संसर्गेण मुन्दति
यद्गोप्यावृत्तेनैव रिपुराजभयेन च । रजोरूपस्य साध्वीरूपमेनेनैवोपजायते ॥ ७३
इदं मध्यमरूपञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः । तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद् चिदुपुधाः ॥ ७८

न पृच्छन्ति कुजे ज्ञानः पण्डितश्च परस्त्रियम् ॥ ७९ ॥

भाग्यदामि त्वत्समीपमात्रया प्रक्षणाऽधुना । गान्धर्वेणविद्यादेन्यथाप्रदीप्यामिशोभ
महमेव शङ्खचूडो देवविशेषकारकः । इदुर्गोपुषो विश्वे गुह्यमाहं हरेः पुरे ॥ ८१

मदमस्तु गोपेयु गोमोर्षापां देयु च । अधुना वानवेन्द्रोऽहंगधिषायाभ्यापतः ॥८२॥

जातिस्मरोऽहं जानामिहृष्णमन्त्रप्रभाषतः । जातिस्मरात्वं तुलसी संसृज्य हरिणापुरा

स्थमेव राधिकाकोषान् जातासि भारते भुवि ।

त्वां सम्मोक्षमिच्छदुष्टोऽहं नान् राधामयासतः ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमान् विरराम महामुने । सम्मिता तुलसी हृष्टा प्रयत्नमुपयजते ॥८५॥

तुलस्युपाय ।

एवंविधो गुप्तो विश्वे गुप्तेषु च प्रसंसितः । कान्तमेवंविधं कान्तादादयश्चिच्छन्ति कामनः ।

त्ययाहमधुना सत्वं विद्यारेण पराजिता । स निन्दितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः

निन्दन्ति पिनरोदेवाद्यान्धयास्त्राजितं जनम् । स्त्रीजितं मनसा वाचापि नास्त्राता च निन्दति

शुद्धेऽपि यो दशहेन जातके मृत्के तथा । भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ८६॥

शूद्रो मासेन वैदेयु मातृपदुषणं शट्टु । अशुनिः स्त्रीजितः शुद्धे चितादाहनकालतः ९०॥

न शूद्रन्ताच्छ्रातस्य पिनरः पिण्डनर्णम् । न शूद्रन्ताच्छ्रया देवास्तस्य पुण्यजलादिकम्

किं तस्य भ्रान्तयसा अपहोमप्रपूजनैः । किं विद्यया वा यशसा स्त्रीभिर्वस्य मनोहतम् ।

विद्यया वा यशसा मया त्यज्य परीक्षितः । हृत्या परीक्षो कान्तस्य धृणोति कामिनीवरम् ।

धराय गुणहीनाय वृद्धाय प्रानिने तथा । दग्धाय च मूर्खाय रोगिणे कुन्तिताय च ॥

अन्यन्तर्कोपयुक्ताय चात्यन्तदुर्मलाय च । वदुल्यायाङ्गहीनाय बान्धाय धरिणाय च ॥

जडाय चैव मूकाय कृत्यनुव्याय पापिने । ब्रह्महत्यालभेन् सौऽपिः स्वधन्यां ददाति च ॥

शान्ताय गुणिने चैव मूने च विदुषेऽपि च । वैष्णवाय सुतां दत्त्वा दशवाजिकल्लभेत् ॥

यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयं यदि । विपदा धनलोभेन कुर्मपाकं स गच्छति ।

कन्यामूत्रपुरीषञ्च तत्र भक्षति पातकी । कृमिभिर्दंशितः काकैर्याच दिन्द्राश्चतुर्दश ॥९६॥

तदन्ते व्याधयो नीच लभते जन्मनिश्चितम् । चिक्रीणाति मांसभारं बह्व्येव दिवानिशम् ।

इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोवने । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तपोरन्तिकमाययौ ॥१०१॥

मूर्ध्ना ननाम तुलसा शङ्खचूडञ्च नारद । उवाच तत्र देवेशो वाच च तयोर्हितम् ॥

दन्तोष्ठपुटके ददौ दशनदंशनम् । तद्वण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् ॥ १२६ ॥
 विरतौ तौ च समुत्थाय परस्परम् । सुवेशञ्चक्रतुस्तत्र यत्तन्मनसि वाञ्छितम् ॥
 अक्षयन्दनेन सा तस्मै तिलकं ददौ । सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्येचकार चानुलेपनम् ॥ १२८ ॥
 सितञ्च ताम्बूलं बह्विशुद्धे च वाससी । पारिजातस्य कुसुमं माल्यञ्चैव सुरोभनम् ।
 यत्ननिर्माणमङ्गुरीयकमुत्तमम् । सुन्दरञ्च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ १३० ॥
 तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनःपुनः । ननाम परया भक्त्या स्यामिनं गुणशालिनम् ।
 तातमुज्ज्वलभोजं लोचनाभ्यां पयोपुनः । निमेषरहिताभ्याञ्च सकटाक्षञ्च सुन्दरम् ॥
 ताञ्च समाकृष्य वकार वक्षसि प्रियाम् । सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपङ्कजम् ।
 व कठिने गण्डे विम्बोष्ठे पुनरेव च । ददौ नस्यै पल्लयुग्मं वरुणादाहृतञ्च यत् ॥
 तदाहता रत्नमालां त्रिषु लोकेषु विधुताम् ॥ १३४ ॥
 क्षीरयुग्मञ्च स्वाहायाञ्च हृतञ्च यत् । केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याञ्चैव कुड्मलम् ।
 यत्नरत्नानि रत्याञ्च वरभूषणम् । शङ्खं सुरुचिरं चित्रं यदत्तं विभक्तकर्मणा ॥ १३६ ॥
 अपीठकध्रेणीं शप्याञ्चापि सुदुर्लभाम् । भूषणानि च दत्त्वा च परीहारञ्चकार ह ॥
 वायरीभारं तस्याञ्च माल्यसंयुतम् । सुचित्रं पत्रकं गण्डे जयलेशसमं तथा ॥
 त्रात्रिमिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना । परितः परितश्चित्रैः सार्द्धं कुङ्कुमचिन्दुभिः ॥
 वीपाकाञ्च सितदूरतिलकं ददौ । तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिर्दिने ॥ १४० ॥
 तत्करागञ्च नखरौप्यं ददौ मुदा । स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्तं सरागञ्चरणाम्बुजम् ॥
 तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनःपुनः । रत्ननिर्माणयानेन ताञ्च हृत्या स्ववक्षसि ॥
 तपोपनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ ॥ १४२ ॥
 वनिलये शैले शैले धने धने । स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्यानेऽतिनिर्जने ॥
 कन्दरे सिन्धुतीरे च सुन्दरे धने । पुष्पमद्रानदीतीरे नीरघातमनोहरे ॥ १४४ ॥
 लिले दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे । मघी मधुकराणाञ्च मधुरध्वनिनादिते ॥ १४६ ॥
 नदे सुपवने नन्दने गन्धमादने । देवोद्याने देववने चित्रे चन्दनकानने ॥ १४८ ॥
 न केतकीनां माधवीनाञ्च माधये । कुन्दानां मालतीनाञ्च कुमुदाम्भोजकानने ।

कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने घने । निर्जने काञ्चीन्याने घन्ये काञ्चनपर्यते ॥१॥
 काञ्चीवने किञ्चनके कञ्चके काञ्चनाकरे । पुष्पचन्दनतल्पेच पुंस्कोकिलस्तेषुते ॥१४॥
 पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना । कामुक्या कामुकः कामात् ॥ रेमे रामया सा
 न तृप्तो दानवेन्द्रश्च तृप्तिर्नैव जगाम सा । हविषा कृष्णवर्त्मच धृष्टे मदनस्तयोः
 तथा सह समागत्य स्वाश्रमं दानघन्ततः । रम्यक्रीडालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः
 एवं संयुभुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान् । एकमन्यन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो बली ॥१५॥
 दैवानामसुराणाञ्च दानवानाञ्चसन्ततम् । गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानाञ्चशास्तिदः
 हुताधिकारा देवाश्च चरन्ति मिथुका यथा ॥ १५५ ॥

पूजाहोमादिकर्तेषां जहार विषयं बलात् । आश्रयंचाधिकारश्च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम् ।
 निरुपमाः सुराः सर्वेचित्रपुस्तलिका यथा । तेच सर्वेविषण्याश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः समा
 वृत्तान्तं कथयामासुः कुरुक्षेत्रे भृशं मुहुः । तदा ब्रह्मा सुरैः सादं जगाम शङ्करालयम् ।
 सर्वं संकथयामास विधाता चन्द्रशेखरम् । ब्रह्मा शिष्यश्च तैः सादं यैकुण्ठञ्चजगाम ॥
 सुदुर्लभं परं धाम जरामृत्युहरं परम् । सम्प्रापन्न वरं द्वारमाधमाणां हरेरहो ॥ १६० ॥
 स्वर्शं द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् । शोभितान् पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥
 धनमालान्वितान् सर्वान् श्याममुन्दरविग्रहान् । शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् ॥
 सस्मितान्पद्मवक्त्रांश्चपद्मेत्रान्मनोहरान् । ब्रह्मातान्कथयामासवृत्तान्तं गमनार्थकम् ॥

तैऽनुज्ञाश्च द्रुमुस्तस्मै प्रविशेश तदाह्वया ॥ १६४ ॥

एवञ्च पौंड्रशद्वाराधिराक्ष्य कमलोद्भयः । देवैः सादं तानतीत्य प्रविशेश हरेः सभाम् ॥
 देवर्षिभिः परिवृतां पार्यदैश्च चतुर्भुजैः । नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः फौस्तुभभूषितैः ॥१६६॥
 पूर्णैन्दुमण्डलाकारं चतुर्ध्वा मनोहराम् । मणीन्द्रसारनिर्माणंहीरासारसुशोभिताम् ॥
 अमूल्यरत्नपवितारचितान्मेच्छयाहरेः । माणिरूपमालाजालाढ्यामुक्तापंक्तिविभूषिताम् ॥

मण्डिता मण्डलाकारे रत्नदर्पणकोटिभिः ।

ध्वजरेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् । पद्मरागेन्द्ररश्मिनेरविर्भाषद्यहचिभिः ॥१६९॥

स्यमन्नकविनिर्मितैः । पद्मसूत्रप्रस्थितैश्चाकचन्दनपल्लवैः ॥१७०॥

इन्द्रनीलमणिसमैर्वेष्टितां सुमनोरमाम् । सद्गुणपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् ॥
 पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमाकैश्च सुगन्धिवन्दनद्रव्यैः ॥
 सुसंस्कृतान्तु सर्वत्र घासितां गन्धवायुना । विद्याधरीसमूहानां सङ्गीतैश्च मनोहराम् ॥
 सहस्रयोजनायामां परिपूर्णाञ्च किङ्करीः । ददर्श श्रीहरिं प्रह्ला शङ्करैश्च सुरैः सह ॥१७४॥
 वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्द्रुन्तारकावृतम् । अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनवितम् ॥१७५॥
 किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालापिभूषितम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं च चतुर्भुजम् ॥१७६॥
 नयीननीरदश्यामं सुन्दरं सुमनोहरम् । अमूल्यरत्ननिर्माणसर्वभूषणभूषितम् ॥१७७॥
 चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं विभ्रन्तं केलिपङ्कजम् । पुरतो नृत्यगीतञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥
 शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् । भक्तप्रदत्ताम्बूलं भुक्त्वन्तं सुधासितम् ॥
 गङ्गाया परया भवया सेविनं श्वेतचामरैः । सर्वैश्च स्तूयमानञ्च भक्तितप्रात्मकगन्धरैः ॥
 पथं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम् । प्रह्लादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुतुस्तदा ॥
 पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साधुनेत्राः सगद्गताः । भक्त्यापरमयामकामीतानप्रात्मकगन्धराः ॥
 पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विधाता जगतामपि । वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरैः पुरः ॥
 हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वैः सर्वभाषयित् । प्रहस्योवाच प्रह्लाणं रहस्यञ्च मनोहरम् ॥
 धर्ममयानुवाच ।
 शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज । मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥
 सुराः शृणुत तत्सर्वमितिहासं पुरातनम् । गोलोकस्यैवचरितं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥
 सुदामा नाम गोपश्च पार्यदप्रचरो मम । स प्राप दानवोयोनिराधाशापात् सुदारुणाम् ॥
 तत्रैकदाहमगमं स्यालयाद्रासमण्डलम् । विहाय मानिनां राधांममप्राणाधिकांपराम् ॥
 सा मां विरजया साहजं धिष्याय किङ्करीमुक्तात् । पश्चात्कुधासाजगाममाददर्शचतत्रच ॥
 विरजाश्च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् । पुनर्जगामसारुण्यास्वालयंसखीभिः सह ।
 मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं पुरा । भृशं मां भर्त्सयामासमीनीभूतञ्च सुखिरम् ॥
 तच्छ्रुत्वा च सुमहांश्च सुदामार्तांशुकोप ह । सचतांभर्त्सयामासकोपेनममसन्निधी ॥
 तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना । पहिष्कर्तुञ्चकाराज्ञां संव्रस्ताममसंसदि ॥

सर्वान्शो समुत्तमं नृपानं नैतन्मोक्षमम् । बहिष्कारं नैतन्मोक्षमम् पुनः ।
 सा यः सत्तमं धृष्ट्या समाकृष्टा शशाङ्कम् । यदि नैतन्मोक्षमं निमित्तं शशाङ्कं वनः ।
 नैतन्मोक्षमं शशाङ्कं नृपानं नैतन्मोक्षमम् । चागमाम् नैतन्मोक्षमं नृपानं नृपानं पुनः ।
 हेयन्तः ! निपुणमाकृष्टा नृपानं निपुणः । समुत्तमं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं
 गोप्यकृतम् नृपानं गोप्यकृतं निपुणः निपुणः । नैतन्मोक्षमं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं
 भाषाव्यतिशया नैतन्मोक्षमं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं । सुखमनस्य मिहान्कृतं नृपानं नृपानं निमित्तं
 मोक्षोक्तम् शशाङ्कं नैतन्मोक्षमं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं । नृपानं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं
 स एव शशाङ्कः पुनस्तत्रैव नृपानं । महावनिष्ठो नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं ।
 मम शूलं गृहीत्या नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं । शिष्यः करोतु संहारं मम शूलं नृपानं निमित्तं ।
 ममैव पापं कण्ठे सत्यं नृपानं नृपानं निमित्तं । विमर्शितानयः शशाङ्कं सारथिजयन्तः ॥२०॥
 तत्र प्रहरी नृपानं कण्ठे नृपानं नृपानं निमित्तं । नृपानं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं ।
 सतीत्यमङ्गलं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं । सत्यं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं ।
 सत्यं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं । तन्मोक्षमं नृपानं नृपानं नृपानं निमित्तं ।
 पश्चात् सा देहमुत्सृज्य भविष्यति प्रियामम् । इत्युक्त्या जगतां नाथोद्देशं शूलं हराय नृपानं निमित्तं ।
 शूलं हराय ययो शीतं हरिभ्यन्तरं मुदा । भाग्यं ययुर्वेदा प्रहरीपुरोगमाः ॥२०॥
 इति श्रीप्रहरीवर्तुणं महापुराणे प्रहरीवर्तुणे षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

शिवेन सह शङ्खचूडस्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेरणम् ।

नारायण उवाच ।

संनियोज्य संहारे दानवस्य च । जगाम स्वालयं तूष्णं यथास्थानं महामुने ॥
 घटमूले मनोहरे । तत्र तस्यो महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥२॥

दूतं दृष्ट्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेष्वरमीप्सितम् । शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकमुदा ॥
स चेभ्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम् । महेन्द्रनगरौत्तुष्टं कुबेरभयनाधिकम् ॥३॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं देष्टुं तद्वह्निगुणमुने । स्फाटिकाकारमणिभिर्निर्माणमणिवेष्टितम् ।

सप्तभिः परित्वाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥५॥

ज्वलदग्निभिः शब्दज्ज्वलितं रत्नकोटिभिः । युक्तञ्च र्वायिशतकर्मणिवेदिसमन्वितैः ॥
परितो षणिजां संचेर्नानापस्तुधिराजितैः । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः ॥
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः । गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं परम् ॥८॥
भतीयपलपाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम् । ज्वलदग्निशिखामिश्च परित्वाभिश्चतस्रभिः ॥
सुदुर्गमञ्च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम् । मृत्युघ्नेर्गगनस्पर्शमणिप्राचीरवेष्टितम् ॥१०॥
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वाारपालसमन्वितैः । रत्नरुचिप्रपञ्चाढ्यै रत्नवर्षणभूषितैः ।

मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमन्दिरैः ॥११॥

शोभितं रत्नसोपानैः रत्नस्तम्भविराजितैः ।

रत्नविभक्तपाटाद्यैः सद्गुणगुलसन्वितैः । रत्नेन्द्रविभ्ररात्रिभिः सुदीप्ताभिर्विराजितैः
परितो रक्षितं शब्दहृत्तयैः शतकोटिभिः ।

दिग्बालधारिभिः शूरेर्महाकण्ठपराक्रमैः । सुन्दरैश्च सुपेशैश्च नानालङ्कारभूषितैः ॥१३॥
तान् हृष्टा पुष्पदन्तोऽपि वरद्वारं ददर्श सः । द्वारे नियुक्तं पुरं शूलहस्तञ्च सन्मितम्
तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षञ्च ताम्रपर्णं भयदूढम् । कथयामास दूतान्तं जगाम तदनुग्रया ॥१५॥
अतिप्रसन्न भवद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुरम् । न केचन रक्षितं भूया दूतस्य रणस्य च ॥१॥
गम्या सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह । रणस्य सर्वदूतान्तं विज्ञापयितुमीश्वरम् ॥
स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह । स गत्वा शङ्खचूडन्तं ददर्श सुमनोहरम् ॥
समामण्डलनः प्रत्यं स्वर्णसिंहासनन्यितम् । मर्मान्द्रसच्चित्रविभ्ररत्नदण्डसमन्वितम् ॥
रत्नरुचिप्रपञ्चैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा ।

भृत्येन मातृकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम् ॥ २० ॥

सेवितं पार्यङ्गणैर्गर्जनैः श्येतयागरेः । सुपेशं सुन्दरं रत्नं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥

माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रञ्च दधतं मुने । दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेशैश्च त्रिकोटिमिः ॥
 शंतकोटिमिरन्यैश्च भ्रमद्विस्त्रधारिमिः । पर्वभूतञ्च तं दृष्ट्वा पुण्यदन्तः सविस्मयः ॥२३॥
 उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च ॥ २४ ॥

पुण्यदन्त उवाच ।

राजेन्द्र शिष्यदूतोऽहं पुण्यदन्ताभिधः प्रभो । यदुक्तं शङ्करेणैव तद् प्रवीमि निशामय ॥
 राज्यं देहि च देवानामधिकारञ्च सामप्रतम् । देवाश्च शरणापन्ना देवेशो श्रीहरी परे ॥१॥
 दत्त्वा त्रिशूलं हरिणा तव प्रसापितः शिवः । चन्द्रभागानर्दीतीरे घटमूले त्रिलोचनः ॥
 विपर्ययं देहि तेषाञ्च युद्धं वा कुर्वन्निश्चितम् । गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुं तद्भवान् पशुमर्हति ॥
 दूतस्य घबनं ध्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च । प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वञ्च गच्छेत्पुत्रावह ॥
 स गत्वोवाच तूर्णं तं घटमूलस्थमिदं वरम् । शङ्खचूडस्य घबनं तर्हीयं यन् परिच्छिद्यम् ॥
 एतन्मिभ्रन्तरे, स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम् । धीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः ॥

विशालाक्षश्च याणश्च पिङ्गलाक्षो विकल्पनः ।

विरूपो विरुनिश्चैव मणिभद्रश्च वास्कलः ॥ ३२ ॥

कपिलाक्षो धीर्यन्ध्रो विकटस्ताम्रलोचनः ॥ ३३ ॥

कालदूतो धर्माभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः । बलोन्मत्तो रणरुध्वापी दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥
 भर्षी च मैत्र्या रौद्राद्राश्वैकादशः स्मृताः । वसधोपासयाचाश्च भ्रादित्याद्वादशः स्मृताः ॥
 हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ । कुबेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूपराः ॥१॥
 धायुश्च परणक्षश्च पुष्यश्च मङ्गलस्तथा । धर्मश्च शनिरीशामः कामदेवश्च धीर्यवान् ॥
 उपर्द्रष्टा चोपप्रचण्डा कोटरी कैटभी तथा । स्वयं शनभुजा देवी भद्रकाली भयङ्करी ॥
 रणेन्द्रसारनिर्माणचिमानोपरि संजिह्वा । रजधन्वरी धाना रत्नमाल्यानुलेपना ॥३॥
 नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती मुखरं मुदा । भगवं ददती मनममया सा भयं त्रिभुम् ॥
 विघ्ननी विकटौ त्रिदो मुलोत्तौ चोपनायकम् । गणं धनुंदाकारं शरीरं योजनायकम् ॥
 त्रिभुवं गगनगर्शि शक्तिञ्च योजनायकम् । शङ्खं चक्रं गदो पद्मं शरीरधायं भयङ्करम् ॥
 मुकुटं पद्मं चङ्गं फलकमुद्वहन् । येन वायं वायनायं यद्विज्ज नागपादकम् ॥

नारायणाखं ब्रह्माखं गान्धर्वं गारुडं तथा । पार्जन्यञ्च पाशुपतं जृम्भणास्त्रञ्च पार्यतम् ।
माहेश्वराखं वायव्यं दण्डं सम्मोहनन्तथा । अल्पार्थमस्त्रशतकं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥

आगत्य तत्र तस्थौ सा योगिनीनां त्रिकोटिभिः ।

साङ्गं ये डाकिनीनाञ्च विकटानां त्रिकोटिभिः ॥ ४६ ॥

भूताःप्रेताः पिशाचाश्च कुष्माण्डाजह्वराक्षसाः । वेतालाश्चैव यक्षाश्च राक्षसाश्चैवकिन्नराः
सामिधैव सह स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् । पितुः पार्श्वे सभायाञ्चसमुपासमयाङ्गया
अथ ब्रूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान् । उवाच तुलसी वार्तां गत्वाभ्यन्तरमेव च ॥
रणवार्ताञ्च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठीप्रतालुका । उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता
तुलस्युवाच ।

हे प्राणनाथ हे यन्धो तिष्ठ मे दक्षसि क्षणम् । हे प्राणाधिष्ठातुदेव रक्ष मे जीवनक्षणम्
भुङ्क्ष्य जन्मसमाधानं यद्वै मनसि धाम्निष्ठम् ।

पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिदोचनाभ्यां पिपासिता ॥ ५२ ॥

मान्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदग्धञ्च सन्ततम् । दुःस्यप्रञ्च मया दृष्टञ्चायैव चरमे निशि
तुलसीवचनं श्रुत्या भुक्त्या पीत्या नृपेश्वरः । उवाच वचनं प्राञ्चोहितं सत्यंयथोचितम्
शङ्खचूड उवाच ।

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनियन्धने । शुभं हयं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम् ॥ ५५ ॥
काले भवन्ति वृक्षाश्च स्काण्डयन्तश्च कालतः । क्रमेण पुष्पयन्तश्च फलयन्तश्च कालतः
ते सर्वे फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ।

भवन्ति काष्ठे भूतानि काष्ठे कालं प्रयान्ति च ॥ ५७ ॥

काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥ ५८ ॥

काले सृजति स्रष्टा च पाता पाति च कालतः । संहर्त्ता संहरेत् कालेसञ्चरन्तिप्रमेणते
ग्रहविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रवृत्तेः पट । स्रष्टा पाता च संहर्त्ता स वृत्तांशेन सर्वदा
काले स एव प्रवृत्तिनिर्मायस्त्वेवज्जगत्प्रभुः । निर्मायप्राकृतान्सर्वान्धिश्वस्यांधचराचरान्
आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च । प्रवदन्ति च कालेन नश्यत्यपि हि नश्यम् ॥

भज सत्यं परं ब्रह्म गणेशं त्रिगुणान्तरम् । सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वान्मानन्ममीदृशम् ॥
 जलं जलेन सृजति जलं पानि जलेन यः । हरेस्तत् जलेनेव न कृष्णं भज सन्ततम् ॥
 यस्याग्रया घाति घातः शीघ्रगामीवसन्ततम् । यस्याग्रया न तानन्मन्त्रयेय यथास्तनम् ॥
 यथाक्षणं परंतीन्द्रो मृग्युभरति जन्तुषु । यथाक्षणं दहत्यग्निभन्द्रो घ्नमनि मीनवन् ॥
 मृत्योर्मूलं कालमूलं यमस्य न यमं परम् । यिमुं मृत्युञ्जय मरणं पातुञ्जय पातकं भवे ॥
 सहस्राक्षं सहस्रं स्वं कृष्णं शरणं यज । को मृत्युञ्जय केषां वा सर्वयन्तुं भज प्रिये ॥
 अहं को वा न त्वं काया विधिनायोजितः पुरा । त्वयासादङ्कर्मणास्यपुनस्तेन नियोजितः ॥
 अशानी कातरः शोके विपत्तौ न न पण्डितः । सुगं दुःखं भ्रमन्त्येव यत्रनेमित्रमेव न ॥
 नारायणं तं सर्वेशं कान्तं प्राप्स्यसि निश्चितम् । तपः कृतं यद्येवं न पुरा यद्विष्णुश्रमे ॥
 मया त्वं तपसा लब्ध्वा ब्रह्मणश्च परेण हि । हरेरर्थं तप तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि ॥
 वृन्दायने न गोविन्दगोलकेत्यलमिष्यसि । अहं याम्यामितल्लोकंतनुं त्यक्त्वाचदानर्थात् ॥
 तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वञ्च त्वां च द्रक्ष्यामिसन्ततम् ।

आगमं राधिकाप्रापान् भारतञ्च मुदुर्लभम् ॥ ७४ ॥

पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये । त्वं हि देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च
 तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मां कान्ते कातराभव । इत्युक्त्वाचदिनान्ते च तयासादङ्कर्मोदरे ॥ ७५ ॥
 सुध्याप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते । नानाप्रकारविभवे चचार रत्नमन्दिरे ॥ ७६ ॥
 रत्नप्रदीपसंयुक्ते खीरलै प्राप्य सुन्दरीम् । निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥
 कृत्वा वक्षसि कान्तां तां स्वन्तोमतिकुसिताम् ।

कृशोदरी निराहार्यं निमग्नं शोकसागरे ॥ ७६ ॥

पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित् । पुरा कृष्णेन यद्वत् भाण्डीरे, तत्त्वमुत्तमम् ॥
 स च तस्यै ददौ तच्च सर्वशोकहरं परम् । ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥
 निनाशकार हर्षेण सर्वं मत्वातिनश्यत् । तौ दम्पती च क्रीडाकौतुके निमग्नौ सुखसागरे ॥
 ... मूर्च्छितौ निर्जने भुने । अद्भुतप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुप्रातौ सुरतोत्सुकौ ॥
 च तथा तौ द्वौ चार्द्धनारीश्वरी यथा । प्राणेश्वरञ्च तुलसीमेनेप्राणाधिकं परम् ॥

द्वादशोऽध्यायः] * शिवेन सह युद्धाय शङ्खचूडस्य कथोपकथनम् *

प्राणाधिकाश्च तौ मेने राजा प्राणाधिकेश्वरीम् ।

तौ स्थितौ सुखमुग्रौ च तन्त्रितौ सुन्दरौ समौ ॥ ८५ ॥

येशौ सुखसम्मोगादचेष्टौ सुमनोहरौ । क्षणं सचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसा

कथां मनोहरां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः ॥ ८६ ॥

उत्सवन्तौ च साम्बूलं प्रदत्तं च परस्परम् ॥ ८७ ॥

रस्परं सेवितौ च सुग्रीव्या श्वेतचामरैः । क्षणं शयनीं सानन्दौ पस्यन्तौ च क्ष

णं केलिनियुक्तौ च रसमायसमन्वितौ । सुरतोर्विरतिर्नास्ति तौ सङ्क्षिप्यपणि

सननं जययुक्तौ तौ क्षणं नैव पराजितौ ॥ ९० ॥

इति श्रीमहावीरर्षे महामुरारिणे ब्रह्मविष्णवे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्ये

तुलसीशङ्खचूडसम्मोगौ नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः

शिवेन सह युद्धाय शङ्खचूडस्य कथोपकथनम् ।

नारायण उवाच ।

श्रीकृष्णर्षेनोक्तं तस्मात्तस्मात् राजा कृष्णपरायणः । ब्राह्मेमुहूर्त्तं उत्थाय पुष्पकव्याम्भ

रात्रिवासः पणित्यभ्युत्थायामहूतवारिणा । धौतेयपाससर्पाभूत्याहृत्यातिलकमुज

यकाराद्विक्रमावश्यमर्माददेवयन्दनम् । दध्याज्यं मधु स्राजश्च ददौ वान्तु महूल

रत्तधेष्टं मणिधेष्टं वस्त्रधेष्टञ्च काञ्चनम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा जित्यञ्च

भक्ष्यन्तरत्नं यन्त्रिभिश्च भुक्त्यमाणिक्यवर्हरत्नम् । ददौ विद्याय गुरवे यात्रामहूलते

गजराजमभरणं चेतुरत्नं मनोहरम् । ददौ सर्वं दग्धिप विद्याय महूल्याय च

भाण्डाराणां सहस्रञ्च भगवतां त्रितशकम् । ब्रामाणां शनकोटिञ्च ब्राह्मणेभ्यो

पुत्रं हृष्याच्च राजेन्द्रं शुचन्द्रं दानयेषुच । पुत्रे समर्प्यं ब्राह्म्याञ्च राज्यञ्च सर्वं र

प्रज्ञानुचरम्पञ्च भाण्डाग्याहनादिकम् । मयं सप्राहयुनञ्च पनुग्याणिर्भूय ह
 भृग्यद्वाग प्रमेणैव शकार मैन्यसञ्चयम् । मभ्यानाञ्च त्रिलोकेण पञ्चलोकेण हस्मि
 स्थानामपुनेनैवचानुष्काणां त्रिकोण्टिमिः । त्रिकोण्टिमिभर्मिणाञ्जगुलिनाञ्च त्रिको
 कृता रेनापरिमिता दानयेन्द्रेण माग्द । तस्यो संभापनिर्भय गुदशाम्प्रदिशाक्
 महागः सविज्ञेयो रचिना प्रवरं ग्णे । त्रिलोकाध्रीहिर्णासंभापनि कृत्वा नगति
 त्रिशदूर्ध्वहिर्णा पापभाण्डोपञ्च शकार ॥ । बहिर्भूय शिविराग्ननत्मा श्रीहिर्म्म
 रनेन्द्रसारनिर्माणविमानमादरोह सः । गुह्यगानं पुरस्त्वय प्रययी शङ्कगलित
 पुण्यमश्रानर्शतीरे यत्राक्षयवटः शुभः । सिद्धाधमञ्च सिद्धानां सिद्धिधेयञ्च नाम
 कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यधेयञ्च भारते । पश्चिमोदधि पूर्वं च मलयस्य च पश्चि
 श्रीशैलौत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे । पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यं शतगुणा त
 शाभवती जलपूर्णा च पुण्यमद्रा नर्श शुभा ॥ १८ ॥

लघणोदप्रियाभाष्यां शम्बरसौभाग्यसंयुता । शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारतेच सुपुण्य
 शरायतीमिश्रिताच निर्गतासा हिमालयान् । गोमन्तंयामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमो
 तत्र गत्वा शङ्खचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम् । वटभूले समासीनं सूर्यफोदिसमप्रमम् ॥
 कृत्वा योगासनं स्थित्वा मुद्रायुक्तञ्च सस्मितम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं उचलन्तं प्रहनेम
 त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं धरम् । ततकाञ्चनवर्णामं जटाजालञ्च विव्रतम् ॥ २०
 त्रितेजं पञ्चवक्त्रञ्च नागयक्षोपधीतिनम् । मृत्युञ्जयं मृत्युमृत्युं विभ्वमृत्युकरं परम्
 भक्तमृत्युहरं शान्तं गीरीकान्तं मनोरमम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्
 आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तनुग्रहकारणम् । विभ्वनाथं विभ्वरूपं विभव्यीजञ्च विभवजम्
 विभवमरं विश्ववरं विश्वसंहारकारणम् । कारणं कारणानाञ्चनरकारणवतारणम् ॥
 ज्ञानप्रदं ज्ञानवीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् । अवस्था विमानाद्य तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥ २१

शिरसाग्रणनामसः । घामतो भद्रकालीञ्चस्कन्दञ्चतत् पुरःस्थित
 काली स्कन्दञ्च शङ्करः । उत्तस्युर्दानवं दृष्ट्वा सर्वेनन्दीश्वरादयः
 उच्यन्तवसामग्रतम् । राजाश्वत्थाचसम्भापामवास शिवसन्निधौ

प्रसन्नान्मा मशदेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ ३२ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

वेधाताजगतांशस्य पिताधर्मस्यधर्मविन् । मर्गविस्तस्य पुत्रश्च यैष्णवधर्माधिधर्मिकः ।
कश्यपश्चापिनःपुत्रो धर्मिष्ठश्चप्रजापतिः । दक्षप्रोक्त्याददीतस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश
ताम्येका य इतुः सार्धं तन् सौभाग्येन च वर्जिता ।

वत्पार्ष्णिशूनोः पुत्राः दानयाम्नेजसोऽज्यलाः ॥ ३५ ॥

तेष्वेकोविप्रचित्तिश्च महायदराक्षमः । तत्पुत्रोधार्मिकोदंभो विष्णुभक्तोजितेन्द्रियः ।
जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्ष्यन्स्रग्म् । शुक्राचार्यं गुहं कृत्या कृष्णस्य परमात्मनः ॥
सदाचार्यं तनयं प्राप पुरं कृष्णपरायणम् । पुरा त्वं पार्ष्णे गोपो गोपेभ्यष्टमु धार्मिकः ॥
अधुना राधिकाशापान् मारुते दानवेश्वरः । भाद्रहस्तभगपर्वन्तं भ्रमं मेनेच यैष्णवः ॥
सालोऽपसाष्टिसाज्यसामीप्यैक्यं हरेरपि । रीयमानं न गृह्णन्ति यैष्णवाः सेचनंविता ॥
प्रह्लादममल्यं वा नुवृत्तं मेने च यैष्णवः । इन्द्रत्यं वा कुवेरत्यं नमेने गणतासु च ॥
कृष्णमकस्य ने किं वा देवानां विषये भ्रमे । देहि राज्यञ्च देवानां मन्प्रीतिं कुरु भूमिप ।
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तितृप्नु स्वपदे । अलं भ्रातृविरोधेन सर्वं कश्यपवंशजा ।
यानिकानिचपापानि प्रहृष्टयादिकानि च । छातिद्रोहस्यपापस्यकलां नार्हन्तिषोडशीम्
स्वसम्पदाश्च हानिश्च यदि राजेन्द्र मन्यसे ।

सर्वायथासु समता केयां याति च सर्वदा ॥ ४५ ॥

ब्रह्मणश्च तिरोभाषो लये प्राकृतिके सति । भाविर्भावः पुनस्तस्य प्रभवेर्दाश्वरेच्छया ॥
ज्ञानं बुद्धिश्च तपसा स्मृतिर्लोकस्य निश्चितम् । करोतिष्टृष्टिज्ञानेनछष्टासोऽपिक्रमेणच
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याग्रयः सदा । त्रिमाणःसोऽपिज्ज्ञेतायांदिभागोद्वापरेस्सुतः
एकभागः कालेः पूर्वं तदुग्रासश्च क्रमेण च । कलामात्रं कालेः शेषे कुक्काचन्द्रकला यथा
यादृक्तेजोरथेर्ग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः । दिने च यादृक्पञ्चाङ्गे सायं प्रातर्न तत्समम्
उदयं यातिकालेन याल्यताश्च क्रमेण ॥ । प्रकाण्डताश्च सत्यश्चात् कालेऽस्तं पुनरेव सः
दिने प्रच्छन्नं याति काले ॥ दुर्दिने चने । राहुग्रन्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥

इयं ते महती लज्जा स्पृहांस्मामिः सहाधुना । ततोऽधिष्ठाचसमरे कीर्त्तिहानिः पराजये
 शङ्खचूडचः ध्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः । यद्योचितं सुमधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥
 श्री महादेव उवाच ।

युष्मामिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंशसमुद्भूयैः । का लज्जा महती राजन्नकीर्त्तिर्था पराजये
 युद्धमादौ हरेरेव मधुना कंटमेन च । हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥७८॥
 हिरण्याक्षस्य युद्धञ्च पुनस्तेन गदाभृता । त्रिपुरैः सह युद्धञ्च मया चापि पुराहृतम् ॥
 सर्वैर्यथार्थाः सर्वमानुः प्रवृत्त्याश्च यभूव ह । सह शुम्भाद्रिभिः पूर्वं समरं परमाद्भुतम्
 पार्श्वद्वयस्त्यञ्च कृष्णस्य परमात्मनः । ये ये हताश्च ते वैत्या नहि केऽपि त्वया समाः
 का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वयासह । सुराणां शरणस्यैव प्रेषितस्य हरेरहो ॥
 देहि राज्यञ्च देवानां पाग्ल्ययेकप्रयोजनम् । युद्धं त्वं कुरुमत्सार्द्धमिति मे निश्चितं वचः
 इत्युत्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद । उत्तमो शङ्खचूडश्च स्वामात्यैः सह सत्वरः ॥
 इति श्रीमद्भगवद्गीता महापुराणे प्रवृत्तिलखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने

श्रीयशङ्खचूडसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ।

ऊनविंशोऽध्यायः

देवानां सह शङ्खचूडस्य युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान् । समारोहं यानञ्च स्वामात्यैः सह सत्वरः
 यभूतस्ते च संश्लुब्धाः स्वन्दस्य शक्तिपीडया । नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुण्यवृष्टिर्वमूष ह ॥
 स्वन्दस्वोपरि तत्रैव समरे च भयदुरे । स्वन्दस्य समरं दृष्ट्वा महद्भुतमुच्यमाणम् ॥ १ ॥
 दानवानां शयकरं यथा प्राहृतिर्दलपम् । राजा विमानमारुह्य शरण्यंश्चकार ह ॥ ४ ॥
 नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्णनं यथा । महान् घोरान्घकारश्च बह्वृत्यानं यभूव ह ॥

देवाः प्रदुष्युधान्ये मयं मन्वीदयगद्यः । एक एव कार्त्तिकेयान्ता मममूर्त्तिनि ॥
 पर्यंतानाञ्च गणाणां शिखानां शान्तिनान्तया । शरत्तण्डुल वृष्टिञ्च दुर्याशाञ्च मयदूर्गम्
 नृपस्य शरद्वृष्ट्या च प्रच्छन्नः शिवनन्दनः । नीन्देन च सान्द्रेण संश्रान्नामास्कोपया
 धनुश्चिच्छेदं म्यन्दस्य दुर्येहञ्च मयदूर्गम् । वमत्र च गणं दिप्यं चिच्छेदं शरद्वृष्ट्या
 मयूरं जज्ञोर्भीमं दिप्याम्ब्रेण नकारसः । शक्तिं चिक्षेप शूर्यामांतम्ययक्ष्मि घानिर्गम्
 क्षणं मूर्च्छां च संप्राप्य संलभ्य चेतनां पुनः । गृहीत्यान्यदनुर्दिप्यं यद्वत् पिप्पुना पुन
 रदोन्द्रसारनिर्माणं यानमागम्य कार्तिकः । शरप्रमथं गृहीत्वा च नकारं गणमुन्मथम् ॥
 सर्पांश्च पर्यंतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तंगं सदा । सर्पांश्चिच्छेदकोपेन दिप्याम्ब्रेण शिवात्मजः
 वह्निं निर्यापयामास पाज्जयेन प्रतापवान् । गणं धनुश्च चिच्छेदं शरद्वृष्ट्या लीलया ॥
 सन्नाहं सारपिञ्जैव किरीटं मुकुटोऽञ्जलम् । विशेप शक्तिमुत्कामां दानवेन्द्रम्ययक्षसि
 मूर्च्छां संप्राप्य राज्ञा च संलभ्य चेतनां पुनः । भारह्य वै यानमन्यं धनुर्जग्राह सत्वर
 चकार शरजालञ्च मायया मायिनाम्बरः । गृहञ्चाच्छाद्य समरे शरजालेन नाद ॥२७॥
 जग्राह शक्तिमव्याधां शतसूर्य्यसमप्रभाम् । प्रलयाग्निशिखारूपां पिप्पुनांश्च तेजसावृताम्
 चिक्षेप ताञ्च कोपेन महावेगेन कार्तिके । वपात शक्तिस्तद्वाग्ने वह्निराशिरियोऽञ्जला ॥
 मूर्च्छां संप्राप्य शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः ।

काली गृहीत्वा तं कोडे निताय शिवसन्निधौ ॥ २० ॥

शिवस्तश्चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया । दर्शं बलमतन्तञ्च सद्योत्तम्यौ प्रतापवान् ॥
 शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः । दानवेन्द्रेः सत्सैन्येश्च युद्धारम्भो वभूव ह ॥
 स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धञ्च वृषपर्वणा । भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः ।
 दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार समरं परम् । कालेश्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ॥
 कुबेरः कालवेगेन विश्वकर्मा मयेन च । मयङ्कुरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥२५॥
 कलविद्धेन घरुणश्चञ्चलेन समीरणः । बुधश्च घनपुष्टेन रक्तक्षेपेण शनैश्चरः ॥ २६ ॥
 जयन्तो रत्नसारेण वसवोवर्चसांगणैः । अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः ॥
 धनुर्दरेण धर्मश्च मण्डूकाक्षेण मंगलः । शोभाकरेणैवेशानः पीठरेण च मन्मथः ॥२८॥

उल्कामुखेन धूत्रेण खड्गेनापि ध्वजेन च । काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूत्रेण सह नन्दिना ।
 विश्वेन च पलाशेन चादित्या युयुधुः परम् । एकादश महास्त्राश्चैकादशभयङ्करैः ॥
 महामारी च युयुधे चोग्रदण्डादिभिः सह । नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह ॥
 युयुधुश्च महदु युद्धे प्रलये च भयङ्करे । षट्मूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ॥
 सर्वे च युयुधुः सैन्यासमूहाः सततं मुने । रत्नसिंहासने रभ्ये कोटिभिर्दानयैः सह ॥
 उवाच शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः । शङ्करस्य च योधाश्च युद्धे सर्वे पराजिताः ॥
 देवाश्च दुद्रुधुः सर्वे भीताश्च क्षतविश्रताः । चकार कौपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चामयं वदौ ॥
 बलञ्च स्वगणानां चैव वर्जयामास तेजसा । स्वयमेवन्तु युयुधे दानवानां गणैः सहः ।
 अक्षौहिणीनां शतकं समरैस्त्र जघान ह । सर्वं पातयामास काली कमललोचना ॥ ३७ ॥
 पपी रक्तं दानवानां क्रुद्धा सा शतस्वर्परम् । वशलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं च घोटकम् ॥
 समादायैकहस्तेन मुने विश्लेष लीलया । कवन्धानां सहस्रञ्च ननर्त्त समरं मुने ॥ ३८ ॥
 स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविश्रताः । भीताश्च दुद्रुधुः सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥
 वृषपर्णा विप्रचित्तिर्दम्भधापि विकङ्कनः । स्कन्दे न सादं युयुधुस्ते च सर्वे क्रमेण च
 काली जगाह समरं ररक्ष कार्तिकं शिवः । धीरास्तामनुजमुष्णश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥
 सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । राज्यमाण्डाश्च यदुशः शतकोटिर्बलाहकाः ॥
 सा च गत्वा च संप्रामं सिंहनादं चकार ह । देव्याश्च सिंहनादेन प्राप्तमूर्च्छाश्च दानवाः ॥
 भट्टाट्टासमशिवं चकार च पुनः पुनः । हृष्टा पपी च माध्वीकं ननर्त्त रणमूर्धनि ॥
 उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कीटरी च पपीमधु । योगिनीनां डाकिनीनां गणाः सुरगणादयः ।
 दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमार्जि समाययौ । दानवाश्च भयं प्रापु राजातेभ्योऽभयं वदौ ।

काली विश्लेष वह्निश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।

राजा निर्यापयामास पार्जन्येनावलीलया ॥ ४८ ॥

विश्लेष चारुणं सा च तत्तीव्रं महदुमुतम् । गान्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च लीलया ।
 माहेश्वरं प्रविश्लेष काली वह्निशिखोपमम् । राजा जघानतच्छीघ्रं चैम्पवेनावलीलया ॥
 तारायणास्त्रं सा देवी विश्लेष मन्त्रपूर्वकम् । राजा ननाम तं दृष्ट्वा चावस्था रथादहो ॥

ऊर्ध्वं जगाम तच्छास्त्रं प्रणयाग्निशिखोपमम् । पपान शङ्खचूडश्च मनसा न दण्डयद्वुषि

प्रशास्त्रं सा च निशेध यत्नो मन्त्रपूर्णकम् ॥ ५२ ॥

प्रशास्त्रेणमहागता निर्माणञ्च यकार ह । विश्वेश्वरीय दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्णकम्

राजा दिव्यास्त्रजायेन निर्माणञ्च यकार ह । देवीविश्वेश्वरान्तिञ्च यत्नोपीजनापनाम् ॥

राजा तीक्ष्णास्त्रजायेन शतगण्डं यकार ह । जग्राह मन्त्रपूर्णञ्च देवी पाशुपतं यत् ॥

निशेधुं सा निषिद्वाय धाम्पभूयाशतीर्णि । मृग्युपाशुभेनास्मि नृपस्य न महात्मनः ॥

यापदस्त्येय कण्ठेऽस्य ययनञ्च हरेरिति । यापन् सतीत्यमन्तीति सत्याश्च नृपयोनिः

तापदस्य जगामृग्यु नांस्तीतिप्रलणो यः । इत्याकर्ष्यमद्रकाली न तश्चिश्वेय सा सती ।

शतलक्षं दानयानां जग्राहलीलया मृग्या । प्रप्तुं जगाम येगेन शङ्खचूडं भयङ्करी ॥ ५१ ॥

दिव्यास्त्रेणसुतीक्ष्णेन धाम्यामास दानयः । स्वहं विश्वेयसा देवी प्रीत्यमूर्ध्वोपमं परम् ॥

दिव्यास्त्रेण दानवेन्द्रः शतगण्डं यकार सः । पुनर्प्रप्तुं महादेवी येगेनच जगाम तम् ॥

निषारयामासच तां सर्वसिद्धेश्वरो यः । येगेन मुष्टिना काली कोपयुक्तामयङ्करी ॥ ५२ ॥

यमञ्चाथ रथं तस्य जघान सारथि सती । सा च शूलञ्च विश्वेय प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥

धामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडश्च लीलया । मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः ॥ ५३ ॥

यन्नामभ्यधया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप ह । क्षणेनघेतनां प्राप्य समुत्तस्यौ प्रतापवान् ।

न यकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम् । देव्याश्चास्त्रञ्च चिच्छेद जग्राहच स्यतेजसा

नास्त्रं विश्वेय तां भक्त्या मातृबुद्ध्याच वैष्णवः ॥ ६७ ॥

गृहीत्वा दानयं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः । ऊर्ध्वार्ध्वं प्रेरयामास महायेगेन कोपतः ॥

ऊर्ध्वार्थात् पपात येगेन शङ्खचूडः प्रतापवान् ॥ ६८ ॥

निपत्यचसमुत्तस्यौ प्रणम्य मद्रकालिकाम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानान्वं मनोहरम् ।

आरुरोह हर्षयुको न विश्रान्तो महारणे ॥ ६९ ॥

दानवानाञ्च क्षतजं मांसञ्च विपुलं क्षुधा ॥ ७० ॥

पीत्वाभुत्त्वामद्रकाली जगामशङ्खान्तिकम् । उवाचरणवृत्तान्तं पौर्वापर्यं यथाक्रमम् ।

ध्रुत्वा जहास शम्भुञ्च दानवानां विनाशनम् । लक्षञ्च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना ॥

उद्भूतं भूभृता साद्वं तदन्यं मुक्तर्माश्वर । संग्रामे दानवेन्द्रश्च हन्तुं पाशुपतेन वै ॥७२॥

अवध्यस्त्वैव राजेति यागं यमूवाशरीरिणी ।

राजेन्द्रश्च महाप्रार्त्ता महापश्यपराक्रमः ॥७३॥

न च निक्षेप मप्यस्त्रं विच्छेद मम सायकम् ॥७४॥

इति श्रीब्रह्मपेक्षे महापुराणे प्रहृतिखण्डे नारायणनाम्नसंवादे तुलस्युपाख्याने

कालीशङ्खचूडपुद्गले जनपिशोऽध्यायः ।

विंशतितमोऽध्यायः

शिवशङ्खचूडपुद्गम् ।

नारायण उवाच ।

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः । ययौ स्वयञ्च समरं खगणैः सहनारद ॥१॥

शङ्खचूडः शिषं हृद्वा विमानादपग्राह्यं च । मनाम पग्या भक्त्या दण्डयन् पतिनां भुवि ॥

तं प्रणम्य ॥ देगेन विमानमाप्नोद सः । नृणे शकार स्मनाहं धनुर्गंग्राह्यं दुर्योधम् ॥३॥

शिवदानययोर्युद्धं पूर्णमण्डं ययुव ह । न ययुवतुर्प्रहसन्ननयोजयपराक्रमी ॥४॥

स्वस्त्यस्तत्र भगवान् स्वस्त्यस्तत्र दानयः । स्वस्त्यः शङ्खचूडश्चतुर्वर्ण्योद्वयमध्यजः ॥

दानयानाञ्च शनकमुदवृत्तञ्च ययुव ह । रणे ये ये मृताः शम्भुर्जीययामास नान्यिभुः ॥

ततो विष्णुर्महामायावृद्धमास्त्रजगत्पुङ्क । आगत्य च रजस्थानमुपाय दानवेभ्यम् ॥५॥

पृथग्वाप्रेण उवाच ।

देदि मिश्राञ्च राजेन्द्रमापि प्रायसाभ्यतम् । त्वयैव सर्वमभ्यर्त्ता दानावन्मेमनमिषान्निष्ठम् ॥

निगदायाप पृथाय भुविनायानुगाय च । पश्चान् त्प्रांशययिषान्निष्ठान्मन्त्रशुचिनि ॥

भोमिमुपाय राजेन्द्रः प्रहृत्यदनेक्षणः । ब्रह्मार्थो जगद्वाहमिमुपायैति सायया ॥

तन् ध्रुवा दानवभेदो दहौ ब्रह्ममुत्तमम् । पृथीया ब्रह्मं दिव्यं जगाम हरिरेव न ॥

शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति । गत्वा तस्यां माययान वीर्याधानञ्चक
अथ शम्भुर्दरेः शूलं जग्राह दानधं प्रति । श्रीपद्मध्याह्नमार्त्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वल
नारायणाधिष्ठिताग्रं ब्रह्माधिष्ठितमध्यगम् । शिवाधिष्ठितमूलञ्चकालाधिष्ठितपा
किरणावलिसंयुक्तं प्रलयान्निशिन्नोपमम् । दुर्निवार्यञ्च दुर्द्वर्पमव्ययं वैरिघात
तेजसा चक्रतुल्यञ्च सर्वशत्रुविघातकम् । शिवकेशवयोरभ्यं दुर्वहञ्च भयङ्करम् ॥
धनुः सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम् । सजीवं ब्रह्मरूपञ्च नित्यरूपमनिर्मितम्
संहतुं सर्वब्रह्माण्डमलञ्च ह्यवर्त्तलया । चिक्षेप धूर्णतं हृत्या शङ्खचूडे च नारद
राजा चापं परित्यज्यर्धहृत्पञ्चवरणाम्युजम् । ध्यानञ्चकारभक्त्याचकृत्वायोगासने
शूलञ्च भ्रमणं कृत्वा पपातदानयोपरि । चकार भस्मसात्तञ्च सत्पञ्चायलीलया
राजा धृत्या दिव्यरूपं किशोरगोपवेशकम् । द्विभुजं मुर्लीहस्तं त्वाभूयणभूषितम्
खेन्द्रसारनिर्माणं घेष्टिनं गोपकांठिभिः । गोलोकादगतं यानमाकाशं तन् पुरं य
गत्वा नतान् शिरसा राघवामाधययोर्मुने । भक्त्या तद्यरणाभोजं रासे वृन्दायने ॥

मुदामानं तौ च हृद्वा प्रसन्नयदनेक्षणी ॥२३॥

तदा च चक्रतुः षोडशे खेहेन परिसंस्पृता । अथ शूलञ्च घेगेन प्रययौ शूलिनः प
शङ्खस्तेन शूलैश्च शूलपाणिर्भूय सः । स शिवस्तेन शूलैश्च दानवस्यान्धिजातक
प्रेम्णा च प्रेरयानात्न लवणोदे च सागरे । भक्त्यभिः शङ्खचूडस्य शङ्खतातिर्भूय
मानाप्रकाररूपा च शङ्खन् पूता सुरार्चने । प्रशस्तं शङ्खतोयञ्जदेवानो मीतिर्द परम्
तीर्थतोयम्बकञ्च पवित्रं शम्भुना विना । शङ्खशब्दो भवेद् यत्रतत्रलक्ष्मीश्च सुख्य
सुखालः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खादिना । शङ्खे दरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्तो हनि
तयेव मत्तं लक्ष्मीर्दृष्टुमममूलम् ।

स्त्रीजाश्च शङ्खं निमिःशुदाणाश्च विनीतः । मातापुत्रादिति लक्ष्मीः स्वयत्तमर्गं स्नात्वा

शिवश्च दानधं हृत्या शिवलोकं जगाम सः ॥२४॥

प्रदृष्टो धृत्वाकाशं सतपेञ्च ममावृत्तः । सुराः स्वविषयं प्रापुः परमाप्तन्दमंयुता ॥२५॥

... अथैवमर्चयन् शिवं ...

एकविंशतितमोऽध्यायः] * तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् *

१११

प्रशस्तं सुः सुरास्तश्च मुनीन्द्रप्रचरादयः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
शङ्खचूडवधप्रस्तावो नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

एकविंशतितमोऽध्यायः

तुलसावृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् ।

नारद उवाच ।

नारायणश्च भगवन् षीट्याधानञ्चकार ह । तुलस्यां केन रूपेण तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥
नारायणश्च भगवान् देवानां साधनेन च । शङ्खचूडस्य रूपेण रेमे तद्रमया सह ॥२॥
शङ्खचूडस्य कयचं गृहीत्वा विष्णुमायया । पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तुलसीगृहम् ॥३॥
हुन्दुमि घादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ । जयशब्दरयद्वाराथोद्ययामास सुन्दरीम् ॥४॥
तत्क्षुत्वा सा च साध्वी च परमानन्दसंयुता । राजमार्गं गवाश्रेण ददर्श परमादरात् ॥
ब्राह्मणेभ्योऽधनं दत्त्वा कारयामासमङ्गलम् । वन्दिभ्योऽभिधुकेभ्यश्चवाचिकेभ्योऽधनं ददौ ॥
अचरन् रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ । अमृत्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥५॥
दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं शान्तं कान्ता मुदाश्रिता । तत्पादं क्षालयामासननामचररोदच ॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासकामुकी । ताम्बूलञ्च ददौ तस्मै कर्पूरादि सुवासितम् ॥
अथ मे सफलं जन्म अथ मे सफला क्रिया । शरणमातश्चप्राणेशंपश्यन्त्याश्च पुनर्ददे ॥
सस्मिता सकटाक्षश्च सकामा पुनकाश्रिता । पप्रच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा ॥

तुलस्युवाच ।

असंख्यविभ्यसंहर्त्रा सार्द्धमाजौ तव प्रभो । कथं वभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥
तुलसीचयनं ध्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः । शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचानृतं वचः ॥१॥

श्रीहरिश्चन्द्रः ।

भाष्योः रामः कान्ते पूर्णमर्षं यभूय ह । भाषां यभूय सर्वेषां दानवाणाञ्च कामिनी ॥
 प्रीतिञ्च कारयामास प्रसादात् स्वयमभाष्योः । देवानामभिप्रायञ्च प्रदत्तो प्रसन्ना पुनः ॥
 मया गतं स्वमयने शिवलोचनं शिवो गतः । इत्युक्त्या जगतां नाथ शयनञ्च मकार ह ॥
 तेनैव रामाभिजन्त्र रामया सह मागद । सा माग्या मुच्यमान्मोहादार्क्यजघनप्रजन्तान् ॥
 तर्पयितुं यामास कस्त्यमेवेत्युपायः ॥ २८ ॥

ददर्श पुनस्तौ देव्यां देवदेवं सनातनम् । नवीननन्दस्यामं शम्भुदूतज्जलग्नम् ॥ २९ ॥
 षोडशत्पदीनां गङ्गां गङ्गां भूयः प्रसन्नाः । ईशान्यं प्रसन्नाः शोभिर्नदीनां ससा ॥ ३० ॥
 तं दृष्ट्वा कामिनी कामान्मूढां संप्रापन्दीनया । पुनश्च जेतनां प्राप्य पुनः सानमुपाय ह ॥
 तुलस्युपायः ।

हे नाथ ! ते दया नास्ति पापाणसदृशस्य च । छन्देन धर्ममद्वेन ममस्यामीत्ययातः ॥
 पापाणसदृशस्यश्च दयाहीनो यतः प्रभो । तस्मान्पापाणस्यस्त्वं मुनिदेवमयापुनः ॥
 ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वान्ते भ्रान्ता न संशयः । भक्तो विनापराधेन परार्थे च कार्यतः ॥
 दुष्टं त्वत्वं सर्वभो न जानासि परधयाम् ।

अतस्त्वमेकजनुपि रुमेव विस्मरिष्यति ॥ २५ ॥

इत्युक्त्या च महासाध्वी निपत्य चरणे हरेः । भृशं हरोद शोकात्तां घिल्लापमुद्गुम् ॥
 तन्मयाश्च करुणां दृष्ट्वा करुणामयसागरः । नारायणस्तां बोधयितुमुपायकमलापतिः ।
 श्रीभगवानुवाच ।

तपस्त्वया कृतं साध्वि मर्त्ये भारते विष्णु । त्वदर्थं शङ्खचूडश्च चकार सुधिरं तपः ॥
 कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तन् फलात् ।
 अघुना दातुमुचिनं तवैव तपसः फलम् ॥ २६ ॥

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यं देहं विधाय च । रासे मे रमया सान्त्वं त्वं रमा सदृशीभव ।
 इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विधृता । पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते ॥
 तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्ति च । तुलसीकेशसम्भूता तुलसीति च विधृता ॥

एकविंशतितमोऽध्यायः] * तुलसीवृक्षस्यतत्पत्राणाञ्चमाहात्म्यम् *

१६३

त्रिलोकेषु च पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति धरानने ॥
 स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम सन्निधौ । भवन्तु तुलसीवृक्षा घराःपुष्पेषुसुन्दरि ।
 गोलोके विरजा तीरे रासे वृन्दावने भुवि । भाण्डोरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥
 माधवी केतकी कुन्दमहिषिका मालतीवने । भवन्तु तरयस्तत्र पुण्यस्थानेषु पुण्यदाः ॥
 तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे । अधिष्ठानन्तु तीर्थानां सर्वपाञ्च भविष्यति ॥
 तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च । तुलसीपत्रपतनप्राप्तो यश्च धरानने ॥ ३८ ॥
 स ज्ञातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ॥
 सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्नभयेद्धरेः । या च तुष्टिर्मयेन्दुजां तुलसीपत्रदानतः ॥ ४० ॥
 गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः । तुलसीपत्रदानेन तत्फलं लभते सति ॥ ४१ ॥
 तुलसीपत्रतोयञ्च मृत्युकाले च यो लभेत् ।

स मुच्यतेसर्वपापात् विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४२ ॥

नित्यं यस्तुलसीतोयंभुङ्क्तेभक्त्या च यो नरः । स एव जीयन्मुक्तश्चगङ्गास्नानफलंलभेत्
 नित्यं यस्तुलसीं वृत्वा पूजयेन्माञ्चमानघः । लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभतेनात्र संशयः ॥
 तुलसीं स्वकरे धृत्वा देहे धृत्वा च मानवः ।

प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४५ ॥

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः । पदे पदेऽश्वमेधस्य लभतेनिश्चितंफलम् ॥
 तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति । स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदियाकरी ।
 करोतिमिथ्याशपथंतुलस्यायो हि मानवः । स यातिकुम्भीपाकञ्चयायदिन्द्राद्यनुर्दश ।
 तुलसीतोयकणिकां मृत्युकालेच यो लभेत् । रत्नयानं समाख्या वैकुण्ठं स प्रयाति च
 पूर्णिमायाममायाद्वादश्यांरविसंक्रमे । तैलाम्यङ्गेचास्त्रातेचमध्याह्ने निशिसन्ध्ययोः ॥
 अशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिषासान्वितेनराः । तुलसीयेचछिन्नन्तितेछिन्नन्तिहरेःशिरः ।
 त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं धूप्युपितं सति । श्राद्धे यते वा दाने वा प्रतिष्ठयां सुरार्चने ॥
 भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति । शुद्धन्तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥ ५३ ॥
 वृक्षाधिप्रात्रीदेवी या गोलोकेव निरामये । कृष्णेनसाक्षंरहसि नित्यक्रोडां करिष्यति ।

छत्राकारे भवेद्राज्यं धर्तुंले च महाश्रियः । दुःखञ्च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥
 विहृतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च । लग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥
 यतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धञ्च देवपूजनम् । शालग्रामशिलायाश्चैवाधिष्ठानात् प्रशस्तकम् ।
 सः स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् ।
 सर्वदात्रेषु यत्पुण्यं प्रादक्षिण्ये भुवो यथा । सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु यन्नेष्यनशनेषु च ॥ ८२ ॥
 तस्य स्पर्शञ्च घाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च ।

जीवन्मुक्तो महापूतो भवेदेव न संशयः ॥ ८३ ॥

पाठे चतुर्णां वैदानां तपसां करणे सति । तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ।
 शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः । सुरेप्सितप्रसादञ्च जन्ममृत्युजराहरम् ।
 तस्य स्पर्शञ्च घाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च ।

जीवन्मुक्तो महापूतोऽत्यन्ते याति हरेः पदम् ॥ ८६ ॥

तत्रैव हरिणासाहंमसंख्यं प्राकृतं लयम् । पश्यत्येव हि दास्ये च निर्मुक्तो दास्यकर्मणि ।
 यानिकानि च पापानि प्रह्लादस्यादिकानि च । तञ्च दृष्ट्वा भियायान्तिर्बनतेयमिवोरगाः ।
 तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता घसुन्धरा । पुंसां लक्षं तत्पितृणां निस्तारतस्य जन्मनः ।
 शालग्रामशिलातोयं मृत्युफाले च धोलभेत् । सर्वपापाद्भिनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति
 निर्माणमुक्तिं लभते कर्मभोगाद्भिमुच्यते । विष्णुपादे प्रलीनञ्च भविष्यति न संशयः ॥
 शालग्रामशिलाधून्वामिध्यायाश्च देवेषु यः । स याति कूर्मदंष्ट्रञ्च वायुद्वै ब्रह्मणो वयः ।
 शालग्रामशिलास्पृष्ट्वा स्वीकार्यो न पालयेत् । स प्रयात्यसिपत्रञ्च लक्षमन्वन्तराधिकम्
 तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति न्यः । तस्य जन्मान्तरे फाले लीविच्छेदो भविष्यति
 तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हिकरोति च । भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च स तज्जन्मसु
 शालग्रामञ्च तुलसीं शङ्खमेकत्र एव च । यो रक्षति महाजानी स भवेत् श्रीहरिप्रियः ।
 स हृदेव हि यो यस्यां धीर्याधानं करोति च ।

तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥ ९७ ॥

त्यं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तराविधिः । शङ्खेन सार्द्धं त्यद्देहः केवलं दुःखदस्तव्यं ॥

तुलसीधारीतस्मात्प्रविराम न साधम् । सा च देहं पतित्यस्य दिगम्बरे दयाह ।
 यथाधीश तथा सा व्याप्युपागतदिव्यशक्तिम् । प्रव्रजाम तथा सादं वैकुण्ठं कमलानि ।
 लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नागद । हरेः प्रियाश्चान्यत्र च भूपुरीष्यगम् न ॥
 स्वयःसादेहजाया च यमूय गण्डर्षी नदी । हरेर्देहेन गैलश्च नसीते पुण्यदो नृणाम् ॥
 तुर्यन्तितप्रणीटाश्च शिन्ना बहुविधा मुने । जले पतन्ति यायाश्च तन्दाभाश्च निश्चितम् ।
 ह्यलम्बाः पिंगला जंयाश्चोपनात्पादरेणिनि । इत्येवं कथितं नर्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रीप्रह्लादचरितं महापुराणे प्रह्लादगण्डे नारायणनागदर्शनं तुलसीपाश्याने
 एकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

तुलसी पूजा विधानम् ।

नारद उवाच ।

तुलसी च जगत्पूज्या पूता नारायणप्रिया । तस्याः पूजाविधानञ्च स्तोत्रं किं नुतं मया
 केन पूज्या स्तुता केन पुरा प्रथमतो मुने । तव पूज्या सा यमूय केन वा वद मामहो ॥
 सून उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य गरुडध्वजः । कथां कथितुमारभे पुण्यरूपां पुरतनीम् ॥
 नारायण उवाच ।

हरिः संप्राप्य तुलसीं रेमे च रमया सह । रमासमानतां सौभाग्यां चकार गौरवेण च
 सेहे लक्ष्मीश्च गङ्गा च तस्याश्च नवसङ्गमम् । सौभाग्यं गौरवं कोपाग्रसेहे च सरस्वती
 सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ । श्रीदेव्या स्थापमाना च सान्तर्ज्ञानचकारह
 सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनी सिद्धयोगिनी । यमूयादर्शनं कोपात् सर्वत्र च हरेरहो ॥१॥
 तर्हि दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम् । तदनुज्ञानं गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्

तत्र गन्धाश्च स्नान्याश्च मुलम्ब्या मुलम्बो सर्वाश्च ॥ ६ ॥

पूजयामास शान्त्वातोऽग्नौर्ध्वमनपान्त्वकाह । नृहर्मामायाकामवर्षार्थीजपूषं दत्ताहम् ॥

धी ही ही ऐं गुन्दापन्ये म्यादा ।

मृदायनानि दृश्यन्तु यद्विज्ञायास्तमेव च । धर्मेन वाचस्पतयः सन्ध्यादेन सात्त्विकः ॥१॥

गृह्यसंघ विधानेन स्वयंमिद्धि लभेन्नरः । पुनर्दक्षिण पुनः मिन्द्रगन्धनेन ॥ ५२॥

निवेदन व पुर्ण गोपनीयता । दस्तावेज मुद्रा व वाणिज्य महीना ०१३

प्रपन्नानां वाप्यात्मनां ज्ञेयानां शरणं शुभम् । तत्र मयि ह्रीं विष्णुर्भगवत्पूज्यमथेति च ॥

अहं स्वाध्यायसिद्ध्यामिन्नमूर्तिरहंसीतिह । सर्वस्योपायसिद्ध्यामिन्नमूर्तिरुपादयः ॥

इत्युक्त्या तां गृहीत्वा च प्रथमं व्याख्येयं विभुः ॥१॥

आरम्भ उपान्त ।

कि. अयाने गलने कि. या कि. या पुत्रादिभिरग्र्यम् ।

सुदृढाऽऽसदाभावात् नमोऽप्यशब्दाभ्युदयि ॥ १.३ ॥

नारायण उपास ।

अलङ्काराणां मन्त्रः॥ अथाथ मुनिर्वाचयत् । इति सर्वप्रधानमुखावतारस्योपनिषद् ॥८

धर्मशास्त्रानुसारः ।

सुधाकराभा सुशाभा अशेकळ असमिन् । विद्वत्प्राप्तमेवमुद्देशप्रतिपाद्यतावाच्यम् ॥

सुता बभूव यः देवां तातं हृन्दायने धमे । निमहृन्दायनीमपानातीरतीमायपीमजामगहम् ॥

अथानेयं अपिपेयुर्गुणितायाः निरुपमम् । मेरुशिखरं गुणितायाः जगत्सुखं न ज्ञायते ॥

असंख्यानि च विभानि यविप्राविषयाणां । तानि विभानि च देवः विदेष्टुमाणाया ॥

देवा न मुपा पुण्यायी वामदेवप्राविता । नानुपयासां मुदाश्चरदुर्मिष्टानिमेवतः ॥

विशेषः प्रमाणं यमकालम् । अथैवमुच्यते । अन्तिमः पञ्चमस्तोत्रः ।

साया देवताभ्युता आत्मि विवेक निमित्तं च ।

જુલાર્થી મેઘ સિંહદાગા ની થાઈલે કાળજી રિડે ૬ ૩૫ ૪૧

हृषणः प्रीतिमयः वा शास्त्रदुर्लभमया ज्ञानी । मेव हृषणः प्रीतिर्वा भवति ॥ ३ ॥

इत्येवं स्तव्यते हृदया तत्र तर्था गमापतिः । नृदशं तुलसीं साक्षात्प्राप्य भो नतां सतीम्
 रुन्तिमभिमानेन मानिनीं मानपूजिताम् । प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं पापमाप्नास यदा हि
 भास्वत्याम् गृहीत्वा न स्यात्तत्र यथाहतिः । भाग्यासद्वनदीति कारणात् सा तस्याम्
 परं विष्णुर्देवो तस्यै विष्णुग्यामयेति च । शिरोधार्यान् सर्वपापानां न्याममेति च
 विष्णोर्धरेण सा देवी परितुष्टा कथयत् । भगवन्तानामाश्लिष्य चामयामास सन्निवी
 लक्ष्मीर्गङ्गा सन्मिता तां समाभिदध्य न मान् । गृहं प्रवेशयामास विनयेन सती तदा
 घृन्दां घृन्दाघनीं पिश्याघनीं विश्वपूजिताम् । पुष्पसारां नन्दिनीं तुलसीं कृष्णजीवनीम्
 पताम्रामा एकञ्चित् स्तोत्रं नामार्थं न्युतम् । यः पठेत्ताञ्च न्युतं १२ च मेघरत्नं लभेत्
 कार्तिकी पूर्णिमायाञ्च तुलस्याञ्च मम हृत्पदम् । तत्र तस्याश्च पूजा न विहिता हरिणा पुरा
 तस्यां यः पूजयेत्ताञ्च भक्त्या च विश्वपावनीम् । सर्वपापाह्निमुन्तं विष्णुलोकं स गच्छति ।
 कार्तिके तुलसीपत्रं विष्णवे यो ददाति च । गयामयुतदानस्य कथमाप्नोति निश्चितम् ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम् ।

यन्मुहीनो लभेत् यन्मुं स्तोत्रस्मरणमात्रतः ॥ ३८ ॥

रोगी प्रमुच्यते रोगात् यद्वो मुच्येत यन्धनान् । भयान्मुच्येत भीतस्तु पापांश्च मुच्येत पातकी ॥
 इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु । त्यमेव वेदज्ञानासिकाप्यशास्त्रोक्तमेव च
 यद्वश्ये पूजयेत्ताञ्च भक्त्या चावाहनं विना । ध्यात्वा यो दृशोर्पचारैः ध्यानं पातकनाशनम् ॥
 तुलसीपुष्पसाराञ्च सतीं पूज्यां मनोहराम् । हृत्स्नपापे च दाहाय ज्वलद्गनिशिखोपमाम् ॥
 पुष्पेषु तुलनाप्यस्या नासीद्देवीसु वा मुने । पवित्ररूपा सर्वासु तुलसीसा च कीर्तिता ॥

शिरोधार्याञ्च सर्वपापमिप्सतां विश्वपावनीम् ।

जीपन्मुक्तं मुक्तिदाञ्च भजे तां हरिमक्तिदाम् ॥ ४४ ॥

इति ध्यात्वा च संपूज्य स्तुत्वा च प्रणमेद्बुधः । उक्तं तुलस्युपाख्यानं किंभूयः श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्यानं नाम
 द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

उपाख्यानमिदं श्रुतमीश सुधोषमम् । यत्तुसावित्र्युपाख्यानंतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥
न समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतिप्रसूः । केन वा पूजिता देवी प्रथमे कौश्व वा परे ।

नारायण उवाच ।

येदजननी पूजिता प्रथमे मुने । द्वितीये च देवगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥३॥
आश्वपतिः पूर्वं पूजयामास भारते । तत्पश्चात् पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वारण्य च ।

नारद उवाच ।

सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केनवातिनपूजिता । सर्वपूज्याचसावित्रीतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ।
नारायण उवाच ।

महाराजा बभूवआश्वपतिमुने । वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः ॥६॥
स्य महाराज्ञी महिषीधर्मचारिणी । मालतीतिवसाख्यातायपालक्ष्मीर्गदाभृता ॥
राक्षीमहासाध्वीयशिष्टस्योपदेशतः । चकाराराधनंभवयासावित्र्याश्चैव नारद ॥
न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम् । गृहं जगाम सा दुःखादुद्भूदयेनविदूयता ॥
न दुःखितां हृद्वापोधयित्वाजयेनवे । सावित्र्यास्तपसेभक्तयाजगामपुष्करतटा ॥
तत्रैव संयतः शतपत्सरम् । न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो बभूव ॥११॥
काशपाणीञ्च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम् । गायत्री दशलक्षञ्च जपं कुर्विति नारद ॥
स्मन्तरे तत्र प्रजगाम पराशरः । प्रणनाम नृपस्तञ्च मुनिर्नृपमुवाच ह ॥ १३ ॥
पराशर उवाच ।

अथ गायत्र्याः पापं दिनदहनं हरेत् । दशधा प्रजपान्मृणां दिवारात्र्यधमेव च ॥
च जपाधीवं पापं मासार्जितं धम् । सदस्यथा जपाधीवं बलमप्यनृसरार्जितम् ॥
महत्तं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः । सर्वजन्मदहनं पापं शतलक्षो विनश्यति ॥ १६ ॥

करोति मुक्तिं विप्राणां जपोदशगुणस्ततः । करं सर्पफणाकारं कृत्वा तु ऊर्ध्वमुद्रितम् ॥
 आनघ्रमूर्ध्वमचलं प्रजपेत् प्राङ्मुखो द्विजः । अनामिकामध्यदेशादधो वामक्रमेण च ॥
 तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्येयः क्रमः करे । श्वेतपङ्कजबीजानां स्फाटिकानाञ्च संस्कृताम् ॥
 कृत्वा च । मालिकां राजन् जपेतीर्य सुरालये ।

संस्थाप्य मालामश्मत्पत्रसप्तसु संयतः ॥ २० ॥

कृत्वा गोरोजनाकाञ्च गायत्र्या स्थापयेत् सुधीः ।

गायत्रीशतकं तस्यां जपेद्य विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

अथवा पञ्चाग्नयेन स्नाता माला च संस्कृता । अथ गङ्गोदकेनैव स्नाता यातिसु संस्कृता ॥
 पयं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु । साक्षाद्भद्रस्यसि सायित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥
 नित्यं नित्यं त्रिसन्ध्यञ्च करिष्यसि दिने दिने । मध्याह्ने चापिसायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा ॥
 सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यद्वा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत् ॥
 नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्तेयश्च पश्चिमाम् । स गृह्यद्वन्द्वद्विष्काप्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मजः ॥
 यावज्जीवनपर्यन्तं यस्त्रिसन्ध्याङ्करोति च । स च मूर्ध्वसमो विप्रस्तेजसा तपसा सा ॥ २३ ॥
 तत्पादपत्रजसा सयः पूतायनुभरा । जीवन्मुक्तः स तेजस्वी सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः ॥
 तीर्थानि च पवित्राणि तस्य स्पर्शनमात्रतः । ततः पापानि यान्त्येव येन ते पादिघोराः ॥
 न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम् । स्वेच्छया च द्विजाते च त्रिसन्ध्यरहितस्य च ॥
 चिन्तुमन्त्रविहीनश्च त्रिसन्ध्यरहितो द्विजः । एकदशीविहीनश्च चिन्तहीनो यधोरगः ॥
 नित्यं नैवेद्यमोजीय धायको वृत्रघाहकः । शूद्राग्रभोजी विप्रश्च चिन्तहीनो यधोरगः ॥
 शयदाही च शूद्राणां यो विप्रो वृत्रघ्नीपतिः । शूद्राणां गुरुकारश्च चिन्तहीनो यधोरगः ॥
 शूद्राणाञ्च जनिप्राहो शूद्रयात्री च यो द्विजः । भूमिजीयो मरिजीवी चिन्तहीनो यधोरगः ॥
 यो विप्रोऽप्याराग्रभोजी ऋतुश्रानाग्रभोजकः । मगजीवी पादुङ्गिको चिन्तहीनो यधोरगः ॥
 यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी । यो चित्राविक्रयी भूय चिन्तहीनो यधोरगः ॥
 गुर्योऽप्येव हिर्मोर्जी मन्थमोजी यो द्विजः । मित्रापूजादिरहितो चिन्तहीनो यधोरगः ॥
 सत्यं पूजाविधिप्रमम् । नामुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमजीवितम् ॥

दत्त्वा सयं नृपेन्द्राय प्रपद्यी स्वान्तवं मुनीः । राजा सन्मुख्य सावित्रीं ददर्श वरमाय न
नारद उवाच ।

किं वा ध्यानञ्च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानञ्चम् ।

स्तोत्रमन्त्रञ्च किं दत्त्वा प्रपद्यी स पराशरः ॥ ४० ॥

नृपः केन विधानेन संपूज्य धूमिमलनम् । यत्तु किं वा संप्राप यद् स्तोऽप्ययमिदं नृपः ॥
नारायण उवाच ।

उपैष्ठे कृष्णप्रयोदश्यां शुद्धे कालेय संवनः । प्रथमेय चतुर्दश्यां धर्मी भक्त्या समाचरेत् ।
प्रथमे चतुर्दशाष्टके द्विसप्तकालं नृपम् । दत्त्वा द्विसप्तकालं पुष्पधूपदिकं तथा ॥ ४३ ॥
यत्नं यज्ञोपवीतञ्च मोक्षञ्च विधिपूर्वकम् । संस्थाप्य मङ्गलार्चनं वन्द्यागारमन्यितम् ।
गणेशञ्च दिनेशञ्च यद्वि विष्णुं त्रिपदं त्रिभुवम् । संपूज्य पूजयेद्विष्टं घटे मायादिने मुने ॥
अष्टगुल्यानञ्च नापि पाशोर्नामाञ्च न्दिनेयवम् । स्तोत्रं पूजाविधानञ्च मन्त्रञ्च मन्त्रं कामदम् ।
ममकाञ्चनयणां गीं ज्वालयन्तीं प्रपन्नेज्जना । प्रीत्यमया ह्यहमासं पश्येत् स तद्वत्प्रमत्तमाम् ॥ ४७ ॥
देवदास्यप्रानम्रायसीं स्थाभूजमूर्तिनाम् । यद्विगुणं गुणधारां भक्तानुग्रहकानराम् ॥ ४८ ॥
गुणेशं मुक्तिदाशालां कान्ताञ्च जगतां विभुः । सर्वसत्त्वस्यैकपाशप्रदात्री सर्वसम्पदाय ।
पेशाभिष्टानुर्देवीञ्च पेशावन्मन्त्रविर्णाम् । पेशाञ्चान्यत्रपाञ्च भजे त्वो देवमात्मन् ॥ ५० ॥
ध्यात्वा ध्यानेन ध्यानेन दृष्ट्वा पुष्पं न्यमूर्दनि । पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवमायहविदुमती ।
दृष्ट्वा चोद्देशोपगारं देवतामन्त्रपूर्वकम् । स्तुतुञ्च स्तुतुञ्च प्रपन्ने देवं देवीं विधानतः ॥
भातनं पापमर्षं च ध्यात्वा ध्यानुत्तेजसम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं तापकृतं शीतलं जलम् ॥
ध्यानं भूतलं मातलं गन्धमाघमर्णापकम् । मनोहरं गुणगञ्जं देवानन्दनानि चोद्दिशः ॥ ५४ ॥
दातव्या विष्णवे ईशानि निमिषमेषा । देवाणां पुण्यदम्भं भया निन्दं निवेदितम् ।
तीर्थोद्दकञ्च पापञ्च पुण्यं च प्रीतिदं महत् । पूजाभूतं शुद्धञ्च भया भक्त्या निवेदितम् ॥
यवित्रकपमर्षञ्च दूषां पुष्पाश्चान्वितम् । पुण्यं च भक्त्योपायं भया भक्त्या निवेदितम् ॥
गुणगन्धिधारां च देहसौन्दर्यं चान्वितम् । भयानि वेदितेजसं ध्यात्वा च भक्तिगुणतः ॥
मन्त्रपापलाभं च देहसौन्दर्यं चान्वितम् । गुणगन्धिधूपं शुभं च भया भक्त्या निवेदितम् ॥

गन्धद्रव्योद्भूतगुण्यः प्रीतिर्दोषिष्यगन्धः । मयानिरेदिगो मन्त्राभूतोऽयं प्रतिगृह्यताम्
जगतां श्रोतृणां यन्मन्त्रं दीनिकागन्धम् । अन्धकारार्थमयीजं मया तुभ्यं निवेदिताम्
मुष्टिर्दं पुष्टिश्चैव प्रीतिर्दं धुष्टिनामानम् । पुण्यर्दं म्यादुष्टान्य मैथेयं प्रति गृह्यताम्
ताम्बूलद्रव्यं चरं रथं कपूंगारिसुगामिताम् । मुष्टिर्दं पुष्टिश्चैव मया मन्त्रा निवेदिता
सुरागन्धं घामिन्य पिपासानाहाकारणम् । जगतां जीयन्त्य जीयन् प्रतिगृह्यताम्
देहशोभास्यरूपज्ञ सप्तशोभाविषर्जनम् । कर्णांमज्जन्य कृमिजं यमनं प्रतिगृह्यताम्
काञ्चनादिनिर्माणं धीयुक्तं धीकरं सदा । सुगन्धं पुण्यर्दं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्
मानापुष्पविनिर्माणं बहुभाससमन्वितम् । प्रीतिर्दं पुण्यर्दश्चैव माल्यञ्च प्रतिगृह्यताम्
सर्वमङ्गलद्रव्यं सर्वमङ्गलद्रो घटः । पुण्यप्रदं गन्धाद्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम् ॥३॥
शुद्धं शुद्धिप्रदश्चैव शुद्धानां प्रीतिर्दं महत् । रथमाचमनीयञ्च मया दत्तं प्रगृह्यताम्
रत्नासारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनमयुतम् । सुगन्धं पुण्यर्दश्चैव सुनल्यं प्रतिगृह्यताम् ॥४॥
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम् । पल्लस्वरूपं पल्लर्दं पल्लञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥५॥
सिन्दूरश्च चरं रथं मालशोभाविषर्जनम् । पूर्णं भूषणानाञ्च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्
विशुद्धिप्रण्यसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम् । पवित्रं वेदमन्त्रेण यप्रसूत्रञ्च गृह्यताम् ॥
द्रव्याप्येतानि मूलेनदस्त्वास्तोत्रपत्रे सुधीः । ततः प्रणम्य विप्राय प्रतीदद्याच्चक्षिणा
सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं यद्विजायान्तमेव च । लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदु
मध्यन्दिनोक्तं स्तोत्रञ्च सर्ववाञ्छाफलप्रदम् । विप्रजीवनरूपञ्च निबोध कथयामि ते
कृष्णेन दत्ता सावित्री गोलोके ब्रह्मणे पुरा । न याति सा तेन सादं ब्रह्मलोकञ्च नार
ब्रह्मा कृष्णाङ्गया मन्त्रा तुष्टाव वेदमातरम् । तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणश्चक्रे स
ब्रह्मोवाच ।

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि । नारायणात् समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि । द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि । सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि ।
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे । सुष्टे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥

यमस्तजीवपुरुषं वृद्धाङ्गुष्ठसमं मुने । गृहीत्वा गमनञ्चक्रे तत्पश्चान् प्रययौ सती ।
पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः । उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ।
यम उवाच ।

अहोक्रयासिसायित्रि गृहीत्वा मानुषीतनुम् । यदियास्यासिकान्तेन सादं देहं तदात्यज
गन्तुं मर्त्येण शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चमीतिकम् । देहञ्च यमलोकञ्च नश्यरं नश्यरः सदा ।
भर्तुस्ते कालपूर्णञ्च यमूष भारते सति । सकर्मफलभोगार्थं सत्ययान् याति मद्गृहम् ।
कर्मणाजायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते । सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते ॥१॥
कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा । स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादि रहितो भवेत् ।
स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्भुवम् । लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादियतुष्यम् ।
कर्मणा ब्राह्मणत्वञ्च मुसित्यञ्च स्वकर्मणा । सुरत्वञ्च मनुत्वञ्च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः ॥
कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं तपस्यत्वञ्च कर्मणा । कर्मणा क्षत्रियत्वञ्च वैश्यत्वञ्च स्वकर्मणा ।
कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्यजत्यं स्वकर्मणा ॥ २२ ॥

स्वकर्मणा चैव च्छत्रं लभते नाग्रसंशयः । स्वकर्मणा जडमत्यं स्थापयत्यं स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणा च शैल्यं पृथ्व्यञ्च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा पशुत्वञ्च पक्षित्वञ्च स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणा भुदजन्तुः कृमिश्च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा च सर्पत्यं गन्धर्वत्यं स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणाराक्षस्यं किन्नरत्यं स्वकर्मणा । स्वकर्मणा च यक्षत्यं कुम्भाण्डत्यं स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणा च प्रेत्यं पैताल्यं स्वकर्मणा । भूतत्वञ्च पिशाच्यं डाकिनीत्यं स्वकर्मणा ।
वैतत्यं दानव्यञ्च असुरत्यं स्वकर्मणा । कर्मणा पुण्ययान् जीवो महापापीत्यकर्मणा ।
कर्मणा पुन्दरीं शरीरामहारोगीत्यकर्मणा । कर्मणा चान्यः काण्ड्यं कुत्सित्यन्यकर्मणा ।
कर्मणा च तर्कपान्तिर्जीवाश्च स्वकर्मणा । कर्मणा शत्रुलोकञ्च शूल्यलोकं स्वकर्मणा ।
कर्मणा चन्द्रलोकञ्च बह्मलोकं स्वकर्मणा । कर्मणा वायुलोकञ्च कर्मणा यरुणलोकम् ।
तथायै बुधलोकञ्च मरुतालि स्वकर्मणा । कर्मणा ध्रुवलोकञ्च शिवालोकं स्वकर्मणा ।
याति मक्षल्लोकञ्च सन्यलोकं स्वकर्मणा । जनलोकं तदालोकं महर्लोकं स्वकर्मणा ।
स्वकर्मणा च पानालं ब्रह्मलोकं स्वकर्मणा । कर्मणा भार्गवपुत्रं सर्वजितपरं परम् ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः]

ॐ कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नः ॐ

२०५

कर्मणायाति वैकुण्ठगोलोकञ्च निरामयम् । कर्मणा चिरजीवी च क्षणायुश्चस्यकर्मणा
कर्मणाकोटिकल्यायुः क्षीणायुश्चस्यकर्मणा । जीवसञ्चारमात्रायुर्मममृत्युःस्यकर्मणा ॥
इत्येवं कथितं सर्वं मया तत्त्वञ्च सुन्दरि । कर्मणाते मृतो भर्ता गच्छ यस्ते यथा सुखम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रवृत्तिखण्डे नारायण-नारदसंवादे कर्मविपाके कर्मणः
सर्वहेतुप्रदर्शनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

कर्मविपाके सावित्री प्रश्नः ।

श्रीनारायण उवाच ।

यमस्य यचनं धृत्वा सावित्री च पन्थिना । मुष्टाव परया भक्त्या लभुयाच्च मनन्मयी ॥
सावित्र्युवाच ।

विपाकमयाशुभं धर्मराजविद्याऽशुभं नृणाम् । कर्म निम्नलयत्येष केन पासाधवोजनाः ।

कर्मणा पीतकृपाः कोपा कर्मफलप्रदः । हि कर्म उद्धयेन् केन कोपा तडेनुरेपय ॥

कोपाकर्मफलभुङ्क्ते कोपानिर्लिप्त एव च । कोपादेर्हीनः प्रदेदः कोपात्र कर्मफलक ॥

हि विमानं मनोबुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम् ।

कर्माद्रिद्रव्याणि हि तेषां गृह्यन्ते देवताध्वजाः ॥ ५ ॥

भोक्ता भोजयिता कोपा को भोगः बाध निवृत्तिः ।

को जीवः परमात्मा कः लब्धे व्याख्यातु मर्तमि ॥ ६ ॥

यम उवाच ।

येदमपि दितं कर्म तन्मन्ये मङ्गलं वरम् । भवेद्विजन्तु यन् कर्म तदेव नृणामेव च ॥ ७ ॥

भर्तुर्वा विष्णुर्वा सद्गुरुर्वा भगवन् । कर्मनिम्नलया यन्ना एष दृग्भित्तिदा ॥
दृग्भित्तो नरो यश्च शय मुक्तः धृता धृताम् । जगन्मृत्युजगत्पापिमां कर्मनिविष्यति

मुनिः प्रियः शान्ति ! भृगुना शर्मणा ।

निर्वाणराज्यात्री म इतिमन्त्रिज्जदा मुन्याम् ॥ १० ॥

हरिभक्तिमयस्याश्रयानुक्तिरान्यन्विताः । अग्रे निर्वाणस्याश्रयानुक्तिरिति भावः ।
 कार्योपायान्तराणां अन्तर्गतं स्यात् । अन्तर्गतं अग्रे अर्थात् अग्रेः । अग्रेः ।
 सोऽपि तदेवमुक्तं । अग्रे अग्रे अग्रे । अग्रेः । अग्रेः । अग्रेः ।
 आत्मनः प्रविष्टिर्वा अग्रे । अग्रेः । अग्रेः । अग्रेः । अग्रेः ।
 नृपिपायायुषाणां अग्रे । अग्रेः । अग्रेः । अग्रेः । अग्रेः ।

कलां भोक्ता न देही न व्याज्मा भोजयिता मया ।

मोगो विमलभेदध निरुक्तिर्मुक्तिरेव न ॥ ११ ॥

सदस्त्रोदपीतश्च धानं नानापिचं भयेत् । विद्यायां विद्यायां भेदपीतश्च कीर्तिम् ।
 बुद्धिर्विद्येयनाकृषा सा धानदीपनी धूर्ता । वागुभेदश्च प्राणाश्च बलप्राश्च देहिनाम् ।
 इन्द्रियाणाञ्च प्रथमं इन्द्रियाणां समुद्रकम् । प्रेक्ष्य कर्मणाञ्चैव दुर्निवार्यञ्च देहिनाम् ।

अनिरूप्यमहृद्यश्च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम् ॥ २० ॥

ज्ञानरूपमदृश्यञ्च ज्ञानमदं मनः स्मृतम् ॥ २० ॥
 श्रोत्रं ध्यानं घ्राणं स्पर्शगन्धिद्वयमिन्द्रियम् । ॥ द्विनामद्वयं प्रेरकं सर्वकर्मणाम् ।
 त्रिपुरं मित्रं सुखं दुःखं सदा । सूर्यो वायुश्च पृथिवी चाण्वाद्या दैवताः स्मृत्यः
 प्राण देहादिभूतं यो हि स जीवः पञ्चार्तिः । परमात्मा परब्रह्म निर्गुणः प्रज्ञेः स
 कारणं कारणानाञ्च श्रीरूपो भगवान् स्वयम् । इत्येवं कथितं सर्वमयापूर्यमाणम्
 ज्ञानिनां ज्ञानरूपञ्च गच्छ धत्से यथा सुखम् ॥ २१ ॥

साविश्रुवाच ।

त्यक्त्या ह यामि कान्तं वा त्वां वा धानार्णवं बुधम् ।

यद् यत् करोमि प्रथञ्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥ २६ ॥

कां कां योर्निपाति जीवः कर्मणा केन वा यम । केन वा कर्मणा ह्यगं केन वा नरकपित
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्मवेदरैः । केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणः । केन वा कर्मणा दुःखी केन वा कर्मणा सुखी

पङ्क्तिशोऽध्यायः] • कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् •

भङ्गहीनश्च वरणश्च पथिरः केन कर्मणा । अन्धो वा कृपणो वापि प्रमत्तः केन क
क्षितोऽतिलुब्धकश्चैव केन वा नरघातकः । केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्ष्यादिवृत्त
केन वा प्रहणयश्च तपस्विन्यश्च केन वा । स्वर्गमोगादिकं केन वैकुण्ठं केन व
शोलोकं केन वा प्रहृद् सर्वोत्कृष्टं निरामयम् । नरकं वा कतिविधं किंस्त्वं नामपि
को वा कः नरकं याति कियन्तंनेषु तिष्ठति । पापिनां कर्मणा केनकोपाध्याधिःप्र
ययुयदन्ति यथा पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाविषयं महापुराणे प्रकृतिगण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्रीयुपाख्य
यमसावित्रीसंवादे कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नो नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

पङ्क्तिशोऽध्यायः

कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् ।

नारायण उवाच ।

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः । प्रहस्य पक्ष्ममारेभे कर्मपाकञ्च जी
यम उवाच ।

कन्या द्वादशवर्षीया वस्ते स्वं वपस्माशुना । ज्ञानान्ते पूर्वविदुषां योगितां ज्ञानिन
सावित्रीउरुदनेन स्वं सावित्रीकन्ता मनी । प्राप्ता पुरा भूभृता न तस्या तत्परम
यथा धीः धीपते कोदे भवन्ती न मयोरस्ति । यथासायान्ध्राहन्तेसावित्री प्रह
धर्मोरस्ति यथा भूतिः शम्भवा भर्ता यथा । कर्मे देवहृती न मरिष्ठेऽरुणपती
भर्तिनाकश्यवे वापि यथाहन्ता न गीतमे । यथा शर्मा महेन्द्रे न यथा मन्द्रेरते
यथा वृत्तिः कामदेवे यथा व्याहृद् दूनरात्रे । यथा स्वया न विदुषु यथा संज्ञादि
परणानी न चरुले यज्ञे न दक्षिणा यथा । यथा घरा घरादे न देवमेना न का

सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च भव सत्यवति प्रिये । इति तुभ्यं धरं दत्तमपरञ्च यदी
धृणु देवि महाभागो सर्वं दास्यामि निश्चितम् ।

सावित्र्युवाच ।

सत्यवदीरसेनैव पुत्राणां शतकं मम । भविष्यति महाभाग धरमेतद् मदीप्सितम्
मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च घञ्जुपी । राज्यलाभो भवत्येव धरमेवं मदीप्सि-
धन्ते सत्यवता साह्रं दास्यामि हरिमन्दिरम् । समतीते लक्षरूपं देहीमं मे जगत-
जीवकर्मविपाकञ्च श्रोतुं कौतूहलञ्च मे । विश्वविस्तारवीजञ्च तन्मे व्याख्यातुमि-

यम उवाच ।

भविष्यति महासाधिव सर्वं मानसिकं तव । जीवकर्मविपाकञ्च कथयामि निरा-
शुभानाभशुभानाञ्च कर्मणां जन्म भारते । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते ज-
सुरादैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । नरश्च कर्मजनको न सर्वेसमजीवि-
विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वेयोनिषु । विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वेयोनि-
शुभाशुभं भुञ्जतेच कर्म पूर्वार्जितं परम् । शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव
कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषुच । कर्म निर्मूलने मुक्तिः सा बोक्ता द्विविधा
निर्याणरूपास्तेषां कृष्णस्य परमात्मनः । रोगी भकर्मणा जीवश्चरोगी शुभकर्म-

दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम् ।

अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा ॥ २१ ॥

सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेनकर्मणा । सामान्यंकथितं सर्वं विशेषं शृणुमुन्मा-

सुदुर्लभं सुमोग्यञ्च पुराणे च धृतिष्वपि ॥ २२ ॥

दुर्लभा मानवोजातिः सर्वजातिषु भारते । सर्वाम्योव्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्म-
विष्णुभक्तोद्विजश्चैवगरीयान् भारतेततः । निष्कामश्च सकामश्च चैप्स्योद्विविधः स-
रकामश्च प्रपानश्च निष्कामो मनश्चैव । कर्ममोगी सकामश्च निष्कामो निररश्च

१ इति यानि देहं त्यक्त्वा च पदं विष्णोर्निरामयम् ।

पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥ २३ ॥

येसेयन्तेचद्विभुजं कृष्णमात्मानमीश्वरम् । गोलोकंयान्तिने भक्ता दिव्यरूपविधारिणः ।
 येच नारायणं भक्ताः सेयन्तेच चतुर्भुजम् । वैकुण्ठं यान्तिने सर्वे दिव्यरूपविधारिणः ।
 सयामिनो वैष्णवाश्च गत्या वैकुण्ठमेव च । भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु ।
 फालेननेच निष्कामाभिविष्यन्तिब्रमेण च । भक्तिश्च निर्मलानुद्भितेभ्योदायतिनिश्चितम् ।
 ब्राह्मणाद्वैष्णवादन्ये सयामाः सर्वजन्मसु । ननेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिपिर्जिता ।
 तीर्थांधिता द्विजायेच तपस्यानिरताः सति । येयान्ति ब्रह्मलोकश्च पुनरायान्तिभारतम् ।
 स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारते । व्रजन्ति सूर्यलोकंते पुनरायान्ति भारतम् ।
 स्वधर्मनिरताविप्राःशैवाःशाक्ताश्चगाणपाः । तेयान्तिशिवलोकश्चपुनरायान्तिभारतम् ॥
 येषिप्रा अन्यदेवेष्टाः स्वधर्मनिरताः सति । तेगत्या शङ्खलोकश्च पुनरायान्ति भारतम् ।
 हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मरहिताद्विजाः । तेऽपियान्ति हरैर्लोकंक्रमाद्भक्तिबलाद्दहो ।
 स्वधर्मरहिताविप्रा देवान्यसेविनः सदा । स्रष्टाचाराध्यालाधने यान्ति नरकंधुचम् ॥
 स्वधर्मनिरताश्चैव घर्णाधत्वार एव च । भवन्त्येव शुभस्येव कर्मणःफलभागिनः ॥
 स्वधर्मरहितास्ते च नरकं यान्तिहि ध्रुवम् । भारतेवमभवन्त्येव कर्मणः फलभागिनः ॥
 स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च । कन्यां ददाति विप्राय चन्द्रलोकं व्रजन्ति ते ।
 वसन्ति तत्र ते साध्य यावद्विद्राधनुर्दश । सालङ्कृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते ।
 सयामा यान्ति तद्भुक्तं न निष्कामाश्च वैष्णवाः ।
 ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसन्धानवर्जिताः ॥ ४३ ॥
 गव्यश्चरजतं भाष्यंयस्त्रं शस्त्रंफलं जलम् । ये ददत्येव विप्रेभ्यस्त्वलोकं हि व्रजन्ति च ॥
 वसन्ति ते च तद्भुक्तं यावन्मन्यतरं सति । कालश्च सुखिरं घासं कुर्वन्ति तत्रतेजनाः ।
 यो ददाति सुवर्णं च गाश्च ताम्रादिकंसति । ते यान्ति सूर्यलोकश्च शुचये ब्राह्मणाय च ॥
 वसन्ति तत्रते लोके वर्षाणमयुतं सति । विपुले च विरं घासं कुर्वन्ति च निरामयाः ॥
 ददाति भूमि विप्रेभ्यो धान्यानि विपुलानि च । सयाति विष्णुलोकश्च श्वेतद्वीपमनोहरम् ॥
 तत्रैव निवसत्येव यावच्छन्द्रदिवाकरी । विपुलं विपुले घासं करोति पुण्यवान्सति ॥ ४६ ॥
 एवं ददाति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम् । ते यान्ति सुरलोकश्च चिरंतनभवन्ति ते ॥

गृहेणुप्रमाणार्थं दाने पुण्यदिने यदि । विपुलं विपुले धानं कुर्वन्ति मातङ्गः सति ॥१॥
 यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः । स याति तस्य लोकश्च रेणुमानाद्भयम् ॥
 सौधे चतुर्गुणं पुण्यं पूर्वं शतगुणं फलम् । प्रकृष्टेऽष्टगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भाः ॥
 यो ददाति तद्गामश्च सर्वभूताय भारते । स याति जनलोकाश्च धर्माणामयुतं सति ॥१॥
 धान्यो फलं शतगुणं प्राप्नोति मानवमनसः । तस्या मेतुप्रदानेन तद्गामस्य फलं लभेत् ॥
 धनुर्धनुःसहस्रेण दीप्यं मानेन निभिनम् । शृणावा तावर्णप्रभोसायार्णवनिर्गतिना ॥
 दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते । फलं ददाति द्विगुण्यदिसालद्वैतामयेत् ॥
 तत्फलञ्च तद्गामे च पट्टोद्धारेणतन् फलम् । धान्याभ्यपट्टोद्धारेणवापीमुत्पन्नं लभेत् ॥
 अथत्यवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठाञ्च करोति यः । स याति तप्तसौलोकां धर्माणामयुतं पम् ॥
 पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये । स वनेषु धुयन्लोकेष्वधर्माणामयुतं ध्रुवम् ॥
 यो ददाति विमानञ्च विष्णवे भारते सति । विष्णुलोकेष्वसेन्सोऽपि यावन्मन्त्रन्तरं पम् ॥
 विप्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम् । रथासं शिविकादानं फलमेव लभेद्भुवम् ॥
 यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमन्दिरम् । विष्णुलोकेष्वसेन्सोऽपि यावन्मन्त्रन्तरं पम् ॥
 राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिप्रते । धर्माणामयुतं सोऽपि शशलोके महीपते ॥१॥
 ब्राह्मणेभ्योऽपि देवेभ्यो दाने समफलं लभेत् । यच्च दत्तं हितद्वोक्तुर्न दत्तं नोपतिष्ठते ॥१॥
 भुङ्क्त्वा स्वर्गादिकं सौख्यं पुरायान्ति च भारते । लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैषोत्तमादिषु ॥
 भारते पुण्यधानं विप्रो भुङ्क्त्वा स्वर्गादिकं परम् । पुनः सोऽपि मये द्विप्रः न पुनः क्षत्रियादयः ॥
 क्षत्रियो वापि वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च । तपसा ब्राह्मणत्वं ज्ञानप्राप्नोति श्रुतौ भुङ्क्ते ॥
 स्वधर्मरहिता विप्रानानाथो निर्ब्रजन्ति च । भुङ्क्त्वा च कर्मभोगश्च विप्रयोर्नि लभेत् पुनः ॥
 माभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥१॥
 अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । दैवतीर्थं सहायेन कायव्यूहेन शुष्यति ॥१॥

एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७२ ॥

महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यानं
 कर्मविवाके कर्मानुरूपस्यानगमनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः

शुभकर्मविपाकप्रकथनम् ।

सावित्र्युवाच ।

प्रयान्ति स्वर्गमन्यञ्च येन येनेव कर्मणा । मानवाः पुण्यवन्तश्चतस्मेत्याख्यातुमर्हसि ॥
यम उवाच ।

अन्नदानञ्च विप्राय यः करोति च भारते । अन्नप्रमाणवर्षञ्च शङ्खलोके महीयते ॥२॥
अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।

नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥३॥

देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि ।

महीयते षड्विलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्यिनीम् । तद्गौममाणवर्षञ्च वैकुण्ठे च महीयते ॥५॥
यतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् । दानं नारायणक्षेत्रेफलंकोटिगुणं भवेत् ॥६॥

यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् । वर्षाणामयुतञ्चैव चन्द्रलोके महीयते ॥७॥
यश्च पयस्यिनीदानं करोति ब्राह्मणाय च । तद्गौममाणवर्षञ्च वैकुण्ठे च महीयते ॥ ८ ॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवलकम् । महीयते च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरी ॥
यो ददाति ब्राह्मणाय छत्रञ्च सुमनोहरम् । वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥

ये प्राय पादुकायुग्मं यो ददाति च भारते । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतंसति ॥११॥
यो ददाति ब्राह्मणाय शय्यां दिव्यां मनोहराम् । महीयतेचन्द्रलोकेयावच्चन्द्रदिवाकरी ॥

यो ददाति प्रदीपञ्च देवाय ब्राह्मणाय च । यावन्मन्वन्तरं सोऽपि ब्रह्मलोके महीयते ॥
यः प्राप्य मानवीं योनिं चक्षुष्मांश्च भवेद्दुधुयम् । न्यातियमलोकञ्चतेनपुण्येन सुन्दरि ॥

करोति गजदानञ्च यो हि विप्राय भारते । यावदिन्द्रादिदेवभ्यलोकेचादर्शने वसेत् ॥
भारते योऽश्वदानञ्च करोति ब्राह्मणाय च । मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राद्यनुर्दशः ॥

दद्यात् शिविकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च । महीयतेविष्णुलोकेयावन्मन्वन्तरंसति ॥

यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥
 धान्याचलं यो ददाति ब्राह्मणाय च भारते । सच ग्रान्यप्रमाणान्द्विष्णुलोके महीयते ॥
 ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी । दाता गृह्णाता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनी ॥
 सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः । स एव चिरजीवी ॥ ततो मृत्युः पलायते ॥ २१ ॥
 यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेद्दरे । पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २२ ॥
 इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम् । निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्यन्तरायधि ॥
 फलमुत्तरफालान्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत् । कल्पान्तर्जीवांसमयेदित्याह फलमलोद्भवः ॥
 तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते । तिलप्रमाणवर्षञ्च मोदते विष्णुमन्दिरे ॥ २५ ॥
 ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी । साधपात्रस्थशनेन द्विगुणञ्च सफलमेव ॥
 सालझुताञ्च भोग्याञ्च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम् । यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम् ॥
 महीयते चन्द्रलोके यावद्दिन्द्राध्वतुर्दश । तत्र स्वर्वश्या साहसं मोदते च दिवानिशम् ॥
 ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं सति । दिवानिशं कौतुकेन सौर्वश्या सह मोदते ॥

ततो जन्मसहस्रञ्च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम् ।

सती सौभाग्ययुक्ताञ्च कोमलीं प्रियवर्तिनीम् ॥ ३० ॥

ददाति सफलं पृथुं ब्राह्मणाय च यो नरः । फलप्रमाणवर्षञ्च शक्रलोके महीयते ॥ ३१ ॥
 पुनः स्वयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् । सख्यद्वानाञ्च वृक्षानां सदनञ्च प्रशंसितम् ॥
 केवलं फलदानञ्च ब्राह्मणाय ददाति यः । सुचिरं स्वर्गं वासञ्च कृत्वा याति च भारतम् ॥
 नानाद्रव्यममायुर्न नानाशाम्यसमन्वितम् । ददानियध्विप्राय भारते विपुलं पुष्टम् ॥ ३४ ॥
 कुप्येन्द्रोके पसति स च मन्यन्तरायधि । ततः स्वयोनिं संप्राप्य महाधनपानमयेव ॥
 यो जनः शम्भुमयुक्तो भूमिश्चरचिरांसति । ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यशेषेण वा सति ॥
 महीयते सर्वैकुण्ठे मन्यन्तश्च ध्रुवम् । पुनः स्वयोनिं संप्राप्य महाधनपानमयेव ॥
 न न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् । धीमोश्च घनवांश्चैव पुत्रपांश्च प्रजेभ्यः ॥
 सत्रञ्च श्रद्धाञ्च ग्रामं दद्याद्द्विजानये । लक्षमन्यन्तरं चैव वैकुण्ठे न महीयते ॥ ३८ ॥
 ततोऽपि संप्राप्य ग्रामं दद्याद्द्विजानये । लक्षमन्यन्तरं चैव वैकुण्ठे न महीयते ॥ ३९ ॥

सप्रज्ञं सुप्रकृष्टञ्च पञ्चशस्त्रसमन्वितम् । नानापुष्करिणीवृक्षैः फलभोगसमन्वितम् ॥
 नगरं यच्च विप्राय ददाति भारते भुवि । महीयते स वैकुण्ठे दशलक्षेन्द्रकालकम् ॥४२॥
 पुनः स्वयोर्नि संप्राप्य राजेन्द्रोभारतेमवेत् । नगराणाञ्च नियुतं लभते नात्र संशयः ॥
 धरा तं न जहात्येष जन्मनां नियुतं ध्रुवम् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तो भवेदेवमहीतले ॥४४॥
 नगराणाञ्च शतकं देशं यो हि द्विजायते । सुप्रकृष्टप्रजायुक्तं ददाति भक्तिपूर्वकम् ॥४५॥
 वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम् । महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्यन्तराधधि ॥
 पुनः स्वयोर्नि संप्राप्य जम्बुद्वीपपतिर्भवेत् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तो यथाशक्रस्तथा भुवि ॥
 मही तं न जहात्येष जन्मनां कोटिमेव च । कल्पान्तजरीवी स भवेद्वाजराजेभरोमहान् ॥
 स्वाधिकारं समग्रञ्च यो ददाति द्विजायते । चतुर्गुणं फलं चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥
 जम्बुद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणायपतिप्रते । फलं शतगुणञ्चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥५०॥
 सतद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानुसेविनः । सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वोपवासकारिणः ॥५१॥
 सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्देश्वरस्य च । भस्त्रयेव पुनरावृत्तिं न भक्तस्य हरिहो ॥५२॥

भस्त्रेण्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति वैष्णवाः सति ।

निघसन्ति हि गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥५३॥

विष्णुमन्त्रोपासकश्च पिहाय मानवीं तनुम् । विभक्तिविष्यरूपञ्च जन्ममृत्युजरापहम् ॥
 लब्ध्वाविष्णोश्चैवैवविष्णुसेवां करोति च । सचपश्यतिगोलोकेऽसंख्यं प्राकृतं ध्रुवम् ॥
 नश्यन्तिदेवाः सिद्धाश्च विभ्रानि निपिलानि च । कृष्णभक्तान्तश्च नित्यं जन्ममृत्युजराहराः ॥
 कार्तिके तुलसीदात्रं करोतिदृश्ये च यः । युगं पञ्चप्रमाणञ्च मोदते हरिमन्दिरे ॥५७॥
 पुनः स्वयोर्निसंप्राप्य हरिभक्तिं लभेत् ध्रुवम् । सुखी च विराजोवीच स भवेद्भारते भुवि ॥
 पुनः प्रदीपं हरये कार्तिके यो ददाति च । पञ्चप्रमाणवर्षञ्च मोदते हरिमन्दिरे ॥ ५८ ॥

पुनः स्वयोर्नि संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेत् ध्रुवम् ।

महाभक्तव्यः स भवेत्सुखमाधैव दीतिवान् ॥ ६० ॥

माथे यः स्नाति गङ्गापारमरुणोदयकालतः । युगपद्विसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥६१॥
 पुनः स्वयोर्नि संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेद्भुवम् । जितेन्द्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि ॥

माघे यः श्रान्तिं गङ्गायां प्रयागे मासतोदये । वैकुण्ठेऽमोदनेऽमोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि ॥
 पुनः स्वयोनिं संप्राप्य पिण्डमन्त्रं लभेत् ध्रुवम् । सप्तमन्वन्तरानुविहन् पुनर्गतिहरिः पदम् ।
 मासितं तन् पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठास्न महीगते । करोति हृदि शान्त्यञ्जल्यमाश्रयमप्यन्य ॥
 निन्यध्यायी च गङ्गायां ॥ पूजः सूर्यवद् भुवि ।

पदे पदेऽप्रमेयस्य लभने निश्चिनं पदम् ॥ ६६ ॥

तार्येष पादजम्बा स्वयःपूजा यमुन्धरा । मोदते न न वैकुण्ठे वायव्यान्त्रदिवाकर्त्त ॥
 पुनः स्वयोनिं संप्राप्य तपस्वीप्रयोगेभवेत् । स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्चतुर्जितेन्द्रियः ॥
 मीनपर्वतयोर्मध्ये मादन्तगतिं मास्यते । भारते यो द्वादशेव जन्मेव सुवामिनम् ॥ ६७ ॥
 मोदते ॥ च वैकुण्ठे वायव्यदिन्द्राधनुर्दशः । पुनः स्वयोनिं संप्राप्य मुनीनिष्कपदो भवेत् ॥
 पैशात्ये हरये भक्त्या यो द्वादशे च चन्दमम् । युगाष्टिसहस्राणि मोदते पिण्डमन्दिरे ॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य कथयाम्भु मुनी भवेत् ॥ ७१ ॥

पैशात्ये शक्तुदानञ्च यः करोति द्विजातये । शत्रूरेणुप्रमाणाद्धं मोदते पिण्डमन्दिरे ॥ ७२ ॥
 करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मरुनात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
 वैकुण्ठे मोदते सोऽपि वायव्यदिन्द्राधनुर्दशः । पुनः स्वयोनिं संप्राप्य कृष्णभक्तिलभेत् ध्रुवम् ।
 शैव भारते धर्मे शिवरात्रिं करोति यः । मोदते शिवलोके च सप्तमन्वन्तरावधि ॥ ७५ ॥
 शिवाय शिवरात्री च विन्यपत्रं ददाति यः । पत्रप्रमाणञ्च युगं मोदते शिवमन्दिरे ।

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ।

विद्यावान् पुत्रवान् धीमान् प्रजावान् भूमिवान् भवेत् ॥ ७७ ॥

चैत्रमासेऽथवा माघे शङ्करयोऽर्चयेद्भुवती । करोति नर्तनं भक्त्या क्षेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥
 मासं वाऽप्यर्द्धमासं वा दशसप्तदिनानि वा । दिनमानं युगं सोऽपि शिवलोके महीयते ॥
 आरामनयमीं यो हि करोति भारते नरः । सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदते पिण्डमन्दिरे ॥ ८० ॥
 पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रामभक्तिलभेद्भुवम् । जितेन्द्रियाणां प्रचरो महाधर्मात्मिको भवेत् ॥

महापूजां प्रवृत्तेर्यः करोति च । महिषैश्छागलेर्मपैरिक्षुकुम्भाण्डकैस्तथा ॥

धूपदीपादिमिस्तथा । नृत्यगीतादिमिर्घादैर्नानाकौतुकमङ्गलैः ॥ ८३ ॥

शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि । पुनःस्वयोर्निसंप्राप्य बुद्धिश्च निर्मलालमेत् ॥
अबलां त्रियमप्नोति पुत्रपौत्रादिवर्द्धनीम् । महाप्रभावयुक्तश्च गजधाजिसमन्वितः ॥

राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः ॥८५॥

भाद्रशुक्लाष्टमी प्राप्य महालक्ष्मीञ्च योऽर्चयेत् ॥ ८६ ॥

नित्यं भक्त्या पञ्चमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते । इत्थातस्व्यप्रकृष्टानि चोपचाराणि योऽङ्गशः ॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावच्चन्द्रदिवाकरी । पुनःस्वयोर्निसंप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥
कार्तिकीपूर्णिमायाञ्च इत्थातुरासमण्डलम् । गोपानां शतकं कृत्वा गोपानां शतकं तथा ॥
शिलायां प्रतिमायां वा क्षीरकृष्णराघया सह । भारते पूजयेद् इत्थातुरोपचाराणि योऽङ्गशः ॥
गोलोके च वसेत् सोऽपि यावद्द्वयैव ब्रह्मणो वयः । भारते पुनरागत्य हरि मर्किलमेद्बुधम् ॥
क्रमेण सुहृदां भक्तिं लब्ध्वा मग्नं हरेरपि । देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयातिसः ॥
तत्र कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत् । पुनस्तत्पतनं नास्ति जरा मृत्युहरो महान् ॥
शुक्लां वाऽप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीञ्च यः । वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावद्द्वयैव ब्रह्मणो वयः ॥
भारते पुनरागत्य हविर्भक्तिं लभेद्बुधम् । पुनर्याति च वैकुण्ठं न तस्य पतनं भवेत् ॥८५॥
भाद्रे शुक्ले च द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः । पण्डितैः सह ब्रह्मणि शकलोके महीयते ॥८६॥
रविचारेऽर्कसंक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षतः । सम्पूज्यार्कं हविष्याग्रयः करोति च भारते ॥
महीयते सोऽर्कलोके यावच्चन्द्रदिवाकरी । भारते पुनरागत्य चारोगीध्रीयुतो भवेत् ॥
ज्येष्ठशुक्लचतुर्विंश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत् । महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि ॥८७॥
पुनर्महीं समागत्य धीमानतुल्यविभ्रमः । विपरीतं भवेत्सोऽपि ज्ञानपानसम्पदायुतः ॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेद्बुधः सरस्वतीम् । संयतो भक्तितो दस्याचोपचाराणि योऽङ्गशः ॥
महीयते स वैकुण्ठे यावद्ब्रह्म दिवानिशम् । संप्राप्य च पुनर्जन्म समवेत्कविपण्डितः ॥
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च । नित्यं जीवन्पर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते ॥
गवां लोमप्रमाणाद् द्विशुणं विष्णुमन्दिरे । मोदते हरिणा सादंकीडाकोतुकमङ्गले ॥

ततः पुनरिहागत्य विष्णुभक्तिं लभेद्बुधम् ।

ततः पुनरिहागत्य राजराजेश्वरो भवेत् । गोमांश्च पुत्रवान् विद्वान् ज्ञानवान् सर्वतः सुखी ॥

भोजयेद् यो हि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते । विप्रलोमप्रमाणार्द्धं मोदते विप्रः
 ततः पुनरिहागत्य ससुखी धनवान् भवेत् । विद्वान् सुचिरजीवी च श्रीमान् तु
 यो धृतिः वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते । युगनामप्रमाणञ्च विष्णुलोके
 ततः पुनरिहागत्य विष्णुमर्किलमेद्द्रुधुवम् । यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिदि
 शान्तां कोटिहरेयौ हि क्षेत्रे नारायणे जपेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो
 भवते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे च महीयते । लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य प
 तः शिष्यं पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गञ्च पार्थिवम् । यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिष्य
 इदं ऐणुप्रमाणार्द्धं शिवलोके महीयते । ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भार
 तलोकाञ्च योऽर्चयेन्नित्यं शिलातोयञ्च भक्षति । महीयते सर्वैकुण्ठे यावद्वैब्रह्म
 तो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं सुदुर्लभम् । महीयते विष्णुलोके न तस्य पत
 त्पांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च । कृत्वातिष्ठति वैकुण्ठे यावद्विन्द्रा
 तो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेन्द्रो भारते भवेत् । ततो मुक्तो भवेत् पश्चान् पुनर्जन्म
 तः स्नाति सर्वतीर्थेषु मुविहृत्या प्रदक्षिणम् । सच निर्वाणतां याति न तज्जन्म म
 ण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च । भ्रष्टलोमप्रमाणार्द्धं शक्रस्यार्द्धां स
 त्तुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः । नरमेधेऽश्वमेधार्द्धं गोमेधे च तदेव
 त्रिष्टो च सदर्थं च सुपुत्रं च लभेद्द्रुधुवम् । लभते लाङ्गलेष्टी च गोमेधसदृशं फलम्
 तत्समानञ्च विप्रेष्टो वृद्धियागे च सत्फलम् । पश्यसेतदर्दं च फलमाप्नोति
 त्रिशोके च त्रिशोकञ्च पञ्चादं स्वर्गमश्नुते । विजये विजयी राजा स्वर्गपद्मसम
 आपन्ये व्रजालामो भृशदिभू भृशं भवेत् । इह राजधियं लब्ध्वा पञ्चादं स्वर्ग
 प्रदियागे महेश्वर्यं स्वर्गं पद्मसमं भवेत् ।

एणुपञ्चः प्रधानञ्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि । ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासम्भार

कथ्यते यत्र दशराट्पुत्राः सति । तेषु च नन्दिनं विजाः नन्दी विप्राध्व

यमञ्च यन्त्रोत्तरः । चकार विष्णुपञ्चञ्च पुरा दशप्रजापतिः

शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा । राजसूयसहस्राणां समृद्धया च क्रतुर्भवेत् ॥
 राजसूयसहस्राणां फल्गुमासाज्जोतिनिश्चितम् । विष्णुयज्ञात्परोपशोनास्तिवेदे फल्गुप्रदः ॥
 चतुःफलान्तर्जायी च जीवन्मुक्तो भवेद्भुक् ॥ धानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेद्दिह ।
 देवानाञ्च यथा विष्णुवैष्णवानां यथा शिवः । शास्त्राणाञ्च यथा वेदाग्राभ्यामाणाञ्च ब्राह्मणाः ।
 तीर्थानाञ्च यथा गङ्गा पवित्राणञ्च वैष्णवाः । एकादशी व्रतानाञ्च पुण्याणां तु लसीयथा ॥
 तक्षत्राणां यथा चन्द्रः पक्षिणां गङ्गो यथा । यथा लोनाञ्च प्रकृतिः आधाराणां यस्तुन्दरा ॥
 शीघ्रगानाञ्चेन्द्रियाणां जञ्जलानां यथामनः । प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजेशानां प्रजापतिः ॥
 वृन्दायनं वनानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा । धीमताञ्च यथा धीश्च विदुषाञ्च सरस्वती ॥
 पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यनाञ्च राधिका । विष्णुयज्ञस्तथा धत्सेत्यनेषु च महानिति ॥
 शम्भुमेधशतेनैव शक्रत्वं लभते ध्रुवम् । सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्य पृथुरेव च ॥१३८॥
 स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । सर्वेषाञ्च व्रतानाञ्च तपसां फलमेव च ॥१३९॥
 पाठश्चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुजस्तथा । फलं धीजमिदं सर्वं मुक्तिर्लक्ष्मणसेवनम् ॥
 पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितं सात्त्विकं लक्ष्मणपादाम्बुजार्चनम् ॥१४०॥
 तद्दर्शनञ्च तद्दयानं तन्नामगुणकीर्तनम् । तत्स्तोत्रं स्मरणञ्चैव चन्दनं जप एव च ॥१४१॥
 तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च । सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति ॥१४२॥
 भज कृष्णं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं गच्छ स्वमन्दिरम् ॥
 एतत्ते कथितं सर्वं विपाकं कर्मणा नृणाम् । सर्वेप्सितं सर्वमतं परं तत्त्वप्रदं नृणाम् ॥
 इति श्रीब्रह्मसंहिता महापुराणे प्रकृतिलवणे नारायणनारदसंवादे सावित्री यमसंवादे
 सावित्र्युवाच वानि शुभकर्मविपाकप्रकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

गाशुभोजं पाशयेष्टं शूलप्रोने प्रकाश्यनम् । उल्कामुगमन्त्रकृत् वेचनं दण्डनाडनम् ॥१॥
 जालयन्धं देहनूपं दलनं शोणनद्वयम् । सर्पञ्चालामुगं त्रिमं भूमान्धं नागयेष्टनम् ॥
 कुण्डान्येतानि सावित्रिपापिनां क्रंशदानिन । नियुक्तैः किङ्कगणैरश्विनानिव सन्तम् ॥
 दण्डहस्तेः शूलहस्तेः पाशहस्तेर्मयङ्कुरैः । शक्तिहस्तेर्मदहस्तेर्मदप्रसेध दाम्पण्यैः ॥ २२॥
 तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्दुर्निवार्यैश्च सर्वतः । नेत्रमिभिर निःशङ्कस्नात्र पिङ्गलोचनैः ॥ २३॥
 योगयुक्तैः सिद्धयोगैर्नानाकारयन्त्रैः । आमन्त्रमृग्युमिदंष्ट्रैः पापिभिः सर्वजापिभिः ॥
 स्वधर्मनिरतैः शैवैः शान्तैः सौरेभ्य नागवैः । भद्रैः पुण्यरुद्धिभ्य सिद्धियोगीमिरेवच ॥
 स्वधर्मनिरतैर्वापि पितृण्यैः स्यतन्त्रकैः । यद्वद्विभ्य निःशङ्कैः स्वतन्त्रैश्च वीर्यवैः ॥
 एतत्तेकथितंसाध्वि कुण्डसंख्यानिर्गणम् । येषानियासोयन् कुण्डनियोधकप्रयामिनैः ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रवृत्तिगण्डे नारायणनारदमन्वादे सावित्र्युपाख्याने
 यमसावित्रीमन्वादे नरककुण्डसंख्यानं नामोत्तमं त्रिंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः

पापिनां नरकनिरूपणम् ।

यम उवाच ।

हरिसेवारतः शुद्धो योगी सिद्धो व्रती सति । तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं यतिः
 कटुवाचा धान्धवांश्च खलत्वेन च योनरः । दग्धान् करोति वलवान् घहिकुण्डं प्रयाति सः
 नात्र लोमप्रमाणाद्वं तत्र स्थित्वा हुताशने । पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रे दग्धस्त्रिजन्मनि
 ब्राह्मणं तृपितं भुज्यं प्रतप्तं गृहमागतम् । न भोजयति यो मूढस्ततः कुण्डं प्रयाति सः ॥
 योगमप्रमाणाद्वं स्थित्वा तत्र च दुःखितः । ततस्थले घहिकुण्डे पक्षी च सप्तजन्मसु
 धादवासरे । बह्वाणां क्षारस्त्र्योक्तं करोति यो हि मान
 क्षारकुण्डश्च सूत्रमानादमेव च । स प्रजेद्रजको योनिं सप्तजन्मसु भारते ॥ ३॥

सदत्तां परदत्तां वा ग्रहवृत्तिं हरेत्तु यः । पट्टिर्वर्षसहस्राणि विट्कुण्डञ्च प्रयाति सः ॥
 पट्टिर्वर्षसहस्राणि विट्भोजी तत्र तिष्ठति । पट्टिर्वर्षसहस्राणि विट्कुण्डमिध पुनर्भुवि ॥६॥
 परकीयतङ्गो च तङ्गमं यः करोति च । उत्सृजेद्द्वयोपेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः १०॥
 तद्रेणुमानवर्षञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति । भारते गोधिका चैव स भवेत् सप्तजन्मसु ॥११॥
 एकाकी मिष्टमश्नाति स्तेप्सुकुण्डं प्रयातिसः । पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥
 पूर्णमब्दशतञ्चैव सः प्रेतो भारते भवेत् । स्तेप्सुमूत्रगरञ्चैव पूयं भुङ्क्ते ततः शुचिः ॥
 पितरं मातरञ्चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम् । यो न पुष्पात्यनाथश्च गरुकुण्डं प्रयाति सः
 पूर्णमब्दसहस्रञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो ब्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥१५॥
 इडाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः । पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः
 मानि कानि च पापानि ग्रहाहत्यादिकानि च । इहैव लभतेचान्तेदृषिकाकुण्डमाब्रजेत् ॥
 पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो नरो भवेद् भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥१८॥
 इत्या द्रव्यञ्च विप्राय चान्यस्मै दीयते यः । सतिष्ठति यसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥
 ततो भवेत् सचाण्डालस्त्रिजन्मनिततः शुचिः । ककलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥
 ततो भवेन्मानवश्च दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥२०॥
 मांसं कामिनीं वापि कामिनीं वापुमानथ । यः शुक्रं पाययत्येव शुककुण्डं प्रयातिसः ॥
 पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति । यो निहमिः शताब्दश्च भवेद् भुवि ततः शुचिः ॥
 अन्ताड्यं च गुरुं विप्रं रक्तपातञ्च कारयेत् । सद्यतिष्ठत्यस्य कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥
 ततो भवेद् व्याधजन्म सप्तजन्मसु भारते । ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण ॥
 ध्रुववन्तं गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा च गद्गदम् । धीरुष्णगुणसंगीते हसत्येव हियो नरः ॥
 वसेद् ध्रुवकुण्डे यतद्भोजी शतवत्सरम् । ततो भवेत् सचाण्डालोऽत्रिजन्मनिततः शुचिः ॥
 ततो भवेत् सलतां शश्वदशुद्धपट्टदयो नरः । कुण्डंगात्रमलानाञ्च स च याति दशाब्दकम् ॥
 ततः स गर्वभीयो निमवाप्नोति त्रिजन्मनि । त्रिजन्मनि च शार्गाली ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम्
 धिरं यो हसत्येव निन्दत्येव हि मानवः । स वसेत् कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥
 ततो भवेत् स धिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु । सप्तजन्मस्य द्विर्द्विजन्मस्ततः शुद्धिलभेद् ध्रुवम् ॥

लोभात् स्वपालनार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः ।

मज्जाकुण्डे वसेत् सोऽपि तद्भोजी लक्षवर्षकम् ॥ ३१ ॥

ततो भवेत् स शशकोमीनश्चसतजन्मसु । एणाद्यश्चकर्मभ्यस्ततःशुद्धिं लभेद्भुधम् ॥
 स्थकन्यापालनंकृत्वाचिकोणातिहियोत्तरः । अर्घ्यलोमान्महामूढोमांसकुण्डं प्रयातिसः ॥
 कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्रतिष्ठति । तच्चकुण्डे प्रहारश्च करोति यमकिङ्कुरः ॥ ३४ ॥
 मांसभारं मूर्ध्निहृत्वारक्तधारालिहेतुश्रुचा । ततो हि भारतेपापी कन्यायिदसुहृमिमयेत्
 पट्टिपर्यसहस्राणि व्याधश्च सतजन्मसु । त्रिजन्मनि घराहश्चकुक्कुरःसतजन्मसु ॥ ३६ ॥
 सतजन्मसु मण्डूको जलीका सतजन्मसु । सतजन्मसु काकश्चततःशुद्धिलभेद्भुधम् ॥
 प्रतानामुपयासानां धात्रादीनाञ्च संयमे । न करोति क्षीरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥
 स न तिष्ठति कुण्डेषु नखादीनाञ्च सुन्दरि । तदेव दिनमानाब्दं तद्भोजीदण्डताडितः ॥
 सक्नेषां पार्थिवं लिङ्गं यो याऽर्चयति भारते । स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥
 तदन्ते यावन्ती योनिप्रयातिहरकोपनः । शताब्दान् शुद्धिमाप्नोतिस्वकुलंलभतेभुधम् ॥
 विनृणां योविष्णुपदेपिण्डं नैवददाति च । स तिष्ठत्यस्त्रिकुण्डेचस्वलोमाब्दमहोत्सवने ॥
 ततः स्वयोनिं संप्राप्य नञ्जःसतमुजन्मसु । भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धोहि दण्डतः ॥
 यः नेयने महामूढो गुर्विणीञ्च स्थकामिनीम् । प्रतस्तस्मात्कुण्डेचशनपर्यसतिष्ठति ॥ ४४ ॥
 भयंरात्रश्च यो भुङ्क्ते अस्तुन्नातान्ममेव च । लोहकुण्डे शनाब्दश्च सच तिष्ठतितारके ॥
 स प्रजेद्राजकीं योनिं कर्मकारीच सतसु । महाप्रणी दग्दिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 यो हि घर्मान्महम्नेन देवद्रव्यमुपपमृशेत् । शनर्यप्रमाणश्च घर्मकुण्डे च तिष्ठति ॥ ४७ ॥
 यः शूद्रेणान्यनुजानो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेवच । सच सतगुराकुण्डे शनाब्दंतिष्ठति द्विजः ॥
 ततो भवेच्छूद्रयात्री प्राद्वजः सतजन्मसु । शूद्रधादान्नभोजी चतनःशुद्धोभवेद्भुधम् ॥
 पाण्डुराकटुपात्रापात्राङ्घ्र्येन्म्यामिनंसह । तीक्ष्णकण्टककुण्डेसतद्भोजीनत्रतिष्ठति ॥
 ताडिता यमदूतेन दण्डेन च शत्रुयुगम् । ततः उचैःश्रवा सतजन्मभवेय ततः शुचिः ॥ ५१ ॥
 पिपेन जीपने हन्ति निर्दयो यो हि पामरः । विष्णुकुण्डेच तद्भोजी सदग्रायश्चतिष्ठति ॥
 ततोभरेन्मयती च प्रणी च सतजन्मसु । सतजन्मसु कृष्टी च ततःशुद्धोभवेद्भुधम् ॥

दण्डेन ताडयेद् यो हि वृषश्च वृषवाहकः । भृत्यद्वारा स्यतन्त्रो घापुण्यक्षेत्रेचमारते ॥
 प्रतप्ततैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम् । गघां लोमप्रमाणाद्दं वृषो भवति तत्परम् ॥
 दण्डेन हन्ति जीपं योऽप्योहेणवङ्गिणेण वा । दन्तकुण्डेवसेत्सोऽपिर्वर्षाणामयुतंसति ॥
 ततः स्वयोनिं संग्राप्य चोदरव्याधिसंयुतः । जग्मन्नेकेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 यो भुङ्क्ते च वृधामांसंमत्स्यभोजीचप्राह्वणः । हरेर्नैवेद्यमोजीचकृमिकुण्डं प्रयातिसः ॥
 स्थलोममातयवंद्यतद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो भवेत् म्लेच्छज्जातिस्त्रिजन्मनिततो द्विजः ॥
 प्राह्वणः शूद्रपात्री यः शूद्रधाद्यान्ममोजकः । शूद्राणां रावदाहीचपूयकुण्डं मनेद्भुघम् ॥
 यापल्लोमप्रमाणाद्दं यजमानस्य सुयमे । ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६१॥
 ततो मारुतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु । महाशूली वृष्टिश्च ततः शुद्धः पुनर्द्विजः ॥६२॥
 हृण्णपादमस्तकस्थं स्रवं हन्ति च यो नरः । स्वात्मलोमप्रमाणाद्दं सर्पकुण्डं प्रयातिसः ॥

सर्पेण भक्षितः सोऽपि यमदूतेन ताडितः ।

यसेष सर्वपिशुमोजी ततः सर्पो भवेद्भुघम् ॥ ६४ ॥

सतो भवेत् मानवश्चैवात्पायुर्ददुसंयुतः । महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षितो भुघम् ॥
 विधिं प्रददवाजीवांश्च भुद्रजन्तूश्च हन्ति यः । स दंशमशयोः कुण्डे जन्ममानाद्वर्षं वसेत् ॥
 विषानिशं भक्षितमन्तेरनाहारश्च शब्दरत्न । हस्तपादादिष्वथ यमदूतेन ताडितः ॥६७॥
 सतो भवेत् धुद्रजन्तुर्जातिश्च यापतीमृता । ततो मयेगमानपथ सोऽद्भान्मनतः शुचिः
 यो मृद्धो मधुगृह्णाति हत्वा ॥ मधुमक्षिकाः । स पथगरलेकुण्डे जीविमानाद्दकं वसेत्
 मक्षिनो गरलेर्गघो यमदूतेन ताडितः । ततो हि मक्षिकाज्जातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 दण्डं करोत्यदण्डं च विप्रदण्डं करोति च । स कुण्डं पञ्चदंष्ट्राणां पीडितानाञ्च प्रयाति च
 तलोममानपर्वश्च तत्र तिष्ठन्वहनिशम् । शब्दरत्न मक्षितमन्तेर ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७२॥
 अर्धलोमेन यो भूयः प्रजादण्डं करोति च । वृद्धिकानाञ्च कुण्डेषु तलोमापर्वसेत्भुघम्
 ततो वृद्धिकज्जातिश्च सप्तजन्मसु भ्रान्ते । ततो नग्धाद्भोजी व्याधियुक्तो भवेद्भुघम्
 प्राह्वणः शतनपात्री योऽन्येर्गघापको भवेत् । सन्ध्यादीनां मृदश्च दग्निमकिपिर्हानरः
 स तिष्ठति स्थन्दीमापद् कण्डादिषु शपादिषु । विद्रः शरादिभिः शप्यतश्च शुद्धो भवेन्नरः

कागमारे गान्धकारे नियन्त्राणि प्रज्ञाश्च यः । प्रमत्तः स्यन्नदोषेण गोलकुण्डप्रयाति नमः
 तत्कुण्डं परतोयान्तं सान्धकारं मयङ्कम् । तीक्ष्णदंष्ट्रं च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम्
 कीटैर्विहो घमेत्तत्र प्रज्ञालोमाश्रमेव च । नमो भवेन् प्रज्ञाभृत्यस्ततः शुद्धो नरो भुवि
 सरोयगदुत्थितांश्च नकादीन् हन्ति यः सति । नैप्रकण्टकमानाश्रनरकुण्डं प्रयाति स
 ततो नरादिजातिश्च भवेन्नद्यादिषु ध्रुवम् । ततः सर्वोऽपि शुद्धो हि दण्डेनैव नरः पुनः
 पक्षः श्रृङ्गी मृगस्तान्मयश्च यः पश्यति परस्त्रियाः । कामेन कामुकीयां हि पुण्यभेदेन भारते
 स पसेन्फाफकुण्डे च काफैश्च क्षुण्णलोचनः । ततः स्वलोममानाश्रं ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि
 सतजन्मदरिद्रश्च महाभूषश्च पातकी । भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णघण्टिक्तः ततः ॥
 यो भारते तान्त्र्यारो लोहचौरश्च सुन्दरि । स च लोमप्रमानाश्रं घाजकुण्डं प्रयातिसः
 तत्रैव घाजविद्भोजी घाजैश्च क्षुण्णलोचनः । ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 भारते देवचौरश्च देवद्रव्यादिहारकः । सुदुष्करे घन्नकुण्डे स्वलोमाश्रं पसेद् ध्रुवम् ॥
 वैहदग्धो हि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दहन् । ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ८८ ॥
 रौप्यगध्याशुक्लानाञ्च यश्चौरः सुरविप्रयोः । ततपापाणकुण्डे च स्वलोमाश्रं पसेद् ध्रुवम् ॥
 त्रिजन्मनि वकः सोऽपि श्वेतहंसस्त्रिजन्मनि । जन्मैकशङ्खचिह्नश्च ततोऽग्रे श्वेतपक्षिणः
 ततो रक्तधिकारी च शूली च मानघो भवेत् । सतजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः
 रैत्यकांस्यादिपात्रञ्च यो हरेत् सुरविप्रयोः ।

तीक्ष्णपापाणकुण्डे च स्वलोमाश्रं पसेद् ध्रुवम् ॥ ९२ ॥

स भवेदश्वजातिश्च भारते सतजन्मसु । ततोऽधिकाङ्गयुक्तश्च पादरोगी ततः शुचिः ॥
 पुंश्चल्यन्नञ्च यो भुङ्क्ते पुंश्चलीजीव्यजीवनः । स्वलोममानवर्षञ्चलालाकुण्डे पसेद् ध्रुवम्
 ताडितो यमदूतेन तद्वोजी तत्र तिष्ठति । ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः ॥ ९५ ॥
 म्लेच्छसेवी मसीजीवी यो विप्रो भारते भुवि । स च ततमसीकुण्डे स्वलोमाश्रं पसेद् ध्रुवम्
 ताडितो यमदूतेन तद्वोजी तत्र तिष्ठति । ततस्त्रिजन्मनि भवेद् रुष्णवर्णः पशुः सति
 त्रिजन्मनि भवेच्छ्रमाः रुष्णसर्पस्त्रिजन्मनि । ततश्च तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 धान्यादिशस्यंतामूलं यो हरेत् सुरविप्रयोः । आसनञ्च तथा तलं चूर्णकुण्डं प्रयातिसः

तावद् तत्रनिवसेत् यमदूतेन ताडितः । ततो भवेन्मेषजातिः पुच्छुश्च त्रिजन्मनि १०
तो भवेद् मानवश्च कपराध्याधियुक्तो भुवि । वंशहीनो दग्धिश्चैवात्पायुश्च ततः शुचि
करोति विप्राणां हृत्वा द्रव्यञ्च यो नरः । स घसेध्वक्कुण्डे शताव्ददण्डताडित
तो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि । व्याधियुक्तो भवेद्भोगी वंशहीनस्ततः शुचि
न्यवेपु च विमेषु करोति घक्तां नरः । प्रयाति घक्कुण्डञ्च घसेत्तत्र युगं सति ॥
तो भवेत् स घकाङ्गो हीनांगः सप्तजन्मसु । दग्धो वंशहीनश्चमाध्याहीनस्ततः शुचिः
यने कर्ममांसञ्च ब्राह्मणो यो हि भक्षति । कर्मकुण्डेषेत् सोऽपिशताव्दकर्मभक्षितः
तो भवेत् कर्मजन्म त्रिजन्मनि च शूकरः । त्रिजन्मनिचिङ्गालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥
तैलादिकञ्चैव यो हरेत् सुरभिप्रयोः । स याति श्यालाकुण्डञ्चभस्मकुण्डञ्चपातकी
स्थित्वा शताव्दञ्च स भवेत्तैलपायिका । सप्तजन्ममत्स्यरंगो मृषिकश्चततः शुचिः
गन्धितैलं धात्रीञ्च गन्धद्रव्यं तथैव वा । भारते पुण्यवर्गे च यो हरेत्सुरभिप्रयोः ॥
तो दुर्गन्धकुण्डे च दुर्गन्धञ्च लभेत् सदा । स्थलोममानवर्पञ्चततो दुर्गन्धिकाभवेत्
निष्का सप्तजन्म मृगनामिस्त्रिजन्मनि । सप्तजन्मसुगन्धश्च ततो हि मानयोभवेत्
नैव खलत्वेन हिसारूपेण वा सति । बली च यो हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥
घसेत्तशक्ती च भवेत्ततो दिवानिशम् । ततस्तैले यथाजीवो दग्धो भ्रमति सन्ततम्
नसात्र भयत्येष भोगदेहो न नश्यति । सप्तमन्यन्तरं पापी सन्ततस्तत्र तिष्ठति ॥
करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः । पष्ठिर्पसहस्राणि विदूकमिभारते ततः ॥११६॥
भवेद्भूमिहीनो दग्धिश्च ततः शुचिः । ततःस्थयोनिं संप्राप्य शुभकर्मा भवेत्पुनः
सि जीविनः खड्गैर्वाहीनः सुदारुणः । नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ॥११८॥
पत्रे स घसेध्व यावद्विन्द्राश्वतुर्दशः । तेषु चेद्ब्राह्मणानहन्ति शतमन्यन्तरं तदा ॥
गांश्च भवेत्पापी खड्गधारेण सन्ततम् । अनाहारः शब्दहृन् यमदूतेन ताडितः ॥
सञ्चासः शतजन्मानि भारते शूकरो भवेत् ।
कुक्कुरः शतजन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु ॥ १२१ ॥
श्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मनि । जन्मसप्त गण्डकश्च महिषश्च त्रिजन्मनि

ग्रामं वा नगरं वापिवाहन्यः करोति च । धुरधारे वसेत् सोऽपिछिन्नांगस्त्रियुगं सति
 ततः प्रेतो भवेत्सद्यो बह्विवचनो भ्रमेन्महीम् । सप्तजन्ममेध्यमोजी खद्योतः सप्तजन्मसु
 ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मसु । सप्तजन्म गलत्कुण्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
 परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिन्दां करोति यः । परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिन्दकः ॥
 सूचीमुखे स ॥ यसेत्सूचीविद्धोयुगत्रयम् । ततो भवेद्बृद्धिकश्चसर्पश्चसप्तजन्मसु ॥१२७॥
 यज्ञकीटः सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम् । ततोभवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुक्तिः
 गृहिणाञ्च गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः ।

गाश्च छागांश्च मेपांश्च याति गोधामुलञ्च सः ॥ १२६ ॥

ततो भयेत् सप्तजन्म गोजातिव्याधिसंयुतः । त्रिजन्ममेवजातिश्च छागजातिश्चिजन्मनि
 ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः । भार्प्याहीनोबन्धुहीनः सन्तापी च ततःशुक्तिः
 सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नरमुखं युगम् । ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुक्तिः
 हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नरांस्तथा । स याति गजदंशञ्च महापापी युगत्रयम् ॥
 ताडितो यमदूतेन गजदन्तेन सन्ततम् । स भयेद्गजजातिश्च तुरगाश्च त्रिजन्मनि ॥

गोजाति म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ १२४ ॥

जलं पिबन्तीं कृपितां गां पारयति यो नरः । सञ्जुधूयाविहीनश्च गोमुखं याति मानवः ॥
 नरकं गोमुखाकारं दृष्टितमोदकान्वितम् । तत्र तिष्ठति सन्ततो यावन्मन्तरापधि ॥
 ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः । सप्तजन्मास्त्यजातिश्च ततःशुद्धो भवेन्नरः ॥

गोहत्यां ब्रह्महत्याञ्च यः करोत्यतिदेशिकम् ।

यो हि गच्छेद्गम्याञ्च सन्ध्याहीनोऽप्यर्शुशिनः ॥१२८॥

प्रतिग्रही च तीर्थेषु ग्रामयात्री च देवलः । इक्ष्वाणी मृषकारश्च प्रमत्तो मृषलीरतिः ॥
 गोहत्यां ब्रह्महत्याञ्च म्वाहत्याञ्चकरोति यः । मित्रहत्यां भ्रूणहत्यां महापापीव भावते ॥
 भुज्जीपाके सद्य वसेन् यावदिन्द्राच्चतुर्दशः । ताडितो यमदूतेन भूर्जमानश्च सन्ततम् ॥
 दानं पतति यद्वा च दानं पतति कण्टके । शयञ्च तपनेत्येव तप्ततोयेषु च शयम् ॥१४२॥

तत्रयागेषु तत्रलोहे दानं तनः । गृध्रकोटिसहस्राणि शयजन्मानि शूकरः ॥

तत्र सतजन्मानि सर्वत्र सतजन्मसु । पट्टिर्वासहस्राणि तत्र च विदूषमिर्मयम् ॥

ततो भवेत् सद्युग्मो गल्लङ्घुष्टी ददिकः ।

यद्माग्रन्तो यंशहीनो भाव्याहीनस्ततः शुचिः ॥ ४५ ॥

साधिभुषाव ।

तस्याचणोद्व्याकिविधावातिदेशिका । कावानृणामगम्यावाकोषा सग्याविहीनकाः
क्षिप्तः पुमान् कोषा कोषा तीर्थप्रतिग्रही । द्विजः कोषाग्रामयात्री कोषापिप्रथदेयलः
शृणां मूषकारः कः ग्रमसो वृषर्थावतिः । एतेरां लक्षणं सर्वं यद् वेदविदांघरः ॥

यम उवाच ।

कृष्णे च तद्व्यावां मृषमप्यां प्रहृती तथा । शिवे च शिष्यलिङ्गेषां सूर्ये सूर्यमर्णो तथा
जेष्टे वा तद्व्यावामेवं सर्वत्र सुन्दरि । यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
गुरो स्वेष्टदेवे वा जन्मदातरि मानरि । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
ण्येष्यन्यमकेषु ब्राह्मणेऽप्यतरेषु च । करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
ते मृदो विष्णुर्नयेद्ये चान्यनयेद्ये तथा । हरेः पादोदकेऽप्यन्यदेवे पादोदके तथा ॥

करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १५३ ॥

विंशदश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे । सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि ॥
ताययाऽनेककणे वाप्येक एव हि निर्गुणे । करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
देतुदेवार्चनां पीथां परां वेदविनिर्मिताम् ॥ यः करोति निषेधञ्च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
ते निन्दन्ति हर्षकिं तन्मन्त्रोपासकस्तथा । पवित्राणां पवित्रञ्च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥
शेषं शिवस्वरूपञ्च कृष्णप्राणाधिकं प्रियम् । पवित्राणां पवित्रञ्च ज्ञानात्मन्दं सनातनम् ।
प्रधानं वैष्णवाणाञ्च देवानां सेव्यमीश्वरम् । ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ।

ये निन्दन्ति विष्णुमायां विष्णुभक्तिप्रदां सतीम् ।

सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रकृतिं सर्वमात्मन् ॥ १५० ॥

सर्वदेवीस्वरूपाञ्च सर्वाद्यां सर्वचन्द्रिताम् । सर्वकारणरूपाञ्च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥
कृष्णजन्माश्रमी रामनवमीं पुण्यदां पचाम् । शिवरात्रिं तथाचैकदशीं चारं रवेस्तथा ॥

पञ्चार्पाणिपुण्यानि ये ॥ कुर्वन्ति मानवाः । लभन्ते ब्रह्महत्यानि बाण्डानाचिरादाणि
अभ्युपास्या भूयानं जने शौनादिकश्च ये । कुर्वन्ति माते चरमे ब्रह्महत्या लभन्ति

गुग्गु मातं नानं सार्थी भार्यां सुनं सुताम् ।

अनाथान् यो न पुण्यानि ब्रह्महत्यां लभेत् सः ॥ १६५ ॥

विषाहो यस्य ॥ भवेत् ॥ पश्यति गुग्गु यः । दग्धमन्त्रिणां यो ब्रह्महत्यां लभेत्
नामाहाश्च कुर्वन्तपिपन्नयो निषारयेत् । याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्याश्च लभेत्
दण्डैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृथाहकः । दिनेदिने गवां हत्यां लभते नात्र संशयः
पादं ददाति पक्षीयगाश्च पादेन ताडयेत् । गृध्रं विदोर्ध्वं ताडयिष्यः स्मरत्या गोघ्नमालभेत्
यो भुङ्क्ते क्षिप्रपादेन शीते क्षिप्रान्द्रिरेव च ।

सूर्योदये च द्विमोजी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १७० ॥

अधीराग्रज्योभुङ्क्ते यो निजीपीचप्राह्वयः । यस्मिन्मन्त्र्यादिहीनश्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
पितृभ्यर्पकाले च तिथिकाले च देयताम् । न सेयते तिथियोहि गोहत्यां स लभेद् ध्रुवम्
स्वभर्तृविचक्षण्ये च भेदबुद्धिकरोति वा । कटून्त्याताडयेत् कान्तं स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
गोमार्गं छननं कृत्वा घपते शस्यमेव च । तद्गो वा तद्गृध्रं वा स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
प्रायश्चित्तं गोघ्नस्य यः करोति त्र्यतिक्रमम् । अर्धलोभादघातनात् स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
राजके दैपके यज्ञाद्गोस्वामी गां न पाययेत् । दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद् ध्रुवम्
प्राणिनं लङ्घयेद् यो हि देवार्वायां पतं जलम् । नैवेद्यं पुष्पमञ्जश्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
शय्यन्नास्तीति वादी यो मिथ्यावादी प्रतारकः । देवद्वेषी मुखद्वेषी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्
देवतप्रतिमां दृष्ट्वा गुहं वा ब्राह्मणं सति । सम्भ्रमाच्च न मेदुयो हि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्

न ददात्याशिरं कोपात् प्रणताय च यो द्विजः ।

विद्यार्थिने च विद्याश्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १८० ॥

गोहत्या ब्रह्महत्या च कथिता चातिदेशिकी । यथाधृतं सूर्यं च कत्रात्किंभूयः शोनुमिच्छसि ।

सावित्र्युपाच

धास्तवे चातिदेशो च स गन्धे पापपण्ययोः । ग्यनाधिके च कोभेदस्तमां व्याख्यातुमर्हसि ॥

यम उवाच

अपि वास्तवः श्रेष्ठोऽन्यूनातिदेशिकः सति । कुत्रातिदेशिकः श्रेष्ठो वास्तवोऽन्यूत एव च ॥
अथ वा समता साधिव तयोर्वेदप्रमाणतः । करोतितथनास्थां यो गुरुहत्यां लभेत्तु सः ॥
एष परिचिते विघ्ने विद्यामन्त्रप्रदातरि । शुरो पितृत्वमारोपो वास्तवात् धेनुडच्यते ।
पेतुः शतगुणे माता मानुः शतगुणे तथा । विद्यामन्त्रप्रदाता च गुरुः पूज्यः धृतेर्मतः ॥
प्लुतो गुरुपत्नी च गौरवेण गरीयसी । यथेष्टं देवपत्नी च पूज्या चामीष्टदेयता ॥१८७॥
प्रेमः शिवसमोऽप्यध्विष्णुस्तुल्यपराक्रमः । राजातिदेशिकात् श्रेष्ठो वास्तवो गुणलक्षतः ॥
अयं गङ्गासमं सौम्यं सर्वं व्याससमा द्विजाः । ग्रहणे सूर्यशशिनोश्चात्रैव समता तयोः ॥
रातिदेशिकहत्याया वास्तवश्च यतुर्गुणः । सम्मतः सर्वदेवानामित्याह कमलोद्भवः ॥
रातिदेशिकहत्याया भेदश्च कथितः सति । या या यम्यान्वृणामेव नियोध कथयामिते
चत्त्रीगम्या च सर्वेषामिति येदेनिरूपिता । भगव्या च तदन्या या इति येदपि दोषिदुः ॥
जामान्यं कथितं सर्वं पिशोषं शृणु सुन्दरि । अन्यगम्याश्च या याश्च नियोध कथयामिते
प्राज्ञाणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी । अन्यगम्या च निन्दा चलोके वेदेषतिव्रते ॥
शूद्रश्चेदु प्राज्ञपत्नी गच्छेदु ग्राह्यहत्यायात् लभेत् ।

तत्समं प्राज्ञपत्नी चापि कुर्मापाकं प्रजेदु ध्रुवम् ॥१८८॥

पदि शूद्रां प्रजेदु विप्रोऽप्युपलपतिरेव सः । सप्तपदे विप्रजातेऽभ्याषडालात्सोऽधमः स्मृतः ॥
विष्टासमश्च तन्विण्डो मूत्रतुल्यश्चर्गणम् । तन्विण्डो मूत्राणाञ्च पूजने तत्समं सति ॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं सत्त्वाऽर्चात्पराजितम् । द्विजस्य शूद्रलोभां गाल्पयन्त्येव तन्मंशयः
प्राज्ञश्च सुरार्पति विद्मोऽतीवृक्लीयतिः । इति वासरभोजाश्च कुर्मापाकं प्रजेदु ध्रुवम् ॥
गुरुपत्नी राजपत्नी सवर्त्तमातरं प्रसूत् । सुतां पुत्रयूथं श्वश्रू स्वगर्भां भतिनीं सति ॥
सोदरसत्तुजायाश्च मानुषाणां पितृमत्सू । मानुः प्रसूतस्त्वसात्प्रमगिनीं तान् कन्यकाम् ॥

शिष्याश्च शिष्यपत्नीश्च भागिनेयस्य कामिनीम् ।

भ्रातुः पुत्रप्रियाश्चैवात्यगम्यामाह पञ्चजः ॥ २०२ ॥

पताश्रेकामनेकां वा यो प्रजेन्मानवोऽधमः । स्वमातृगामी वेदेषु अहत्याशने लभेत् ॥

अकम्माहंऽपि सोऽस्पृश्यो लोकेवेदेऽतिनिन्दितः ।

त याति कुम्भीपाकञ्च महापापी सुदुस्तरम् ॥ २०४ ॥

करोत्यशुद्धांसन्ध्याञ्चसन्ध्यावानकरोतियः । त्रिसन्ध्याचर्जयेद्योवासन्ध्याहीनश्चसद्विज्र
घैरण्यञ्च तथा शैवं शाक्तं सौरञ्च गाणपम् ।

योऽहङ्कारात्त गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥ २०६ ॥

प्रवाहमयर्धि कृत्वा यावद्वस्तचतुष्टयम् । तत्र नारायणः स्वर्मा गङ्गागर्भान्तरे वरे २०५।

तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरिः पदे । वाराणस्यां चद्रव्याञ्च गङ्गासागरसङ्गमे ॥ २०८ ॥

पुष्करे भास्करक्षेत्रे प्रभासे रासमण्डले । हरिद्वारे च वेदारे सोमे चद्रपावने ॥ २०९ ॥

सरस्वती नदीतीरे पुण्ये गृन्दावने वने ।

गोदयव्याञ्च कौशिक्यां त्रिषेण्याञ्च हिमालये ॥ २१० ॥

एष्यन्त्यत्र यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः । स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च ॥

शूद्रातिरिक्तयार्जा यो ग्रामयाजी च कीर्तितः । तथादेघोपजीवी चदेघलःपरिकीर्तितः ॥

शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः । सन्ध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितःस्मृतः ॥

उक्तं पूर्यप्रकरणे लक्षणं धृष्टर्त्तापनेः । एतेमहापातजिनःकुम्भीपाकं प्रयान्ति ते ॥ २१४ ॥

कुण्डान्यन्यानि ते यान्ति नियोध कथयामि ते ॥ २१५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनामदसंवादे प्रकृतिखण्डे सावित्र्युपाख्याने

यमसावित्रीसंवादे पापीनरफनिरूपणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः ।

यम उवाच ।

हस्तिण्यां विना सावित्र्यं न श्रेष्ठं कर्म वण्डनम् ।

शुभकर्म स्वर्गदीप्तं नरकञ्च कुपकर्मणाम् ॥ १ ॥

पातयन्ती सप्तजन्म यावती सप्तजन्मसु । मर्त्यो मरेन्मानसज्जानीमर्त्यमोग्यानमान्ते ॥
 मर्त्यो मरेन्म सप्तकी यदमप्रमत्ता न पुंश्चर्या । मर्त्यः कृष्णगुता सैन्यकारी शुद्धामरे ।
 येत्या मरेन्नेष्यते न गुह्या न वषट्पादने । जालरुचे मर्त्यो ग्यापुष्टा देवपूर्णै
 स्त्रैरिष्णी दन्ते येन भृष्टागो रमेनया । निरमेयाननायुक्ता यमदूतेन ताडिता ।
 रिण्मुत्रगक्षणं तत्र यायन्मन्यमर्त्यं सति । मर्त्यो मरेन् पिष्टमिध धर्मस्तंक्तः शु

प्राप्तयो प्राप्तयो गच्छेन् क्षत्रियामपि क्षत्रियः ।

पैश्या पैश्याश्च शूद्राश्च शूद्रो वापि मर्त्येवपि ॥३०॥

स्वयणे परदारी न फलं याति तथा सह । मुनयाकयायन्मर्त्योदंनिषत्तेन्द्वादशाष्टप
 ततो विप्रो भवेत्तुलसीपञ्च क्षत्रियाद्यः । योनिभ्यापि शुच्यर्तीत्येवमाह पितामा

क्षत्रियो प्राप्तयो गच्छेन् पैश्या वापि यनिमने ।

मातृगामी भवेत् सोऽपि सर्पश्च मर्त्यं मर्त्ये ॥३३॥

सर्पाकारैश्च कृमिमिप्राणेषु सह भक्षितः । प्रनप्तधूम्रमोजी च यमदूतेनताडितः ॥३४॥
 तत्रैव यातनां भुंक्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दशाः । जन्मसप्तपराहश्च छागलश्च ततः शुचिः ॥
 करेभूत्याचतुलसीप्रतिज्ञायोनपालयेत् । मिथ्यावाशपथंकुप्यात्सचज्वालामुखं मर्त्ये ॥
 गंगातोयं करे भूत्या प्रतिज्ञां योनपालयेत् । शिलायादेवप्रतिमांसचज्वालामुखं मर्त्ये ॥
 इत्या च दक्षिणहस्तं प्रतिज्ञायोनपालयेत् । स्थित्वादेवगृहेषापिसचज्वालामुखं मर्त्ये ॥
 सृष्ट्वा च ब्राह्मणं गाञ्च पर्व्वित्युसप्रंसति । नपालयेत्प्रतिज्ञाञ्चसचज्वालामुखं मर्त्ये ॥
 मेत्रद्रोहीरुतप्रश्चयोहिविष्यासघातकः । मिथ्यासाध्यप्रश्चैवसचज्वालामुखं मर्त्ये ॥
 ते तत्र यस्तन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दशाः । यथाङ्गारप्रदग्धाश्च यमदूतैश्च ताडितः ॥४१॥
 षण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मततःशुचिः । म्लेच्छाङ्गानाञ्जलस्पर्शीपञ्चजन्मततःशुचिः ॥
 शिलास्पर्शी विष्टमिध सप्तजन्मसुसुन्दरि । अर्धास्पर्शीत्रणकृमिर्जन्मसप्तततःशुचिः ॥
 क्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु । ततो भवेद्वस्तहीनो मानयश्च ततःशुचिः ॥४४॥
 मेथ्यावादी देवगृहे देवलःसप्तजन्मसु । विप्रादिस्पर्शकारीचसोऽप्रदानीमवेद्भु पम् ॥
 भवन्ति मूकान्तेवधिराश्चत्रिजन्मनि । भार्याहीनावंशहीनावुद्धिहीनास्ततःशुचिः ॥

मित्रद्रोही च तनुलः कृतप्रश्नापिण्डकः । विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते ४७।
 मिथ्यासाध्यप्रदश्चैव भल्लूकः सप्तजन्मसु । पूर्वान्सप्तपरान्सप्तपुरगन् हन्ति वात्मनः ॥
 नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः । यस्यानास्थावेदवाक्येमन्दं हसति सन्ततम् ॥
 प्रतोपवास्तहीनश्च सद्राक्ष्यपरनिन्दकः । जिह्वे जिह्वो यसेत् सोऽपि शताब्दश्च हिमोदके
 जलजन्तुर्भवेत् सोऽपि शतजन्म कमेजव । ततो नानाप्रकारश्च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥
 यः करोत्यपहारश्च दैवब्राह्मणयोर्यनम् । पातयित्वा स्वपुरुषान् दशपूर्वान् दशापरान् ॥
 स्वयं याति च धूमान् धूमश्चान्तसमन्वितम् । धूमं कृष्टो धूमभोजी बसेत् तत्र चतुर्गुणम् ॥
 ततो मूर्खिकजातिश्च शतजन्मानि भारते । ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातयः ॥
 ततो नानाविधा वृक्षजातयश्च ततो नद्यः । माय्यादीनो यंशहीनोश्चरो व्याधिसंयुतः ॥
 ततो भवेत् स्वर्णकारः सुवर्णस्य पणिक् तथा । ततो यवनसेवी च ब्राह्मणो गणकस्ततः ॥
 विप्रो दैवज्ञो पञ्जीवी यैव जीवी चिकित्सकः । लाक्षालीहादि व्यापापी रसादि विक्रयी च यः ॥

स याति नागयेष्टश्च नागैर्वेष्टित एव च ।

यसेत् स्थलो भमानाख्यं तत्रैव नागदर्शितः ॥ ५८ ॥

ततो भवेत् स गणको वैद्यश्च समजन्मसु । गोपश्च कर्मकारश्च शङ्खकारस्ततः शुचिः ॥
 प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पठिष्यते । भन्यानि चाप्रसिद्धानि शुद्राणितत्र सन्ति चै
 सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः । भ्रमन्ति तावत्संसारे न च ते स्वर्गभागिनः

यान्त्ययाति च स्वर्गश्च मर्त्यश्च न हि निर्वृताः ।

निर्वृतिं न हि लिप्स्यन्ति कृष्णतेयां विना नराः । स्वधर्मनिरताश्चापि स्वधर्मविरतास्तथा
 गच्छन्तो मर्त्यलोकश्च दुर्द्वर्गं यमकिङ्कराः । भीताः कृष्णोपासकाश्च यनते यादिवोरगाः
 स्वदूतं पाशहस्तश्च गच्छन्तं तं पद्माम्बहम् । यास्यसीनि च सर्वत्र हरिभक्ताश्रयं विना
 कृष्णमन्त्रोपासकानां नामानि च निवृन्तम् । करोति न वयं बुद्ध्या चित्रमुतश्च भीतवत्

मधुपर्कादिकं ग्रहा तेयाश्च कुर्वते पुनः ॥ ६६ ॥

विलङ्घ्य प्रलोकश्च गोलोकं गच्छतां सताम् । दुष्टातिव्यनश्यन्ति ते यांसंस्पृशमात्रतः
 यथा सुप्रज्वलद्दहो काष्ठानि च तृणानि च ॥ ६७ ॥

प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वा च मीतवत् ।

कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधीततःसति । मृत्युः पलायतेरोगोजराशोकोमयन्तथा

कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च ॥ ६६ ॥

ये ये न यान्तियामीञ्च कथितास्ते मया सति । शृणुदेहविचरणं कथयामि यथागमम्

पृथिव्यायायुराकाशं तेजस्तोयमितिस्फुटम् । देहिनां देहयोजञ्च छन्दुः सृष्टिविधौ पर

पृथिव्यादि पञ्चभूतैर्यो देहोनिर्मितोभवेत् । सः कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदि

वृक्षाङ्गुष्ठप्रमाणेन यो जीवः पुरुषाकृतिः । विमर्शि सूक्ष्मदेहश्च तद्रूपं भोगहेतवे ॥ ७३

स देहो ॥ भवेद्भस्म ज्वलद्ग्रीवो ममालये । जले न नष्टो देहो वा ग्रहारे सुचिरे कृते ।

न शस्त्रे च न चाल्ने च सुतीक्ष्णे कण्टके तथा । तप्तश्वे ततलोहे ततपापाण पय च ।

प्रतप्तप्रतिमाश्लेषेऽप्यत्यूढुर्ध्वपतनेऽपि च । कथितं देवि वृत्तान्तं कारणञ्च यथागमम्

कुण्डानां लक्षणं सर्वं निबोध कथयामिते । अधुनाशेषिकरूपाणि किंभूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिलखे भारवणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने

पापिकुण्डनिर्णयो नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

यमसावित्रीसंवादवर्णनम् ।

सावित्र्युपात्त ।

धर्मराज महाभाग येदयेदाङ्गपाराग । नानापुराणेतिहास-पञ्चरात्र-प्रदर्शक ॥ १ ॥

सर्वेषु सागभूतं यत् सर्वेषु सर्वमममम् । कर्मच्छेदवीक्षणं प्रशम्भं सुखं नृणाम् ॥

यशःप्रदं धर्मदञ्च सर्वमंगलमंगलम् । येन यामी न ते यान्ति यातनां भयदुःखदाम् ॥

य न पश्यन्ति तत्र मीव पतन्ति च । न भवेयेनत्रमादि लम्बकं यद् सुखम् ॥

य न पश्यन्ति तत्र मीव पतन्ति च । न भवेयेनत्रमादि लम्बकं यद् सुखम् ॥

य न पश्यन्ति तत्र मीव पतन्ति च । न भवेयेनत्रमादि लम्बकं यद् सुखम् ॥

स्यदेहे भस्मसादुभूते यान्तिलोकान्तरं नराः । केन देहेन वा भोगंभुञ्जते वा शुभाशुभम्
सुखिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति । देहो वा किञ्चिदोब्रह्मन् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि
सावित्रीवचनं धृत्या धर्मराजो हरिं स्मरन् । कथां कथितुमारंभे गुह्यं नरवा च नारद
यम उवाच ।

घरसे वतुर्गुं वेदेषु धर्मेषु संहितासु च । पुराणेष्वितिहासेषु पञ्चरात्रादिकेषु ॥ ६ ॥
धन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुप्रते । सघट्टसारभूतञ्च भङ्गलं कृष्णसैघनम् ॥ १० ॥
जन्ममृत्युजरासौभाग्यशोकसन्तापतारणम् । सर्वभङ्गलरूपञ्च परमानन्दकारणम् ॥ ११ ॥
कारणं सर्वसिद्धीनां नरकारणघतारणम् । भक्तिवृक्षाङ्कुरवत् कर्मवृक्षनिवृत्तनम् ॥ १२ ॥
गोलोकमार्गसोपानमधिनाशिपदप्रदम् । सालोक्यसाष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे ॥
कुण्डानि यमदूतञ्च यमञ्च यमकिङ्कुरान् । न हिपश्यन्तिस्वप्नेन श्रीकृष्णकिङ्कुराः सति
हरिप्रतं ये कुर्यन्ति गृहिणः कर्मभोगिनः । ये ज्ञागति हरितीर्थं च नाश्रयन्ति हरिघासरे ।
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च । न यान्तिनेवचोराञ्च मम संयमनीं पुरीम्
त्रिसन्ध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः । स्वधर्मनिरताः शास्ता नपातितयममग्निम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे
द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कुण्डानां मानलक्षणवर्णनम् ।

यम उवाच ।

पूर्णन्दुमण्डलाकारं सर्वकुण्डञ्च घर्तुलम् । अतीवनिम्नं पायणभेदैश्च खचितं सति ॥
न नश्यन्त्याप्रलयं निर्मितञ्चेद्वरच्छया । क्लेशदं पातकिनाञ्च नानारूपं तदालयम् ॥ २ ॥
उपलद्गङ्गारूपञ्च शतहस्ताशिखान्वितम् । परितः क्रोशमानञ्च बहिकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥

मदन्त्यष्टयं प्रकुर्यद्विः पापिभिः पणिपूग्निम् । रक्षितं ममदूतैश्चाङ्गितैश्चापि सन्तम् ।
 प्रतमोऽक्षपूर्णंश्च हिम्रजन्तुसमन्वितम् । महायोगान्यकाग्रं च पापिमद्वेन सङ्कुम् ।
 प्रकुर्यता पापुःशब्दं प्रहर्षिणं निनेन च ॥ क्रोशालंमानं ममदूतैश्चाङ्गितैश्च रक्षितम् ॥ १६ ॥
 तप्तशरीरकोः पूर्णं नरैश्च पण्येष्टितम् । सङ्कुलं पापिमिद्वेयं क्रोशमानं भयानकम् ॥
 प्राप्तीति शब्दं कुर्यद्विममदूतैश्च नाङ्गितैः । श्वेतद्विगताहारैः शुष्ककण्ठाष्टालुकैः ॥
 पिण्मूर्धनैश्च पूर्णंश्च क्रोशमानं कुम्भितम् । अनिदुर्गन्धिमंयुक्तं ध्यातं पापिमिद्वेयं च
 नाङ्गितैर्ममदूतैश्च भनाहारैश्च रक्षितम् । रक्षेति शब्दं कुर्यद्विस्वकीटैश्च मक्षितम् ॥ १७ ॥
 नतमूत्रद्रव्यैः पूर्णं मूत्रकाटैश्च संकुलम् । युक्तं महापापिमिद्वेयं तन्वीटैर्दक्षितं सदा ॥
 गद्युनिमानं ध्यान्मातं शब्दरुद्विद्वेयं सन्तम् ।

ममदूतैश्चाङ्गितैर्घाङ्गैः शुष्ककण्ठाष्टालुकैः ॥ १८ ॥

रक्षेत्पूर्णं क्रोशमितं वेष्टितं वेष्टितैः सदा । तद्वोजिभिः पापिमिद्वेयतत्कीटैर्मक्षितैः सदा
 क्रोशालं गरपूर्णंश्च गरभोजिमिद्वेयम् । गरकाटैर्मक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥
 नाङ्गितैर्ममदूतैश्च शब्दरुद्विद्वेयं कम्पितैः । सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठाः सुदारुणैः ॥
 नेत्रयोर्मलपूर्णंश्च क्रोशालं कीटमंयुतम् । पापिभिः संकुलं शब्दत् रचद्विः कीटमक्षितैः
 घसारसेन पूर्णंश्च क्रोशानुप्यं सुदुःसहम् । तद्वोजिभिः पातकिमिद्वेयं दूतैश्च ताङ्गितैः
 शुक्रपूर्णं क्रोशानुप्यं शुक्रकाटैश्च मक्षितैः । क्रन्दद्विःपापिभिः शब्दसंकुलं व्याकुलैर्मिपा ॥
 दुर्गन्धिरक्तपूर्णंश्च पापिमानं गभीरकम् । तद्वोजिभिः पापिमिद्वेयं संकुलं कीटमक्षितैः ॥
 पूर्णमेवाधुभिर्नृणां घाप्यदं पापिमिर्युतम् । ताङ्गितैर्ममदूतैश्च तद्वक्ष्यैः कीटमक्षितैः ॥ २० ॥
 नृणां गात्रमलैः पूर्णं तद्वक्ष्यैः पापिमिर्युतम् । ताङ्गितैर्ममदूतैश्च व्यग्रैश्च कीटमक्षितैः ॥

कर्णचिद्विपरिपूर्णंश्च तद्वक्ष्यैः पापिमिर्युतम् ।

घापीतुर्व्यप्रमाणश्च रुद्विः कीटमक्षितैः ॥ २२ ॥

मज्जापूर्णं नराणाञ्च महादुर्गन्धि संयुतम् । महापातकिमिर्युक्तं घापीतुर्व्यप्रमाणकम् ।

स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताङ्गितैः । पापिभिः संकुलंश्चैव घापीमानं भयानकम्

तद्वक्ष्यैः कीटमक्षितैः । प्राप्तीति शब्दं कुर्यद्विस्वकीटैश्च मयानकैः

त्वय्यप्रमाणञ्च नलादिकचतुष्टयम् । पापिभिः संकुलं शश्वन्ममदूतैश्च ताडितैः ॥
 प्रकुण्डञ्च ताम्रपर्व्युन्मुसान्वितम् । ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रत्नैरावृतं सदा ॥
 प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः रदद्विः पापिमिर्युतम् ।
 गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ २८ ॥
 हिधारञ्च उधलदङ्गारसंयुतम् । लोहानां प्रतिमालक्षैः प्रत्नैरावृतं सदा ॥ २९ ॥
 सर्पाश्लिष्टैश्च शश्वत् विचलितैर्मिया । रक्षरक्षेत्रिशब्दञ्च कुर्यद्विदूतताडितैः ॥
 किमिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् । भयानकं ध्वान्तयुक्तं लोहकुण्डप्रकीर्तितम्
 तत्तत्सुराकुण्डं धाप्यदमेव च । तद्वोजिमिः पापिमिश्च ध्यातमद्वदूतताडितैः ॥
 मधः शाल्मलिबृक्षस्य तीक्ष्णकण्टककुण्डकम् ।
 लक्षपौरुषमानञ्च क्रोशमानञ्च दुःखदम् ॥ ३३ ॥
 धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् ॥ ३४ ॥
 कण्टकैर्विद्धं महापातकिमिर्युतम् । वृक्षप्राग्निपतद्विश्च ममदूतैश्च ताडितैः ॥
 ति शश्वत् कुर्यद्विः शुष्कतालुकैः । महाभयातिव्यग्रैश्च दण्डेन भग्नमस्तकैः ।
 प्रचलद्विर्यथा तप्तनेले जीविमिरेष्य ॥ ३६ ॥
 तक्षपादीनां पूर्वञ्च क्रोशमानकम् । तद्वश्यैः पापिमिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥
 जपूर्णञ्च कीटादि परिर्युतम् । तद्वश्यैः पापिमिर्युक्तं स्निग्धगार्त्रैश्च वेष्टितैः ॥
 प्रकुर्यद्विधलद्विदूतताडितैः । महापातकिमिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥
 शस्त्रकुण्डं ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं भयानकम् ।
 शूलाकारैः सुतीक्ष्णैश्च लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥ ४० ॥
 स्वरूपञ्च क्रोशानुर्व्यप्रमाणकम् । पातकिमिर्येष्टितञ्च कुन्तविद्धैश्च वेष्टितम् ॥
 दूतैश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः । कीटैः संकुलमानेद्य सर्पयानैर्भयदूतैः ॥
 च पिहनेव्याप्तं ध्वान्तयुतं सति । महापातकिमिर्युक्तं मीनैश्च कीटमशिनैः
 रदद्विः क्रोशमानञ्च ममदूतेन ताडितैः ॥ ४३ ॥
 च संयुक्तं क्रोशादं पूयसंयुतम् । तद्वश्यैः पापिमिर्युक्तं मम दूतेन ताडितैः ॥

द्विगन्धूतिप्रमाणञ्च हिमतोयप्रपूरितम् । तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिमिरावृतम् ॥
 सर्पवेष्टिताग्राश्चैवापिभिः सर्पमक्षितैः । सङ्कुलं शब्दकृद्विधं मम दूतैश्च ताडितैः ॥५६॥
 कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णञ्च मशकादिभिः । सर्वं क्रोशार्द्धमानञ्च महापातकिभिर्युतम् ॥
 हस्तपादादिभिर्यद्वैः क्षतैः क्षतजलोहितैः । हाहेति शब्दं कुर्वन्निः प्रचलद्विधं सन्ततम् ॥
 घञ्जवृद्धिकयोः कुण्डं ताभ्याञ्च परिपूरितम् । याप्यद्वं पापिमिर्युक्तं घञ्जवृद्धिकदंशिनैः ।
 कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम् । तैर्यद्वैः पापिमिर्युक्तं याप्यद्वं रक्तजलोहितैः ॥
 तप्तपङ्कोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम् । कीटैः सङ्कुलमानैश्च मक्षिणैः पापिमिर्युतम् ।
 याप्यद्वं परिपूर्णञ्च जलस्थैः नक्रकोटिभिः । दारुणैर्विहृताकारैर्मक्षिणैः पापिमिर्युतम् ॥
 विष्णुमूत्रलेप्पमक्ष्यैश्च संयुक्तं शतकोटिभिः ॥ ५३ ॥

काकैश्च विहृताकारैर्धनुर्लक्षञ्च पापिभिः ॥ ५४ ॥

सञ्जालयाजयोः कुण्डं ताभ्याञ्चरिपूरितम् । मक्षिणैः पापिमिर्युक्तं शब्दकृद्विधं सन्ततम् ॥
 घनुःशतं घञ्जयुक्तं पापिभिः सङ्कुलं सदा । शब्दकृद्विधं सदा येन्तर्ध्वान्तमयं सदा ॥५६॥
 पार्पाद्विगुणमानस्य तप्तप्रस्तरनिर्मितम् । ज्वलद्द्वारसदृशं चलद्विः पापिमिर्युतम् ॥५७॥
 क्षुरधारोपमेस्तीक्ष्णैः पाप्यणैर्निर्मितं परम् । महापातकिभिर्युतं क्षतं क्षतजलोहितैः ॥
 दुर्यन्धि लालपूर्णञ्च तद्वक्ष्यैः पापिमिर्युतम् ।

क्रोशमानं गभीरञ्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ५६ ॥

मन्मथोयाजनाकारैः परिपूर्णं घनुःशतम् । चलद्विः पापिमिर्युक्तं मम दूतेन ताडितैः ॥
 पूर्णं घूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिमिरन्यितम् । तद्गोजिभिः प्रक्षेपैश्च मम दूतैश्च ताडितैः
 कुण्डं बुज्जालयक्रामं घूर्ण्यमानस्य सन्त्यगम् ॥ ६१ ॥

सुर्वाङ्गनाडशास्य घूर्णितैः पापिमिर्युतम् । अर्वाय यद्वं निम्नस्य द्विगन्धूतिप्रमाणकम्
 चन्द्रगङ्गापरिमाणं तप्तोदकसमन्वितम् । महापातकिभिर्युक्तं मक्षिणैर्नलमनुभिः ॥
 प्रचलद्विः शब्दकृद्विधं सन्ततं अयानकम् । कोटिमिरिहृताकारैः कञ्जवैर्यमुदाहृतैः
 * संयुतैश्चमक्षिणैः पापिमिर्युतम् । ज्वलद्द्वारसदृशं त्रिगुणैर्निर्मितं क्रोशमानकम्
 रहदिः पापिमिश्च चन्द्रद्विः संयुतं सदा । क्रोशमानं गभीरञ्च तप्तमममिरन्यितम् ॥

शश्वच्चलद्भिः संयुक्तं पापिर्मर्मस्मभक्षितैः ॥ ६७ ॥

सतपापाणलोलप्राणां समूहैः परिपूरितम् । पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तञ्च शुष्कतालुकेः
क्रोशमानं ध्यान्तमयं गमीरमतिदारुणैः । ताडितैर्मम दूतैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥
अत्यूर्मियुक्तोयञ्च प्रतप्तक्षारसंयुतम् । नानाप्रकारविहृतं जलजन्तुसमन्वितम् ॥ ७१ ॥
द्विगव्यूतिप्रमाणञ्च गमोरं ध्यान्तसंयुतम् । तद्वद्वैः पापिभिर्पुंसदंशितैर्जलजन्तुभिः ॥
चलद्भिः कन्दमानैश्च न पश्यद्भिः परस्परम् । उत्तप्तूर्मिकुण्डञ्च कीर्तितञ्च भयानकम् ॥
असीवधारपत्रस्याप्युच्चैस्तालतोरयः । क्रोशाद्धमानकुण्डञ्च पतन्पत्रसमन्वितम् ॥
पापिनां रक्तपूर्णञ्च वृक्षाप्रात् पतनां परम् । परित्राहोति शश्वच्च कुर्यतामसतामपि ॥ ७३ ॥
गमीरं ध्यान्तसंयुक्तं रक्तकीटसमन्वितम् । तदसीपत्रकुण्डञ्च कीर्तितञ्च भयानकम् ॥
धनुःशतप्रमाणञ्च क्षुराकारास्त्रसङ्कुलम् । पापिनां रक्तपूर्णञ्च क्षुरधारं भयानकम् ॥ ७६ ॥
सूचीषास्यास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तोद्यपूरितम् । पञ्चाशदनुरायामं ह्येतादृशं सूचीमुखम् ॥ ७७ ॥
कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोधेतस्य मुक्तावृतम् । कृष्णरूपगभीरञ्च धनुर्विशान्प्रमाणकम् ॥
महापातकिनाञ्चैव महाह्येताकरं परम् । तत्कीटभक्षितानाञ्च तन्नास्यानाञ्च सन्ततम् ॥
कुण्डं नलमुखाकारं धनुः षोडशमानकम् । गमीरं कृष्णरूपञ्च पापिष्ठैः संकुलं सदा ॥ ८० ॥
गजेन्द्राणां समूहेन ध्यातं कुण्डावृतं स्थलम् । गजदन्तहतानाञ्च पापिनां रक्तपूरितम् ॥
तत्कीटभक्षितानाञ्च काकुशादृशानां सदा । धनुःशतप्रमाणञ्च कीर्तितं गजदंशनम् ॥
धनुर्विशान्प्रमाणञ्च कुण्डञ्च गोमुखावृतिः । पापिनां दुःखदञ्चैव गोमुखं परिकीर्तितम्
त्रिमितं कालचक्रेण सन्ततञ्च भयानकम् । कुम्भाकारं ध्यान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्
तत्क्षीरममानञ्च गमीरमतिविस्तृतम् । कुत्रचित्तनूतलञ्च कुण्डाम्यन्तरमन्तिके ॥ ८५ ॥
त्रैविस्तललोहादि साध्यादि कुण्डमेव च । कुत्रचित् तप्तपाशाणकुण्डाम्यन्तरमन्तिके ॥
पापिनाञ्च प्रधानैश्च महापातकिभिर्पुनः ॥ ८६ ॥
रम्यं न पश्यद्भिः शश्वद्विधं सन्ततम् । ताडितैर्मम दूतैश्च दग्धैश्च मुखलेस्तथा ॥ ८७ ॥
एषमानं पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च मुहुर्मुहुः । पापिनां दूतैश्च चात्युद्गर्भात् पतिनैः शनम्
पततः पापिनाः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि । तत्र धनुर्गुणाः सन्ति कुर्मीपाकेन दुन्दरे

सुचिरं पतिताश्चैव भोगदेहविवर्जिताः । सर्वकुण्डप्रधानञ्च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम्
 कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः । उत्थापिताश्च मद्भूतैः क्षणमेव निमज्जिताः
 निवासबद्धाः सुचिरं कुण्डानामन्तरे तथा । अतीवकृशयुक्ताश्च भोगदेहा न नभराः
 दण्डेन मुचलेनैव मम दूतैश्च ताडिताः । प्रतप्ततोययुक्तञ्च कालसूत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ६१ ॥
 भयटः कृपभेदश्च यत्रोदञ्च तदाकृतिः । प्रतप्ततोयपूर्णञ्च धनुर्विशम्प्रमाणकम् ॥ ६२ ॥
 व्याप्तमहापापिभिश्च दग्धमात्रैश्च सन्ततम् । मद्भूतैस्ताडितैः शब्दपटोदं प्रकीर्तितम्
 यस्तोयस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् । भवेदकस्मात् पततां यत्र कुण्डे धनुःशने
 सर्वैरुद्धाः पापिनश्च तुदन्ति यत्र सन्ततम् । हाहेति शब्दं कुर्वन्तस्तदैवाकृतुदं विदुः ।
 तप्तपांशुमिराफीणं ज्वलद्भिस्तु सदग्धकैः । तद्भक्ष्यैः पापिमिर्युक्तं पांशुभोजं धनुःशतम् ।
 पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् । पतन्मात्रेण पापीच पाशेन वेष्टितो भवेत् ॥

क्रोशमानेन कुण्डे च तन् पाशवेष्टनं विदुः ॥ ६६ ॥

धनुर्विशम्प्रमाणञ्च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम् । पतन्मात्रेण पापीच शूलेन ग्रथितो भवेत् ।

पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् ॥ १०१ ॥

भर्तापहिमतोयेन क्रोशार्द्धञ्च प्रकम्पनम् । दक्षत्येवहि मद्भूता यत्रोल्काः पापिनामुने ॥
 धनुर्विशम्प्रमाणञ्च तदुल्काभिश्च सङ्कुलम् । लक्षपौरुषमानञ्च गभीरञ्च धनुःशतम् ॥
 नानाप्रकाररुमिभिः संयुतञ्च भयानकैः । मत्पत्न्यकारप्याप्तं यन् कृपाकारं च पर्सुलम्
 तद्भक्ष्यैः पापिमिर्युक्तं न पश्यद्भिः परस्परम् । तप्ततोयप्रदग्धे च ज्वलद्भिः पीडभक्षिणैः ॥

ध्यान्तेन यक्षुषा धान्यैरुदग्धकृतं प्रकीर्तितम् ॥ १०५ ॥

नानाप्रकाराश्वार्थैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः । धनुर्विशम्प्रमाणेन वेष्टनं तन् प्रकीर्तितम् ॥
 दण्डेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः । धनुःक्रोशमानेन तन् कुण्डं नृण्डताडनम् ॥
 निरुद्धाश्च महाजालैर्वंधा मीनाश्च पापिनः । धनुर्विशम्प्रमाणेन जालयुक्तं प्रकीर्तितम् ।
 पततां पापिनां कुण्डे देहाभूषणमवन्ति च । लौहवेदीनिबद्धास्तः क्रोष्टिपौरुषमानकम् ॥
 गर्भां ध्यान्तयुक्तं च धनुर्विशम्प्रमाणकम् । मूर्ष्टिगतानां तद्वानां च देहभूषणं प्रकीर्तितम् ।
 दल्लिताः पापिनो यत्र मद्भूतैर्मृग्यैः सदा । धनुःक्रोशमानेन तन् कुण्डं मृगलं गतम् ॥

तन्मात्रे यत्र पापी शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । चालुकासुच तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ।
 तपोरुपमानं च गमीरं ध्वान्तसंयुतम् । जलाहारधिरहितं शोषणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ११३ ॥
 नाचर्मकपायोदं परिपूर्णं धनुःशतम् । दुर्गन्धियुक्तं तद्वक्ष्यैः पापिमिः सङ्कुलंकपम् ॥
 शंकारमुखं कुण्डं धनुर्दशमानकम् । तप्तजोहवालुकामिः पूर्णं पातकिमियुतम् ॥

धन्तराग्निशिखानाञ्च ज्वालावशाप्तमुखं सदा ।

धनुर्विशन्प्रमाणञ्च यस्य कुण्डस्य सुन्दरि ॥ ११६ ॥

ज्वालामिर्दग्धगात्रैश्च पापिमिर्याप्तमेव यत् ।

समहत्देशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम् ॥ ११७ ॥

मात्राद्यत्र पापी मूर्च्छितोऽप्यथितो भवेत् । तनेष्टकान्यन्तरितं वाप्यदं जिह्वाकुण्डकम् ॥
 न्यकारयुक्तञ्च धूमान्धैः पापिमियुतम् । धनुःशतं श्वासवद्दैर्घ्यमान्यं परिकीर्तितम् ॥
 मात्राद्यत्र पापी नागैश्च घेष्टितो भवेत् । धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागवेष्टकुण्डकम् ॥
 प्रीति च कुण्डानिमयोक्तानि निशामय । लक्षणञ्चापिते पाञ्चकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
 ते धीप्रज्ञयैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे
 कुण्डलक्षणप्रकरणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ।

सावित्र्युपाय

कं देहि मह्यं सारमूलां सुदुर्लभाम् । त्वत्तः सर्वं धृतं देव नावशिष्टोऽधुना मम
 १ कथयमेधमं श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् । पुंसां लक्ष्मोद्गारधीर्जं नरकार्णयतां
 सुखिसाराणां सर्वांशुमनिवारणम् । पापवर्कर्मवृक्षाणां हृतपापीघहा

मुक्तयः कतिपय मन्त्रि नि वा नामाश्च मन्त्राणम् ।

दृग्भिन्नं मुनिभोर् विवेकस्यापि मन्त्राणम् ॥ ४ ॥

राजपित्रीणां ॥ स्त्रीजातिर्विनिर्मिता । किं तत्त्वज्ञानं सागम्यं च वेदविदां परं ।
ज्ञानमनानं गीर्वाणानं धर्मं परं । मन्त्रान्नान्द्वन्द्व्य कदा मार्गानि गौदरीम् ॥
[शतगुणा माता भौम्ये जातिनिभता । मानुः शतगुणे पूम्यो ज्ञानदातागुह्यमो ।

यम उवाच

सर्ववरो दत्तां यतो मन्त्रि पाप्मिनः । अमुना दृग्भिन्नित्वे पर्यमवतु मन्त्राणम् ।

धौमुमिच्छामि कल्याणि धौमुगुणगुणवर्त्तनम् ।

यत्कृणां प्रजनयन्तुं नां धौमुगुणां पुन्यतारणम् ॥ ५ ॥

ते यद्यत्रसहस्रेण न हि यद्दण्डमीश्वरः । मृत्युञ्जयो न क्षमश्च यत्कृं पञ्चमुनेन च ।
ता यत्कृणां वेदानां विधाता जगताममि । ब्रह्मा यत्कृं मेनेव नालं यिष्णुश्च सर्वपितृ
सिकेयः पण्मुनेन नापित्रक्तुमन्त्रं ध्रुवम् । न गणेशः समर्पश्च गीर्वाणां गुरोर्गुरु
रभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वाग्नय च । कलामार्गपद्मगुणानां नपिदन्तिपुषाश्चये
स्वयती च यज्ञेन नालं यद्गुणवर्णने । सनत्कुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः ॥ ६ ॥
नन्दः कपिलः सूर्योपिऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः । विचक्षणा न यद्दत्तं केवान्ये जडबुद्धयः ।
यद्दत्तं क्षमाः सिद्धामुनीन्द्रापो गिनस्तथा । के धान्ये च धर्मं केवा भगवद्गुणवर्णने ।
तावन्ते यत्पद्माम्भोजं ददन्तिष्णुशिवादयः । भतिसार्धस्वभक्तानां तदन्ये वा सुदुर्लभम् ।

कश्चित् किञ्चिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं महत् ।

भतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मसुतादयः ॥ ६ ॥

भौमतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः । सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शम्भुरेव च ।
मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना । अतीव निजने रम्ये मोल्लोके रासमण्डले ॥
यद्गुणोत्कीर्तनं पुनः । धर्माय कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥
पुष्करे भास्कराय च । यमाय च मम पिता मां प्राप तरसासति ॥
स्वविशयज्ञाहं न गृहामि प्रयत्नतः । चैराग्ययुक्तस्तस्मै गन्तुमिच्छामि सुप्रते ॥ १३ ॥

तदा मां कथयामास पितायद्गुणकीर्तनम् । यथागमं तद्वदामि निबोधार्तीयं दुर्गमम् ॥
 तद्गुणं स न जानाति छन्द्यस्यचकाकया । यथाकाशो न जानाति स्यान्तमेववरानने ॥
 सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वकारणकारणम् । सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित् सर्वरूपभृक् ॥
 नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः । निरङ्कुशश्च निःशङ्को निर्गुणश्च निराश्रयः ॥
 निर्लितः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः । तद्विकाराश्च प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः ॥
 स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः । रूपं विद्यतेऽरूपश्च भक्तानुग्रहेतवे ॥२६॥
 अतीव कमनीयश्च सुन्दरं सुमनोहरम् । नपीननीरदश्यामं किशोरं गोपयेशकम् ॥३०॥
 कन्दर्पोदिलाषण्यलीलाधाम मनोहरम् । शरन्मध्याह्नपदानां शोभामोचनलोचनम् ॥
 शरत्पार्यणकोटीन्दुशोभाप्रच्छादनाननम् । समूल्यरत्ननिर्माणरत्नाभरणभूषितम् ॥३२॥
 सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतयाससा । परं प्रहस्यरूपञ्च ज्वलन्तं प्रहातेजसा ॥३३॥
 सुखदृश्यश्च शान्तश्च राधाकान्तमनन्तकम् । गोपीभिर्वीक्ष्यमाणश्च सस्मिताभिः समन्ततः ॥
 रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् । वंशीं कण्ठं द्विभुजं धनमालाविभूषितम् ॥
 कौस्तुभेनमणीन्द्रेण शश्वद्वह्नःस्थलो ज्ज्वलम् । कुङ्कुमायीरकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥
 चारुचम्पकमालाभ्रमालतीमाल्यमण्डितम् । चारुचम्पकशोभादयचूडाघट्टिमराजितम् ॥
 पद्मभूषणश्च ध्यायन्ते भक्तामक्तिपरिप्लुताः । यद्गयाञ्जगतां धाता विप्रक्षेष्टुष्टिमेव च ॥
 कर्मानुरूपलिखनं करोति सर्वकर्मणाम् । तपसां फलदाता कर्मणाञ्च यदाकया ॥

विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्गयात् पाति सप्ततम् ।

कालाग्निरदः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्गयात् ॥ ४० ॥

शिषो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ।

यद्गुहानदानात् सिद्धेशो योगीशः सर्ववित् स्वयम् ॥ ४१ ॥

परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः । यत्प्रसादाद्वाति धातः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् ॥
 तपनश्च प्रतपति यद्गयात् सन्ततं सति । यदाश्रया धर्मर्तन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥
 यदाश्रया दहेद्द्विर्जलमेव सुशीतलम् । दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महामीता यदाश्रया
 भ्रमन्ति राशिचक्राणि प्रदाद्य यद्गयेन च । मयात्पलन्ति वृक्षः अपुष्पन्त्यपि च यद्गयात्

भयात् फलानि फलानि निष्फलास्तरेषोभयात् । यदाक्षयास्यलस्याश्चनजीवन्ति जलेषु च
 तथा स्यले जलस्याश्च न जीवन्ति यदाक्षया । अहं नियमकर्त्ता च धर्माधर्मे च यद्व्याप्तं
 कालश्च कलयेत्सर्वं भ्रमत्येव यदाक्षया । अकाले न हरेत्कालो मृत्युश्च यद्वयेन च ।
 ज्वलद्गो पतन्तश्च गभीरे च जलार्णवे । वृक्षाग्रात् तीक्ष्णध्वङ्गे च सर्पादीनां मुखेषु च ।
 नानाशस्त्रास्त्रचिह्नश्च रणेषु विष्मेषु च । पुष्पचन्दनतले च यन्धुयर्गश्च रक्षितम् ।

शयानं तन्त्रमन्त्रैश्च काले कालो हरेद्भयात् ॥ ५० ॥

धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कुम्भं यदाक्षया ॥ ५१ ॥

कुर्मोऽनन्तं स च क्षीणीं समुद्रान् सप्तपर्वतान् । सर्वांश्चैवश्मरूपानानारूपविभक्तित्त-
 यतः सर्वाणि भूतानि लीयन्नेऽन्ते च तत्र च । इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्तति-
 भष्टाविंशच्छक्रपाते ब्रह्मणश्चेत्यहर्निशम् । अष्टाधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशती ॥ ५४
 युगे नराणां शक्रायुरेवंसंख्यापिदोषिदुः । पर्वत्रिंशद्दिनैर्मासोद्वाभ्यान्ताभ्यामृतः स्मृत-
 ऋतुभिः पद्भिरेवाब्दं शताब्दं ब्रह्मणो वयः । ब्रह्मणश्च निपाते च बभ्रुर्नमीलनं हरे-
 बभ्रुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः । प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च वरावराः ।
 लीनाधातरि धाता च धीरुष्णनाभिपङ्कजे । विष्णुः क्षीरोदशापी च यैकुण्ठेयधनुर्भुज-
 विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः । रुद्राद्यामेवाद्याश्च यावन्तश्च शिवातुंगा-
 शिवाधारे शिवेलीना ज्ञानानन्दे सनातने । ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चारमनः ॥
 तस्य ज्ञानविलीनश्च यमूय च क्षणं हरेः । दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वेशकण-
 सा च कृष्णस्य युद्धी च युद्धयधिष्ठातृदेवता । नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो यश्चित्तस्य च
 धीरुष्णांशश्च तद्वाही देवाधीशो गणेश्वरः । पद्मांशान्वापि पद्मायां सा राधायाश्च सुप्रते-
 गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वाश्च देवयोयितः । कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु सा स्थिता
 स्वाधित्री च सारस्वत्यां वेदशास्त्राणि यानि च । स्थिता वाणी च जिह्वायां तस्यैव परमात्मनः
 गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु । तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा धाता द्रुतशनः
 जटराशीं विलीनश्च जलं तद्रसनाग्रतः । यैष्णवाश्च रणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः ॥ ६७ ॥
 किरसपीयूषपायितः । विराट्भुद्रश्च महति लीनः कृष्णे महान् विराट्

तुस्त्रिशोऽध्यायः]

• श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् •

स्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निबिलानि च । यस्य च भ्रुर्निमेषेण महान्ध प्रलयो
ध्रुवमीलने सृष्टिर्मयैव पुनरेव च । यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मीलने ध्ययः ।
ह्यणश्च शताध्वेन सृष्टिस्तत्र लयः पुनः । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च संख्या नास्त्येव सुख
यथा भूतजसाश्चैवा संख्यानाञ्च निशामय ॥ ७१ ॥

भ्रुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वांतरात्मनः । उन्मीलने पुनः सृष्टिर्मयेदेष्वरेच्छया ।

तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥ ७२ ॥

यथा श्रुतं तातयक्त्रान् तथोक्तञ्च यथागमम् । मुक्तयश्च चतुर्यैर्निष्कृताश्च चतुर्यिध
प्रधाना हरैर्मक्तिमुंकोरपि गरीयसी । सालोक्यदा हरैरेका चान्या सान्नायदा
तामीप्यदाचनिर्वाणदात्रीचैवमिति स्मृतिः । भक्तास्तानहिषाञ्छान्तिपिनातन्सेवनावि
सिद्धित्वममरत्त्वञ्च ब्रह्मत्त्वञ्चावहेलया । जन्ममृत्युजराव्याधिमयशोकादिष्वण्डन
दिव्यरूपधारणञ्च निर्वाणं मोक्षं विभुः । मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवार्थिना
भक्तिमुत्तयोः रयं भेदो निरेकलक्षणं ऋणु । त्रिदुर्युधा निरेकञ्च भोगञ्च कृतकर्मण
तत् खण्डनञ्च शुभं श्रीकृष्णसेवनं परम् । तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारञ्च लोकये
पिग्नज्ञं शुभं चोक्तं गच्छन्तसेयथास्तुतम् । इत्युक्त्वा सूर्य्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्प
तस्यै शुभाशिरं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः । इडा यमञ्च गच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य
रुदोद वरणेधृत्वा सद्बुविच्छेदोऽतिबुद्धदः । सावित्रीरोदनं इडा यम पथ कृपामि
तामित्युवाच सन्तुष्टो रुदोद चापि नारद ॥ ८४ ॥

यम उवाच ।

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च मारते । मन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं
गत्वा च स्वगृहं मन्त्रे सावित्र्याश्च व्रतंकुरु । द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारण
ज्येष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम् । शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्याश्च व्रतं
द्वयष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यब्दं पक्षमेव च । करोति परया मन्त्रया सा याति च हरेः प
प्रतिमङ्गलघारे च देवीं मङ्गलचण्डिकां । प्रतिमासं शुक्लपञ्चम्यां पट्यां मङ्गलदायि

गथा आरादुर्गन्तान्त्यो मनसो सार्धसिद्धिनाम् ।

राधा राधे न कारिणी कृष्णमायाधिका प्रियाम् ॥ १० ॥

उपोष्य शुद्धादयः३३ प्रतिमाने धाम्प्रियाम् । विष्णुमाया मगधनीदुर्गां दुर्गतिनारिणीं
प्रहृति जगदस्यां च पतिपुत्रधरीं गतीम् । पतिप्रतापु शुद्धासु गन्धेषु प्रतिमासु य ।
या गारी पूजयेन्मगधया धनसन्तानदेतये । इहलोके सुखं भुजया वाग्यन्ते धीहरेः पद
इत्युत्तया तां धर्मराजोजगामनिजमन्दिरम् । गृहीयाम्नामिर्नसावमावित्रीयनितालय
सावित्री सत्यपत्तः३३ वृत्तान्तः३३ यथाप्रमम् । मन्यांश्चरुगयामासयान्धयांश्चैव नारद
सावित्रीजनकः पुत्रान् संप्राप ये क्रमेण य । श्वशुरः३३भुरी रात्र्यं सावपुत्रम्परेण
लक्षयं सुखं भुजया पुण्यक्षेत्रे च भावते । जगाम स्वामिना सार्धं गोलोकं सा पतिप्रता
सपितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता । सावित्रीचापियेदानांसावित्री तेन कीर्ति
इत्येयं कथितंयत्ससावित्र्याम्यानमुत्तमम् । जीयकर्मविपाकश्च किं पुनःभोतुमिच्छति
इति श्रीप्रलयवैर्त्तं महापुराणे प्रहृतिपण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यानं
नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

लक्ष्म्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

श्रीकृष्णस्यात्मनश्चैव निर्गुणस्य निराहृतेः । सावित्री यमसंवादे धृतं सुनिर्मलं यश
तदुगुणोत्कीर्तनंसत्यंमङ्गलानाञ्चमङ्गलम् । अधुनाभोतुमिच्छामिलक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर
केनादौ पूजिता सापि किम्भूता केन वा पुरा । तदुगुणोत्कीर्तनं सत्यं यद् वेदविदांवर
नारायण उवाच ।

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मनः । देवी वामांशसंभूता यभूव रासमण्डले ॥
सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुसिरयौघना ।
सुखदृश्या मनोहरा । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनानना ॥६॥

शास्त्रमभ्यासराजानां शोभामोघनलोचना । साय वैर्षा द्विषाभूता साहर्षोपेक्षारूपया ॥
 वामा हरेष्य धर्मेन मेकता धरता त्वया । यशसा वासना मूर्ध्या भूमेन गुणेन च ॥
 निम्नेन पोहागेनेव धनसा गमनेन च । मधुरेण स्वरेणेव भवेनानुनयेन च ॥ १ ॥
 तज्जामासा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशायराधिका । राधादौ वरयामास द्विभुजश्च वाराणसम् ॥
 महालक्ष्मीश्च लक्ष्म्यान् वक्तव्यं वक्तव्यवत् । हृत्पद्मसङ्घर्षेणैव द्विषाकां वभूव ह
 दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च वनुर्भुजः । वनुर्भुजाश्च द्विभुजां महालक्ष्मीं दर्शयितुम् ॥
 लक्ष्मणेन्दुरनेपिभ्योऽप्यहं वयाभिराम् । दर्शयितुं पागमदती महालक्ष्मीश्च सागमता ॥
 द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्च नुर्भुजः ।

गोलोके द्विभुजस्तस्यां गोलोर्गोपीजिरातुः ॥ १४ ॥

वनुर्भुजश्च पैकुण्डे प्रपद्यो पद्मया सह । सार्धां देन गर्भां लीढीं हृत्पद्मरागयणीं पगी ॥
 महालक्ष्मीश्च योगेन भाग्यकृता वभूव सा । पैकुण्डे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा परा ॥
 शुद्धरत्नस्यकरा च सर्वर्षीमायमर्गयुता । मेघा साय प्रधानाय सार्धां तु रमणीयुध ॥
 स्यर्गो ॥ स्वर्गलक्ष्मीश्च शकस्यस्यकरिणी । पातालेषु मर्षेषु राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥
 गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहणी च कन्दाशया । मन्त्रस्यकरा गृहिणां सत्पद्मलक्ष्मीश्च ॥
 गयीं प्रभुः सा सुरमीदक्षिणापन्नकामिनी । शिरोदेशिषुष्यवासा धीकरापद्मिनीपुत्र ॥
 शोभाकरा च शत्रे च सूर्यमण्डलमण्डिता । पिभूरणेपु रतेषु कलेषु च जलेषु च ॥
 नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यतीषु गृहेषु च । सत्पद्मस्येषु वस्त्रेषु रथानेषु सन्त्येषु च ॥ २५ ॥
 प्रतिमासु च देवानां मन्त्रेषु घटेषु च । मानिषेषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥
 मर्षान्देषु च हरेषु शीरेषु धन्वनेषु च । वृक्षशाखासु रथ्यासु तपस्येषु पस्तुषु ॥ २६ ॥
 पैकुण्डे पूजिता सार्धां देवी नारायणेन च । द्वितीये प्रायणा भनया मृतीयेरादूरेण च ॥
 विष्णुना पूजिता सा च शीरोदे भारते मुने । स्वात्मधुनेन मनुना मानयेन्द्रैश्च सर्वतः ॥
 शरीन्द्रेण मुनीन्द्रैश्च मद्भिरगृहेभिर्मयेन । गन्धर्वाद्यैश्च नगाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥
 शुक्राष्टम्यां माद्रपदे कृता पूजा च प्रहारा । भवया च पश्यन्ती त्रिषु लोकेषु नारद ॥
 चैत्रे पौषे च माद्रे च पुण्ये मङ्गलघःसरे । विष्णुनानिमिता पूजात्रिपुरोक्तेषु भक्तिः ॥
 वर्षान्ते पौषमंकान्त्या मेच्यामावासा माद्रणे । मनुस्तां पूजयामास सामूना भुवनप्रये

राजेन्द्रेण पूजिता सा मङ्गलेनैव मङ्गला । केतारेणैव मीलेन मलेन सुवनेन च ॥३१॥
 धूपेणीशानपादेन शङ्गेण चञ्जिता तथा । कश्यपेन च दशेन मनुना च विराधना च
 प्रियवसेन मन्त्रेण कुयेरेणैव घागुना । यमेन चङ्गना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥ ३२ ॥
 एवं सर्वत्र सर्वेभ्यः चन्द्रितापूजितास्तदा । सर्वेभ्यश्चाधिदेवी सा सर्वसम्पत्सकृपिणी
 इति धीप्रदीपसंगुणम् महापुराणे प्रहसितपाठे नारायणनाम्नैवादे लक्ष्म्युपाख्याने
 पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

पट्त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रं प्रति दुर्वाससःशापः ।

नारद उवाच

नारायणप्रिया सा च परा वैकुण्ठवासिनी । वैकुण्ठाधिष्ठात्रीदेवी महालक्ष्मीःसनातनी
 कर्पं यभूषसादेवीपृथिव्यासिन्धुफन्यका । किंलक्ष्म्यान्वयकषचं सर्वपूजाविधिकमम् ॥
 पुरा केन स्तुतादी सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

नारयण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापात् भ्रष्टश्रीकः पुरन्दरः । यभूय देवसंघश्च मर्ष्यलोकश्चनारद ॥४॥
 लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्तयागपराधमुःखिता । गत्वालीनाचवैकुण्ठमहालक्ष्म्याञ्जनारद ॥
 तदा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ग्रहणःसभाम् । ग्रहणञ्च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥
 वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे । अतीवदैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठोष्टतालुकाः ॥
 तदा लक्ष्मीश्चकलयपुरानारायणाश्रया । यभूवसिन्धुकन्यासा शक्तसम्पत्स्वरूपिणी ॥
 तदा मयित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह । संप्रापुश्चवरंलक्ष्म्या ददृशुस्ताञ्चतत्र हि ॥
 सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा घग्मालाञ्च विष्णवे । ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशाग्निने ॥
 देवाश्चाप्यसुरप्रस्तं राज्यं प्रापुश्च तद्वरात् । तां सम्पूज्यचसस्त्यसर्वत्रच निरापदः ॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरन्दरम् । केन दोषेण वाग्व्रजं ब्रह्मिष्ठं ब्रह्मवित् ॥
ममन्धे केन रूपेण जलधिस्तैः सुपदिभिः । केन स्तोत्रेण सादेयी शकसाक्षाद्बुधम् ॥

को या तयोश्च संवादी यद्बुध सद्बुध प्रभो ॥ १४ ॥

नारायण उवाच

मधुपानममस्तस्य प्रेलोक्ष्याधिपतिः पुरा । ऋद्धिं चकार रहसि रम्भया सह का
वृत्त्या प्रीडां तया सार्द्धं कामुक्तादृतचेतनः । तस्यैतन्महारण्ये कामोन्मथितचेत
कैलासशिखरं यान्तं यैकुण्ठाद्विष्णुचमम् । दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं प्रहृतेज
प्रीप्समध्याह्नमार्तं गङ्गसहस्रप्रममीरयम् । यतस्तकाञ्चनाकारं जटाभारं महोऽञ्चल
शुक्लपक्षोपधीतश्च खीरं दण्डं कमण्डलुम् । महोऽञ्चलश्च तिलकं विभ्रतंचन्द्रसन्निभ
समन्वितं शिष्यवर्गोपदेद्याङ्गपारगैः । इडा ननाम शिरसा सम्प्रमासं पुरन्दरः ।
शिष्यवर्गश्च भक्त्या च तुष्टावचमुदन्वितः । मुनिनाचसशिष्येण तस्मै दत्तं शुभा
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पञ्च सुमनोहरम् । जराभृत्युरोगशोकहरं मौक्षकरं परम् ।
शक्रः पुण्यं गृहीत्वा च प्रमत्तो राजसम्पदा । स्रमेण स्यापयामास तदेव हस्तिप्रस
हस्ती स्रग्वर्षामात्रेण रूपेण च गुणेन च । तेजसा वयसा कान्त्या विष्णुमुच्यो यद्बुध
त्यनया शक्रः गजेन्द्रश्च जगाम धोरकाननम् । न शशाकः महेन्द्रस्तं रश्मिर्न तेजसा
तत्पुण्यं त्यक्तवन्तश्च इहा शक्रः मुनीश्वरः । तमुवाच महारथः शशाप स स्यान्नि

मुनिरयाच

भरे धिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवगम्यसे । मदत्तपुण्यं दत्तञ्च तर्पणं हस्तिप्रस्तके
विष्णोर्निवेदितं पुण्यं नैवेद्यं चाफलं जलम् । प्राप्तिप्राप्तेन भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्मदा
स्रष्ट्रीर्षष्टपुद्गिश्च स्रष्ट्रानो भवेन्नरः । यस्त्यजेद्विष्णुर्नैवेद्यं भाग्येनोपम्वितं शु
प्राप्तिप्राप्तेन यो भुङ्क्ते भवयाविष्णुर्निवेदितम् । पुंसां शतं समुद्रं त्यज्जीवन्मुक्तः स्वयं
विष्णुर्नैवेद्यमोत्रीयो नित्यन्तु प्रणमेद्वरि । पूजयेत्स्त्रीतिवामनयासविष्णुसदृशो
तत्पुण्यं चापुना सद्यः तीर्थीयथायिमुच्यते । तत्पादरजसा मृदं सद्यः पूजा यमुच्यते

पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्राद्यान्नमेव च । यद्वरेरनिवेद्यञ्च वृथामांसममक्षकम् ।
 शिवलिङ्गप्रदात्तान्नं यदन्नं शूद्रयाजिनाम् । चिकित्सकद्विजानाञ्च दैवलाघ्रं तन्नं
 कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम् । अनुष्णान्नं पर्युषितं सर्वभक्ष्याद्यनेन
 शूद्रापति द्विजान्नं च वृथया ह द्विजान्नकम् । अदीक्षितद्विजाद्यञ्च यदन्नं शवदाहि
 भगव्यागामिनाञ्चैव द्विजानामन्नमेव च । मित्रद्रुहां हृतघ्नानामन्नं विश्वासघाति
 मित्यासाक्षिप्रदानाञ्च ब्राह्मणानां तथैव च । पतत्सर्वं विशुद्धेत विष्णुनैवेद्यमक्षकं
 विष्णुसेवी च श्वपचो वंशानां कोटिमुद्धरेत् ।

हरेरभक्तो विप्रश्च स्वश्च रक्षितुमक्षमः ॥ ३९ ॥

भक्षानाद्रुपदिगृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च । सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र सं
 भ्रात्याभक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र सं
 यस्मात् संस्थापितं पुण्यं गर्वेण हस्तिमस्तके ।

तस्माद् युष्मान् परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥ ४० ॥

नारायणस्वमतोऽहं विनेमीश्वरं विधिम् । कालं मृत्युं जराञ्चैव कानन्दान् गणपतिं
 किं करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः । बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्वयमेव हरे
 इदं पुण्यं यस्य मूर्ध्नितस्यैव पूजनं पुरः । मूर्ध्निच्छिन्ने शिवशिरोशिख्येर्द्वयोऽविष्य
 इति श्रुत्या मदेंद्रश्च धृत्या तथरणद्वयम् । उच्चैरुद शोकात्तः तमुवाच भगवानुत

इन्द्र उवाच ।

दत्तः समुचितः शापो मह्यं मत्ताय हे प्रभो । हतायवाचेन सम्पत्तिः कियत्तज्ज्ञानमद्वैत
 ऐत्यर्घ्यं विपदार्थाञ्च प्रच्छन्तज्ज्ञानकारणम् । मुक्तिमार्गमलं दातव्यं हरिमतिप्रयाप
 जन्ममृत्युजरांशुगणकदुःखाङ्कं परम् । सम्पत्तिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति
 सान्मत्तः शुभद्वयं शुरामत्तः सचेतनः । बान्धवैर्वैरिनः सोऽपि यन्मुद्रेण करो
 सान्मत्तदे प्रमत्तश्च विरयान्धश्च विह्वलः । महाकामी राजसिकः सत्यमार्गं न पश्यति
 द्विविधो विरयान्धश्च राजसन्तापसः शून्यः । अशास्त्रज्ञस्त्नामसश्चाशान्त्रांराजसः स
 शास्त्रे च द्विविधं मार्गं निर्दिष्टं मुनिपुङ्गव । प्रवृत्तिर्वीजमेव च निवृत्तेः कारणं परम्

रन्ति जीवितश्चादौ प्रवृत्तौ दुःखवर्त्मनि । स्वच्छन्दे च प्रसन्नेचनिर्घिरोधेच सन्ततम्
 रापातमधुरे लोभात् क्लेशेच सुखमानिनः । परिणामनाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥५५॥
 स्नेकजन्मपर्यन्तं कृत्वा च भ्रमणं मुदा । स्वकर्मविहितायाञ्च नानायोग्यां वामेण च ॥
 ततः कृष्णानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते जनः । सहस्रेषु शतेष्वेको भयान्निपारकारणम् ॥
 ज्ञाथुः सत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् । तदा करोति यज्ञञ्च जीवी बन्धनखण्डने ॥
 प्रनेकजन्मयोगेन तपसानशनेन च । तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखं परम् ॥ ५६॥
 त्वं श्रुतं शुरोर्ध्वनात् प्रसङ्गावसरेण च । न हि पृथमतोऽन्यथ भयजज्ञालयेद्वितः ॥६०॥
 प्रधुना विधिना वृत्तौ विपत्तौ ज्ञानसागरः । सम्पद्गुण विपदियं मम निस्तारकारिणी ।
 ज्ञानसिन्धोदीनयन्धो मह्यं दीनायसाम्प्रतम् । देहि किञ्चित् ज्ञानसारं भयपारं दयानिधे
 तद्रस्य घनं श्रुत्या प्रहस्य ज्ञानिनां गुरुः । ज्ञानं कथितुमारभे ह्यतितुष्टः सनातनः ॥

मुनिरवाच ।

महो महेंद्रमाङ्गल्यं मार्गेष्टं द्रष्टुमिच्छसि । आपातदुःखपीडञ्च परिणामसुखायहम् ॥
 स्वगर्भयातनानाशपीडाखण्डनकारणम् । दुष्पारासारदुर्धार-संसारार्णवतारणम् ॥६५॥
 कर्मवृक्षाङ्कुरच्छेदकारणं सर्वतारणम् । सन्तोषसन्ततिकरं प्रवरं सर्वघर्त्मनाम् ॥ ६६ ॥
 दानेन तपसा वापि भतेनानशनादिना । कर्मणा स्वर्गभोगादिसुखं भवति जीविनाम् ॥
 पूर्वकाम्यकर्मणाञ्च मूलं संछिद्य यत्नतः । अधुनेदं मोक्षपीठं संकल्पाभावे एव च ॥६८॥
 यत्कर्म सार्विकं कुर्यादसंकल्पितमेव च । सर्वं कृष्णार्पणं कृत्वा परे ब्रह्मणि लीयते ॥
 संसारिकाणामेतत् निर्वाणमोक्षणं विदुः । नैच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सैवाविरहकातराः
 सैवां कुर्वन्ति ते नित्यं विधाय देहमुत्तमम् । गोलोके वाप्यैकुण्ठेस्त्वेव परमात्मनः ॥
 हरिसेवादिरूपाञ्च मुक्तिमिच्छन्तिवैष्णवाः । जीवन्मुक्ताश्च तेशास्त्वकुलोद्धारकारिणः ॥
 स्मरणं कीर्तनं विष्णोरर्चनं पादसेवनम् । वन्दनं स्तवनं नित्यं भक्त्या नैवेद्यमक्षणम् ॥
 चरणोदकपानञ्च तन्मन्त्रजपनं परम् । इदं निस्तारपीडञ्च सर्वपापीप्सितं मवेत् ॥७२॥
 इदं मृत्युञ्जयं ज्ञानं दत्तं मृत्युञ्जयेन मे । तच्छिष्योऽहञ्च निःशङ्कः सन्प्रसादाद्यसर्वतः ॥
 स जन्मदाता स गुरुः स चकधुःसर्तापरः । योददातिहरेर्मक्तिं त्रैलोक्येच मुदुर्लभाम् ॥

यशोदेन्यमार्गश्च श्रीकृष्णमेव न विना । न न मायाकयेन ध्रुवं गच्छमान् भवेत् ।
 सन्तनं जगतो कृष्णनाम महन्तकारणम् । महन्तं वर्तने निर्यं न भवेद्वायुसो ह्यः ।
 तेभ्योऽप्यरेति कालश्चमृद्युश्चरोगणयन । मन्त्राग्नैवराशोकश्च सैनतेरादियोगाः ।
 कृष्णमन्त्रोपासकश्चप्राप्तयः श्यर्योऽपिवा । प्रह्लादोक्तंममुत्तद्वयपानिगोलोक्तमुत्तम् ।
 प्रह्लादा पूजितः सोऽपि मनुपरादिना च ये । स्तुतःसुरैश्चमिदंश्वशमानन्दमायनः ॥
 मानसारं तप सारं प्रह्लासारं परं शिवम् । शिवेनोक्तं योगसारं श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
 प्रह्लादिगुणपर्यन्तं सर्वं मिषैव म्यत्रयम् । मज्ज मय्यं परं ब्रह्म राधेरां प्रह्लादेः परम् ॥
 कर्तीय सुखदं सारं भक्तिदं मुक्तिदं परम् । सिद्धियोगप्रदश्चैव दातारं सर्वमम्यदाम् ॥
 योगिनामपिसिद्धानांयतीनाञ्चनरम्यिनाम् । सर्वैराकर्मभोगोऽस्तिनारायणसेविनाम् ।
 भस्मसाद्य भवेत् पापं यदुपस्परांमात्रतः ।

ज्यलद्रौ पातिनश्च यथा शुष्येन्धनं तथा ॥८६॥

तनो रोगाहि वेपन्ते पापानि च भयानि च । दूरतश्च पलायन्ते यमदृता यतो मयात् ॥
 तायन्निषद्वः संसारे कारागारे विधेर्जनः । न वायत् कृष्णमन्त्रश्चराप्नोति मुख्यवप्रतः ॥
 कृतकर्मभोगरुप निगङ्गच्छेदकारणम् । मायाजालोच्छेदकरं मायापाशनिहन्तनम् ॥८७॥
 गोलोकमार्गसोपानं निस्तारधीजकारणम् । भवपङ्कुरस्वरूपश्च निर्यं वृद्धमनश्चरम् ॥८८॥
 सारश्च सर्वतपसां योगानाञ्च तथैव च । सिद्धीनां वेदपादानां व्रतादीनाञ्च निश्चितम् ॥
 दानानां तीर्थस्नानानां यज्ञादीनां पुरन्दर । पूजानामुपवासनामित्याह कमलोद्भवः ॥८९॥
 पुंसां लक्षपितृणाञ्च शतं मातामहस्य च । पूर्वं परञ्च तन् संख्यं पितरं मातरं गुप्सु ॥
 सहोदरं फलत्रञ्च यन्धुं शिष्यञ्च किङ्करीम् । समुदरेष्व भवशुरं भवभूं कन्याञ्चतन्मुत्तम् ॥
 स्वात्मानश्च सतीर्थञ्च गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् । उदरेह बलवान्मकोमन्त्रग्रहणमात्रतः ॥
 मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । तत्स्पर्शापूतस्तीर्थोद्यः सद्यःपूतायसुन्धरा ॥९०॥
 अनेकजन्मपर्यन्तं दीक्षाहीनो भवेन्नरः । तदभ्यदेवमन्त्रश्च लभते पुण्यलेशतः ॥९१॥
 सतजन्मोपदेवानां कृत्वा सेवांस्वकर्मतः । लभते च रेवेर्मन्त्रंसाक्षिणः सर्वकर्मणाम् ।
 जन्मत्रयं भास्करश्च निसेव्य मानवः शुचिः । लभेद्भजेतमन्त्रश्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥९२॥

मत्रयं तं निसेष्य निर्विग्रह्य भवेन्नरः । विघ्नेशस्य प्रसादेन दिव्यज्ञानं लभेन्नरः ॥ १०॥
 ज्ञानप्रदापेन समालोच्यमहामतिः । भग्नानान्यथमदित्या मदाभ्यां भजेन्नरः ।
 स्युमायाञ्चकृतिदुर्गा दुर्गतिनाशिनीम् । सिद्धिदांसिद्धिरूपाञ्चपरमांसिद्धियोगिनीम्
 र्गिरूपाञ्च पद्माञ्च भद्राङ्कणप्रियात्मिकाम् । नानारूपांतां निसेष्य जन्मनाशकं नरः ॥
 प्रसादाद्भवेन्नरः ज्ञानानन्दं तदा भजेत् । कृष्णमानाधिदेवञ्च महादेवं सनातनम् ॥
 शिवस्वरूपञ्च शिवदं शिवकारणम् । परमानन्दरूपञ्च परमानन्ददायिनम् ॥ १०५॥
 दं मोक्षदं चैव दातारं सर्वसम्पदाम् । ममरत्यप्रदञ्चैव दीर्घमायुषदं परम् ॥ १०६॥
 त्वञ्च मनुष्यञ्च दातुं शक्तञ्च लीलया । राजेन्द्रन्यप्रदञ्चैव ज्ञानदं हरिभक्तिदम् ॥ १०७॥
 त्रयं तन्नाशक्य बाधुनोपप्रसादतः । सर्वदस्य प्रसादेन शङ्करस्य महारमनः ॥ १०८॥
 स्य घरेणैव हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम् । तदा तद्भक्तसंसर्गात् कृष्णमन्त्रं लभेद् ध्रुवम् ॥
 लज्ञानदीपेन प्रदीपेन च तत्त्वयिन् । प्रह्लादितृणपत्त्यन्तं सर्वमिच्छेयपश्यति ॥ ११०॥
 नेत्रैः प्रसादेन निर्मालज्ञानमालोभेत् । घरदस्य घरेणैव हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥
 तदा निवृत्तिमाप्नोति सारात्सारं परात्पराम् ।
 यत्र देहे लभेग्नमन्त्रं तदेहावपि भारते ॥ ११२ ॥
 तथाश्चभौतिकं त्यक्त्वा विभक्तिं दिव्यरूपकम् ।
 करोति दास्यं गोलोके चैकुण्ठे वा हरेः पदेः ॥ ११३ ॥
 म्दसंयुक्तो मोहादिषु विवर्जितः । न विद्यते पुनर्जन्म पुनरागमनं हरे ॥ ११४॥
 न विषेन्क्षीरं धृत्वा मातृस्तनं परम् । विष्णुमन्त्रोपासकानां शङ्खाद्वितीयं सेविनाम् ॥
 मगञ्च मिश्रणां पुनर्जन्म न विद्यते । तोर्येणैव त्रिजेत्पापं क्रियां हृत्या हरिं भजेत् ॥
 कपितो धात्रा स्वधर्मस्तीर्थसेविनाम् । कृष्णमन्त्रं प्रजपेत्तत्सेवादिषु तत्परः ॥
 पयासत्त इत्युक्तो विष्णुसेविनाम् । सद्गते वाकदन्तेवालोष्टे वाकाञ्चने तथा ॥
 देवस्य शयनसन्निधासीति कीर्तितः । दण्डं कम्पण्डलुं रक्तवस्त्रमात्रञ्च धारयेत् ॥
 वासी नैकत्र स सन्निधासीति कीर्तितः । शुद्धाचारद्विजात्रञ्च भुङ्क्ते लोमादिष्वर्जितः
 कञ्चिन्नयाचेतस सन्निधासीति कीर्तितः । नय्यापासीनाग्रमीचसर्वकर्मविवर्जितः ॥

ध्यायेन्नागपर्वशायनगमन्यासीनिकीर्तितः । शान्तमौनीप्रह्वनासीनमात्रपरिवर्जितः ।
 सयं प्रह्वमयं परयेन् समन्यासीनिकीर्तितः । सर्वत्रगममुदिभृहिसामायादिवर्जितः ।
 पोषाहद्वारदिनः सतन्यासीनिकीर्तितः । भयानिर्नापम्बितमिष्टामिष्टप्रभुनयम् ।
 ॥ याचनेमहतापीतसन्त्यासीनिकीर्तितः । भयपरयेन्मुर्वग्रीयान् तिष्ठेत्तत्समोपतः ।
 हार्यामपि योषाश्च न स्पृशेन् य.समिश्रुकः । भयंनन्यामिनांघर्मत्याहकमन्योद्वहः ।
 विपर्व्यथे पिनाशश्च जन्म याभ्यं भवं मयेन् । जन्मदुःखं पाप्यदुःखंजीविनामतिशरुणम् ।
 सुरशृङ्गायोनीं वा गर्भं दुःखं समं सुर । योनीं वा शुद्धमनुनां परयादीनां तथैव च ।
 गर्भं स्मरन्ति सर्वे ते धामं जन्मराणोद्वयम् । विस्मरेन्निर्गतोर्जीयोगमांघ.विष्णुमायया ।

स्वदेहं पालि यदेन सुगे वा फीट एव वा ॥१२६॥

योनेरन्यन्तरे शुके पतिने पुरयस्य च । शुक्रः शोभितयुक्तश्च सहसा तत्क्षरणं मयेन् ।
 रक्ताधिके मातृसमरचेतरे पितुराहतिः । युग्माहे च भवेन् पुत्रः कन्यकातद्विपर्व्यथे ।
 रविभौमगुरुणाश्च वारे चेत्तद्वयेत् सुतः । भयुग्माहे तदितरे वारे च कन्यका मयेन् ।
 प्रथमप्रहरे जन्म यस्य सोऽल्पागुरेव च । द्वितीये मध्यमद्वयं तृतीये तत्परो भवेत् ।
 चतुर्थे चित्जीयी च क्षणानुरूपको भवेत् । दुःखी वापि सुखी वापि पूर्वकर्मानुरूपतः ।
 यादृशो च क्षणे जन्म प्रसयस्तादृशे भवेत् । प्रसूतिक्षयचर्वाश्च कुर्यन्त्येव विवक्षणाः ।
 कललन्त्येकपत्रेण घट्टयेद्य दिने दिने । सप्तमे घट्टाकारो मासे गण्डुसमो भवेत् ।
 मासत्रये मांसपिण्डो हस्तपादादिवर्जितः । सर्वाययवसम्पन्नो देही मासे च पञ्चमे ।
 भयेत्तु जीवसञ्चारः पण्मासे सर्वतश्शवित् । दुःखी स्वल्पबलस्थायीशकुन्तलपिञ्जरे ।
 मातृजघान्नपानश्च भुङ्क्तेमेध्यस्थलेस्थितः । हाहेतिशब्दं कृत्वाचचिन्तयेद्दीश्वरं परम् ।
 एवञ्च चतुर्ते मासान्भुक्त्वापरमयातनाम् । प्रेरितोवायुनाकालेगर्भाश्च निर्गतोभवेत् ।
 दिग्देशकालाप्युत्पन्नोविस्मृतोविष्णुमायया । शश्वद्विष्णुत्रसंयुक्तः शिशुश्च शैशवावधि
 परायत्तोऽप्यक्षमश्च मशकादिनिवारणे । फीटादिमुक्तो दुःखी च रीति तत्र पुनःपुनः ।

स्तनान्धोऽप्यसमर्थश्च याचत्रां कर्तुमगोप्सितम् ।

न पाणी निःसरेत्तस्य पीगण्डावधि प्रस्फुटा ॥१४३॥

तिगण्डे यातनां भुक्त्वा प्राप्नोति यौवनं पुनः । नस्मरन्माययादेहीगर्मादिपातनान्पुनः ॥
 गहात्तमैधुनार्त्तश्च नानामोहादिवेष्टितः । पुत्रं कलत्रमनुगं यज्ञेन परिपालयेत् ॥१४५॥
 एवं यावत् समर्थश्च तावदेव हि पूजितः । असमर्थश्च मन्यन्ते बान्धवा गोजरं यथा ॥
 रक्षाऽतीव अरायुक्तोज्झोऽस्तिचधिरोभवेत् । काशश्वासादियुक्तश्च वरायसोऽतिमूढश्च
 तदन्तरेऽनुतापश्च करोति सन्ततं पुनः । न सेवितो हरेस्तोयं सन्सङ्गश्चापि कामतः ॥
 दूतश्च मानसो घोरं लभामि भारतेयदि । तदातीर्थंगमिन्प्राप्तिमिहामि कृष्णमित्यहो ॥
 त्वेयमादि मनसि कुर्वन्तं तं जडं सुर । एकाति यमदूतश्च काले प्राप्तेऽतिशयव्यथः ॥
 स पश्येद्यमदूतश्च पाशाहस्तश्च दण्डिनम् । भतीयकोपरकाशं विहृताकारमुत्थणम् ॥
 दुर्निवार्यमुपायैश्च बलिष्ठश्च भयङ्करम् । दुर्दृष्टं सर्वसिद्धिहं सर्वोद्वर्गपुरःस्थितम् ॥१५२॥
 दृष्टिमात्रमहाभीतां विष्णुञ्च समुत्सृजेत् ।

तदा प्राणास्त्वजेन् सद्यो देहश्च पाञ्चभीतिकम् ॥ १५३॥

भङ्गुष्ठमात्रं पुराणं पृथीत्या यमकिङ्करः । विन्वस्य भोगदेहे च स्वस्थानप्रापयेत् दूतम् ॥
 जीवो गत्वा यमं पश्येत् सर्वधर्मममेव च । रत्नसिंहासनस्थश्च सस्मितसुस्थिरपरम् ॥
 धर्माधर्मविचारतं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम् । विश्वेष्टेकाधिकारश्च विधात्रा निर्मितं पुरा ॥
 बह्निगुह्यायुकाधारेण रत्नभूषणभूषितम् । वेष्टितं पार्यदगणेर्दूतैश्चापि त्रिकोटिभिः ॥१५७॥
 जपन्तं श्रीकृष्णनाम शुद्धस्फाटिकमालया । ध्यायमानं तत्पदाब्जं पुनकाङ्क्षितविग्रहम् ॥
 सागद्गद् साधुनेत्रं सर्वत्र समदर्शिनम् । भतीय कमनीयश्च शय्यत्सुस्थिरर्षोचनम् ॥१५८॥
 स्थितेजसा प्रज्वलन्तं सुसदृश्यं विचक्षणम् । शरत्पार्वणचन्द्रामं चित्रगुप्तपुरःस्थितम् ॥
 पुण्यात्मनां शान्तरूपं पापिनाञ्च भयङ्करम् । तं दृष्ट्वा प्रमणेदेहो मदाभीतश्च तिष्ठति ॥
 चित्रगुप्तविवारेण वेणोयदुचितं फलम् । शुभाशुभञ्च कुरुते तदेव रचिनन्दनः ॥१६२॥
 एवं तेषां गतायते निवृत्तिर्नास्तिभीतिनाम् । निवृत्तिहेतुरूपञ्च श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
 इत्येतत्कथितं सर्वं यत्प्रार्थयवाञ्छितम् । सर्वं दास्यामि तेवत्समयेऽसाध्यञ्चकिञ्चन ॥

महेन्द्र उवाच

इन्द्रत्वं च गतं भद्रं किमैश्वर्यं प्रयोजनम् । कल्पवृक्ष मुनिप्रेष्ठ देहि मे परमं पदम् ॥

महेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मस्य मुनिपुङ्गवः । तदुवाच वचः सत्यं वेदोक्तं सारमे

मुनिव्याच

परं पदं विषयिणां महेन्द्रातिमुदुर्लभम् । मुक्तिर्गुण्यद्विधानाञ्च न लये प्राकृतेऽपि
आविर्भावः सृष्टिविधौ तिरोभावो लोपऽपि च । यथा जागरणं सुप्तिर्भवेत्येव ब्रह्मेण
यथा भ्रमति कालश्च तथा विषयिणो ध्रुवः । चक्रेनेमिक्रमेणैव नित्यमेवेत्यरेण्य
पलमेकं भवेदेव यथा विपलपट्टिभिः । पट्टिभिश्च पलैर्दण्डो मुहूर्त्तौ द्विगुणतः
त्रिंशद्विधश्च मुहूर्त्तैश्च भवेदेव दिवानिशम् । दशऽञ्चद्वियारात्रिः पक्षमेकं विंदुर्गुणः

पञ्चाभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां मास पञ्च विधीयते ।

ऋतुर्द्वाभ्याञ्च मासाभ्यां संख्याविद्धिः प्रकीर्तितः ॥ १७२ ॥

ऋतुत्रयेणायनञ्च ताभ्यां द्वाभ्याञ्च वत्सरः । विशतद्व्यधिकाधिकं त्रियत्वारिंशलक्षं
पत्सरैर्नरमानैश्च युगाश्चत्वार एव च । पट्षष्टधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशते

युगे नराणां शक्रायुर्मनोरायुः प्रकीर्तितम् ॥ १७३ ॥

द्विलक्षेन्द्रनिपातेऽष्टसहस्राधिक एव च ॥ १७४ ॥

निपातोद्ब्रह्मणस्तत्र भवेत्प्राकृतिको लयः । लये प्राकृतिके वत्स कृष्णस्य परमात्मनः
चक्षुर्निर्मेगः सृष्टिश्च पुनरुन्मीलने तथा । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च संख्या नास्ति ध्रुवो भूतः
यथा पृथिव्यारेणूनामित्याह चन्द्रशेखरः । एतेषां मोक्षणेनास्ति कथितानि चयावि
शृष्टिरूपस्यैकां दिं चान्यदृष्टुं शक्यं । मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा देवेन्द्रो विस्मृतो मुने
भाटमनः पूर्यमेष्यं परयामास तत्र वै । तत्प्राप्स्यस्य चिरेणैवेत्युक्त्वा ॥ प्रययौ गृहम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे ब्रह्मविद्यायां मुनीन्द्रसुरेन्द्रसंवादे लक्ष्म्युपाख्याने

षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्य ज्ञानप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

ज्ञेयं समाकर्ण्य ज्ञानं प्राप्य पुरन्दरः । किञ्चकार गृहं गत्वा तन्मेव्यासवानुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

ऽप्यस्यगुणं श्रुत्वा धीतरागो यभूय सः । वैराग्यं यद्वयामास तद्वाग्रहन् विनेदिने ॥
स्थानाद्गृहं गत्वा स ददर्शांमरायतीम् । दैत्यैरसुरस्तृह्णैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥
गणान्धयां कुत्र यन्धुहीनाञ्च कुत्रचित् । पितृमातृकलत्रादि विहीनामतिवञ्चलाम् ॥
स्ताञ्च तां दृष्ट्वा जगामचाक्षयति प्रति । शम्भो मन्दाकिनी तैरि ददर्शगुह्यमीध्वजम् ॥
मानं परंप्रज्ञं गङ्गातोषे स्थितं परम् । सूर्यामिसंमुखं पूर्वमुखञ्च विश्वतोमुखम् ॥
नेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् । परिप्लञ्च गरिप्लञ्च धर्मिष्ठमिष्टसेवितम् ॥ ३॥
इ यन्धुवर्गानामतिश्रेष्ठञ्च ज्ञानिनाम् । अश्रेष्ठञ्च यन्धुवर्गानां नेष्टञ्च सुरवैरिणाम् ॥
गुरुं जगन्तञ्च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः । प्रहराम्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥
। चरणाम्भोजे दरोदोर्ध्वमुदुमुदुः । वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मराषादिकं तथा ॥
ते मया लब्धो ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् । वीर्यस्ताञ्च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥
स्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः । बृहस्पतिव्यावेदं कोपरक्तात्लोचनः ॥

गुरुत्वाव ।

यं सुरश्रेष्ठं मारोदीर्वचनं शृणु । न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन ॥
। र्मा विपत्तिर्वा नश्यरास्वप्ररूपिणी । पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयंकर्तातयोरपि ॥
३ भ्रमत्येव शश्वजन्मनि जन्मनि । चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेयता ॥ १५॥
॥ स्वकृतं कर्म सर्वत्र चापि मारते । शुभाशुभञ्च यत्किञ्चित् स्वकर्मफलमुक्त्वा पुमान् ॥
क्षीयते कर्म फल्यकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

इत्येवमुक्तं मेदे न कृत्तेन परमात्मना । नास्ति कीदृशमगात्मा मन्त्रोऽत्र स्थापितोऽत्र
जन्ममोहापरोक्षे च सर्वेणा इत्यर्थमेषाम् । अनुस्यञ्ज नमश्च मातेऽस्य चैव हि ।
कर्मणा प्रत्यशापञ्च कर्मणा न शुभाशिराम् । कर्मणा न महाऽश्वमी मन्त्रेऽस्य कर्मणा
कोटिगुणान्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति । न हि त्यजेज्जिना भोगान् संजायेत पुनर ।
फालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् । भूतग्रासिजना वानि मन्त्रेदेव हि कर्मणाम् ।
पस्तुदाने च घम्भूनां समं पुण्यं समे रिने । दिनभेदे कोटिगुणमर्मन्त्रं वाचितं तत् ।
समे देशे न घम्भूनां दानं पुण्यं समं सुर । देशभेदे कोटिगुणमर्मन्त्रं वाचितं तत् ।
समे पात्रे समं पुण्यं घम्भूनां चक्षुरेव च । पात्रभेदे शतगुणमर्मन्त्रं वा ततोऽधिकम् ।
यथा फलन्ति शम्भानि भूतानि वाधिकानि च । इत्युक्ताणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदेफलं तथा
सामान्यदिपत्ते विप्रे दानं समफलं भवेत् । भमार्या रविर्मन्त्रान्त्या फलं शतगुणमर्मेत्

घातुमांस्यां पूर्णमास्यामनन्तफलमेव च ॥ २७ ॥

ग्रहणे शशिनः कोटिगुणञ्च कर्ममेव च । सूर्यस्य ग्रहणे चापि ततो दशगुणं फलम् ।
भक्षयायामक्षयश्चैवास्तंभं फलमुच्यते । एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिह ॥ २८ ॥
यथा दाने तथा हाने जपेऽन्य पुण्यकर्मसु । एवं सर्वत्र योद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम्
सामान्यदेशे दानञ्च विप्रे समफलं भवेत् । तीर्थे देवगृहे चैव फलं शतगुणं स्मृतम् ।
गङ्गायाञ्च कोटिगुणं क्षेत्रे नारायणेऽव्ययम् । कुलक्षेत्रे च दर्प्याञ्च काश्यांकोटिगुणं तथा
यथा चैव कोटिगुणं तथा च विष्णुमन्दिरे । केदारे च लक्षगुणं हविहारे तथा फलम् ।
पुष्करे भास्करक्षेत्रे दशलक्षगुणं फलम् । एवं सर्वत्र योद्धव्यं फलाधिक्यं क्रमेण च ।
सामान्यब्राह्मणे दानं सममेव फलं लभेत् । लक्षं त्रिसन्ध्यपूते च पण्डिते च जितेन्द्रिये
विष्णुमन्त्रोपासके च बुधेकोटिगुणं फलम् । एवं सर्वत्र योद्धव्यं फलाधिक्यं गुणाधिके
यथा दण्डेन सूत्रेण शरावेण जलेन च । कुम्भं निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदामुवि ।
तथैव कर्मसूत्रेण फलं घाता ददाति च । यस्याश्रया सृष्टिविधौ पञ्च नारायणं भज ।
स विधाता विधातुश्चपातुः पाताजगत्त्रये । शृष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः संहर्ताकालकालकः
महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम् । विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः ॥

इत्येवमुक्त्वा जीवञ्च समाब्लिङ्ग्य सुरेश्वरम् ।

दत्त्वा शुभाश्रियं चेष्टं बोधयामास नारद ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदीये बृहस्पतिमहोद्वेन्द्रसंवादे

महालक्ष्म्युपाख्याने सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

महालक्ष्म्युपाख्याने विष्णुभक्तस्य शुभकथनम् ।

नारायण उवाच ।

इति ध्यात्वा हरिर्जिह्मन् जगाम ब्रह्मणः समाम् । बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैःसुरगणैःसह ।

तीर्थं मत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वाच कमललोद्वयम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वाः शुक्ला सह नारद ॥ २ ॥

वृत्तान्तकथयामास सुराचार्यो विधिषिभुम् । ब्रह्मस्पोषावतन् ध्रुव्यामहोद्वेन्द्रकमलोद्वयः ।

ब्रह्मोवाच ।

पत्समदंशज्जातोऽसिप्रपीत्रोमेविवक्षणः । बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपःस्ययम् ॥

मातामहस्ते दशस्य विष्णुभक्तःप्रतापवान् । कुटुम्बं यच्छुद्धञ्चक्यं सोऽहदत्तमोभवेत् ।

मातापतिव्रता यस्य पिताशुद्धीजितेन्द्रियः । मातामहोमानुलभ कथंसोऽहदत्तोभवेत् ।

जनः पितृकक्षीरेण क्षीरान्मातामहस्य च । सुतोर्दीर्घायुर्जातिदोर्देहद्विष्टी भवेद्भूधुम् ॥ ३ ॥

सर्पान्तरात्माभगवान् सत्त्वैरेहैष्ववस्थितः । यस्य देहान्सप्रधातिस शयस्तनूक्षणंभवेत् ॥

मनोऽहमिन्द्रियेशश्च ज्ञानरूपो हि शङ्खः । विष्णुः प्राणाश्च प्रकृतिर्गुणैर्मगधनी सती ॥

निद्रादयः शक्तयश्च ताःसर्वाःप्रकृतेःकलाः । आत्मनः प्रनिविम्वञ्चज्जोषो मोगीशरीरभृत् ।

मातर्मनीरोगते देहात् सर्वैर्यान्तिःसम्पन्नमान् । यथा घर्म्मनिगच्छन्तं नरदेयमिदानीनाम् ।

अहं शिष्यश्चोपध्विष्युर्धर्मो महान् प्रियम् । धर्म्यदेशाभक्ताश्चतन् पुण्यं न्यक्त्वा नृत्तया

शिषेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च । सद्य दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्त्वा नृत्तं सुर ॥ १२ ॥

तत्पुष्पमस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् । सर्वेषाञ्च सुराणाञ्च तत्पूजापुरतोभौ-
 दैवेन यञ्जितस्त्वञ्च दैवञ्च बलघत्तरम् । भाग्यहीनं जनं मूढं कोवा रक्षितुमीदृशम् ।
 कृष्णं न मन्यते यो हि धीनाथं सर्ववन्दितम् । प्रयातिरुष्टा तद्दासी महालक्ष्मीर्विहाय
 शतयज्ञेनयालभ्या दीक्षितेन त्वयापुरा । सार्धैर्गताधुना कोपात् कृष्णनिर्माल्ययज्ञेन
 अधुनागच्छ वैकुण्ठं मयाच गुरुणा सह । निषेव्यतत्र धीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्गण-
 इत्येयमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह । शीघ्रं जगाम वैकुण्ठं यत्र धीशस्तथा सह
 तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । दृष्ट्वा तेजस्वरूपञ्च प्रबलन्तं स्वतेजसा ॥

श्रीपद्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकोटिसमप्रभम् ।

शान्तञ्जानादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम् ॥ २१ ॥

चतुर्भुजैः पार्यदैश्च सारस्वत्या स्तुतं नतम् । भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गाया परितेवितम्
 तं प्रणेमुः सुराः सर्वे सूर्णां ब्रह्मपुरोगमाः । भक्तिनम्रा साधुनेत्रास्तुष्टुः पुरुषोत्तमम्
 वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा वृताञ्जलिः । रुद्रदुर्देवताः सर्वाः स्याधिकारव्युत्पाद्यता-
 म् ॥ इदं सुरगणं विपद्ग्रस्तं मयाकुलम् । यत्प्रभूयणभूयञ्च वाहनाविविधजितम् ॥ २२ ॥
 शौभाशून्यं हतध्रीकमतिनिम्प्रतिभं परम् । उवाच कातरं दृष्ट्वा विपद्ग्रमयमञ्जनः ॥ २३ ॥

नारायण उवाच ।

मामैर्ग्रहन् हे तुराक्षमयंकियो मयिस्थिते । दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्द्धिनीम् ।
 किञ्च मद्वचनं किञ्चिन् भूयतां समयोचितम् । हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखायैव
 जनाभ्यामव्ययिष्यन्मा मदर्चनाश्चसन्तनम् । यथातथाहं मदुक्तेः परार्थीनः स्यतन्त्रकः ॥

यो यो कृष्टो हि मदुक्ते मन्परे हि निरङ्कुशः ।

तद् गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥ २० ॥

दुर्पाता शङ्खराक्ष पैष्णयोमन्परायणः । तन् शोपादागतोऽहञ्च सार्धकोषो गृहादपि ।
 यत्र शङ्खधनितानि तुल्यसीच शिष्टार्चनम् । न भोजनञ्च विप्राणां न पद्या तत्र तिष्ठति ।
 मद्गजनाञ्च मन्दिना यत्र यत्र मयेन् सुराः । महाकृष्टा महालक्ष्मीस्तनोयाति पराम्भान्
 मद्गिर्वर्त्तनां यो मूढो यो भुङ्क्ते हरिषासरे । ममजन्मदिने चापियाति धीः स्तदुगृहादपि ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः] , * विष्णुमक्तिहीनस्यलक्ष्मीत्यागः *

२१

मन्नामघिक्रयो यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् ।

यत्रातिरिच्यं मुंके च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३५॥

पापिनांयोगृहंयाति शूद्रभ्राह्मभोजिनाम् । महारुष्टततोयाति मन्दिरात्कमलालया

शूद्राणां शयशही च भान्पहीनश्च ब्राह्मणः । यातिरुष्टा तद्गृहाच्च देवी कमलवासिनी

शूद्राणां सूपकारोयो ब्राह्मणो वृषयाहकः । ततोयपानभीताच कमलायातितद्गृहात्

विप्रो यपनसेवी च देवलः शूद्रयाजकः । ततोयपानभीता च वीष्णवीयाति तद्गृहात्

विश्वासघाती मिथप्रो नरघाती कुत्तप्रकः ।

योऽगम्यागामुको विप्रो मद्वाप्या याति तद्गृहात् ॥३७॥

भशुद्धदयःकूरो हिंसको निन्दकोद्विजः । ब्राह्मण्यां शूद्रजातश्च यातिदेवीचतद्गृहात्

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापार्षा च तनूपतिः ।

अपीरानश्च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥३९॥

तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो हि लिखेन्महीम् ।

जिह्वो वा मलवासाश्च सा प्रयाति च तद्गृहात् ॥४१॥

र्योऽप्ये चद्धिमौंजीदिवाशार्प्यचब्राह्मणः । दिवामिधुनकारीचतस्मादुयाति हरिप्रिया

आचारहीनो यो विप्रः यश्च शूद्रप्रतिग्रही ।

अर्दाक्षितो हि यो मूढस्तस्मात् लोला प्रयाति च ॥४५॥

प्राधपाश्चनशोयायःशेतेहानदुर्बलः । शब्दमर्मातिवाचालो यात्येव तद्गृहात् सर्त

एरः स्नातश्चतैलेनयोऽन्यद्भुमुपस्पृशेत् । स्वाङ्गे च वान्दयेद्वायं रमा यातिच तद्गृहात्

तोषयासहीनोयःसन्ध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः । विष्णुमक्तिचिहीनोयस्तस्माद्यातिहरिप्रि

ब्राह्मणं निन्दयेद् यो हि तांश्च द्वेष्टि च सन्ततम् ।

जीवहिंसी दयाहीनो याति सर्वप्रसूतः ॥ ४६ ॥

रत्र तत्र हरेरर्था हरेरुत्कीर्तनं शुभम् । तत्र तिष्ठति सा देवी कमला सर्वमङ्गला ॥४७॥

रत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्गुणस्य पितामह । सा च कृष्णप्रिया देवी तत्रतिष्ठतिसन्तता

यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिलावनुलसीदलम् । तस्सेया घन्दनं ध्यानं तत्रसापरितिष्ठति

शिवलिङ्गार्चनं यत्र तस्य भोग्यार्चनं शुभम् । दृगांर्चनं तद्गुणाभनत्रप्रदुर्निमित्तं
 निप्राणां गेयनं यत्र नेपाश्र भोजनं शुभम् । अर्चनं सर्वदेवानां तत्र प्रमुखा सर्वा ॥१॥
 अयुगवा ॥ सुरान् सर्वान् यमासाह यमायनिः । क्षीरोदसागरेजमवकल्पाननमेति
 न्युनया मान जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराहव । मध्व्यामागं लक्ष्मीदेवं लोदेहि पद्मः
 न्युनया यमासाह जगामाभ्यस्तं मुने । देवाभिरेणकायेनगुः क्षीरोदसागम्
 मन्थानं मन्दरं पृथ्वा कूर्मं पृथ्वा यमाजतम् । पृथ्वाक्षीरोदसागं सुराभ्युक्ष्य तर्पणम्
 यत्पत्नरिश्च पायूपमुन्यैधपममीप्सितम् । नानागर्तं दम्भिरदां प्रापुर्लक्ष्म्याभ्यर्चनम्
 यनमादां ददौ सा च क्षीरोदशाग्निने मुने । सर्वेभवाय यथाय विष्णवेवैष्णव्यसती ।
 देवैः स्तुता पूजिता च ब्राह्मणा शत्रुदेण च । ददौ दृष्टिं सुगृहे ब्रह्मगापविमोचनं ॥१॥
 आपुर्देवाः स्वपिपयं दैत्यैर्ग्रन्तं भयदूरेः । महालक्ष्मीप्रसादेन परदानेन नारद ॥१॥
 त्वेयं कथितं सर्वलक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् । सुरगदसारभूतश्च किमूयः श्रोतुमिच्छसि ।
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण नाद संवादे
 लक्ष्म्युपाख्यानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

लक्ष्मीनाशात्पुनस्तत्प्राप्तये इन्द्रेण लक्ष्म्याः पूजनम् ।

नारद उवाच ।

इरेष्टकीर्त्तनं भद्रं धृतं तज्ज्ञानमुत्तमम् । ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रादिकं च ॥
 रिणा पूजिता पूर्वं ततो ब्रह्मादिभिस्तथा । शक्रेण भद्रराज्येन साद्धं सुरराजेन च ॥२॥
 पूजिता केन ध्यानेन विधिना केन वापुरा । स्तुता वा केन स्तोत्रेण तन्मोक्षयाख्यातुमर्हसि
 श्रीनारायण उवाच ।

ज्जात्वा तीर्थं पुरा शक्तो धृत्वा धीते च वाससी ।

घटं संस्थाप्य क्षीरोदे देवपद्मं पूजितः ॥ ४ ॥

गणेशञ्चदिनेशञ्च पङ्क्तिषिष्णुंशिवंशिषाम् । एतान्भक्तयासमम्यर्च्यपुष्पगन्धादिभिस्तथा
सत्रायाद्यमहालक्ष्मीं परमेष्वर्यरूपिणीम् । पूजाञ्चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥
पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरो तथा । देवादिषु च देवेशे ज्ञानानन्दे शिवे मुने ॥७॥
पारिजातस्य पुष्पञ्चगृहीत्वाचन्दनोक्षितम् । ध्यात्वादेवींमहालक्ष्मींपूजयामास नारद ॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं पशुकं ब्रह्मणे पुरा । हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध यदस्मि ते ॥
सहस्रदलयग्रस्य कर्णिकायासिनीं पराम् । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाहुपकरांवराम् ॥१०॥

स्यतेजसा प्रज्ज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् ।

प्रतप्तफाञ्जननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥ ११ ॥

रत्नभूषणभूराढ्यांशोभितांपीतयाससा । ईषसास्यप्रसन्नास्यां शब्दस्तुस्थिरर्यायिताम् ॥
सर्वसम्पत्प्रदात्रीञ्च महालक्ष्मीं भजेशुभाम् । ध्यानेनानेततां ध्यात्वा नानोपहारसंयुतः ॥
सम्पूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोडशः । इदं भक्त्याधिधानेनप्रत्येकमन्त्रपूर्वकम् ॥
प्रशंस्यानि ब्रह्मणानि दुर्लभानि वराणि च । अप्रत्यक्षसारञ्च निर्मितं विभक्तकर्मणा ।

भासनञ्च विविचञ्च महालक्ष्मिं प्रगृह्यताम् ॥ १५ ॥

शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम् । पापेभ्यश्चिह्नरूपञ्च गृह्यतां कमलालये ॥१६॥
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाड्योजलम् । शङ्खगार्मस्थितं शुद्धं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥१७॥
सुगन्धि विष्णुतैलञ्च सुगन्धामलकीजलम् । देहसौन्दर्य्यंवीजञ्च गृह्यतां श्रीहरिप्रिये ॥
वृक्षनिर्वासकरूपञ्च गन्धद्रव्यादिसंयुतम् । रुष्णकान्ते पवित्रञ्च धूपञ्चप्रतिगृह्यताम् ॥१८॥
मलयचलसम्भूतं वृक्षसारं मनोहरम् । सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देधिगृह्यताम् ॥२०॥
जगद्यजुः स्वरूपञ्च ध्यान्त्यध्वंसकारणम् । प्रदीपं शुद्धरूपञ्च गृह्यतां परमेष्वरि ॥२१॥
नानोपहाररूपञ्च नानास्ससमन्वितम् । नानास्वादुकरञ्च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥
अन्नब्रह्मस्वरूपञ्च प्राणरक्षणकारणम् । तुष्टिदं पुष्टिद्वैयमन्नञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥
शाल्यक्षतसुपकञ्च शर्करागन्धसंयुतम् । सुस्वादुयुक्तं पत्रे च परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४॥
शर्करा गन्धपकञ्च सुस्वादु सुमनोहरम् । मयानिवेदितंलक्ष्मिस्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥
नानाविधानि रम्याणि पकानि च फलानि च ।

स्वादु युक्तानि कमले गृह्यतां फलदानि च ॥ २६ ॥

सुरभीम्भनसम्भूतं सुखादु सुमनोद्वग्म् । मर्त्यामृतञ्च गन्धञ्च गृह्णामन्मुनिभिः ।
 सुखादु रससंयुक्तमिन्द्रियसुखागोद्वग्म् । मन्त्रिपञ्चमार्कं वा गुह्यञ्चैविगृह्णाम् ॥ १ ॥
 ययगोभूमशम्यानी चूगरेणुममुद्वग्म् । सुखगुह्यगन्धान् मिष्टान् चैविगृह्णाम् ॥ २ ॥
 शाल्यनूणोद्वग्म् पक्वं म्यस्तिकादि समन्वितम् । मयानिरेदिनैविगृह्णाम् प्रतिगृह्णाम् ।
 पार्थिवं गृहमेदञ्च विविचं द्रव्यकारणम् । सुखादुग्मगन्धुक्तमिन्द्रियं प्रतिगृह्णाम् ।
 शीतवायुमद्वग्म् दाहे च सुगन्धं परम् । कमले गृह्णामाग्नें च्यजनं रश्मिनामम् ॥ ३ ॥
 ताम्बूलञ्च परं रस्यं कानूरादिसुवासितम् । जिह्वाजाड्यच्छेदकं ताम्बूलैवि गृह्णाम् ।
 सुवासितं शीतलञ्च पिपासानाशकारणम् । जगज्जीवनरूपञ्च जीवनं देवि गृह्णाम् ।
 देहसौन्दर्यपीजञ्च सदा शोभाविषयं नमः । कापांसजञ्च कृमिजं पसनं देविगृह्णाम् ।
 रत्नस्वर्णयिकारञ्च देहभूषणविषयं नमः । शोभाधानं श्रीकरञ्च भूषणं प्रतिगृह्णाम् ।
 नानाकुसुमनिर्माणं यदुशोभाप्रदं परम् । सुगन्धप्रियं सुखं मान्यं देवि प्रगृह्णाम् ॥ ४ ॥
 पुण्यतीर्थोदकञ्चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा । गृह्णतां कृष्णकान्ते च रम्यमाचमनीयम् ।
 रत्नसारादिनिर्माणं पुण्यचन्दनसंयुतम् । रत्नभूषणभूषणं सुखं प्रतिगृह्णाम् ॥ ५ ॥
 यद्यद् द्रव्यमपूर्वञ्च पृथिव्यामतिदुर्लभम् । देवभूषणमौगयञ्च तद् द्रव्यदेविगृह्णाम् ।
 द्रव्याण्येताति दत्त्वा च मूलेन देवपुङ्गव । मूलं जज्ञाप भक्त्या च दशलक्षं विधानम् ।
 जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह । मन्त्रञ्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षञ्च सर्वदः ॥ ६ ॥
 लक्ष्मीर्मायाकामवाणीततः कमलवासिनी । स्वाहान्तोचेन्निफोमन्त्रराजोऽयं ।
 कुवेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्यमवाप्तवान् । राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च ।
 महलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपयतीपतिः ।
 प्रिययतोत्तानपादो केदारो नृप एव च ॥ ७ ॥

एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद । सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीः शकाय दर्शिता ।

॥ ७ ॥ सप्तद्वीपयतीं पृथ्वीं छादयन्ती ।
 रत्नभूषणभूषिता । ईशदास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥

रत्नमालाञ्च कोटिचन्द्रसमप्रभा । दृष्ट्वा जगत्प्रसू शान्तां तुष्टाय तां ॥

द्वित्तसर्वाङ्गः साधुनेत्रः कृताञ्जलिः । ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयतः ॥
सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥ ५० ॥

इन्द्र उवाच । - -

ओं नमो महालक्ष्म्यै ।

कमलवासिन्यैनारायण्यै नमो नमः । कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमोनमः ॥
क्षणायै च पद्मास्यायै नमोनमः । पद्मासनायै पद्मिन्यै धेनव्यै च नमो नमः ॥ ५२ ॥
पद्मस्वरूपायै सर्वदायै नमो नमः । सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः ॥
हर्षदायै च हर्षदायै नमो नमः । कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमोनमः ॥
रत्नास्वरूपायै रत्नपत्रे च शोभने । सम्पत्प्रदायै महादेव्यै नमो नमः ॥
गुह्यायै च शस्यायै च नमो नमः । नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥
महालक्ष्मीः लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे । स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये
गृहिणां गेहे च गृहदेवता । सुरभी सा गयां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी ।
यमाता त्वं कमलाकमलालये । स्वाहात्पञ्च हविर्दाने कल्पदाने स्वधा स्मृता
पुण्यरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा
वर्जिता च परदा च शुभानना । परमार्थप्रदा त्वञ्च हरिदास्यप्रदा परा ॥ ६१ ॥
जगत् सर्वं भस्मीभूतमसारकम् । जीवन्मृतञ्च विश्वञ्च शत्रुतुल्यं यथायिना
परात्पञ्चि सर्वबान्धवरूपिणी । यथा पिना नसम्भाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा
नो बन्धुहीनः त्वया युक्तः सवान्धवः । धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वञ्चकारणरूपिणी
सत्तान्धानां शिशूनां शैशवे यथा । तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वविश्वतः
तत्तत्पत्न्यैः सवेर्जीवति दैवतः । त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्
रूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाग्रिके । वैरिस्तञ्च विषयं देहि महां सनाननि ॥
यथा हीना बन्धूहीनाश्च मिश्रुकाः । सर्वसम्पद्दिहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये ॥
धियं देहि यत्नं देहि सुरेश्वरि । कीर्त्तिं देहि धनं देहि यशोमहां च देहि चे
मर्ति देहि भोगान् देहि हरिप्रिये । ज्ञानं देहि च धर्मञ्च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्

प्रभाषश्च प्रनाषश्च सर्वाधिकारमेव च । जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च ॥
 इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैः सुगणैः सह । प्रणनाम साधुनेत्रो मूर्त्तिर्नवपुनः पुनः
 प्रता न शङ्करश्चैव योगो धर्मश्च नेशयः । सर्वं गच्छः परिहासुगार्थं न पुनः पुनः ॥
 देवेभ्यश्च धर्मं दत्त्वा पुण्यमालां मनोहराम् । केशवाय दद्यात् लक्ष्मीं सन्तुष्टासुखमर्ति
 ययुर्देवाश्च सन्तुष्टा स्यं स्यं स्थानञ्च नागम् । देवीं ययौ हरेः क्रीडं हृष्टाक्षीरोदशाधि
 ययनुज्यैव स्वगृहं प्रत्येशानो च नागम् । दत्त्वाशुमाशिरं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । कुयेन्मुन्यः सः सर्वेन राजराजेन्द्रयरोमहा
 सिद्धस्तोत्रं यदि पठेन् सोऽपि कल्पमग्निरः । पञ्चलक्षत्रपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नुषाम्
 सिद्धिस्तोत्रं यदि पठेन् मासमेकञ्चसंयनः । महामुखा च राजेन्द्रोभविष्यतिनसंयन
 इति श्रीप्रह्लादचरितं महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे महालक्ष्मीस्तोत्रं
 समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

पुण्यं दुर्वाससा दत्तमस्त्येव यस्य मस्तके । तस्य सर्वपुनः पूजेत्युक्तं पूर्वं त्वया प्रभं
 तदेव स्थापितं पुण्यं गजेन्द्रस्यैव मस्तके । कुतो जन्म गणेशस्य सच मत्तो धनं गतः ।
 मूर्त्तिछिन्ने गणपतेः शनेर्दृष्ट्यापुरामुने । तन् स्कन्धेयोजयामास हस्तिमस्तं हरिः स्वपन
 अधुनोक्तं देवपदं संपूज्य च पुरन्दरः । पूजयामास लक्ष्मीञ्च क्षीरोदे च सुरैः सह ।
 अहो पुराणवक्तृणां दुर्वोधं वचनं मृणाम् । सुख्यतमस्य सिद्धान्तं वद वेदविदावर ।

श्रीनारायण उवाच ।

यदा शशाप शक्रञ्च दुर्वासा मुनिपुङ्गवः । तदा नास्त्येव तज्जन्म पूजाकाले कथं च
 सुखिरं दुःखिता देवा यश्चमुर्ब्रह्मशापतः । पश्चात् प्रापुध्व तां लक्ष्मीं घरेण च हरेर्भुने ॥
 इति श्रीप्रह्लादचरितं महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्म्युपाख्यानं नाम
 ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

स्वाहोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग नारायणसमः प्रभो । रूपेण च गुणेनैव यशसातेजसा त्रिधा
रयमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां तथा । तपस्विनां मुनीनाञ्चपरोवेदविदां
महालक्ष्या उपाख्यानं विज्ञातं महद्बहुतम् ॥ २ ॥

अन्यत् किञ्चिदुपाख्यानं निगूढं वद साम्प्रतम् । अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तञ्च सर्वतः
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥ ३ ॥

श्री नारायण उवाच ।

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः । धृतो कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन् सुदुर्लभम्
तेषु परस्परभूतञ्च श्रोतुं किंचित्प्रमिच्छसि । तस्मै ब्रूहि महाभाग पञ्चाद्वक्ष्यामि तत्पु
नारद उवाच ।

स्वाहादेवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु । पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वसौ वरा
एतासां धरितं जगत् फलं प्राधान्यमेव च । श्रोतुमिच्छामि त्वद्वचः प्रातस्त्वदेवविदां वर
सौतिरुवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ।
नारायण उवाच ।

सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाहारार्थं ययुः पुरा । ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम् ॥
गत्वा निवेदनञ्चकुराहास्तेतुकं मुने । ब्रह्मा ध्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिपेवे श्रीहरेः पदम् ॥ १० ॥
यज्ञरूपो हि भगवान् कृत्या च यभूव सः । यज्ञे यज्ञद्विर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्रह्मणा ॥
द्विर्ददति विप्राश्च मत्स्या च क्षत्रियादयः । सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तदानं मुनिपुङ्गव ॥
देवाः विपण्णास्ते सर्वे तत्समाञ्च पुनर्ययुः । गत्वा निवेदनञ्चकुराहाराभाव हेतुकम्
ब्रह्मा ध्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ । पूजयामास प्रवृत्तिं ध्यानेनैव तदाज्ञया ।

प्रकृतिः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी । यमूच दाहिकाशक्तिरग्नेः स्वाहास्वर्ग
 ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभाच्छादनकारिणी । अतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनो
 रंजनास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा । उवाचेति विधेय्ये पश्योने वरं वृषु
 विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्प्रमात् समुवाच ताम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्मवपत्नी च सुन्दरी । दग्धं न शक्तस्त्यरुती हुताशश्च ॥
 त्वन्नामोद्यायं मन्त्रान्ते यदुदास्यति हविर्नरः ।

सुरैर्म्यस्तत् प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्यकम् ॥२०॥

अग्नेः सम्पत् स्वरूपा च धीरूपा च गृहेश्वर । देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां च
 ब्रह्मणश्च यचः श्रुत्वासाविषण्णा यमूवह । तमुवाच स्वयं देवी स्वामिप्रायं स्व
 स्वाहोवाच ।

अहंशृण्वमजिप्यामि तपसास्तुचिरेण च । ब्रह्मन् तदन्यत्तत्किञ्चिन् स्वप्नवद्ब्रह्मे
 विपलाजगतांश्चक्षुरामुह्यं व्युत्तपःप्रभुः । विमर्त्तिशेवो विश्वक्षयमर्मासाक्षोर्बेदि
 सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेपुत्र गणेश्वरः । प्रकृतिः सर्वसूः सर्वपूजिता
 प्रहस्योमुनयधीष पूजिता यं निषेज्य च । तत्पादपद्मं पद्मैकं भावेन ।
 पद्मान्या पात्रमित्युनया पद्मनामानुसारतः । जगाम तपसा पात्रे पद्मादीश्वर
 तन्मन्त्रे मन्त्रार्थमेकपादेन पात्रता । तदा दृष्ट्वा श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः पद्म
 र्मणीय कमनीयश्च रूपं दृष्ट्वा सुन्दरी । मूर्च्छां सम्प्राप कामेन कामेशस्य च
 पित्रया नदमिप्रायं सर्वव्रज्जनामुवाच सः । समुन्थाप्य च स्वकोटेशीणाङ्गं ताम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

अग्नेर्दाहिका शक्तिर्मवपत्नी । नाम्ना नामजितो कन्याकान्ते तत्र जिह्वा
 दग्धुर्ब्रह्मर्षिर्दाहिका शक्तिर्मवपत्नी । मन्त्राङ्गकृपा पूता च मन्त्रप्रसादान् मे
 दाहिकान्ते विमर्त्तिशेवो विश्वक्षयमर्मासाक्षोर्बेदि
 देवो देवीमात्राभ्य नारद । तत्राजगाम सन्त्रस्तो धर्म्मिन्

ध्यानेश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदग्निकाम् ।
 सम्पूज्य परितुष्टाय पाणिं जग्राह मन्त्रतः ॥३५॥
 दिव्यं धर्मशतं स रेमे रामया सह । अतोव निजने रम्ये सम्भोगसुखदे सदा ॥३६॥
 गर्भं तस्याश्च हुताशस्य च तेजसा । तद्धारय सा देवी दिव्यं द्वादशयत्सरम् ॥
 तुष्टाय पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान् । दक्षिणाग्निर्गार्हपत्यहवर्नीयान् क्रमेण च ॥
 मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः । स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्ददति नित्यशः ।
 युक्तश्च मन्त्रश्च यो गृह्णाति प्रशस्तकम् । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन् ग्रहणमात्रतः ।
 नो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः । पतितेषां हिहीना स्त्री विद्याहीनो यथानरः ।
 स्वाधिहीनश्च यथापृक्षो हि निन्दितः । स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रोन्मुक्तं फल्दायकः ।
 हा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतिम् । स्वाहान्तैर्नैव मन्त्रेण सफलं सर्वकर्म च ।
 र्णितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं तदं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
 नारद उवाच ।

पूजाविधानञ्च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर । संपूज्य वह्निस्तुष्टाय येन तां वदमेप्रभो ॥
 नारायण उवाच ।

वसामवेदोक्तं स्तोत्रं पूजाविधानकम् । वदामि धूयतां व्रतन् साधयानं निशामय ॥
 रम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा । स्वाहां संपूज्य यत्नेन यत्नं कुर्यान् फलामये ।
 स्वाहां मन्त्राङ्गपूताञ्च मन्त्रसिद्धिस्य रूपिणीम् ।

सिद्धाञ्च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे ॥ ४८ ॥
 त्याचमूलेन दम्पापायादिकं नृः । सर्वसिद्धिं लभेत् स्तुत्यामूलं स्तोत्रं मुनेऽष्टु ।
 मीं वह्निजापायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च । यः पूजयेद्यतां देवीं सर्वेष्टं लभनेधुषम् ॥
 वह्निरुवाच ।

प्रवृत्तेऽंशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी । मन्त्राणां फलदात्रां च धार्त्रां च उगतां सर्वा
 सिद्धिस्यरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् ।
 हुताश द्वादशविस्तन्प्राणाधिकरूपिणी ॥ ५२ ॥



॥ स्वधान्तं मन्त्रमुवाच पितृभ्यो देहि चेति च । क्रमेण तेन विप्राश्चपित्रेदानंददुःपुरा ॥
 ॥ स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा । सर्वत्रदक्षिणया स्वाहातयज्ञस्त्वदक्षिणः ॥
 ॥ पितरो देवता विप्रा मुनयोमानवास्तथा । वृजान्चक्रुः स्वधाशान्तांतुष्टाचपत्मादरम् ॥
 ॥ देवाद्यथ सन्तुष्टा परिपूर्णमनोरथाः । विप्राद्यथ पितरः स्वधादेवोवरणं च ॥ १७ ॥
 ॥ इत्येवं कथितं सर्वस्वधोपाख्यानमुत्तमम् । सर्वपाप्मवतुष्टिकरं किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

स्वधापूजा विद्यानञ्च ध्यानं स्तोत्रं महामुने श्रोतुमिच्छामियत्नेन वदस्व पितरं ॥

नारायण उवाच ।

सद्गपानं स्तवनं ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम् । सर्वजानासिचकपञ्चातुमिच्छसि वृद्धये ॥
 शाल्लोष्णत्रयोदश्यां मध्यां धादृषासरे । स्वधासंपूज्ययत्नेन ततः धादंसमाचरेत् ॥ २१ ॥

स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः धादं कुर्व्यादहं मतिः ।

न भवेत् फलमाक् सत्यं धादस्य तर्पणस्य च ॥ २२ ॥

ब्रह्मणोमानसीकन्याशश्वत्सुस्थिरयोवनाम् । पूज्यापितृणदिपानां धादानां फलदां भजे
 इति ध्यात्वा शाल्लोष्णमेऽप्यथवा शोभने घटे ।

वचात् पाचादिकं तस्य मूलेनेति धृतौ ध्रुवम् ॥ २४ ॥

भो ह्रीं धीं श्रीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामनुम् ।

समुवाच्यं च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेत् द्विजः ॥ २५ ॥

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विभारद । सर्वपाप्मप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥ २६ ॥

ब्रह्मोपाच ।

यधोच्चारणमात्रेण तीर्थग्रायां भवेधरः । मुख्येन सर्वपापेभ्यो धातयेयकल्लभेत् ॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् ।

धादस्य चन्द्रमाप्नोति फालस्य तर्पणस्य च ॥ २८ ॥

॥ २८ ॥ फाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । लभेत् धादराजमात्रं पुण्यमेव न ग्रंथयः

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसहस्रं यः वरेजतः ।

प्रियां विनीतां स लभेत् साध्वीं पुत्रं गुणान्वितम् ॥ ३० ॥

पितृणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी । आद्याधिष्ठातृदेवी च आद्यादर्शनां कृष्ण
चहिर्यच्छ मन्मनसः पितृणां तुष्टिहेतवे । संप्रीयते द्विजातीनां गृहिणां वृद्धि
नित्या त्वं नित्यरूपासि गुणरूपासि सुव्रते । आविर्भावस्तिरोभाव सृष्टौ च प्र
योस्यस्तिचनमःस्वाहास्वधात्वंदक्षिणातथा । निरूपिताश्चतुर्वेदेष्टप्रशस्ताश्चक
पुरासीत्त्वंस्वधागोपीगोलोकेराधिकासखी । धृतोरसिस्वधात्मानंहृतितेनम्ब
ध्यस्ता त्वं राधिकाशापान् गोलोकाद्विश्यमागता ।

कृष्णान्निष्टा तथा दृष्टा पुरा वृन्दावने घने ॥ ३६ ॥

कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता । अवृत्ता सुरती तेन चतुर्णां स्वामिना
स्वाहा सा सुन्दरीगोपीपुरासीद्राधिकासखी । स्ययं कृष्णमाहरतीतेनस्वाहाप्रकी
कृष्णेन सादं सुचिरं घसन्ते रासमण्डले । प्रमत्ता सुरते निष्ठुष्टा दृष्टा सा राधया
तस्याः शापेन प्रध्यस्ता गोलोकाद्विश्यमागता । कृष्णालिङ्गनपुण्येन यभूयचक्षि
पवित्ररूपा परमा देवानां चन्दिता नृणाम् । यन्नामोद्यारणेनैव नरो मुच्येत पात
यातुर्शालामिधागोपीपुरासीन्प्राधिकासखी । उयासदक्षिणेकोङ्गे कृष्णस्यराधि
प्रध्यस्ता सा च तच्छापात् गोलोकाद्विश्यमागता ।

कृष्णालिङ्गन पुण्येन सा यभूय च दक्षिणा ॥ ४३ ॥

सुप्रेयसी रती दक्षा प्रशस्ता सत्यकर्मसु । उयास दक्षिणे भर्तुर्दक्षिणा तेन कीर्ति
यभूपुस्तिश्रीं गोप्यध स्वधा स्वहा चदक्षिणा । कर्मिणांकर्मपूर्णार्थं पुराचैश्वरेण
इत्येवमुक्त्वा स प्रह्लादप्रह्लादोके च संसदि । तस्यां च सहस्रा सयः स्वधासाविर्भू
तदा पितृभ्यः प्रदत्ता तामेव कर्मदाननाम् । तां संप्राप्य ययुष्मे च पितरश्च प्रहृष्टा
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोतिनमादिनः । रास्नातः सत्यतीर्थेषु येदपाठयज्जने
इति धीप्रह्लादयवर्णे महापुराणे प्रह्लादनिमज्जे नारायणनामद्वारायादे स्वधोपासयानंतन

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्षिणोपाख्यानवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

स्याद्वा ह्यथाप्रधानं प्रशास्तं मधुरं परम् । वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सायधानं निशामय ॥
सुशीलामोलोके सुरासी श्रेयसीदरैः । राधाप्रधाना सधीर्वा धन्यामान्यामनौहरा
मतीष सुन्दरी रामा सुभगा सुहृन्नी सती ॥ २ ॥

विषाधती गुणधती सती रूपधती तथा । कलाधती कोमलाद्री कान्ता कमललोचना ।
सुधौणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । इन्दुस्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूयिता ।
श्वेतचम्पकवर्णाभाविभ्योष्ठी मृगलोचना । कामशास्त्रमुनिष्णाता कामिनीहंसगामिनी
भावानुरक्ताभायशा हृण्यस्य प्रियभायिनी । रसज्ञा रसिकारासे रासेशस्य रसोत्सुका
उयास दक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा । संवभूषानम्रमुखो मयेन मधुसूदनः ॥ ३ ॥
इहा राधाञ्च पुरतो गोपीनां प्रवरां वराम् । मानिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम्
कोपेन कम्पिताङ्गुलिञ्च कोपनां कोपदर्शनाम् । कोपेन निष्ठुरं वक्तुमुद्यतां स्फुटिताधरा
भाग्यघ्नतीञ्च धेगेन विज्ञाय तदनन्तरम् ।

पिरीधमीतो भगवानन्तर्द्वान् चकार सः ॥ १० ॥

पलायन्तश्चर्तशान्तं सत्पाधारं सुविग्रहम् । विलोक्य कम्पितागोपीसुशीलान्तर्धौमिया
विलोक्य सङ्कुटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः । पुटालिलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकन्धरा
रक्ष रक्षेत्युक्तवत्यो हे देवीति पुनः पुनः । ययुर्मयेन शरणं तस्याश्चरणपङ्कजे ॥ १३ ॥
त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च । ययुर्मयेन शरणं तत् पादाब्जे च नारद ॥ १४ ॥
पलायन्तश्च कान्तश्च विज्ञाय परमेश्वरी । पलायन्ती सहचरीं सुशीलाञ्च शशाप सा ।
मय प्रभृति गोलोकं साचेदायाति गोपिका । सशो गमनमात्रेण भस्मसाच्चमधिष्यति
त्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवीश्वरी ह्या । रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमानुदाय ह ॥ १७ ॥

कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम् । कमलासनपूज्याञ्च कमलाङ्गसमुद्भवाम् ।
 षड्विंशदांशुकाधानां विम्बोष्ठीं सुदतोसतीम् । विघ्नतीकवरीमारं मालतीमाल्यभूषितम्
 ईषदास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । सुवेशाढ्याञ्च सुघ्रातां मुनिमानसमोहिनीम्
 फस्तूरीविन्दुभिः सार्द्धं सुगन्धिचन्दनादिभिः ।

सिन्दूरविन्दुनात्यन्तमलकायः स्थलोज्ज्वलम् ॥ ४४ ॥

सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां दृढच्छोणिपयोधराम् । कामदेवाधाररूपां कामयागप्रपीडिताम् ॥
 तां हृद्वा रमणीयाञ्च यशो मूर्च्छामवाप ह । पत्नीं तामेव जग्राह विधियोधितपूर्वकम् ॥
 दिव्यं वर्षशतञ्चैव तां गृहीत्वा मुनिर्जने । यशो रमे मुदायुक्तो रामया रमया सह ॥
 गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सलम् । ततः सुपात्र पुत्रञ्च फलञ्च सर्वकर्मणाम् ।
 कर्मणां फलदाता च दक्षिणा कर्मिणां सताम् । परिपूर्णं कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥
 यशोदक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥
 यशश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रञ्च फलदायकम् । फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मेभ्य इति नारदः ॥
 तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिवं धृतम् ॥
 कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिवं मुने ।
 कर्मो कर्मणि पूर्णं च तत्क्षणम् यदि दक्षिणाम् ।

न दद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाङ्गनतोऽथवा ॥ ५४ ॥

मुद्रते समतीते च द्विगुणा सा भवेत् धुवम् ॥ ५५ ॥

एकरात्र व्यतीते ॥ भवेत् रसगुणा च सा । त्रिरात्रे च दशगुणं सताहे द्विगुणा ततः ॥
 मासेलक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानाञ्च वर्द्धते । संवत्सरे व्यतीते तु सत्रिकोटिगुणा भवेत् ॥
 कर्म तद् यजमानानां सर्वञ्च निष्फलं भवेत् । सच ब्रह्मस्थापहारी न कर्माहोऽशुचिर्नरः ॥
 इन्द्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन रातको । दृष्ट्वा तु यातिलक्ष्मीश्च शपन्त्या मुदारुणम्
 पेतरो नैव गृह्णन्ति तदन्नं धाम्निर्जनम् । एवं सुराश्च तत्पूजां तद्वत्तामग्निरादुतिम् ॥ ६० ॥
 ता न दीयते दानं गृहीता तत्र याचने । उमो तौ नक्तं यातश्छिन्नखुर्यथा घटः ६१
 नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचिताञ्च दक्षिणाम् ।

मालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विहङ्गातरा । युगकोटिसमं मेने क्षणमेदेन सुप्रता ॥१८॥
 हेतुः कृष्णहेमराजनाभागच्छ प्राणाधिकप्रिय । प्राणाधिष्ठातृदेवेह प्राणायान्तिव्यापिता ।
 भीमार्थः पतिसौभाग्याद्वर्द्धनेन दिने दिने । सुर्गान्नेद्विमवो यन्माम् तंमन्नेद्वर्मनःसदा ॥
 पतिर्यन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः । परं सम्पत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमन् ॥
 धर्मदः सुखदः शत्रुघ्नः प्रीतिदः शान्तिदः सदा ।

सम्मानदो मानदश्च मान्यश्च मानलण्डनः ॥ २२ ॥

सारात्सारतमः स्वामी यन्भूनां यन्धुवर्द्धनः । नय भर्तुः समो यन्धुः सर्वयन्धुषु इत्यने
 भरणादिपमर्त्ताऽयं पालनान् परिरुच्यते । शरीरेशश्च सः स्वामी कामदान् कान्तपयवा
 यन्धुधनुषयन्धाश्च प्रीतिदानान् प्रियः परः । चेश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात् प्राणनायकः
 रतिदानाश्चरमणः प्रियोनारितप्रियात्परः । पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन संप्रियः
 शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानांप्रियः सदा । असन्कुलप्रसूताया कान्तं विज्ञातुमहमा ।
 ज्ञानश्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपोऽसिब ॥
 सर्वाण्येवप्रतादीनि महादानानि यानि च । उपोषणानि पुण्यानि यान्यन्यानि च विभक्तः
 गुह्यसेवाधिप्रसेवा देवसेवादिकञ्चतत् । स्वामिनः पादसेवापात्रकलां नार्हन्ति गोइरीम् ॥
 गुरुधिमेष्ट्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः । विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथाप्रियः ॥११॥
 गोपी त्रिलक्षकोटीनां गोपानाञ्च तथैव च । ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च ।
 रमादि गोलफान्तानामीश्वरीयत् प्रसादतः । अहंनजानेतं कान्तं स्त्रीस्थमाधोदुरत्ययः
 इत्युक्त्वा राधिकाकृष्णं तत्र दध्नी सुभक्तिः । आरात्संप्राप तं तेन विजहार च तत्रैव
 अथसा दक्षिणादेवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने । सुचिच्छतपस्तप्त्वा धिवेश कमलातनौ ॥
 अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम् । न लभन्ते फलं तेषां विपण्णाः प्रययुर्धिधिम्
 विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिः । दध्नी सुचिन्तितो मत्तया सत्प्रत्यादेशमापसः
 नारायणश्च भगंधी च महालक्ष्म्याश्च देहतः । विनिष्कृष्य मरुत्तलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ
 ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूर्णार्थं कर्मणां सताम् । यज्ञः संपूज्य विधिधत्तां तुष्टाव रमां मुदा
 चन्द्रकोटिसमप्रभाम् । अतीव कमनीयाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥

कमलास्या कोमलाहो कमलायतनोचनाम् । कमलासनपूज्याश्च कमलाङ्गसमुद्रयाम् ।
यद्विगुणो गुणाधानो विमोहो सुदर्शनीयम् । विमोहो कथयिमां मालतीमान्धभूतिम्
ईयदास्यप्रसन्नास्यो रसभूषणभूषिताम् । सुप्रेसाद्व्याश्च सुप्रात्ता मुनिमानसमोहिनीम्
कम्पूरीपिन्दुभिः सार्द्धं सुगन्धिचन्दनादिभिः ।

सिन्दूरपिन्दुनात्यन्तमालकायः स्यन्दोच्चलाम् ॥ ४४ ॥

सुप्रसासनिनन्दादयो बृहच्छांणिपयोधराम् । कामदेवाद्यात्कर्षां कामपाणप्रपीडिताम् ॥
तां हृद्वा रमणीयाश्च यमो मूर्च्छामपाप द । पत्नीं तामेव जग्राह विधियोधितपूर्वकम् ॥
दिग्धं परंशतञ्चैव तां गृहीत्या मुनिर्जने । यमो रमे मुद्रायुक्तो रामया रमया सह ॥
गमं दधार सा देवी दिग्धं द्वादशयन्सरम् । ततः सुगाय पुत्रश्च फलश्च सर्थकर्मणाम् ।
कर्मणां फलदाता च दक्षिणा कर्मिणां सताम् । परिपूर्णं कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥
यमोदक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मणां फलदाता क्षेत्र्येयं येदविदो पिदुः ॥
यत्रश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रश्च फलदायकम् । फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मेभ्य इति नारदः ॥
तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिर्धुतम् ॥
एत्या कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तन्क्षणं फलमाप्नोति येदेदक्तमिदं मुने ।

कर्मा कर्मणि पूर्णं च तन्क्षणम् यदि दक्षिणाम् ।

॥ दद्यात् प्राज्ञेभ्यश्च देवेनात्र नतोऽथवा ॥ ५४ ॥

मुहूर्ते समर्पति च द्विगुणा सा भवेत् धुपम् ॥ ५५ ॥

एकरात्र व्यतीति तु भवेत् रसगुणा च सा । त्रिरात्रे च दशगुणं सताहे द्विगुणा ततः ॥
मासेलक्षगुणा प्रोक्ता प्राज्ञगानाश्च धर्दते । संवत्सरे व्यतीति तु सत्रिकोटिगुणामवेत् ॥
कर्म तद् यजमानानां सर्वञ्च निष्फलं भवेत् । सच ब्रह्मस्थापहासी न कर्माहोऽगुचिर्नरः ॥
द्विद्रोष्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी । तद्गृहाद् यातिलक्ष्मीश्च शापेन्दत्या सुदारुणम्
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्वत्तं श्राद्धतः ॥ ५६ ॥ पर्वं सुराश्च तन्पूजां तद्वत्तामत्रिरामुत्तिम् ॥ ६०
दाता न दीयते दानं गृहीता तत्र याचने । उभौ तौ नक्तं यातश्चिन्नरञ्चुर्वधा घटः ६१
नार्ययेद् यजमानश्चेद् याचित्ताश्च दक्षिणाम् ।

भयेन प्रत्यस्यापटारी कुर्मीपाकं यजेत्तु ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

परं नरः वसेत्तत्र यमदूतेन नादितः । मनो भयेन स नष्टान्तां व्याधिगुक्तं दग्धि
पातयेत् पुरगान् सप्त पूर्वाभ्यर्प्यजन्मनः । इत्येवंकथितं विप्र किंभूयः धोनुमिच्छ
गान् उवाच ।

यत्कर्म दक्षिणादीनं कोभुङ्क्ते नृपजं मुने । पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यमदूतेन
नारायण उवाच ।

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने । सदक्षिणे कर्मणि न फलमेव प्रयत्नेन ॥ ६३ ॥
याया कर्मणि सामग्री यन्निर्मुङ्क्तेय तां मुने । यमये तन् प्रदत्तञ्च धामनेन पुरा मु
अधोत्रियं श्राद्धद्रव्यमश्राद्धं दानमेव च । घृपत्नीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यान्कञ्चयत्
ऋत्विजा न हतं यज्ञमशुचेः पूज्जञ्च यत् ।

गुराचमकस्य कर्म यन्निर्मुङ्क्तेन संशयः ॥ ६४ ॥

दक्षिणायाश्च यजमानं स्तोत्रं पूजाविधिप्रमम् ।

तत्सर्वं काण्वशास्त्रोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥ ६५ ॥

पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षाञ्च दक्षिणाम् । मुमोह तत्स्वरूपेण तुष्टाच कामकातर
यज्ञ उवाच ।

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरापरा । राधासमातत्सखीचश्रीद्वारजद्वैयसीप्रिये
कार्तिकीपूर्णमायान्तुरासेराधामहोत्सवे । भाविभूतादक्षिणांशात्कृण्वत्येतदक्षिणा
पुरा त्वञ्च सुशीलाख्याशीलेनशोभनेन च । कृष्णदक्षांशवासाश्च राधाशापाश्चदक्षिणा
गोलोकात् त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता ।

उपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मां प्रिये ॥ ६६ ॥

कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा । त्वयाविनाचसर्वेषांसर्वकर्मच निष्फलम्
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले । त्वया किं तथा कर्मकर्मिणाञ्चनशोभते
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च । कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्चतयया विना ।
कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः । यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेपां साररूपिणी ॥ ६७ ॥

प्रलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः । स्वयं कृष्णश्च भगवान्प्रवशक्तस्त्ययाविना ।
धमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि । सर्वकर्मणिशक्तोऽहंत्वयासहयगमने ।
त्युक्तया सत्पुस्तस्तस्यौ यन्नाधिष्ठातृदेवकः । तुष्टा यभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला
दक्ष दक्षिणास्तोत्रं यत्तफाले च यः पठेत् । फलञ्च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः ।
तजसूये वाजपेये गोमेये नग्मेयके । मध्वमेये लाङ्गुले च विष्णुयज्ञे यशस्कंदे ॥ ८४ ॥
यनदे भूमिदे फल्गौ पुष्येष्टौ गजमेयके । लौहयज्ञे स्वर्णयज्ञे पटले व्याधिखण्डने ॥ ८५ ॥
शिष्ययज्ञे रुद्रयज्ञे शत्रुयज्ञे च यन्धके । इष्टौ वरुणयागे च कन्दुके वैरिमर्दने ॥ ८६ ॥
गुहियागे धर्मयागे देवने पापमोचने । वन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥ ८७ ॥

पतेपाञ्च समारम्भे इदं स्तोत्रञ्च यः पठेत् ।

निर्विघ्ने न च तत् कर्म साङ्गं भवति निश्चितम् ॥ ८८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिलखण्डे दक्षिणास्तोत्रं
समाप्तम् ।

इदं स्तोत्रञ्च कथितं ध्यानपूजाविधानकम् । शालग्रामिघटेवापिदक्षिणापूजयेत्सुधीः ।
लक्ष्मीदक्षांशसम्भूनां दक्षिणां कमलाकलां । सर्वकर्मसुदक्षाञ्चफलदांसर्वकर्मणाम् ।
विष्णोः शक्तिस्वरूपाञ्च सुरशालांशुभदांभजे । ध्यात्वाऽनेनैषपरदांमूलेनपूजयेत्सुधीः ।
इत्था पाद्यादिकं देव्यै धेदोक्तेन च नारद । भौहीर्लौहीर्दक्षिणार्धस्यहेतिच विद्यक्षणः ।
पूजयेद्विधिपद्मतया दक्षिणां सर्वपूजिताम् । इत्येवं कथितं सर्वदक्षिणाध्यानमुत्तमम् ।
सुपदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् । इदञ्च दक्षिणाध्यानं यः शृणोति समाहितः ।
मद्गद्गदीनञ्च सत् कर्म ॥ भवेद्भारते भुवि । यपुषो लभतेपुत्रनिश्चितञ्चगुणान्वितम् ॥ ८९ ॥

भाष्यादीनो लभेद्भाष्यां सुरशालां सुन्दरीं पराम् ।

वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् ॥ ९० ॥

पतिवतीं सुप्रताञ्च शुद्धाञ्च कुलजां पराम् । विद्यादीनो लभेद्विद्यापनदीनोऽधनं लभेत् ।

भूमिर्दीनो लभेद्भूमिं प्रजादीनो लभेत् प्रजाम् ।

सद्गुटे वन्धुविच्छेदे विपत्तौ वन्धने सदा ॥ ९१ ॥

मासमेकमिदं ध्रुवा मुच्यते नात्र संशयः ॥११॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे प्रकृतिमण्डे नारायणनाम्नसंवादे दक्षिणांपाश्याने नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

पृथ्व्युत्पत्तिवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

मनेकासाञ्जदोषीनां श्रुतमाग्यानमुत्तमम् । मन्यासां चरितं ब्रह्मन् यद् वेदधिदापरः ॥१॥
नारायण उवाच ।

सर्पासां चरितं विप्र ! वेदेष्वस्ति पृथक् पृथक् ।

पूर्वोक्तानाञ्च वेदीनां त्वं कासां श्रोतुमिच्छसि ॥२॥

नारद उवाच ।

पृष्ठी मङ्गलचण्डो च मनसाप्रकृतेःकला । व्युत्पत्तिमासांचरितंश्रोतुमिच्छामित्तवतः ॥३॥
नारायण उवाच ।

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च पृष्ठी प्रकीर्त्तिता । बालकाधिष्ठातृदेवीषिष्णुमायाचबालदा
मातृकासुचविष्यातादेवसेनाभिधावसा । प्राणाधिकप्रियास्तार्ध्यास्कन्दमाप्याचसुप्रता

आयुःप्रदां च बालानां धात्री रक्षणकारिणी ।

सन्ततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनो ॥६॥

तस्याः पूजाविधौ ब्रह्मचित्तिहासविधिं शृणु ।

यत् धृतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम् ॥७॥

राजा प्रियव्रतश्चासीत् स्वायम्भुषमनोः सुतः ।

योगीन्द्रो नोद्वेद्द्वार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥८॥

ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो यभूव सः । सुचिरं कृतदारश्च न लभेत्तनयं मुने ॥९॥

पुत्रेष्टियहं तज्ज्ञापि कारयामास कश्यपः । मालिन्ये तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुदर्शो ॥
 भुक्त्वा चरुञ्च तस्याश्च सद्यो गर्भो बभूव ह । दधार तश्च सा देवी देवद्वन्द्वशचत्सरम् ॥
 ततः सुपाय सा ग्रहान् कुमारं कनकप्रमम् । सर्वाचयवसम्पन्नं भृतमुत्तारलोचनम् ॥१२॥
 तं दृष्ट्वा हरुदुः सर्वा नार्यश्च यान्धवस्त्रियः । सूक्ष्माप्रवाप सन्माता पुत्रशोभेनसुप्रता ॥
 श्मशानञ्च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने । हरौद तत्रकान्तारैपुत्रं हृत्यास्त्रयक्षसि ॥
 नौतसुत्रपालकं राजा प्राणास्त्यक्तुं समुग्रतः । न योर्गविसस्मारपुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानश्च ददर्श ह । शुद्धस्फटिकसङ्कुशं मणिराजविराजितम् ॥१६॥
 तेजसाञ्जलिर्नशाभ्यत्शोभितक्षौमघाससा । नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम्
 ददर्श तत्र देवोञ्च कमनीयां मनोहराम् । श्वेतव्रजकपर्णांशं शब्दस्तुस्थिरपीथनाम् ॥
 देवद्वन्द्वप्रसन्नायां रत्नभूषणभूषिताम् । रूपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम् ॥१६॥
 दृष्ट्वा तां पुरतो राजा मुष्टाय परमाश्चरम् । चकार पूजने तस्या विहाय बालकं भुवि ॥
 पप्रच्छ राजा तां दृष्ट्वा ग्रीष्मसूर्य्यसम्प्रभाम् ।

तेजसा ज्वलितो शान्तो कान्तो स्कन्दस्य नारद ॥२१॥

प्रियग्रत उवाच ।

कथं सुरोमने कान्ते कस्य कान्तासि सुग्रते ।

कस्य कन्या धरारोहे धन्या मान्या च योपिताम् ॥२२॥

नृपेन्द्रस्य वयः श्रुत्वा जगन्मङ्गलदायिनी । उवाच देवसेना सा देवरक्षणकारिणी ॥२३॥
 देवानो दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा । जयं ददौ च तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥
 देवसेनोवाच ।

ग्रहणो मानसी कन्या देवसेनाहमीश्वरी । सृष्ट्वा मां मनसो धाताददौस्कन्दाय भूमिप
 मातृकासु च विषयातास्कन्दसेनाचसुवता । विरिवेश्छोतिविषयातापद्मं शायकृतेर्वतः ॥
 अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रियदाता प्रियाय च । धनदा च दृष्टिर्भूतो कर्मिणे शुभकर्मदा ॥२७॥
 सुखं दुःखं मयं शोकं हयं मंगलमेव च । सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥
 कर्मणा बहुपुत्री च वंशहीनश्च कर्मणा । कार्पणा रूपवाञ्छैव रोगी शय्यत् स्वकर्मणा ॥

कर्मणा गृहपुत्रश्च कर्मणा निरर्जीविनः । कर्मणा गुणयन्तश्च कर्मणानाङ्गहीनरः ॥३१॥
 तस्मान् कर्मपरं राज्ञन् सर्वेभ्यश्च धृवीं ध्रुवम् । कर्मरूपीयमगवान्त्तज्जगत्सर्वत्रोदरिः ॥
 इत्येषमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा घालकं मुने । महामानेन सहसा जीवयामास लीलायां ॥
 राजा ददर्श तं घालं सस्मिन् कनकप्रमम् । देवमेता च पश्यन् नृपमग्न्यामेव च ॥३२॥
 गृहीत्वा घालकं देवी भग्नं गन्तुमुच्यता । पुनस्तुष्टाय तां राज्ञा शुक्लकण्ठीष्ठनानुकः ॥
 नृपस्तोत्रेण सा देवी परिमुष्टा बभूव ह । उवाच तं नृपं ब्रह्मन् धेनोतः कर्मनिर्मितम् ॥
 । देवसेनोपाय ।

त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायम्भुवमनोः सुतः । मम पूजाञ्च सर्वत्र कारयित्वास्वयंदुः
 तदा दास्यामि पुत्रन्ते कुलपत्रं मनोहरम् । सुयतं नामविख्यातं गुणयन्तं सुपण्डितं
 जातिस्मरञ्च योगीन्द्रं नारायणपरायणम् । शतकृतुकरं धेष्टं क्षत्रियाणाञ्च धन्वितम् ॥
 मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतघन्तं यत्नं शुभम् । धन्यं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥
 योगिनं ज्ञानिनञ्चैव सिद्धरूपं तपस्विनम् । यशस्विनञ्च लोकेषु दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
 इत्येषमुक्त्वा सा देवी तस्मै तदुघालकं ददौ । राजा चकार स्वीकारं तत्पूजार्थञ्चसुव्रतः
 जगाम देवी स्वर्गञ्च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् । आजगाम महाराजा स्वगृहं हृष्टमानसः ॥
 आगत्य कथयामास घृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् ॥ ४२ ॥

मुष्टा बभूवुः सन्मुष्टा नरनाय्यश्च नारद ! । मङ्गलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥

देवीञ्च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४३ ॥

राजा च प्रतिमासेषु शुक्लपञ्चम्यां महोत्सवम् । पष्टवादेभ्यश्च यत्नेन कारयामाससर्वत्र
 बालानां सुतिकागारे पष्टवाहे यत्नपूर्वकम् । तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिपासरे ॥
 बालानां शुभकार्ये च शुभाग्रप्राशने तथा । सर्वत्र घर्दयामास स्वयमेव चकार ह ॥४६॥
 ध्यानं पूजाधिधानञ्च स्तोत्रं मत्तो निशामय । यत्प्रभुतं धर्मवक्त्रेण कौशुमोक्तञ्च सुव्रत ।
 शालग्रामे घटे वाऽथ घटमूलेऽथवा मुने । मित्राणां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्दुष्टा विचक्षणः
 पष्टांशां प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठाञ्च सुव्रताम् । सुपुत्रदाञ्च शुभदां दयारूपां जगत्प्रभुम् ॥
 श्वेतचम्पकपर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥ ५० ॥

इति ध्यात्वा म्वशिरसि पुष्पंदत्वाविचक्षणः । पुनर्ध्यात्वा चमूलेन पूजयेत्सुप्रतांसतीम्
 पादाभ्यां चमनीयैश्च गन्धपूषप्रदीपकैः । नैवेद्यैर्विधिधैर्ध्यापि फलेन शोभनेन च ॥५२॥
 मूलं भो हो षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम् । भृष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ।
 तत्र स्तुत्वा च प्रणमेन् भक्तिपुलकः समाहितः । स्तोत्रञ्च सामयेदौलं धनपुत्रफलप्रदम्
 भृष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षणा यो जपेन्मुने । स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥५३॥
 स्तोत्रं शृणु मुनिध्रेष्ठ सर्वपाञ्च शुभायहम् । पाप्मण्यप्रदञ्च सर्वपां गृहं पेदे च नारद ॥

प्रियव्रत उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्धयै शान्त्यै नमो नमः । शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः
 परदायै पुत्रदायै धनदायै नमोनमः । सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ५४ ॥
 शक्तैः शष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः । मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः
 पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः । सारायै सारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम् ॥
 बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः । कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्
 प्रत्यक्षायै ॥ भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः । पूषायै स्कन्दकास्त्यै सर्वपां सर्वकर्मसु ।
 देवस्तनकाशिरणे षष्ठीदेव्यै नमो नमः । शुद्धसत्यस्वरूपायै पन्दितायै नृणां सदा ॥ ५५ ॥
 हिसाकोचप्रजितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥
 धनं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः । भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते ॥
 काशराजञ्च तं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः । इति देवोञ्च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः ॥
 यशस्विनञ्च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः । षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रूयन् यः शृणोति च यत्सरम्
 भुव्रो लभते पुत्रं परं सुविज्जीविनम् । वर्धमेकञ्च या मयया संयतेन्द्रं शृणोति च ॥
 सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महाव्रज्या प्रसूयते । क्षीरपुत्रञ्च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम् ॥ ५६ ॥
 सुविद्यापुष्पन्तनेन षष्ठीमातृप्रसादतः । काकव्रज्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत्
 चपे धृत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः । रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च ॥

मासञ्च पूज्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे षष्ठ्युपाख्यानं

षष्ठीस्तोत्रं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मङ्गलचण्ड्यपाख्यानम् ।

भारायण उवाच ।

कथितं पद्मपुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यातं निशाम्य
तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मपञ्चरात्रं यच्छ्रुत्वा । श्रुतिसम्मतमेवेष्टं सर्वथा विदुषामपि
दक्षायां पतन्ते चण्डी बाल्याणेषु चमङ्गलम् । मङ्गलेषु च या दक्षा सावमङ्गलचण्डिक
दुर्गायां विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपिमदीक्षुने । मङ्गलामीष्टदेवी या सा वा मङ्गलचण्डिक
मङ्गलो मनुवंशश्च सप्तद्वीपायनीपतिः । तस्य पूज्यामीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका ॥१॥
मूर्त्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिर्यद्वरी । कृपारूपातिप्रत्यक्षा योयितामिष्टदेवता ॥ ६॥
प्रथमे पूजिता सा च शङ्करेण पुरा परा । त्रिपुरस्य यद्ये घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥३॥
ब्रह्मन् ब्रह्मोपदेशे च दुर्गप्रस्थे च सङ्कटे । बाकाशात् पतिने याने दैत्येन पतिने दया ।
ब्रह्मविष्णूपविष्टश्च दुर्गा तुष्टाश्च शङ्करः । सा च मङ्गलचण्डी च बभूव रूपभेदतः ॥४॥
उवाच पुरतः शम्भोर्मयं नास्तीति ते प्रभो । भगवान् वृषरूपश्च सर्वेशश्च बभूव ह ॥१॥
युद्धशक्तिस्वरूपाहं भविष्यामि तदाज्ञया । मयात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज ॥१॥
अहि दैत्यश्च देवेश सुराणां पदघातकम् । इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्यमूवस
विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः । मुनीन्द्र पतिने दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥१२॥
तुष्टुः शङ्करं देवा भक्तिभ्रातृमकन्धराः । सद्यः शिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् । ब्रह्माविष्णूपदिष्टश्चसुखातः शङ्करः शुचि
पूजयामास तां शक्तिं देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च बलिभिर्विविधैरपि
पुष्पचन्दननेत्रेद्यौर्मत्तया नानाविधैर्मुने । छागैर्मपैश्च महिषैर्घण्डैर्मायातिभिर्धरैः ॥ १३॥
पञ्चालङ्कारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि । मधुमिश्र सुधामिश्र पक्वैर्नानाविधैः फलै
सङ्गीतैर्नर्तनैर्वाद्यैस्तस्यैः कृष्णकीर्त्तनैः । ध्यात्वा माध्यन्दिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम्

देवीं द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नोद । ओं ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके
ऐं हूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशत्यो मनुः ॥ २० ॥

पूज्यः कल्पतरुचौप भक्तानां सर्व कामदः । दशलक्षत्रपेतेव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विष्णुः सर्वकामदः । ध्यानञ्च श्रूयतां ग्रहान् वेदीतं सर्वसम्मतम्
देवीं षोडशपर्यायां शश्वत्सुखिरयीषनाम् । सर्वरूपगुणाढ्याञ्च कोमलाङ्गी मनोहराम् ।
श्वेतवस्त्रकवर्णाभिं चन्द्रकोटिसमप्रभाम् । वह्निशुद्धां शुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥

पिप्पती कवरीमारं मल्लिकामाल्यभूषिताम् ।

पिम्बोष्ठसुवतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥ २५ ॥

ईपदास्यप्रसन्नास्यां तु नीलोत्पललोचनाम् । जगदात्रीञ्च द्वात्रीञ्च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम् ।

संसारसागरे घोरे पोतरूपां धरां मजे ॥ २७ ॥

दैव्याश्च ध्यानमित्येष स्तवर्न श्रूयतां मुने । प्रयतः सङ्कटप्रस्तौ येन तुष्टाय शङ्करः ॥ २८
शङ्कर उवाच ।

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके । हारिके विषदां राशिं हर्षमङ्गलकारिके ॥ २९ ॥

हर्षमङ्गलक्षेत्रे च हर्षमङ्गलचण्डिके । शुभे मङ्गलक्षेत्रे च शुभमङ्गलचण्डिके ॥ ३० ॥

मंगले मंगलार्हं च सर्वमंगलमंगले । सतां मंगलदे देवि सर्वेषां मंगलालये ॥ ३१ ॥

पूज्या मंगलवारे च मंगलामीष्टदैवते । पूज्ये मंगलभूषस्य मनुष्यशस्य सन्ततम् ॥ ३२ ॥

मंगलाधिष्ठातृदेवी मंगलानाञ्च मङ्गले । संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥ ३३ ॥

सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम् । प्रति मङ्गलवारे च पूज्ये च मङ्गलप्रदे ॥ ३४ ॥

स्तोत्रेणानेन शम्भुश्च स्तुत्वामङ्गलचण्डिकाम् । प्रतिमङ्गलवारे च पूजां कृत्वा गतः शिवः ॥

दैव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं ॥ ३५ ॥ शृणोति समाहितः । तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्तमयेत्तदमङ्गलम् ॥

प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला । द्वितीये पूजिता देवी मङ्गलेन ग्रहेण च ॥ ३७ ॥

तृतीये पूजिता मद्रा मङ्गलेन नृपेन च । चतुर्थे मङ्गलवारे सुन्दरीभिश्च पूजिता ।

पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षैर्नरेर्मङ्गलचण्डिका ॥ ३८ ॥

पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेषां पूजिता सदा । ततः सर्वत्र संपूज्या सा यभूव सुरेश्वरी ।

देवादिभिः मुनिभिर्मनुभिर्मानवेभ्यः । देव्याऽथ मङ्गलम्नोत्रं यः शृणोति समाहितः ।
 तन्मङ्गलं मयेच्छत्यन्नमयेत्तन्मङ्गलम् । यद्वन्द्यं तत् पुत्रपौत्रा मङ्गलञ्च दिने दिने ॥१॥
 इति धीरात्प्रपेयर्षे महापुरुषे नागयजनाम्बुवादे प्रकृतिपद्ये मङ्गलोपाख्यानं तत्
 स्तोत्रकथनं नाम ननुभाष्याग्निरागोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मनसादेव्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

उक्तं ह्ययोऽुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । श्रूयतां मनसात्पायनं यत्श्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥
 कन्या सा च भगवता कश्यपस्य च मानसी । तेनेयं मनसादेवी मनसा या च दीप्यति ॥
 मनसा ध्यायते या सा परमात्मानमीदृशम् । तेन सा मनसादेयी योगेन तेन दीप्यति ॥
 भास्वरायामा च सा देवी वीर्यवी सिद्धयोगिनी ।

त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ४ ॥

जरत्कारु शरीरञ्च दृष्ट्वा यां क्षीणमीश्वरः । गोपीपतिर्नामचक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ॥
 चाञ्छितञ्चक्षुर्दृष्ट्वा तस्यै कृपया च कृपानिधिः । पूजाञ्च कारयामास चकार च पुनः स्वयम् ॥
 स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः । भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा ॥
 जगद्गौरीतिविख्याता तेन सा पूजिता सती । शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवीति कीर्तिता ॥
 विष्णुमक्ता तीव्र शरवद्द्वैष्णवी तेन नारदः । नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे जन्मेजयस्य च ॥
 नागेश्वरीतिविख्याता सा नागमगिनी तथा । विषं संहन्तुमीशास्ता तेन विषहरीति सा ॥
 सिद्धयोगं हरात् प्राप तेनातिसिद्धयोगिनी । महाशानञ्च गोप्यञ्च मृतसञ्जीविनी पराम् ॥

महाशानयुतां ताञ्च प्रवदन्ति मनोविणः ।

आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा च तपस्थिनः ॥ १२ ॥

स्तेकमाताविधवाता जगत्सुसुप्रतिष्ठिता । प्रियामुनेर्जर्त्तकारोर्मुनीन्द्रस्यमहारमनः ।

योगिनो विश्वपूज्यस्य जर्त्तकारोः प्रियाः ततः ॥ १४ ॥

ओं नमो मनसार्थ ।

कारजंगद्ग्रीरी मनसा सिद्धियोगिनी । वैष्णवी नागभगिनी शैवी नामोऽपरितया
तादप्रियाऽऽस्तीचमाता विषहरीति ॥ महासात्वयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता
तैतानिनामानि पूजाकालेच यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्तितस्य यंशोद्वेषस्यच
रिति च शयने नागप्रस्ते च मन्दिरे । नागहने महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ १८ ॥

स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नागसंशयः । निर्यं पठेत् यस्मिन् इष्टा नागधर्मःपत्यायते ।
क्षतपेनैव स्तोत्रसिद्धिमयेनृणाम् । स्तोत्रसिद्धोभयेद् यम्यसपिपंभोक्तुमीक्ष्यतः ।

यं भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः । नागासनो नागतत्पो महासिद्धो भवेन्नरः ।

। श्रीप्रह्लादैवर्त्तं मरापुराणे प्रकृतिलव्ण्डे नारायणनारदसम्यादे मनसोपाख्यानं
मनसास्तोत्रं नाम पञ्चवर्त्तारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पट्त्वारिंशत्तमोऽध्यायः

मनसापूजाविधानम् ।

नारायण उवाच ।

वार्त्तं स्तोत्रञ्च भूषणं मुनिदुग्धम् । ध्यातव्यं सामवेदीकं देवीपूजाविधानम् ॥

पञ्चवर्त्तमो रत्नभूषणमृगिणम् । धक्षिगुडो गुहापातां नागपत्रोपपीनिर्वाम् ॥२॥

पुनाक्षेप प्रपदो मानिनां सनाम् । सिद्धाधिष्ठादेवांश्चसिद्धोसिद्धिप्रदायकं ॥

तया ॥ सां देवीं मृतेनैव प्रपूजयेत् । मेघैर्विजिघैर्देवीः पुष्पैर्भुजानुजैर्वनेः ॥४॥

४४ वेदीकं भक्तानां पाञ्चिज्यप्रदः । धृन्मन्त्रमन्त्रांश्च मुनिदो ह्यदगात् ॥

मी मी ऐ मनसादेव्येस्यादितिर्कीर्तिनः । पञ्चदशजनेपमन्त्रसिद्धिमयेनृणाम् ॥

मन्त्रसिद्धिर्भवेद् यस्य सा सिद्धोत्पत्तिर्नरे । सुधासमं विनम्य यत्नतरितामोमये

प्रह्लादादङ्गमास्त्या गुह्यशास्त्रासु यतनः ।

भावात्त देवी मासान्नं पूजयेद् यो हि मन्त्रितः ॥८॥

पञ्चग्यां मनसाग्यायां देव्यै दद्यान्न यो यत्निम् ।

धनयान् पुत्रपार्श्वेय कीर्त्तिमान् सा भवेन् धुवम् ॥९॥

पूजाविधानं कथितं तद्गम्यान् निरामय ।

कथयामि महामाता यन् धुनं यस्मैव व्रतः ॥१०॥

पुरा नागमयाप्रान्ता यभुयुर्मानया भुवि ।

यान् यान् स्वादन्ति नागाश्च न मे जायन्ति मारुद् ॥११॥

मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो प्रह्लादार्थितः । वेदव्याप्तानुसारेण योपदेशेन ब्रह्मणः ।

मन्त्राधिष्ठातृदेवीं सां मनसां ससृजे ततः । तस्मा मनसा तेन यभूय मनसा च सा ।

कुमारी सा च संभूय जगाम शङ्करालयम् । भक्त्यासम्पूज्य कैलासे तुष्टापचन्द्रोत्तरम् ।

दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तं सिधेवे मुनेः सुता । आशुतोषो महेशश्च ताञ्च तुष्टो यभूयद् ॥१२॥

महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च । कृष्णमग्नं कलयतर्हं दद्याद्यष्टाक्षरं मुने ॥१३॥

लक्ष्मीर्मायाकामधीजं ज्ञेयं कृष्णपदं तथा । त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कथञ्च पूजनक्रमम् ।

सर्वपूज्यञ्च स्तपनं ध्यानं भुजनपावनम् । पुरश्चर्याक्रमश्चापि वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥१४॥

प्राप्य मृत्युञ्जयात् ज्ञानं परं मृत्युञ्जरं सती । जगाम तपसे साध्वीपुष्करशङ्कराख्या ।

त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः । सिद्धा यभूय सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ।

दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालाञ्च कृपया च कृपानिधिः । पूजाञ्चकारयामास चकार च हृदि स्थयम् ।

पञ्च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव । परं दत्त्वा च कलशेन सद्यश्चान्तर्द्वेषिभुः ।

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना । द्वितीये शङ्करेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥१५॥

मनुना मुनिना चैव नागेन मानवादिना । यभूय पूजिता सा च त्रियु लोकेषु सुयता ॥

जरत्काय मुनीन्द्राय करयपस्तां ददौ पुनः । अयाचिनो मुनिश्रेष्ठो जगद्गुरुः प्रह्लादया ॥

सा चिरम् । सुध्याप देव्या जघने पटमूले च पुष्करे ॥

निद्रां जगाम समुनिःस्मृत्यानिद्रेशमीभवात् । जगामास्तं दिनकरसायंकालउपस्थितः ॥
 संचिन्त्य मनसा तत्र मनसा च पतिव्रता । धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती ॥२॥
 भवत्वा पश्चिमां सन्ध्यां नित्याञ्चैव द्विजन्मनाम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं लभियतिपतिर्मम ।
 नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्तेयस्तु पश्चिमाम् । सवपवाशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिबलमेत्
 येदोक्तमिति संचिन्त्य बोधयामास नमुनिम् । सच बुध्यामुनिग्रेष्ठशुकोपतांभृशमुनिः
 जलकाकृत्वा च ।

कथं मे सुयतेसाध्यनिद्रामङ्गुः कृतस्तथा । व्ययं व्रतादिकं तस्याया मर्तुं व्यापकारिणी
 तपश्चानदानञ्चैव व्रतं दानादिकञ्च यत् । मर्तुं रप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ॥
 यया पतिः पूजितश्च धीरुणः पूजितस्तथा । पतिव्रताव्रतार्थञ्च पतिरूपी हरिः स्य यम्
 सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिग्रेवणम् । सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकञ्च यत् ॥३॥
 सर्वधर्मश्च सत्यञ्च सर्वदेवप्रपूजनम् । तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति योऽर्शा
 सुपुण्ये भारते पर्णे पतिसेवां करोति या । वैकुण्ठं स्वामिनासादं सत्पाति ब्रह्मणः शत
 विप्रियं कुर्वते मर्तुं विप्रियं यदिति प्रियम् । असत्कृतप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति
 कुम्भीपाकं व्रजेत् सा च पाषण्डप्रदिव्याकरी । ततो व्रतति चाण्डाली पतिपुत्रचिचिर्जिह
 रयुक्ता स मुनिग्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः । यकम्पे मनसा साध्वीभयेनोपाचतं पति
 मनसोवाच ।

सन्ध्यालोपभयेनैव निद्रामङ्गुः कृतस्तथा । कुरु शान्तिं महामाग दुष्टाया मम सुव्रत । ॥४॥
 भृङ्गाराहारनिद्राणां यञ्च मङ्गु करोति च । स व्रजेत् कालसूत्रञ्च स्वामिनश्च पिशेपतः
 इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे । पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः
 कुपितञ्च मुनिं दृष्ट्वा शोषार्थं शप्तुमुद्यतम् । तत्राजगाम भगवान् सन्ध्यया सह नारद
 तत्रागत्य मुनिग्रेष्ठमुवाच मास्करः स्वयम् । विनयेन च भीतश्च तथा सह यथोचित
 श्रीसूर्य उवाच ।

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा धर्मलोपभयेन च । बोधयामास त्वां विप्र नाहमस्तं गतस्तदा ॥५॥
 समस्य भगवन् ब्रह्मन् मां शम्भुं नोचितं मुने । ब्राह्मणानाञ्च हृदयं नवनोतसमं सदा

तया क्षणादेव बोधमानो भगवन्मये जगत् । पुनः श्रुत्वा द्विजः शक्तो मने तस्मै द्विजः
 प्रह्लादो वंशसम्भूतः प्रह्लादः प्रह्लादेव । श्रीकृष्णं भाग्यवैशिष्ट्यं प्रह्लादो निःसृतः
 मूर्धन्यं च वननं धृत्या द्विजस्तुष्टो वभूव ह । मूर्धन्यं जगाम मन्त्रान्नं गृहीत्या प्राह्वयन्निः
 सत्याज मनसा विप्रः प्रतिज्ञापालमाय च । रुदन्ती शोकयुताश्च हृदयेन विदूयता ॥१॥
 सा सन्मातुः सुतं शम्भुमिष्टदेवं हविं विधिम् । कश्यपं जन्मदातारं विवर्ता मयर्काल
 तत्राजगाम भगवान् गोपीशः शम्भुरेव च । विधिञ्च कश्यपश्चैव मनसा परिनिमित्त
 स च हृष्टः शम्भुमिष्टदेवं निर्गुणं प्रह्लादः परम् । मुद्राय पत्न्या शनया प्रजनाम् मुहुर्मुहुः ॥२॥
 नमश्चकार शम्भुञ्च प्रह्लादं कश्यपं तथा । कथमागमनन्तश्च इति प्रश्नं चकार सः ॥३॥
 प्राप्ता तद्वचनं धृत्या सहसा समयोचितम् । तमुवाच नमस्कृत्य हारीशः पद्मानुजम् ॥
 प्रह्लादोवाच ।

यद्विपत्ता धर्मपक्षा धर्मिष्ठा मनसा सतो । कुरुष्यास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्मपालनाय वै
 यति र्वा प्रह्लाचारी वा मिथुर्वनचरोऽपि वा ।
 जायायाश्च सुतोत्पत्तिं हृदया पश्चाद् मयेऽमुनिः ॥ ५८ ॥
 भद्रहृदया ॥ सुतोत्पत्तिं वैरागी यन्त्यजेत् प्रियाम् ।
 ह्येक्षतपस्तप्तु पुण्यञ्च घालन्याश्च यथा जलम् ॥ ५९ ॥
 प्रह्लादो वचनं धृत्या जरत्कार्मुनीश्वरः । चकार तन्नामिस्पर्शं योगेन मन्त्रपूर्वकम् ॥
 तस्मै शुभाशिर्षं दत्त्वा ययुर्द्वेषामुदन्विताः । मुदगन्विताश्च मनसा जरत्कार्मुदगन्विताः ॥
 मुनेः करस्पर्शमात्रात् सद्यो गर्भो वभूव ह । मनसाया मुनिधेष्ट मुनिधेष्ट उवाच ताम् ॥
 जरत्कार्मुकाय ।

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति । जितेन्द्रियाणां प्रवरो धर्मिष्ठो वैष्णवाग्रणीः ॥
 तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः । धरो वेदविदाश्चैव योगिनां धानिनां तथा
 स च पुत्रो विष्णुमक्तो धार्मिकः कुलमुदरेत् । नृत्यन्ति पितरः सर्वे यजन्ममाश्रतो मुदा ॥
 पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी । धर्मिष्ठपुत्रमाता च कुलज्ञा कुलपालिका ।
 हरिमक्तिप्रदो यन्मुस्तदिदं यत् सुखप्रदम् । योषण्यद्वित्यस्य पिता हरेर्वर्मप्रदर्शकः ॥

ता गर्भधारिणीयाश्च गर्भवःसर्धमोक्षनी । विष्णुमन्त्रप्रदाता च ॥ गुरुर्विष्णुमचिदः ॥
गुरुश्चानन्ददाताश्च सत्ज्ञानं कृष्णभावनम् । माग्नहास्तप्यपर्यन्तं यतो विष्यं चराचरम् ॥
मायिभूतं तिगेभूतं विषाः ज्ञानं तद्व्ययतः । चेद्वर्जं योगजं यदुपचत्सारं हरिसेधनम् ॥
तस्यानां सारमूलाश्च हरेरन्यद्विद्वन्मन् ॥ इत्तं ज्ञानं मया नुम्यं सत्त्वामी ज्ञानदो हि यः
ज्ञानान् प्रमुच्यतेयन्मन् सत्त्वुर्गोद्विद्यधदः । विष्णुमन्त्रायुनं ज्ञानं मो ददातिद्विगुणः
स त्रिपुः शिष्यपात्नी च यतो वन्धान् मोचयेत् ॥ ७२ ॥

जननीगर्भज्ञानं ह्येतात् यमताइनज्ञातया । न मोचयेदुवः सकथं गुरुस्तातोद्विद्यन्धयः ।
परमानन्दरूपश्च कृष्णमन्त्रोन्नतश्चरम् । न दर्शयेदुवः सकथं कं हरो बान्धवो नृणाम् ।
मम साध्वि परं प्रज्ञाव्युत्तं कृष्णश्च निर्गुणम् ॥ ७४ ॥

निर्मूलश्चपुराकर्म भयेदु यत्सेषवाधुयम् । मया छयेन त्वं त्यक्ता क्षम दीवं ममप्रिये ॥
क्षमायुतः सासाध्विनां सत्यम् कोधोनपिचते । पुनरुदयस्तेवामि गच्छदेवियधानुत्तम् ।
धीरुष्णचराणाम्मोक्षेभ्यान्मिच्छेदेकातरः । धनविपुस्त्रिपांश्रितिः प्रवृत्तिपरमं गच्छताम्
धीरुष्णराणाम्मोक्षे निष्पृहाणां मनोरथाः ॥ ७८ ॥

अरुणादयः ध्रुत्वा इतस्ता शोककातरा । सा साधुनेषां विनयादुपायं प्राणपादमम् ।
मनसोपायः ।

दोषेणाहं यथा त्यक्तानिद्रामङ्गेने प्रमोः । यत्र स्मरामिन्ध्यां यत्पी तत्रमासागमिष्यसि
वन्तुमेहः ह्येतामः पुत्रभेदस्ततः परः । प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदश्च सर्वतः परः ॥
पतिः पतिप्रतापश्च शत्रुपुत्राधिकः प्रियः । सर्वस्माच्च प्रिय स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यतेपुत्रैः
पुत्रे यथेकपुत्राणां धैर्यपानां यथ हर्षः । मित्रे दयैकनेत्राणां सुखितानां यथा जले ॥

सुखितानां यथाग्ने च कामुकानां यथा मित्रयाम्

यथा परस्त्री र्धाराणां यथा जारं बुयोदिताम् ॥ ८४ ॥

विपुलाश्च यथाशास्त्रे बाण्डये चपिर्जा यथा ।

तथा हायममःकामे सात्त्विकां रोगिणीप्रमो ॥ ८५ ॥

एतुयथा मनसादेही परतत्त्वाभिवः परे । क्षयश्चकार कोद्रे तां वृषयाश्च हनानिजिः

नेत्रोदकेन मनसां स्थापयामास तां मुनिः । साधुणाचमुनेः क्रोडं सिपेच भेदकात्
 तदा ज्ञानेन तो द्वौच विशोकौचवभूवतुः । स्मारं स्मारं पद्माम्भोजंरुष्णस्य परमात्म
 जगामतपसेविप्रः स फान्तांसुप्रबोध्यच । जगाममनसाशम्भोः कैलासं मन्दिरं गुतेः
 पार्यती योधयामास मनसां शोककर्षिताम् । शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवाख्ये
 सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुशय मङ्गले क्षणे । नारायणांशं पुत्रञ्च ज्ञानिनां योगिनां गुरु
 गर्भस्थितो महाज्ञानं धृत्या शङ्करध्वजप्रतः । स बभूवच योगीन्द्रो योगिनां ज्ञानिनां गुरु
 जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास शिवाय च शिवः शिरो
 रत्नत्रिकोटिलक्षश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः । पार्यती च गयां लक्षं रत्नानि विविधानि च
 शम्भुश्च बतुरो वेदान् वेदाङ्गानितरंस्तथा । बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युञ्जयं परम्
 भक्तिरास्ते स्यकान्ते चामोटे देवे हरीगुरौ । यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीकपव
 जगाम तरसे विष्णोः पुष्करं शङ्खापतया । संप्राप्य च महामन्त्रं तपश्च परमात्मक
 दिव्यं धर्मत्रिलक्षञ्च तपस्तपसा तपोधनः । भाजगाम महायोगी नमस्कृतुं शिवं प्रभुम्
 शङ्खञ्च नमस्कृत्य कृत्याच बालकं पुरः । सा वाजगाम मनसा करपस्याधर्मं पितु
 तां सपुत्रां मुतां दृष्ट्वा सुरं प्राप ब्रजापतिः । शतलक्षञ्च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने
 ब्राह्मणान् भोजयामास भस्मभ्यान् श्रेयसे शिशोः ।

अदितिश्च त्रिनिधायवा सुरं प्रापुः परं तथा ।

सा सपुत्रा च सुखिरं तन्वी तन्नालवे तथा । तन्वीयं पुनराकथनं यद्व्यामित्तनिशाम्य
 मयाभिप्रत्युक्तये प्रत्यगापः परिक्षिने । बभूव सदासा महान् दीपदोयेन कर्मणा ॥ १०१ ॥
 सनाहेसमर्पिते तु तप्तहस्त्याञ्च योद्वयम् । शय्याय मृत्योनेनोर् कौशिल्यः च जलेन च
 राजा धृत्या तप्यन्ति यद्वाञ्छारं जगाम सः । तत्र तन्वीयं सनाहंशुप्राय धर्मसंहिताम्
 सनाहे समर्पिते तु मन्त्रं तप्तकं यधि । धर्म्यलरिर्नृपं भोक्तुं ददौ तामुकोक्तम्
 तयोर्पुत्रं संवादः सुरीतिश्च वारं वारम् । धर्म्यलरिर्नृपं प्राप तप्तकः स्वेच्छया ददौ ।
 स ययौ तं मूर्धन्या तु तुरः प्रहरमाननः । तप्तको महायामास नृपश्च मन्त्रकण्ठिन्
 राजा जगाम वेदुष्टं स्मार्तं स्मार्तं हरिगुरुम् । तत्कारं कारयामास विभुर्गोत्रवर्गुवा ॥

राजा चकार यज्ञञ्च सर्वसत्रं तनो मुने । प्राणांस्तत्याज सर्पाणां सम्पुद्गो ब्रह्मतेजसा ॥
स तक्षकश्च भीतश्च महेन्द्रं शरणं यवी । सेन्द्रश्च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः ॥१११॥
अथ देवाश्च मुनयश्चाययुर्मनसान्तिकम् । तां तुष्टाव महेन्द्रश्च भयकातचित्कलः ॥११२॥
तत्र आत्मीक भ्रातृव्य यज्ञश्च भानुताडया । महेन्द्रतक्षकपाणान् ययावे भूमिर्न धरम् ॥
ददौ धरं नृपधेष्टः कृपया ब्राह्मणतया । यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणाञ्च ददौ मुदा ॥
यिप्राश्च मुनयोदेवा गन्धाद्यमनसान्तिकम् । मनसां पूजयामासुस्तुष्टुञ्च पृथक्कृत्यक् ।
शक्रः संवृतसंमारो भक्तियुक्तः सदाशुचिः । मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरम् ॥११६॥
दत्त्वा षोडशोपचारैर्बलिञ्च तन् प्रियं तदा । प्रददौ परितुष्टञ्च ब्रह्मविष्णुसुरादया ॥
संपूज्य मनसादेवो प्रपयुःस्थालपञ्चने । इत्येवंकथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

केनस्तीव्रेणतुष्टाव महेन्द्रोमनसांस्तमीम् । पूजाविधिकर्मतस्याः श्रोतुमिच्छामित्तत्त्वतः ॥

नारायण उवाच ।

सुज्ञातःशुचिराचान्तोभूत्वा र्धीतेष वाससी । रत्नसिंहासने देवीं वासयामासभक्तितः ।
स्वर्गगङ्गाजनेनेव रत्नरुम्भस्थितेन च । आसयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः ॥
वाससी वासुरामास षड्विंशद्वे मनोमे । सर्वोद्वे चन्दनं दद्यात् पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः ॥
गणेशञ्च दिनेशञ्च षड्विंशं शिवाय । संपूज्य देवगणञ्च पूजयामास तांस्तमीम्
भौं ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येषञ्च मन्त्रतः । दशाक्षरेण मन्त्रेणददौ सर्वं यथोचितम्
दत्त्वा षोडशोपचारं भक्तियो दुर्जयंदरिः । पूजयामास मत्तयाच ब्रह्मणाम्रेष्ठो मुदा ॥
षाट् नानाप्रकारञ्च पादयामास तत्र वै । यमूष पुष्पवृष्टिञ्च नमसो मनसोपरि ॥१२६॥
देवो यिप्राज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादया । तुष्टाव साधुनेत्रश्च पुलकाञ्जितविप्रदः ॥

महेन्द्र उवाच ।

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां पराम् ।

परपराञ्च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽयुना ॥ १२८ ॥

तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाकारानवयम् । न क्षमः पठति यत्तुं गुणानां तव सुयते

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सुरम्पुषाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

॥ या सा सुरभी देवी गोलोकाद्गता च या । तज्जन्मवर्तिष्कान्ध्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥
नारायण उवाच ।

धामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रभूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥
हर्षादिस्पृष्टेः कथने कथयामि निशामय । यभूव सेन तज्जन्म पुरा बृन्दावने धने ॥ ३ ॥
कदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् । गोवाङ्मनापरिवृतः पुण्यं बृन्दावने धयी ॥
हस्ता तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् । यभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छामयस्य च ॥
प्राप्यै सुरभीं देवी लीलया धामपार्वते । वत्सयुक्ता दुग्धवतीं वत्सानाञ्च मनोरमाञ्च ॥
कदा सवत्सरीं सुदामा रत्नमाण्डे दुदोह च । क्षीरं सुचातिरिक्तञ्च जन्मसृष्टयुहं परम् ॥
दुग्धञ्च पयः स्वादु धवी गोपपतिः स्वयम् । सरो यभूव पयसा भाण्डधिरसनेन च ॥
दीर्घं च विस्तृते चैव परितः शतपौडनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धम् ॥ ४ ॥ क्षीरसरोवरः ॥
पिपिकानाञ्च राधायाः क्रोडापापीकभूवसा । रत्नेन रचिता सूर्यं भूता चापीशपरैच्छया ॥
भूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । तावन्तो हि च वत्साश्च सुरभी लोमकूपतः ॥
गोसां पुत्राश्च पौत्राश्च संश्रुधुरसंख्यकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तथाचरितं जगत् ॥
जाज्ञकार भगवान् सुरम्पाश्च पुरा मुने । ततो यभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्दमा ॥
शिपान्वितापरदिने धीकृष्णस्याज्ञया भवे । यभूव सुरभी पूजा धर्मवक्त्रादितिश्रुतम् ॥
प्रायं स्तोत्रं मूढमन्त्रं यदुयन् पूजाविधिजगम् । वेदोक्तञ्चमहाभावं निबोधकथयामिते ॥
मौ सुरम्पेनम इति मन्त्रस्य च पङ्क्तिः । सिद्धो लक्षत्रपेनेव भक्तानां कल्पपादपः ॥
प्यातश्च यतुर्देवोऽं पूजनं सर्वसममम् । श्रद्धिदां वृद्धिदाक्षीव मुक्तिदा सर्वकामदा ॥
रस्मीत्यरूपां परमां राधासहचरीं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रभुम् ॥

पवित्ररूपां पूज्याञ्च भक्तानां सर्वकामदाम् । यथा पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरमीं ।
घटे वा धेनुशिरसि बद्धस्तम्भे गवाञ्च वा । शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभीपूजयेद्भक्तिं
दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंगुतः । यः पूजयेच्च सुरमीं स च पूज्यो भवेद्भुक्तिं
पक्वदा त्रिषु लोकेषु चाराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताञ्च सुतां
ते गत्वा ब्रह्मलोकञ्च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा । तदाह्वया च सुरभीं तुष्टाय पाकशासन
महेन्द्र उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सुरम्यै च नमो नमः । गवां धीजस्यरूपायै नमस्तेजगद्भिर्युक्ते ।
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः । नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः
कल्पवृक्षस्यरूपायै सर्वेषां सत्ततं परम् ॥२५॥

श्रीदायै धनदायै च वृद्धिदायै नमो नमः । शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः ॥
यशोदायै कीर्त्तिदायै धर्मज्ञायै नमो नमः । स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसन्न
भाविर्यभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी । महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितञ्चापि दुर्लभम्
जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् । यभूव विश्वं सहसा दुग्धपर्णञ्च नारद
दुग्धात् पुनं ततो यजस्ततः प्रीतिः सुरम्य च । इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्
स गोमान् धनधान्यैश्चैव कीर्त्तिमान् पुण्यमान् भवेत् । सन्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् । सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम्

न पुनर्भयं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥ ३३ ॥

इति धीप्रवर्धनं महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सुरभ्युपाख्यानं
नाम सम्यक्त्वार्चित्तमोऽध्यायः ।

अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

राधिकाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग नारायणपरायण । नारायणांश भगवन् ब्रूहि नारायणीं कथाम् ॥१॥
श्रुतं सुरभ्युपाण्यानमतीथ सुमनोहरम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्धिः प्रशंसितम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामिराधिकाख्यानमुत्तमम् । तदुत्पत्तिञ्चतदुद्भयानंस्तोत्रं कथय मुत्तमम्
श्रीनारायण उवाच ।

पुरा कैलाशशिखरे भगवन्तं समातनम् । सिद्धेरां सिद्धिदं सर्वं स्वरूपं शङ्करं परम् ॥३॥
प्रपुण्ड्रवदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम् । कुमाराय प्ररोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः ।

रासोत्सयरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम् ॥ ५ ॥

तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती ॥६॥

पप्रच्छ पार्यती स्फीता सस्मिता प्राणवत्प्रभम् । स्तब्धं कुर्वती भीताप्राणेशेनप्रसादिता
प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी । अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥८॥

धीपार्वत्युवाच ।

भागमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमुत्तमम् । पञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगश्चयोगिनाम्
सिद्धानां सिद्धिरास्त्रञ्चनानातन्त्रमनोहरम् । भक्तानां भक्तिशास्त्रञ्चकृष्णस्य परमात्मनः
देवीनामपिसर्वासांचरितं त्वन्मुखाभ्युजात् । अधुना श्रोतुमिच्छामिराधिकाख्यानमुत्तमम्
श्रुती श्रुतं प्रशंसा च राधायाश्च समासतः ।

तद्यमुखात् काण्वशाखायां व्यासेन तां वदधुना ॥ १२ ॥

भागमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा । नदीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति
तदुत्पत्तिश्च तदुद्भयानं नमनोमाहात्म्यमुत्तमम् । पूजाविधानंचरितंस्तोत्रं कथय मुत्तमम्
आराधनं विधानश्च पूजापद्धतिमीदृशम् । साग्रतं ब्रूहि भगवन्मांभक्तां मुक्तयत्सर

कर्णं न कर्णितं पूर्णमागमामगमकान्तः । पार्थतीयवर्नं धूम्रानत्रयवर्णो यभूः सः
 पञ्चवर्णश्च भगवान् शुक्लः शरीरान्तरुः । स्वसयमङ्गमीतभमौगीभूतो द्विविन्निः
 सप्तमारुहणं पत्नेनाभीदेवहृदयानिषिम् । तदनुवाञ्जमप्राप्याप्यार्द्धाङ्गातामुवाचमः
 निरिदोऽहं भगवता कृष्णेन परमरमना । भागमात्ममगमगे राधाप्यानत्रसूत
 मर्द्धाङ्गलका रथं न मद्दिवा स्वरूपनः । भगोऽनुवाञ्जं ददौ कृष्णः मयां यक्तुं मदेभ्वरि
 मदीष्टदेवकान्तापरापायाभितिलसनि । अतीय गोपनीयञ्च सुधर्म्दं कृष्णमनितम् ॥२०॥

जानामि तददं दुर्गे सयं पूर्वापरं वरम् ।

यज्जानामि रहस्यञ्च न तन् यदा कर्णीभ्यः ॥२१॥

॥ तन् सनः कुमारश्च न च धर्मः सवातनः ।

न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः ॥२२॥

मत्तो यलपती त्वञ्च प्राणांस्त्यक्तुं समुपता ।

अतस्यां गोपनीयञ्च कथयामि सुरेश्वरि ॥२३॥

शृणु दुर्गे प्रपश्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । चरितं राधिकायाश्च दुर्लभञ्च सुपुण्यदम्
 पुरा घृत्वायने रम्ये गोलोके रासत्रण्डले । शक्रवृद्धैकदेशे च मालतीमङ्गिकायने ॥२४॥
 रत्नासिंहासने रम्ये तस्यौ तत्र जगत्पतिः । स्वेच्छामयश्च भगवान् यभूषणजोत्सुकः

रमणं कर्तुमिच्छा य तद्वयभूष सुरेश्वरी ।

इच्छया य भवेत् सयं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२५॥

एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधाकूपो यभूष सः ।

दक्षिणाङ्गञ्च श्रीकृष्णः वामार्द्धाङ्गश्च राधिका ॥२६॥

यभूष रमणी रम्या रासेशा रमजोत्सुका । अमूल्यरत्नमरणा रत्नासिंहासतलिता ॥२७॥

यद्विपुदांशुकाधाना कोटिपूर्णशशिप्रभा । ततकाञ्चनवर्णामाराजिताचस्यतेजसा ॥२८॥

सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पद्मनिमानना । विभ्रतीफवरीरम्यांमालतीमालयमण्डिताम् ॥२९॥

रत्नमालाञ्चदधतीम्रीमसूर्य्यसमप्रभाम् । मुकाहारेण शुभ्रेण गांगघारानिभेन च ॥३०॥

संयुक्तं यत्तुलोत्तुङ्गं सुमेधगितिसन्निभम् । कठिनं सुदरं दृश्यं कस्तूरीपत्रचिह्नितम् ॥३१॥

मांगल्यं मंगलार्हञ्चस्तनयुग्मञ्च विप्रति । नितम्ब धोणिमारुर्त्ता नवयौवनसंयुता ॥३५॥
 कामातुरां सस्मितां तां ददर्शरसिकेश्वरः । दृष्ट्वाकान्तजगत्कान्तोयभूवामणोत्सुकः ॥
 दृष्ट्वाचैवं सुकान्तञ्च सा दधार हरेःपुटः । तेन राधासमाख्याता पुरविद्धिर्महेश्वरि ॥३७॥
 राधा भजति श्रोतुं सवताञ्चरस्वप्नम् । उमग्रोःसर्वसाध्यञ्चसदासन्तोषदन्ति च ॥
 भयनं घाघनं रासे स्मरत्यालिमनं जपेत् । तेन जल्पतिशङ्कृतांशस्यां राधां महीश्वरः ॥
 राशब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।

धाराधोच्चारणात् सुयं घावत्वेय हरेःपदम् ॥४०॥

कृष्णधामोशतःभूतः राधा रासेःवरोपुटः । तत्सखायांशांशकठया यमूद्वेषयोपितः ॥
 राहत्यादानववनो धाव्य निर्वानघावकः । ततोऽप्राप्नोतिमुक्तिञ्चसाचराधामकीर्तिता ॥
 यभूव शीपीसंपन्न राधाया लोमकूपतः । श्रोतुंलोमकूपेऽपःयमूतुः सूर्ययल्लवाः ॥४३॥

राधाधामोशमार्गेण महालक्ष्मीर्यभूव सा ।

शस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्यभूव सा ॥४४॥

घतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी श्रेकुण्ठवासिनी । तर्क्षाराजलक्ष्मीश्चराजसम्पन्नप्रदायिनी ॥
 तर्क्षारा मरर्षलक्ष्मीश्च गृहिणाञ्च गृहे गृहे । शस्याधिष्ठातृदेवा च सा एव गृहदैवती ॥
 स्वयं राधाकृष्णपत्नीकृष्णवत्सलस्थिता । प्राणाधिष्ठातृदेवीचतस्रैव परमात्मनः ॥
 माप्रहस्तम्यपर्यन्तं सर्वं मिथैव पार्यति । भजसत्यंवरंश्रद्धाराधेशंत्रिगुणात्परम् ॥४८॥
 परं प्रधानं परमं परमात्मानमोश्चरम् । सर्वार्थं सर्वपूज्यञ्च निरीदं प्रकृतेः परम् ॥४९॥
 स्वैच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहचिग्रहम् । तद्विन्नात्माश्चदेवानां प्राकृतं रूपमेव च ॥५०॥
 तस्य प्राणाधिकाराप्यायद्गु सीमाव्यसंयुता । महद्दिप्नोः प्रसूसावमूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
 मानिनीराधिकांसन्तःसदासेवन्तिनित्यशः । सुखमयत्पदाम्मोजंमहादीनामुदुर्लभम् ॥

स्थाने राधा पदाम्मोजं न हि पश्यन्ति घल्लवाः ।

• स्वयं देवी हरेः कोङ्गे छायारूपेण कामिनी ॥५३॥

स च द्वादश गोपानां रायाणः प्रवटः प्रिये ।

धीरुष्णांशश्च भगवान् विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥५४॥

सुदामशापात् सा देवी गोलोकाद्वागता मर्हाम् ।

पुत्रमानुगृहे जाता सन्माता च कलायती ॥१०॥

इति धीमत्प्रह्लादेवर्ते महापुराणे प्रह्लादनिम्बण्डे नारायणनाम्नसंवादे हर्गोरी-
संवादे राधोपाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः ।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हर्गोरीसंवादे राधोपाख्यानम् ।

पार्यत्युवाच ।

कथं सुदामशापञ्च सा च देवी ललाम ह ।

कथं शशाप भृत्यो हि स्यामीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥

धीमगवानुवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभश्रमक्तिमुक्तिदम् ॥२॥

एकदा राशिकेशाश्च गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गपर्वतैकदेशे बृन्दावने घने ॥३॥

गृहीत्वा विरजां गोपीं सौभाग्या राधिकासमाम् ।

कीडाञ्चकार भगवान् रत्नभूषणभूषितः ॥४॥

रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डले । भ्रमूल्यरत्ननिर्माण तल्पेचम्पकचर्चिते ॥५॥

कस्तूरीकुङ्कुमासके सुगन्धिचन्दनार्चिते । सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिभ्रमते ॥६॥

सुरतेर्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । तौ द्वौ परस्परसक्तौ सुखसम्भोगतन्त्रितौ ॥

मन्यन्तराणां लक्ष्म्य कालः परमितोगतः । गोलोकस्यस्वल्पकालेजन्मादिरहितस्य च ॥

दूत्यश्चतस्रो ज्ञात्वा च कथयामासुः राधिकाम् ।

श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हारमीश्वरी ॥६॥

१० । च सखिभिः कोपरकाम्यलोचना । विहाय रत्नालंकारं च ह्यिशुदांशुकेशुमे ॥

कीड़ापत्रञ्च सद्रत्ना मूल्यदर्पणमुज्ज्वलम् । चकार लोपं धस्त्रेणसिन्दूरं चित्रपत्रकम् ॥
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिमिमुखरागमलतन्मम् । बिभ्रस्तकवरीभारामुक्केशप्रकम्पिता ॥१२॥
शुक्लवस्त्रपरीधाना रुक्षधैराद्विषजिता । ययौ यानान्तिकं तूष्णं प्रियालीभिर्निवारिता ॥
मातृहवसणीसंघरोपविष्कुरिताधरा । शश्वत्कम्पान्वितांगीसामोपीमिःपरिवारिता
ताभिर्भवयायुताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता । आकरोहदर्थं दिव्यममूल्यरत्ननिर्मितम् ।
दृशयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्यं च योजनं शतम् ॥१५॥

सहस्रवक्रयुक्तं च नानाचित्रसमन्वितम् । नानाविचित्रयस्त्रैःसुक्ष्मैःक्षौर्मिपिराजितम् ॥
ममूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैःपरितोमितम् । मण्यन्द्रजालमालालिपुष्पमालाविराजितम् ॥
सद्रत्नकलसैर्गुक्तंरम्यैर्मेन्दिरकोटिमिः । त्रिलक्षकोटिमिःसादंयोपीमिश्चप्रियालिमिः ॥
ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिना प्रिये । धृत्या कीलालं गोपःसुदामा कृष्णपार्श्वः ॥

कृष्णं हृत्या सावधानं गोपे सादं पलायितः ।

भयेन कृष्णः सन्नस्तो विहाय पिरजां सनीम् ॥२०॥

न्यप्रेममग्नो कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ।

सा सती समर्थं ज्ञान्वा विचार्य स्वहृदि कृष्णा ॥२१॥

राघाप्रकोपभीता च प्राणास्तत्याज तन्क्षणम् ।

पिरजालिगणान्तत्र भयविह्वलकातराः ॥२२॥

प्रययुः शरणं साध्यां पिरजां तन्क्षणं भिया । गोलोकेसासरिद्रुपा बभूव शैलपत्न्यकै ॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा । गोलोकं वेष्टयामास परितेष मनोहरा ॥
बभूवुः शुद्रनद्यश्च तदान्या गोप एव च । सर्वा नयन्तदंशाश्च प्रतिविशेषु सुन्दरि ॥
इमे क्षतसमुद्राश्च पिरजालन्दना भुवि । अधागन्ध भगपर्णा राधासमैश्वरी परा ॥२६॥
न हृदा पिरजां कृष्णं दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा । जगाम कृष्णगतां राधांगोपालैरष्टमिःसह
गोपीभिर्ज्ञास्त्रिगुणाभिर्षांस्त्रिगुणः पुनः पुनः । दृष्ट्वाकृष्णश्चसादेयां भर्तृसनश्च यथातन्म् ॥
सुदामा भर्तृसयामास तामेव कृष्णसन्निधौ । कृष्णप्रापसादेयानुदामानं सुरैश्वरी ॥
गच्छ त्वमामुरीं योनिं मच्छतून्मत्तोद्भूतम् । शशापतांनुदामात्तन्वमितोवच्छमास्तम् ॥

मय गोपीगोपकन्यागोपीमिः स्यामिरेव । तत्रनेहृष्यविन्देक्षामप्यतिवर्तमानम्
तत्रमारावतरणं भगवत्प्रकारिष्यति । इत्येवमुक्त्वा सुदामा प्रणम्य मातरं हरिम्

साधुनेत्रो मां हयुक्तमनसं गन्तुमुद्यतः ॥३२॥

राधा जगाम तत्पश्चात् साधुनेत्रातिविह्वला ।

यत्तत् ॥ यासीत्पुनश्चाप्यं पुत्रविन्देक्षकानरा ॥३३॥

कृष्णस्तां बोधयामास विषया नृहरामणीन् । शीघ्रं प्रपश्यसि मुत्तमात्मेत्यैवनेपथ्ये

॥ यातुः शङ्खबूङ्गः यमूय तुलसीपतिः । मन्दहृन्ममिप्रकायेनालोकाञ्च जगामसः ॥

राधा जगाम धाराहो गोकुलं भागनें सती । वृत्तमानांश्चैश्वर्यस्य सा चकन्यायमूयह ॥

भयोनितामया देवी वायुगर्भा कन्यायनी । सुपुत्रे मायया धारुं सा तत्राविर्भूय ह

अतीति द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नययौघनाम् ॥३८॥

साद्धं राधाण्यैश्वरेण तन् सम्यग्र्यं चकार सः ।

छायां संस्थाप्य तद्देहे सान्तिर्दानं चकार ह ॥३९॥

यमूय तस्य चैश्वर्यस्य विवाहश्छायाया सह । गते चतुर्दशाब्दे तु वंसर्मातश्छलेन च

जगाम गोकुलं कृष्णः शिशुग्रीवजगत्पतिः । कृष्णमातायशोदाया राधाणस्तत्सहोदय

गोलोके गोपकृष्णांशः सम्यग्धात् कृष्णमातुलः ॥४१॥

कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने घने । विवाहं कारयामास विधिनाजगतां विधिः

स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहिपश्यन्तिबल्लवाः । स्वयं राधाहरेः क्रोडे छाया राधाणमन्दिरे

पटि धर्यसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । राधिकाचरणाम्भोजदर्शनाद्यौच्यपुष्करे ॥४५॥

मारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले । ददर्श तन् पदाम्भोजं तपस्तत्फलं च ॥४६॥

किञ्चित्कालञ्च धीकृष्णः पुण्ये वृन्दावने घने ।

रमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते ॥४६॥

सतः सुदामशापेन विन्देक्ष यमूय ह । तत्र मारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः ॥४७॥

शताब्दे समतीति तु तीर्थयात्राप्रसंगतः । ददर्श कृष्णं सा राधा स च ताञ्च परस्परम् ॥

॥ जगाम गोलोकं राधया सह तत्त्वयिन् । कलावती यशोदा च जगाम राधया सह ॥

वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम् ।
 सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥५०॥
 छायागोपाश्च गोप्यश्च प्राप्नुमुक्तिश्च सन्निधौ ॥५१॥
 ताश्च तत्रैव सार्द्धं कृष्णेन पार्यति । पट्विशद्वृक्षकोट्यश्चगोप्योगोपाश्चतस्माः ।
 गोलोकं प्रययुर्मताः सार्द्धं कृष्णेन राघया ॥५२॥
 प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तन्त्रिया धरा । संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ॥
 देवः कश्यपश्च देवकीचादिति सती । देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्थभायतः ॥
 पितृणां मानसीकन्या राघामाता कलावती ।
 वसुधामापि गोलोकात् वृषभानुः समाययौ ॥५५॥
 कथितं दुर्गे राधिकालशानमुत्तमम् । सम्बन्धं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥५६॥
 कृष्णश्च द्विघातुो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजः स्वयम् ॥
 तस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सत्सती । नगाचतुलसाचंयदेश्वोमारायणप्रियाः ॥
 कृष्णपत्नी सा राधा तदर्द्धांगसमुद्रया । तेजसा घयसासाध्वीरूपेणचगुणेनच ॥५८॥
 राधां समुच्चार्पयधत्तकृष्णवद्देश्वुषः । व्यतिक्रमेप्रहृष्टपांलभतेनाश्रसंशयः ।
 तकीर्णमायाश्चगोलोकेरासमण्डले । चकारपूजाराधायातत्सम्यन्धिमहोरसयम्
 सद्गुणगुटिकायाश्च कृत्वा सन् कथय हरिः ।
 दधारकण्ठे वाहौ च दक्षिणे सह गोपकैः ॥६२॥
 ध्यानश्च भक्त्या च स्तोत्रमेव चकारसः । राधाचर्चितताम्रमूलवत्याश्मधुसूदनः ॥
 राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान् प्रभुः ।
 पररपरामोष्टदेवो भेदरुषणं प्रजेन् ॥६५॥
 द्वितीये पूजिता सा च धर्मेण प्रहृष्टा मया ।
 धनन्तेन घासुकिना रविणा शक्तिना पुरा ॥६५॥
 न च रुद्रेण मनुना मानवेन च । सुरेन्द्रेण मुनान्द्रेण सर्वविश्वेण पूजिता ॥६६॥
 पूजिता सा च सन्निधौश्वरेण च । भारते च सुरजनेन पार्श्वेनिर्मुदाश्रितेः ॥६७॥

ब्राह्मणेनाभिमानेन दैवदोषेण भूभूता । व्याधिप्रप्तेन हस्तेन दुःखितान विदून्ता ॥८॥
 संप्राप रात्रयं धृष्टर्थाः स च राधापरेण न । ब्रह्मरसेन स्तोत्रेण मनुत्वा न प्रमेयमीम् ॥
 ममेवं कथयं तस्याः कण्ठे बाही दधामः । ध्यान्त्यामकागूत्राञ्जुकरैस्तथन्साम् ॥
 अन्ते जगाम शोलोकं स्तनयानेन भूमिपः । इतिनेकयिनसर्वकिम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
 इति श्रीब्रह्मपैयसे महापुराणे प्रवृत्तिप्रण्डे नारायण नारद संवादे हर्षोरीसंवादे
 राधोपाख्यानं नारैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुयज्ञोपाख्यानम् ।

पार्वत्युवाच ।

को वा सुयज्ञोत्पत्तिः कुत्र वंशे समुद्भवः । कथं विप्रामिरातश्च कथं संप्राप राधिकम्
 सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नोऽश्रीकृष्णपूजिताम् । कथं विष्णुप्रधारी च सिधेदेपरमेष्ठरीम्
 पट्टिं धर्यसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । यत्पाशमोजरैणूनां लब्धये पुष्करे विभुः ॥
 कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मीं पुरासतीम् । दुर्दृश्यामपि युष्माकं दृश्यासायाकथनं नृणाम्
 कथं त्रिजगतां धाता तस्मै तत्कथं ददौ । ध्यानं पूजाविधिस्तोत्रं तस्याख्याप्यतुमर्हसि
 श्रीमहादेव उवाच ।

स्थायम्भुवो मनुर्देवि मनूनामादिरेव च । ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः ॥
 उत्तानपादस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रो धृष्ट एव च । ध्रुवस्य कीर्त्तिर्विख्यातात्रैलोक्ये शैलकन्यके
 उत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः । सङ्घ्नं राजसूयानो पुष्करे स चकार ह ॥८॥
 सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । अमूल्यज्जराशीनां सहस्रं तेजसावृतम् ॥
 ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यज्ञान्ते सुमहोत्सवे । दृष्ट्वा तच्छोभनं यत्नं विधाताजगतां प्रिये ।
 सुयज्ञं नाम नृपतेः कार सुरसंसदि । स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंश समुद्भवः ॥ ११ ॥

दाता रत्नदाता दाता च सर्वसम्पदाम् । दशलक्षं गवाञ्चैव रत्नपट्टपरिच्छदम्
यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदायुक्तः सदक्षिणम् । गवां द्वादशलक्षाणां ददौ नित्यं मुदान्वितः
कानि वमांसा निराह्वयेभ्यश्च पार्वति । पट्कोटिं ब्राह्मणानाञ्च भोजयामास नित्यम्
य चर्ष्य लेह्य पेयैरतिवृत्तं दिने दिने । विप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्पत्नम् ॥ ११ ॥
यत्रश्च सूरान्तं सगव्यं मांसवर्जितम् । विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम् ।

न तु पुत्रुः सुयशश्च तु पुत्रुस्तत्पितृभ्यः ते ॥ १६ ॥

दिनेषु यत्र यहान्ते पट्त्रिशलक्षकोटयः ॥ १७ ॥

सुभोजनं विप्राभ्यातिवृत्ताश्च सुन्दरि । गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं शोधुमक्षमाः
वृषलेभ्यो ददौ किञ्चिन् किञ्चिन् पयि च तत्पत्न्यः ।

विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यो ददौ नृपः ॥ १६ ॥

पुत्रस्तनन्तरं चाक्षराशितहस्तकम् । हत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि ॥
दसारनिर्माणञ्च कोटिसमन्विते । रत्नसिंहासने रम्ये चावृते च सुसंस्थिते ॥
नादितुल्यखण्डे रम्ये चन्दनपल्लवेः । शाखायुक्तपूर्णकुम्भरम्भावृक्षैश्च शोभिते ॥
नागपुङ्खस्तूरीकण्टसिन्दूरसंयुते । वसुधासयवम्रेन्द्रव्यादित्वसमन्विते ॥ २३ ॥

तावत्समन्वादिभ्यश्चैव्युशिषान्विते । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समाप्ययी ॥
मलिनवासाश्च शुष्ककण्ठीष्ठतालुकः । रत्नसिंहासनश्च माल्यचन्दनवर्चितम् ॥

नम्राशिर्यज्ञके सस्मितः सम्पुटाञ्जलिः । प्रणनाम नृपस्तश्च नोत्तस्यो किञ्चिदेव हि
सदृश्च नोत्तस्पर्जहस्तः स्वस्वमेव च । मुनिभ्योऽपि च देवेभ्योनमस्तुत्यद्विजोत्तमः
न नृपतिं क्रोधात् तत्रातिप्रविरहपुराः । गच्छ दूरमतो राज्यदुष्प्रपन्नीभ्यं पामर ॥

चिरालङ्कुष्टोबुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः । इत्युक्त्वा कम्पितः क्रोधात्समास्यान्शामुमुद्यतः
न जहस्तुः सर्वे समुत्तस्थुः समासदः । सर्वे चक्रुः परीहारं क्रोधं तत्प्राज ब्राह्मणः

गत्य तं प्रणम्य शरोद् भयकातरः । निःससारं समामध्यात् हृदयेन विदूयता ॥ ३१ ॥
गो गूढकरी च प्रज्यलन् प्रज्ञानेजसा । तत्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्मयकातराः ॥ ३२ ॥

प्र तिष्ठ तिष्ठेति समुच्चार्य पुनः पुनः । पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः ॥

मरीचिः कार्यरत्नेऽथ वसिष्ठः कनुरेव च । शुक्रो बृहस्पतिश्चैव दुर्योमा मोंमश्वत्थः ।
 गोतामश्च कणादश्च हण्डः कार्ययायनः कटः । पाणिनिर्ज्ञानिश्चैव मन्त्र्यग्रहो विमाण्डकः
 मायिश्च निरुजिश्च मार्कण्डेयो महातराः । सनकश्च सनन्दश्च पौण्ड्रिणः सनातनः ।
 सनत्कुमारो भगवान् सरमागयणाचूरी । पराशरो जम्बकः सत्यर्षः कण्वस्तथा ।
 भीष्मश्च कण्वश्च रघुपथश्च मन्त्राज्ञश्च पान्थोकिः । भगवन्त्यांऽनिराज्यश्च सद्गुप्तोऽस्तीकामासुरिः
 शिखलित्वाङ्गलिश्चैव शालक्यः शाकटायनः । गर्गो वसः पञ्चशिखो जम्बुद्वीपश्चैव
 जैगीष्यो घामदेपो बालगिर्यादयस्तथा । शक्तिर्षः कर्मभश्च प्रमकनः कपिलस्तथा
 विद्यामित्रश्च कौस्तभश्च श्योकोऽप्यथ मर्यणः । प्लेवान्देवमुनयः पितरोऽग्निर्हरिश्च
 दिक्पाला देवताः सर्वे विप्रश्चान् समाययुः । ब्राह्मणं चोत्थयामासुर्यासयामासुरीश्वरि
 सप्रयुस्तं क्रमेणैव नीति नीतिप्रसारदाः ॥ ४३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैषत्तं महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरीसंवादे
 राघोपाख्याने सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नृपमुनिसंवादः ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

किमुबुर्वाहणं ब्रह्मन् ब्राह्मणब्रह्मणः सुताः । नीतिज्ञा नीतिवचनं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ।
 श्रीमहादेव उवाच ।

तुष्टं कृत्वा ब्राह्मणञ्च स्तवेन विनयेन च । क्रमेण धत्तुमारुमे मुनिसङ्घो धरानने ॥ २ ॥
 सनत्कुमार उवाच ।

रघुपञ्चादागता लक्ष्मीः कीर्तिः सत्यं यशस्तथा ।

सुशोभञ्च महैश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा ॥ ३ ॥

आगता नृपमेहेभ्यः कृत्वा भ्रष्टधियं नृपम् । अथ तुष्टो द्वित्रश्रेष्ठ आशुतोषश्च ब्राह्मणः ।
ब्राह्मणानान्तु हृदयं कोमलं नवनीतवत् । शुद्धं सुनिर्मलञ्चैव मार्जितं तपसा मुने ॥५॥

क्षमस्यागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥ ६ ॥

अतिथिर्यस्य भद्राशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च ॥७॥
निराशाः प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहात् । क्षमस्यागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुट्टनृपालयम् ॥
क्षीप्रैर्गौर्नैः कृताग्रैश्च ब्रह्मजैर्गुरतरत्नैः । तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥८॥

पुलस्त्य उवाच ।

ये पश्यन्ति वक्रदृष्ट्या चातिथिगृहमागतम् । दन्वास्वर्गार्पतस्मै तन् पुण्यमादाय गच्छति ।
क्षमस्य नृपदोषञ्च गच्छयन् स यथासुखम् । राजा स्वकर्मदापेण नोत्तर्क्योत्तन् क्षमांकुर ॥

पुलह उवाच ।

राजधिया विद्यया वा ब्राह्मणयोऽयमन्यते । त्रिसन्ध्याहीनो विप्रश्च धीहीनः क्षत्रियो भवेत् ।
रकादशीविहीनश्च विष्णुर्नैवेद्यञ्जितः । क्षमस्यागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुट्टनृपालयम् ॥

अनुरवाच ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा शूद्रपथव । दीक्षाहीनो भवेत् सौऽपि ब्राह्मणयोऽयमन्यते
न हीनः पुत्रहीनो माय्याहीनो भवेद् ध्रुवम् । क्षमस्यागच्छ भगवन् शुद्धं कुट्टनृपालयम् ॥

भट्टिरा उवाच ।

नवान् ब्राह्मणो भूत्वा ब्राह्मणयोऽयमन्यते । वृथायाहो भवेत् सौऽपि भारते सततजन्मतु
मरीचिर्याव ।

एषोऽत्रे भारते च देशश्च ब्राह्मणं मुरम् । विष्णुभक्तिविहीनश्च स भवेत् योऽयमन्यते ॥
कश्यप उवाच ।

जपं ब्राह्मणं कृत्वा योऽस्त्यमयमन्यते । विष्णुभक्तिविहीनश्च तन् पूजापिरतो भवेत् ।
प्रचेता उवाच ।

तपि ब्राह्मणं कृत्वा नाम्मुत्थानं करोति यः । पित्रमाम्भिरहीनः ॥ भवेद्भारते भुवि ॥
...सीति बौद्धी यो निस्त मृदुः सततजन्मतु । शीर्षगच्छ द्वित्रश्रेष्ठ राजानमाशिर्यंकुर ॥

वशात् उवाच ।

शूद्राणां गुरुकारश्च यो विप्रो ब्राननुपेतः ।

धर्मीयत्रे वसत्येष गुणानामेकसन्निः ॥१३॥

ततो मयेदं मया मुनिः सप्तजन्मतु । कैलकीतो जन्म सप्त ततः शूद्रो मयेनः ॥१४॥
जन्मकारणव्याच ।

भूत्य द्वारा मयं यापि यो विप्रो गृभ्याहकः ।

सप्तम इति न्यातः प्रसिद्धो मार्गे नृप ॥१५॥

प्राप्तव्यासमे वारं तन्निग्यं वृत्ताङ्गे । वृत्तृष्टे भावदानात्पापं तद्विगुणं मये ॥१६॥
सूर्यातपे वाहयेद् यः क्षमिनं तृणिं नृपम् । ब्रह्महत्याशनं पापं तमने, नात्र संशयः ।
अथ विष्टा जलं मूत्रं विप्राणां वृष्याहिनाम् । नाधिकारो मयेतेषां विनृदेवार्चने नृप ।
लालाकुण्डं वसत्येष यावद्यद्रदिपाकरो । विष्टामक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्यमयेद् वृषम् ।
त्रिसन्ध्यां ताडयेत्तञ्च शूलेन यमकिङ्कुरः । उल्कां ददाति मुखतः सूर्याहृतान्ति सत्त्वम् ।
वष्टि धर्मसहस्राणि विष्टायाञ्च कृमिस्तनः । ततः काको जन्मपञ्चजन्मपञ्च एकस्तथा ।
जन्म पञ्च गृध्रपञ्च शृगालः सप्तजन्मसु । ततो दग्धिः शूद्रश्च महाप्याधिरतश्चुवि ।
भयदाज उवाच ।

शूद्राणां शयदाही यः सः कृतप्र इति स्मृतः । शयप्रमाणां राजेन्द्रब्रह्महरयांलभेद्भुवम् ।
तत्तुल्यं योनिभ्रमणात् तत्तुल्यनरकाच्चुविः । योदोषो ब्राह्मणानाञ्च शूद्राणां शयदाही ।
सावदेव मवेदोषः शूद्रादात्रभोजने ॥१८॥

विमाण्डक उवाच ।

पितृध्राद्धे च शूद्राणां मुट्के यो ब्राह्मणोऽधमः ।

सुरार्पाति ब्रह्मघाती पितृदेवार्चनादुवहिः ॥१९॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शूद्रस्त्रीगमने नृप । तद्व्यामि वेदोक्तं सावधानं निशम्य ।
यो विप्रो वृषलीपतिः । कृमिदंष्ट्रे वसेत्सोऽपि यः पशुशिरः ॥२०॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः] * हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम् *

प्रतिमायां मयेद्विप्रो विद्वन्मो यमकिङ्करीः । प्रतिमायां तन्मलोत्तमाश्लेषयति
तत्र पुंभन्तीयोनी हृमिमंथनि निश्चिनम् । एष वर्णसदृशश्च ततः दृष्टस्ततः

सुपन्न उवाच ।

प्रमोयाञ्च हृत्प्रानां यद् कर्मफलं मुने । श्लाघ्यो मे ग्रहाशापश्यकान्यसम्पत्ति
धन्योऽहं हृत्प्रान्योऽहं सफलं जीवनं मम । भागतास्तु यतो मुक्तमद्वैतमुत्तमं

इति धीमदवैषर्णे महापुराणे प्रहृतिगण्डे नारायणनामधर्मवादे नृपमुनिः

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम् ।

धर्मार्थसुवाच ।

प्रमोयाञ्च हृत्प्रानां यद्वयम् कर्मफलं प्रमो । मेयां किमुपमुक्तयो पदपदार्थम्

धीमदेष्वर उवाच ।

प्रमं कुर्यति राजेन्द्रे तवेषु मुनिषु प्रिये । तत्र प्रवक्तुमारमे धर्मिनांगवर्णाः

नारायण उवाच ।

स्वदत्तां वस्तुतांवा प्रदत्तुनि हरेण यः । सा हृत्प्र इति श्रेयः पञ्चस्य भृशम्

पावतां रेषयः शिवा विमोक्षो मेवविन्दुभिः । साधकैर्गदगदश्च दृष्टप्रोने

नारायणश्च नृद्वयं पावश्च नानुव्रजम् । नारायणे च शायने नादितो यमनि

सदने च सदगदारी विद्यायां ज्ञायने हृमिः । यदि वर्णसदृशाणि देवमानेन

स्तो भवेद्वैभुविहीनः प्रजार्हीनश्च मानवः । हृदि हृत्प्रो गोपी दृष्टोऽभिव्यक्तः

नारा उवाच ।

हृदि सा नारायणोऽस्ति नारायणोऽस्ति नारायणोऽस्ति नारायणोऽस्ति

अप्यनृपे पश्येत् सोऽपि यावदिन्द्राभ्यनुर्गः । कीदृशं नृपमानं भवति सन्तः
 तत्तत्सरोदकं पापि नित्यं पिबति गार्हति । ततः सर्पो जन्मसप्त काकगच्छ तन्मृ
 द्वेचल उपायः ।

प्राप्तस्य वा गुरुस्य वा देवस्य वापि यो हरेत् । स कृमि इति ज्ञेयो महापापी न
 अपटोदे पश्येत् सोऽपि यावदिन्द्राभ्यनुर्गः । ततो भवेत् सुगर्भाणि ततः कृद्वन्तः
 जैगीप्य उपायः ।

पितृमातृगुप्तं भापि भक्तिर्दानो न पात्येत् । पात्रा न ताडयेत् तांश्च सत्तप्त इति
 पात्रा न ताडयेन्नित्यं स्यामिन् कृमिश्च न या ॥ १३ ॥
 सा हृत्प्राप्तिं विन्याता भारते पापिनी यग । पङ्क्तिगुणं महायोर् सच साय प्रय
 तत्र यहाँ पस्येय वापश्चन्द्रविषाणो । ततो भवेज्जलोकाश्च जन्मसप्त ततः शुचि
 धार्मीकरवाच ।

यथा तदपु वृक्षस्य सर्वत्र न जहाति च । तथा हृत्प्राप्ता राजन् सर्वपापेषु धर्तते
 मिथ्यासाध्यं यो ददाति कामात् क्रीडात्तया भयात् ।
 सभायां पाक्षिकं वक्ति स हृत्प्राप्ति स्मृतः ॥ १४ ॥

पुण्यमात्रं चापि राजन् यो हन्ति सहस्रप्रकः । सर्वेषां पितृ पुण्यद्वानां हृत्प्रा
 मिथ्यासाध्यं पाक्षिकं वामास्ते वक्ति यो नृप । यावदिन्द्रसहस्रं सर्पकुण्डे वसेद्
 सन्ततं वेष्टितः सर्पैर्मितश्च भक्षितस्तथा । भुङ्क्ते च सर्पविषमूत्रं यमदूतेन ताडितः ।
 हृत्प्राप्तासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु मण्डूकः पितृभिः सप्तभिः स
 ततो भवेच्च वृक्षश्च महारण्ये च शास्त्रलिः । ततो भवेच्चरो मूकस्ततः शूद्रस्ततः शुचि
 आस्तीक उवाच ।

गुर्यङ्गनानां गमने मातृगामी भवेच्चरः । नराणां मातृगमने प्रायश्चित्तं न विद्यते
 भारते च मृष्येष्ट यो दोषो मातृगामिनाम् । ब्राह्मणीगमने चैव शूद्राणां तावदेव हि
 हि ब्राह्मण्या दोषः शूद्रस्य मैथुने । कन्यानां पुत्रपत्नीनां श्वश्रूणां गमने तथा
 मयिनीनां तथैव च । दोषं वक्ष्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्वपः ॥

यः करोति महापापी एताभिः सह मैथुनम् ।

जीवन्मृतोभवेत् सोऽपि चाण्डालोऽस्पृश्य एव ॥ २७ ॥

नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्यमण्डलदर्शने । शालग्रामं तज्जलञ्च तुलस्याञ्च जलं जलम् ॥
प्रेतार्थं जलञ्चैव पित्रादौ च तथा । स्मृष्टञ्च नैव शक्नोति चिरंतुल्यः पातकी नरः ॥ २८ ॥
वंगुरुं ब्राह्मणञ्च नमस्कर्तुं न चाहंति । विष्ठाधिकं तद्वनञ्च जलं मूत्राधिकतया ॥
पताः पितरो पित्रा नैव शृण्वन्ति भारतैः । भवेत्तदङ्गु घामेन तीर्थमङ्गारपादनम् ॥ २९ ॥
तत्रात्रमुपयसेद् वैष्वक्शशात् तथा द्विजः । भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भारं द्योतुमशक्ता
तन्पापात् पतितो देशः कन्याचित्रपिणो यथा ।

तत्स्पर्शाच्च तद्वाटापात् शयनाश्रयभोजनात् ॥ ३३ ॥

प्राज्ञस्तन्समोऽपापो भवत्येष न संशयः । कुर्मपाके वसेत्सोऽपि यावद्ब्रह्मणः शतम्
देवानिर्गन्धमेतन्न चजायतं निरन्तरम् । दण्धोयाग्निशिखामिध यमदूतैश्च ताडितः ॥
एवं नित्यं महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम् । आहारश्चापि सर्वत्र कुर्मपाके विघर्जितः ।
तं प्राकृतिके घोरे महति प्रलये तथा । पुनः सृष्टेः समारम्भे तद्दुविधौ वा भवेत् पुनः
मृष्टिर्गसहस्राणि विष्ठायाञ्च कुर्मिर्भवेत् । ततो भवति चाण्डालो भार्याहीनो नृपसकः ।
तत्तज्जगत्सु शूद्रश्च गलतकुट्टी नृपसकः । ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यन्धः कुट्टी नृपसकः ॥
एवं लब्ध्वा जन्म क्षत महापापी भवेच्छुद्धिः ॥ ५० ॥

मुनय ऊचुः ।

इत्येवं कथितं सर्वं मस्मामिषीं यथागमम् । एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिरिक्तो एताभ्ये
प्रणामं कुट्ट विप्रेन्द्रं गृहं प्राप्य निश्चितम् । संपूज्य ब्राह्मणं यज्ञात् गृहीत्वा ब्राह्मणाश्रितम् ।
घनं गच्छ महाराज तपस्यां कुट्ट सरथम् । ब्रह्मज्ञानैर्विनिर्मुक्तः पुनरेवागमिष्यसि ॥ ४३ ॥
इत्युत्त्वामुनयः सर्वेययुस्तूर्णं स्वमन्दिनम् । सुराश्चापिच राजानो यन्पुत्रगांध्यापर्वन्ति ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिलढे हरयोरीसंवादे

कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिभुवनसप्तमोऽध्यायः

गुप्तःपुनर्गन्तव्यमम् ।

धीमन्गुपय ।

गतेषु मुनिगतेषु भूषाः कर्मजम् गुणम् । किञ्चन नृपं प्रोक्तवान् विद्वत् ॥
भक्तिप्रोक्तोऽपि किञ्चन नृपं प्रोक्तवान् । अगमं नृपं वा नृपं तन्मन्त्रिणम् ॥
मन्त्रेण उवाच ।

गतेषु मुनिगतेषु निन्द्यमानो जगत्पिण्डः । प्रेमिणो यजिष्ठेन यमिष्ठेन पुरोपमा ॥
पपात दण्डवद्भूमौ पादपद्मप्रोक्षणाय । त्यक्तवा मन्त्रं प्रोक्तवान् नृपं तन्मन्त्रिणम् ॥
सन्निभं प्राप्य दृष्ट्वा त्यक्तमन्त्रं हजामयम् । उवाच नृपतिष्ठेनः साधनेनः पुनरुक्तिः ।
राजोपाय ।

कुत्र वंदी मया जातः किञ्चन मया प्रोक्तः । किञ्चनयापि तद्वद्विद्वत् वासः कश्चन ॥
विप्रवर्णीत्ययं विष्णुर्गुह्यः कपट मानुषः । साक्षात् समुत्तिमान्निःप्रवृत्तः प्रहनेनमा ।
कोपा गुह्ये भगवन्निष्ठेयश्च भारते । तय येनः कश्चनं ज्ञानपूर्वम् साम्प्रतम् ॥
गृहाण राज्यं निविलम्बेभ्यः कोपमेव । स्वभूषं कुम्भे पुत्रं माञ्च दासी त्रियं मुने ॥
सप्तसागरमनुतां सप्तद्वीपां यमुन्ययम् । नवद्वयोपद्वीपातां सरोज्यनरोमिताम् ॥
मया भूष्येन त्वं शाधि राजेन्द्रो भवभारते । रत्नेन्द्रसारनिर्माणे तिष्ठ सिंहासने वरे ॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । उवाच परमं तत्त्वं मत्सं सर्वदुर्लभम् ॥
अतिथिरुवाच ।

मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तत्पुत्रः कश्यपः स्वयम् । कश्यपस्य सुताः स्वर्गप्राप्ता देवत्वमीप्सितम् ॥
तेषु त्वष्टा महाहानी चकार परमं तपः । दिव्यं धर्मसहस्रञ्च पुष्करे दुष्करे तपः ॥
सिधिवे ब्राह्मणार्थञ्च देवदेवं हरिं परम् । नारायणाद्वरं प्राप विप्रं तेजस्विनं सुतम् ॥
ततो यभूय तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधनः । पुरोधसं चकारेन्द्रो धाक्पत्नी तं क्रुधा गते ।

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृणादुतिम् । चिच्छेद् तं सुनाशीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया
विभ्यरूपस्य तनयो विरूढो मत्पिता नृप ।

अहञ्च सुतपा नाम वैरागी काश्यपो द्विजः ॥ १८ ॥

महादेवो यम गुरुर्विराज्ञात्प्रभुप्रदः । अमीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥ १९ ॥
विस्तारामितत्पदाच्छतमेपाष्टास्तिसम्पदि । सारलोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यराधिकापनेः
तेन वत्सं न गृह्णामि विना तत्सेवनं शुभम् । ब्रह्मत्यममरत्वं वा मन्येऽहं जलविम्वयत् ॥
भक्तिव्यपहितं मिथ्यास्रममेव तु नश्वरम् । इन्द्रत्वं वा मनुज्यं वा सौरत्वं वा नराधिप
न मन्ये जलरेषेति नृपत्यं केन गण्यते । धृत्वा सुयज्ञ यज्ञे तु मुनीनां गमनं नृप ॥ २३ ॥
लालसा विष्णुभक्तिर्मे प्राप्तिहेतुमिहागतः । केवलानुगृहीतस्त्य न हि शक्तो मयाधुना
समुद्भूतश्च पतितो घोरे निम्ने मघाणंघे । नह्यम्यानि सीधानि न देवा मृच्छिलामयाः
ते पुनस्त्युरुफालेन कृष्णमकाश्च वरंनान् । राजभिर्गम्यतां मेहादेहि राज्यं सुताप च ।
पुत्रे न्यस्य प्रियां साध्वीं गच्छ घत्स घनंस्वरा । ब्रह्मादिस्तत्पर्वत्यन्तंसर्वमिष्यैषभूमिप
श्रीकृष्णंभजरावेशं परमात्मानमीश्यम् । ध्वानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः
आधिभूतैस्तिरोभूतैः प्रादुरैः प्रकृतेः परम् । ब्रह्मा अष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः
दिक्पालाश्च दिर्गशाश्च स्रमन्ति यस्यमायया । यदाशयावाति वायुःसूर्योऽग्निपतिःसदा
निशपतिः शशी शश्यच्छस्यसुस्निग्धकारकः । कालेन मृत्युःसर्वेषां सर्वविशेषुभीतघत्
काले घर्षति शक्रश्च दहन्त्यग्निश्च कालतः । भीतयत् विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः
कालः संहर्षते काले काले भुजति वाति च । स्वदेशे च समुद्रश्च स्वदेशे च वातुन्धरा
स्वदेशे पर्यन्ताश्चैव स्वपातालाःस्वदेशतः । स्थलैकाः समुद्राज्जेन्द्र सप्तर्द्धापा वसुन्धरा
शीलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त एव च । यमिल्लोकैश्चब्रह्माण्डं द्विम्याकारं जलप्लुतम्
सन्त्येव प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णु शिवाश्च । सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः
भापातालादुग्रहलोक पर्वत्यन्तं द्विम्यरूपकम् । इदमेवतु ब्रह्माण्डं ब्रह्मणः कृत्रिमं नृप ॥
नाभिपत्रे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशायिनः । स्थितयथापञ्चवीजं कर्णिकारश्च पट्टजे
एवं सोऽपि शपानश्च जलरूपे सुविस्तृते । प्यापते स महायोगी प्रादुरः प्रकृतेः परम्

कालमीतश्च कालेशं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ।

महाविष्णोर्लोमकूपे साधारः सोऽस्मि विमृते ।

लोघ्रां कूपेषु प्रत्येकमेवं विश्वानि सन्ति वै ॥ ४० ॥

महाविष्णोर्गात्रलोघ्रां ब्रह्माण्डानाञ्च भूमिप ।

संख्यां कर्तुं न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य का कथा ॥ ४१ ॥

महाविष्णुः प्राकृतिकःसोऽपिद्विभ्योद्वयःसदा । भवेत्कृष्णेच्छयाद्विभ्यःप्रकृतेर्गर्भसम्भवः
सर्वाधारोमहान्विष्णुःकालमीतःसशङ्कितः । कालेशं व्याप्यतेशयत्कृष्णमात्मानमीश्वरम्
एवञ्च सर्वविश्वस्या ब्रह्मविष्णुशिवादयः । महान्चिराद्भुद्रविराट्सर्वे प्राकृतिकाःसदा
सा सर्वयीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । काले लीना च कालेशे कृष्णे तं ध्यायते सदा
एवं सर्वे कालभीताः प्रकृतिः प्राकृतास्तथा । आधिर्भूतास्तिरोभूताः कालेन परमात्मनि
इत्येवं कथितं सर्वं महाज्ञानं सुदुर्लभम् । शिवेन गुरुणा दत्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद-संवादे हरगौरीसंवादे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुतपःसुप्रसंवादवर्णनम् ।

राजोवाच

कुप्राधारो महाविष्णोःसर्वाधारस्य तस्य च । कालमीतस्यकतिचकालमाया मुनीदपर
शुद्रस्य कतिचिन्कालं ब्रह्मणः प्रकृतेस्तथा । मनोहिन्द्रस्य चन्द्रस्यसूर्यस्यामुस्तर्धेय
अन्येषाञ्च जनानाञ्च प्राकृतानां परं वयः । वेदोक्तं सुविचार्यञ्च यद् वेदविदां वा ॥ १ ॥
विश्वानामुद्गुर्यमागे च कथं वा लोकण्य सः । कथयस्य महाभाग सन्देहच्छेदनं कुरु

मुनिष्याच ।

विश्वानां गोलोकं राजन् विस्तृतञ्च नभःसमम् ।

शश्वत्त्रित्यं डिम्बरूपं श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवम् ॥ ५ ॥

जलेन परिपूर्णञ्च कृष्णस्य मुखविन्दुना । सृष्ट्युन्मुखस्यादिसर्गे परिधान्तस्य प्रीडितः
प्रहृष्ट्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप । तत्राधारो महाविष्णुर्घिश्वाधारस्यविस्तृतः
प्रहृतेर्गर्भसंयुक्तडिम्बोद्भूतस्य भूमिप । सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाधिराद् ।
राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोडशांशः प्रकीर्तितः । दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुज
घनमालाधरः धीमानशोभितः पीतवाससा । ऊर्ध्वं नभसि सद्दिग्गोर्नित्यवैकुण्ठमेव च
आत्माकाशसमनित्यं विस्तृतं चन्द्रधिदधन् । ईश्वरेच्छासमुद्भूतं निर्लक्षञ्च निराश्रयम्
आकाशघतसुविस्तारञ्चामूल्यरत्ननिर्मितम् । तत्र नारायणः धीमान् घनमाली चतुर्भुजः
लक्ष्मीसरस्वतीगङ्गानुलसीपतीरीश्वरः ।

सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥ १३ ॥

सर्पेशः सर्पसिद्धेशो भक्तानुग्रहविग्रहः । श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् । ऊर्ध्वं वैकुण्ठदेशाद्यपञ्चाशत्कोटियोजनात्
गोलोकं घर्तुलाकारं परिष्टं सर्वलोकतः अमूल्यरत्ननिर्माणैर्मन्दिरैश्च विभूषितम् ॥ १६ ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणैः स्तम्भसोपानविभ्रकैः । मणीन्द्रदर्पणासकैः कवाटफलसोऽञ्जलैः ।
नानाविभ्रविभ्रैश्च शिखिरैश्च विराजितम् । कीदियोजनविस्तीर्णं वैर्ध्वं शतगुणतया ।
विरजासत्त्वाकीर्णशतशृङ्गेन वेष्टितम् ॥ १८ ॥

सत्त्विर्द्धप्रमाणेन वैर्ध्वेन विस्तृतेन च । शैलार्द्धपरिमाणेन युक्तं घृन्दाघनेन च ॥ १९ ॥
तद्दर्द्धमाननिर्माणरासमण्डलमण्डितम् सत्त्विर्द्धलघनादीनां मध्ये गोलोकमेव च ॥ २० ॥
यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिकारो मनोहरः । तत्र गोगोपगोपीमिर्गोपीशो रासमण्डले ॥
रासेश्वर्य्या राधिकया संयुतः सन्ततं नृप । द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुगोपालरूपधृक् ।
बह्विशुद्धांशुकाधानो रत्नभूषणभूषितः । चन्दनोक्षितसर्गाङ्गो रत्नमालाविराजितः ॥ २३ ॥
रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नच्छत्रेण छात्रितः । शश्वत् स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः ॥

गोमेधञ्च चतुर्लक्षं विधिवन्महदद्भुतम् । ब्राह्मणानां त्रिकोटिञ्च मोजयामास नित्यशः
पञ्चलक्षगवां मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः । चर्व्यचूष्यलेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यैः सुदुर्लभैः ॥४६॥
अमूल्यरत्नलक्षञ्च दशकोटिसुवर्णकम् । स्वर्णशृङ्गयुतं दिव्यं गवां लक्षं सुपूजितम् ॥
बहिशुदञ्च पालञ्चमुवीन्द्राणाञ्चलक्षकम् । भूमिञ्च सर्वशय्यादृशांगजेन्द्ररत्नलक्षकम्
त्रिलक्षमश्वरत्नञ्च शातकुम्भविनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

सहस्रं रथरत्नञ्च शिविकालक्षमेव च । त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च सार्धं सजलर्मीप्सितम्
त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च कर्पूरदिसुधासितम् ॥ ५२ ॥

ताम्रं सुविचित्रञ्च त्रिकोटिस्वर्णतल्पकम् । रत्नेन्द्रसारखचितं रचितं विश्वकर्मणा
बहिशुद्रांशुकैश्चैव राजितं मादयजालकैः । नित्यंद्वयोब्राह्मणेभ्यो विष्णुप्रीत्याशिवाह्वया
संप्राप्य शङ्कराजज्ञानं कृष्णमन्त्रं सुदुर्लभम् । संप्राप्य कृष्णवास्यञ्च गोलोकञ्च जगाम सः
दृष्ट्वा मुक्तं सपुत्रञ्च ब्रह्मैव प्रजापतिः । तुष्टाव शङ्करं तुष्टः ससृजे मनुमन्यकम् ॥५३॥

स च स्याद्यभ्युपुत्रश्च स च स्वायम्भुवो मनुः ।
स्वारोचिरो मनुश्चैव द्वितीयो बह्निन्दनः ॥ ५७ ॥

राजा ब्रह्मण्यो धर्मिष्ठः स्वायम्भुवसमो महान् । प्रियव्रतसुतावर्ण्यो ह्यौ मनुधर्मिणां धर्मी
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौ तापसोत्तमौ । तौ च शङ्करशिष्यौ बह्णमक्तिपरायणौ
धर्मिष्ठानां धर्मिष्ठश्च रैवतः पञ्चमो मनुः । पृथञ्च चाश्रुपो ज्ञेयो विष्णुमक्तिपरायणः ॥
आददेवः सूर्यसुतो वैष्णवः सप्तमो मनुः । सावर्णिः सूर्यतनयो वैष्णवो मनुः ॥
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुमतपरायणः । दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारदः ॥ ६२ ॥
ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादशः स्मृतः । धर्मिष्ठश्च धर्मिष्ठश्च वैष्णवानां सदा धर्मी ॥ ६३ ॥
ज्ञानी च यदसावर्णिर्मनुश्च द्वादशः स्मृतः । धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेकत्रयोदशः ॥ ६४ ॥
चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णिरेव च । यावदायुर्मनूनाञ्चैवेन्द्राणां तावदेव हि ॥ ६५ ॥

चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।

तापती ब्रह्मणो राज्ञि सा च ब्राह्मी निशा नृप ॥ ६६ ॥

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकीर्तिता । ब्रह्मणो वासरे राजन् शुद्धकल्पः प्रकीर्तितः

एवं सप्तकल्पजीवी मार्कण्डेयो महातपाः । ब्रह्मलोकादधःसर्वलोकादध्याद्यतत्रये ॥६८॥
 उत्थितेनैव सहसा शङ्कूर्णमुवाग्रिना । चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राञ्च ब्रह्मलोकं गता ध्रुवम् ॥६९॥
 ग्राहीरात्रिच्युतिते तु पुनश्च ससृजे विधिः । तस्यां ब्रह्मनिशायाञ्च क्षुद्रप्रलय उच्यते ॥
 देवाश्च मनवश्चैव तत्र दग्धा नरादयः । एवं त्रिशदिचाराग्रेर्ब्रह्मणो मास एव ॥ ७१॥
 वर्षे द्वादशमासेश्च ब्रह्मसम्बन्धि चैव हि । एवं पञ्चदशाब्दे तु गते च ब्रह्मणो नृप ।

दैनंदिनन्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्तितः ॥७२॥

मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदचिद्भिः पुरातनैः ।

तत्र सर्वे प्रणष्टाश्च चन्द्रार्कादिदिर्गोभ्वराः ॥७३॥

आदित्या वसवो रद्रा मन्विन्द्रा मानवादयः ।

ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादयः ॥७४॥

मार्कण्डेयो लोमशाश्च पेचकश्चिरजीविनः । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिश्चाकूपारश्चकञ्जपः ॥७५॥

नाडीजङ्घो घकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्रथै । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका नागालयास्तथा ॥

ब्रह्मलोकं ययुः सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा । गते वैद्ये दिने ब्रह्मा लोकाधिससृजे पुनः ॥७७॥

एवं शताब्दपर्यन्तं परमायुश्च ब्रह्मणः । ब्रह्मणश्च निरातेन महाकल्पो भवेन्नृप ॥७८॥

प्रकीर्तिता महारात्रिः सा एव च पुरातनैः । ब्रह्मणश्च निपातेच ब्रह्माण्डौघोजललुतः ॥

वेदमाता च सावित्री चन्द्रा धर्मादयस्तथा । सर्वे प्रणष्टा मृत्युश्च प्रकृतिश्च शिष्यं विना ॥

नारायणे प्रलीनाश्च विश्वेष्वा वैष्णवास्तथा । कालाग्निद्रः संहर्ता सर्वरुद्रगणैः सह ॥

मृत्युञ्जये महादेवे प्रलीनः स तमोगुणः । ब्रह्मणश्च निरातेन निमेषः प्रकृतेर्मध्ये ॥८२॥

नारायणश्च शम्भोश्च महद्विष्णोश्च निधितम् ।

निमेषान्ते पुनः सृष्टिर्मयेन् हृण्येच्छया नृप ॥८३॥

हृण्यो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृतेः परः । सगुणानां निमेषश्च कालमन्तर्यामयोमितः ॥

निर्गुणस्य च नित्यस्य आद्यन्तरहितस्य च । निमेषानां गहन्येन प्रकृतेर्दण्ड उच्यते ॥

पदिदृष्टान्तिमया तस्याः वामाश्च दक्षोर्नितः ।

मामग्निरादिवःसर्वं च द्वादशमास वैः ॥८६॥

एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतेर्लयः । प्रकृत्याञ्च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतोलयः ॥

सर्वान् संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूय या ।

कृष्णयक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥८८॥

सन्तो वदन्ति तां दुर्गां विष्णुमायांसनातनीम् । सर्वशक्तिसवरूपाश्च परानारायणींसतीम्

युद्धयधिष्ठातृदेवीञ्च कृष्णस्य निर्गुणात्मिकाम् । यन्मायामोहिताश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः

वैष्णवास्तामहालक्ष्मीं परां राधां वदन्ति ते । अर्द्धाङ्गाश्च महालक्ष्मीः त्रियानारायणस्य वा ॥

प्राणाधिष्ठातृदेवीञ्च प्रेम्णा प्राणाधिकां वराम् ।

शरयम् प्रेममयीं शक्तिं निर्गुणां निर्गुणस्य च ॥८९॥

नारायणञ्च शम्भुञ्च संहृत्य स्वगणान् यद्वत् । शुद्धसत्यस्वरूपीचकृष्णे लीनञ्च निर्गुणे ॥

गोपा गोप्यञ्च गायञ्च सुरभ्यञ्च नराधिप । सर्वे लीनाः प्रकृत्याञ्च प्रकृतिः प्रकृतीश्वरी ॥

महाविष्णोर्विलीनाञ्च ते सर्वैश्चैव विष्णवः । महाविष्णुः प्रकृत्याञ्च साचैव परमात्मनि ॥

प्रकृतिर्वागनिद्रा च धीकृष्णनेत्रपद्मयोः । अधिष्ठानञ्चकारैवं मायया चैश्वर्यैश्च यया ॥९०॥

प्रकृतेर्वासरो वायन्मृतः कालः प्रकीर्तितः ।

तायद्वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः ॥९१॥

अमृतपरकृत्ये च वह्निशुद्धोशुक्लाग्निने । गन्धवन्दनमाख्यानां धाम्युना सुरभीकृते ॥९२॥

पुनः प्रज्ञागरे तस्य सर्वसृष्टिर्मयेन् पुनः । एवं सर्वे प्राकृताञ्च धीकृष्णे निर्गुणे विना ॥

सद्बन्धनं तस्मै तस्य ध्यानं तदर्थमम् । कीर्तनं तदुगुणानाञ्च महापातकनाशनम् ॥९३॥

एतत्ते कथितं सर्वयपमृत्युञ्जयशङ्कृतम् । यथागममहाराज किमूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

सुयज्ञ उवाच ।

कालाग्निहोत्रे विश्वानांसंहर्ता च तमोगुणः । ब्रह्मणोऽन्ते विलीनञ्च सत्यो मृत्युञ्जयेति वै ॥

शिवो लीनो निर्गुणेवेन् श्रीकृष्णे प्राकृते लये ।

कथं तत्र गुरोर्नाम मृत्युञ्जय इति धूर्तो ॥९४॥

कथं वा मृत्युहर्ता महाविष्णोः प्रसूयिणम् ।

असंख्यानि च विश्वानि वसन्ति यस्य लोमसु ॥९५॥

गोमोर्षागोपनिःश्रे. शोभितं वसिमेचिने. स्नेहमागमिमांजमन्दिने. सुमनोहरे. ।
 मानाभिप्रयिनिःश्रे. शोभितं वसिमांजितम् । सनप्रिगदृषयने. कलागुप्तमन्दिने. ।
 पारिजातदुर्माकाणो. वेदिनं कामवेनुभिः । आकाशान् मुनिस्त्राणंनर्तुलंमन्दविमान् ।

भगवत्पुत्रंमपि वैकुण्ठान् पञ्चाशत्कोटिशोभनम् ।

शुभ्रविभक्तं निराधारं ध्रुवमेयोवोरुष्या ॥ १५१ ॥

भास्माकाशममनित्यमस्माकञ्जसुदुर्लभम् । भद्रंताशयणोऽनन्तोप्रत्याविर्गुमहन्विशद
 धर्मशुद्धिदयिदम्होगङ्गाधर्माःसरस्वती । तय्यिन्नुमायासाविर्भानुलमीशानेश्वरः ।
 सनत्कुमारः स्फण्डश्च नगनारायणायुषी । कपिन्द्रोदक्षिणा यज्ञो प्रह्मपुत्राश्चयोगिनः ।
 पयनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो द्रुताशनः । कृष्णमन्त्रोपायमकाशं मारुतस्याश्चयैः ।
 एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टःकदाचन । निगमयेच्च तत्रैव गदासिंहासने स्थितम् ।
 रत्नमालाकिरीटश्च भूषितं रत्नभूषणे । सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैः वस्त्रिशुद्धिर्पिपातितम् ।
 चन्दनोक्षितसर्षाङ्गं किशोरं गोपकविणम् । नर्पाननीरुदयामं श्वेतपङ्कजलोचनम् ॥ १५२ ॥
 शरत्पार्यणचन्द्रास्यमीषदास्यं मनोहरम् । द्विभुजं मुक्तीहस्तं भक्तानुग्रहार्थप्रहम् ।
 ह्येच्छामयंवरं प्रह्लादिगुणप्रवृत्तैःपरम् । ध्यानासाध्यंदुराराध्यमस्माकञ्ज सुदुर्लभम् ।
 प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः । वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरे. ।
 पीडितैः कामयाणैश्च शश्वत् सुस्थिरर्योषणैः । वस्त्रिशुद्धांशुकाधानैः रत्नभूषणभूषितैः ।
 रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णञ्च पदात्पथम् । वदशं राजा तत्रैव राघवा दर्शिततदा ।
 स्तुतं चतुर्मिर्षदैश्च मूर्त्तिमद्विर्मनोहरे. । रागिणीनाञ्च रागाणांमतीष सुमनोहरम् ।
 श्रुतवन्तश्च सङ्गीतं यन्त्रषक्त्रोत्थितं श्रित्वे । नित्यया च सनातन्या प्रहृत्याच सह त्वया ।
 शश्वत् पूजितपादाब्जं मण्डितं तुलसीदलैः । फस्तूरीकुङ्कुमाक्षैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ।
 दूर्वाभिरक्षताभिश्च पारिजातप्रसूनकैः । निर्मलैर्धिरजातोयेर्दत्ताचार्यैरतिशोभितम् ॥ १५३ ॥
 स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् । सर्वपाञ्चान्तरात्मानं सर्वेशं सर्वजीवनम् ।
 पूज्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । सर्वसम्पत्स्वरूपञ्चदातारं सर्वसम्पदाम् ।
 सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलदं सर्वमङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ॥ १५४ ॥

सं दृष्ट्वा नृपतिश्चस्तोत्रवच्छा रथात् त्वरा । साधुनेत्रः पुलकितो मूढूर्ध्ना च प्रणनाम च
परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यञ्च शुभापितम् ।

स्वप्रति निश्चलां सत्यामस्माकञ्च सुदुर्लभम् ॥ १७२ ॥

राधावदहा स्वस्थादुपासकृष्णवक्षसि । गोपीमिः सुप्रिथामिश्चसेविता श्वेतचामरैः ॥
सम्मापिता श्रीकृष्णेनसस्मितेनचपूजिता । समुत्थितेनसहसा भक्त्याच सम्भ्रमेणच ॥
भ्रादौ राधां समुद्यात्येवञ्चात् कृष्णञ्च माधवम् । प्रबदन्तिवधेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः ॥
विषट्पर्वण्येवदन्तिवेनिन्दन्ति जगन्प्रसूम् । कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयीं शक्तिञ्चराधिकाम्
ने पश्यन्ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । भवन्ति स्त्रीपुत्रहाना रोमिणः शतजन्मसु ॥
त्वयेयं कथितं दुर्गे राधिकामयानमुत्तमम् । सा त्वं सती भगवती वैष्णवीच सनातनी
भारत्यणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी । मायया मां वृच्छसि त्वं सर्वहा सर्वरूपिणी
मीजातिसिद्धिदेयी च पराजातिस्मरारवा । कथिनराधिकास्थानं किंभूयः श्रोतुमिच्छसि
इति श्रीप्रह्लादवैद्यं महापुराणे प्रकृतिस्रष्टे नारायणनारदसंवादे हरगौरी-

संवादे सुतपः सुयज्ञसंवादे षतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम् ।

श्रीपार्ष्वमुवाच ।

कृष्णस्य स्थिते मन्त्रे युष्माकमीश्वरस्य च । कथं जग्राहाराधाया मन्त्रञ्चवैष्णवो नृपः
; विधानञ्च किं ध्यानं किस्तोत्रं कथञ्च किम् । कं मन्त्रञ्चददौ राक्षसांपूजापद्धतिञ्च
श्रीमहेश्वर उवाच ।

विप्र कं भजामीति प्रथं कुर्यति राजनि । शोधं प्राप्नोमि योत्सोर्कं कस्याराधनया मुने
पुत्तयन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः । तत्सेवया च सहोर्कं प्राप्स्यसे बहुजन्मतः ॥

सत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम् । कृपामवीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोति त
 इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै षडक्षरम् । ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं षड्विंशत्यक्षरं
 प्राणायामं भूतशुद्धिं मन्त्रन्यासं तथैव च । कराङ्गन्यासमेवञ्च ध्यानं सर्वसुदुर्लभं
 स्तोत्रञ्च कवचन्तञ्च शिष्यामास भक्तिः । राज्ञा तेन क्रमेणैव जज्ञाप परमं
 ध्यानञ्च सामपेदोक्तं भङ्गलानाञ्च भङ्गलम् । कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यातेन
 श्वेतचम्पकपर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलो

सुधोष्णीं सुनितम्बाञ्च पद्मविम्बाधरां वराम् ॥१०॥

मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । ईषडास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहका

षड्विंशदांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम् ॥११॥

रत्नकेयूरचलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम् । रत्नकेयूरयुग्मेन विचित्रेण विराजिता

सूर्यप्रभाच्छादितेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥१२॥

ममूल्यरत्ननिर्माणप्रियेयकविभूषिताम् । सद्गुणसारनिर्माणकिरीटमुकुटोप

रत्नाङ्गुरीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम् ॥१३॥

विभ्रतीं कवरीभारं मालतीमाल्यशोभिताम् । रूपाधिष्ठातृदेवीञ्च गजेन्द्रमन्दगामि

नोर्षामिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतवामरैः ॥१४॥

कान्तरीयिन्दुमिःसार्द्धमथश्चन्द्रबिन्दुता । सिन्दूरविन्दुताद्यादसीमन्ताधःस्थलो

निष्यं मुपूजितां भक्तया कृष्णेन परमात्मना ॥१५॥

कृष्णसीमाप्यमंगुक्तां कृष्णप्राणाधिकां वराम् ।

कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च निर्गुणाञ्च परात्पराम् ॥१६॥

महापिण्डविधार्थीञ्च दार्ढीञ्च सर्वसम्पदाम् । कृष्णमतिप्रदांशान्तांमूलप्रकृतिमी

वैष्णवीं पिण्डुमायाञ्च कृष्णप्रेममयीं शुभाम् । रासमण्डलमध्यस्थां रत्नसिंहासना

वसिष्ठे रामेश्वरयुगां राधां रामेश्वरीं भजे ॥१७॥

ध्यात्वा पुनः मूर्तिदत्त्वा पुनः श्रवणेन गन्तव्यम् । दद्यात्पुनः पुनः श्रवणोपहारानि

यत्नं वाचस्पत्यं गन्थानुलेपनम् । धूपं दीपं सुपुष्पञ्च दार्ढीयं रत्नभूषणम्

मानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं चासितं जलम् । मधुपर्कं रत्नरत्नमुपचाराणि योऽश ॥२२॥
 प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्तं भक्त्या च भूभृता । मन्त्राञ्च धूयतां दुर्गेवेदोक्तान्सर्वसम्मत्तान्
 रत्नसारधिकारञ्च निर्मितं विश्वकर्मणा । वरं सिद्धासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम् ॥२५॥
 अमूल्यरत्नवर्चितममूल्यं सूक्ष्ममेव च । बह्विशुद्धं निर्मलञ्च घसनं देवि गृह्यताम् ॥२५॥
 सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतोर्वाङ्कं शुभम् । पादप्रक्षालनार्थञ्च राधे पात्रञ्च गृह्यताम् ॥२६॥
 दक्षिणाघर्तशङ्खस्थं सद्गुणपुष्पचन्दनम् । पूतं युक्तं तीर्थतोयैः राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
 पार्थिवद्रव्यसंभूतमतीवसुरमीकृतम् । मङ्गलाहं पवित्रञ्च राधे गन्धं गृह्याण मे ॥ २८ ॥
 श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम् ॥
 बृक्षनिर्याससंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम् । ज्वलदग्निशिखामूर्तं धूपं देवि गृह्याण मे ॥३०॥
 अन्धकारमपहरममूल्यरत्नमुज्ज्वलम् । रत्नप्रदोषं शोभाढ्यं गृह्याण परमेश्वरि ॥ ३१ ॥
 पारिजातप्रसूनञ्च गन्धचन्दनवर्चितम् । अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि ॥ ३२ ॥
 सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम् । विष्णुनैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम्
 अमूल्यरत्ननिर्माणं केयूरघटयादिकम् । शङ्खं सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम ॥३४॥
 कालदेशीद्वयं पङ्कजलञ्च लङ्कुकादिकम् । परमान्नञ्च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ॥
 ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुपासितम् । सर्वभोगादिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम्
 अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम् ।

मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि ॥३७॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं बह्विशुद्धांशुकान्वितम् । पुष्पचन्दनवर्चाढ्यं पद्मं देवि गृह्यताम् ॥
 एवं संपूज्य देवीं तां दद्यात् पुष्पाञ्जलिप्रथम् । यत्नेन पूजयेद्देवीं नायिकाष्टौव्रतेव्रती ॥
 प्रायान्निक्रमयोगेन दक्षिणाघर्ततः प्रिये । भक्त्या वञ्चीपचारैश्चसुप्रियाः परिचारिकाः ॥
 मालाघर्ती पूर्वकोणे बह्विकोणे ॥ माधवीम् । दक्षिणे रत्नमालाञ्चसुशोभनं नैवेद्यं ते सति ॥
 पश्चिमे च शशिकलां पारिजाताञ्च मारुते । पद्मावतीमुत्तरे च ऐशान्यां सुन्दरीं तथा ॥
 यूपिकामालतीपद्ममालां दद्यात् व्रते व्रती । पश्चिमाञ्च कुस्ते सामवेदोक्तमेव च ॥४३॥
 त्वं देवीजगतांमाताविष्णुमायासनाकनी । कृष्णप्राणाधिदेवीचकृष्णप्राणाधिकाशुभा ॥

कृष्णप्रममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरविनी । कृष्णमणिज्यो रानी नमस्तेन हृत्पदे ॥
 शय मे वरदत्तं तम्य जीवने सार्धं च मम । पूजितानि मया मयागार्थात्पूजितानि ॥
 कृष्णपद्मिनि या राधा सारंगीमागम्यगुता । ममो ममोत्तरीयया पुन्यापुन्याने वने ।
 कृष्णप्रिया ॥ गोलोके तुलसी कानने नृ या । मयागम्यो कृष्णसंगीतीदानात्कल्लो
 मन्त्रायनी मन्त्रपते मन्त्रशृङ्गे मनी मनि । विरजा र्कहायी ॥ विरजानटकानने ॥
 पद्मायनी पद्मपते कृष्ण कृष्णमगोवते । भद्रा वृत्रहृती न कात्या न कात्यके वने ।
 वैकुण्ठे न महालक्ष्मीपात्री । मागयनीरमि । क्षीरोदसिगुहमगममर्ण्यलक्ष्मीरिति
 मयंभ्यर्गो मयंभ्यर्गमर्ण्यदुःखविनाशिन्या । ममाननी विष्णुमाया दुर्गा शङ्करममि ॥
 सावित्री वेदमाता ॥ कल्या प्रजापतिनि । कल्या धर्मपती म्यं मरुतागयनम् ॥
 कल्या तुलसी म्यञ्ज गङ्गमुपनवापनी । लोमकृपाद्वया गोप्यः कल्यांशो रीद्विगो रति
 कल्या कल्यांशक्या च शनक्या शनी दिनिः । भद्रिनिर्देवमाता ॥ म्यन्कल्यांशो हरिप्रिया
 दिव्यश्च मुनिपत्न्यश्च म्यन्कल्या कल्या शुभे । कृष्णमनिकृष्णदाम्यदेहिमे कृष्णहृजिने

एवं कृत्वा परीक्षां स्तुत्या च वचनं पठेत् ॥ ५७ ॥

पुराटनं स्तोत्रमेतन् भक्तिदाम्यप्रदं शुभम् । एवं निग्यं पूजयेद्दु योविष्णुतुल्यः सनाते

जीपमुत्तञ्च पुनश्च गोलोकं याति निश्चितम् ॥ ५८ ॥

कार्तिकी पूर्णिमायाञ्च राधां यः पूजयेच्छिवे । एवं क्रमेण प्रत्यर्घ्यं राजसूयफलं लभेत्
 परमेश्वर्ययुक्तञ्च इहलोके ॥ पुण्यवान् । सयंपापाद्विनिर्मुक्तो यात्यगते विष्णुमन्दिर
 आराधयेयं क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने । स्तुत्या सा पूजिता राधा क्षीरकृष्णेन पुरा सति
 संपूजिता द्वितीये च घात्रा एवं क्रमेण च । त्वद्वरेण च संप्राप्य विघाता वेदमातम्
 नारायणो महालक्ष्मीं प्राप संपूज्य भारतीम् । गङ्गाञ्च तुलसीञ्चैव परां भुवनपावनीम्
 विष्णुः क्षीरोदशायी च प्राप सिन्धुमुतां तथा । मृतायां दक्षकन्यायां मया कृष्णाञ्च यपुरा
 त्वमेव दुर्गा संप्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा । अदितिकश्यपः प्राप चन्द्रः संप्राप रोहिणीम्

कामो रतिञ्च संप्राप धर्मो मूर्तिं पतिव्रताम् ॥ ६७ ॥

देवाश्च मुनयश्चैव यां संपूज्य पतिव्रताम् । संप्रापुर्नद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम् ॥ ६८ ॥

एवं पूजाविधानञ्च कथितञ्च स्तव्यं शृणु ॥ ६८ ॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

एकदा मानिनी राधा कभूवादर्याना प्रमोः । संसक्तस्य तुलस्याञ्च गोप्याञ्च तुलसीयने

सा संदृत्य स्वमूर्त्तीञ्च कला सर्वाञ्च लीलया ॥ ६९ ॥

सर्वे कभूवुर्देवाञ्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७० ॥

अष्टैश्वर्याभ्यनिधीका भार्याहीनाः पटुताः । तेचसर्वेसमालोच्य श्रीकृष्णशरणं ययुः ॥

तेषांस्तोत्रेण सन्तुष्टः क्वात्पा संपूज्यतां शुचिः । तुष्टाय परमात्माससर्वेषां राधिकां सतीम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमेव प्रियोऽहन्ते प्रमोदमेष ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनन्ते वरानने ॥ ७१ ॥

हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवास्मेति च सन्ततम् ।

यद्वृद्धिं नित्यं प्रेम्णा च साम्प्रतन्तद्वु गतं द्रुतम् ॥ ७४ ॥

तस्मात् सर्वमलीकन्ते घननंजगदम्बिके । छुरधारञ्च हृदयं स्त्रीजातीनाञ्च सर्वतः ॥ ७५ ॥

अस्माकं घननं सत्यं यद्वृद्धिमीतितद्वुधुधम् । पञ्चप्राणाधिदेवीत्वं राधाप्राणाधिकेति मे ॥

शक्तो न वक्षिन्तु रषाञ्च यान्ति प्राणास्त्वया विना ।

विनाधिष्ठातृदेवीञ्च को वा कुत्र च जीवति ॥ ७७ ॥

महाविष्णोश्च माता त्वं सूर्यप्रकृतिर्वाश्वरी । सगुणात्पञ्चकलया निर्गुणा स्ययमेधतु ॥

ज्योतीरुपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्तानां कविर्वैविश्या मानामूर्त्तिश्च विभ्रती

महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भागती च सतां प्रभुः । पुण्यक्षेत्रे भारतं च सती च पार्यतीतथा ८० ॥

तुलसी पुण्यरूपा ॥ गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं यतुन्धरा ॥

गोलीके राधिका त्वञ्च सर्वगोपालकेऽम्बरी । त्वयाविनाहं निर्जीवोऽहशक्तः सर्वकर्मसु ॥

शिष्यशक्तस्त्वपाशुवया शवाकारस्त्वयाविना । वेदकर्त्तास्त्वयंऽहं वेदमात्रात्पयासह ॥

नारायणस्त्वया लक्ष्मा जगन्पाता जगत्पति । परन्ददाति यत्राभ्यया दक्षिण्या सह

विमर्त्ति सृष्टिं दीपञ्च त्वां कृत्वा मस्तके भुजम् ।

विमर्त्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्द्धनि गङ्गाधरः शिष्यः ॥ ८५ ॥

शक्तिमच्च जगत्सर्वं शवरूपं त्वया विना । यत्ता सर्वस्त्वया चाप्या सृतो मूकस्त्वया विना ॥
 यथा मृदा घटं कर्तुं कुलालः शक्तिमान् सदा । सृष्टिं ऋष्टुं तथा हञ्च प्रकृत्या च त्वया सह ॥
 त्वया विना जडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान् । सर्वशक्तिस्वरूपात्वं त्वमागच्छ प्रमानितम्
 वह्नित्वं दाहिका शक्तिर्नाग्निः शक्तस्त्वया विना । शोभास्वरूपा चन्द्रेत्वं त्वां विना न स सुन्दरः ॥

प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्वां विना न स भानुमान् ।

न कामः कामिनी यन्बुस्त्वया रत्या विना प्रिये ॥ ६० ॥

इत्येयं स्तवनं कृत्वा तां संप्राप जगत् प्रभुः । देवाय भूयुः सध्रीकाः सभाप्याः शक्तिसंयुताः
 सस्त्रीकश्च जगत् सर्वं यभूय शैलकन्यके । गोपीपूर्णश्च गोलोको यभूय तन्प्रसादतः ॥
 राजा जगाम गोलोकमिति स्तुत्या हरिप्रियाम् । धीरुष्णेन हृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः
 कृष्णभक्तिश्च तद्दास्यं स प्राप्नोति न संशयः । स्त्रीविच्छेदे यः शृणोति मासमेकमिदं शुचिः ॥
 भविराह भते भार्ग्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । भार्ग्यां हीनो भाग्यहीनो च यमेकं शृणोति यः
 भविराह भते भार्ग्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति ॥
 मृतायां दक्षकन्यायामात्रया परमात्मनः । स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सा विभी प्रहृणापुत्रः ॥
 पुरा दुर्घाससः शापान्निश्रीके देवतागणे । स्तोत्रेणानेन देयैस्तैः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभम् ॥
 शृणोति यमेकश्च पुत्रार्थिभ्रमते सुतम् । महाव्याधिरोगमुक्तो भवेत् स्तोत्रप्रसादतः ॥
 फार्सिकी पूर्णिमा यान्तु तां संपूज्य पठेत्तु यः । भवलो ध्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत् ॥

नारी शृणोति चेत् स्तोत्रं म्यामिसौ भाग्यता लभेत् ।

भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनामुच्यते ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

नित्यं पठन्नियो भक्त्या राधां संपूज्य भक्तिः । स प्रयाति च गोलोकं निमुक्तो मय यत्नना ॥
 इति धीप्रत्ययेयसं महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिलखण्डे हरगौरीसंवादे
 धीराधिकोपाख्याने राधापूजाम्नोत्रं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधाकवचवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

पूजाविधानं स्तोत्रञ्च श्रुत्वास्त्यदुभुतं मया । बभूवा कवचं दृढि शोष्यामि त्वत्प्रसादतः
भीमहृदयर उवाच ।

भूषु घट्यामि हे दुर्गे कवचं परमाद्भुतम् । पुरा मष्टं निगदिनं गोलोके परमात्मना ॥२॥
अतिगुह्यं परं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । यदुभूत्या पठनाद् ब्रह्मा संप्राप वैद्यमातरम् ॥
यदुभूत्याहं तव स्वामी सर्वमातुः सुरेश्वरि । नारायणश्च यदुभूत्या महालक्ष्मीमवापसः
यदृत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः । यभूष शक्तिमान्कृष्णः सृष्टिस्तृप्तं पुरापिभुः

विष्णुः पाता च यदृत्वा संप्राप सिन्धुकन्यकाम् ।

शेषो विमर्त्ति ब्रह्माण्डं मूर्ध्नि सर्वपवद्वतः ॥६॥

लोमकूपेषु प्रत्येकं ब्रह्माण्डानिमहम् विराट् । विमर्त्ति धारणाद्यस्य सर्वाधारो यभूयसः
यद्धारणाच्च पठनाद्धर्मः साक्षी च सर्वतः । यद्धारणात् कुन्नेरश्च घनाध्यक्षश्च भारतै ॥
इन्द्रः सुराणामीशश्च पठनाद्धारणाद्यतः । नृपाणां मनुरीशश्च पठनाद्धारणाद् यतः ॥६॥
धीर्माध्वन्द्रश्च यदृत्वा राजसूर्यं चकार सः । स्वयं सूर्यस्त्रिलोकेशः पठनाद्धारणाद् यतः
यदृत्वा पठनाद्भिन्नगत्पूतं करोति च । यदृत्वा घाति घातोऽयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥
यदृत्वा च स्वतन्त्रो हिमृन्धुश्चरति जन्तुषु । त्रिःसप्तकृत्वा निःक्षत्रांचकार च तत्पुत्रराम्
ज्ञामश्न्यश्च रामश्च पठनाद्धारणाद् यतः । एषो समुद्रं यदृत्वा पठनात् कुम्भसम्भवः ।
सनत्कुमारो भगवान् यदृत्वा ज्ञानिनां गुरुः । जीवन्मुक्तौ च सिद्धीचनरतारायणावृषी
यदृत्वा पठनात् सिद्धीवशिष्टो ब्रह्मपुत्रकः । सिद्धेशः कपिलो यस्माद्यस्माद्दक्षः प्रजापतिः
यस्माद्भृगुश्च मां द्वेष्टि कुर्मः शेषं विमर्त्ति च । सर्वाधारो यतो वायुर्वहणः पवनो यतः
ईशानो त्रिकृपतिश्चैव यमः शास्ता यतः शिवे ।

कालः कालाग्निः शुद्धा मंदगां तगां गतः ॥१७१

यदृष्या गतिम् मिदः कश्यपस्य प्रजापति । यमुनेयमुनां प्राप नीराशिनपुत्रम्

पुरा मयाजायाविष्णोरे दृषामा मुनिपुङ्गवः ॥१८॥

संप्राप रामः र्नागाञ्च गगनेन हतां पुरा ॥१९॥

पुरा नन्दश्च संप्राप दमयन्तीं गतः गर्नाम् । शङ्खनूहो महायानो वैष्णवानामादरां

गृहो पटति मां दुर्गे यतो हि गच्छो हविम् । एवं संप्राप संसिद्धिं सिद्धादनमुत्तमम्

यदृष्या न महान्धर्मी प्रदार्त्रा मयंसमगताम् । मर्यादां सतां श्रेष्ठायनः कोडापनी

सापित्रीयेदमातागयतः सिद्धिमवाप्नुयान् । सिन्धुगन्धामर्यन्धर्मापन्तोपिष्णुनयान्

यदृष्या तुन्दरीं वृता गङ्गा भुवनपायनी । यदृष्या मयंसमगता मयांघरा वसुधा

यदृष्या मनसा देवीं मिद्धा न विद्वत्पूजिता । यदृष्या देवमाता न विष्णुं पुत्रमवाप्त

पतिप्रता च यदृष्या लोयामुद्राप्यम्बनी । लेभे च कपिलं पुत्रं देवदुती यतः सती

प्रियव्रतोत्तानपादीं मुतीं प्राप च तत्प्रभुः । न्यग्मातानापि संप्राप त्पादेवीं गिरिजां

एवं सर्वं सिद्धगणाः सर्वेश्वर्यमवाप्नुयुः । धीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः

ऋषिदण्डोऽस्य गायत्री देवी रासेश्वरी स्वयम् ।

श्रीरुष्णभक्तिसंप्राप्ती विनियोगः प्रकीर्तितः ॥२॥

शिष्याय रुष्णभक्त्याग्राहणाय प्रकाशयेन् । शठाय परशिष्याय दत्त्वामृत्युमवाप्नुयान्

राज्यं देयं शिरोदेयं न देयं कवचं प्रिये । कण्ठे धृतमिदं भक्त्या रुष्णेन परमात्मता

मया दृष्टञ्च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा । ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं बहिजायान्तमेव

रुष्णेनोपासितोमन्त्रऋक्षः शिरोऽधतु । ओं ह्रीं श्रीं राधिकाडेन्तंबहिजायान्तमेव

कपालं नेत्रयुग्मञ्च श्रोत्रयुग्मं सदाऽधतु । ओं रां ह्रीं श्रीं राधिकेतिडेन्तंबहिजायान्तमेव

मस्तकं केशसंघाश्च मन्त्रराजः सदाऽधतु । ओं रां राधेति चतुर्थ्यन्तं बहिजायान्तमेव

सर्वसिद्धिप्रदः पातुकपोलं नासिकां मुखम् । ह्रीं श्रीं रुष्णप्रियाडेन्तंकण्ठपातुनमोऽन्तकम्

ओं रां रासेश्वरीडेन्तंस्कन्धपातुनमोऽन्तकम् । ओं रां रासविलासिन्यै वृष्टपातु सदाऽधतु

वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहावशः सदाधतु । तुलसीवनवासिन्यै स्वाहापातु नित्यवशम्

ऽप्यग्राणाधिकाङ्केन्तं स्वादान्तं प्रणषादिकम् । पादयुग्मञ्च सर्वाङ्गी सन्ततं पातुसर्वतः
 तथा रक्षतु प्राच्याञ्च धर्त्री कृष्णप्रियाऽवतु । दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु
 अग्निमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता । उत्तरे सन्ततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
 त्र्यंश्वरी सदैश्यानां पातु मां सर्वपूजिता । जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा
 महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु सन्ततम् । कथंच कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ।
 ममै कस्मै न दातव्यं गृह्णद् गृह्णतः परम् । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न फल्यचित्
 गृह्णन्मयैर्घ्यं विधियद्ब्रह्मालङ्कारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणेचाहो धृत्या विष्णुसमो भवेत्
 तल्लक्षजपेनैव सिद्धञ्च कथंच भवेत् । यदि स्यात् सिद्धकवचो न दाधो बह्विना भवेत्
 एतस्मात्कथंचाहु दुर्गे राजादुर्व्याघनः पुरा । विशारदो जलस्तम्भेष्वह्निस्तम्भे च निश्चितम्
 तथा सनत्कुमाराय पुरा दत्तञ्च पुष्करे । सूर्यपर्वणि मेरी च स सान्दीपनये ददौ ॥

बलाय तेन दत्तञ्च ददौ दुर्व्याघनाय सः ।

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४१॥

नित्यं पठति भक्तयेद् सन्मन्त्रोपासकश्चयः । विष्णुतुल्यो भवेन्नित्यं राजसूयफलं लभेत् ॥
 ज्ञानेन सर्वतीर्थानां सर्वज्ञानेन यत् फलम् । सर्वत्रतोपवासे च पृथिव्याश्चन्द्रक्षणे ॥५१
 सर्वपक्षेषु वीक्षार्या नित्यञ्च सत्परक्षणे । नित्यं श्रीकृष्णसेवया कृष्णनैवेद्यतक्षणे ॥५२
 पाठे चतुर्णां वेदानां वाकलञ्च लभेन्नरः । तत्फलं लभते नूनं पठनात् कवचस्य ॥ ॥
 राजद्वारे श्मशाने च सिंहप्याग्रास्थिते घने । दावाग्नी संकटे चैव दस्युर्वीरान्विते भवे ॥
 कारागारे विपद् भस्ते घोरैश्च हृद्ग्रन्थने । व्याधियुक्तो भवेन्मुक्तो धारणात्कवचस्य च ॥
 इत्येतत्कथितं दुर्गे त्र्यंश्वेद् महेश्वरि । शघमेव सर्वरूपा मां प्राप्य पृच्छसि मायया ॥५६

श्रीनारायण उवाच ।

इत्युत्ताराधिकाव्यानं स्मारं स्मारञ्च माधवम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साधुने श्रीकभूवसः ॥
 न कृष्णसदृशो देवो न गंगासदृशी सत्त्वि । न पुष्करान् समतीर्थनाथमोघाक्षणात् परः ॥
 परमाणु परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान् । नमः परञ्च विस्तीर्णं यथानास्तपेयनारद ॥

यथा न पैष्णयात् ज्ञानी योगीन्द्रः शङ्करान् परः ।

कामकोपशोभमोहा जितान्नेनेय नाह ॥६०॥

स्यत्वे जगत्स्ये शत्रुत्वं कृष्णव्यानरतः शिवः ।

यथा कृष्णस्वभा शम्भुर्न भेदा मायेशोभाः ॥६१॥

यथा शम्भुर्देवेषु यथा देवेषु मायवः । नभोऽं कथं यत्न कथनेषु प्रशस्त्रम् ।

शिविति मंगलार्थञ्च यकागोदायुधान्तः । मंगलानां प्रशान्ता यः सजिवःपरिशीलितः ।

नराणां स्वतन्त्रं विश्वे शं कल्याणं करोतिवः । कल्याणमोक्षवचनमप्यशङ्करः स्मृतः ।

प्रह्लादात्तो मुराणाञ्च मुनोनां वेदवादिनाम् । मेवाञ्च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः ।

महतां पूजिता विश्वे मूलप्रवृत्तिर्नाशयरी । नस्याः देव पूजितञ्च महादेवः स च स्मृतः ।

विश्वस्थानाञ्च सर्वेषां महतामोश्चरः स्वयम् । महेश्वरञ्च नेनेमं प्रपदन्ति मर्तापिणः ।

हे प्रह्लादपुत्र धर्मोऽसि यद्गुणञ्च महेश्वरः ।

धर्मरूपमक्तिदाता यो भवान् पृच्छन्ति माञ्च किम् ॥६८॥

इति प्रह्लादचरितं महापुराणे नारायणनाम् संवादे प्रवृत्तिप्रण्डे राधिकापाख्यानं

नाम पद्मञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्गोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मवतीव परमाद्भुतम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् ।

दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमायाशिवासती । नित्यास्त्याभगवतोसर्वाणीसर्वमंगला

अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वतीचसनातनी । नामानिकीथमोक्तानिसर्वेषांशुभदानिव

ध्यं पौडशनाम्नां च सर्वेषामोप्सितं वरम् । ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ।

ॐ ना पूजिता सादौ द्वितीये केन वा पुरा । तृतीये वा चतुर्थे वा केन सर्वप्रपूजिता

नारायण उवाच ।

अयं षोडशानाम्नाञ्च विष्णुर्देवकारसः । पुनःपृच्छसिन्नात्वात्वंकथयामियथागमम् ॥
दुर्गो-दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धेचकर्मणि । शोके दुःखे च नरके यमदण्डेच जन्मनि ॥
महामयेऽतिरोगेचाप्याशब्दोदन्तृवाचकः । एतान्दन्त्येवयादेर्वासादुर्गा परिकीर्त्तिता ॥
यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः । शक्तिर्नारायणस्यैवं तेन नारायणी स्मृता ॥
ईशानः सर्वसिद्धिप्रदश्चाशब्दोदात्तवाचकः । सर्वसिद्धिप्रदात्रीयासापीशानाप्रकीर्त्तिता ॥

सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना ।

मोहितं मायया पिश्वं विष्णुमाश प्रकीर्त्तिता ॥११॥

शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया ।

प्रिये दातरि चा शब्दो श्रिया तेन प्रकीर्त्तिता ॥१२॥

सद्बुद्ध्याधिष्ठातृदेर्धा विद्यमाना युगे युगे । पतिप्रताप्तुर्शीलाचसासतीपरिकीर्त्तिता ॥
यथा नित्योहि भगवान् नित्या भगवती तथा । स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृतैलये ॥
आग्रहास्तम्यपर्यन्तं सधं मिथ्यैषहृषिमम् । दुर्गासत्यस्वरूपासाप्रकृतिर्भगवान्यथा ॥
सिद्धैश्चर्यादिकं सधं यस्यामस्ति युगे युगे । सिद्धादिकेभगोक्षेयस्तेनभगवतीस्मृता ॥
सर्वान्मोक्षं प्रापयतिजगन्मृत्युजरादिकम् । चराचराञ्चविश्वस्थान्सर्वाणीतेनकीर्त्तिता ॥
मंगलं मोक्षयवनं चा शब्दोदात्तवाचकः । सर्वान्भोक्षान्चाददातिसाप्य सर्वमंगला ॥
हर्षे सम्पदि कदापि मंगलं परिकीर्त्तितम् । तान् वदाति या देवीसाप्य सर्वमंगला ॥
अप्येति मातृवचनो धन्द्वे पूजने सदा । पूजिता वन्दिता माता जगतांतेन सावित्रका ॥
विष्णुभक्ताविष्णुरूपाविष्णोःशक्तिस्वरूपिणी । सृष्टौचविष्णुनासृष्टावैष्णवीतेनकीर्त्तिता

गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्मले ।

तस्यात्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२२॥

गुरुः शम्भुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती ।

गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२३॥

तैथिभेदे सर्वभेदे कल्पभेदेप्रभेदतः । कथातो तेषु च विख्यातापार्वतीतेन कीर्त्तिता ॥२४॥

निषेव्य प्रकृतिं जन्मसहस्रं कामसागरे । तपः फलेन त्वां प्राप बृहत्प्रीतिं बृहस्पतिः
अहो तपस्विना सार्द्धमविदग्धेन वेधसा । योजिता त्वं रसवतीशश्वत्कामानुराग्य
किंचा सुखञ्च विज्ञातमविज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्धेन संगमः सुखसागरः
कामेन कामिनी त्वञ्च दग्धासि व्यर्थमीदृवरि ।

कर्मणोरात्मदोषाद्वा को जानाति मनस्त्रियाः ॥२८॥

दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नययौवनम् । नयनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना तव
शश्वत्तपस्यायुक्तध्वसकृष्णमात्मनीप्सितम् । स्वप्नेजागरणेवापि शयते बृहस्पतिः

सर्वकामरसज्ञा त्वं निष्कामं काममीप्सितम् ।

कामुकी ध्यायते शश्वद्वयूना ऋणारमात्मनि ॥२९॥

अन्यञ्च त्वन्मनः कामोभिन्नं त्वद्वर्तुरीप्सितम् ।

का प्रीतिः संगमे कान्ते द्वयोर्विषयमिग्नयोः ॥३०॥

घासन्तीपुष्पतल्पे च गन्धचन्दनचर्चिते । वसन्ते मां गृहीत्या च मोदस्य माधुर्यावने

निर्जने चन्दनवने सुगन्धिपुष्पचर्चिते । भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम् ॥३१॥

चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकघायुना । रम्ये चम्पकतल्पे च मृगीणां कुट मया सह ॥३२॥

इत्युत्तया मदनोन्मत्तो मदनाधिकसुन्दरः । पपात चरणे देहया मन्दो मन्दाकिनीतटे

निरुद्धमार्गा चन्द्रेण शुष्कफण्डीष्ठतालुका । अर्भीतोपाच कोपेनर सप्तज्जलोचना ॥३३॥

सारोपाच ।

धिक् त्वां चन्द्र तृणं मग्न्ये परस्त्रीलपटं शठम् ।

अत्रेरमायान् त्वं पुत्रो ध्ययन्ते जन्म जीयन् ॥३४॥

मरे हृत्पा राजसूयमात्मानं मन्यसे घली । धमूष पुण्यं ते ध्ययं विप्रस्त्रीपुत्रयमनः ।

यस्य चित्तं परस्त्रीपुत्रोऽशुचिः सत्त्वकर्मसु । न कर्मफलमाख्यासीन्नन्दो विरहेषु सर्वतः ।

हंसिचेन्मसर्पात्पञ्चयश्मप्रमनोमविष्यति । धरयुष्मिन्नो निपतनं प्राप्नोतीति धृतो धृतम् ।

दण्डा हृष्णा दण्डे निहनिष्यति । त्यजमांसातरं परस यदि ते ॥ भविष्यति

नकारसाक्षिणं धर्ममृत्युं पापं पुनरात्मम् ।

ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनं रात्रिञ्च सन्ध्याञ्च सर्वसुराणामुने ॥३४॥
 आत्मा च चनं धृत्वा न भीतः स चुकोपह । करे धृत्वा रथेनृणं स्थापयामास सुन्दरीम् ॥
 धञ्च बालयामास मनोयायी मनोहरम् । मनोहरां गृहीत्वा तां स च रमे मनोहरम् ॥
 यस्यन्दके सुरघने चन्दने पुष्पमद्रके । पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने ॥३७॥
 दुग्न्धिपुष्पतन्त्रे च पुष्पचन्दनवासुना । निर्जने मलयद्वीप्यां त्रिग्वचन्दनचर्चिते ॥३८॥
 तिले शैले नदी नद्यां शृंगारं कुर्वन्तस्तयोः । गतं पर्येयत्तं ह्यरान्मुहूर्तमिव नारद ॥३९॥
 धभूष शरणापनो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः । तेजस्विनि तथा शुभ्रैर्तेजोऽश्वदलिनां गुरी ॥
 भ्रमयञ्च दक्षी तस्मै कृपया भृगुनन्दनः । शुक्रं जहास देवानां सुविषमं बृहस्पतिम् ॥
 सभायां जहसुर्हृष्टा बलिनो दितिनन्दनाः । भ्रमयञ्च वदुस्तस्मै भीताय च कलङ्गिने ॥
 सती सतीत्यथ ध्वंसेन पापेन चन्द्रमण्डले । धभूष शशम्पञ्च कलङ्गं निर्मले मन्दम् ॥
 उपाय तं महामीतं शुक्रो वेदविदाम्बरः । हितं तत्पथं वेदयुक्तं परिमाणसुभाषहम् ॥४४॥

शुक्र उवाच ।

तस्य महो ब्रह्मणः पीत्रोऽप्यत्रैर्मगधतः सुतः । दुर्नानं कर्म ते पुत्र मीचवध यशम्करम् ॥
 गगजस्य पुण्यकले निर्मलेकीर्तिमण्डले । सुधारशी सुराविन्दुरूपमङ्गुसुवार्जितम् ॥४६॥
 तस्य ज देव गुतोः पत्नी प्रसूमिष महासतीम् । धर्मिष्ठस्य धर्मिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतः ।
 शम्भोः सुराणामीशस्य शुक्र पुत्रस्य ब्रह्मणः । पीत्रस्याङ्गिरस शम्भोऽयत्नो ब्रह्मणेजसा
 शत्रोरपि गुणा पात्र्या दोषा पात्र्या गुरोरपि । इति सठंशजातानां स्वभावाभ्यसनादपि
 स शत्रुर्मे सुरगुरः परो विधे निशाकर । तथापि सहजास्यानं धर्मिनं धर्मसंसदि ॥

यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः ॥५०॥

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः । गौरैकं पञ्च च व्याघ्री सिंहीस्तत्प्रत्युने
 दिसकाः प्रलयं यान्ति धर्मो रक्षति धार्मिकम् । देवाश्च गुरुषो विप्राश्च कृत्यप्रविरहिणुम्
 तथापि न दि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम् । बुद्ध्या विप्रपर्जितां गमने सुरविप्रयोः ॥
 प्रहृष्ट्या योऽङ्गाराणां तवञ्च भवेद्दधुयम् । तासां सुपस्थितानाञ्च गमने तद्यनुपयम् ॥५४॥
 विप्रपत्नी सतीनाञ्च गमनेन बलेन चेत् । प्रहृष्ट्या गतानं पापं भवेद्देव धृती धृतम् ॥५५॥

निवेद्य प्रहृति जन्ममहर्षं कामसागरं । तपः कलेन त्वां प्राप बृहत्श्रोत्रि बृहत्सन्नि
 यतो नपम्पिना सादंमविदग्धेन वेधसा । योजिता त्वं रसवतीशदयन्कामानुत्सव
 क्रिया मुगञ्ज विघातमविशेषु समागमे । चिदग्धाया चिदग्धेन संगमः सुतसागरः

कामेन कामिनी न्यञ्ज दग्धासि व्यर्थमाश्रयि ।

कर्मणोऽगमदोषाद्वा को जानाति मनस्त्रियाः ॥१८॥

दिने दिने यूया याति दुर्लभं नवर्षायनम् । नवर्षायनमध्याया वृद्धेन स्यामिना ता
 शदयन्कामानुत्सवः ॥ सत्पराजमागमनीप्सितम् । स्वप्नेनागरणेयापि शयनेचवृहस्पति
 सर्वकामासत्रा त्वं निष्कामं काममाप्सितम् ।

कामुकी ध्यायते शश्वदुयूता शृंगारमान्मनि ॥२१॥

मन्त्रश्च त्वन्मनः कामोमिश्रं त्वद्वर्तुनीप्सितम् ।

का प्रीतिः संगमे कामेन द्वयोऽप्ययमितमयोः ॥२२॥

सागमनीपुष्पकणे न शश्वदुयूतायनिने । वसन्ते मां गृहीत्या न मोक्षस्य माधुरीने
 निजने शश्वदुयूताय मुगञ्जिपुष्पकणिने । भयनी युधनी माधवनी तत्रैव मोक्षताम् ॥२४॥
 शश्वदे शश्वदुयूताय शीतलशश्वदुयूता । शश्वे शश्वदुयूताय न कीदृशं कुरु मया साह ॥२५॥
 शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय
 शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय
 शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय

सागोपाय ।

चिदग्धाया चिदग्धेन संगमे कामेन द्वयोऽप्ययमितमयोः ॥२२॥

चिदग्धाया चिदग्धेन संगमे कामेन द्वयोऽप्ययमितमयोः ॥२२॥

॥२३॥ शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय

॥२४॥ शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय

॥२५॥ शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय

॥२६॥ शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय शश्वदुयूताय

ग्रहणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराय । दिनं रात्रिञ्च सन्ध्याञ्च सर्वसुरगणं मुने ॥३४॥
 तारकाघचनं श्रुत्वा न भीतः स शुकोपह । करे धृत्वा रथेनूणं स्थापयामास सुन्दरीम् ॥
 रथञ्च चालयामास मनोवायी मनोहरम् । मनोहरां गृहीत्वा तां स च रमे मनोहरम्
 विस्पन्दके सुरधने चन्दने पुष्पमद्रके । पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने ॥३५॥
 सुगन्धिपुष्पतले च पुष्पचन्दनपायुना । निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३६॥
 शैले शैले नद्रे नद्यां शृंगारं कुर्वतस्तयोः । गतं वर्षशतं हर्षान्मुहूर्तमिव मारुद ॥३७॥
 यभूय शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः । तेजस्विनि तथा शुक्लेतेषाञ्च प्रलितां गुरी ॥
 भमयञ्च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः । गुरुं जहास देवानां सुविपक्षं बृहस्पतिम् ॥
 सभायां जहसुर्दृष्टा बलिनो रितिनन्दनाः । भमयञ्च बहुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने ॥
 सती सत्प्रीत्य धर्मसेन पापेन चन्द्रमण्डले । यभूय शशरूपञ्च कलङ्कं निर्मले मलम् ॥
 उपाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदाम्भरः । हितं तर्धं वेदयुक्तं परिमाणसुखावहम् ॥३८॥

शुक उवाच ।

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रैर्मगधतः सुतः । दुर्नोतं कर्म ते पुत्र मीलघन यशस्करम् ॥
 राजस्य पुण्यकले निर्मलेकीर्त्तिमण्डले । सुधाराशी सुराविन्दुरूपमङ्कुमुपाजितम् ॥३९॥
 त्यज देव गुरोः पत्नीं प्रसूमिष्य महासतीम् । धर्मिष्ठस्य धर्मिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतेः ।
 शम्भोः सुराणामीशस्य गुरु पुत्रस्य ब्रह्मणः । पौत्रस्याङ्गिरस शश्वग्गवलतो ब्रह्मतेजसा
 शत्रोरपि गुणा वाच्या दीवा वाच्या गुरोरपि । इति सङ्शंज्ञातानां स्थमायश्चसतामपि
 ■ शत्रुर्मे सुरगुरुः परो विभवे निशाकर । तथापि सहजाख्यानं वर्णितं धर्मसंसादि ॥

यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः ॥४०॥

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः । गौरेकं पञ्च च ध्यात्री सिंहीसत्प्रसूयते
 हिंसकाः प्रलयं यान्ति धर्मो रक्षति धार्मिकम् । देवाश्च गुरुवो विप्राः शक्ता यद्यपिरक्षितुम्
 तथापि न हि रक्षन्ति धर्मं पापिनं जनम् । कुलटा विप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः ॥
 ब्रह्महत्या षोडशंशपातकञ्च भवेद्भुवम् । सासामुपस्थितानाञ्च गमने तद्यतुर्यकम् ॥४१॥
 विप्रपत्नी सतीनाञ्च गमनेन बलेन चेत् । ब्रह्महत्याशतं पापं भवेद्देव भूतो भुतम् ॥४२॥

धर्मश्चर महाभाग ब्राह्मणीं त्यज साम्प्रतम् । कृत्यानुतापं पापाद्य निवृत्तिस्तु महाफलं
 उपायेन च ते पापं दूरीभूतं करोम्यहम् । शरणागतस्य भीतस्य मयि देवस्य धर्मतः
 शस्त्रहीनञ्च भीतञ्च दीनञ्च शरणार्थिनम् । यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाकेषसेद्भुक्-
 राजसूयशतानाञ्च रक्षिता लभते फलम् । परमैश्वर्य्ययुक्तञ्च धर्मेण स भवेदिह ॥५॥
 इत्युक्त्वा ॥ वैद्यगुरुःस्वर्गे मन्दाकिनीतटे । स्नात्वातां स्नापयामासविष्णुपूजाञ्चकारस-
 विष्णुपादोदकं पुण्यं तत्रैवेद्यं शुभप्रदम् । गङ्गोदकञ्च पुण्यञ्च भोजयामास चन्द्रकम् ।
 मोडे कृत्वा तु तं भीतं लजितं पापकर्मणा । कुशहस्त इत्युवाच स्मारंस्मारं हरिमुं-
 शुक उवाच ।

यद्यस्ति मे तपः सत्यं सत्यं पूजाफलं हरेः । सत्यं व्रतफलञ्चैव सत्यं सत्यवचःफलं
 तीर्थस्नानफलं सत्यं सत्यं दानफलं यदि । उपवासफलं सत्यं पापान्मुक्तो भवान् भवे-
 त्रिसन्ध्याहीनं विप्रञ्च विष्णुपूजाधिहीनकम् । तं गच्छतु महाघोरं चन्द्रपापं सुदारुणं
 स्वमाप्यां वञ्चनं कृत्वा यः प्रयाति परस्त्रियम् । स यातु नरकं घोरं चन्द्रपापेन पातकं
 वाचा वा साङ्गयेत् कान्तं दुःशीला दुर्मुखा च वा ।

सा युगं चन्द्रपापेन यातु लालामुखं भुषम् ॥ ६७ ॥

अनैवेद्यं वृषाञ्च यद्य भुङ्क्ते हरेर्द्विजः । स यातु कालसूत्रञ्च चन्द्रपापाद्यनुपुंगम् ॥६८॥
 अम्युपाख्यां भूस्ननं करोति यो नराधमः । चन्द्रपापात् युगशतं कालसूत्रं स गच्छ-
 त्यकान्तं वञ्चनं कृत्वा वा याति परपूरुषम् । सा यातुषङ्किरुण्डञ्च चन्द्रपापाद्यनुपुंग-
 कीर्त्तिं करोति रजसा परकीर्त्तिं विलुप्य च । स युगं चन्द्रपापेन कुम्भीपाकश्चगच्छ-
 पितरं मातरं माप्यां यो न पुष्पाति पातकी । म्यगुरुं चन्द्रपापेन यातुचाण्डालताभुष-
 कुल्लटाग्रमपीरान्नं शतुज्जानाग्रमेव च । योऽध्वानि चन्द्रपापञ्च तं यातु पापिनं भुष-
 स यातु तेन पापेन कुम्भीपाकं चतुर्पुंगम् । तन्मादुशीर्ष्यचाण्डाली योनिमाप्नोति पातकं
 दिपमे यो ग्राम्यधर्मं महापापी करोति च ।

यो गच्छेत् काम्यं कामी गुर्विणी वा रजम्यलाम् ॥ ७५ ॥

तं यातु चन्द्रपापञ्च महाघोरञ्च पापिनम् । स यातु तेन पापेन कालसूत्रं चतुर्पुंग-

मुखं धोषांस्तनञ्चापि योपश्यति परस्त्रियाः । कामतः कामदग्धश्च तं यातुचन्द्रकल्मषम्
 स यातु लालामक्ष्यञ्च चन्द्रपापाद्यतुर्युगम् । तस्मादुत्तीर्य्यमवतु चाण्डालान्धोनपुंसकः
 कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्त्यां चतुर्दशपृष्ठीषु च । मांसं मसूरं लकुचं यश्चमुङ्क्ते रवेर्दिने ॥ ७६ ॥
 कुरुते ग्राम्यधर्मश्च तं यातु चन्द्रकिल्बिषम् । चतुर्युगं कालसूत्रं तेन पापेन गच्छतु ॥
 तस्मादुत्तीर्य्य चाण्डालीं योनिमाप्नोति पातकी । सप्तजन्ममहारोगी द्रष्टुः कुञ्जपक्ष
 एकदशपञ्च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने । शिष्यरात्री महापापीतयातु चन्द्रपातकम्
 ॥ यातु कुम्भीपाकञ्च यावदिन्द्राद्यतुर्दश । तेन पापेन प्राप्नोतु चाण्डालीं योनिमेव च ।
 ताम्रस्थं दुग्धमाध्वीकमुच्छिष्टे घृणमेव च । नारिकेलोदकं कांस्ये दुग्धं स लघणं तथा
 पीतशेषजलञ्चैव भक्ष्याद्यशेषमोदनम् । मोदनमसकृद् भुङ्क्ते सूर्य्येनास्तं गते द्विजः ॥
 तं यातु चन्द्रपापञ्च तुर्निवारञ्च दारुणम् । स यातु तेन पापेन बान्धक्यचतुर्युगम् ॥ ८६ ॥
 स्वकन्याधिक्रयी पिप्रो देपलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च तेषाञ्च सूपकारकः ॥
 भवत्यतदघाती च पिप्पलुवैष्णव निन्दकः । तं यातु चन्द्रपापञ्च दारुणं पापिनं भृशम्
 स यातु तस्मात् पापाच्च तप्तशूर्मीञ्च पातकी ।

शश्वद्वधो भवतु स यावदिन्द्राद्यतुर्दश ॥ ८६ ॥

तस्मादुत्तीर्य्यचाण्डालीं योनिं प्राप्नोति पातकी । सप्तजन्मस चाण्डालो वृषश्च जन्मपञ्चच
 गर्वभो जन्मशतकं शूकरो जन्मसप्त च । तीर्थञ्चाङ्क्षो जन्मसप्त विद्वद्विर्जन्म पञ्च च
 जलीका जन्मशतकं शुविर्मवतु तत्परम् ॥ ९१ ॥

वृथा मांसं (तु) यो भुङ्क्ते स्वार्यपाकाग्रमेव च । तद्वत् महापापी प्राप्नोतु चन्द्रपातकम्
 स यातु चन्द्रपापेन चासीपत्रं चतुर्युगम् । ततो भवतु सर्पञ्च पशुञ्च सप्तजन्म च ॥ ९३ ॥

विप्रो वादुर्गुणिको यो हि योनिजीवी विफित्सकः ।

हरेर्नाम्नाञ्च विकेता यश्च वा स्वाङ्गविक्रयी ॥ ९४ ॥

स्वधर्मकषकश्चैव यश्च स्वात्मप्रशंसकः । मसीजीवो घावकश्च कुलटापोष्य एव च ॥
 तं यातु चन्द्रपापञ्च चन्द्रोऽनवतु पिञ्जरः । स यातु तेन पापेन शूद्रघ्नोतं सुदारुणम्
 ततो विद्वो भवतु स यावदिन्द्राद्यतुर्दश । ततो द्रष्टो रोगी च दीक्षाहीनो नरः पशुः

नडाशामोसगरानाञ्च त्रिदानी स्युषण्य न । अन्त्यानाञ्चैव लीहानो विक्रान्तानाञ्च
 गौरश्च पिप्रो गर्हशान्नं यानु गन्धपातकम् । ॥ यानु तेन वापेन शुभार्थं सुदुःखं
 तत्र तिष्ठो मयतु ॥ वापदिन्द्रसहस्रकम् । तस्मादुर्लभं भवतु शृगान्दः सप्तजन्म
 सप्तजन्म न मात्रांगो महिषो जन्मगन्धकम् । सप्तजन्म न मन्त्रकः कुङ्करो सप्तजन्म
 मत्स्यश्च जन्मशान्तं कर्कटो जन्मगन्धकम् । गोधिका जन्मशान्तं गर्दभः सप्तजन्म
 सप्तजन्म न मण्डुकरत्नश्च मानपोऽधमः । नर्मकाश्च रत्नकस्नीलकारश्च घाईकी
 नायिकः शपजीयी न व्याघ्रश्च स्वर्णकाकः ।

कुम्भकारो लौहकारस्तनः क्षत्रस्तनो द्विजः ॥ १०४ ॥

इतिचन्द्रशुचिहृतपासमुपायनुसारकाम् । त्यक्त्वा चन्द्रमहासाध्यिगच्छकान्तमिति द्विज
 प्रापश्चित्तं पिना पूता त्वमेव शुद्धमानसा । भक्त्या या बलिद्वेन न ह्रीं जारेण दुष्यति
 इत्येषमुत्तया शुभःश्च चन्द्रश्च तारकास्तरीम् । सस्मितांसस्मितश्चैव चकारवशुमामिनि
 इति श्रीमहावैवर्त्त महापुराणे प्रकृतिसंज्ञे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्यानं

नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनपष्ठितमोऽध्यायः

बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिष्यप्रेषणम् ।

नारद उवाच ।

बृहस्पतिः किञ्चकार तारकाहरणान्तरे । कथं संप्राप तां साध्यां तमे व्याख्यातुमर्हसि
 श्रीनारायण उवाच ।

इहा विलम्बं तारायाः ज्ञान्त्याश्चापि गुरुः स्वयम् ।

प्रस्थापयामास शिष्यमन्वेषार्थञ्च स्वर्णदीम् ॥ १०५ ॥

गत्वा स्वर्णदीञ्च संप्राप्य लोकवक्त्रतः । रुद्रधुवाच स्वगुरुं तारकाहरणं मुने ।

धृत्वा शुभगुण्यांस्तं शशिना ॥ प्रियां हताम् । गृहस्थं प्राप मूर्च्छांश्चान्न संप्राप येननाम्
ःतेदोषेः सतिपरा दृश्येन विदूयता । शोचन् लज्जया विप्रो चित्तलाग मुहुर्मुहुः ॥४॥

उपान्तिपदान् स्वर्गोप्य मीनिश्च धृतिरामनाम् ।

साधनेषः साधनेषान् शोकात्तः शोकवर्जितान् ॥६॥

गृहस्थनिर्याण ।

॥ वास्ताः केन शनोऽहं न जाने कारणं परम् । दुर्गं धर्मविक्रतो ग.संप्राप्तेऽग्निमंशयः
यस्य माम्नि मर्माभाष्यां गृहेषु प्रियवादिनी । भरणं तेन गन्तव्यं यथाभरणं तथागृहम्
भाषानुरक्ता यनिता हता यस्य च शत्रुणा । भरणं तेन गन्तव्यं यथाभरणं तथा गृहम्
सुखीना सुखी भाष्यां गता यस्य गृहादहो । भरणं तेन गन्तव्यं यथाभरणं तथागृहम्
द्वेयनापहता यस्य पतिस्ताप्या यनिप्रता । भरणं तेन गन्तव्यं यथाभरणं तथा गृहम् ॥
यस्य माता गृहे माम्नि गृदिनीं वा सुशालिता । भरणं तेन गन्तव्यं यथाभरणं तथागृहम्
प्रियादीनं गृहं यस्य पूर्णं द्विषिण्यन्धुभिः । भरणं तेन गन्तव्यं यथाभरणं तथा गृहम् ।
भाष्यांशान्या यनसमाः समाप्यांश्चगृहा गृहाः । गृदिनीं ॥ गृहे प्रोक्तं गृहं गृहमुच्यते
भगुचिः स्त्रीविहीनश्च द्वेये वैश्ये च कर्मणि । यद्वा कुले कर्म ॥ तस्य गृहात्तद्भाष्येत्
शक्तिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दोद्गताशनः । प्रभादीनो यथागृह्यः शोभादीनो यथाशरी
शक्तिहीनो यथाशरीरो यथावाग्माननुचिना । विनाऽऽधारं यथाऽऽपेयो यथेशः प्रकृति विना
न च शक्तो यथा यत्रः पञ्चदशं दक्षिणां विना । कर्मणाश्च पञ्च दानं सामग्रीमूलमेव च
विनाऽऽरण्यं स्वर्णं कारोययाशक्तः स्वकर्मणि । यथाशक्तः कुलालक्ष्यमृत्तिकाश्च विना द्विजाः
तथा गृही तशक्तश्च सन्तर्कसर्वकर्मणि । भाष्यांमूलाप्रियाः सर्वाः भाष्यांमूलागृहास्तथा
भाष्यांमूलं शुभं सर्वगृहस्थानां गृहे सदा । भाष्यांमूलः सदाहर्षो भाष्यांमूलश्चमङ्गलम्
भाष्यांमूलश्च सर्वसाराभाष्यांमूलश्च सर्वोत्तमम् । यथाभरणं रश्मिनां गृहिणाश्च तथागृहम्
सारयिस्तु यथा तेषां गृहिणाश्च यथाप्रिया । सर्वैरक्षप्रयाना च स्त्रीलं दुष्टुलादपि ।
गृहीना सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः । यथा जलं विना पत्रं पत्रं शोभा विना यथा
तथैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीं विना । अन्येषमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः ॥

सुरगुल्फांतां शशिना च प्रियां हताम् । गृहर्त्तं प्राप मूर्च्छाञ्चततः संप्राप चेतनाम्
चैः सशिपश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जया विप्रो विललाप मुहुर्मुहुः ॥५॥

उवाच शिष्यान् सम्बोध्य नीतिञ्च धृतिसम्भताम् ।

साधुनेत्रः साधुनेत्रान् शोकार्तः शोककर्षितान् ॥६॥

गृहस्पतिरुवाच ।

साः केन शनोऽहं न जाने कारणं परम् । दुःखं धर्मविरुद्धो यः संप्राप्तोऽतिनसंशयः
नास्ति सतीमाय्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
नुरक्ता धनिता हता यस्य च शत्रुणा । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
ला सुग्री भाय्यां गता यस्य गृहाद्दहो । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
तपहता यस्य पतिसाध्या पतिधृता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥
माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
हीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणवन्धुभिः । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।
यांशून्या धनसमाः सभाय्याश्च गृहाः गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तं गृहं गृहमुच्यते
चिः स्त्रीविहीनश्च दैवे दैव्ये च कर्मणि । यद्वा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्
काशकिहीनश्च यथा मन्दोद्भुताशनः । प्रमाहीनो यथासूर्यः शोभाहीनो यथाशशी
हीनो यथाजीवो यथाचारमानुविना । विनाऽऽचारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिं विना
शको यथा यत्नः फलदां दक्षिणां विना । कर्मणाञ्च फलं वातुं सामग्रीमूलमेव च
। स्वर्णं स्वर्णकारो यथाशकः स्वकर्मणि । यथाशकः कुलालश्च मृत्तिकाञ्च विना द्विजाः
। गृही नशकश्च सन्तनं सर्वकर्मणि । भाय्यामूलाक्रियाः सर्वाः भाय्यामूला गृहास्तथा
र्यामूलं सुखं सर्वगृहस्थानां गृहे सदा । भाय्यामूलः सदाहर्षो भाय्यामूलश्च मङ्गलम्
र्यामूलश्च संसारो भाय्यामूलश्च सौख्यम् । यथारथश्च रथिनां गृहिणाञ्च तथा गृहम्
रथिस्तु यथा तेषां गृहिणाञ्च यथाप्रिया । सर्वेष्टप्रधानां च स्त्रीणां दुष्कुलादपि
हिता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः । यथा जलं विना पत्रं पत्रं शोभा विना यथा
रेव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीं विना । इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविशेश गृहं मुहुः ॥

गुत्वा सुरगुह्यार्तां शशिना च प्रियां हताम् । मुहूर्त्तं प्राप मूर्च्छाञ्जततःसंप्राप चेतनाम्
रोदोद्यैः सशिरश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जया विप्रो विललाप मुहुर्मुहुः ॥५॥

उवाच शिष्यान् सम्बोध्य नीतिञ्च श्रुतिसम्मतम् ।

साधुनेत्रः साधुनेत्रान् शोकार्तः शोककर्षितान् ॥६॥

बृहस्पतिरुवाच ।

हे परसाः केन शमोऽहं न जाने कारणं परम् । दुःखं धर्मविच्छेदो यःसंप्राप्नोतिनसंशयः
यस्य नास्ति सतीमाध्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथागृहम्
भाषानुरक्ता वनिता हता यस्य च शत्रुणा । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
सुशीला सुन्दरी भाष्या गता यस्य गृहादहो । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथागृहम्
दैवेनापहता यस्य पतिसाध्या पतिव्रता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथागृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।
भाष्याशून्या धनसमाः सभाष्याश्चगृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तं गृहं गृहमुच्यते
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे वैश्ये च कर्मणि । यद्गृहा कुरुते कर्म न तस्यफलमाप्नुयेत्
दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दोद्भुताशनः । प्रभाहीनो यथासूर्यः शोभाहीनो यथाशशी
शक्तिहीनो यथाजीवो यथाचातमाननुंविना । विनाऽऽचारं यथाऽऽघोषो यथेशः प्रवर्ति विना
न च शक्तो यथा यक्षः कलदां दक्षिणो विना । कर्मणाञ्च कलं दातुं सामग्रीमूलमेव च
विनास्वर्णं स्वर्णं कारोयवाशक्तः स्वकर्मणि । यथाशक्तः कुलालश्च मृत्तिकाञ्च विना द्विजाः
तथा गृही नशक्तश्च सन्तनं सर्वकर्मणि । भाष्यामूलाक्रियाः सर्वाः भाष्यामूलागृहास्तथा
भाष्यामूलं सुखं सर्वगृहस्थानां गृहे सदा । भाष्यामूलः सदाहर्षो भाष्यामूलञ्चमद्वलम्
भाष्यामूलञ्चसंसारोभाष्यामूलञ्चसौख्यम् । यथारथञ्च रथितांगृहिणाञ्चतथागृहम्
सारयितुं यथा तेषां गृहिणाञ्च यथाप्रिया । सर्वरत्नप्रधाना च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।
गृहीता सा गृहस्पतेर्नैवेत्याह कमलोद्भवः । यथा जलं विना पत्रं पत्रं शोभा विना यथा
तपैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीं विना । इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविदेश गृहं मुहुः ॥

बृहस्पतिस्तथ्यश्च संवर्त्तश्च जितेन्द्रियः । त्रयश्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपात्राः ॥४७॥
संवर्त्ताय कनिष्ठाय न च किञ्चिद्दी शुकः । स वयूय तपस्वीचध्यायते कृष्णमीश्वरम् ॥

उतथ्यस्य मध्यमस्य भार्याञ्च गुर्विणी सतीम् ॥

जहार कामतस्ताञ्च भ्रातृजायामकामुकीम् ॥ ४८ ॥

यो हरेद् भ्रातृजायाञ्च कामी कामकामुकीम् । ब्रह्महत्यासहस्रञ्च लभते नाप्रसंशयः ॥
स पाति कुम्भीपाकञ्च यापयन्त्रदिवाकरी । भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः ॥
तस्मादुष्तीर्थ्यपापीचविष्ठायां जायतेहमिः । धर्मकोटिसहस्राणितत्र स्थित्वा च पातकी
ततो भवेन्महापापी धर्मकोटिसहस्रकम् । पुंश्चलीयोनिगर्भे च हृमिध्वेय पुरन्दर ॥ ५३ ॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि कुङ्कुमः । भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि शूकरः ॥ ५४ ॥
यो न ददाति दायञ्च घलिष्ठो दुर्बलपि च । स पाति कुम्भीपाकञ्च यापयन्त्रदिवाकरी
मा भुङ्क्ते क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्
जगद्गुरोः शिष्यस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः । ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमोश्वरं बह्निनाथरम्
सर्वे समूहाः देवानां सप्रज्ञाश्च सवाहनाः । मध्यस्था मुनयश्चैव तिष्ठन्तु नर्मदातटे ॥

पश्चाद्ब्रह्म यास्यामि पुण्यञ्च नर्मदातटम् ।

गुरुस्तत् गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यातु शिवालये ॥ ५६ ॥

महेन्द्र उवाच ।

कथं वा वेदकर्तुं च सिद्धानां योगिनां गुरोः । मृतपुत्रपत्न्यशम्भोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः
मङ्गिरास्तपुत्रश्च सन् पुत्रश्च बृहस्पतिः । त्वसोहानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोःपितुः

ब्रह्मोवाच ।

कथेयमतिगुप्ता च पुराणेषु पुरन्दर । इमां पुरा प्रवृत्तिञ्च कथयामि निशामय ॥ ६२ ॥
मृतपत्न्या कर्मदोषाङ्गाप्याङ्गिरसः पुरा । व्रतं चकार साचैवं कृष्णस्य परमान्मनः ॥
व्रतं पुंसपनं नाम धर्ममेकं चकार सा । सनत्कुमारो भगवान् कारयामास तां व्रतम् ॥
तदागत्य च गोलोकात् परमात्मा कथामयः । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः ॥
सुव्रताभ्यसलक्ष्मीकां तामुवाच कृष्णानिधिः । प्रणतांसाधुनेत्राञ्च विनीताञ्चतयास्तुतः

गुरुनिन्दापशुनिन्दा गल्लग्नत्राणं शुभाऽपणा । गुरुनिन्दा हि साधुतो मानसनिन्दा
 वारार्थमात्रज्ञानानां समानां निन्दा न तथा । दूरीत्यमेवमगतां शङ्कप्रसक्तिनाम्नि ।
 गम्यमानकाः सन्तः पुण्यपलां हि मायते । शङ्कमूलमपुनराश्रयं प्रत्या म
 पुत्रं गमसि तोये न सपृष्टे न परावसे । पंगवो वा प्रतापे न प्रताभूमिनेषु
 यन्नेषु न युद्धे न स्थिताये न मग्नितः । प्रागते व्यपहारे न प्रायते हृदं नृजम्
 गाढम् योगाश्रयं नादृक् नैवाश्रयमूलम् । गाढम् योगाश्रयं नादृक् नैवाश्रयमूलम्
 इत्युक्तं न महादेवो विराम स्थितेति । समुद्राय महायका स्थितेति वृत्तम्
 गृहस्थमिदंवाच ।

अकारणमेव वृत्तान्ते कथयामि किमप्यर । लोकाः कर्मवर्षाभूतान्तरकर्म दहन्तं पुन
 स्थकर्मणां फलं भुङ्क्ते जन्तुजन्मनि जन्मनि । नहि नष्टजन्मकर्म विना भागावन्ता
 तुरं दुःखं मयं शोकं नराणां माने प्रमां । केचिद्वदन्ति मयं व्यहृतेन न कर्म
 केचिद्वदन्ति देवेन स्वमायेनेति केन । त्रिविधाश्च मना वेदे वेदवेदाङ्गपाता ॥ २॥
 स्वयञ्चकर्मजनकस्तन्कर्म देवकारणम् । स्वमायो जायतेनृणाम् स्वात्मनः पूर्वकर्म
 स्वकर्मणाञ्च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि । सुखं दुःखं मयं शोकं स्यात्प्रमत्तं प्रजन्त
 स्वकर्मफलभोक्ताञ्च जीर्वाहिसगुणः सदा । आत्मा भोजयितासाक्षी निर्गुणः प्रहरेण
 ॥ एवात्मा सर्वसेव्यः सर्वपाञ्च फलप्रदः । स च खड्गति दैवञ्च स्वमायं कर्म पर
 कर्मणाञ्च नृणां लज्जा प्रशंसा च प्रपुष्टता । लज्जावीजञ्च वृत्तान्ते तथापि कथयामि ।
 इत्युक्त्या सर्ववृत्तान्तमुपायं तं गृहस्थतिः । श्रुत्या बभूव नद्यास्योर्गोरीशो लज्जया
 जपमाला कराद् भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः । यभूव सयः कम्पश्च रक्तपङ्कजलोचन ।
 संहर्तुरीशो रक्तस्वविष्णोऽपानुसखाशिवः । सद्युःस्तुत्यश्चमान्यश्च स्वात्मनः परमात्मनः
 निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रहृतीशस्य नारद । कोपात् प्रवक्तुमारम्भे ॥ ३ ॥

शिव उवाच ।

अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदामलम् । श्रीकृष्णमन्त्रस्मरणं मनोनेर्मल्यकारणम् ॥
 भिद्यते हृदयग्रन्थिपिच्छते सर्वसंशयः । विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम् ॥
 ब्रह्मो श्रीकृष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः । हृतमार्पर्यमूर्च्छितञ्चन शशापरिपुंगुः
 गुरुर्यस्य धशिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः । हन्तारञ्च पुत्रशतं न शशापरिपुंमु निः ॥४२
 निभासेन सुरगुरोर्भ्रातुर्मम बृहस्पतेः । भस्मीभूतो निमेषेण शतवन्द्री भवेद् ध्रुवम् ॥
 तथापि तं न शशाप धर्ममङ्गमयेन च । तपस्या ह्रियते शम्भुः कोपाविष्टस्य नित्यशः ॥
 ब्रह्मो ह्यत्रैरसत्पुत्रः परस्त्रीलुब्धकः शठः । तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्यधर्मिणः ॥
 धर्मिष्ठाग्रहणः पुत्रावैष्णवाग्राहणास्तथा । केचिद्देवा द्विजादैरयाः परैश्चाश्च त्रिविधामताः

ये सात्त्विकाग्राहणास्ते देवा राजसिकास्तथा ।

दैत्यास्तामसिका रौद्रा वलिष्टाः चोद्धता मताः ॥४३॥

स्वधर्मनिरताधिप्रा नारायणपरायणाः । शैवाः शाक्ताश्च ते देवादैत्याः पूजाविधर्जिताः ॥

मुमुक्षवो विष्णुभक्ता ग्राहणा दास्यलिप्सवः ।

पेश्यर्प्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा ॥ ४६ ॥

ग्राहणानां स्वधर्मश्च कृष्णस्वाङ्ग्वनमीप्सितम् ।

निष्कामानां निर्गुणस्य परस्य ग्रहतेरपि ॥५०॥

ये ग्राहणावैष्णवाश्च स्वतन्त्राः परमपदम् । यान्त्यन्योपासकाश्चान्यैः सार्द्धञ्च प्राकृते लये ॥

घर्णानां ग्राहणाः श्रष्टाः साधवो वैष्णवावदि । विष्णुमन्त्रचिह्नेभ्यो द्विजैभ्यः श्वपचोदरः

परिपक्वा विपक्वा वा वैष्णवाः साधवश्च ते । सन्ततं पाति तांश्चैव विष्णुचक्रं सुदर्शनम्

यथा घटो शुष्कतृणं भस्मीभूतं भवेन् सदा । तथा पापं वैष्णवे पुष्पादानीय हुताशने ॥

। गुरुपञ्चत्रात् विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेक्ष्यति । तं वैष्णवं महापूतं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

। पुंसां शतं पितृणाञ्च शतं मातामहस्य च । स्वसोदराञ्च जननीमुदरन्त्येव वैष्णवाः ॥

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनम् ।

समुदरन्ति पुंसाञ्च वैष्णवाश्च शतं शतम् ॥५१॥

। मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यमस्तम्भान्महार्मीतो वैनतेयादियोरगः ॥५८

निष्पुनन्त्येव तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते ।

कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण चाकृषते ॥१६॥

पापानि पापिनां तीर्थे यावन्ति प्रभवन्ति च ।

नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥१७॥

कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः । सद्योमुक्तापातकेभ्यः कृत्स्ना पूता
वायुश्च पयनो घृहिः सूर्यः सर्वं पुनाति च । एते पूतावैष्णवतां स्पर्शमात्रे

अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम् ।

पते हृष्टाश्च चाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥१८॥

फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत् । न भवेत्तद्वैष्णवे च सिद्धधातये य
इति तेषां कर्म पूवं भक्तानां भक्तवत्सलः । कृपया स्वपदं तेभ्योददात्येव ह
तेजस्विनाश्च प्रभवं वैष्णवं भृगुनन्दनम् । स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रश्च शरण
सुदर्शनाद् बलिष्ठश्च शुक्रः जेतुं न शक्तिमान् । तथापिबोद्धरिण्यामितारामन्वण
भजसत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् । सुप्रसन्ने भगवत्पत्नीप्राप्त्यसिद्धि
मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्माद्यनिप्रश्नसर्वमङ्गलका
ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं नश्यत् जलविभवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानम्

तायद्भवेच्छा भोगेच्छा छीसुलेच्छा नृणामिह ॥१९॥

यायंदुर्गुणसुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः । सर्वप्राप्यदुर्लभमन्त्रं दितृष्णोहि भवे
इन्द्रत्वममरत्वश्च न हि चाञ्छन्ति वैष्णवाः । नहिचाञ्छन्तिमोक्षश्चदार्प्यमक्तिवि
भक्तिनिर्मञ्जन्भक्तो न करोति चमोक्षणम् । इदंमृत्युञ्जयत्वञ्चसर्वसिद्धिरधर्मास्तिस्र

पाप्सुसिद्धित्वञ्च ब्रह्मत्वं भक्तानां न हि चाञ्छितम् ।

मक्तिं विहाय कृष्णस्य विग्रहं यो हि चाञ्छति ॥२०॥

विग्रमस्ति सुधीः स्वतया यजितो विष्णुमायया ॥२१॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कबिलश्च कुमारश्च नरनारयणाश्च
श्यामभुयो मनुश्चैव ब्रह्माश्च पराशरः ॥२२॥

भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वशिष्ठः कतुरङ्गिराः । बलिश्च वाल्मिल्यश्च वरुणश्च हुताशनः ॥
वायुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम् । पतेर्पराभक्तवरा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
मे च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्वक्तिपरायणाः । इत्युत्तवाशङ्करस्तस्मै दक्षो कल्पतरुं मनुम् ॥
लक्ष्मीमायाकामवीजं देवतं कृष्णपदं मुने । परं पूजाविधानञ्चस्तोत्रञ्च कथयं मुने ॥
तत्पुराधरणं ध्याने सिद्धे मन्त्राकिनीतटे । गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शङ्कराच्च जगद्गुरोः ॥

विष्णो हि मवाग्यौ च बभूव तमुवाच ॥८२॥

बृहस्पतिश्वाच ।

भ्रातां कुरु जगन्नाथ यामि तन्तुं हरेस्तपः । तारा तिष्ठतु तत्रैव न तथा मे प्रयोजनम् ॥
पश्यामि विष्णुल्यञ्च सर्वं नभरामीश्वर । श्रीकृष्णशरणं यामि सत्यं नित्यञ्च निर्गुणम् ॥
श्रीमहादेव उवाच ।

पद्मस्तां हिरं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने । सम्भावितस्य दुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते ॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेव नर्मदातटम् । यत्र ब्रह्मादयो वैधास्तत्राहं यामि सख्यम् ॥
शिवस्य वचनं श्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम् । आचर्यो च महाभागः शङ्करो नर्मदातटम् ॥
सगणं शङ्करं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम् । प्रणेमुर्ध्वताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८८॥

ननाम शम्भुः शिरसा विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ।

दक्षो विष्णुर्महेशाय प्रेम्णा लिङ्गनमाश्रितम् ॥८९॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र व्याममथ बृहस्पतिः । प्रणनाम महादेवं विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ॥
सूर्यं धर्ममनन्तञ्च नरं माञ्च मुनीश्वरान् । स्वगुरुं पितरं भक्त्या चोपास तत्र संसदि ॥
सञ्चिन्त्य मनसा युक्तिमुवाच तत्र संसदि । स्वयं विष्णुश्च भगवान् ब्रह्माणं चन्द्रोत्तरम् ॥

विष्णुश्वाच ।

युवाञ्च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं त्वरा । शुक्रं पञ्चिष्यमाप्यस्थं प्रस्थापयितुमर्हसि ॥९३॥
चिप्रहंजैव विप्रमं भविष्यति न संशयः । मदाशिरा सुरगुरुन्तारां प्राप्स्यति निश्चितम् ॥
सुरैस्तु तश्च सन्तुष्टः शुक्राचार्यो भविष्यति । सुरैः शुक्रो नजितश्च कृष्णचक्रेण रक्षितः ॥
युधान्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युधयोः स्तवनेन च । श्वेतवर्डीपादमतोऽस्मि परित्यज्यते ॥

निःपुनस्त्येव मीमांसि मन्त्रादीनि न भागते ।

इत्यममप्रोपायकाश्च स्वर्गमात्रेण वाक्येन ॥११॥

पापानि पापिनी मीमे गावन्ति प्रमदन्ति न ।

मग्यन्ति तानि मर्द्याणि वैष्णवस्यर्गमात्रेण ॥१२॥

इत्यममप्रोपायकाश्च स्वर्गमात्रेण वाक्येन ॥११॥ पुनस्त्येव
पापुश्च पपनो पदिः मूर्त्यः सर्वं पुनानि न । एते पूतावैष्णवाः स्वर्गमात्रेण लीन

अहं ब्रह्मा न दोषश्च यमः सार्धं न कर्मणाम् ।

एते हृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवाः समागमम् ॥१३॥

फलं कामानुरूपेण सर्वेषां भागते भवेत् । न भवेत्तद्वैष्णवे न सिद्धिपान्थे यथाकुल
दन्ति तेषां कर्म पूर्य भक्तानां भक्तयस्तस्यः । कृपया स्वयम् नेभ्योद्दारायैव हृष्टानि
तेजस्विनाश्च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम् । ॥ चन्द्रो नृपं लो मीनः शुभश्च शरणं ययं
सुदर्शनाद्बु बलिष्ठश्च शुभः जेतुं न शक्तिमान् । तथापि चोदित्त्यामिनारांमन्त्रजयागुरं
भजस्तस्य परं ब्रह्म कृष्णमात्मनमोश्चरम् । सुप्रसन्ने भगवन्निपदोप्राप्तस्यसिन्धिलय
मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्मावनिप्रक्षस्यमद्वलकारण
ब्रह्मादिस्तम्बपद्व्यन्तं नश्वरं जलविम्बवन् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्व
ताद्यद्भवेच्छा भोगेच्छा लीसुमेच्छा नृणामिह ॥१४॥

यायंदुगुत्सुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः । संप्राप्यदुर्लभंमन्त्रं विदूषणोहि भवेन्न
इन्द्रत्वममरत्वञ्च न हि पाञ्छन्ति वैष्णवाः । नहिवाञ्छन्तिमोक्षञ्चदास्यंभक्तिविना
भक्तिनिर्मञ्छनंभक्तो न करोतिचमोक्षणम् । ज्ञानंमृत्युञ्जयत्वञ्चसर्वसिद्धित्वमीप्सितम्

वाक्सिद्धित्वञ्च ब्रह्मत्वं भक्तानां ॥ हि वाञ्छितम् ।

भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति ॥१५॥

विषमन्ति सुधां त्यक्त्वा घञ्जितो विष्णुमायया ॥१६॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणावृ
स्वाध्याभुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः ॥१६॥

भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वशिष्ठः कनुरङ्गिराः । बलिश्च वालविल्याश्च वरुणश्च हुताशनः ॥
 धातुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम् । एतेऽपरामर्शवरा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
 ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्वक्तिपरायणाः । इत्युत्तमाश्च द्वादशस्तस्मै देवो कल्पतर्हं मनुम् ॥
 लक्ष्मीमायाकामबीजं देवतं कृष्णपदं मुने । परं पूजाविधानञ्च स्तोत्रञ्च कथयं मुने ॥
 तत्पुरुश्चरणं ध्यानं सिद्धे मन्दाकिनीतटे । गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शङ्कराच्च जगद्गुरोः ॥
 विष्णुणो हि भवाग्धौ च बभूव तमुवाच ह ॥८॥

वृहस्पतिरुवाच ।

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तमुं हरेस्तपः । तारा तिष्ठतु तत्रैव न तथा मे प्रयोजनम् ॥
 पश्यामि विपतुल्यञ्च सयं नभवरमीश्वर । धीकृष्णं शरणं यामि सत्यं नित्यञ्च निर्गुणम् ॥
 श्रीमहादेव उवाच ।

परप्रस्तां ह्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने । सम्मादितस्य पुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते ॥
 पुरो गच्छ महाभाग तमेव नर्मदातटम् । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सरवरम् ॥
 शिवस्य घटनं ध्रुवा ययौ सुरगुरुः स्वयम् । आययौ च महाभागः शङ्करो नर्मदातटम् ॥
 सगर्णं शङ्करं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम् । प्रणेमुर्देयताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८८॥
 ननाम शम्भुः शिरसा विष्णुञ्च कमलोदयम् ।
 दर्शो विष्णुर्महेशाय प्रेम्णालिङ्गनमाशिरम् ॥८९॥

पतस्मिन्नन्तरे तत्र आगतश्च वृहस्पतिः । प्रणनाम महादेवं विष्णुञ्च कमलोदयम् ॥
 सूर्यं धर्ममनातञ्च नरं माञ्च मुनीश्वरान् । स्वगुहं पितरं भक्त्या बोधात् तत्र संसदि ॥
 सञ्चिन्त्य मनसा युक्तिमुवाच तत्र संसदि । स्वयं विष्णुश्च भगवान् ब्रह्माणं चन्द्रोत्तरम् ॥
 विष्णुर्वाच ।

युवाञ्च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं त्वरा । शुक्रं कञ्चिद्यमप्यस्यं प्रस्थापयितुमर्हसि ॥९३॥
 विप्रहेनैव विषमं भविष्यति न संशयः । मदाशिया ॥
 सुरैस्तु तच्च सन्तुष्टः शुक्राचार्यो ॥
 युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं

शुक्राश्रममसीपणं सर्वा गच्छन्तु देवताः ॥६६॥

रिपुर्वलिष्टः स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः । इत्युक्त्वा जगतां नाथ स्तत्रैवान्तरधीयत ।
स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः । गते च जगतां नाथे श्वेतदीपञ्च नारद ॥६७॥

चिन्तिताश्च सुराः सर्वे विषण्णमानसास्तथा ।

मुनीन् देवांश्च संबोध्य ब्रह्मा च तत्र संसदि ॥६८॥

उवाच नीतिसारङ्ग सप्तमतः शङ्करेण सः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच ।

ममशम्भोश्च विष्णोश्च धर्मस्य सर्वसाक्षिणः । अस्माकञ्च सप्तः स्नेहोदैत्येदेयेषु पुत्रका ।

दैत्यानाञ्च गुरौ शुभेः प्रपन्नधः निशाकरः । न जितश्च सुरैः शुक्रः पूजितो दितिनन्दनः ।

ताराहेतोर्हं यामि शुक्रस्य भयनं सुराः । सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशतः ।

इत्युक्त्वा जगतां धाता जगाम शुक्रसन्निधिम् । प्रययुर्देवता विप्राः समुद्रपुलिनं मुने ।

इति धीप्रज्ञवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिसर्गे नारायणनारदसंवादे तारोद्धारण-

प्रस्ताये षष्ठितमोऽध्यायः ।

एकषष्टितमोऽध्यायः

प्रक्षणः शुरुगृहे गमनम् ।

नारद उवाच ।

नमः परं किं ब्रह्मर्षे बभूवस्तु देवयोः । धीमान्मिच्छामि भगवन् परं ब्रह्मदत्तं मम ॥१॥
नारायण उवाच ।

ब्रह्मा जगाम नित्यं ब्रह्मस्य स महात्मनः । जानादैत्यगणार्काणां रक्षामन्दिभूतिनाम् ।

तस्यैव त्रयोविंशतिः शिष्यैः पराभिः प्रख्यातैः ।

सप्तभिः पतिभ्यश्चैव त्रिभिः पुत्रैश्च स ॥२॥

रक्षितं रक्षकगणेर्देत्यैश्च शतकोटिमिः ॥४॥

पद्मरागविरचितैः प्रार्च्यैः परिशोभितम् । ददर्श जगतां धाता सभायां भृगुनन्दनम्
स्तुतं मुनिगणेर्देत्ये रत्नसिंहासनस्थितम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम्
शतसूर्यप्रभं शश्वज्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः
मात्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रञ्च नारद । दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभुम्
उत्पाप सहसा भीतः प्रणनाम पुटोज्जलिः । प्रक्षाय पूजयामास बोधोच्चारणं पौत्रम्

तुष्टाय परया भक्त्या सम्प्रमेण यथागमम् ।

पितामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥१०॥

स्वकर्मणाञ्च कलद् सर्वेषां विश्वतो धरम् । शुक्रस्य स्तवनेनैव सन्तुष्टो जगतां
भयदह्यरधातूर्णमुयाच तत्र संसदि । शुकेण शिरसा दत्ते रत्नसिंहासने धरे ॥
तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्मिते विश्वकर्मणा । शुक्रः प्रणम्यब्रह्माणं कुमारं शकुन्धम्
परिशुञ्च मरीचञ्च सनन्दञ्च सनातनम् । कपिलञ्च पञ्चशिखं धोदुमद्विरसं मुने ॥
धर्मे माञ्च नरं भक्त्या प्रणनाम पुटोज्जलिः । प्रत्येकं पूजयामास सादरञ्च यथोचितम्
सिंहासनेषु रत्नेषु वासयामास धार्मिकः । ब्रह्मैवमनः सर्वं प्रणेमुर्दितिनन्दनाः ।
सृष्टिसंघाञ्च ब्रह्माणं तुष्टुञ्च यथागमम् । सर्वान् संस्तूय स कविरयाच सम्पुटान्

साधुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः ॥ १८ ॥

शुक्र उवाच ।

भय मे सफलं जन्मजीवितञ्च सुजीवितम् । स्वयं विधाता भगवान् साक्षाद् दृष्टः स्वम
साक्षाद् दृष्ट्वाञ्च तत्पुत्रा भगवन्तः सनातनाः । तुष्टः कृष्णोऽद्यमात्रं परमात्मा पर
हतायं कर्तुमीशानां मुष्माभिः स्वागतं शिशुम् । स्थालमारामेषु कुशलं प्रथमेव विदुः
पवित्रं कर्तुमीशानां हेतुरागमने तव । अपरं ब्रूहि किं चापि शाधि नः करयाम वि

ब्रह्मोवाच ।

उद्दिष्टाश्चिद्विच्छेदश्चैव पौत्रं ब्रह्ममागतः । विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिक्त
कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः । कुशलं ते स्वकर्माणं काम्यानां तपस

दिने विनेरिच्छिन्नं धीहृत्पार्श्वमस्मिन् । स्वगुणेः शेषवन्निष्कर्मनिच्छिन्नमो
 गुणिष्टयोः पृतनस्य सर्वमद्रूपकालम् । वागाभिगमगोकर्त्तुं गुणहर्षं प्रदुम्नम् ।
 भर्माष्टदेव गगणेषु गुरो गुरे गुणामिह । इष्टेदेव न सन्तुष्टे सन्तुष्टाः सर्वदेव
 गुणविप्रः तुरोग्यो मेधा वागजिनामिह । मेधाश्च तुरन्तं माम्नि विप्रमन्य गे व
 गुष्टश्च सागतं धम्म धीहृत्पार्श्वमस्मिन् । सर्वान्गगणमा भगवान्भव मनवा व नि
 तय गुष्टो गुष्टार्त्तं विधाना जगतामपि । मपि गुष्टे हरिस्तुष्टं हर्षं गुष्टे तु देवताः ।
 सागमनं भृशु ॥ हेतुं गमनस्य गुनीश्वर । प्रेमिन्मप्य गुगणाश्च विप्रमहर्षं देव वा
 शिष्यस्य गुगुपुत्रस्य साज्यी तारां गृह्यन्तेः । भगवन्म निजानागमनीय साजनन
 शम्भुर्धर्मश्च गूर्णश्चराकोऽनन्तश्चपुष्पः । भाद्रिया धमयोऽन्नादिकृपाणाधर्माश्च
 युदायापान्ति सन्नदास्तिस्रः कोट्यधश्चदेवताः । मागाः किमुगुणाश्च यक्षराक्षसगुण
 भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कृष्णान्डाश्चक्षराक्षसाः । किराताः खैयगन्धर्वाः समुद्रपुच्छिनेषु
 तारकामयसंप्रामे मध्यस्थोऽहं तुनेः सह । देहि तारां रत्नं किं वा त्यजचन्द्रश्च कानि
 शुक्र उवाच ।

भागच्छन्तु सुता सर्वे सन्नदा रणदुर्मदाः । योत्से विना महेशाश्च सर्वेषां गुर्वप
 दैत्या उचुः ।

उभयेषां गुरुः शम्भुर्मान्यो धन्यश्च सर्वदा । धर्मश्च साक्षी सर्वेषां त्वमेव वा पित
 मन्वाश्च तृणतुल्याश्च नहिमन्यामहेधयम् । भागच्छन्तु च योत्स्यामो यज्ञद्रुहिजगदु
 कृपया गुणपुत्रस्य यदायाति महेश्वरः । अमेनास्त्वं विधास्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्र
 प्रहोवाच ।

कालाग्रिच्छ्रः संहर्त्ता विश्वस्य वलितां वरः । हे यत्सास्तेन सार्द्धं च कोवायुद्धं करिष्य
 भद्रकाली जगन्माता सङ्गकर्षणधारिणी । तथा दुर्द्धर्षया सार्द्धं को वा युद्धं करिष्या
 सा सहस्रभुजा देवी शुण्डमाला विभूषणा । योजनाय तव कत्रा च दशयोजनविस्तृत
 सप्ततालप्रमाणश्च यस्या दन्ता भयानकाः । क्रोशप्रमाणजिह्वा च महालोला भयङ्कर
 रीद्राः सन्नदा मीमाः शङ्करकिङ्कराः । अतिमीमा मेरुषाश्च नन्दी च रणकर्त्रे

शेषस्य पार्यदाः सर्वे महाबलपराक्रमाः । वीरमद्रादयः सुराः शतसूर्यसमप्रभाः ॥४६॥
सहस्रमूर्जः शेषस्य फणैकदेशकोणतः । विभवं सर्वपतुल्यञ्च को वा योद्धा च तत्समः

कालाग्रिच्छः संहर्त्ता यस्य शम्भोश्च किङ्करोः ॥४७॥

शूलिनस्त्रिपुरास्य ज्वलतो ब्रह्मनेजसा । यस्यपाशुपतास्त्रेण दुर्निवार्येण पुत्रकाः ॥४८॥
भस्मीभूतं भवेद्विभवं दैत्यानाञ्चैव का कथा । यस्य शूलेन मित्रश्च शङ्खचूडः प्रतापवान्
सुशमा पार्यद्वरः कृष्णस्य परमात्मनः । त्रिकोटिसूर्यसदृशस्तेजस्वी परमाद्भुतः ॥४९॥
राधाकषचकण्ठाश्च सर्वदैत्यजनेभ्यः । मधुकैटभयोर्हन्ता हिरण्यकशिपोश्च यः ॥५०॥

स च विष्णुः समायाति ह्येतद्गोपात्स्वयं प्रभुः । इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च संसदि

प्रहस्योवाच प्रह्लादो दानवानामधीवरः ॥५१॥

प्रह्लाद उवाच ।

नमस्तुभ्यं जगद्धातः सर्वेषां प्राक्तनेश्वर । सर्वपूज्य सर्वनाथ किं वक्ष्यामि तवाग्रतः ॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता मधुकैटभयोश्च यः । स काला यस्य कृष्णस्य परिपूर्णतमस्य च ॥
सर्वान्तरात्मानन्तस्य चक्रे नाम सुदर्शनम् । भस्माकं लोकमस्मांश्च शम्भुद्रक्षतिदुःसहम्
सतो न बलवान् शम्भुर्न च पाशुपतं विधे । न च काली न शेषश्च न च रुद्रादयः सुराः
यस्य लोमसुचिरधानिनिखिलानिजगत्पते । सर्वाधारस्य च विभोः स्थूलात्स्थूलतरस्य च
पोद्गशांशो भगवतः स षवचमहान् विराट् । अनन्तो नहि तत्स्थूलो न कालीबृहतीततः
भागच्छन्तु सुराः सर्वे युद्धं कुर्यन्तु सामग्रतम् । न विभ्रेमि शत्रेभ्यश्च न च पाशुपतादुधरात्
नमस्तस्मै भगवते शिवाय शिवरूपिणे । नमोऽनन्ताय सायुष्यो वैष्णवेभ्यः प्रजापते ।
श्रीकृष्णस्य प्रसादेन निर्भयोऽहं निरामयः । न मे स्वात्मबलं दहंस्तदु बलं यन्ममोर्ध्वलम्
स्वपापेन मृतस्तातो पुरा वै विष्णुनिन्दया । निर्वन्धाच्छङ्खचूडश्च दपांश्च मधुकैटभी ॥
त्रिपुरः किङ्करोऽस्माकं वीरत्वेन न गण्यते । तथापि प्रेरितस्तेन स राक्षसो महेश्वरः ॥
इत्युक्त्वा दानपद्मेण विरराम च संसदि । उवाच जगतां धाता पुनरेव च नारद ॥६५॥

प्रहोवाच ।

यिनशकारणं युद्धमुपयोर्दैत्यदेवयोः । सुयीतावरणं धत्स सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ६६ ॥

तारां मिश्रां देहि मह्यं मिश्रुकाय च ब्रह्मणे । विमुचे मिश्रुके राजन् गृहस्थः सर्वपापमा
सनत्कुमार उवाच ।

स्वकीर्त्तिरक्षराजेन्द्र सिंहस्त्वं सुरदैत्ययोः । यस्य मिश्रुर्जगदाता तस्य कीर्त्तिश्चकार
सनात्तन उवाच ।

न जितस्त्वं सुरेन्द्रेष्ठ ब्रह्मेशानपुत्रो गमैः । रक्षितः कृष्णचक्रेण वैष्णवः पुण्यवान् शुचि
सनन्द उवाच ।

यस्येष्टदेवः सर्वार्त्तामा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । गुरुश्च वैष्णवः शुक्रः स च केन जितो महान्
सनक उवाच ।

पुण्यवान्न जितः केन जितः पापी स्वपातकैः । पुण्यदीपो न निर्याति पाषाण्डेनैव धातुन
अथय ऊचुः ।

देहि तारां महाभाग चन्द्रं प्राणाधिकं गुरोः । स्वकीर्त्तिं रक्ष सुचिरं प्रार्थयामः पुन पुन
प्रह्लाद उवाच ।

स्थिते मर्दाक्षरे साक्षाद्ब्रह्म भृत्यो विराजते । कर्त्तारं ब्रूहि मन्त्रार्थं गुरुं शुक्रं सतां वपु
शिष्याणामाधिपत्ये च साधूनां गुरुर्दक्षरः । गुरो समर्पितं पूज्यं सर्वैश्वर्यं मुनीश्वर ।
वयं भृत्याश्च पोष्याश्च स्वगुरोः परिचात्काः । ते च शिष्याः कुशालिनो गुह्याहां पात्मनो

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा चकार प्रार्थनां कथम् । .

ददौ शुक्रश्च तारां तां चन्द्रश्च मलिनं मुने ॥ ७६ ॥

दृष्ट्वा तारां विपुं शुक्रः प्रणनाम विधेः पदे । नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणतः स्य पुरं ययौ ।

प्रह्लादः स्य गणो मनया नमस्कृत्य विधेः पदे ॥ ७७ ॥

प्रत्येकश्च मुनिगणान् प्रणतः स्य गृहं ययौ । ब्रह्मा ददर्श ताराश्च प्रणतां स्य पदे तर्तन

लज्जया नम्रयक्त्राश्च रुदतीं गुर्विणीं मुने ॥ ७८ ॥

चन्द्रश्च प्रणतं घाता कोट्टे मन्त्राद्य मायया । उवाच मलिनां तारां कातराश्च लज्जय
तारे त्यक्त भयं प्राक्तमं किं न मयि म्रियते । सीमाप्ययुक्ता स्वपती मविष्यति घरेण मे
दपलावन्विता ब्रह्मानिष्कामा न च युता मयेन । प्रायश्चित्तेन दुःखासान्ध्री जारेण दुःखमि

कामतो जारं मज्जेतस्वमुत्तेनच । प्रायश्चित्ताग्रशुद्धासा स्वामिना परिपूजिता ॥
 के पचन्ते सा पापघण्टदिवक्त्रो । अथं विष्ठा जलं धूत्रं स्पर्शनं सर्वपापदम् ॥
 राधतस्याध साधुभिः परिपूजितम् । कस्यगमंवद् शुभे गच्छयत्सेगुरोर्गृहम् ॥
 ज्ञां महाभागो सर्वज्ञ प्राक्तनाद्भवेत् । प्रह्लादो ध्यानं धृत्वा समुवाच सतीतदा ॥
 गये हेतात थिममि देवयोगत । सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्यलायाः प्रजापते ॥
 त्वं चन्द्रोमां दयाहीनश्च दुर्मतिः । इत्युक्त्वा तारका देवी सुगाय फनकप्रभम् ॥
 मूर्तत्र ज्यलन्ते प्रह्लादेजसा । गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्वा प्रह्लादमीश्वरम् ।
 जगाम स स्वभयनं प्रह्ला सिन्धुतर्धं ययौ ॥८८॥
 साध्या ताराञ्च गुरवे देवेभ्योऽप्यमयं ददौ ॥ ८९ ॥
 अनुचर्माभ्यां प्रह्लादलोकं ययौ विधिः । देवा ययुः स्वमयनं स्वगृहञ्च गृहस्पतिः
 जनितां संग्राप्य हृष्टमानसः । तारकागमसंभूतः सय च पुत्रः स्वयम् ॥९१॥
 त्रुप्रहो प्रह्लाञ्चन्द्रस्य तनयो महान् । सपथ नन्दनपते चित्रा संग्राप्य निर्जने ॥
 त्रैलोक्यं कुपेरप्यच रैतसा । दृष्ट्वाच निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनम् ॥
 तन्स्त्राञ्च घालां द्वादशार्थिकीम् । गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राहविधोःसुतः
 । रहसि वीर्याधानं चकार सः । यभूय राजा चित्रायां चैत्रश्च मण्डलेश्वरः
 । पृथ्वीं प्रशास्ति धार्मिको पत्नी । शतनद्यो घुठानाञ्च दशो नद्यः शतानिव
 यो दुग्धानां मधुनयश्च पोडश । दश नद्यश्च तैलानां शर्करा लक्ष्मणयः ॥
 यस्तिकानां लहाराश्चानित्यराः । पञ्चकोटिययांमांसं सपूयं स्वाग्रमेवच ॥
 तिरासीमुज्जने प्राह्लाणा मुने । गणालक्षञ्च रत्नानां मणीनां लक्षमेव च ॥९२॥
 त्पानां लक्षञ्च सुकन्याससाम् । रत्नानां भूयणं पात्रप्रतीव सुमनोहरम् ॥
 ये राजा नित्यञ्च जीवनापधि । तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाधिरथ एव च ॥
 गुरयश्चकवत्तो वृहत्त्रय(च)वाः । महत्मानश्च संग्राप्य मेधसात्मुनिसत्तमात्
 ण्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भास्ते । शतकाले महापूजाञ्चकार ॥ सरित्ते ॥
 ॥ महान् भागिनमुनिसत्तम । राजाकलिङ्ग देशस्य चित्राश्च चित्रावरः ॥

तस्यपुत्रो महायोगी द्रुमिणो ज्ञानिनां परः । द्रुमिणो वैष्णवः प्रायः पुष्करे दुष्कर्तारः ॥
 वृत्त्यासमाधिं संप्रापन्नानिनां वैष्णवाग्रणीम् । पुत्रदारे निगमनात्ततोभाद् दुराग्रमि-
 स च कोटिसुवर्णञ्च नित्यं दत्त्वा जलं परी । मुक्तिं संप्रापमनेष्य विष्णुमार्गमनात्तनीम्
 राजालेभे मनुष्यञ्चराग्रं निष्कण्टकं मुने । उपाय मयूराचार्यं धाता त्रिजगतांभिः ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नागायननारद्व्यादे ब्रह्मविष्णवे दुर्योधन्याने
 एकविंशतमोऽध्यायः ।

द्विपष्टितमोऽध्यायः

राज्ञः सुरस्य वैश्यसमाधेयं विवरणम् ।

नारद उवाच ।

कथं राजा महाराजसंप्राप मुनिसत्तमात् । वैश्यो मुक्तिं मेघसाधनमे व्याख्यातुमर्हसि
 धीनारायण उवाच ।

ध्रुवस्यपुत्रो बलवान् नन्दिश्चकलवन्दनः । स्यापम्भुवमनोवंशः सत्यवादी जितेन्द्रियः
 भक्षोहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेव च । लोकाञ्च वेष्टयामास सुरस्यस्य महामतेः ॥
 युद्धं यभूय नियतं पूर्णमप्यञ्च नारद । चिरजीवी चेष्णवञ्च जिगाय सुरसं नृपः ॥ ४ ॥
 एकाकी सुरयो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः । निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं घनम् ॥
 ददर्श तत्र वैश्यञ्च पुष्पमद्रानर्दीकटे । तयोर्दभूष संप्रीतिः कृतवान्धवयोर्मुने ॥ ६ ॥
 वैश्येन साद्धं नृपतिर्जगाम मेघसाधनम् । पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रञ्च मारुते सताम् ॥
 ददर्श तत्र नृपतिर्मुनिं तं तीव्रनेत्रसम् । शिष्येभ्यश्च प्रबोचतं ब्रह्मत्त्वं सुदुर्लभम् ॥
 राजाननामवैश्यश्च शिरसामुनिपुङ्गवम् । मुनिगौप्यजयामास ददौ ताम्यां शुभाक्षिणम् ॥

द्विपष्ठितमोऽध्यायः] * राज्ञःसुरस्य वैश्यसमाधेः चिवरणम् *

सुरस्य उवाच ।

राजाऽहं सुरस्यो ब्रह्मंश्चैववंशं समुद्भवः । वहिर्मूतः स्वराज्याच्च नन्दिना वलिनाधुना
विमुपायंकरिष्यामि कथं राज्यंमवेन्मम । तन्मां ब्रूहि महामाग त्वय्येवशरणगतम्
अयं वैश्यः समाधिश्च स्वगृहाच्च वहिष्कृतः । पुत्रैः कलत्रैर्देवेन धनलोभेन धार्मिकः
ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने । निषिद्धमातः पुत्रैश्च कलत्रैर्वान्धवैरयम्
कोपाग्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेपितः शुचा । अयं गृहञ्चन ययौ विरक्तो ज्ञानयान् शुचिः ।
पुत्राश्च पितृशोकेनगृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम् । दत्त्वा धनानि विप्रेभ्योविरक्ताः सर्वकर्मसु

सुदुर्लभं हरेर्दास्यं वैश्यस्यास्य च याञ्छितम् ।

कथं प्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

श्रीमेधस उवाच ।

करोति मायताच्छुभं विष्णुमायादुरत्यया । निर्गुणस्य च कृष्णस्य त्रिगुणापि श्वमात्मया ॥
कृपां करोति येषां सा धर्मिणाश्च ह्यमयी । तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिसुदुर्लभाम् ॥
येषां मायाचिन्तामाया न करोति कृपां नृप । मायया तावन्नियन्धाति मोहजालेन तुरगताम् ॥
न भवरे नित्यसंसारे धमेण धर्यराः सदा । कुर्वन्ति नित्यबुद्धिश्च विहाय परमेश्वरम् ॥
दैवमन्यं निवेद्यन्ते तन्मन्त्रं जपन्ति च । मिथ्याकिञ्चिन्निमित्तं कृत्वा मनसिलोभतः
हरेः कलाः दैवताश्च निवेद्य जन्म सप्त च । तदा प्रकृत्याः कृपया सेवन्ते प्रकृतिं तदा
निवेद्य विष्णुमायाञ्च सप्तजन्म कृपामयीम् । शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने
ज्ञानाधिष्ठातृदेवञ्च निवेद्य शङ्करं हरेः । भविराद्विष्णुभक्तिञ्च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात्
सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विप्रयिणं तदा । सत्यज्ञानाद्यपश्यन्ति ज्ञानञ्च निर्मलं नराः
निवेद्य सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः । लभन्ते निर्गुणेभक्तिं धीरुष्णेप्रवृत्तेः परै
कुर्वन्ति प्रहणं सन्तो मन्त्रं तन्मन्त्रं निरामयम् । निवेद्य निर्गुणं देवं ते भवन्ति च निर्गुणाः
असंख्यब्रह्मणः पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः । दाम्भ्यं कुर्वन्ति सततं गोलोके च निरामये
कृष्णभक्तात् कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तमः । पुरुषाणां सहस्रञ्च स्य पितृणां समुदरेत्
मातामहानां पुरयं सहस्रं मातरं तथा । दासादिकं समुद्रदृष्ट्य गोलोकं स प्रयाति च ॥

मयाण्ये महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी । पारं करोति दुर्गातान्कृष्णमनसा च मौक्त्य-
 स्यकर्मयन्त्रनं सेतुं घैष्णयानाञ्च घैष्णयी । तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपासाकृष्णम्यपारमात्मन-
 यियेयनायापरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप । पूर्य ददाति भक्त्या चेतसा परां परा ॥३॥
 सत्यस्वरूपः धीरुष्णस्तस्मात् सर्वञ्च नश्यत् । बुद्धिर्धियेननेत्यर्थं घैष्णयानांसनातन-
 नित्यरूपा मयेयं धीरिति चापरणी च धीः । अघैष्णयानामसतां कर्ममोगमुजामहो
 अहं प्रचेतसः पुत्रः पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप । भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शङ्करात्
 गच्छ राजन् नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम् ।

बुद्धिमापरणीं तुभ्यं देवी दास्यति कामिने ॥ ३८ ॥

निष्कामाय च वैश्याय घैष्णवाय च घैष्णयी । बुद्धिं यियेचनां शुद्धां दास्यत्येककृपामयी
 इत्युक्त्वा च मुनिघ्रेष्ठोददौताभ्यां कृपानिधिः । पूजाविधानं दुर्गायाः स्तोत्रञ्च कथय च मनुम-
 वैश्यो मुक्तिञ्च संप्रापतां निवेद्य कृपामयीम् । राजा राज्ञं मनुष्यञ्च परमैश्वर्यमीप्सितम्
 इत्येषं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारसंवादे दुर्गोपाख्याने
 सुरथमेघसंवादे द्विपष्ठितमोऽध्यायः ।

त्रिपष्ठितमोऽध्यायः

सुरथसमाधिमेघसंवादे प्रकृतिवैश्वसंवादः

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग घद वेदविदांबर । राजा केन प्रकारेण सिपेये प्रकृतिं पराम् ॥ १ ॥

निष्कामं निर्गुणं विभुम् । भजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः ॥ २ ॥

पूजाविधानञ्च ध्यानं वा मनुमेव च । किं स्तोत्रं कथयं किं वा ददौ राज्ञेमहामुनिः

त्रिप्रष्टितमोऽध्यायः]

• प्रकृतिवैश्वसंवादकथनम् •

ज्ञानं सम्प्राप्य वैश्यश्च किं पदं प्रापदुर्लभम् । गतिर्वभूव राज्ञश्च का वा ताञ्च शृणोम्य
धीनारायण उवाच ।

राजा मन्त्रञ्चसंप्राप्य वैश्यश्च मेघसान् मुने । स्तोत्रञ्च क्वचनं देव्या ध्यानञ्चैव पुरस्कृत्य
जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे ॥ ६ ॥

स्नात्वा त्रिकालं धर्षञ्च ततः शुद्धो यभूव सः । साक्षाद् यभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरीश्व
राज्ञे ददौ राज्यवरं मनुत्वं वाञ्छितं सुखम् । ज्ञानं निगूढं वैश्याय ददौ चातिसुदुर्लभं
यदुत्तं शूलिने पूर्णं कृष्णेन परमात्मना । निराहारमतिरुष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी ॥ ७ ॥
ररोद कृत्वा क्रोद्धे तमचेष्टं श्यासवर्जितम् । केनां कुद भो वन्सेत्युच्चार्य च पुनः पुनः
चेननाञ्च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी । संप्राप्य चेतनां वैश्यो ररोद् प्रकृतेः पुरः ।
तमुवाच प्रसन्ना सा कृपयाऽतिरूपामयी ॥ १२ ॥

धीप्रकृतिस्त्वाच ।

वरं वृणुष्व ॥ यत्स यत्ते मनसि धर्षते । ब्रह्मत्यममरत्वं वा ततो वाऽति सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥
इन्द्राय वा मनुत्वं वा सर्वसिद्धिपमेव च । मुच्यं तुभ्यं न दास्यामि तत्परं बालवञ्चनम्
वैश्य उवाच ।

ब्रह्मत्यममरत्वं वा मातर्मे न हि वाञ्छितम् । ततोऽतिदुर्लभं किं वा न जानेतद्भीषितम्
तद्यत्तैव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव । अन्नवरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि ॥ १६ ॥
प्रकृतिस्त्वाच ।

अद्वेपं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामिमयाञ्छितम् । यतो यास्यसि गोलोकं पदमेव सुदुर्लभम्
सर्वसारञ्च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम् । तद्गृह्णतां महाभाग गच्छ घरस हरेः पदम्
स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम् । भवणं भावनं सेवा सर्वं कृष्णे निवेदितम् ॥
एतदेव वैष्णवानां नवधामतिलक्षणम् । जन्ममृत्युजराव्याधियमताडनखण्डनम् ॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव हि सन्ततम् । नवधामचिद्दीनानामसतां पापिनामपि ॥
भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः । जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिधर्जिताः
शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान् विराट् । सनत्कुमारः कपिलः सनकश्च सनन्दनः

गेढुः पञ्चशिखो दसो नारदश्च सनातनः । भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः
 रेधसो लोमशः शुक्रो वशिष्ठः क्रतुरेव च । बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः ॥
 शर्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः । यमः सूर्यश्च धरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः ।
 मङ्गुपार उलूकश्च नाडीजङ्गश्च वायुजः । नरनारायणो कूर्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः ॥२७॥
 तथैवा भक्तियुक्तश्च कृष्णस्य परमात्मनः । एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रपरास्तथा ।

ये सङ्गतास्ते तद्गता जीवन्मुक्ताश्च सन्ततम् ।

पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशाम्पते ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वं च सप्त स्थर्गाश्चसप्तद्वीपाचसुन्धरा । मधः सप्तः च पाताला एतदुग्रह्माण्डमेव च
 पदं विधानां विद्यानां संख्यानास्त्येव पुत्रक । एवञ्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः

देवा देवर्षयश्चैव मनयो मानवादयः ।

सर्पाधमाश्च सर्पत्र सन्ति यक्षाश्च मायया ॥ ३२ ॥

महद्विष्णोर्लोमङ्गुपे सन्ति विद्यानि यस्य च ।

स षोडशांशः कृष्णस्य नारयणश्च महान् विराट् ॥३३॥

भक्त सत्यं परं ब्रह्म निर्व्यं निर्गुणमच्युतम् । प्रवृत्तेः परमीशानंकृष्णमात्मानमीप्सितम् ॥

निरीदश्च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ।

निष्कामं निर्विरोधश्च निर्व्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥

स्वेच्छामयं सर्वकर्म भक्तानुग्रहप्रियम् । मेतःस्वकर्म परमं दातारं सर्वसम्पदम् ॥३६॥

ध्यातामाध्यातृद्वाराध्यागिषादीनाञ्च योगिनाम् । सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वस्य सर्वकामदम् ॥

सर्वाधारश्च सर्वत्र सर्वानन्दकरं परम् । सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वत्र प्राणरूपिणम् ॥३८॥

सर्वधर्मम्यङ्गश्च सर्वकारणकारणम् । गुणदं मोक्षदं सारं परकृपश्च भक्तिदम् ॥३९॥

दातारं धर्मदक्षं सर्वमिन्द्रियं व्रतम् । सर्वं तद्विरिक्तश्च सर्वत्र कृत्रिमा राक्ष ॥४०॥

परान्तरात् शब्दं परिपूर्णं विराट् । यथातुल्यं गरुडं यथा भगवन्मध्योक्षतम् ॥४१॥

कृष्णेति ह्यनारं मन्त्रं ब्रह्मण कृष्णदाकृपदम् । पुष्करं दुष्करं नान्धाक्षराक्षमिमं जग ॥

चतुःपष्टितमोऽध्यायः]

* रात्रिः सुरथस्य दुर्गापूजनम् *

वैश्यो नत्वा च तां भक्त्या जगाम पुष्करं मुने । पुष्करे दुस्तरं तत्त्वा संप्राप कृष्णमीश्वरम् ।
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने
सुरथसमाधिमेघसंवादे प्रकृतिवैश्यसंवादकथनं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः ।

चतुःपष्टितमोऽध्यायः

रात्रिः सुरथस्य दुर्गापूजनम् ।

नारायण उवाच ।

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम् । तच्छ्रूयतां महामागं वेदोक्तं क्रममेव च ॥
स्नात्वाऽऽचम्य महाराजः कृत्या न्यासत्रयं तदा । स्वकराङ्गमन्त्राणां भूतशुद्धिचकारस्तः ।
प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च शङ्खशोधनम् ।
ध्यात्वा देवीञ्च मृण्मण्यां चकारावाहनं तदा ॥३॥
पुनर्ध्यात्वा च भक्त्या च पूजयामास भक्तिः ।
देव्याञ्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम् ॥४॥
संपूज्य भक्तिभाषेन भक्त्या परमधार्मिकः । देवपदं समायाह देव्याश्च पुरतो घटे ॥५॥
भक्त्या च पूजयामास विधिपूर्वञ्च नारद । गणेशञ्च दिनेशञ्च बहि विष्णुं शिवं शिवाम् ॥
देवपदं च संपूज्य नमस्कृत्य विचक्षणः । तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्तिः ॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं परं कथ्यतहं मुने । ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिमीदृशाम् ॥६॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां धन्यां स्नातनीम् ।
नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम् ॥७॥
सर्वस्वरूपां सर्वेषां सर्वाधारं परात्पराम् । सर्वपिशासं मन्त्रसर्पं राक्षस्यरूपिणीम् ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः] • राज्ञ-सुरण्यस्य दुर्गापूजनम् •

संहारकाले संहर्तुः परां संहाररूपिणीम् । निशुम्भशुम्भमथिनीं महिषासुरमर्दिनीम्
पुरा त्रिपुरयुद्धे च संस्तुतां त्रिपुरारिणा । मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम्
सर्वदैव्य निहन्वीञ्च रक्तवीजविनाशिनीम् । नृसिंहशक्तिरूपाञ्च हिरण्यकशिपोर्वधे
घराहशक्तिं घाराहे हिरण्यशक्वधे तथा । परब्रह्मस्वरूपाञ्च सर्वशक्तिः सदा भजे ॥३॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः ।

पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्याद्वाचाहनन्ततः ॥३२॥

प्रकृतेः प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेवं पठेन्नरः । जीघन्यासं ततः कुर्यात् मनुमानेनयन्ततः
एषोहि भगवत्पद्म शिवलोकात् सनातनि । गृहाण मम पूजाञ्च शारदीयां सुरैष्वरि ।
इहागच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि । हे मातरस्यामर्चायांसनिरुद्धाभवाच्चिके ।
इहागच्छन्तु रघुः प्राणाश्चाधःप्राणैः सहाच्युते । इहागच्छन्तु त्वरितं तथैवसर्वशक्तयः
भौं ह्रीं श्रीं क्लीं षडुर्गावैषद्विजायान्तमेव च । समुच्चाप्यो रसिप्राणाः सन्तिष्ठन्तु सदाशिवे ॥
सर्वेन्द्रियाधिदेवास्ते इहागच्छन्तु चण्डिके । इहागच्छन्तु तेशतपद्मागच्छन्तु रश्मिराः ॥
स इहागच्छेत्प्राणाश्च परिहारं करोति च । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्रतच्छृणुष्व समाहितः ॥
स्यागतं भगवत्पद्म शिवलोकाच्छिवप्रिये । प्रसादं कुरुमानन्देभद्रकालि नमोऽस्तुते ॥
धन्योऽहं कृत्यकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । भागतासियतो दुर्गे माहेश्वरि मङ्गलयम् ॥

अथ मे सफलं जन्म सार्धकं जीवनं मम ।

पूजयामि यतो दुर्गा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥३२॥

भारते भयतीं पूज्यां दुर्गां यः पूजयेदुबुधः । सोऽन्तेयातिचनोलोकं परमैश्वर्यवानिह
हृत्पाचवैष्णवीपूजाविष्णुलोकं प्रजेतसुधीः । माहेश्वरीञ्चसंपूज्यशिवलोकञ्चगच्छति ॥
सारिचकी राजसीचैवत्रिधापूजाचतामसी । भगवत्याश्चवेदोक्तचोत्तमामध्यमाधमा ॥
सारिचकीवैष्णवानाञ्चशाक्तादीनाञ्चराजसी । अदीक्षितानामसतामन्यानांतामसी स्मृता
जीवहत्याधिहीनायाघरापूजाचवैष्णवी । वैष्णवा यान्ति गोलोकं वैष्णवीवरदानतः ॥
माहेश्वरी राजसी च बलिदानसमन्विता । शाक्तादयो राजसाश्चकैलासं यान्ति ते तथा ॥
किराता नरकं यान्ति सामस्या पूजया तथा । त्वमेव जगतां मातश्चतुर्वर्गफलप्रदा ॥३६॥

सर्वशक्तिव्यवसायः कृष्णस्य परमात्मनः । जन्ममृत्युजराश्रयाधिहता ग्यञ्जगत्परा ॥
 सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णमणिप्रदा सदा । नागायणि महामाये दुर्गे दुर्गनिवासिनि ॥
 दुर्गेति स्मृतिमात्रेण याति दुर्गे मृणामिद । इति कृत्या पण्डितं देव्यायामे च साधकः
 त्रिपदा उपरिष्ठात् कृत्यांश्च शङ्करक्षेत्रम् । तत्र दद्यात् जलं पूजं दूपां पुष्पञ्च चन्दनम् ॥
 भूत्या दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः ।

पुण्यस्त्वयं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । प्रभवः शङ्खचूडालयं पुराकले पवित्रकः
 ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनानेन पण्डितः । दद्यात् संपूजयेद्देव्यामुदयाराणि गोदश
 त्रिफोणमण्डलं कृत्वा सज्जलेन कुशेन च । कूर्मं शेषं घटिर्धाम्भ्यं संपूज्य तत्र धार्मिकः
 त्रिपदि स्थापयेत्तत्र त्रिपदां शङ्खमेव च । शङ्खं त्रिमागतोयञ्च दद्यात् संपूजयेत्ततः ॥१३॥
 गङ्गे च यमुने चैव गोदाधरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरी चन्द्रमागे च कौशिकि
 स्वर्णरेखे कनकले पारिमद्रे च गण्डकि । श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पद्मे धाम्ने च गोमति ॥१४॥
 पद्माधरि त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे । शतक्रेन्द्रे खेलगङ्गे जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
 वह्निं सूर्यञ्च चन्द्रञ्च विष्णुञ्च परुणं शिवम् । पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च ।
 नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च ॥१५॥

ततो दद्याच्च प्रत्येकमुपचाराणि गोदश । आसनं घसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम् ॥१६॥
 मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम् । पुनराचमनीयञ्च ताम्बूलं रत्नभूषणम् ॥१७॥
 धूपं प्रदीपं तल्पञ्चेत्युपचाराणि गोदश ॥ १८ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणं नानाचित्रविराजितम् । परं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शङ्करप्रिये ॥ १९ ॥
 अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम् । ज्वलदग्निविगुह्यञ्च घसनं गृह्यतां शिवे ॥२०॥
 अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम् । पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे पाद्यं प्रगृह्यताम् ॥२१॥
 सुगन्धामलकी स्तिग्धद्रवमेव सुदुर्लभम् । सुपर्कं विष्णुतैलञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥२२॥
 चास्तरी कुङ्कुमाक्षञ्च सुगन्धि चन्दनद्रवम् । सुवासितं जगन्मातृगृह्यतामनुलेपनम् ॥२३॥
 सुपवित्रं सुमङ्गलम् । मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्
 सुपवित्रं मङ्गलाहं देवि गन्धं गृह्णाण मे ॥२४॥

पवित्रशङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् । स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे ।
सुगन्धिपुष्पधेञ्च पारिजाततरुद्रवम् । मालत्यादिपुष्पमाल्यं गृह्यतां जगदम्बिके ॥

दिव्यं सिद्धान्तमाम्बान्नं पिष्टकं पायसादिकम् ।

मिष्टान्नं लङ्घुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे ॥ ७४ ॥

सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके ॥

गुदाकपर्णचूर्णञ्च कर्पूरादि सुवासितम् । सर्वभोगहरं रम्यं ताम्बूलं देधि गृह्यताम् ॥ ७५ ॥

मत्स्यमूल्यरत्नसारनिर्माणमीश्वरेच्छया । सर्पाङ्गशोभनकरं भूषणं देधि गृह्यताम् ॥ ७६ ॥

तदनिर्घ्वासचूर्णञ्च गन्धयस्तुसमन्वितम् । हुताशनशिखाशुद्धं धूपञ्च देधि गृह्यताम् ॥ ७७ ॥

दिव्यरत्नविशेषञ्च सान्द्रध्याननिराहृतम् । सुपवित्रं प्रदीपञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥ ७८ ॥

रत्नसारविनिर्माणं दिव्यं पर्व्यङ्कुसुमम् । सूक्ष्मवस्त्रसमाकीर्णं देधि तत्त्वं प्रगृह्यताम् ॥

एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं मुने । ततोऽष्टनायिकां देव्या यत्नतः परिपूजयेत् ॥

उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोष्मां चण्डनायिकाम् ।

भतिचण्डाञ्च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा ॥ ८२ ॥

पद्मे बाणदले चैताः प्राणादिभक्तस्तथा । पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवमभ्यर्च्यतः ॥ ८३ ॥

भादी महामैरवञ्च संहारभैरवं तथा । भसिताङ्गभैरवञ्च दशभैरवमेव च ॥ ८४ ॥

ततः कालभैरवञ्च क्रोधभैरवमेव च । ताम्रचूर्णं चन्द्रचूर्णमते च भैरवद्वयम् ॥ ८५ ॥

एतान् संपूज्य मध्ये च नवशर्काश्च पूजयेत् । तत्र पद्मे बाणदले मध्ये च भक्तिपूर्वकम् ॥

वैष्णवाञ्चैव ब्रह्मणीरीद्राभादेवरी तथा । नारसिंहीञ्च वाराहीमिन्द्राणीकार्तिकीतथा ॥

सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रधानां सर्वमङ्गलाम् । नवशर्काश्च संपूज्य घटे देवाश्च पूजयेत् ॥

शङ्करं कार्तिकेयञ्च सूर्यं सोमं हुताशनम् । वायुञ्च वरुणञ्चैव देव्याभेदीं वटुन्तथा ॥

चतुःषष्ट्योगिनीञ्च संपूज्य विधिपूर्वकम् । यद्यमात्रि कलिदत्ता करोति स्तनयन्तुषः ॥

कपलञ्च गले वटुध्या पटञ्चा भक्तिपूर्वकम् । ततः हरवापरीहारममरकुर्व्याद्विचक्षणः ॥

कलिदानं वधानञ्च धूयतां मुनिसत्तम । मायाति महिं छानं दद्यान्मेवादिक् शुभम् ॥

सहस्रपदं सुप्रता दुर्गामायाति दानतः । महिषेण चन्दनं दत्त्वाञ्च छागलात् ॥ ९३ ॥

त्वं मेवेण कृष्माण्डैः पक्षिमिहंरिणैस्तथा । दशवपे कृष्णसारैः सहस्राब्दञ्च गण्डकैः ।
 त्रिमेः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुमिस्तथा । मासं सुषकादिफलैर्यतैरिति नारद ॥
 युवकं व्याधिहीनञ्च सशृङ्गं लक्षणाञ्चितम् । विशुद्धमविकाराङ्गं सुषणं पुष्टमेव च ॥
 शेषशुना बलिना दानुहन्ति पुत्रञ्च चण्डिका । वृद्धेनैव गुरुजनं वृशेण बान्धवस्तथा ॥
 यतश्चोषाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्रजान्तथा । कामिनीं शृङ्गमङ्गेन काणेन भ्रातरन्तथा ॥८८॥
 युक्तिकेन भवेन्मृत्युर्विग्रहश्च चित्रमस्तकैः । हतं मिथं ताम्रपिष्टैर्ग्रन्थीः पुच्छहीनतः ॥८९॥
 सायातीनाञ्च निर्णेतं श्रूयतां मुनिसत्तम । पश्याम्यगर्ववेदोकं फलहानिर्घृतिप्रमे ॥
 पेतुमाहृषिहीनञ्च युवकं व्याधिपर्जितम् । विद्याहितं दीक्षितञ्च परदारहिहीनकम् ॥
 यज्जराजं पिशुञ्च सख्युद्धं मूलकं वरम् । सङ्गयन्पुत्रयो धनं दत्त्वा क्रीतं मृत्यातिरेकतः
 ज्ञापयित्वाच तं धर्मो संपूज्य परप्रचन्दनैः । मातृभूषैश्च सिन्दूरैर्ध्वजिगोरोचनादिभिः
 यञ्च यत्नं भ्रामयित्वा वरद्वारेण यत्नतः । वर्षान्तेच समुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत् ॥
 त्रैलोक्यमीतमीतन्वी दयान्मायातिमेव च । इत्येवं कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गतः ॥

वर्ति इत्याह स्तुत्या च धृत्या च कथयं युधः ।

प्रणम्य दण्डयद् भूमौ दयादिप्राय दक्षिणाम् ॥ १०६ ॥

इति भाग्यप्रवर्त महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गापाख्याने
 चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

दुर्गापाख्याने शानकथनम् ।

भाग्य उवाच ।

शूनं सर्वं महाभाग सुधारकं वरम् । स्तोत्रञ्च कथयं पूजायै कामं यत् प्रभो ॥१॥

भाग्य उवाच ।

ॐ नमोऽस्तुते त्वेति मूढेनैव प्रवेक्षयेत् । उपरेणार्चनं हृत्वा ध्वजपादा विराजयेत् ॥२॥

आर्द्रायुक्तनवम्यान्तु कृत्वा देव्याश्च बोधनम् ।

पूजायाः शतवार्षिक्याः फलमाप्नोति मानवः ॥ ३ ॥

सूलापान्तु प्रवेशे च नरमेधफलं लभेत् । उत्तरे पूजनं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ ४ ॥

कृत्वा विसर्जनं देव्याः श्रवणायाश्च मानवः । लक्ष्मीञ्च पुत्रपौत्राणां लभते नाशसंशयः ।

भुवः प्रदक्षिणं पुण्यं पूजायां लभते नरः । नक्षत्रहीने वर्षे चेत् पार्वत्याश्चैव नारद ॥ ६ ॥

नवम्यां बोधनं कृत्वा पक्षं संपूज्यमानवः । मध्वमेधफलं लब्ध्वा दशम्याञ्च विसर्जयेत् ।

सप्तम्यां पूजनं कृत्वा बलिं दद्याद्विषक्षणः । अष्टम्यां पूजनं शस्तं बलिदानविघर्जितम् ॥

अष्टम्यां बलिदानेन विपत्तिर्जायते नृणाम् । दद्याद्विषक्षणो भक्त्यानयम्यां विधियद्बलिम् ।

बलिदानेन विपेन्द्र दुर्गाप्नोतिर्भयेनृणाम् । हिंसाजन्यञ्च पापञ्च लभते नाशसंशयः ॥ १० ॥

उत्सर्गकर्ता दाता च छेत्ता पोष्टा च रक्षकः । मत्प्रपञ्चाज्जियदा च सत्तैत वधभागिनः ॥

यो यं हन्ति सतंहन्ति चेति वेदोक्तमेव च । कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजां वैष्णवास्तेन हेतुना

एवं संपूज्य सुरुथः पूर्णं धर्मञ्च भक्तिः । कवचञ्च गले यद्बध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥

स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षादुयभूषह । स दर्शं पुरो देवीं श्रीम्सूर्य्यसमप्रभाम् ॥

तेजःस्वरूपां परमां सगुणां निर्गुणां वराम् । दृष्ट्वा तां कमनीयाञ्च तेजोमण्डलमध्यतः ॥

स्वेच्छामयीं कृपारूपां भक्तानुग्रहफातराम् । पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिमन्नात्मकन्धरः ॥

स्तवेन परितुष्टा सा सस्मिता भक्तिपूर्वकम् । उवाच सत्यं राजेन्द्रं कृपया जगदम्बिका ॥

प्रकृतिरुवाच ।

साक्षात् संप्राप्य मां राजन् वृणोषि विभवं धरम् ।

द्वामि तुभ्यं विभवं साम्प्रतं घाञ्छितं तव ॥ १८ ॥

निर्जित्यसर्वान् शत्रून्श्च लभ राज्यमकण्टकम् । भविष्यसि महाराज सावर्णिगष्टमोमनुः

दास्यामि तुभ्यं ज्ञानञ्च परिणामे नराधिप । भक्तिं दास्यञ्च पश्ये श्रीरूपे परमात्मनि ॥

वृणोति विभवं यो हि साक्षान्मां प्राप्य मन्दधोः ।

मायया घञ्छितः सोऽपि विषमत्यमृतं त्यजेत् ॥ २१ ॥

ग्रहादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्यमेव च । नित्यं सत्यं परं ब्रह्म कृष्णं निर्गुणमेव च ॥

विष्णुशिवादीनां महमाद्यापरात्परा । सगुणानिर्गुणा चापि परा स्वेच्छामयीसदा ॥
 त्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणा । तीक्ष्णरूपा च सर्वेषां मूलप्राकृतिरीश्वरी ॥२४॥
 ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । राधा प्राणाधिकाहञ्च कृष्णस्य परमात्मनः
 हं दुर्गा विष्णुमाया बुद्धयधिष्ठातृदेवता । अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती ॥
 चित्रा वेदमाताऽहं ब्रह्माणी ब्रह्मलोकतः । अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधारा घृतान्धरा
 नाधिधाहं फलया मायया सर्वयोषितः । साहं कृष्णेन खट्वाच भूमङ्गलीलया नृप ॥
 भूमङ्गलीलया खटो येन पुंसा महान् विराट् ।

यस्य लोभाञ्च कृपेपु विश्वानि सन्ति नित्यशः ॥२६॥

संख्यानिच तान्येवकृत्रिमाणिव मायया । अनित्येषुनित्यबुद्धिं सर्वे कुर्वन्ति सततम्
 ससागरसंयुक्ता सतदीपा घृतान्धरा । तदधः समपातालाः स्वर्लोकाश्चैव सत ॥
 विश्वञ्च निर्माणं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । प्रत्येकं सर्वब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
 र्वपामीश्वरः कृष्ण इति ज्ञानं परात्परम् । वेदानाञ्च यतानाञ्च तीर्थानां तपसां तथा ॥
 तानाञ्चैव पुण्यानां सारकृष्ण इति स्मृतः । तद्वक्तिहीनो यो मूढः सद्यजीवन्मृतोऽधुवम्
 येन्नापि च तीर्थानि तद्वक्तव्यं शंकायुता । तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मुक्त इति स्मृतः ॥
 ब्रह्मदणमात्रेण नरो नारायणे भवेत् । विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया ॥
 तामहानां ज्ञानकं पित्राञ्च सहस्रकम् । पुंसामेवं समुद्धृत्य गोलोकं स च गच्छति ॥
 ज्ञानं सारभूतं कथितं ते नराधिप । मन्यन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामि ते हरी ॥
 भुक्तं क्षायते कर्म कलरुकोटिशतैरपि । अथशमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्मलाम् ।

निश्चयं सुदृढां भक्तिं धौर्गुणे परमात्मनि ॥ ४० ॥

रोमि पञ्चानां यंयं तैर्भ्यो दास्यामि सम्पदम् । ज्ञानस्वप्नव्यक्पञ्चमिष्येति तन्मरुपिणीम्
 ते ते कथितं ज्ञानं गच्छतस्त यथाशुभम् । इत्युनयाच महादेवी तत्रैधान्तरधीयत ॥
 सा संप्राप्य रागञ्च नन्वा तां प्रययौ गृहम् । इति कथितं वत्स दुर्गापाण्ड्यानुत्तमम्
 इति धीश्रवणैव स महापुण्ये प्रकृतिखण्डे नारायणनादसंवादे दुर्गापाण्ड्याने
 प्रकृतिपुरवसंवादे ज्ञानकथनं नाम पञ्चवष्टितमोऽध्यायः ।

पट्पष्टितमोऽध्यायः श्रीकृष्णकृतदुर्गास्तोत्रम् ।

नारद उवाच ।

ध्रुतं सद्यं नापशिष्टं किञ्चिदेव हि निश्चितम् । प्रहृतेः कथञ्च स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तमा ।
नारायण उवाच ।

पुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना । संपूज्य मधुमासे च प्रीतेन रासमण्डले ।
मधुकैटभयोयुद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा ॥ २ ॥

त्रैलोक्ये काले सा दुर्गा प्रह्वणा प्राणसंकटे । चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्याच त्रिपुरारिणा ।
त्रिपुरयुद्धेन महाघोरतरे मुने । पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा ॥ ४ ॥
क्रौञ्च सर्वदेवेश्वर्ये च प्राणसङ्कटे । त्वा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरधादिभिः ॥ ५ ॥
स्तुता पूजिता सा च कल्पेकल्पे परात्परा । स्तोत्रञ्च भूयतां ग्रहान् सर्वविघ्नविनाशनम् ॥

सुखदं मोक्षदं सारं भवाग्निधारकारणम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मेघ सर्वजननी मूलप्रकृतिपिण्डी । त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्येच्छया त्रिगुणात्मिका ।
काव्यार्थं सगुणा त्वञ्च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।

परमह्यस्वरूपा त्वं सत्त्वा नित्या सनातनी ॥ ८ ॥

तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुहविग्रहा । सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥ ९ ॥
सर्वयोजनस्वरूपा च सर्वपूज्या निराध्या । सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥ १० ॥
सर्वशुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वमायिनी ॥ ११ ॥
त्वं स्यादा देवदाने च पितृदाने स्वधास्ययम् । दक्षिणासर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
निद्रा त्वञ्च दया त्वञ्च तृष्णा त्वञ्चात्मनश्च मे ।

धुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती ॥ १२ ॥

भद्रा पुष्टिश्च तन्त्रा च लज्जा शोभा दया सदा । सर्वासम्पन्स्वरूपा श्रीपतिरसतामिदं ।
मीतिरूपा पुण्यपतां पापिनां कलहाङ्कुरा । शब्दवर्कर्ममर्यादाः सर्वदा सर्वजीविनाम् ॥

देवेभ्यः स्वयम् दक्षी धानुर्धोषी ह्योमर्षी । दिनाय चरंदेवानां भार्यासुगमिनामिनी ।
योगनिद्रा योगरूपा योगदक्षी च योगिनाम् ।

मिदिस्यरूपा सिद्धिनां सिद्धिदा सिद्धियोगिनी ॥२७॥

मातृदेवरी च प्रदायी विष्णुमाया ॥ धैर्यणी । मद्रदा मद्रकालीगवर्गलोकाभयदूरी ।
प्राप्ते प्राप्ते प्राप्तेर्धी गृहदेवी गृहे गृहे । सतां कीर्तिः प्रणिष्टा च निन्दा त्यज्यमाना सा
महायुक्ते महामारी दुष्टसंहाररूपिणी । गद्याभ्यरूपा शिष्टानां मानेय दितकारिणी ॥२॥
घग्घा पूष्या स्तुतात्पञ्चशहादीनाञ्जसर्षदा । प्रादण्यरूपापिप्राणांतस्यागतममिना
पिदापिदापतात्पञ्चदुष्टिदुष्टिदुष्टितांसगाम् । मेघास्मृतिम्यरूपाचप्रतिभाप्रनिभायताम् ।
राक्षो प्रतापरूपा च विशां पाणिज्यरूपिणी । सृष्टिम्यरूपा सृष्टौ त्वं रक्षारूपा च पालने
तथान्ते त्वंमहामारीपिश्वस्यपिश्वपूजिते । कालरात्रिर्मंदारात्रिमोदरात्रिश्च मोहिनी ॥
दुस्त्यया मे माया त्वं यया संमोहितंजगत् । ययामुर्धोदिविद्राश्चमोक्षमार्गंनश्यति ॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गायादुर्गनाशनम् । पूजाकालेपठेयोहिसिद्धिमंपतिपात्रिणे ॥
यन्ध्या च काकयन्ध्या च मृतकपत्सा च दुर्मया ।

ध्रुत्या स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥२७॥

फारागारे महाघोरे यो पद्मो हृदयघने ।

ध्रुत्या स्तोत्रं मासमेकं यन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥२८॥

यक्ष्माप्रस्तो गलंकुष्ठो महाशूली महाज्वरी ।

ध्रुत्या स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात् प्रमुच्यते ॥२९॥

पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः । ध्रुत्या स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्र संशयः ॥३०॥
राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले । हिंजजन्तुसमीपे च ध्रुत्या स्तोत्रंप्रमुच्यते ॥
गृहदाहे च दाघान्नी दस्युसैन्यसमन्विते । स्तोत्रध्वजमात्रेण लभते नात्र संशयः ॥
महादग्ध्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः । विद्यावान् धनपांश्चैव समयेन्नात्र संशयः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रहृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने
दुर्गास्तोत्रं नाम पट्पण्णितमोऽध्यायः ।

सप्तपटितमोऽध्यायः

प्रकृतिकवचापरनामकं ब्रह्माण्डमोहनकवचम् ।

नारद उवाच ।

अथ सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद । ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं यद् ॥ १ ॥

नारायण उवाच ।

। वक्ष्यामि हे वत्स कवचञ्च सुदुर्लभम् । श्रीरुग्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥

ना कथितं सर्वं धर्माय जाह्नवीनटे । धर्मेण वृत्तं महाञ्च कृपया पुष्करे श्रुतः ॥ २ ॥

एतच्च यद्धृत्वा जपान त्रिपुरं पुरा । मुमोक्ष ब्रह्मा यद् धृत्वा मधुकैटभयोर्ममम् ।

संजहार रक्तबीजं यद्धृत्वा भद्रकालिका ॥ ४ ॥

यद्धृत्वा तु महेन्द्रञ्च संप्राप कमलालयाम् । यद्धृत्वा च महाकालश्चिरजीवीवधामिकः ॥

यद्धृत्वा च महात्मानो मन्दो सानन्दपूर्वकम् ।

यद्धृत्वा च महायोद्धा रामः शत्रुमयङ्कुरः ॥ ६ ॥

यद्धृत्वा शिशुशुष्यश्च दुर्वासामानिनांबरः । श्रीं दुर्गेति चतुर्ध्वन्तं स्वाहात्तोमेशिरोऽघृतम् ॥

मन्त्रः पङ्कजोऽयञ्च भक्तानां कल्पपादपः । विचारो नास्ति वेदेषु ब्रह्मे च मनोमुने ॥ ८ ॥

मन्त्रप्रहणमात्रेण विष्णुतुष्टो भवेन्नरः । मम वक्त्रं सशपातु श्रीं दुर्गायैवमोऽन्ततः ॥

ओं दुर्गे रक्ष इति च कण्ठे पातु सदा मम ।

ओं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रोऽयं स्कन्धे पातु निरन्तरम् ॥ १० ॥

ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं इति पृष्ठञ्च पातु मे सर्वतः सदा ।

ह्रीं मे घृष्टल्लं पातु हस्तं श्रीमिति सन्ततम् ॥ ११ ॥

ओं श्रीं ह्रीं श्रीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा ।

प्राच्यां मां पातु प्रहतिः पातु षष्ठी च चण्डिका ॥ १२ ॥

इक्षिणे भद्रकाली च नैऋते च महेश्वरी । वारुणे पातु वाराही चापन्यां सर्वमङ्गला ॥

उत्तरे धीष्णवी यातु तयैशान्यो शिवप्रिया । जलेभ्यदेनान्तर्गन्धेवानुमां जगदम्बिका
इति ते कथितं पतस कथनञ्च सुदुर्लभम् । यस्मैकस्मैनदान्त्र्यं प्रथनत्र्यं न कम्पयितु
गुणमभ्यर्च्य विधिपद्मप्राङ्द्वारकन्दनैः । कथनं धाम्येयम्नु सोऽपि विष्णुर्न मंगलः
धर्मणे सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे । यन् पदं नमने लोकस्तदेतदागणेमुने ॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद् ध्रुवम् । लोकञ्च सिद्धकथनं नाम्नां विष्णुनि सद्गते
मत्तस्यमृत्युर्भयति जलेपद्मोविशेद्भुवम् । जीपम्मुक्तोभयेन्मोऽपि सर्वसिद्धेश्वरः स्य
यद्विद्यात्सिद्धकथनो विष्णुतुल्योभयेद्भुवम् । यत्किञ्चिद्वन्देः सण्डं सुधागरद्वारं नृ
या एव मूलप्रकृतियस्याः पुत्रो गणेश्वरः ।

इदया कृष्णवर्तं सा य लेभे गणपतिं सुतम् ॥२१॥

स्यांशेन कृष्णो भगवान् यम्य न गणेश्वरः ॥२२॥

भुत्वाचप्रकृतेः खण्डं सुधयञ्च सुधोपमम् । भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चन
सवत्सो सुरभीं रम्यां दद्याच्च भक्तिपूर्वकम् ॥२३॥

वासोऽलङ्कारलैश्च तोषयेद्वाचकं मुने । पुण्यालङ्कारवसनैर्नानोपाहारसंयुतैः ॥२४॥

पुस्तकं पूजयेद्देवं भक्तिश्च द्वासमन्वितः । एतं इदया यः शृणोति तस्य विष्णुः प्रसीदति
वर्द्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः । लक्ष्मीर्धसति तद्गुणे हेहान्ते गोलोकाप्नुयात् ।

लभेत् कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम् ॥२५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिलखण्डे दुर्गोपाख्याने
प्रकृतिकथनं नाम सप्तपष्ठितमोऽध्यायः ।

समाप्तध्यायं प्रकृतिलखण्डः ।

• श्रीगणेशायनमः •

अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

गणेशजन्मविषयकप्रश्नविचारः ।

तयणं नमस्कृत्य नरञ्चैष नरोत्तमम् । देवीं सरस्यतीञ्चैष ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
नारद उवाच ।

धृतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम् । सर्वोत्कृष्टमीप्सितञ्च मूढानां ज्ञानवर्द्धनम् ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि गणेशखण्डमीश्वर । तज्जगच्चरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥३॥
कथं जज्ञे तुरध्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे । देवी केन प्रकारेण ललाम तादृशं सुतम् ॥४॥
सर्वांशः कस्य देवस्य कथंजन्मललाभसः । अयोनिसम्भवः किं वाऽसौ च किं यो निसम्भवः
किं वा तद्ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः ।

का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यशः ॥६॥

कथं तस्य पुरः पूजा पिश्वेषु निखिलेषु च । स्थिते नारायणेशभौजगदीशे च ब्रह्मणि ॥
पुराणेषु निगूढञ्च तज्जगम परिकीर्तितम् । कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ॥
एतत् सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कीर्तुहलं मम । सुविस्तीर्णं महामाग तदतीव मनोहरम् ॥
श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसन्तापहरणं सर्वविघ्नघनाशनम् ॥१०॥
सर्वमङ्गलदं सारं सर्वधुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षवीजञ्च पापमूलनिवृन्तनम् ॥ ११ ॥
दैत्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा । देवी संदृत्य दैत्योद्यान् वृक्षकन्या यभूष ह
सा च नाम्नासती देवीस्यामिनोनिन्दया पुरा । देहं संत्यज्य योगेन जातशैलप्रियोद्दे

द्वाराय ददौ ताञ्च पार्यतीं पर्यतो मुदा । तां गृहीत्वा महादेवो जगाम निर्जनं वनम् ।
 त्रयो रतिकरीं वृथा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । स रमे नर्मदानीं पुण्योद्याने तथा सह ।
 हस्तचर्पणं पर्यन्तं देवमानेन नांरु । तयोर्थंभूतं गृह्णारं विपरीतादिर्न गम् ॥ १६ ॥

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण कामेन मूर्च्छितः शिवः ।

मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद् युयुधे न दिवानिराम् ॥ १७ ॥

सकारण्डघाकीर्णं पुंस्फोफिलस्तथुते । नानापुष्पविकसिते समरध्वनिमंगुने ॥ १८ ॥
 गुणधिकुसुमात्तेन पायुना सुरभीरुते । भर्ताय सुखे तत्र सर्वजन्तुविपरिजे ॥ १९ ॥
 हा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तां प्रापुः सुराः पराम् । ब्रह्माण्डपुरम्भृत्य ययुर्नारायणान्तिकम्
 नत्या कथयामास ब्रह्मावृत्तान्तमीप्सितम् । संतम्बुर्देवताः सर्वाश्चिन्तपुसलिकायथा
 ब्रह्मोवाच ।

हस्तचर्पणं पर्यन्तं देवमानेन शङ्करः । रतो रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह ॥ २२ ॥
 धुमस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर । किं भूतं भवितापत्यं तत्त्वं कथितुमर्हसि ॥

श्रीभगवानुवाच ।

वेत्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रं भविष्यति । मयि ये शरणापन्नास्तेषां दुःखंकुतोविधे
 नोपायेन तद्दीप्यं भूमौ पतति निश्चितम् । तत्कुरुष्व प्रयत्नेन सादं देवगणेन च ॥ २५ ॥
 दा च शम्भोर्घोर्प्यन्तर्पार्श्वतया उदरे पतेत् । ततोऽपत्यञ्च भविता सुरासुरविमर्शकम्
 तः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाश्च या । प्रययुर्नर्मदानीं ययौ ब्रह्मा निजालयम् ॥ २७ ॥
 त्रैध पर्यतद्रोणी बहिर्देशे सुराः पराः । विषण्णपदनाः सर्वे यभुवुर्मयकातराः ॥ २८ ॥
 क्रोराजा कुयेरञ्च कुयेरो वरुणस्तथा । समीरणं च वरुणी यमं समीरणस्तथा ॥ २९ ॥
 ताशनं यमश्चैव मास्करञ्च हुताशनः । चन्द्रं तथा मास्करञ्च ईशानं चन्द्र एव च ॥
 यं देवाः प्रेरयन्ति देवाश्च रतिमञ्जने । हस्तद्वारभङ्गञ्च कुर्वित्युत्था परस्परम् ॥ ३१ ॥
 द्वारस्थितो घक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ॥ ३२ ॥

इन्द्र उवाच ।

कङ्करोपि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते । जगदीश जगदुबीज भक्तानां भयमञ्जन ॥

हरिर्जगामेत्युचयैवमाजगाम च भास्करः । उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्तो वक्रवधुप
श्रीसूर्य उवाच ।

किङ्करोपि महादेव जगतां परिपालक । सुस्थेष्ट महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तुते ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्यः प्रजगाम भयास्ततः । आजगाम तया चन्द्र उवाच वक्रकन्धरः ॥
चन्द्र उवाच ।

किङ्करोपि दिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तुते । आत्माराम पूर्णकाम पुण्यश्रवणकीर्त्तन
इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः । संवीक्ष्योवाच द्वारस्थः स्वयमेव समीरणः
पवन उवाच ।

किङ्करोपि जगन्नाथ जगद्वन्द्यो नमोऽस्तु ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां श्रीरूप सनातन
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः । त्यक्तकामो न तत्याजशृङ्गारपार्वतीभयात् ॥
दृष्ट्वा सुरान् भयार्तोऽपुनः स्तोतुंसमुद्यताम् । विजहौ सुखसम्मोर्गकण्ठलगाद्द्वारपार्वतीम्
उत्तिष्ठतौ महेशस्य प्रसक्तस्य लज्जितस्य च । भूमौ पपात तद्वीर्यं ततः स्कन्दो धूमूष ह
पश्चात्तां कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम् । स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च साम्प्रतं प्राञ्छितं शृणु
इति श्रीब्रह्मर्षेयसं महापुराणे षणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे शंकरपार्वती-
समागमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः

क्रीडाविरतेन शिवेन देवदर्शनम् ।

नारायण उवाच ।

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान् । पलाययमित्युवाच रूपया पार्वतीभयात्
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशायहेतुना । ब्रह्माण्डसर्वसंहर्ता चक्रत्ये पार्वतीभयात्
तत्पावुत्याय सा दुर्गा न ॥ दृष्ट्वा पुनः सुरान् । संमुत्थितं कोपवह्निस्तभयामासदेहतः
अथ प्रभृति ॥ देवा व्यर्थधीर्या भवन्तिषति । शशाप देवी तान्देवानतिव्या यभूय ह

तः शिवः शिवां दृष्ट्वा क्रोधसंरक्तलोचनाम् । मृदन्तीं मध्वयन्तां लिखन्तीं धरणीतन्त्रम् ।
रोषस्तां दुःखितां दृष्ट्वा क्रोधमन्त्रलोचनाम् । हस्तेगृहीत्वा देवेशो वासगामाम्नाशसि
भर्ताय भीतः संव्रस्त उवाच मधुरं वचः ॥७॥

शङ्कर उवाच ।

अथं कृष्टा गिरिध्रेष्टकन्ये धन्ये मनोहरे । मम सौभाग्यरूपे च प्राणागिष्ठाद्देवने ।

किन्तेऽमीष्टं करिष्यामि यद् मां जगदग्निके ॥ ८ ॥

ग्लान्दसङ्गुनिखिले किमसाध्यमिहावयोः । भद्रो निरपराधं मां प्रसन्ना भय मुन्दरि ।

रौपाक्षतदोषस्य शान्ति मे कर्तुमर्हसि । त्वया युक्तः शिष्योऽहञ्च सर्वेषां शिष्यायकः

चयायिताहीश्वरश्चशयतुल्योऽशिवः सदा । प्रकृतिस्त्वञ्चयुक्तिस्त्वशक्तिस्त्वश्चशमादया

तुष्टिस्त्यञ्च तथापुष्टिःशान्तिस्त्वं शान्तिरेष्य च । भुस्त्वञ्छायातथानिश्चातन्द्राध्रञ्चासुरेश्वरी

तर्पाधारस्वरूपा त्वं सर्वेयीजस्यरूपिणी । स्मितपूर्वं यद् वचः साग्रतं सरसं शिवे ।

त्यत्कोपपिपसदग्रं तेन जीवय मां मृतम् ॥ १४ ॥

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा कोपयुक्ता च पार्वती । उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ॥१५॥

पार्वत्युवाच ।

किन्चाहं कथयिष्यामि सर्वहं सर्वरूपिणम् । आत्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्वयस्मितम्

कामिनी मानसं काममप्रक्षं स्वामिनं घटेत् । सर्वेषां हृदयज्ञञ्च हृदीष्टं कथयामि किम् ।

सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजनककारणम् । अकथ्यमपि सर्वासां तथापि कथयामि मे

सुखेषु मध्ये स्त्रीणाञ्च विभयेषु सुरेश्वर । सत्पुंसा सह सम्भोगो निर्जनेषु परं सुखम् ।

सद्वज्जेन च यद्दुःखंतदसमनास्ति च स्त्रियाः । कान्तानां कान्तचिच्छेदःशोकःपरमदारुणः

कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने ।

तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥ २१ ॥

चिन्ताज्वरश्च सर्वेषामुपतापश्चवाससाम् । साध्वीनां कान्तचिच्छेदस्तुरगानाञ्चमैधुनम्

ॐ ॥ ३ ॥ अमेकं द्वितीयं धीर्त्वंपातनम् । दुःखातिरेकदुःखञ्च तृतीयमनपत्यता ॥२३॥

ॐ ॥ ३ ॥ कान्तं त्वाल्लङ्घ्यापिनचमेतुतः । या स्त्री पुत्रविहीनाचजीवनंतश्चिरर्यकम्

जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम् । सङ्कशंजातपुत्रश्च परब्रह्म सुखप्रदः ॥

सुपुत्रः स्वामिनोऽश्वश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः । कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापायकेवलम् ।

स्यामी स्यांशेन स्वस्त्रीणां गर्भे जन्म लभेद् ध्रुवम् ।

साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सततं हितकारिणी ॥ २७ ॥

असाध्वी वैरितुल्याचराश्वत्सन्तापदायिनी । मुखदुष्टापोनिदुष्टाचैवासाध्वीतिहिस्मृता

किमुपायं करिष्यामि यद् योगीश्वरेश्वर । उपायसिन्धो तपसां सर्वपाञ्च फलप्रदः ॥

इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रपङ्कजा वभूय ह ।

प्रहस्य शङ्करोदेधो बोधयामास पार्वतीम् । सत्पुत्रवीजं सुखदं सन्तापनाशकारणम् ।

मितं क्षिप्तं सुरचिरं प्रवक्तुमुपवक्रमे ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे शिवाशिष्ययोः

पुत्रमुपलक्ष्यसम्पादघर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

पार्वतीप्रति हरिव्रतकरणाय शिवस्योपदेशः ।

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति । उपायतः कार्प्यसिद्धिर्भवेदेव जगत्त्रये ॥

सर्वपाञ्छितसिद्धेस्तु धीजरुषं सुमङ्गलम् । ममसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥ २ ॥

हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु धरानने । व्रतञ्च पुण्यकं नाम धर्ममेकं करिष्यसि ॥ ३ ॥

महाकठोरधीजञ्च घाञ्छाकल्पतदं परम् । सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसम्पदम् ॥ ४ ॥

नदीनाञ्च यथा गङ्गा देवानाञ्च हरिर्यथा । वैष्णवानां यथाहञ्च देवीनां त्वं यथाप्रिये ॥

आधमाणां यथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करे यथा । पुण्याणां पारिजातञ्च वनाणां तुलसी यथा

यथा पुण्यप्रदानाञ्च तिथिरैकादशी स्मृता । रविचाञ्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥

मासानां मार्गशीर्षश्च कृतूनां माघबोयथा । संवत्सरोपवत्सराणां युगानाञ्च हस्तं यथा ॥ ८ ॥

विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरुणां जननी यथा ।

साध्वी पत्नी यथात्मानां विश्वस्तानां मनो यथा ॥ १८ ॥

यथा धनानां रत्नञ्च विद्याणाञ्च यथा पतिः । यथापुत्रश्च यन्मृतां गृह्णाणां कल्पपादपः
तृप्तफलं फलानाञ्च धर्याणां भारतं यथा । गृह्णायनं धनानाञ्च शलरूपान् योगिनाम्
धाकार्शीं पुरीणाञ्च सूर्यस्तेजस्यिनां यथा । यथेन्दुःसुगन्धानाञ्च सुन्दराणाञ्चमन्मयः
शास्त्राणाञ्च यथा वेदाः सिद्धानां कपिली यथा ।

हनुमान् धानराणाञ्च श्रेष्ठाणां ब्राह्मणाननम् ॥ १९ ॥

शोदानां यथा विद्या कपिताञ्च मनोहरा । भाकाशोऽव्यापकानाञ्च ह्यङ्गानां शौचनं यथा
वेभघानां हरिकथासुखानां हरिचिन्तनम् । स्पर्शानां पुत्रमंस्पर्शां हिंसाणाञ्च यथा खल
तापानाञ्च यथा मिथ्यापापिनां पुंश्चलीयथा । पुण्यानाञ्च यथा सत्यं तपसां हरिसेयनम्
यथा घृतञ्च गव्यानां यथा ब्रह्मातपस्यिनाम् । अमृतं मध्वयस्त्रुतां शस्यतां धान्यकं यथा
पुण्यदानां यथा तोयं शुद्धानाञ्च हुताशनः । सुवर्णं तैजसानाञ्च मिष्टानां प्रियमावणा
रुद्धः पक्षिणाञ्चैव हस्तिनामिन्द्रयाहनः । योगिनाञ्च कुमारश्च देवर्षीणाञ्च नारदः

गन्धर्वाणां चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा ।

सुकपीनां यथा शुकः काव्यानाञ्च पुराणकम् ॥ २० ॥

स्रोतःस्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम् ।

लभानाञ्च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च सम्पदाम् ॥ २१ ॥

रवित्राणां वैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवो यथा । विष्णुमन्त्रश्च मन्त्राणां धीज्ञानां प्रकृतिर्यथा
चिदुपाञ्च यथा धाणीनायत्री छन्दसां यथा । यथा कुबेरो यक्षाणां सर्पाणां पासुकिर्यथा ।
यथा पिता तै शैलानां गवाञ्च सुरमिर्यथा । वेदानां सामवेदश्च तृणानाञ्च यथा कुशः
तुल्यदानां यथा लक्ष्मीर्भनश्च शीघ्रगामिनाम् । अक्षराणामकारश्च हितैषिणां पिता यथा
शालग्रामश्च यन्त्राणां यशूनां विष्णुपञ्चरः । चतुष्पदानां पञ्चास्यो मानवो जीघिनां यथा
यथा स्वान्तमिन्द्रियाणां मन्दाग्निश्च रुजां यथा । बलिनाञ्च यथा शक्तिर्यशस्किमतां यथा ।
महान् विराट् च स्थूलानां सूक्ष्माणां परमाणुकः । यथेन्द्रादितेयानां दैत्यानाञ्च यत्किर्यथा

प्रह्लादश्चैवसाधूनां दानूणांर्षीचिरंथा । प्रह्लादश्चयथास्त्राणां चक्राणाञ्चमुदर्शनम् ॥
मृणोराजागमचन्द्रो धन्विनो लक्ष्मणो यथा । सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वधीजज्ञसर्वदः

सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानो पुण्यकं यथा ॥ ३० ॥

व्रतं कुरु महामागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सर्वसारश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति ॥

व्रताराध्यश्च धीरुष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः ।

जनो यन्सेवनामुक्तः पितृभिः कोटिमिः सह ॥ ३२ ॥

हरिमन्त्रं गृहीत्वाद्य हरिमेवां करोति यः । भारते जन्मसफलं स्याद्व्रतनः स करोति च
उदरस्य कोटिपुराणं यैकुण्डं याति निश्चितम् । धीरुष्णपार्वतौ भूया सुखं तत्रैवमोदते
सहोदरान्म्यभृत्याश्च स्वयन्धून्सहचारिणम् । स्वस्त्रियञ्च समुद्रस्यभक्तोपातिहरेः परम्
सम्मानं गृहाण गिरिजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम् । जपमन्त्रं व्रतेतत्र पितृणां मुक्तिकारणम्
इत्युक्तया शङ्करो देवो गत्वा गिरिजया सह । शीघ्रञ्च जाह्नवीतीरं हरेर्मन्त्रं मनोहरम् ॥
सस्यै ददौ च संप्रीत्या कथयं स्तोत्रसंयुतम् । पूजाविधाननियमं कथयामास तां मुनेः

इति धीमह्यैवैवर्त्तं महापुराणे नारायणतारदत्तवादे गणपतिसखे

हृष्यितफलवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः

शिवेनपार्वत्यै व्रतोपकरणकथनम् ।

नारायण उवाच ।

श्रुत्वा व्रतविधानञ्च दुर्गां प्रहृष्टमानसा । सर्वं व्रतविधानञ्च संप्रपृमुपचकमे ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच ।

सर्वं व्रतविधानं मां यद् वेदविदां पर । हे नाथ करुणासिन्धो क्षीतबन्धो परात्पर ॥२॥
फानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च । समर्थं नियमं भक्ष्यं विधानं तत्फलं प्रभो
देहि मह्यं विनीतायै नियुक्तं सत्पुरोहितम् । पुष्पोपहारनयिषांश्च द्रव्याहरणकिङ्करान् ॥

न्यानि चोपयुक्तानि गद्यात्रातानि यानि च । मन्त्रियोजयन्तन्मन्त्रैर्ग्रीणाभ्यामीनसर्वदः ।
 यता कौमारकाले न सत्यं पालनकारकः । मर्ता मध्ये सुतः दोषे त्रिधा वक्ष्यामि यो गिताम
 तातोऽशोकः प्राणतुल्या दृष्ट्या मन्त्र्यामिने सुताम् ।

स्वामी निवृत्तिमाप्नोति मन्त्र्यस्य स्वमुने प्रियाम् ॥७॥

शुभ्रययुता या स्त्री सा च माण्यवती परा । किञ्चिद्धिहीनामध्यान्सर्वहीनाऽधमा भुवि ॥
 तेपाञ्च समीपस्था प्रशंस्या सा जगन्त्रये । निन्दितान्देषु मन्त्र्यस्तासर्थमेनञ्च तौ श्रुतम्
 तर्पात्मा भगवांस्तच्च सर्वसाक्षी च सर्वविन् । देहिमर्षं पुत्रवरं स्यात्प्रनिवृत्तिहेतुकम् ॥
 ध्यात्मा यो धानुमानेन महात्मनि निधेदितम् । सर्वान्तरामि प्रायश्चरं बोधयन् बोधयामि किम् ॥
 इत्युत्था पार्यती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे ।

कृपासिन्धुञ्च भगवान् प्रयच्छुमुपचक्रमे ॥१२॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम् ।

फलानि चैव द्रव्याणि व्रतोपयोगिकानि च ॥१३॥

वेप्राणां शतकं शुद्धं फलपुष्पोपहारकम् । किङ्कराणाञ्च शतकं द्रव्याहरणकारकम् ॥१४॥
 दासीनां शतकं लक्षं नियुक्तञ्च पुरोहितम् । सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदान्तपारगम् ॥१५॥
 परं हरिमकानां सर्वज्ञं ज्ञानिनां घरम् । सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे ॥१६॥
 देवि शुद्धे च काले च परं नियमपूर्वकम् । माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतारम्भः शुभः प्रिये ॥
 गात्रं सुनिर्मलं कृत्वा शिरः संस्कारपूर्वकम् । उपोष्य पूर्वदिषसे घृत्प्रक्षाल्य यत्नतः ॥
 अरण्योदयवेलायां तस्मादुत्थाय सुव्रती । मुखप्रक्षालनं कृत्वा आत्मा च निर्मले जले ॥१६॥
 आचम्य यत्नपूतो हि हरिस्मरणपूर्वकम् । दत्त्वा स्पर्शं हरये भक्त्या गृहमागत्य सत्वरम् ॥
 धीते च वाससी धृत्वा उपविश्यासने शुची ।

आचम्य तिलकं कृत्वा निर्वाप्य स्त्याह्निकं पुनः ॥२१॥

घटमारोपणं कृत्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । पुरोहितस्य घरणं पुरः कृत्वा प्रयत्नतः ।

सङ्कल्पं घेदयिहितं व्रतमेतन् समाचरेत् ॥२२॥

प्रते द्रव्याणि नित्यानि द्योपचाराणि योऽङ्गः ।
 देवानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने ॥२३॥
 भासनं व्यासनं पादमर्च्यमाचमनीयकम् ॥२४॥
 केश्य आनीयं धूपानि भूषणानि च । सुगन्धिपुष्पभूषञ्च दीपनैवेद्यचन्दनम् ॥२५॥
 अथ साम्यूलं कपूरादिसुवासिनम् । द्रव्याप्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि ॥
 केशिर्दिहीनेनैवाङ्गदानिः प्रजायते । अङ्गदीनञ्च यन् कर्म चाङ्गदीनो यथा नरः ॥
 अङ्गदीने च बाध्यं च पण्डितानिः प्रजायते ॥२७॥
 अथानं पुष्पं पारिजातस्य विष्णवे । देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे ॥२८॥
 अथपुष्पाणां लक्ष्मणक्षतमीप्सितम् । प्रदेयं हरये भनया वर्णसौन्दर्यहेतवे ॥२९॥
 अथ पद्मानामभूतं पुष्पलक्षकम् । भनया देयञ्च हरये सुखसौन्दर्यहेतवे ॥३०॥
 अथरचितं वर्णानां सहस्रकम् । देयं नारायणायैव नैत्रयोर्दोषिहेतवे ॥३१॥
 अथललां लक्षञ्च देयं कृष्णाय भक्तितः । प्रताङ्गभूतं देवेशि चक्षुषो रूपहेतवे ॥३२॥
 अथोद्गयं लक्षं कचिरं श्येतचामरम् । प्रदेयं केशायैव केशसौन्दर्यहेतवे ॥३३॥
 अथरचितं पुष्पानां सहस्रकम् । प्रदेयं गोपिकेशाय भासिकारूपहेतवे ॥३४॥
 अथपुष्पलक्षञ्च देयं राधेश्वराय च । सौम्याष्टाधरयोश्चैव वर्णसौन्दर्यहेतवे ॥३५॥
 अथललां लक्षञ्च दन्तसौन्दर्यहेतवे । देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्यकम् ॥
 अथपुष्पलक्षञ्च गण्डसौन्दर्यहेतवे । मधुश्वराय दातव्यं प्रते शैलेन्द्रकन्यके ॥३७॥
 अथलक्षञ्च देयं प्रह्लेश्वराय च । भीष्माष्टाधरयाय प्राणेशि भक्तितो प्रती ॥३८॥
 अथलक्षञ्च रत्नसारविनिर्मितम् । देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्यहेतवे ॥३९॥
 अथलक्षानाञ्च लक्षं रत्नविनिर्मितम् । देयं विश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्यहेतवे ॥
 सुधापूर्णञ्च कुम्भानां सहस्रं रत्ननिर्मितम् ।
 देयं कृष्णाय देवेशि पाप्मसौन्दर्यहेतवे ॥४१॥
 अथलक्षञ्च गोपवेशिधायिने । देयं किशोरवेशाय हृष्टिसौन्दर्यहेतवे ॥४२॥
 अथमाकारं रत्नपात्रसहस्रकम् । देयं गोरक्षकायैव गलसौन्दर्यहेतवे ॥ ४३ ॥

अद्वन्साररचितं पद्मनाभसहस्रकम् । देयं वण्डकापालाय बाहुमौन्दर्प्यहेतवे ॥ ४३ ॥
शङ्ख रत्नपद्मानां करसौन्दर्प्यहेतवे । देयं गोपाद्गनेशाय नारायणि हृदिप्रदे ॥ ४४ ॥
हनुरीयकलक्षश्च रत्नसागरविनिर्मितम् । मङ्गुलीनाञ्च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च ॥ ४५ ॥
लोनीन्द्रसारलक्षश्च श्वेतवर्णं मनोहरम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय नगसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ४६ ॥
अद्वन्सारहारानां लक्षजातिमनोहरम् । देयं मदनमोहाय यज्ञ सौन्दर्प्यहेतवे ॥ ४७ ॥
उपकर्षीकलायाञ्च लक्षश्च सुमनोहरम् । देयं निन्देन्द्रनाथाय स्तनसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ४८ ॥
तद्रत्नयस्तुलाकारं पात्रं लक्षं मनोहरम् । देयं पद्मालयेशाय देहस्य रूपहेतवे ॥ ४९ ॥
तद्रत्नसाररचितं तामीनाञ्च सहस्रकम् । प्रदेयं पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ५० ॥
तद्रत्नसाररचितं नखचन्द्रसहस्रकम् । नितम्बसौन्दर्प्यार्थञ्च प्रदेयंचक्रपाणये ॥ ५१ ॥
युवर्णरम्भास्तम्भानां लक्षश्च सुमनोहरम् । प्रदेयं ध्यानिकासाय श्रीजिसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ५२ ॥
तत्पत्रस्थलाब्जानां लक्षमष्टानमक्षतम् । प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ५३ ॥
युवर्णरचितानाञ्च खड्गानां सहस्रकम् । गतिसौन्दर्प्यहेतव्यं देयं लक्ष्मीश्वराय च ॥ ५४ ॥
तजहंससहस्रश्च गजेन्द्राणां सहस्रकम् । सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे ॥ ५५ ॥
युवर्णछत्रलक्षश्च देयं नारायणाय च । विचित्ररत्नसारेण मूर्धसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ५६ ॥
गालतीनाञ्च कुसुममक्षतं लक्ष्मीश्वरि । देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ५७ ॥
ममूलयरत्नलक्षश्च देयं नारायणाय च । सुमते व्रतपूर्णार्थं शीलसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ५८ ॥
चच्छल्फकिकसङ्काशं मणीग्रसारलक्षकम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्प्यहेतवे ॥ ५९ ॥
वालसारसङ्काशं मणिसारसहस्रकम् । देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियानुरागवृद्धये ॥ ६० ॥
मणिकयसारलक्षश्च देयंकृष्णायवत्ततः । जन्मनःकोटिपर्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे ॥ ६१ ॥
हृष्माण्डं नाखिलञ्च जम्बीरं ध्रीफलन्त्या । फलान्येतानि देयानि हरये पुत्रहेतवे ॥ ६२ ॥
लोनीन्द्रसार लक्षश्च देयं कृष्णाय यत्नतः । असंख्यजन्मपर्यन्तं स्वामिनो घनवृद्धये ॥ ६३ ॥
तायं नानाप्रकारञ्च काम्यतालादिकं परम् । दत्ते सम्पत्तिवृद्धयर्थं श्रीहरि भावयेद् व्रती ॥ ६४ ॥
तायसं पिष्टकं सर्पिः शर्कराकं मनोहरम् । प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये ॥ ६५ ॥
अगन्धिपुष्पमालानां लक्षमक्षतमीप्सितम् । प्रदेयं हरये भक्त्या हरिमक्तिविवृद्धये ॥ ६६ ॥

विधानि च देयानि स्वाहूनि मधुपुणि च । श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानि च
 (नानाविधानि पुष्पाणि तुलसीसंयुतानि च । श्रीकृष्ण प्रीतये भक्त्या व्रते देयानि सुव्रते
 राक्षसानां सहस्रञ्च प्रत्यहं भोजयेदुद्यती । स्वात्मनः शस्त्रवृद्धयर्थं व्रते जन्मनिजन्मनि
 पुष्पाञ्जलिद्वारा देयं नित्यं पूर्णञ्च पूजने । प्रणामशतकं देवि कर्त्तव्यं भक्तिवृद्धये ॥७१॥
 रणमासांश्च हविष्यान्नं मासान् पञ्चकलादिकम् । हविः पशूं जलं पशूं व्रतेभक्षेद्यसुयते
 एकप्रदीपशतकं बह्वि दद्याद्विधानि शम् । रात्रौ कुशासनं कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते ॥
 स्मरणं कीर्तनं केलिः भ्रमणं गुह्यमापणम् । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिहेतवे
 स्यन्म मैथुनकं त्याज्यं व्रती ब्रवीद्वा च शुद्धये । सम्पूर्णं च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदन्तरम् ॥
 त्रिशतञ्च पण्ड्यधिकं दत्तकं घस्त्रसंयुतम् । समोऽयं सोपवीतञ्च सोपहारं मनोहरम्
 त्रिशतञ्च पण्ड्यधिकं सहस्रं विप्रभोजनम् । त्रिशतञ्च पण्ड्यधिकं सहस्रं तिलहोमकम्
 त्रिशतञ्च पण्ड्यधिकं सहस्रस्थर्णमेव च । देवा व्रतसमाप्ता च दक्षिणा विधिवोदिता
 भव्यां समाप्तिं दिवसे कथयिष्यामि दक्षिणाम् । एतद्व्रतफलं देवि दृढामक्तिर्हरौ भवेत्
 इदितुल्यो भवेत्पुत्रो विद्यातो मुयनप्रथे । सौन्दर्यं स्वामिसौभाग्यमैश्वर्यमपि पुढं धनं
 सर्वं वाञ्छितसिद्धिनां बीजं जन्मनि जन्मनि । इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुरु महेश्वर
 पुत्रस्ते भविता साध्वीत्युक्त्वा स विरराम ह ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे व्रतमाहात्म्यविधा-
 नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

व्रतमाहात्म्यकथा ।

नारायण उवाच ।

श्रुत्वा व्रतविधानञ्चतुर्णां ब्रह्मप्रमानसा । पुनः पश्यन् कान्तं सा दिव्यां व्रतकथां शुभा

श्रीपार्यत्युवाच ।

केमदुतं वनं नाम विधानं पञ्चमस्य ॥ अधिकान्तम् कथां ब्रूहि वनं केन प्रकारिणम्

अथ वनं कथा । श्रीमहादेव उवाच

तरूणा मनोः पदां पुत्रकुम्भेन दुःखिता । ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह ॥

शतरूपोवाच ।

एतन् केन प्रकारेण घञ्यायाश्च सुनो भवेन् । तन्मे ब्रूहि जगद्भातः सृष्टिकारणकारण
तद्भान्म निष्फलं प्राप्नोत्यर्थं धनमेव च ।

किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम् ॥ ५ ॥

अपोदानोद्वषं पुण्यं जन्मान्तरसुखायहम् । सुखदो मोक्षदः प्रीति दाता पुत्रश्चपुत्रिणाम्

पुत्री पुत्रमुखं दृष्ट्वा शताब्धमेधिनां फलम् । पुत्रामनरकत्राणकारणं लभते ध्रुपम् ॥ ७ ॥

पुत्रोपायं यदि विधे धृष्टं मां तापसंयुताम् । तदा भद्रं भवेद्ब्रह्मा सह यास्यामि काननम्

गृहाण राज्यमैश्वर्यं धनं पृथ्वीं प्रजायहाम् । किमेतेनावयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः ।

अपुत्रिणो मुखं द्रष्टुं विद्वान्नोत्सहतेऽशिषम् । मुखं दर्शयितुं लज्जां समपाप्मोऽयपुत्रकः ॥

अथवा गरलं भुक्त्वा प्रदेक्ष्यामि हुताशनम् । अपुत्रपुत्रमशियं गृहाण स्त्रीविहीनकम् ॥

इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद् ब्रह्मणश्च करोद ह । कृपानिधिश्च तां दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्से प्रदेक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखायहम् । सर्वैश्वर्यादिधीजञ्चसर्ववाञ्छाप्रदं शुभम्

माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतमेतत् सुपुण्यकम् । कर्त्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम्

संयत्सरञ्च कर्त्तव्यं सर्वविघ्नविनाशनम् । वेदोक्तानि च द्रव्याणि व्रते देयानि सुव्रते ॥

व्रतञ्च काण्वशाखोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम् । वृत्वा पुत्रं लभशुभे चिष्णुतुल्यपराक्रमम्

ब्रह्मणश्च वनः धृत्वा साहृत्वा व्रतमुत्तमम् । प्रियव्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रीं मनोहरीं ॥

व्रतं वृत्वा देवहूती लेभे सिद्धेश्वरं सुतम् । नारायणांशं कपिलं पुण्यकं पुण्यदं शुभम् ॥

अग्न्यधोदं वृत्वा तु लेभे शक्तिसुतं शुभा । शक्तिकान्ता व्रतं वृत्वा सुतं लेभे पराशरम्

अदितिश्च व्रतं वृत्वा लेभे घामनकं सुतम् । शची जयन्तं पुत्रञ्च लेभे वृत्वेदमीश्वरी ॥

॥ पत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम् । कुबेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूषरम् ॥२१॥
 ॥ मनुं लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम् ॥२२॥
 ॥ द्विरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । वृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रमाद्यतः ॥२३॥
 ॥ स्यात् व्रतं कृत्वा लेभे वैत्यगुरुं सुतम् । शुक्रं नारायणांशञ्च सर्वतैजस्विनां परम् ।
 ॥ धितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम् । त्वमेव कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे ॥२४॥
 ॥ हेन्द्रपत्नीनां देवीनाञ्जसुखाचदम् । व्रतमेतन्महासाधिव साध्वीनां प्राणतः प्रियम् ॥
 ॥ य प्रभाषेण स्वयं गोपाङ्गनैश्वरः । ईश्वरः सर्वदेवानां तव पुत्रो भविष्यति ॥
 ॥ शङ्करस्तत्र विराराम च नारद । व्रतञ्चकार सा देवी प्रहृष्टा शङ्कराक्षया ॥२८॥
 ॥ धेतं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि । सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजन्मकारणम्
 ॥ श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिजन्मे व्रतकथा-

प्रकरणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

पष्ठोऽध्यायः

पार्वत्या व्रतारम्भोद्योगः ।

शौनक उवाच ।

॥ श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । किं पप्रच्छ पुनः साधो तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥
 ॥ सूत उवाच ।

॥ श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । व्रतारम्भविधानञ्च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २ ॥
 ॥ नारद उवाच ।

॥ तेन व्रतमेतन् शुभाचदम् । तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या मर्तुराक्षया ॥ ३ ॥
 ॥ तोषीशः कृते सुव्रतया व्रते । ब्रह्मन् येन प्रकारेण तत्रः शंसितुमर्हसि ॥

मङ्गलज उवाच ।

कणपिपाकणो निष्पां विधानम् प्रददय । मयंविपला तस्मां जगाम तामेति
हरेराधमल्लघो मुनिमेधरो हविः । हविमायनरीन्त्रि हविष्मानमगणः ॥
रमानन्दपूर्णं धानानन्दः सनातनः । दिवानिर्वा न जानाति हविर्गन्धं वहिः स्मः
प्रदृष्टमता देवीं पार्वतीं मर्षुगदवा । किद्रान प्रेयामाम विजंघा मनरेतो ॥
आनीय सयद्रव्याणि मनोपर्यागिकानि च । यत् कर्तुं समारभे शुभदा सा शुभदा
सतन्मुमारो भगवानाजगाम विधेःसुत । मूर्तिमान्नेतसां गतिः प्राप्यन्त ब्रह्मेत
प्रदाजगाम हृष्टः प्रदलोकात् समाप्यकः । भनित्रज्जो दि भगवानाजगाम महेदय
पिप्पुःक्षीरोदशार्याय सलेह्मीकभानुमंजः । भगवाद्भगवां पाता शास्तामर्त्ता सपां
यतमालाधरः श्यामो भूषितो रत्नभूषणे । महासम्भूतसम्मारो रक्षयानेन नारद ॥१॥
सनकश्च सनन्दश्च फणिलश्च सनातनः । भामुरिश्च कतुरंसी घोदुः पञ्चशिखोऽहनि
यतिश्च सुमतिश्चैव पशितश्च सदानुगः । पुहन्श्च पुलस्त्यश्च मरिश्च भृगुरङ्गिराः ॥
भगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासाश्च्यवनस्तथा ।

मरीचिः कश्यपः कण्यो जरत्कारुश्च गौतमाः ॥ १६ ॥

बृहस्पतिरतप्यश्च संयत्तः सौरमिन्धवा । जायालितमदितिश्च जैगिरत्यश्च देवलः ॥
गोकामुखो यमरथः पारिमद्रः पराशरः । विष्णुमित्रो वामदेवश्च्यवन्तश्चो विमान्डः
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पुष्करो लोमशस्तथा । कीरसो पराशश्च दक्षश्च बालाग्रिरघमर्षणः
कात्यायनः कणादश्च वाणिनिः शाकटायनः । शङ्खगणितश्चिन्नेव शाकल्यः शङ्खपयश्च
एते चान्ये च यहयः सशिष्या मुनयो मुने । भवाश्च धर्मापुत्रो च भरतारयणो समी
दिक्पालश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिद्राः । आजगुः पार्वताः सयै सगणाः पार्वतीव्रते
हिमालयः शैलगजः सापत्यश्च समाप्यकः । रागणः सानुगरश्चैव रत्नमूषणभूषितः ॥
महासम्भूतसम्मारो नानाद्रव्यसमन्यतः । मणिमाणिषयग्नानि मनोपर्यागिकानि च ।
नानाप्रकार्यस्तूनि जगतां दुर्लभानि च । लक्ष्म्य गजराजामयश्चरत् त्रिलक्षकम् ॥२५॥
दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम् । दक्षकानां क्षीपकानां स्पर्शानाञ्च तथैव च ॥२६॥

मुक्तानाञ्च यत्तुल्यं कौस्तुभानां सहस्रकम् । सुस्वादुमिष्टद्व्याणां लक्षमापणिकौतुकी
अन्तरङ्गप्रमदं भाजयाम सुतायने ॥२७॥

शङ्खणा मनवः सिद्धानामाविद्याधरास्तथा । सन्पासिनो मिथुकाश्च चन्दिनः पार्वतीयते
विद्याधरी तर्तकी च तर्तकाऽप्सरसां गणाः ।

नानाविधा धारंभारंभटा भाजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥ २६ ॥

लैलासराजमार्गाञ्च चन्दनेन सुसंस्कृतम् । आभ्रपल्लवसूषार्कं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०॥
प्रांघाम्यपर्णालाञ्जललघुप्यधिभूषितम् । निर्मितं पद्मरमणेन दद्मसुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
घीः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शङ्करेण च । कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ॥३२॥
नाध्यस्तः सुनामीरः कुबेरः कोपरक्षकः । आदेशा च स्वयं सूर्यः परिवेष्टा जलाधिपः
नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानाञ्च तपैव च । सहस्राणि घृतानाञ्च गुडानाञ्च शतानि च
ध्वीकानां सहस्राणि तैलानाञ्च शतानि च । लक्षानि चैव सकाशां यभूयुः पार्वतीयते
दूराणाञ्च कुम्भानि शतलक्षानि नारद । मिष्टान्नानां शर्कराणां यभूवुर्लक्षराशयः ॥
यद्यगोधूमचूर्णानां घृणाक्तानाञ्च नारद ॥ ३६ ॥

स्तोकानाञ्च पूषाणां यभूवुर्लक्षराशयः । गुडसंस्कृतलाघ्रानां यभूयुः कौटिराशयः ॥
तिनां पृथुकानाञ्च राशीनां दशकोटयः । तण्डुलानाञ्च राशीनां मुने संख्या न विद्यते
रिप्यप्रचालानां मणीनाञ्च महामुने । यभूयुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीयते ॥
तं विदुः सैव शाल्यन्नं सुमनोहरम् । चकार लक्ष्मीः पाकञ्च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्
घुमुजे देवर्षिगणैः सादं नारायणः स्वयम् । यभूवुर्लक्षविभ्राञ्च परिवेशनकारकाः ॥४१॥
ग्रामवृक्षश्च दर्वी तेन्यः कर्पूरादितुवासितम् । रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः
जसिंहासनस्थश्च विष्णुं क्षीरोदशायितम् । सेव्यमानं पार्वदेश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः
रूपिमिस्तूपमानाञ्च सिद्धदैवगणैस्तथा । विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा
गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं ध्रुतवन्तं मनोहरम् ॥ ४४ ॥

पञ्च शङ्करो ब्रह्मन् ब्रह्मेशं भक्तिपूर्वकम् । ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्त्तव्यमीप्सितम्
देवविगणपूर्वायां समायां स पुटाञ्जलिः ॥ ४६ ॥

धीमहारीष उपाय ।

सर्वं प्राप्तेन गन्तुं धीमिवाम शृणु प्रभो । तपःस्यस्य तपसो कर्मणाञ्च फलप्रदं ॥५३॥
 रत्नानां जगत्प्रज्ञातां पूजानां सर्वपूजित । सर्वेषां पात्ररूपेण धान्दाफलाननं हरे ॥५४॥
 पुण्यकर्मणं कर्तुं प्रदन्निच्छति पार्थिव । पुत्रार्थिनी सा शोकानां हृदयेन विदूषिता
 तिष्ठति कृते देवेषां प्रपन्नं शुभार्थिना । प्रयोधिता मया भार्या विविधैर्यननामृतैः ॥
 तत्पुत्रं व्यामिराभायं सुप्रतापायनेमने । ताम्याविनानमन्नुद्याम्यद्राणां न्यक्तुमिच्छति
 पुनर्यथाप्य स्वदेहञ्च विनश्यते न मानिनी । मन्निन्दया गीर्णगेहं पुनर्जन्म मया सा ॥
 सर्वं जानासि वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा यदामि किम् । काऽऽप्ता सांयदन्त्यजपरिणामशुभप्रदम्
 दुर्निवार्यं च सर्वेश श्रीस्वमापद्य चापलः ।

॥ दुस्त्यजं योगिभिः सिद्धैरभ्यासिभ्यः तपस्विभिः ॥ ५५ ॥

जितेन्द्रियैर्जितप्रोपैः स्त्रीरूपं मोहकारणम् । सर्वमायाकरणञ्च कामवर्जनकारणम् ॥
 ब्रह्माहं कामदेवस्य दुर्भेद्यं जयकारणम् । अनिमित्तञ्च विधिना सर्वायं विधिपूर्वजम् ॥
 मोक्षद्वारकपाटञ्च हरिभक्तिनिरोधनम् । संसारबन्धनस्तम्भरज्जुरूपमद्वयतनम् ॥ ५६ ॥
 वैराग्यनाशपीजञ्च शश्वद्रागविषकेनम् । पतनं सारसानाञ्च दोषाणामालयं सदा ॥ ५७ ॥
 अप्रत्ययानां क्षेत्रञ्च स्वयं कपटमूर्तिमन् । भट्टद्वाराश्रयं शश्वद्विषकुम्भं सुषामुलम् ॥
 सर्वैरसाध्यमानञ्च दुराराध्यञ्च सर्वदा । स्वकार्यसाध्यश्चाराध्यं कलहाङ्कुरकारणम् ॥
 सर्वं निवेदितं नाथ कर्तव्यं वक्तुमर्हसि । कार्यं सर्वं परामर्शं परिणाममुत्तावहम् ॥ ५८ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणो मुखम् । विररामरुभामध्ये स्तुतवाच कदापि तम्
 शङ्करस्य ध्वजः ध्रुवः प्रहस्य जगदीश्वरः । हितं नीतिञ्च वचनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६१ ॥

श्रीविष्णु उवाच ।

पुण्यकर्मतः सारं सती सन्तानहेतवे । स्वामिसौभाग्यबीजञ्च पत्नीते कर्तुमिच्छति ॥

॥ ६२ ॥ सर्वकामफलप्रदम् । सुखदं सुखसारञ्च मोक्षदं पार्वतीश्वर ॥ ६५ ॥

। मास्मिन्मरुतः ज्योतीरूपः सन्तानः ।

निराधयश्च निर्लिप्तो निरुपाधिर्निरामयः ॥६६॥

भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ।

दुराराधयो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः ॥६७॥

भक्त्याजीनो हि भगवान् सर्वसिद्धो हि निष्कलः ।

ने यस्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६८॥

महान् पिराद् यद्ग्राह्यं निर्लिप्तः प्रकृतैः परः ।

अन्ययो निग्रहक्षोभो भक्तानुग्रहयिग्रहः ॥६९॥

उग्रप्रहोप्रहणाश्च ग्रहनिग्रहकारकः । त्रिकोटिजन्ममध्ये च न साध्यो भवता विना ॥
लक्ष्म्या हि भारते जन्म हरिमक्तिः लभेन्नरः । सेवन् भद्रदेवानां कृत्वा समस्त जन्मसु ॥
सर्वमन्त्रमवाप्नोति फेवलं स तदाशिरा । सूर्यमन्त्रं समाराध्य त्रिषु जन्मसु भारते ॥
प्राप्नोति शीघ्रं मन्त्रञ्च सर्वदं मानवो मुदा । मन्त्रेभ्य परया भक्त्या त्वामेव सतजन्मसु
प्राप्नोति मायामन्त्रञ्च त्वत्पदाब्जप्रसादतः । शनैः जन्मसमाराध्यमयांनारायणीं पराम्
नारायणकलां सैव सां समवाप्नोति मानवः । कलां नियेज्य सर्वेऽत्रपुण्यक्षेत्रे तुतुल्लभे ॥
कृष्णभक्तिमवाप्नोति भक्तमंसर्गहेतुकीम् । मंप्राप्यभक्तिनिष्पक्वांन्नामंन्नामञ्च भारते ॥
प्राप्नोति पवित्राञ्च भक्तिः भक्तनियेयया । तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिरा शिरा ॥

श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम् ॥७०॥

कृष्णप्रतं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् । कृष्णतुल्यो भवेद्भक्तश्चिरं कृष्णनियेयया ॥७१॥
महति प्रलये पातः सर्वेषां सर्वनिश्चितम् । नपात कृष्णभक्तानांसाधूनामविनाशिनाम् ॥
नयिनाशिनिगोलोकेमोदन्तेकृष्णकिङ्कराः । हसन्ति तेसुनिश्चिन्तादेवान्ब्रह्मादिकान्शिष
चं संहर्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वरः । माया मोहयते सर्वान्भक्ताञ्चकृपया मम ॥
तापानारायणीमातासर्वेषांकृष्णभक्तिदा । नकृष्णभक्तिप्राप्नोतिविनामायानियेयणम् ॥
॥ च नारायणीमायामूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णप्रियाकृष्णभक्ता कृष्णतुल्याविनाशिनी
॥ च तेजःस्वरूपा ॥ स्वेच्छाविग्रहधारिणी । आविमूतावदेवानांतेजसा सुरतिप्रदे ॥
हित्य दैत्यसङ्घाञ्च दक्षपत्न्याञ्च भारते । ललाम दक्षस्तपसा जन्म वानेकजन्मनः ॥

सप्तमोऽध्यायः

हरेरादेशात् प्रवविधानम् ।

भारायण उवाच ।

हरेराहां समादाय हरः प्रहृष्टमानसः । उवाच पार्वतो ग्रीयः हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
 शिवाहाञ्च समादाय शिवा प्रहृष्टमानसा । वाद्यञ्च वादयामास मङ्गलं मङ्गलवते ॥२॥
 मुक्तातामुदतीशुद्धापिप्रतोषौतयाससी । संस्थाप्यरत्नकन्दसंशुक्रधान्योपरिस्थितम् ॥
 भान्नपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विभूषितम् ॥ ४ ॥
 रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवतुगा सनी । रत्नसिंहासनस्थाञ्च संपूज्यमुनिपुङ्गवम्
 रत्नसिंहासनस्थाञ्च संपूज्य च पुरोहितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥

संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान् रत्नभूषितान् ।

देवान्नीलं नागाञ्च समरुच्यं विधिवोचितम् ॥७॥

समरुच्यं परया भक्त्या प्रहृष्टिपुण्ड्रदंष्ट्रयान् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनविराजितान् ॥
 पद्मिगुदाञ्च घस्त्रैश्च सद्गन्धभूषणेन च । पूजार्हद्रूपैर्विविधैः पूजितान् पुण्यके मुने ।

स गङ्गे प्रतं देवी स्थस्तिपावनतूर्यकम् ॥८॥

प्रापात्ताभीष्टस्य तं धीहृणं मङ्गले धटे । मनसा द्वां क्रमेणैव श्रीपचारानि योदश ॥
 तानि मने विधेयानि देवानि विधिधानि च । प्रदक्षी तानिसत्रांलिप्रत्येकंरत्नदानि च ॥
 तौत्तमुपहारञ्च दुर्लभं भुवनत्रये । तच्च सर्वं द्वां मनसा मुञ्जने मुञ्जताः सनी ॥९॥

दक्ष्या सत्यांश्च द्रव्याणि वेदमन्त्रेण सा सनी ।

होमञ्च कारयामास त्रिलोकां तिलसर्पिषा ।

माद्वज्रान् भोजयामास देवानलधिपूजितान् ॥१०॥

संध्यमेव कर्त्तव्ये मुञ्जने मुञ्जताः सनी । प्रत्यहं स्नापयानञ्च चकार पूर्णचन्द्रान् ॥११॥
 मातिदिपसे पिप्रस्तामुवाच पुरोहितः । मुञ्जने मुञ्जने मया देवैर्नि पणिर्दिशाम् ॥१२॥

स्यमया देवैः नियुक्ते सा मती तत्र निम्नगा ।

जगाम देवी गोमोक्तं कृष्णशनिः सनत्की ॥८६॥

गृहीत्वा विप्रदं तस्या गुणकथाधरं वामम् । श्रान्तं वामं माने न्य निजोऽभ्युपगता ॥
प्रषोभिता मया स्वस्य भीरोनेषु शर्मिन्ने । मन्त्राभ्य जगम् वा श्लोकान्तागामनितम्
करोतु पुण्यकं साधनी सुयता सुमनं शिवा । गजगूरुमरन्नागी तुल्यं शङ्ख पुनः ॥
गजगूरुसाहस्राणीत्यने यत्र घनः सवः । न मात्स्यं सर्वनाजंती प्रमत्तम् त्रिमोक्षम् ॥
स्ययं गोमोक्तनाम्नः पुण्यकस्य प्रमायनः । पारंगोममंत्रस्तत्र तत्र तुल्यं मयि ॥
स्ययं देवगणानाम् यस्यार्थागः कृपानिधिः । गणेशानि विष्णुनामो मयि ॥
यस्य स्मरणमात्रेण विप्रनिजं मयेदुभयम् । जगतादेवता मेन विप्रनिजानिपौ विमुः
नानाविधानिद्रव्याणि यस्यादेवानिपुण्यकैः । भुक्त्या मन्त्रादृष्टतः स मेनः स्याद्वरः स्मृतः
शनिदृष्ट्या शिरःश्रेष्ठदृष्टगजवक्त्रम् योजितः । गजाननः शिष्टुस्तेन निश्चयः केनयाप्यते ॥
पशुना पशुरामस्य यदेवदन्तवक्त्रम् । मयि ॥ निश्चयं निश्चयं निश्चयं निश्चयं ॥
पूज्यश्च सयदेवानामस्माकं जगतां विमुः । मयापि पूजनन्तस्य मयि मन्त्रेण वै ॥
पूजास्तु सयदेवानाममे संपूज्य तं जनः । पूजास्तु मयापि निनिर्दिष्टं नृणां ॥
गणेशश्च विनेशश्च विष्णुं शम्भुं दुर्गाशानम् । दुर्गामेतां मयि नृणां पूजयेदेषान्तरम् ॥
गणेशपूजने विष्णुनिर्दिष्टं जगतां मयेन । निष्ठाधिः सूर्यपूजायां शुक्तिध्रीपिष्णुपूजने ॥
भोक्षश्च पापनाशश्च यशश्चैश्वर्यं यर्दनम् । तत्त्वज्ञानसुनृमानां धीजं शङ्करपूजनम् ॥१०१॥
स्वयुद्धिशुद्धिजननं कीर्तितं बहिः पूजनम् । विधिसंस्मृतवद्देव्यु ध्यानमृत्युं लभेन्नरः ॥१०२॥
दाता भोक्ता च भयति शङ्कराग्निनिषेधनात् । हरिमक्तिप्रदश्चैव परं दुर्गाच्चर्चनं शिष्यम् ॥
धिपरीतं त्रिजगतामेतेषां पूजनं विना । पयं क्रमो महादेव कल्पेकल्पेऽस्ति निश्चितम् ॥
पते शश्वद्विद्यमाना नित्याः सृष्टिपरायणाः । आविर्भावतिरोभावोचैतेषां शिवरेच्छया
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र विरराम समातले । ग्रहणा देवता विप्राः पार्वत्यासदशङ्करः ॥१०६॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे धृताज्ञाप्रहर्णं

नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः

हरैरादेशात् व्रतविधानम् ।

नारायण उवाच ।

हरैराज्ञां समादाय हरः प्रदृष्टमानसः । उवाच धार्यतो ग्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
शिवाज्ञाञ्च समादाय शिवाः प्रदृष्टमानसा । वायञ्च वाद्यामास मङ्गलं मङ्गलव्रते ॥२॥
सुजातासुदतीशुद्धाधिप्रतीधौतयाससी । संस्थाप्यरत्नकलसं शुकुधान्योपरिस्थितम् ॥
भाद्रपद्वयसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विभूषितम् ॥ ४ ॥
रत्नासनस्यै रत्नादया रत्नोद्भवसुता सती । रत्नसिंहासनस्याञ्च संपूज्यमुनिपुङ्गवाम्
रत्नसिंहासनस्यञ्च संपूज्य च पुरोहितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥

संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान् रत्नभूषितान् ।

देवान्तराञ्च नागाञ्च समर्च्य विधियोधितम् ॥७॥

समर्च्य परया भक्त्या ब्रह्मपिण्डमदेश्वरान् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनविराजितान् ॥
बहिर्गुहाञ्च घस्त्रैश्च सश्रनभूषणेन च । पूजाहंद्रव्यैर्विविधैः पूजितान् पुण्यके मुने ।

सगामेनै व्रतं देवी स्यस्तिवाचनपूर्वकम् ॥८॥

भाषाह्याभीष्टद्य तं धीरुष्णं मङ्गले धटे । भक्त्या दक्षी क्रमेणैव चोपचाराणि वोढुश ॥
यानि व्रते विधेयानि देवानि विविधानि च । प्रदक्षी तानिसर्वाणिप्रत्येकंफलदानि च ॥
प्रतोषमुपहारञ्च दुर्लभं भुवनत्रये । तच्च सर्वं दक्षी भक्त्या सुमने सुवता सती ॥१२॥

दद्यात् सर्वाणि द्रव्याणि वेदमन्त्रेण सा सती ।

होमञ्च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिणा ।

ब्राह्मणान् भोजयामास देवानतिथिपूजितान् ॥१३॥

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्ये सुमते सुवता सती । ग्रन्थहं सावधानञ्च चक्रार पूर्णवत्सरम् ॥१४॥
समाप्तिदिपसे पिप्रस्तामुवाच पुरोहितः । सुमते सुवते मदां देहोतिपतिदक्षिणाम् ॥१५॥

श्रुत्वा पुरोहितोक्तं सा विलप्य सुरसंसदि । मूर्च्छां प्रापमहामायामायामोहितचेत्ना
तां ते च मूर्च्छितां दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवाः । शङ्करं प्रेययामास ब्रह्मा विष्णुश्चनारद ।
संप्रेरितः सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा । शिवः समुद्यमश्चक्रे प्रवक्तुं घदतां वर ।
' श्रीमहादेव उवाच ।

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते भविष्यति न संशयः । साम्प्रतं चेन्ननं कृत्वा मदीयं वचनं शृणु ।

शिवः शिवां तामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठीष्टतालुकाम् ।

यक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम् ॥२०॥

द्विनं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखावहम् । यशस्करञ्च फलदं प्रयक्तुमुपचक्रमे ॥२१॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद्व्येदे न रूपितम् । सर्वसम्मतमिष्टञ्च धर्मार्थं धर्मसंसदि ॥२२॥

सर्वेषां कर्मणां देवि सारभूतावदक्षिणा । यशोदाफलदानित्यर्थं धर्मिष्ठे धर्मकर्मणि ॥

देवं वा पैतृकं वापिनित्यं नैमित्तिकं प्रिये । यत्कर्मदक्षिणाहीनं तन्सर्वं निष्फलं भवेत्

दाता च कर्मणा तेन कालसूत्रं यजेतु ध्रुवम् ॥२४॥

अद्यान्ते दैत्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीडितः । दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तन्कालं ननु न दीयते ॥

तन्मुहूर्त्तं व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत् । चतुर्गुणा दिनातीते पक्षे शतगुणा भवेत् ॥

मासे पञ्चशतगुणा षण्मासे तच्च चतुर्गुणा । संवत्सरे व्यतीते तु सत्कर्म निष्फलं भवेत् ॥

दाता च मर्कं याति यावद्वर्षं सहस्रकम् । पुत्रपौत्रघने श्वर्यं क्षपमाप्नोति पातकात् ।

धर्मो नरो भवेत्तस्य धर्महीने च कर्मणि ॥२८॥

श्री विष्णु उवाच ।

रक्ष स्वधर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि । सर्वथाऽप्य भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने ॥२९॥

ब्रह्मोवाच ।

यथा येन निर्मलेन न धर्मं परिरक्षति । धर्मो नरो च धर्मज्ञे तस्य धर्मो चिरश्च्यति ॥३०॥

धर्म उवाच ।

मां रक्ष यत्नतः साध्वि प्रदाय प्रतिदक्षिणाम् ।

मयि स्थिते महामाध्वि सर्वं मद्रं भविष्यति ॥३१॥

देवा ऊचुः ।

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति । चयं तव व्रते पूर्णं कुर्मस्ते पूर्णमानसम् ॥३२॥

मुनय ऊचुः ।

कृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम् ।

स्थितेष्वस्मानु धर्मज्ञे किमभद्रं भविष्यति ॥३३॥

सनत्कुमार उवाच ।

शिष्ये शिष्यं देहि मह्यं न चेद्द्वयतफलं त्यज । सुचिरं सञ्चितस्यापि स्वात्मनस्तपसःफलम्

कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहन्तुतत्फलम् । प्राप्स्यामियजमानस्य संपूर्णकर्मणःफलम्

पार्यत्युवाच ।

किं कर्मणा मे देवेशा किं मे दक्षिणया मुने ।

किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्ता च दक्षिणा ॥३६॥

बृक्षार्चने फलं किं वै यदि भूमिर्न चाचर्यते ।

गते च कारणे फलं कुतः शस्यं कुतः फलम् ॥३७॥

प्राणास्त्यक्ताः स्येच्छया चेद्देहेन किं प्रयोजनम् ॥३८॥

शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनाञ्च सुरेश्वराः । यदि भर्ता व्रते देयः किं व्रतेन सुतेन वा

भर्तृपेशश्च तनयः केवलं भर्तृमूलकः ।

यत्र मूलं भवेद् भ्रष्टं तद्वाणिज्यञ्च निष्फलम् ॥ ४० ॥

श्रीविष्णु उवाच ।

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः । नष्टे धर्मे च धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेन वा

प्रशोषाय ।

स्वामिनश्च परोधर्मो धर्मात् सत्यञ्च सुवने । तस्य सङ्कल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम्

पार्यत्युवाच ।

निरूपितश्च येदेपुस्वंशब्दो धनवाचकः । तद् यस्यास्तीतिस स्वामी येदं शृणु मद्वचः

तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामिनो भवेत् ।

अदो व्यपस्था मयता वेदज्ञानामपोधना ॥ ४३ ॥

ધાર્મિક ઉત્થાન ।

श्री धितान्यस्यसाधि स्यामिन्दातुमक्षमा । दग्नीध्रुवमेकाङ्गे दग्नीर्दानद्वौसर्गौ ।
पार्यन्त्यवान् ।

पिता ददाति जामात्रे सच गृह्णाति तन्मुनाम् । न धुनं विपरिनिश्च धूर्नो धुनिपरायणाः
देवा ऊचुः ।

युद्धिस्वरूपा एवं दुर्गे युद्धिमन्तां पथं रथया । वेदभेदेद्यादैषु के वा तां जेतुमीक्ष्यताः ॥
निरूपितापुण्यकेतु मते स्यामीश्वर दक्षिणा । धूर्ताधुनो य एव धर्मो विपरिणतो नाधर्मः
पार्थरथपाथ ।

केवलं धेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम् ।

•अल्पान् लौकिको वेदाहोकावाञ्छ कस्यजेन् ॥४६॥

वेदे प्रकृतिपुंसोऽध्वरीयान् पुरुषोऽधुषम् । नियोधतमुराः प्राज्ञावालाहं कथयामि किम् ॥
 दृहस्पतिरय्याच ।

न पुमांसं विनासृष्टिर्न साधि प्रकृतिविना । श्रीकृष्णश्च द्वयोन्यथा समौ प्रकृतिपूर्वौ
पार्यत्युभाव ।

यः कृष्णः स्रष्टा सर्वेषां सौंदर्येण सगुणः पुमान् ।

'पुमान् गरीयान् प्रहृतेस्तथापि न-ततश्च सा ॥ ५२ ॥

पतस्मिन्नन्तरं देवा मुनयस्तत्र संसदि । रत्नोद्गसारनिर्माणमाकाशे ददृशू रथम् ॥५३॥
पार्षदैश्च परिवृतं सर्वैः श्यामैश्चतुर्भजैः । धनमालापरिवृतं रत्नभूषणपतिः ।

अथरहा मुदा यानादाजगाम सभातिलम् ॥ ५४ ॥

मुष्टुष्टं सुरेन्द्रास्ते देवं चैकुण्ठवासिनम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरमीशश्चतुर्भुजम् ॥ ५५ ॥
लक्ष्मीसरस्वतीकान्तं शान्तं तं सुमनोहरम् । सुखदृश्यममकानामदृश्यं कीदृजन्मभिः॥

॥ फोटिचन्द्रसमग्रसम् । अमूल्यरत्नरचितं चारुभूषणभूषितम् ॥ ५७ ॥

ॐ - सेवकैः सन्ततं स्तुतम् । तद्भासया च प्रच्छन्नैर्वेष्टितश्च सुरर्षिभिः ॥

वासयामास तं ते च खसिहसने षरे । तं प्रप्तेमुञ्च शिरसा ब्रह्मविष्णुशिषादयः ॥५६॥

सम्पुटाङ्गलयः सर्वे पुलकाद्वायुलोचनाः ॥ ६० ॥

सस्मितस्तांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुरत्यागिरा । प्रबोधितः सुबोधकः प्रवक्तुमुपवक्रमे ॥६१॥

श्री नारायण उवाच ।

सहबुद्धया बुद्धिमन्तो नयन्तु मुचिर्तसुराः । सर्वे शक्त्या यथा विश्वे शक्तिमन्तो हि जीयिनः

ब्रह्मादिनृपपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत् । सत्त्वं सत्त्वं विनामाञ्चमया शक्तिः प्रकाशिता

भाविमूला च सा मत्तः सृष्टी देयी मदिच्छया । तिरोहिता च स शीघ्रे सृष्टिसंहरणे मयि

सृष्टिकर्त्री च प्रकृतिः सर्वेषां जननी परा । मम तुल्या च मन्मायातेन नारायणी स्मृता

सुचिरं तपसा तत्तं शम्भुना ध्यायताञ्च माम् । तेन तस्मै मया दत्ता तपसां फलरूपिणी

प्रतश्च लोकशिक्षार्थमस्या ऽ स्यार्थमेव च । स्वयं प्रतानां तपसां फलदात्री जगत्प्रयेः

माययामोहिताः सर्वे किमस्या या मत्तं प्रतम् । साध्यमभ्यासतत्फलं कल्पेकल्पे पुनः पुनः

सुरैश्चरा मर्दशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । कलाः कलांशकपाश्च जीयिनश्च सुरादयः ॥६६॥

मृना विना घटं कर्तुं कुलालश्च यथाक्षमः । विना स्वयं स्वयंकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः

विना शक्त्या तयाऽहञ्च स्वसृष्टिं कर्तुमक्षमः ॥ ७० ॥

शक्तिप्रधाना सृष्टिश्च सर्वदर्शनसम्पत्ता । भटमात्मना हि निर्लिप्तोऽदृश्यः स्वार्थान्यदेहिनाम्

देहाः प्राकृतिकाः सर्वे नश्यताः पाञ्चर्मातिकाः । भटं नित्यः शरीरी ऽ मानुषिप्रहविप्रहः

सर्पाधाराञ्च प्रकृतिः सर्पात्माहं जगत्सु मे ॥ ७३ ॥

भटमात्मामनो ब्रह्मा ज्ञानरूपो महेश्वरः । पञ्च प्राणाः स्वयं विष्णुर्बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी ॥

मेधा निन्द्रादयश्चीताः सर्पाश्च प्रकृतेः कन्धाः । सा च शैलेन्द्रकन्यया इति वेदे निरूपिष्य

भटं गोलोचनायश्च पैकुण्डराः सनातनः । गोर्धमांशः परितृणस्मरैश्च द्विभुजः स्वयम् ॥

चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मणः पार्श्वेर्द्वैतः ॥ ७६ ॥

ऊदुष्यं परश्च पैकुण्डान् पञ्चमाङ्कोटियोजने । ममाधयश्च गोलोके यत्राहं गोविक्तायनिः

प्रनाराध्यो हि द्विभुजः स च तनूकन्ददायकः ।

यदूर्ध्वं चिन्तयेद् यो हि तच्छ तनूकन्ददायकम् ॥ ८८ ॥

यतं पूर्णं कुरुशिवे शिवं दत्त्वा च दक्षिणाम् । पुनः समुचिन्नं मूल्यं दत्त्वा नार्थं ग्रहीष्यसि
विष्णुदेहा यथा गावो विष्णुदेहस्तथा शिवः ।

द्विजाय दत्त्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥ ८० ॥

यज्ञपत्रो यथा दातुं क्षमः स्वामी सदैव तु । तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरीति श्रुतेर्मतम्
इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरधीयत ।

दृष्टास्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यताः ॥ ८२ ॥

कृत्या शिवा पूर्णहोमं सा शिवं दक्षिणां ददौ । स्वस्त्युत्तयाच्च जग्राह कुमारो देवसंसदि
उषाच दुर्गा संव्रन्ता शुष्ककण्ठीष्ठतालुका । पुटाञ्जलिपुता चित्रं हृदयेन विद्रुयता ॥
पार्वत्युषाच ।

गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम् । गवां लब्धं प्रवक्ष्यामि देहि मत्स्वामिनं द्विज
तदा दत्त्वा मिषि प्रेम्णो दानानि विविधानि च । आत्महीनो हि देहधर्किकर्मकर्तुमीश्वरः
सनत्कुमार उवाच ।

गवां लक्ष्णेण मे देवि विप्रस्य किं प्रयोजनम् । दत्तस्यामूल्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च
म्यस्य म्यस्य म्ययं कर्त्ता लोकाः सर्वो जगत्प्रये ।

कर्त्तुरेपि सितं कर्म भवेत् किं वा परेच्छया ॥ ८८ ॥

दिगादयं पुन कृत्यान्नमित्यामि जगत्प्रयम् । बालकानां बालिकानां समूहस्मितकारणम्
इत्युनया प्रह्वजः पुत्रो गृहीत्वा शङ्कुरं मुने । सन्निधौ वासयामास तेजस्यो देवसंसदि
दृष्ट्वा शिवं गृहमाणं कुमारेण च पार्वती । समुद्यता तनुं त्यक्तुं शुष्ककण्ठीष्ठतालुका ॥
विनिगम्य मनसा सार्वार्थ्यमेव दुस्त्ययम् । न द्वयोऽमीष्टदेवश्च न च प्राप्तं फलं यत्
यत्स्मितमनो देवाः पार्वती सहिमास्तदा । सद्यो ददृशुराकाशे तेजसा निकरं परम् ॥ ९३ ॥
कोटिगूर्णप्रमोदुर्लभं प्रज्वलञ्च दिशोदरा । कोटासरीलं पुनतः सार्वदेवा विनिर्युतम् ॥
सर्पान् कूर्पणं प्रच्छन्नि विस्तीर्णमण्डलाहनिम् । दृष्ट्वा न च गगनमनुपुष्टुम्ने क्रमेण ॥
विष्णुरयम् ।

... य सर्वान्नि यज्ञोऽप्रविशेत्तु य । सोऽयं नैवोद्गाराध के धरं योमहाविगाद

ब्रह्मोवाच ।

वेदोपयुक्तं दृश्यं यत्प्रत्यक्षं द्रष्टुमीश्वर । स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तोमि तत्परः ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तोमि ज्ञानपरञ्च किम् ।

सर्वानिर्वचनीयं यं तं त्वां स्वेच्छामयं विभुम् ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच ।

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः । किं स्तोमि तेजोरूपः सद्ब्रह्मकानुग्रहविग्रहम् ॥ ६९ ॥

देवा ऊचुः ।

के धर्मं त्वत्कलाशास्त्रकिंघारवांस्तोतुमीश्वराः । स्तोतुं न शक्वावेदार्थनचशक्तासरस्वती ।
मुनय ऊचुः ।

वेदान्पठित्वाचिद्वांसौ धर्मं किंवेदकारणम् । स्तोतुमीशानघाणीचत्वाश्चवाङ्मनसोऽपरम् ।
सरस्वत्युवाच ।

यागधिष्ठातृदेवीं मायदन्तिवेदपादिनः । किञ्चिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहोवाङ्मनसोऽपरम् ।
सावित्री उवाच ।

वेदप्रसूहं नाथ सुष्टा त्वत्कलया पुरा । किं स्तोमि-स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ।
लक्ष्मीरुवाच ।

चन्द्रशविष्णुकान्ताहं जगत्पोषणकाणिनी । किं स्तोमि-रथरक्तासृष्टाजगताधीजकारणम् ।
हिमालय उवाच ।

सन्ति सगतोर्मानाधकर्मणास्थापरं परम् । स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तोमि-स्तोतुमक्षमः ।
कमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवा विरगमुमुने । वैद्यश्च मुनयः सर्वे पार्थवी स्तोतुमुद्यता ॥

गीतपञ्चजडभारं विभ्रती सुद्यता मने । प्रेरिता परमान्मानं घनाराधयं शिष्येन च ॥
चलद्वाग्निशिखारूपा तेजोमूर्तिमती सती । तपसां फलदा भाना जगतां सर्वकर्मणाम् ॥

पार्थत्युवाच ।

अप्य जानासि मां भद्रनाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी । केषा जानन्ति वेदज्ञा वेदाद्यावेदकारकाः ।

त्वद्दशास्त्यां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति त्वत्कलाः ।

त्वञ्चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः ॥ ११० ॥

सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात् स्थूलतमो महान् ।

चिश्चस्त्वं चिश्चरूपश्च चिश्चबीजं सनातनः ॥ १११ ॥

तत्त्वं त्वंकारणं त्वञ्चकारणानाञ्चकारणम् । तेजः स्वरूपो भगवान्निराकारो निराश्रयः
लितो निर्गुणः साक्षी स्वात्माराधनः परात्परः । प्रकृतीशो चिराद्बीजं चिराद्भूतं स्त्वमेव

सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे ॥ ११२ ॥

प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वञ्च चेदान्यो न कचिद्भवेत् ।

जीयस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिविम्बकः ॥ ११४ ॥

मे त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायकः । ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरिणम्
केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥ ११५ ॥

पुष्पाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥ ११६ ॥
तुभुजं कमनीयञ्च किञ्चोरं श्यामसुन्दरम् । शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥

यं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते सन्तर्गं मुदा । ध्यायन्ति योगिनो यत्तत्कुलस्तेजस्विनं विना
तेजो विघ्नतां देयं देवानां तेजसा पुरा । भाविर्मृता सुराणाञ्च वचाय ब्रह्मणः स्तुता ।

तेन्या तेजःस्वरूपाऽहं पिभृत्य विग्रहं विभो । स्वीरूपं कमनीयञ्च विधाय समुपस्थिता
मायया तव मायाहं मोहयित्वा सुरान् पुरा । निहत्य सर्वान् शैलेन्द्रमगमन्तं हिमाचलम्

तोऽहं संस्तुता देवैस्नाम्नाभ्येन पीडितैः । भयं दक्षजायायां शिवस्री भयजन्मनि ।
यनया देहं दशरथे गिराहं शिवनिन्दया । भयं शैलजायायां शैलापीशस्य कर्मणा ।

यनेकतन्मा प्रातः शिवध्यात्रापि जन्मनि । पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणापि पुः
रङ्गाञ्जञ्च तत्तेजो नालभाम् देवमायया । स्मामि त्वमेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥

यने भयङ्गिणं पुत्रं मन्त्रमुच्छामि साम्प्रतम् ।

देवेन पिदिता घेदे नात्रैव्यम्यामिदक्षिणा ॥ १२६ ॥

ममं कृपासिन्धो कृपां मां कर्तुमर्हसि । एषुनया धार्यती तत्र विरराम च नाद

भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः । सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥
 संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तिः । सुपुण्यकवतफलं लभते नात्र संशयः ॥
 विष्णुस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् सर्वसम्पत्तिवर्द्धनम् । सुखदंमोक्षदंसारं स्वामिसौभाग्यवर्द्धनम्
 सर्वसौन्दर्यवीजञ्च यशोराशिविवर्द्धनम् । हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिविवर्द्धनम् ॥१३१॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणारदसंवादे पुण्यकवते
 पार्वतीहृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

स्वप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रदानञ्च ।

नारायण उवाच ।

पार्वतीस्तवर्तनं धृत्या श्रीकृष्णः करुणानिधिः । स्वरूपं दर्शयामास सर्वाङ्गरूपं सुबुल्लभम्
 तुल्या देवी ध्यानलगा कृष्णैकतानमानसा । ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सारमोहनम्
 नद्रत्नसारनिर्माणे हीरकेण परिष्कृते । युक्ते भाणिस्ममालामी रत्नपूर्णं मनोरथे ॥ ३ ॥
 हिसंशुद्धपीतांशुधरं धंशीकरं परम् । धनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ४ ॥
 केशोरघ्ययसं वेशविचित्रं चन्दनाङ्कितम् । चारुस्मितास्यमादृत्य तच्छारदेनुविनिन्दकम्
 गलतीमालयसंयुक्तमयूरपुच्छचूडकम् । गोपाङ्गनापरिवृतं शपायशस्त्रयलोज्ज्वलम् ॥
 त्रेदिकन्दर्पलापण्यलीलाधाम मनोहरम् । भर्तीय हृष्टं सर्वेषु भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ५ ॥
 इति रूपं रूपयती पुत्रं तदनुकूपकम् । मनसा धरयामास वरं संग्राह्यं सत्कृतम् ॥ ६ ॥
 रं दत्त्वा परैरास्तु यद्यन्मनसि चाञ्छितम् । दत्त्वार्माष्टं सुरैर्म्यथ तत्तेजोऽन्तरर्षीयन्
 मारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम् । ददुर्निरयमं तत्र ब्रह्मण्यै रूपान्विताः ॥
 ह्यनेभ्योददीदुर्गास्त्रानिषिचिधानि च । सुषर्णानि चमिधुम्योषन्दिम्योचिश्चनन्दिता
 ह्यणान् भोजयामास देवांश्च पर्यतांस्तथा । शङ्करं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः ॥१२॥

दुन्दुभि वाद्यामारा कात्यामारा मङ्गलम् । सङ्कीर्णं गायत्रामात्रं हविमन्त्रि सुन्दरम्

यत्नं समाप्य सा दुर्गा वृषा दानानि मम्मिना ।

रायां ॥ भोजयित्वा तु शुभुते श्यामिना साह ॥ १४ ॥

तामपूज्य परं रत्नं कर्तुं रादिमुवागिनम् । समानं प्रदाय सर्वेषां शुभुते तेन कौतुकात्
पयःप्रेतनिर्गो शय्यो रम्यो मष्टयनिर्मिताम् पुष्पगन्धनसंगुको कम्पूरीकृतमान्त्रिकम्
रहास श्यामिना साहं सुप्याय परमेश्वर ॥ १५ ॥

कौलासस्त्रीकदेशे ॥ गये चन्दनकातने । गुगगिधुमुमानेन वायुना सुगर्भात्ते ॥ १७ ॥
भ्रमरपयनिसंगुके पुष्पकोपिज्जन्मभूते । पित्रहाय सुगसिक्ता तत्र तेन सहायिका ॥ १८ ॥
रैतः पतनफाले ॥ स विष्णाविष्णुमायया । विधाय विप्रकपन्तु आजगाम स्नेहं हम् ॥
रक्ष्मघन्तं विना तीलं कुचेलं मिश्रयं मुने । मनीष शुद्धदशनं वृष्ण्या परिपीडितम् ॥ २० ॥
भर्तीष कृशमात्रञ्च विन्ननिलकमुग्धवल्गम् । घट्टुकाकुम्भरं दीनं दैन्यान्कुन्तिसनमूर्तिमम् ।
आजुहाय महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः । वृण्डायलम्बनं वृष्या रतिद्वारेऽनिदुर्बलः ॥ २२ ॥
ब्राह्मण उवाच ।

किङ्करोपि महादेव रक्ष मां शरणागतम् । सत्तरात्रिप्रतेऽतीति पारणाकाङ्क्षिणं श्रुधा ॥
किङ्करोपि महादेव ॥ तात करुणानिधे । पश्य वृद्धं जराग्रस्तं वृष्ण्या परिपीडितम् ॥
मातृवत्तिष्ठ मामन्नं प्रयच्छ घासितं जलम् । अनन्तरजोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम् ॥ २५ ॥
मातर्मातर्जगन्मातरेहिनाहं जगद्वयहिः । सीदामि वृष्ण्या कस्मात् स्थितायामात्ममातरि
इति फाकुम्भरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतोमुने । पपातधीप्यंशप्यायां ॥ योनौ प्रवृत्तेस्तदा
उत्तस्थौ पार्वती अस्ता सूक्ष्मवस्त्रं विधाय च । आजगाम रतिद्वारं पार्वत्या सह शङ्करः
वदशं ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीडितम् । वृद्धं लुलितगात्रञ्च विभ्रतं दण्डमानतम् ॥ २६ ॥
तपस्विनमशान्तञ्च शुष्ककण्ठीष्ठतालुकम् । कुर्वन्तं परया शक्त्या प्रमाणं स्तवनं तयोः
श्रुत्वा तद्वचनं तत्र नीलकण्ठः सुघोत्तमम् । उवाच परया प्रीत्या प्रसन्नस्तं प्रहस्य च
शङ्कर उवाच ।

नन्दने कत्र विप्रर्षे घट्टु । किङ्काम भवतः विप्रं ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

पार्वत्युवाच ।

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाम्यादुपस्थितः ।

अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः ॥ ३३ ॥

अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम् । तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विजाः ।
तीर्थान्यतिथिपादेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम् । तत्पादघाततोयेन मिथितानि लभेद्गृही
संघातः सर्वतीर्थेषु सर्वपक्षेषु दीक्षितः । अतिथिः पूजितो येन स्वात्मशक्त्या यथोचितम्
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले । अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम् ॥
नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानि च यामिह । अन्येवातिथिसेवायाः कलां नार्हन्ति पौंडरीकम्
पूजितोऽतिथिर्यस्य भयनाद्विनिवर्तते । पितृदेवाग्रयः पञ्चाङ्गगुरवो यान्त्यपूजिताः ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

तानि सर्वाणि लभते नाऽभ्यर्च्यतिथिमीप्सितम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मण उवाच ।

नानासि वेदान् वेदज्ञे वेदोक्तं कुरुपूजनम् । क्षुत्तृण्णां पीडितो मातर्यचनञ्च धृतो धृतम्
याधियुक्तो निराहारो यदा याऽनशनप्रती । मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः ॥

पार्वत्युवाच ।

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये चेन् सुदुर्लभम् ।

दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

ते सुमतया सर्वमुपहारं समाहृतम् । नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः ॥
धुमते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजयिष्यति । इत्यामिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च
साताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः ।

पुत्रः पञ्चविधः साध्वि कथितो वेदवादिभिः ॥ ४६ ॥

पुत्रादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः । कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः
रूपज्ञीगर्भधात्री स्तनदात्रीपितुः स्वसा । स्वसा भानुः सपत्नी च पुत्रमाप्यान्नदायिका

भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च धीर्ष्वजः शरणागतः ।

धर्मपुत्रश्च चत्वारो धीर्ष्वजो धनमागिति ॥ ४६ ॥

श्रुतृद्भ्यांपीडितो मातृवृद्धोऽहं शरणागतः । साम्प्रतंतव वन्द्याया अनाथः पुत्रएव
पिष्टकं पद्मान्नञ्च सुपकानि फण्डानि च । नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानि च ॥
पक्वान्नं स्वस्तिकं क्षीरमिश्रमिश्रुषिकारजम् । घृतं दधि च शाल्यग्रं घृतपक्वञ्चव्यजनम्
लङ्कुकानि तिलानाञ्च भृष्टान्नैःसगुडानि च । ममाज्ञातानि घस्तूनि सुधयातुल्यकानि च
ताम्रबूलञ्चयरं रम्यं कर्पूरादिसुधासितम् । जलं सुनिर्मलं स्वादु द्रव्याण्येतानि घासितम्
द्रव्याणि यानि भुक्त्या मे चारु लब्धोदरं भवेत् । अनन्तरज्ञोद्भवजे तानि मह्यं प्रदास्यसि
स्वामी ते भिजगत्कर्त्ता प्रदाता सर्वसम्पदाम् । महालक्ष्मीस्वरूपात्वं सर्वैर्धर्म्यप्रदायिनी
रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम् । यद्विशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ॥ ५३ ॥
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरी भक्तिं इदं सति । हरिप्रिया हरेः शक्तिस्तथमेव सर्वदा सदा ॥ ५८ ॥
ज्ञानं मृत्युञ्जयं नाम दातृशक्तिं सुखप्रदाम् । सर्वसिद्धिञ्च किं मातरदेयं स्वसुताय च ॥
मनः सुनिर्मलं हृदया धर्मं तपसि सन्ततम् । श्रेष्ठे सर्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके ।
स्वकामात् कुर्वते कर्म कर्मणो भोग एव च ।

- भोगी शुभाशुभी ज्ञेयो तौ हेतू सुखदुःखयोः ॥ ६१ ॥

दुःखं न कस्माद्वपति सुखं वा जगदमियके । सर्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो युषः ।
कर्म निर्मूलपदयेय सग्नो हि सततं मुदा । हरिभाषणबुद्ध्या तत्तपसा भक्तसङ्गतः ॥
इन्द्रियद्रव्यसंयोगासुर्यं विष्यंसनावधि । हरिसंलापकपञ्च सुखं तदसर्वकालिकम् ॥ ६४ ॥
हरिस्मरणाशीलातां मायुर्यानि सतां सति । न तेवामीश्वरः कालो न चमृत्युञ्जयो भूषम्
चिरं जीवन्ति ते भग्नः भारतेचिरजीविनः । सर्वसिद्धिञ्च विजाय स्वच्छन्दसर्वगामिनः
आतिमग्ना हरेर्मन्त्रा जानन्तिकोटिजन्मनः । कथयन्ति कथां जन्म लभन्तेत्येच्छयामुदा
परं पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्वापलीलया । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवायै परार्थञ्च भ्रमन्ति ते ॥
क्षेत्रपानां पदलशान् सद्यः पूता वारुण्यता । कालं गोदोहनमात्रं तीर्थं यत्र वसन्ति ते
नन्तेनन्त्यादिजन्मन्त्रः सग्नो यत्नं प्रविरथति । तं धेनुर्यं तीर्थं पूतं प्रयदन्ति पुराविदः

पुरुषाणां शतं पूर्वमुदरन्ति शतं परम् । लीलया भारते भक्त्या सोदराज्मातरं तथा ॥७१॥
मातामहानां पुरुषान् दशपूर्वान् दशापरान् ।

मातुः प्रसूमुदरन्ति दारुणात् यमताडनात् ॥ ७२ ॥

भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये । ते याताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः ॥
न लिप्ताः पातके भक्ताः सन्तनं हरिमानसाः । यथाग्नयः सर्वभक्ष्या यथाद्रव्येषु धायवः
त्रिकोटिजन्मतोजन्तुः प्राप्नोति जन्ममानवम् । प्राप्नोति मकसङ्गं स मानुषेकोटिजन्मनः
भक्तसङ्गान् भवेन् भक्तेरङ्कुरो जीविनः सति । अभक्तदर्शनादेव सच प्राप्नोति शुष्कताम्
पुनः प्रकुलतां याति घैष्णवालापमात्रतः । मङ्कुराद्याविनाशी च घर्दते प्रतिजन्मनि ॥७३॥
तत्तरोर्यज्ञमानस्य हरिदास्यं पलं सति । परिणामे भक्तिपाके पार्यदश्च भयेदरैः ॥७४॥
महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम् । सर्वसृष्टेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मणः ॥
तस्मान्नारायणे भक्तिं देहि मामग्निके सदा । न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वयादिना
तद्वन्तं लोकशिष्यार्थं स्वतपस्तपूजनम् । सर्वेषां फलदात्री त्वं नित्यरूपा सनातनी ॥
गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः । त्वत्क्रोडमागतः क्षिप्रमित्युत्तवान्तरधीयत
कृत्यान्तर्धानमीराश्च बालरूपं विधाय सः । जगाम पार्वतीतल्यं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्
तल्पस्ये शिष्यपीठ्यं च मिश्रितः स बभूव ह । ददर्श मेहशिखरं प्रसूनो बालको यथा ॥
शुद्धचमरकवर्णामः कोटिचन्द्रसमप्रभः । सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षुरग्निमपि यद्वक्त्रः ॥८५॥
भतीय सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः । मुक्तं निरुपमं विभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥८६॥
सुन्दरं लोचने विभ्रधारुपप्रविनिन्दके । भोष्ठाधरपुटं विभ्रन् पक्वविभ्यविनिन्दकम् ॥८७॥
कपालञ्च कपोलञ्च परमं सुमनोहरम् । नासाग्रं रुचिरं विभ्रन् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम् ॥
शैलोक्थेषु निरुपमं सर्वार्ङ्गं विभ्रदुत्तमम् । शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम् ८८
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारसंवादे गणेशोत्पत्तिर्नाम
अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः

हरी तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम् ।

नागायण उवाच ।

हरी तिरोहिते भूते दुर्गा च शङ्करस्तदा । ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा यन्माम पतिं मे मुने ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

अये पित्रेन्द्रातिवृद्ध क गतोऽसि क्षुधातुरः । हे तान दर्शनं देहि प्राणाश्च रक्ष मे विमो
शिव शीघ्रं समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु । क्षणमुगमनसोरेवः प्रत्यक्षमाययोरगतः ॥३॥

अगृहीत्या गृहान् पूजां गृहिणोऽतिथिभिश्चर ।

यदि याति क्षुधार्त्तश्च तस्य किं जीवनं कृता ॥ ४ ॥

पितरस्तत्र गृह्णन्ति पिण्डदानञ्च तर्पणम् । तस्यादुति न गृह्णन्ति वङ्गिः पुण्यं जलं सुगः
हव्यं पुण्यं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम् । अमेत्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ॥
एतस्मिन्नगते तत्र धाम्यमूषाशीर्णिणी । कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुभाय शुचानुरा ॥
शान्ता भय जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे । हृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम्
सुपुण्यकप्रतप्तरोः फलरूपं सनातनम् । यत्तेजो योगिनः शङ्कत् ध्यायन्ते सन्ततं मुदा
ध्यायन्तेष्वेष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । यन्मपूज्यस्य सर्वांगे कल्पे कल्पेच पूजनम्
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति । पुण्यराशिस्वरूपञ्च स्वसुतं पश्य मन्दिरे ॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं उयोतीरूपं सनातनम् । पश्यत्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहप्रदम्
तव चाञ्छापूर्णवीजं तपः कल्पतरोः फलम् । सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पानन्दकम्
नायं विप्रः क्षुधार्त्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः । किं वा विलपसे दुर्गे कथावृद्धः कथातिथिः
सस्वतीत्येवमुक्त्वा विरराम च नागद ॥१४॥

अस्ता ध्रुत्वाऽकाशवाणीं जगामस्वानलयं मती । ददर्श बालं पर्यङ्के शयानं सस्मितं मुदा
शतचन्द्रसमप्रभम् । स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं गृहीतलम् ॥ १६ ॥

कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया भुदा । उमेति शब्दं कुर्वन्तं हृदन्तं तं स्तनायिनम्
दृष्ट्वा तमद्भुतं रूपं प्रस्ता शङ्करसन्निधिम् । गत्वेत्युवाच प्राणेशं मङ्गलं सर्वमङ्गला ॥१८

पार्वत्युवाच ।

गृहमागच्छ प्राणेश तपसां फलदायकम् । कल्पे कल्पे ध्यायसे यं तं परमागत्यमन्दिरम्
शोभं पुत्रमुखं पर्य पुण्ययीजं महोत्सवम् । पुष्पाभनारकप्राणं कारणं भवतारणम् ॥२०

ज्ञातञ्च सर्वसौख्येषु सर्वयज्ञेषु दीक्षुणम् । पुत्रस्तुदर्शनस्यास्य कलां नार्हति पौङ्गशीम्
सर्वदात्रेन यत्पुण्यं यन्पृथिव्याः प्रदक्षिणात् । पुत्रदर्शनपुण्यस्य कलां नार्हति पौङ्गशीम्

सर्वस्तपोमिर्यत्पुण्यं यदेवानगनेर्जनैः । मत्पुत्रीद्वयपुण्यस्य कलां नार्हति पौङ्गशीम् ।
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः । सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कलां नार्हति पौङ्गशीम्

पार्वती घनं धृत्या शिवः प्रहृष्टमानसः । आजगाम स्वमघनं क्षिप्रं स कान्तया सह ।
ददर्श तल्पे स्थितं तत्तत्काञ्चनसन्निभम् । हृदयस्थं च यद्गुणं तदेवाति मनोहरम् ॥२५॥

दुर्गा तत्पात् समादाय कृत्वायक्षसि तं सुतम् । बुभुषानन्दजलधौ निमग्नास्तेषुवाचह
संप्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सन्नातनम् । यथा मनो वद्विष्यसहस्रा प्राप्यसद्वनम् ।

कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा । मानसं परिपूर्णञ्च बभूव च तथा मनः ॥
सुचिरं गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम् । इहा तुष्टा यथा वत्स तथाहमपि साम्प्रतम् ॥

सद्रत्नं सुचिरं भ्रष्टं प्राप्य हृष्टो यथा जनः । अनावृष्टौ सुवृष्टिञ्च संप्राप्याहं तथास्तुतम्
यथा सुचिरमग्धानां स्थितानाञ्च निराश्रये । चक्षुः सुनिर्मलं प्राप्य मनः पूर्णं तथैवमे

वुस्तरे सागरे घोरै रतितस्थ च सङ्कटे । अनौकस्य प्राप्य नौकां मनः पूर्णं तथा मम ॥
तृष्णया शुष्ककण्टानां सुचिराद्यसुरीतलम् । सुवासितं जलं प्राप्य मनः पूर्णं तथामम ॥

वाषाग्निपतितानाञ्च स्थितानाञ्च निराश्रये । निरग्निमाश्रयं प्राप्यमनः पूर्णं तथा मम ॥
चिरं बुभुक्षितानाञ्च मतोपवासकारिणाम् । सद्यं पुरतो दृष्ट्वा मनः पूर्णं तथा मम ॥

इत्युत्वा पार्वती तत्र क्रोडे कृत्वा स्ववालकम् ॥ ३५ ॥

प्रीत्या स्तनं ददौ तस्मै परमानन्दमानसा । क्रोडे चकार भगवान् बालकं हृष्टमानसः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिलखण्डे गणेशदर्शनं

नाम नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः

सर्वेभ्यो यदुविधदानम् ।

नारायण उवाच ।

सौ दम्पती बहिर्गता पुत्रमङ्गलहेतवे । विविधानि च खानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

पन्दिभ्यो मिथुनेभ्यश्च दानानि विविधानि च ।

नानाविधानि पापानि पादयामास शङ्करः ॥ २ ॥

हिमालयश्च रत्नानां ददौ लक्षं द्विजानये । सहस्रञ्च गजैन्नाजामद्यानाञ्च त्रिनक्षत्रम् ॥

दशलक्षं गद्याभ्यैष पञ्चलक्षं सुवर्णकम् । मुक्तामणिक्वण्टानि मणिध्रेष्ठानि यानि च ॥

अन्यान्यपि च दानानिवस्त्राणिभूषणानि च । सर्वाण्यमूल्यदानानि क्षीरोदसम्पत्तिव ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ धिष्णुः कौस्तुभं कौतुकान्वितः ।

ग्रहा विशिष्टदानानि विप्राणां वाञ्छितानि च ।

सुवर्लभानि भूयो च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ ६ ॥

धर्मः सूर्यश्च शक्रश्च देवाश्च मुनयस्तथा । गन्धर्वाः पर्यन्ता देव्यो ददुर्दानं क्रमेण च ॥

माणिक्यानांसहस्राणि रत्नानाञ्चशतानि च । शतानि कौस्तुभानाञ्च हीरकाणांशतानि च ॥

हरिर्णिमणीन्द्राणां सहस्राणि मुदान्वितः ॥ ६ ॥

गद्यां रत्नानि लक्षाणि गजसहस्रकम् । अमूल्यान्यन्यरत्नानि श्येतवर्णानि कौतुकात् ॥

शतलक्षं सुवर्णानां बहिर्दुर्दानां च । ब्राह्मणेभ्यो ददौ ग्रहान् सत्र क्षीरोदकार्णवः ॥

हाय्वामूल्यरत्नानां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । मर्तापनिर्मलं सारं सूर्यभाऽनुचिनिन्दकम् ॥

परिष्कृतञ्च माणिक्यैर्होराकैश्च विराजितम् । रम्यं कौस्तुभमध्यस्थं ददौ देवी सरस्वती ॥

त्रैलोक्यसारहाय्य सद्मलसारनिर्मितम् । भूषणानि च सर्वाणि सा सावित्री ददौ मुदा ॥

लक्षं सुवर्णलोष्टाणां धनानि विविधानि च । शतान्यमूल्यरत्नानां कुबेरश्च ददौ मुदा ॥

ॐ नमः विदेभ्यस्ते सर्वे ददुःशिशुम् । परमानन्दसंयुक्ताः शिवपुत्रोत्सवे मुने ॥

भार्योदुमशक्ताश्चब्राह्मणा बन्दिनस्तथा । स्थायंस्थायञ्चपच्छन्तो धनानां पथि कातराः
कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम् ।

वृद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो मिथुका मुने ॥ १८ ॥

विष्णुः प्रमुदितस्तत्र पादयामास दुन्दुमिम् । सङ्गीतं गाययामास कारयामास नर्तनम्
वेदांश्च पाठयामास पुराणानि च नारद ।

मुनीन्द्रात्मानयामास पूजयामास तान् मुदा । आशिरं दाययामास कारयामासमङ्गलम् ।
साङ्गं देवैश्च देवीभिर्देवी तस्मै शुभाशिरम् ॥ २० ॥

विष्णुरुवाच ।

शिष्येन तुल्यं ज्ञानन्ते परमायुश्च बालक । पराक्रमे मया तुल्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव ॥
ब्रह्मोवाच ।

यशसा ते जगत् पूर्णं सर्वपूज्यो भवाशिरम् । सर्वेषां पुस्तः पूजां भवत्यतिसुदुर्लभा ॥
धर्म उवाच ।

मया तुल्यः सुप्रसिद्धो भवान् भव सुदुर्लभः । सर्वज्ञश्चद्वयायुक्तो हरिभक्तो हरीःसमः ॥
महादेव उवाच ।

ज्ञाताभयमया तुल्यो हरिभक्तश्च बुद्धिमान् । विद्यावान् पुण्यवान् शान्तो दान्तश्चप्राणवल्लभ
लक्ष्मीरुवाच ।

मम स्थितिश्च मेदे ते देहे भवतु भाग्यवती । पतिव्रता मयानुन्या ज्ञान्ता कान्ता मनोहरा
भरतस्युवाच ।

मया तुल्या मुखाविता धारणाशक्तिरेव च । स्मृतिर्विवेचनासक्तिर्भयपतिशया शुभ ॥
सावित्र्युवाच ।

वत्साहं पैदजननी पैदरानी भवाशिरम् । मन्मन्त्रजपशक्तिश्च भवरो पैद्यादिनाम् ॥ २५ ॥
हिमालय उवाच

धीहृणोतिमतिशयतुल्यमतिर्भवतुशास्वती । धीहृणानुज्योगुणवान्मयहृणपरायणः
मेनकोवाच ।

समुद्रतुल्यो गामभीर्ष्यकामतुल्यश्च रूपवान् । धीयुक्तधीपतिसमो धर्म धर्मसमोभय ॥

गणेशोपासने ।

समस्तीति मया मुनयः शरण्यः सर्वस्य च । निर्दिष्टो विज्ञानिष्ठश्च मया वन्द्यः प्रपन्नः
पार्थिवः ।

सातसुखमहायोगी शिवः शिविप्रसन्नः शुभः । शृङ्खलामय मणयः सन्निवितास्त
शरण्यो मुनयः शिवः सर्वः सुगुह्यः । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः
शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ ११ ॥
इमं सुगुह्यमप्ययं यः शृणोति मुनिपुत्रः । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ १२ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमप्ययं लभते धनम् । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ १३ ॥
मादर्यापीलभते मादर्यां प्रज्ञायामलभते प्रज्ञाम् । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ १४ ॥
छन्दुर्न वदयन् प्रोचिष्यति मिथं लभेत् । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ १५ ॥
गणेशोपासनाध्याये यन् पुण्यं लभते नरः । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ १६ ॥
अथ मङ्गलाध्यायो यस्य गेहे स निवसति । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ १७ ॥
यात्रापाले च पुण्यादे यः शृणोति समाहितः । शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः शरण्यः ॥ १८ ॥
इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारद-संवादे गणपतिवन्दे
गणेशोद्घममङ्गलं नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

गणेशदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम् ।

नारायण उवाच ।

रत्नसिंहासने वरे । देवैश्च मुनिभिः सार्द्धमुपास्य तत्र संसदि ॥ १ ॥
धामे ब्रह्मा प्रजापतिः । पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मघतां वरः ॥
सूर्यः शक्रः कलानिधिः । देवाश्च मुनयो ब्रह्मन्पुःशैलाः मुखासने ॥

तत्सर्वं नर्त्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । धृतिसारं धृतिसुखं तुष्टुः धृतयो हरिम् ॥४॥
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शङ्करनन्दनम् । आजगाम महायोगी सूर्यपुत्रः शनैश्चरः ॥ ५ ॥
 अत्यन्तनम्रवदन ईयन्मुद्रितलोचनः । अन्तर्द्विः स्मरन् कृष्णं कृष्णैकगतमानसः ॥ ६ ॥
 तपःफलाशी तेजशी ज्वलदग्निशिखोपमः । अतीवसुन्दरः श्याम पीताम्बरधरो वरः ॥ ७ ॥
 प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माणं शिवं धर्मं रविं सुरान् । मुनीन्द्रान् बालकं द्रष्टुं जगाम तदनुशया
 प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम् । द्वारिणं शूलहस्तञ्च विशालाक्षमुवाच ॥८॥

शनैश्चर उवाच ।

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कुर । विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥९॥
 आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसन्निधिं बुध ।
 पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ॥१०॥

विशालाक्ष उवाच ।

आज्ञायहो न देवानां नाहं शङ्करकिङ्कुरः ।

द्वारं दातुं न शक्नोऽहं विनाऽऽत्ममातुराज्ञया ॥११॥

इत्युक्त्याभ्यन्तरभ्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया । ददौ द्वारं ब्रह्मेयायविशालाक्षो मुदा ततः
 शनिरभ्यन्तरं गत्वा ननाम नम्रकण्ठधरः । रत्नसिंहासनस्याञ्च पार्वतीं सस्मितां मुदा ॥
 सखिभिःपञ्चभिःशम्भुत्सेवितांश्वेतचामरैः । सखिदत्तञ्चताम्बूलंभुक्तयन्तींसुवासितम् ॥
 पद्मिशुद्धाशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् । पश्यन्तीं नर्त्तकीनृत्यं पुत्रंश्रुत्वाययन्नसि ॥
 नतं सूर्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गां संभाष्य सत्वरम् । शुभाशिर्यं ददौ तस्मैपृष्टातन्मङ्गलंशुभम् ॥
 पार्वत्युवाच ।

कथमाप्तप्रवक्त्रस्त्वं ध्योतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

किं न पश्यसि मां साधो बालकं वा ब्रह्मेश्वर ॥१८॥

शनिरुवाच ।

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम् । शुभाशुभञ्चयत्कर्मफोटिकल्पैर्नलुप्यते ॥
 कर्मणा जायते जन्तुर्ग्रहेन्द्रसूर्यमन्दिरे । कर्मणा नरोहेषु पर्यादिषु च कर्मणा ॥२०॥

कर्मणा भरवं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा । न कर्मणा गता तेन्द्रो भूगभ्यां न कर्मणा ।
 कर्मणा तुन्दरः शरत्पद्म्या धियुक्तः स्य कर्मणा । कर्मणा निरुगीमान निर्दिष्टमभ्यर्कमना ।
 कर्मणा धनवान्लोको वै न्यगुक्तः स्य कर्मणा । कर्मणा गन्तुं दुर्षाग कर्मणा गन्तुं दुःखः ।
 सुभाष्यं वा तु पुत्रं वा तु स्त्रीं वा स्वन् स्य कर्मणा । भगुवत्कथं तु स्त्रीं वा निरुगीकः स्य कर्मणा ।
 इति दासश्यातिगोप्यं शृणु शङ्कस्य तमे ।

भक्त्यं जमनीमादाहृद्भ्रातनककाणम् ॥२७॥

भाषायां कृष्णमन्त्रोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः ।

तपस्यासु रतः शरपन् पित्रये पित्तः मदा ॥२८॥

पिता ददौ पिपाहे तु च न्याश्चिन्नभम्य न ।

भतिने जस्यिनी शरपन् तपस्यासु रता सर्वा ॥२९॥

एकदा सा ऋतुप्राता सुपेशं स्य पिपाय च ।

रत्नालङ्कारसंयुक्ता मुनिमानसमोहिनी ॥३०॥

हरेः पादं ध्यायमानं सा मां पश्येन्मुखाग्रह । मन्समीपं समागत्य सस्मितालोललोचना
 शशाप मामपश्यन्तं ऋतुनष्टा स्यकोपतः । याहावानपिर्हीनञ्च ध्यानैकतानमानसम् ॥
 न दृष्टाहं त्वया येन न कृतमृतुरक्षणम् । त्वया दृष्टञ्च यद्वस्तु मूढं सर्वं पितरयति ॥३१॥
 महञ्च पिरते ध्यानेऽतोपयं तां तदा सनीम् । शापं मोक्तुं न शक्तासा पश्चात्तापं वकार्य
 तेनमात न पश्यामि किञ्चिद्वस्तु स्वचक्षुषा । ततः प्रवृत्तिनद्यास्यः प्राणिर्हिसामयादहम्
 शनैश्चरयचः ध्रुवा जहास पार्वती मुने । ऊचैः प्रजहस्तुः सर्वा न संकीर्तिरतीगणाः ॥
 इति श्रीप्रह्लादवैयर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शनिपार्वती-
 संवादो नामैकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः शनिना बालकदर्शनम् ।

भारायण उवाच ।

दुर्गां तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हर्षिमीश्वरम् । ईश्वरेच्छावशीभूतं जगदेत्युवाचह ॥१॥
सावदेयी पशीभूता शनिं प्रोवाच कौतुकात् । पश्यमानं मच्छिशुमिति निवेक.केनवाप्यते
पार्थतीवचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम् । पश्यामि किं पश्यामि पार्थतीसुतमित्यहो
यदि वा नो मया हृष्टस्तस्य विप्रो मयेदं धुयम् ॥ ३ ॥

इत्येषमुत्वा धर्मिष्ठा धर्मं पृथा तु साक्षिणम् । बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न बालमातरं शनिः
विवर्णमानसः पूर्यं शुष्ककण्ठोऽस्तालुकः । सध्यलोचनकोणेन वदशेष शिशोर्मुंजम् ५।
शनेश्च हृष्टिमात्रेण चिच्छेद मस्तकं मुने । खभुर्निवारयामास तस्यौ नम्राननः शनिः॥६॥
तस्यौ च पार्थतीकोऽङ्गे तत्सर्पाङ्गः सलोहितः ।

विधेरा मस्तकं कृष्णे गरया गोलोकमीप्सितम् ॥ ७ ॥

मूर्ध्ना'संप्राप सादेयी विलप्यथ भृशमुदः । मत्तारथ पृथिव्यान्तुकृत्वा पक्षसिबालकम्
विस्मितास्ने सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ।
देव्यश्च शैला गन्धर्वाः शिवः कैलासवासिनः ॥ १ ॥
तान् सर्वान् मूर्च्छितान् हृष्टैषारुह्य गरुडं हरिः ।

जगाम पुष्पभद्रां स उत्तरस्यां दिशि स्थिताम् ॥ १० ॥

पुष्पभद्रानदीतीरे ददर्श कानने स्थितः । गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ॥११॥
दिर्युत्तरस्यां शिरसंमूर्च्छितं सुरतग्रामात् । पत्तिः शावकान् कृत्वा परमातन्दमानसम्
शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छेद तच्छिरोमुदा । स्थापयामास गरुडे रुधिराङ्गं मनोहरम् ॥१३॥
गजच्छिन्नाङ्गविशेषात् प्रबोधं प्राप्य हस्तिनी । शावकान्बोधयामास चाशुभं वदतीतदा
रुदोद शावकैः सार्द्धं सा विलप्य शुचानुरा ॥ १४ ॥

तुष्टाव फमलाकान्तं शान्तं सस्मितमश्वत्थम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं पद्मम् ।

गरुडस्थं जगत्कान्तं ग्रामयन्तं सुदर्शनम् ॥ १५ ॥

निपेकं खण्डितुं शक्तं निपेकजनकं विभुम् । निपेकमोगदातारं भोगनिस्तारकारणम् ।
प्रभुस्तत् स्तवनात्तुष्टस्तस्मै विप्रवरंददौ । मुण्डान्मुण्डं विनिष्कृत्य युयुजेऽन्यगजस्यैव
जीवयामास तं तत्र ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् । सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम् ।
त्वं जीवाकल्पपर्यन्तं पत्न्यारैः समंगजः । इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासमाजगामस-

आगत्य पार्यतीस्थानं चालं कृत्वा स्वयक्षसि ।

रुचिरं तच्छिरः कृत्वा योजयामास चालके ॥ २० ॥

ब्रह्मस्यरूपो भगवान् ब्रह्मज्ञानेन लीलया । जीवनं कारयामास हृद्भारोच्चारणेन च ॥ २१ ॥

पार्यतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोড়ে च तं शिशुम् ।

बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिकबोधनैः ॥ २२ ॥

विष्णुत्वाव ।

ब्रह्मादिकीदृशपर्यन्तं जगद् भुंक्ते स्वकर्मणा ।

जगद्व्युत्तिस्वरूपासि त्वं न जानासि किं शिवे ॥ २३ ॥

फल्यफीटिशतं भोगो जीविनां तत् स्वकर्मणा ।

उपस्थितो मधेप्रित्यं प्रतियोनी शुभाशुभैः ॥ २४ ॥

इन्द्रः स्वकर्मणा फीटयोनी जन्म लभेत् सति । फीटद्यापि मधेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेनैव
सिद्धोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना । मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेनैव

सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम् ।

सुकर्मणः सुखं दुःखमिन्द्रे पापकर्मणः ॥ २५ ॥

इदं कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभैः । कर्मोपाज्जनयोग्यञ्च पुण्यश्रेष्ठञ्च मारुतम् ॥ २६ ॥

कर्मणः फलदानाय विधाताय विधेयपि । मृत्योर्मुक्त्युः काल्यकालोनिपेकस्य निपेककृत्

नां पातुः पाताः पराम्परः । मोलोकनाथः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमः सत्यम्

पुंभो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । महाविराड्व्यंशश्च यत्नोमविपरे जगत् ॥

कलांशाः केऽपि तद्धर्मं कलांशांशाश्च केचन । चराचरं जगत् सर्वं तत्रतस्थौविनायकः
 गीविष्णोर्वचनं ध्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती । स्तनं ददौ ॥ शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम्
 एष पार्वती तुष्टा प्रेरिता शङ्करेण च । पुटाञ्जलियुता भक्त्या विष्णुं तं कमलापतिम् ॥
 गशिषं युयुजे विष्णुः शिशुश्च शिशुमातरम् । ददौ गले बालकस्य कौस्तुभञ्जस्वभूषणम्
 ह्या ददौ स्वमुकुटं धर्मश्च रत्नभूषणम् । क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यद्योचितम् ॥
 एष तं महादेवध्यातीवहृष्टमानसः । देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः ॥३७॥
 हा शिषः शिषाचैव बालकं मृतजीवितम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कौटिरत्नानि नारद
 भश्यानाञ्च गजानाञ्च सहस्राणि शतानि च ।

यन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृनजीविने ॥ ३६ ॥

मालयश्च संहृष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै । ददुर्दानानि विप्रेभ्यो यन्दिभ्यः सर्वयोषितः
 क्षणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः
 नि सलज्जितं हृष्टा पार्वती कोपशालिनी । शशाप च सभामध्येऽप्यह्मदीनो भवेति च
 त शतं शनिं सूर्यः कश्यपश्च यमस्तथा । तेऽतिरुष्टाः समुत्तन्धुर्गामुक्ताः शङ्करालयात्
 ताक्ष्मास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः । तां धर्मं साक्षिणं हृत्या विष्णुञ्च शत्रुमुपताः
 प्रा तान्बोधयामास विष्णुना प्रेरितैः सुरैः । रक्तास्यां पार्वतीञ्चैव कोपप्रस्फुरिताधराम्
 प्राणमूत्रुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम् । भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्यतास्तथा ॥

कश्यप उवाच ।

उर्हृष्टोऽयं प्राकृतेन पत्नीशारेण सर्वशः । बालं ददर्श यत्नेन तस्यैव मातुराग्रया ॥ ४७ ॥

धीसूर्य उवाच ।

तं धर्मं साक्षिणं हृत्या पुत्रस्य मातुराग्रया । मन्पुत्रोऽन्तिप्रयत्नेन ददर्श पार्वतीं सुतम्
 यथा निरपराधेन मन्पुत्रं सा शशाप ह । तन्पुत्रस्याह्ममङ्गल्य भविष्यति न संशयः ॥

यम उवाच ।

प्रदाय स्वयमात्राञ्च शशाप चम्ययं बभूव । ययं शपामः कौऽधर्मो त्रिषांसोऽपि हिंसने

ब्रह्मोवाच ।

शशाप पार्यती तृष्टा स्त्रीस्यमावाच चापलान् । सर्वेषां घननेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः ॥१॥
दुर्गे दत्त्वा त्वमात्राञ्च पुत्रदर्शनहेतवे । कथं शपसि निर्दोषमनिधिं त्वद्गृहगतम् ॥२॥
इत्युत्तवा शनिमादाय बोधयित्वा तु पार्यतीम् । तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे
बभूव पार्यती तृष्टा ब्रह्मणो घननान्मुने । शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः ॥३॥
उवाच पार्यती तत्र संन्तुष्टा तं शनैश्चरम् । प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता ॥

पार्यत्युवाच ।

महाराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः । चिरजीवी च योगान्द्रो हरिमत्तम्य का विपत्
अथ प्रभृतिनिर्विघ्नहरौभक्तिर्द्दास्तु ते । मच्छापासोघतो घत्सकिञ्चित्त्वञ्जोभविष्यति
इत्युत्तवा पार्यतीतुष्टावान्दृष्टवाचयक्षसि । उवाच योषितां मध्ये तस्मैदत्त्वाशुमाशिम
शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः । प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मन्नम्रिकां जगद्भिकाम्
इति श्रोब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे विष्णोपखण्डनं

नाम द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः

विष्णुकृतं गणेशमनोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह । पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः ॥१॥
सर्वाग्निं च तप पूजाञ्च मया दत्तासुरोत्तम । सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भयवत्सेत्युवाच तम्
घनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानञ्च मुक्तिदम् । सर्वसिद्धिं प्रदायैव चकारात्तमसमं हरिः ॥
ददौ द्रव्याणि चारुणि चोपचाराणि योद्धश । तन्नामकरणं चक्रे मुनिमिश्च समं सुरैः
शेश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः । लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः ॥५॥

एतान्यष्टौ च नामानि तस्य चक्रे सनातनः । आशिषं दापयामास चानयामास तान्मुनीन्
 सिद्धासनं ददौ धर्मस्तस्मै ब्रह्मा कमण्डलुम् । शङ्करो योगपट्टञ्च तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम्
 रत्नसिंहासनं शपः सूर्यश्च मणिकुण्डले । माणिक्यमालां चन्द्रश्च कुबेरश्च किरीटकम्
 षड्विंशदञ्च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः । रत्नलवञ्च वरुणो वायुः रत्नाङ्गुरीयकम् ॥ ६ ॥
 क्षीरोदोद्भवसद्वत्तरचितं धलयं वरम् । मञ्जीर्यापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने ॥ १० ॥
 कण्ठभूराञ्च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम् । क्रमेण सर्वदेवाश्च देव्यश्च यौतुकं ददुः ।
 मुनयः पर्यंताश्चैव रत्नानि विविधानि च । वसुन्धरा ददौ तस्मै पाह्नाय च मृषिकम् ।
 क्रमेण देवा देव्यश्च मुनयः पर्यंतादयः । गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनयो मानवास्तथा ॥
 नानाविधानि द्रव्याणि स्यादूनि मधुराणि च । पूजाञ्जकुञ्च ते सर्वे क्रमेण भक्तिपूर्वकम्
 पार्यंती जगतां माता स्मेराननसरोदहा । रत्नसिंहासने पुत्रं दासयामास नारद ॥ १५ ॥
 सर्वैर्तीर्थोदकानाञ्च फलसानां शतेन च । द्वापयामास वैदोक्तमन्त्रेण मुनिभिस्तदा ॥

अग्निशौचे च वसने ददौ तस्मै सती मुदा ॥ १६ ॥

गोदायप्युदकं पाद्यमभ्यं गङ्गोदवेन च । दूर्वाभिरक्षतैः पुष्पैश्चन्दनेन समन्वितम् ॥ १७ ॥
 पुष्करोदकमानीय पुनराचमनीयकम् । मधुपर्कं रत्नपात्रैरासर्वं शर्करान्वितम् ॥ १८ ॥
 लानीयं विष्णुनेत्रञ्च स्वर्बेद्येन विनिर्मितम् । अमूल्यरत्नरचितचारुणि भूषणानि च ॥
 शरिजातप्रसूनानां माल्यानां शतकानि च । मालतीचम्पकादीनां पुष्पाणि विविधानि च
 पूजार्हाणि च पात्राणि तुलसीवर्जितानि च ॥ २० ॥

वन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानि च सादरम् । रत्नप्रदीपनिकरं धूपञ्च परितो ददौ ॥ २१ ॥
 शिष्यं तत्प्रियञ्चैव तिललव्डुकपर्वतम् । वधगोधूमचूर्णानां पिष्टकानाञ्च पर्वतम् ॥ २२ ॥
 काशानां पर्यंतञ्च सुस्याहु सुमनोहरम् । पर्यंतं स्थस्तिकानाञ्च सुस्यादुशर्करान्वितम्
 ङ्गाकानाञ्च लाजानां पृथुकानाञ्च पर्यंतम् । शाल्यन्तानां पिष्टकानां पर्वतं व्यञ्जनीः सह
 कलसानाञ्च पयसां लक्ष्याणि प्रददौ मुदा ॥ २४ ॥

क्षानि कलसानाञ्च दध्नां नारद पूजने । मधूनां कलसानाञ्च त्रिलक्ष्याणि च सुन्दरी
 सर्पियो कलसानाञ्च पञ्चलक्ष्याणि सादरम् ।

दाद्विधानां धीरुत्थानामर्गस्थानि पन्थानि च ॥ २६ ॥

खजुराणां काञ्चानां जम्बूनां विविधानि च । माघाणां पनमानाञ्च कर्द्वीनाञ्च नान्य

पन्थानि मारिचेन्धानामर्गस्थानि ददौ मुदा ॥ २७ ॥

अन्यानि परिपकानि कालदेशोद्भवानि च । ददौ तानि महामाया स्यादूनि मनुगानि

स्यच्छं सुनिर्मलान्येव कर्पूरादिसुवासिनम् । गङ्गाजलञ्च पानार्थं पुनःपुनर्मनीषकम् ॥

तामूलञ्च घरं रम्यं कर्पूरादिसुवासिनम् । मुषणं पात्रशतकं परिपूर्णञ्च नान्य ॥ २८ ॥

शैलेक्ष्मी शैलराजः शैलजः शैलराजजः । शैलराजप्रियामायाः पुनःपुनः शैलजात्मजम् ॥

ओं धीं ह्रीं गणेश्वराय प्रत्यक्षाय नमः । सर्वसिद्धिप्रदेशाय विनम्राय नमो नमः

इत्यनेनैव मन्त्रेण दद्याद् द्रव्याणि भक्तितः । सर्वं प्रमुदितास्तत्र प्रत्यविष्णुप्रियादयः ॥

द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः

पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः । मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारत

विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च । महावाग्मी महासिद्धः सर्वसिद्धिसमन्वितः

बाष्पतिर्जगतां पातितस्य साक्षात्सुनिश्चितम् । महाकर्षीन्द्रो गुणवान्पिदुःखाद्गुरोर्गुरुः

संपूज्यानेन मन्त्रेण देवा भानन्दसंप्लुताः । नानाविधानि वाधानि पादयामासुस्तस्यै

ग्राहणान् भोजयामासुः फारयामासुस्तस्यैव । ददुर्दानानि तेभ्यश्च यन्दिभ्यश्च विशेषतः

नारायण उवाच ।

अथ विष्णुः सभामध्ये संपूज्य तं गणेश्वरम् । तुष्टाय परया भक्त्या सर्वविघ्नविनायकम्

ध्रीविष्णुरवाच ।

इह त्वां स्तोतुमिच्छामि प्रहज्योतिःसनातनम् । निरूपितमशक्तोऽहमनुरूपमर्तृहकम् ॥

प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् । सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिरूपिणम् ॥

अव्यक्तमक्षरं नित्यंसत्यमात्मस्वरूपिणम् । घायुतुल्यातिनिर्लिप्तं चाक्षरं सर्वसाक्षिणम् ॥

संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे । कर्णधारस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ४४ ॥

घरं घरेण्यं घरदं घरदानामपीश्वरम् । सिद्धं सिद्धिस्वरूपञ्च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥

रेतः ध्येयञ्च ध्यानासाध्यञ्च धार्मिकम् । धर्मस्वरूपं धर्मसंधर्माधर्मफलप्रदम् ॥

। जं संसारवृक्षाणामङ्कुरञ्च तदाश्रयम् । स्त्रीपुंनपुंसकानाञ्च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥४७॥
 । चामप्रपूज्यञ्च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ह्यनिर्गुणञ्चापिस्वेच्छया॥
 धर्मं प्रकृतिरूपञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रपदनेन च ॥४८॥
 क्षमः पञ्चवक्त्रञ्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ॥
 । न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥५०॥

येवं स्तवर्षं कृत्वा सुरेशं सुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्द्धं विरराम रमापतिः ॥५१॥
 । विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत् । सायंप्रातश्चमध्याह्नेभक्तियुक्तः समाहितः ॥
 द्वेप्रणिज्जं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । धर्षते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा ॥५३॥
 प्राकाले पठिष्या तु यो याति भक्तिपूर्वकम् । तस्य सर्वामीष्टसिद्धिर्भयत्येव न संशयः॥
 । हृष्टश्च दुःस्वप्नं सुष्यप्रमुपजायते । कदापि न भवेत्तस्य ग्रहपीडा च दारुणा ॥५५॥
 रेद्विनाशः शत्रूणां कण्ठनाञ्च विषवर्द्धनम् । शश्वद्विप्रविनाशश्च शश्वत् सम्पद्विषवर्द्धनम्॥
 परा भवेद्दृष्टे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविषवर्द्धनी । सर्वैश्चर्य्यमिह प्राप्य हन्ते विष्णुपदं लभेत्
 श्चापि च तीर्थानां यज्ञानां यज्ञवेदं ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

स्तोत्रं गणेशस्य पूजनञ्च मनोहरम् । कथंचं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतं भवतारणम् ॥
 नारायण उवाच ।

। त्वां सुनिवृत्तायां समामध्ये शनैश्चरः । उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकं जगतां गुरुम् ॥
 शनैश्चर उवाच ।

दुःखविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । कथंचं विघ्ननिग्रहस्य वद वेदविदां पर ॥६१॥

वभूव मो विवादाश्च शक्त्या च मायया सह ।

सद्विप्रप्रशमार्थञ्च कथंचं धारयाम्यहम् ॥६२॥

श्रीविष्णु उवाच ।

विनाकस्य कथंचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सुगोप्यञ्च पुराणेषु दुर्लभञ्चागमेषु च ॥६३॥

उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम् । कवचं विघ्ननायस्य सर्वविघ्नहरं परम् ॥६४॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च सूर्यज । एवम्भूतञ्च कवचं न देयं प्राणसङ्कुटे ॥६५॥

आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छयाऽस्य च मायया ।

नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य घत्सकं ॥६६॥

पूजास्य नित्या स्तोत्रञ्च कल्पे कल्पेऽस्ति सन्ततम् ।

अस्यास्य जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिनेषिरे ॥६७॥

यथा मद्यतारेषु जन्मविप्रह्वारणम् । तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसुतोदरे ॥६८॥

यदुद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते । निःशङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः ॥

कवचं विघ्नतां मृत्युर्न याति सन्निधिं मिया ।

नायुर्व्ययो नाशुभञ्च ब्रह्माण्डे न पराजयः ॥६९॥

दशलक्षजपेनैव सिद्धञ्च कवचं भवेत् । यो भवेत् सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः ॥

सुसिद्धकवचो घातमी चिरजीवी महीतले । सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ब्रह्मणमाश्रितः ॥

मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचञ्चेष्टमेव च । विघ्नतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम् ।

भूतप्रेतपिशाचाश्च कृष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः । डाकिन्यो योगिन्यश्चैव धैरालादयप्यच

पालप्रहा प्रहाश्चैव क्षेत्रपालादयस्तथा । तेषाञ्च शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवाः ॥

प्राधयो व्याधयश्चैव शोकाश्चैव मयायहाः । न यान्तिसन्निधितेषां गणेशस्य यथोरगाः ॥

सृजये शुक्रमन्त्राय स्पृशित्प्रायप्रकाशयेत् । गलावपरशिष्यायदस्यामृत्युमयाप्नुयान् ॥

मन्त्रागमोदकस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । सृष्टिश्छन्दश्च बृहतीदेधोत्तम्योदरः स्ययम् ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७०॥

सर्वेषां कवचाणाञ्च सारभूतमिदं मुने । ओं मं हुं श्रीगणेशाय स्वाहामेवानु मस्तकम् ।

हान्निशदशरोमन्त्रो लब्धार्थं मे सदायतु ॥७१॥

ओं ह्रीं क्लीं धो गमिति च सन्तर्नवानुलोचनम् । तालुकं पानुविश्वेशः सन्तर्नधरणीतने ॥

ओं ह्रीं धीं क्लीं मिनिवमल्लनं पानुतासिकाम् । ओं गीं गं गूर्णं कर्णाय स्वाहा पात्पधरं मम ।

दन्तानि तालुकं त्रिहो पानु मे वोदशाशरः ॥७२॥

ओं लं ध्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ।

ओं ह्रीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कणं सदाऽवतु च ॥ ८४ ॥

ओं ध्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ।

ओं ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥ ८५ ॥

ओं क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलञ्च गम् ।

करी पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत् ॥ ८६ ॥

पाण्यालम्बोदरः पातु भाग्ये व्याविघ्ननायकः । दक्षिणे पातु विघ्ने शो नैर्ऋत्यान्तुगजाननः

पश्चिमे पार्वतीपुत्रो घायः शङ्करात्मजः । कृष्णस्यांराक्षोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च ॥

प्रेरान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु बोधवतः । अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः

स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥ ९० ॥

इति ते कथितं घटस सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । संसारमोहनं नाम कवचं परमाहुतम् ॥ ९१ ॥

वीरुष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले । धृन्दाघने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥

या दत्तश्च तुभ्यश्च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं घटं सर्वपूज्यं सर्वसङ्कटतारणम् ॥ ९२ ॥

तुभ्यमर्च्यविधिघत् कवचं धारयेत्तु यः । कण्ठे वा दक्षिणे बाह्वीसोऽपि विष्णुर्न संशयः

यमेधमसहस्राणि धाजपेयशतानि च । ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्

कवचमहात्मा यो भजेच्छङ्करात्मजम् । शतलक्षप्रज्ञतोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते संसारमोहनं नाम कवचम् ।

दृष्ट्वेदं सूर्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः ।

परमानन्दसंयुक्ता देवा ऊचुः समीपतः ॥ ९६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे गणेशपूजा

स्तवकवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः कार्तिकेयप्रवृत्तिप्राप्तिः ।

नारायण उवाच ।

देवा विष्णुसभायांते सर्वे प्रहृष्टमानसाः । गन्धर्वा मुनयश्चैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवम्
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा । उवाच विष्णुं प्रणता देवेशं देवसंसदि ॥ २ ॥

पार्वत्युवाच ।

त्वं पाता सर्वजगतां नाथनाहंजगदुग्रहिः । कथं मत्स्यामिनो धीर्य्यं नामोघं रक्षितप्रमो
रतिमङ्गे एते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया । भूमौ निपतिनं धीर्य्यं केन देवेन वै हृतम् ॥४॥
सर्वे देवास्तद्यत्पुरतस्तद्व्येवणमर्हति । अराजकं कथं युक्तं तिष्ठति त्वयि राजनि ॥५॥
पार्वतीयचनं ध्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । उवाच देववर्गे च मुनिवर्गे च तिष्ठति ॥ ६ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

देवाः शृणुत मद्राकथं पार्वतीयचनं धृतम् । शिषस्यामोघधीर्य्यं यत्तत् पुरायेननिर्हृतम्
समामानय तत् शिषं न येन सत्पश्यमर्हति । सकोराजान शास्तायः प्रजायाध्यध्यापिकः
विष्णोस्तद्वचनं ध्रुत्वा समालोक्य परस्परम् । ऊचुः सर्वे क्रमेणैव आसिताः पुरतोहरैः
ग्रन्थोवाच ।

तर्हीर्य्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । ॥ यश्चिना मयत्पत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि ॥
महर्देय उवाच ।

स्वर्पाप्ये निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । ॥ यश्चिना मयत्पत्र सेवने पूजने तथ ॥१॥
यम उवाच ।

स यश्चिना मयत्पत्र शरणागतारक्षणे । एकादशीयने चैव तर्हीर्य्यं येन निर्हृतम् ॥२॥
इन्द्र उवाच ।

तर्हीर्य्यं निर्हृतं येन पापिनां पापमोचने । मयत्पत्र यशोनुत्तमं पुण्यकर्म सततम् ॥

वरुण उवाच ।

भवत्यत्र कलौ जन्म धर्मोऽस्य भारते हरे । शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तदु येन निर्द्वितम् ।

कुत्रेव उवाच ।

स्थाप्यहारी स भवतु विध्वाप्तश्च मित्रहा । सत्यघ्नश्च वृत्तघ्नश्च तद्वीर्यं येन निर्द्वितम् ॥

ईशान उवाच ।

पद्म्यापहारी च स भवत्यत्र भारते । नरघाती शुम्भोहो तद्वीर्यं येन निर्द्वितम् ॥१६॥

रुद्रा ऊचुः ।

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः । गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्वीर्यं येन निर्द्वितम्

कामदेव उवाच ।

हृत्पाप्रतिज्ञां योमूढोऽन संपालयते भ्रमात् । भाजनं तस्य पापस्य सभवेत्त्येन निर्द्वितम्

स्वर्चैरावृन्तुः ।

मातुः पितुर्गुरोश्चैव स्त्रीपुत्राणाञ्च पोषणे ।

भयेतां वञ्चितौ तौ च धाम्नां वीर्यञ्च निर्द्वितम् ॥ १६ ॥

सर्वे देवा ऊचुः ।

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्यत्र च भारते । अपुत्रिणोऽदिद्राश्च यैश्चवीर्यञ्च निर्द्वितम् ॥

देवपत्न्य ऊचुः ।

तानिन्दन्तु स्वभर्तारं गच्छन्तु परपूरुषम् । सन्तु बुद्धिविहीनाश्च यामिर्वीर्यञ्च निर्द्वितम्

देवानांबचनं श्रुत्वा देवीनाञ्च हरिःस्वयम् । कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्यं चन्द्रं द्रुताशनम्

यनं पृथिवीं तोर्यं सन्ध्ये रात्रिं दिनं मुने । उवाच जगतां कर्ता पाताशास्ता जगत्त्रये

धीषिष्णुस्याच ।

दैवेन निर्द्वितं वीर्यं तदेतत् केन निर्द्वितम् । तदमोघं भगवतो महेशस्य जगदुगुरोः ॥

पूयञ्च साक्षिणो विश्वे सन्ततं सर्वकर्मणाम् । शुष्माभिर्निर्द्वितं किंवा किम्भूतं पक्षुमर्हथ

श्वरस्य घवः श्रुत्वा समायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरोद्दरे

श्रीधर्म उवाच ।

तेरुत्तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छङ्करस्य प्रकोपतः ॥२७॥

क्षितिख्याच ।

धीर्यं घोदुमशक्ताहं तद्वह्नीं न्यक्षिपं पुरा । अतीव दुर्बलं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥
अग्निख्याच ।

धीर्यं घोदुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरकानने । दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किञ्च परम्
घायुख्याच ।

शरेषु पतितं धीर्यं सद्यो बालो यमूच ह । अतीवसुन्दरो विष्णोः स्वर्णरेखानर्दीतटे १
ध्रीसूर्य उवाच ।

रत्नं बालकं दृष्ट्वागममस्ताचलं प्रति । प्रेरितः कालचक्रेण निशि संस्थानुमक्षमः ॥३१॥
चन्द्र उवाच ।

रत्नं बालकं प्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः । जगाम स्यालयं विष्णोर्गच्छन्वदरिकाश्रमात्
जलमुवाच ।

भ्रमुं रत्नतमानीय स्तनं दद्या स्तनार्धिने । वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्याधिकप्रभम्
सन्ध्ये ऊचतुः ।

अधुनाहंसिकानाञ्चरण्णां तन्पोष्यपुत्रकः । तन्नामचक्रुस्ताः प्रेम्णा कार्तिकश्चेति कौतुकात्
रात्रिख्याच ।

॥ चक्रुर्बालकं ताभ्य लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्यपुत्रकः
दिन उवाच ।

यानियानि च घनूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च । प्रशंसितानि स्यादूनि भोजयामासुरेण तस्मा
नेषां नृपयनं धृष्टा मनुष्यो मधुसूदनः । ते सर्वे हरिमित्यूचुः समायां हृष्टमानसाः ॥

पुत्राय धार्मा' सम्राट् पार्वती हृष्टमानसा । कोटिररनानि विप्रेभ्यो ददौ यद्रुपतानि च
दर्शं सपांलि विप्रेभ्यो वासांसि विविधानि च ॥३८॥

महर्षीः सारग्यती मेना सावित्री सर्वयोजितः । विष्णुश्च सर्वदेयाश्च ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धनम्
इति धीप्रज्ञयैवर्त्तं महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनामद्वयवादे धार्मिकप्रवृत्तिः
प्रातिनाम अनुवर्त्तोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः

शिवदूतैः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकनन्दिसंवादश्च ।

नारायण उवाच ।

पुत्रस्य वार्तां सम्प्राप्य पार्वत्या सह शङ्करः । प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्यतैर्मुने
दूतान् प्रस्थापयामास महाचलपराक्रमान् । वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं कथन्धकम् ॥
नन्दीश्वरं महाकालं वज्रदन्तं भगन्दरम् । गोधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
लक्षश्च क्षेत्रपालानां भूतानाञ्च त्रिलक्षकम् । वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम् ।
कुम्भाण्डानाञ्चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ब्रह्मरक्षसाम् । डाकिनीनाञ्चतुर्लक्षं योगिनीनाञ्चलक्षकम्
रुद्राश्च भैरवाश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान् । अन्याश्च विहृताकायनसंख्यानपि नारद ॥६॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रारूपाण्यः । कृत्तिकानाञ्च भवनं वेष्टयामासुः सतधरम् ॥७॥
इहा तान् कृत्तिकाः सर्वा भयपिह्लमानसाः । कार्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तं ब्रह्मतैजसा
कृत्तिका ऊचुः ।

यत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम् । न जानीमो ययंकस्य करालानि च कार्तिक
कार्तिकेय उवाच ।

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं धीमयि स्थिते । दुर्निवाप्यो निपेक्षमातः केन वाप्यते
पतस्मिन्नन्तरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः । पुरतः कार्तिकस्यापि तिष्ठंस्तासामुवाच ॥
नन्दिकेश्वर उवाच ।

घ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभायहम् । प्रेरितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुः शङ्करस्य च ॥
कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सभायां ते यसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गलम् ॥१॥
शैलेन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम् । संबोध्य कथयामास त्वान्वेषणहेतुकम्
प्रच्छदेवान् विष्णुस्तान् क्रमेणावाप्तिहेतवे । प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकञ्च यथोचितम्
तमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम् । सर्वे धर्मादयो देवाधर्माधर्मस्य साक्षिणः

या धभूय रहःक्रीडा पार्वतीशिवयोः पुरा ॥ १६ ॥

दृष्टस्य च सुरैः शम्भोर्वीर्यं भूमौ पपात ह । भूमिस्तदक्षिपद् यद्वा यद्विश्च शरकानने ॥

ततो लब्धः कृत्तिकाभिरमूर्मिर्गच्छ साग्रतम् ॥ १७ ॥

तवाभिपेकं विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह । इनिष्यसि तारकाख्यं सर्वशस्त्रं लभिष्यसि

पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्तुं स्त्वां गोमुं न क्षमा इमाः ॥ १८ ॥

नाग्निं गोमुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षः स्वकोटरे । दीप्तिमांस्त्वञ्च विभ्वे पुतासांगे हे पुशो भते

यथा पतन्महाकुपे द्विजराजो न राजते ॥ १९ ॥

करोषि जगद्दालोकं न च्छ्रोऽस्याङ्गतेजसा । यथा सूर्यः कपच्छ्रोत्रे न मयेन्मानयस्य च

विष्णुस्त्वञ्च जगदुष्यापी नासां व्याप्योऽसि शाम्भवे ।

यथा न केपां व्याप्यञ्च तत्सर्वं व्यापकं नमः ॥ २० ॥

योगान्द्रो नानुलिप्तस्त्वं भोगान्धपरिपोषणे । नैव लिप्तो यथा तमा च कर्मभोगे पुजीविनाम्

विद्याधारस्त्वमीशाना मृते सम्मयेत् स्थितिः । सागरस्य यथा नद्यांसरितामाभयस्य च

न हि सर्वेऽप्यगायन्तः सम्मयेत् कृत्तिकाख्ये । गरुडस्य यथा वासः क्षुद्रे च चटफोदरे

त्याञ्च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहप्रिग्रहम् । गुणानां तेजसां राशिं यथा ज्ञानमयोगिनः

त्याग्रनिर्गन्तव्यं च कार्यं जानन्ति कृत्तिकाः । यथा परां हरेर्मक्तिममक्ता मूढचेतसः

ज्ञानं यं न जानन्ति तेन कुयं लब्धनादम् । नाद्रियन्ते यथा भेकास्तथेकयासां धपङ्कजान्

कार्तिक उवाच ।

ज्ञानः सर्वं विज्ञानाग्रि ज्ञानत्रे कान्तिकञ्च यत् । ज्ञानोत्थं काग्रं सां ते यतो मृत्युञ्जयाभितः

कर्मणा जग्नं देवां वा वासुधासु ययोनियु । नासु ते निर्वृतिं प्रातः प्राप्नुयन्ति यसां जग्नम्

यं यच्च गच्छति सत्तां वासुधाया कर्मभोगतः । तेऽपि नं यत्तु मय्यग्ने मोहिता विष्णुमायया

साग्रतं जगतां माता विष्णुमाया सनातना । सर्वां चा विष्णुमाया यत्सर्वं चा विष्णुमाया

शैवेन्द्रादौ चार्त्तं वा सत्तां जग्नं माग्ने । दारुणञ्च तस्मिन् यथा साग्राय शङ्कुरं पतिम् ॥

अप्यदिनृचतर्गन्तं सर्वं मिथ्यैव हविषम् । सर्वे कृष्णोद्भवाः काले विलीनास्तत्रैव यत्तम्

अग्ने अग्ने जगन्माता माता मेव तिष्ठन्मति । यत्तन्ममायया बद्धो निष्यः गृह्णिष्यामहम्

प्रकृतेरुद्धयाः सर्वा जगत्सुसर्वयोपिन । काश्चिदंशा.कला. काश्चिन् कलांशांशेनकाश्चन
 कृत्तिका क्षानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः । स्तनेनाभिर्वर्द्धितोऽहमुपहारेण सन्ततम्
 तासामहंपोष्यपुत्रोमदम्बाःपोषणादिमा । तस्याश्चप्रकृतेःपुत्रो यतस्त्यत्स्यामिर्वीर्यतः
 न गर्मजोऽहं शैलेन्द्रकन्याया नन्दिकेश्वर । सा च मे धर्मतो माता तथेमाः सर्वसम्भृताः

स्तनदात्री गर्भदात्री भक्ष्यदात्री गुहप्रिया ।

गर्भाष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका । सगर्भकन्याभगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रभुः ।
 मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा । मातुः पितुश्च भगिनीमातुर्दानीतथैव च
 जनानां वेदपिहिता मातरः षोडशः स्मृताः ॥३८॥

इमाश्च सर्वसिद्धिदाः परमैश्वर्यसंयुता । न शूद्रा व्रजणःकन्यास्त्रिपुलोकैःपूजिताः ॥
 विष्णुनाप्रेरितस्त्यञ्जशम्भोःपुत्रसमोमहान् । गच्छयामित्ययासाददंश्रक्ष्यामि देयताकुलम्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिप्रण्डे नन्दिकार्त्तिक-
 संवादे षडशोऽध्यायः ।

पोडशोऽध्यायः

कार्तिकागमनम् ।

नारायण उवाच ।

तत्प्रेषमुक्त्वा न शीघ्रं संबोधय हस्तिकागमनम् । उवाच नीलियुक्तश्चैव न शङ्करात्मजः ॥

कार्तिक उवाच ।

यास्यामि शङ्करस्यानं द्रक्ष्यामि देवताकुलम् । मातरं कञ्चुपर्णांश्च विदामं दशमातरः ॥
 देवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभापहम् । संयोगश्च वियोगश्च न च देवान्परंकलम् ॥
 कृष्णायत्तश्च सदैवं स च देवान् परस्तनः । भजन्ति सत्तनंसन्तः परमात्मानमीश्वरम् ॥
 त्वं यद्विनिं शक्तः श्वरं कर्तुं कथंलोकश । न देवबद्धलङ्घनध्यायिनासी च निपं च

तस्माद्भजनं गोविन्दं मोहं त्यजतः शुद्धम् । शुद्धं मोक्षं सार्जन्ममृत्युमयागते ।
परमानन्दजननं मोहजालनिवृत्तनम् । शब्दद्वजनि यन् सर्वं ब्रह्मणिष्णुजिगदयः ॥

कोऽहं भवत्पत्नी शुष्माकं का या गूर्यं ममान्मिकाः ।

मत्कर्म स्मृतसां सर्वं पुत्रीभूतञ्च पेनयन् ॥८॥

मंजरेयं विपरीतं वा तत्सर्वमीदृशरेन्द्रिया । ब्रह्माण्डमीदृशगर्भीनं न स्यन्त्यविदुर्धृष्टं
जलमुदुदुधयन् सर्वमनित्यञ्च जगत्प्रथम् । प्रायामनित्ये कुर्यन्ति प्राययामुद्वेगतसः ॥
सन्तस्तत्र न लिप्यन्ति वायुयत्कृष्णचेतसः । तस्मान्मोहं परित्यज्यदिदं दत्तमात्रम् ।
इत्येयमुक्त्वा तां नत्वा सार्द्धं शङ्करपादद्वयम् । यात्राञ्चकार भगवांस्तस्माद्ग्राहयिस्मान् ।
पतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम् । विश्वकर्मनिर्मितञ्च द्वारकेण विराजितम् ॥१॥
सद्वस्त्रसाररचितं माणिक्येन विराजितम् । पाणिजातप्रमृत्तानांमालाजालैश्चर्यामृतम् ।
मणीन्द्रदर्पणैः श्वेतचामरैरतिदीपितम् । कीदृहमन्दिरे रम्यैश्चित्रिनैश्चित्रितं परम् ॥२॥
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम् । प्रस्थापितञ्च पार्यत्या वेष्टितं पार्यदैवैः

तमाग्रहन्तं यानं तां हृदयेन विदूयता ॥३॥

सहसा चेतनां प्राप्य मुक्तकेशः सुचातुराः ॥४॥

दृष्ट्वा च स्वपुरः स्कन्दं स्तम्भिता अतिशोकतः । उन्मत्ता इव तत्रैव धनुःकुमारैर्मिरेमिषा

कृत्तिका ऊचुः ।

किं कुर्मः क्व च यास्यामो धर्यं वरस त्वदाश्रयाः ।

विहायास्मान् क्व याति त्वं नायं धर्मस्तथापुना ॥५॥

लोहेनवर्द्धितोऽस्माभिः पुत्रोऽस्माकं स्वधर्मतः । नायं धर्मो मातृवर्गादुपयुक्तः सुतस्त्यजेत्

इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि कार्तिकम् ।

पुनर्मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेददारुणाम् ॥६॥

कुमारो योषयित्वा तां अध्यात्मचवनेन धी । तामिच्छ पार्यदैः सार्द्धमारोह रथं मुने ।
पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्यां शुक्लधान्यञ्च दर्पणम् । दध्याज्यं मधुलातञ्च पुष्पं दूर्वाक्षतं सितम् ।
पुष्पं गजेन्द्रं तुरगं ज्येष्ठदक्षिं सुवर्णकम् । पूर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च

पतिपुत्रयतीं नारीं प्रदीपं मणिमुत्तमम् । मुक्तं प्रसूतमालाञ्च सजो मांसञ्च चन्दनम् ।

ददर्शैतानि घस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने ॥२३॥

शृगालं नकुलं कुम्भं शवं घामे शुभावहम् । राजहंसं मयूरञ्च खञ्जनञ्च शुक्रं पिकम् ।

पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रपाकञ्च मङ्गलम् । कृष्णसारञ्च सुरमीं चामरीं श्वेतचामरम् ।

धेनुञ्च घटससंयुक्तं पताकाः दक्षिणे शुभाम् । नानाप्रकारवाद्यञ्च शुभाय मङ्गलध्वनिम्

हृदि शब्दस्य सङ्गीतं घण्टाशङ्खध्वनिन्तया ॥२४॥

दृष्ट्वा धृत्या मङ्गलं स जगाम तातमन्दिरम् । क्षणेनानन्दयुक्तञ्च मनोयायिरथेन च ॥२५॥

कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोधाक्षयमलके । क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्यदप्रपरीः सह ॥

पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम् ।

पद्मरागेरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुग्म् ॥२७॥

रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसूत्रप्रयद्भिनीः । ध्यावण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम् ॥२८॥

पूर्णकुम्भजलैर्घ्याप्तं सितं चन्दनधारिभिः । रत्नप्रदीपासंगीयैश्च मणिराजैर्यिराजितम् ॥

नटमर्त्तकवेष्टयानामुत्सवैः संकुलं सदा । घन्दिभिर्यिप्रयगैश्च द्रुपापुष्पकरैर्युतम् ।

पतिपुत्रयतीभिश्च सार्ध्याभिश्च समन्यिताम् ॥३०॥

लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां सावित्रीं तुलसीरतिम् । भरुधतीमहल्याञ्चदितिनारां मनोगमाम् ।

भद्रिणि शतरूपाञ्च शयी सन्ध्याञ्च रोहिणीम् ॥३१॥

भनसूयाञ्च स्वाहाञ्च संज्ञां वरुणकामिनीम् । भाकृतिञ्च प्रमृतिञ्च देवहूतीञ्च मेनकाम् ॥

तामेकपाटलामेकपर्णां मेताककामिनीम् । वसुन्धराञ्च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ ॥

रम्भा तिलोत्तमा मेता घृताची मोहिनी शुभा ।

उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता वरदा ॥३४॥

कदम्बमाला सुरसा वनमाला च सुन्दरी । एताभ्यान्याभ्ययह्वयभ्यपिन्द्राऽऽप्सरसाङ्गजाः

सङ्गीतनर्त्तनपराः सस्मिता वेशमंगुताः । वरतालवराः सर्पा जम्बुगानन्दपूर्णवम् ॥३५॥

देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः क्षिप्रराक्षसाः । सर्वे वयुः प्रमुदिताः कुमारानुमद्यन्ते ॥

नानाप्रकारवाद्यैश्च रदैश्च पार्यदैः सह । भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ सायं महेश्वरः ॥३८॥

धय शक्तिधरो हृष्टो हृष्टाऽऽरात् पार्थमीनदा । अयम्भानुर्णं शिरसा प्रणनाम ह
 नं पद्माप्रमुगं देवोमणश्च मुनिकामिनीम् । शिरय पय्या मनयासर्पान्मंमंमपयवक ।
 पार्थती कार्त्तिकं हृष्टा प्रोदे कृत्वा नुमुष्य म ॥५०॥
 शङ्करश्च सुराः शैला देव्यश्च शैलयोगिनः । पार्थनाप्रमुना देव्यो देवाश्च शङ्करमनया ।
 शैलाश्च मुनयः सर्वे द्रुम्नम्मै शुभागिरम् ॥५१॥
 कुमारः सगणेः साद्वंमागयवशिवालयम् । द्दर्शनंममामये विष्णुं शरीरोदशायिनम् ।
 रत्नसिंहासनम्यश्च रत्नभूषणभूषितम् ॥५२॥
 धर्मप्रतोन्द्रचन्द्रार्कवह्निवाप्यादिमिषुंतम् । ईश्वराम्यं प्रसन्नाम्यं भक्तानुप्रदकातरम् ।
 स्तुतं मुनीन्द्रेदेयेन्द्रे मेयिनं श्येनयामरैः ॥५३॥
 तं हृष्टा जगतां नाथं भक्तिनम्रात्मकचरः । पुलकान्वितसर्वाङ्गीः शिरसा प्रणनाम ह ॥
 विधिं धर्मश्च देवाश्च मुनीन्द्राश्च मुदान्वितान् । प्रणनाम च प्रत्येकंप्रापतेषां शुभाशिरम्
 सर्पान् संभाप्य प्रत्येकमुवाच कनकासने । ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्थत्यासहस्राङ्कुप ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणभारद्वसंवादे गणपतिखण्डे कार्तिकामनं
 नाम षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः

कुमाराभिषेकः ।

नारायण उवाच ।

धयविष्णुर्जगत्कान्तोहृष्टः कृत्वाशुभक्षणम् । रत्नसिंहासनेरम्येवासयामासकार्तिकम् ॥
 नानाविधानि वाद्यानि कांस्यतालदिकानि च ।
 नानाविधानि यन्त्राणि वादयामास कौतुकात् ॥२॥
 वेदमन्त्रामिषिकैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भपतकैः स्थापयामास तं मुदा ॥३॥

नसाररचितकिरीटमङ्गलाङ्गदम् । अमूल्यरत्नरचितभूषणानि यद्गुणि च ॥
 गुडाङ्गुके दिव्ये क्षीरोदाणचसम्भवम् । कौस्तुभं घनमालाञ्च तस्मै नमः ददौ मुदा
 ददौ यज्ञसूत्रं वेदाञ्च वेदमातरम् । सन्ध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रञ्च षड्यज्ञं हरेः ॥
 डलुञ्च ब्रह्मास्त्रं विद्याञ्च वैरिनिर्दिनीम् । धर्मो धर्ममतिं दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ
 मृत्युञ्जयं ज्ञानं सर्वशास्त्रावबोधनम् । शस्त्रम् सुव्रतद्वन्द्वं तत्त्वज्ञानञ्च सुमनोहरम् ॥
 तत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् । शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः ॥
 संहारास्त्रविनिर्देशं तन् संहारं ददौ शिवः ॥८॥

पञ्चमं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः । गजेन्द्रञ्च महेन्द्रञ्च सुधाकुम्भं सुधानिधिः
 पायित्वं सूर्यः सन्नाहञ्च मनोरमम् । यमदण्डं यमध्वजं महाशक्तिं हुताशनः ॥
 नानाशस्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा ॥ १० ॥

शास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मै मुदान्वितः । क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टरत्ननूपुरम्
 पार्वती सम्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा ।

महापिपां सुरशीलाञ्च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम् ॥

पुष्टिं सुनिर्मलां शान्तिं पुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम् ।

सद्गदाञ्च हवीं भक्तिं हविदास्यं ददौ मुदा ॥ १२ ॥

तिर्दधसेनां रत्नभूषणभूषिताम् । सुविनीनां सुरशीलाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥

तस्मै पिपाहेन वेदमन्त्रेण नारदः । यो यदन्ति महापृष्टो यण्डिताः शिशुपालिकाम्
 वेद्यं कुमारञ्च सर्वे देवा ययुर्गृहम् । मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरम्

...ऽणञ्च ब्रह्माणं धर्मं मुदाय शङ्करः । प्रणम्य हरिं तान् धर्ममान्द्रिय नारदः ॥ १५ ॥

गत्वा ययौ च शैलेन्द्रः सगणः शङ्कराश्रितः । ये ये तत्रागताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम्
 परमानन्दसंयुतो देव्या सह महेश्वरः । कालान्तरे च तान् सर्वान् पुनर्गर्वाय शङ्करः ।

पुष्टिं ददौ पिपाहेन गणेशाय महात्मने ॥ १७ ॥

सुताभ्यां सगर्वाः सार्द्धं पार्वती हृष्टमानसा । सिन्धवे स्वामिनः पार्ष्ण्यं ग्रासत्यं कामदम्
 सत्येव कथितं सर्वं कुमारस्याभिनेचनम् । पित्राहः पूजनं तस्य गणेशाय विपादकम् ।

पार्यतीपुत्रलाभश्च देवानाञ्चसमागमः । कालेनसिवाञ्छास्ति किं भूयःश्रोतुमिच्छसि
इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिस्रष्टके नारायणनारदसंवादे कुमारामिषेको
नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः

विघ्नेशविमर्कधनम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । वृक्ष्यामि त्वयामहं किञ्चिदतिसन्नेहमीश्वर ॥ १ ॥
सुतस्य विद्दशेशस्य शङ्करस्य महात्मनः । विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो ॥ २ ॥
परिपूर्णतमः धीमान् परमात्मा परात्परः । गोळोकनाथः स्वांशेन पार्यतीततयः स्वयम्
भद्रो भगवत्तन्त्रस्य मल्लकच्छेदनं पिभो । प्रहृष्टवृषा प्रदेशस्य तन्मे त्वं यत्कुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

शापधानं शृणु ब्रह्मनिनिदानं पुरातनम् । विघ्नेशस्य विघ्नमिदं यभूय येन नारद ॥ ५ ॥
यकदा शङ्करः गृह्यं जगान् परमकृपा । मालिमुमालिहन्तारं शूलैर्न भक्तयत्सलः ॥ १ ॥
धीगृह्यंऽप्यथंशूलैर्न शिष्यतुल्यैर्न तेजसा । जहार वेतनां सद्यो रथाय निपपात ह ॥ २ ॥
ददर्श काययः पुत्रं शृणुमानलोचनम् । हृष्टया यक्षानि तं शोफान् पिल्लवापुंभूरी मुहुः
हृदाकारं गुराम्बलाधकृषिज्जगुर्भृशम् । अर्घ्याभूतं जगत्सर्वं यभूयःतमसावृतम् ॥ ३ ॥
निघ्नमे तनयं दृष्ट्वा ब्रह्माण कश्यपः शिष्यम् । तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रायलनप्राप्तावेजरा
अनुवृत्तस्य यथा यक्षरिष्ठं शूलैर्न नेऽद्य य । त्वन्पुत्रस्य शिररिष्ठत्रमेयभूतममविपति
मित्राय मज्जिभ्योऽथ क्षणेनैवावृतांगकः । ब्रह्मजनेन नमूह्यं जीवयामास तन्नाथान् ॥
ब्रह्मविष्णुदेवानामर्षाश्च त्रिगुणजप्रभः । गृह्यंश्च वेतनीं प्राप्य सप्ततप्तुः पितुः पुरः ।
यकदा दितरं यकदा शङ्करं भक्तयत्सलः । विनाय शम्भोः शापश्च कश्यपश्च सुकोप ह

नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह । विषयञ्च परित्यज्य भजामि कृष्णमीश्वरम् ॥ १५ ॥
 च्छमनित्यञ्च नम्रं चेश्वरं विना । विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वांश्चेदमङ्गलम् ॥
 मेरितो ब्रह्मा समागत्य ससम्भ्रमः । बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषये प्रभुः ।
 माशिरं कृत्वा ब्रह्मा न स्यालयं मुदा । जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च
 ली तुमाली च व्याधिग्रस्तौ बभूवतु । शिवत्रीगलितसर्पाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ
 व स्ययं ब्रह्मा युवाञ्च भजतां रविम् । सूर्यकोपेन गलितौ युवामेव हतप्रभौ ॥
 कथञ्च स्तोत्रं सर्वपूजाधिधिविधिः । जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकं सनातनः
 ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिपेयाते रविं मुने ।

स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ॥ २२ ॥
 याद्वरं प्राप्य निजकरी बभूवतुः । इत्येवं कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि
 ते ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे विष्णेशविप्रकथनं
 नाम अष्टादशोऽध्यायः ।

एकोनविंशोऽध्यायः

भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च ।

नारद उवाच ।

‘कथञ्च ब्रह्मन् ब्रह्मणा च वदौ मुने । दानवाभ्यां पुरादत्तं सूर्यस्य परमात्मनः
 ज्ञा विधानं वा किमन्त्रं व्याधिनाशनम् । सर्वं चास्य महामागतन्मैत्थं यत्कृमर्हसि
 श्रुत उवाच ।

पयः श्रुत्वा भगवान् करुणानिधिः । स्तोत्रञ्च कथञ्च मन्त्रमुवाच पूजनक्रमम्
 नारायण उवाच ।

नारद पश्यामि श्रीसूर्यपूजनक्रमम् । स्तोत्रञ्च कथञ्च सर्वं पापव्याधिविमोचनम्

मालिमुमालिनो दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । विधिं सस्मरतुः स्तोतुं शिवमन्त्रप्रदायकम्
ब्रह्मा गत्वा च वैकुण्ठं पप्रच्छ कमलापतिम् । शिवं तत्रैव गच्छन्तं वसन्तं हरिसन्निधौ
ब्रह्मोवाच ।

मालिमुमालिनो दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः । कमुपायं वद ब्रह्मंस्तयोर्व्याधिविनाशे
विष्णुस्त्वाव ।

हृत्वा सूर्यस्य सेवाञ्च पुष्करे पूर्णवत्सरम् । व्याधिहन्तुर्मदं शस्यती च मुक्तौ भविष्यति
शङ्कर उवाच ।

सूर्यस्य स्नोत्रं कथंचन मन्त्रं कल्पतरुं परम् । देहि ताम्यां जगत्कारत व्याधिहन्तुर्महात्मनः
भारात् सम्पन् प्रदातारो सर्वदाता हरिः स्वयम् ।

व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे ॥ १० ॥

तयोऽनुमतिं प्राप्य ययो दैत्यगृहं विधिः । प्रणम्य तौ तं पृष्ट्वा च तस्मै वदतुरासतम् ।
तामुपायं न्ययं ब्रह्मा गलितौ च दयानिधिः । स्तब्धावाहाररहितौ पूषदुर्गन्धसंयुतौ ।
ब्रह्मोवाच ।

गृहीत्वा कथंचनोत्रं मन्त्रं पूजाविधिक्रमम् । गत्वा हि पुष्करं वरसौ भजयः प्रणतौ रविम्
तावूयतुः ।

भजायः केन विधिना केन मन्त्रेण वा विधे । किं स्नोत्रं कथंचं किं वा तदायाम्यां प्रदेहि
ब्रह्मोवाच ।

हृत्वा त्रिकालं ध्यानं मन्त्रेणानेन भास्वकम् । संसेव्य भास्वरं भक्त्या नीरुजौ च भविष्यत
भौ । श्रीं नमो गणयते गृह्याय परमात्मने स्यादा । इत्यनेन च मन्त्रेण साधनं दिवा रात्रौ
संवृत्तं भक्त्या दत्त्वा शैवोपहासिणो वदतः । परं सर्वतरुं यापयन् धुपं मुक्तौ भविष्यति
भक्त्यै कथयं तस्य मुपायं प्रददाम्यहम् । यद्वत् गुरुणा पूर्यमिन्द्राय प्रीतिपूर्यकम् ।
सन् सदा यमगाहाय शार्ङ्गेन गौतमस्य च । ब्रह्मव्याहरणेनैव वापयन्ताय सद्गते ॥ १८ ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

इन्द्र भक्तुः प्रवक्ष्यामि कथंचं परमाद्भुतम् । यद्वत्वा मुनयः पूजा जीपन्मुक्ताश्च भारते ।

एतच्च विप्रतो व्याधिर्न याति सन्निधिं भिया । यथा दृष्ट्वा घनतेयं पलायन्ते भुजङ्गमाः
पुढाय गुरुमक्तायस्यशिष्यायप्रकाशयेत् । पलाय परिशिष्याय दत्त्वामृत्युमवाप्नुयात्
गद्विलक्षणस्यास्य कथंचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरः स्वयम्
व्याधिप्रणानो सौन्दर्यं विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥

सद्यः पूतकरं सारं सर्वपापप्रणशानम् ।

ओं ह्रीं ह्रीं धीं धीं सूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम् ॥ २३ ॥

प्रादराक्षरोमन्त्रः कपालं मे सदायतु । ओं ह्रीं ह्रीं धीं धीं सूर्याय स्वाहामे पातु नासिकाम्
धुमे पातु सूर्यश्च तारकाश्च विकर्तनः । मास्करो मेऽधरं पातु दन्तं दिनकरः सदा
वण्डः पातु गण्डं मे मार्त्तण्डः कर्णमेव च । मिहिरश्च सदा स्कन्धं पातु जङ्घेवपूरणः
क्षः पातु रविः शश्यग्नार्भि सूर्यः स्वयं सदा । कङ्कालं मे सदापातु सूर्यदेवनमस्कृतः
रौ पातु सदा प्रजः पातु पादौ प्रभाकरः । विभाकरो मे सर्वाङ्गं पातु सन्ततमीश्वरः
ते ते कथितं घटस कथंचं सुमनोहरम् । जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुबुलंभम् ॥
पुरा दत्तञ्च मनचे पुलस्त्यः पुरकरे मुदा । मया दत्तञ्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यसि
व्याधितो मुच्यसे त्वं च कथंचस्य प्रसादतः । भवानरोगी धीमांश्च भविष्यति न संशयः
दक्षार्णहविष्येण यत्फलं लभते नरः । तत्फलं लभते नूनं कथंचस्यास्य धारणात् ॥ २२
एवं कथंचमहात्मा यो मूढो मास्करं भजेत् । दशलक्षप्रज्ञतोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सूर्यकथंचं समाप्तम् ।

ब्रह्मोवाच ।

धृत्वेदं कथंचं घटसी कृत्वा च स्तवनं रवेः ।

सुधां व्याधिविमुक्तौ च निश्चितन्तु भविष्यथः ॥ २४ ॥

स्तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम् । सर्वपापहरं सारं श्रीरोग्यकरं परम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

ब्रह्म परमं धाम उयोतीरुपं सनातनम् । त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम् ।

त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापप्रमोचनम् । तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा ॥
 कर्मानुरूपफलदं कर्मवीजं दयानिधिम् । कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मवीजकम् ॥ ३८ ॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकम् । व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहमयापहम्
 सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम् ॥ ३९ ॥

सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम् । प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षं मनोहरम् ॥ ४० ॥
 शश्वद्रसहरं पद्माद्रसदं सर्वसिद्धिदम् । सिद्धिस्थरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुह्यम् ॥
 स्तवराजमिदं प्रोक्तं गुणाद्गुणहरं परम् । त्रिसन्ध्यं पठेन्नित्यं सर्वस्याधिः प्रमुच्यते
 आन्ध्र्यं कुष्ठञ्च दारिद्र्यं रोगं शोकं भयं कलिः ।

तस्य नश्यति विश्वेश श्रीसूर्यरूपया ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

महाकुट्टीचगलितो यश्चूर्हीनो महावर्णी । यक्षमप्रस्तोमहाशूली नानाव्याधियुतोऽपि
 मासंरुद्धा हविष्यान्नं श्रुत्वास्त मुच्यते ध्रुवम् । ज्ञानञ्च सर्वतीर्थानां लभते नात्र संशयः
 पुष्करं गच्छन् शीघ्रं मास्करं भजतं सती । इत्येयमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्थालयं मुदा
 तौ निपेक्ष्य दिनेशेन नीकर्त्ता तौ यभूवतुः । इत्येयं कथितं यत्स किम्भूयः श्रोतुमिच्छति
 सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशविघ्नकारणम् । स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥
 इति ध्यात्राद्यैवर्त्तं महापुराणे नारायणनारद-संवादे गणपतिलण्डे विघ्न-
 कारणकथनं नामोत्पत्तिशतितमोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः

गजसुखयोजनहेतुकथनम् ।

नारद उवाच ।

“ ॐ नमः ॥ ” इति नृत्यो भवान् विधा । तेजसा विक्रमेणैव मन्मथं श्रोतुमर्हसि ॥
 गजसुखं यद्विघ्नं ध्रुवं तन्मयाद्भुतम् । तद्विघ्नकारिणश्चैव विश्वकारणव्यवप्रतः ॥ २॥

अधुनाधोनुमिच्छामि स्यात्तमसन्देहमव्रतनम् । प्रेलोक्यनाथतनये गजस्ययोजनाकथम्
स्थितेऽप्यन्येषु सर्वेषां जन्तूनां जन्तुसम्भव । विशिष्टानां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम्

श्रीनारायण उवाच ।

गजस्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नाद ! गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुलभम् ॥ ५ ॥

कारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसम्पदाम् । दारणं त्रिपदाञ्चैव रहस्यं पापमोचनम् ॥ ६ ॥

मदालम्ब्याश्च चरितं स्वयंमङ्गलमङ्गलम् । सुवर्त्मोत्तमश्चैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ७ ॥

शृणु तात प्रपश्येऽहमितिदासं पुरातनम् । रहस्यं पापमोचरस्य पुरा तातमुवाच ॥ ८ ॥

एकदैव मदेन्द्रश्च पुष्पमद्वां नदीं ययौ । महासम्पन्नमदोन्मत्तः कामी राजप्रियान्वितः ॥ ९ ॥

वर्त्ताटेऽनिरुद्धस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे । मनीरदुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवाजिते ॥ १० ॥

मरुत्पनिसंयुक्ते पुंस्तोकिटदन्ध्रते । सुगन्धिपुष्पसंश्लिष्टयायुता सुरभीरुते ॥ ११ ॥

दरां रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकान् समागताम् । सुरतध्रमविधामकामुकीं कामकामुकीम् ॥ १२ ॥

इच्छन्तीमीप्सितां प्रीडां गच्छन्तीं मदनधामम् ।

एकाकिनीमुन्मत्तस्कां मन्मथोद्गतमानसाम् ॥ १३ ॥

धोर्णीं सुदर्शीयामां विम्याधरसरोरुहाम् । बृहन्नितम्बभारार्त्तां गजेन्द्रमन्दगामिनीम् ॥ १४ ॥

स्मितास्यशरच्चन्द्रां लकटाक्षश्च विप्रतीम् । विप्रतीकवरीं रम्पांमालतीमाल्यशोभिताम् ॥ १५ ॥

हेगुजांशुकधरां रत्नभूरणभूषिताम् । कस्तूरीचिन्दुना साक्षं सिन्दूरचिन्दुमण्डिताम् ॥ १६ ॥

लोत्पलपिनिन्दैकफज्जलोज्ज्वललोचनाम् । मणिकुण्डलयुग्मेनगण्डस्थलयिराजिताम् ॥ १७ ॥

युवतं सुकठिनं पत्रराजिपिराजितम् । सुखदं रसिकानाञ्च स्तनयुग्मञ्च विप्रतीम् ॥ १८ ॥

सर्वशोभाढ्यवेशाढ्यां सुभगां सुरतोत्सुकाम् ।

प्राणाधिकाञ्च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम् ॥ १९ ॥

मप्सरसां रम्पामतोचस्थिरयौवनाम् । गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम् ॥ २० ॥

तामतिवेशाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडितः । इन्द्रोऽतीन्द्रियचापल्यात् प्रवक्तुमुपचकमे

इन्द्र उवाच ।

च्छसि वरारोहे कागतासिमनोहरे । मया दृष्टान(सि) सुचिदं मत्प्रियाणि तवाधना

तदाग्नेयतपसां हि शुभ्या धामिन्मन्त्रजः । शम्भुना नृपराजः कदाचनो जनाभिः ॥
 सुपासितस्तमागोऽयः किमिच्छेत्पुनरिन्द्रजन्मम् । पद्विन्देच्छन्तापी गृह्णातीत्यान्तरं

सुपापी न सुगमिन्देत् सुपापी न जन्तापिनम् ।

सुगमिन्सुपापी यो न मास्त्रज्यमिच्छति ॥ २० ॥

नः स्वर्गो नरकं मेच्छेत् सुपापी मन्दमोक्षम् ।

पण्डितैः सह संवासी मेच्छेत् कामिनीमप्रियम् ॥ २१ ॥

विहाय रत्नाभरणं कोऽप्योच्छेदहभूजम् ।

स्वामाश्रित्य महाविना को भूतो गन्तुमिच्छति ।

विहाय गङ्गां को विमो नदीमन्याञ्च धाम्छति ॥ २२ ॥

नेन्द्रियेभ्येन्द्रियरतिं घटमानाञ्च सेवतेः । वरं प्रार्थयित्वाञ्च जीविनञ्च सुपापिनः ॥ २३ ॥

इत्येयमुत्तमा भगवानपरा गजेश्वरान् । कामयुक्तञ्च पुरतस्तर्षा तस्याञ्च नारद ॥ २४ ॥

श्रुत्वा तद्वचनं रम्भा महाहृद्गारलोनुपा । जहासानप्रयदना पुनकाञ्चिनविग्रहा ॥ २५ ॥

स्मेराननफटाक्षेण स्तनोरदर्शनेन च । कामाग्न्यादुत्तियाष्येन जहार तस्य चेन्नम् ॥ २६ ॥

मितं सारं सुमधुरं सुस्निग्धं कोमलं प्रियम् । पुरपापसर्पाञ्च शयन्तुमुपचक्रमे ॥ २७ ॥

रम्भोवाच ।

यास्यामि धाञ्छितं यत्र प्रथेन तव किं फलम् । नार्हसन्तोषजननीपूतानां दुष्टमित्रता ॥

यथा मधुकरो लोभात् सर्वपुष्पासघं लभेत् । स्वादुयत्रातिरिक्तसतप्रतिष्ठतिसन्ततम् ॥

तथैव लम्पटपुमान् भ्रमेद् भ्रमरवन् सदा । न विषदो हि कास्येव धायुषद्रसमाहरेत् ॥

सुपुमान् हृद्यतर्क्षीणायथाशास्त्राश्चशाखिषु । लम्पटः काकयत्सोलः फलं भुक्त्वा प्रयाति च ॥

स्थकार्प्यमुदरेद् यावत्तावद्वासप्रयोजनम् । सितिः काप्यां नुरोधेन यथाकाष्ठे हुताशनः ॥

यावत्तद्गते तोयानिताघदुयादांसितेषु च । शुष्कारम्भे च तोयानां यागतिस्थानान्तरं पुनः ॥

त्वं देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनाञ्च धाञ्छितः ।

पुमांसं रसिकं शब्दं धाञ्छन्ति रसिकाः सुपात् ॥ २८ ॥

युधानं रसिकं शान्तसुवेशं सुन्दरं प्रियम् । गुणिनं धनिनं स्पृच्छन्तमिच्छतिकामिनी ॥

दुःशीलं रोणिणं वृद्धं रत्तिशक्तिविहीनकम् । अदातात्मविद्वञ्च नैव चाञ्छन्ति योपितः ॥

फा मूढा न च चाञ्छन्ति त्वामेवं गुणसागरम् ।

तथाज्ञाकारिणीं दासीं गृहाणात्र यथासुखम् ॥४२॥

इत्युत्तया सस्मिता साचतंपपोवक्रचक्षुषा । कामाग्निदग्धाविगलहज्जातस्थौ समीपतः ॥

ज्ञात्वा भावं स्मरार्त्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः । गृहीत्वातांपुष्पतल्पे विजहार तया सह ॥

सहसा रहसि प्रौढां नग्राञ्चसुमगांचराम् । पक्षिभ्याधरीर्षोच्चबुधुम्य बुभुक्षितस्तया ॥

नानाप्रकारच्छृङ्गारं विपरीतादिकं मुने । चकार कामी तत्रैव शृङ्गारो मूर्त्तिमानिव ॥४३॥

तौ कामाहितचित्तौ मा बुबुधाने दिवानिशम् ।

शश्वत्तद्वत्चित्तौ च कामार्त्तौ ज्ञानवर्जितौ ॥४४॥

त च कृत्वा स्थले क्रीडां तया सहसुरेश्वरः । ययौ जलविहारार्थं पुष्पभद्रानदीजलम् ॥

चकार जलक्रीडां तया सह क्षणं मुदा । जलात् स्थले स्थलात्तोयेऽपि जहार पुनः पुनः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तेन घर्त्मना मुनिपुङ्गवः । सशिष्यो याति दुर्घासा घैकुण्ठाच्छङ्करालये ॥

तत्र हृष्टा मुनीन्द्रश्च देवेन्द्रः स्तम्भमानसः । ननामागत्य सहसा ददौ तस्मै सचाशिवः ॥

पारिजातप्रसूनं यद्वत् नारायणेन वै । तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ॥५२॥

इत्या पुष्पं महाभागस्तमुवाच हृषानिधिः । माहात्म्यं तस्य यत्किञ्चिदप्युक्तं मुनिसत्तमः ॥

दुर्घासा उवाच ।

सर्वविग्रहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम् । मूढर्जोऽहं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ॥५३॥

पुनः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत् । तच्छायेष महालक्ष्मीर्न जहाति कदापि तम् ॥

ज्ञानेव तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च । सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ॥

मत्तया मूर्ध्नि न गृहाति योऽहङ्कारेण पापमरः । नेयेच्च हरेरेव सन्नप्रीः स्य ज्ञातिभिः ॥

इत्युत्तया शङ्करांशश्च जगाम शङ्करालयम् ॥५४॥

शक्रो रमान्तिके पुष्पं संस्थाप्य गजमस्तके । शक्रं स्रष्टुमिच्छन् सा जगाम सुरालयम् ॥

पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाधमा ॥५५॥

देवराजं परित्यज्य गजराजो महाबली । प्रविशेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्यतेजसा ॥

तत्रैव करिणीं प्राप्य मत्तःसंबुभुजेबलात् । सातद्वयभूवचशगा योपिज्जातिः सुखार्थिनी ।

तयोर्वभूवापत्यानां निवहस्तत्र कानने ॥ ६० ॥

हरिस्तन्मस्तकं छिरया युयोजतेनबालके । इत्येवंकथितंवत्सकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

गजास्ययोजनायाश्च कारणं पापनाशनम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गजास्य-
योजनहेतुकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

शक्रलक्ष्मीप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

ते देवा ब्रह्मशापेन निधीकाः येन वा प्रभो । यभुस्तद्रहस्यञ्च गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
कथं वा प्रापुर्ते तां कमलां जगतां प्रसूम् । किञ्चकार महेन्द्रश्च तद्वयान् घक्तुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दघीः । स्रष्टृर्धैर्न्ययुक्तश्च स जगामामरायतीम् ॥
तां ददरां निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने । दैन्यप्रस्तां यन्धुहीनां वैरिषणैःसमाकुलाम् ॥
सर्वं धुन्या दूतमुगाज्जगाम मन्दिरं गुरोः । तेन देवगणैः सार्द्धंजगामब्रह्मणःसभाम् ॥

गत्या मनाम तं शक्रः सुरैः सार्द्धं तथा गुरुः ।

मुष्टाय पैदयिधिना स्तोत्रेण भक्तिसंयुतः । प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम् ॥
धुन्या ब्रह्मा मघयक्त्रः प्रघक्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

मन्त्रपात्रोऽसि देवेन्द्र शद्वद्राजन् धिया उच्यते ।

नृक्ष्मीसमःशर्वाभर्ता पराङ्मनोनुपः सदा ॥ ७ ॥

गोत्म्याभिरापेन भगान्नः सुगन्धं सदि । पुनर्नञ्चाविर्दानस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः ॥ ८ ॥
 यः परस्त्रीपुनिरतस्तस्य धीपांस्तुतो यशः । स च निन्द्यः पापयुक्तः शयवत् सर्वसमासुच
 नैवेद्यं धीहरेरेव दत्तं दुपांससा च तं । गजमूर्ध्नित्यया न्यस्तं रम्भया हतचेतसा ॥ १० ॥

क रा रम्भा सर्वभोग्या काधुना त्वं श्रिया हतः ।

पद्मा स्वप्ता यन्निमित्ताद्गता स्वप्ताः क्षणेन सा ॥ ११ ॥

वेद्या सधीकमिच्छन्ती निःधीकं न च यश्नुता । नयनयं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम्
 ग्द्वर्नं तद्गर्नं यस्य निष्यन्नं न निषर्जते । भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतये ॥ १३ ॥
 ह्युत्तपा तं जगत्प्रभुः स्तोत्रञ्च कवचं ददौ । नारायणस्य मन्त्रञ्च नारायणपरायणः ॥
 स तैः सादृशं शुद्ध्या जज्ञाप मन्त्रमीप्सितम् । गृहीत्या कवचं तेन शुद्धाय पुष्करैहरिम्
 परंमैकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे । सिन्धेय कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतये ॥ १६ ॥
 भाविमूय हरिस्तस्मै पाच्छित्तञ्च परं ददौ । लक्ष्मीस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमैश्वर्यवर्द्धनम्
 दत्त्वा जगाम धैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेघ च । गृहीत्या कवचं स्तुत्या प्राप पद्मालयां मुने
 सुरेधरोऽरिं जित्वा स भद्रामामरापर्ताम् । प्रत्येकञ्च सुराः सर्वे स्थालयंप्रापुरीप्सितम्
 इति धीमत्प्रयैवर्णे महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शप्तः-

लक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकपिंशतिनमोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः

लक्ष्मीस्तोत्रं कवचञ्च ।

नारद उवाच ।

भाविमूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ । महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन
 नारायण उवाच ।

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरताम सुरेध्वज । भाविर्वभूष तत्रैव क्लिष्टं हृद्वा हरिः स्वयम् ॥

तमुवाच हर्षिकेशो धरं गृणु कथं प्रियम् । तं न पश्ये धरं लक्ष्मीप्रीताम्यम् दत्तं मुरा ॥
 परं दत्त्वा हर्षिकेशः प्रयत्नमुपगम्यते । दिने सत्यञ्च गार्ह्यं परिणाममुपायहम् ॥ ४ ॥

श्रीमधुमूदन उवाच ।

गृहाण कथंच शत्रुः सर्वदुःखविनाशनम् । परमैश्वर्य्यजनकं सर्वगतुगिर्मर्दनम् ॥ ५ ॥
 प्रह्लाणे च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते । यद्गृह्या जगतां धेनुः सर्वैश्वर्य्ययुतो विधिः
 धूम्रयुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्य्ययुता यतः । सर्वैश्वर्य्यप्रदस्यास्य कवचस्य श्रुतिविधिः ॥
 पङ्क्तिदण्डधरा देवो मयं पद्मालया सुरा । सिद्धैश्वर्य्यजरेणैव विनिर्दोगः प्रकीर्तितः
 यद्गृह्या कथंच लोकः सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ८ ॥

मस्तकां पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया ।

नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम् ॥ ९ ॥

केशान् केशवकान्ता च कपालं कमलालया । जगत्प्रसूर्णण्डयुग्मं स्फुचं सम्पत्प्रदा सदा
 ओं श्रीं कमलपासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽप्यतु । ओं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽप्यतु

पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मञ्च श्रीं तमः ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्ये नमः पादौ पातु मे सन्ततञ्चिरम् ।

ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥ १२ ॥

ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्पाङ्गं पातु मे सदा ।

ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः ॥ १३ ॥

इति ते कथितं धत्सु सर्वसम्पत्करं परम् । सर्वैश्वर्य्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥ १४ ॥
 शुद्धमन्यर्च्य विधियत् कवचं धारयेत्तु यः । कण्ठेषा दक्षिणे बाहौ च सर्वविजयी भवेत्
 महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन । तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि
 इदं कवचमगताया भजेत् लक्ष्मीं सुमन्दूषीः । शतलक्षप्रजतोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे लक्ष्मीकवचं समाप्तम् ।

नारायण उवाच ।

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रञ्च योऽङ्गशास्त्रम् । सन्तुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम्

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा ।

ददौ तस्मै च कृपया इन्द्राय च महामुने ॥ १६ ॥

। नञ्च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम्
तत्त्वम्पकचर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । बह्विशुद्धांशुकाद्यानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ २१ ॥
ज्ञास्यप्रसन्तास्यां भक्तानुग्रहकारकाम् । सहस्रदलपद्मस्यां स्वस्थाञ्च सुमनोहराम् ॥

शान्ताञ्च धीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥ २३ ॥

नेनानेनदेवेन्द्रभ्याह्वालाक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्यादास्यसि तत्सर्वेष्वोपचाराणिषोडश
त्वानेन स्तवेनेय वक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा परंशुदीप्त्वा च लभिष्यसिष्वनिर्द्वैतिम्
यत् शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यञ्च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्
नारायण उवाच ।

त्वांस्तोतुमिच्छामि नक्षत्राः स्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरांसूक्ष्मांतेजोरूपांसनातनीम्

अत्यनिर्वचनीयाञ्च को वा निर्वचकुमीरवरः ॥ २७ ॥

सामयीनिराकारांभक्तानुग्रहविग्रहाम् । स्तीमिषाद्भक्तसोभारार्किवाऽहंजगदम्बिके
चतुर्णां वेदानां पारधीजं भयार्णवे । सर्वशस्याधिदेवीञ्च सर्वासामपि सत्पदाम् ॥

योगिनाञ्चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनान्तथा ।

वेदानाञ्च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥ ३० ॥

यिना जगत्सर्वमवस्तुनिष्कलं ध्रुवम् । यथा स्तनान्धवालाणांमात्रायस्तुत्ययास्तद्
इ जगतां माता रक्षास्मान्तिकातरान् । ययं त्यक्षरणाग्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः
शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ॥
। किप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥
१ः कुत्रचित् सन्ति न कुत्रचित्कुमातरः । कुत्र माता पुत्रदोषे तं विहायचगच्छति
तद्दर्शनं देहि स्तनान्धान् धालकानिव । कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान्ममत्वत्सन्ने
कथितं घटस्य पद्मायाञ्च शुभाचहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सत्पदः पदम् ॥
श्रेष्ठं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीं गृहं तस्य न जहाति कदाचन

इत्युत्तमा धीदग्निस्तश्च तत्रैवान्नर्थायत । देवो जगाम क्षीमंश्च सुरैः सारं दृष्टया ।
 इति श्रीप्रह्लादचरणं महापुरुषेण गणपतिपूजे नारायणनाम्न्यर्चनार्थं लक्ष्मीस्तव-
 पञ्चपूजाकथनं नाम द्वाविंशतिप्रोऽध्यायः ।

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

महालक्ष्मीनस्तिम् ।

नारायण उवाच ।

इन्द्रश्च गुरुरासां सुरैश्च दृष्टमानसः । जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः ।
 कथञ्च गले पद्मध्या सद्रत्नगुटिकाग्नितम् । मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनः पुनः
 ते सर्वे भक्तिरक्ताश्च तुष्टुष्टुः कमलालयाम् । साधुनेत्रातिर्द्विनाश्च भक्तिनम्रात्मकधराः
 सा तेषां स्तवनं श्रुत्या सद्यः साक्षाद् यन्मूष ह । सहस्रदलपद्म्या शतचन्द्रसमप्रभा ।
 जगद्गुह्यात् सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने । तानुयाच जगद्वात्री हितं सारं यपोचितम्
 धीमहालक्ष्मीरुवाच ।

घत्सा नेच्छामि यो गेहान्ान्तुं नैवं क्षमायुता । भ्रष्टानां ग्रहशपेन विभेति ग्रहशपतः
 प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत्पुत्राधिकप्रियाः । विप्रदत्तश्च यत्किञ्चिदुपजीव्यं सर्वैव
 विप्रा मुषन्तु मां तुष्टा यास्यामि चतुर्दशया । न मे पूजां धुयं कर्तुं क्षमास्ते च तपस्विनः
 गुरुमिन्द्राक्षणेर्देवैर्मिधुमिर्वैष्णवैस्तथा । यद्यभाग्यं भवेद् देवास्ते शप्ताः सन्ति सन्ततम्
 नारायणश्च भगवान् विभेति ग्रहशपतः । सर्वजीवश्च भगवान् सर्वेशश्च सनातनः ।
 एतस्मिन्नन्तरे ग्रहान् ब्राह्मणादृष्टमानसाः । आजग्मुः सस्मिताः सर्वे उचलन्तो ग्रहतेजसा
 अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च भृगुरैव च । पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिरत्रिरेव च ।
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान् साक्षान्नारायणात्मकः ।
 कपिलश्चासुरिधैव घोडुः पञ्चशिखस्तथा । दुर्घासः कश्यपोऽगस्त्योगीतमः कण्वश्च

सौर्यः कात्यायनश्चैव कणादः पाणिनिस्तथा । मार्कण्डेयो लोमशश्च शिष्टो भगवान् स्वयम् ।
 ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यैः पूजयामासुरीश्वरीम् । देवाश्चाख्यनैवेद्यैः परिहारेण भक्तितः ।
 स्तुत्या मुनीन्द्रास्तां भक्त्या चक्रुराराधनं मुदा । आगच्छ देवभवनं मर्त्यञ्च जगदम्बितं ।
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसूः । परितुष्टा गामुकी च निर्भया ब्राह्मणा ह्यपि ।
 श्रीमहालक्ष्मी उवाच ।

एवाम् यास्यामि देवानां शुष्माकमाह्वया द्विजाः । येषां गेहं न गच्छामि ऋणुर्ध्वं भारते पुरु-
 स्थिरा पुण्यधत्तां गेहे सुनीतिवेदिनामहम् । गृहस्थाणां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान् ।
 यं यं ह्यो गुरुर्द्धो मातातातश्च यान्धवाः । भतिभिः पितृलोकश्च न यामितस्य मन्दिरम् ।
 मिथ्यापाद्विचयः शश्यन्नास्तीति वाचकः सदा । सत्स्यहीनश्च दुःशीलो न गेहं तस्य याम्यहम् ।
 सत्स्यहीनः स्थाप्यहारी मिथ्यासाह्यप्रदायकः । विश्वासघ्नः कृतघ्नो यौ न यामितस्य मन्दिरम् ।
 चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुप्रस्तोऽतिपातकी ।

ऋणग्रस्तोऽतिरूपणो न गेहं यामि पापिनाम् ॥ २० ॥

वीक्षाहीनश्च शोकात्तर्षा मन्दधीः स्त्रीजितः सदा । न यामि वाकदा गेहं पुंश्चल्याः पतिपुत्रयो-
 यो दुर्वाक् कलहाविष्टः कलिः शश्वदु यदा लये । स्त्रीप्रधाना गृहे यस्य न यामितस्य मन्दिरम् ।
 यत्र नास्ति हरेः पूजा तदीयगुणकीर्तनम् । नोत्सुकस्तत्प्रशंसायां न यामितस्य मन्दिरम् ।
 कन्यान्मयेदधिकं ता नरपाती च हिंसकः । नरकागारसदृशं न यामि तस्य मन्दिरम् ॥
 मातरं पितरं भार्यां गुरुपर्णीं गुहं सुतम् । भनायां भगिनीं कन्यामनन्याधययान्धवान् ॥
 कापण्याद् यो न पुण्यातिसञ्चयं कुरुते सदा । तद्देहान्नरकागारश्च यामिताम्बुनीश्वराः ।
 दशनं घसनं यस्य समलं हृद्भस्मस्तकम् । विरुतो ग्रासहासो न यामि तस्य मन्दिरम् ।
 मूर्धं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्प्रश्यति मन्दधीः । यः शेते स्निग्धपादेन न यामि तस्य मन्दिरम् ।
 अधीतपादशायी यो नम्रः शेतेऽतिनिद्रितः ।

सन्ध्याशायी दिवाशायी न यामि तस्य मन्दिरम् ॥ २१ ॥

मूर्द्धाभितैलं पुरोदत्त्वा योऽन्यद्गुणमुत्सृजेत् । ददाति पश्चाद्वात्रे वा न यामितस्य मन्दिरम् ।
 दत्त्वा तैलं मूर्द्धाभितैलात्रे विष्णुग्रन्थः समुत्सृजेत् । प्रणमेदादरेत् पुण्यं न यामितस्य मन्दिरम् ।

एकदा कार्तवीर्यश्च जगाम मृगयां मुने । मृगाग्रिहत्य बहुलान् परिश्रान्तो बभूव सः
 निशामुवे दिनेऽर्तते तत्र तस्मै घने नृपः । जमदग्न्याश्रमाम्नासे उपोष्य सैन्यसंयुतः
 प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंघितः । दत्तात्रेयेन दत्तञ्च जजाप भक्तितो मनुम् ॥
 मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकम् । प्रीत्या सम्भाषयामास पप्रच्छ कुशलं मुनिः
 गताम सम्प्रमाद्राजा मुनिं सूर्य्यसमप्रभम् । सच तस्मै ददौप्रीत्या प्रणताय शुभाशिरम्
 वृत्तान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम् । सम्प्रमेणैव मुनिना प्रस्तं राजानिमन्त्रितः
 पिहाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्यालयं मुदा । लक्ष्मीसमां कामधेनुं कथयामास मातरम्
 उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते । जगद्भोजयितुं शकस्त्वं मयाकोनृपोमुने
 राजभोजनयोग्याहं यद् यद् द्रव्यं प्रयाचसे । सर्वतुभ्यं प्रदास्यामि त्रिपुलोकेषु दुर्लभम्
 सौवर्णानि राजतानि पात्राणि विविधानि च ।

भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च ॥ १५ ॥

पात्राणि स्यादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा । नानाविधानि स्वादूनि परिपक्वफलानि च
 पनसाभ्रनारिकेलध्रीफलानि च नारद । राशीभूतान्यसंख्यानि स्यादूनि लङ्घुकानि च
 पपगोभूमचूर्णानां पिष्टकानां बहूनि च । पकालानां पर्वतञ्च परमाग्नस्य कन्दरम् ॥ १८
 दुग्धानाञ्च घृतानाञ्च नदीं दध्नां ददौ मुदा । शर्कराणां तथा राशिं मोदकानाञ्चपर्वतम्
 पृथुकानां सुशालीनां पर्वतं प्रददौ मुदा ॥ १९ ॥

तामूलं प्रददौ पूर्णं कर्पूरदिप्तुवासितम् । नृपयोग्यं कौतुकञ्च सुन्दरं बलभूषणम् ॥ २०
 मुनिः सम्भृतसम्भारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् । भोजयामास राजानं ससैन्यमवलीलय
 यद् यत् सुदुर्लभं यस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः । जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्रमुवाच ह ॥
 राजोवाच ।

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च । ममासाध्यानि सहसा कागतान्यवलोक्य
 नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहे । राजानं कथयामास वृत्तान्तं महद्दुतम् ॥ २४
 सचिव उवाच ।

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरे । बह्विकुण्डयज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम् ॥ २५ ॥

कृष्णममंशुपुत्रमिहः शिष्यमंशुपुत्रम् । नैतन्मापायजन्मस्यार्त्तिं सांमगदित्तिम्
पुष्पममंशुपुत्राणां दृष्टाः सर्वे जटाधराः ॥ २३ ॥

द्विपदेने दृष्टा सा कपिलेका मनोहरा । शार्पङ्गी गन्धर्वनामा गन्धर्वकृत्योन्मता ॥२४॥
उपलब्धी मेजसा सत्र पूर्णगन्धर्वमप्रना । सांमगदित्तिगुणाचारा साधारण्य इतिदिता ।
सर्पधाराभिनी राजा द्रुपदिः सविवाजया । मुनि ययाचे मां धेनुं निरदः कान्ताराम
पिचापुण्यशक्तानुक्तिनिरेकः सर्वतोयदी । पुष्पयान् बुद्धिमान्देवाद्राजन्ध्रोवागोद्विजम्
पुष्पात्प्रजापते कर्म पुष्पव्यवञ्ज भागने । पापात्प्रजापते कर्म पापकर्म मयापहम् ॥३३॥
पुष्पात् कृत्वा स्वर्गमोगं जन्म पुष्पव्यवञ्ज नृनाम् ।

पापात् भुक्त्या च तर्कं कुत्सितं जन्म जीयिनाम् ॥ ३३ ॥
जीवितां निष्ठतिर्नामिह स्थिते कर्मणितात् । नेन कुर्यन्ति सन्तश्च सन्तर्ककर्मनःशान्
सा विद्या तत्तपो दानं स मुक्तःसचवान्धवः । सामाना मपिना पुष्पमन्त्रक्षदंकारत्येनुयः
जीवितां द्वाद्यतो रोगः कर्ममोगः शुभाशुभः । भक्तयेष्वन्निदन्ति कृष्णमक्तिरसादनन
माया द्वाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता । परितुष्टा जगदार्थ भक्ताय बुद्धिदायिनी
परा परमभक्ताय माया यस्मै द्वाति च । मायां दत्त्वा मोहयितुं न विप्रेकं कदाचन ।
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः । उवाच चित्तं भक्त्या पुष्टाब्रलियुतो मुखा
राजोवाच ।

मिक्षां देहि कल्पतरो कामधेनुञ्च कामदाम् । मह्यं भक्ताय भक्तेरा भक्तानुग्रहकातर ॥
युष्मद्विधानां दातृणामदेयं नास्ति भारते । दधीविर्देयताभ्यश्च दधी स्यासि पुराश्रुतम्
भूमङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन । समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते ॥४२॥
मुनिस्वाच ।

अहो व्यतिकर्म राजन् ब्रवीषि शठ पञ्चक । दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियायनृपायम
कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना । कामधेनुरियं यत्ने ॥ देयाः प्राणतः प्रिया ॥
ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप । मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥
गोलकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रान् कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्वरः ॥

नाहं रे हालिकोमूढत्वयानोत्थापितोबुधः । क्षणेनमस्मसात् कर्तुं क्षमोऽहमतिथिचिना
 गृहं गच्छ गृहं गच्छ मत्कोपं नैव वर्धय । पुत्रदारादिकं पश्य दैववाधित पामर ॥४८॥
 मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा युकोप स नराधिपः । नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिवाधितः
 गत्वा सैन्यसकारं स कोपप्रस्फुरिताधरः । किङ्कुरान् प्रेषयामास धेनुमानयितुं यत्नात्
 कपिलासन्निधिं गत्वा रुरोद् मुनिपुङ्गवः । कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१॥
 रुरोत् प्राहणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह । साक्षाद्भर्माः स्वरूपा सा भक्तानुग्रहकातरा
 सुरभिरुवाच ।

एन्द्रोपाहालिकोपापिस्वयस्तुदातुमीश्वरः । शास्ता पालयितादातास्वयस्तुताञ्जसन्ततम्
 स्वेच्छया चेन्नुपेन्द्राय मांदासि तपोधन । तेनसाहं गमिष्यामि स्वेच्छयाचतवाहया
 प्रपया न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात् । मसोदत्तेन सैन्येन दूरीभूतं नृपं कुय ॥
 कथं रोदिषि सर्वह मायामोहितचेतनः । संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो नचात्मनः
 त्वया कोमे तथाहं का सम्बन्धः कालयोजितः । यावदेव हि सम्बन्धोममत्यन्तापदेवहि
 नो जानाति यद्वद्व्यमात्मनश्चापिकेषलम् । दुःखञ्जनस्यचिच्छेदात्पापतस्त्यज्यतत्रयै
 त्युत्थाकामधेनुश्चमुपायविविधानि च । शस्त्राप्यस्त्राणि सैन्यानिस्वर्प्यतुल्यप्रमाणिच
 नेर्गताःकपिलायकप्रात्रिकोटिखड्गधारिणः । विनिःसृतानासिकायाःशूलिनःपञ्चकोटयः
 विनिःसृतालोचनाभ्यांशतकोटिधनुर्धराः । कपालान्निःसृताधीरास्त्रिकोटिदण्डधारिणः
 पञ्चःस्पलान्निःसृताश्चत्रिकोटिशक्तिधारिणः । शतकोटिगदाहस्ताःपृष्ठदेशात्विनिर्गताः
 विनिःसृताःपादतलाद्वायभाण्डाःसहस्रशः । जङ्घदेशान्निःसृताश्च त्रिकोटिराजपुत्रकाः
 विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटि श्लेच्छजातयः । इत्था सैन्यानि कपिलामुनयेनिर्भयं ददौ

युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न यासीत्युवाच ह ॥ ६४ ॥
 मुनिः सम्भृतसम्भारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह । नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह ॥६५॥
 कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् । तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः पततत्मानसः

दूतद्वारा च सैन्यानि चाजहार स्वदेशतः ॥ ६६ ॥
 इति श्रीमद्भगवद्गीतायां महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे एकदश-
 प्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निकार्तवीर्ययुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

कृष्णचर्मसुवस्त्रुभिः शिष्यसंघैश्च सङ्कुलम् । तेजसाधारशल्यादि सर्वसमक्षि
वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टाः सर्वे जटाधराः ॥ २७ ॥

हैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा । चार्यङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचना
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा । सर्वसम्पद्गुणाधारा साक्षादिव हरिः
सर्वधाराधितो राजा दुर्बुद्धिः सचिवाजया । मुनि ययाचे तां धेनुं निवद्धः कान्तः
कियापुण्यञ्चकाबुद्धिर्नियेकः सर्वतोयली । पुण्ययान् बुद्धिमान् देवाद्राजेन्द्रोपायवै
पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपञ्च भारते । पापात्प्रजायते कर्म पापकर्म भयायहम्
पुण्यात् कृत्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यसखे नृणाम् ।

पापात् भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीयिनाम् ॥ ३३ ॥

जीविनां निष्ठतिर्नास्ति स्थिते कर्मणिनारद । तेन कुर्वन्ति सन्तश्च सन्तर्कमव
सा विद्या तत्तपो ज्ञानं स गुरुः सचयान्धवः । सामाता सपिता पुत्रस्तन्मार्गकार्ये
जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः । भक्तयेयस्तंनिहन्ति कृष्णमक्तिरसा
माया ददाति तां भक्तिः प्रतिजन्मनि सेविता । परितुष्टा जगद्धात्री भक्ताय बुद्धिः
सा परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च । मायां दरया मोहयितुं न विवेकं कदाचि
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः । उवाच चित्तं भक्त्या पुढाञ्जलियुतो
राजोवाच ।

भिक्षां देहि कल्पतरो कामधेनुञ्च कामदाम् । मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकारि
पुष्पद्विषाणां दातृणामर्देयं नास्ति भारते । दधीचिर्देवतान्यश्च ददौ स्वासि पुण्य
ब्रूमद्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन । समूहं कामधेनूनां स्मर्तुं शक्तोऽसि भारते
मुनिरुवाच ।

राशे व्यतिक्रमं राजन् प्रवीषि शठ पञ्चक । दानं दास्यामि चित्रोऽहं क्षत्रियायनृप
कृत्वेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना । कामधेनुरियं यशे न देयाः प्राणतः प्रिय
रक्षणा भृगवं दत्ता प्रियपुत्राय भूमिष । मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी म
गोलयज्ञा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रान् कथमहं कपिलां स्मरुमीदृश

हं देहालिकोमूढत्वयानोत्थापितोबुधः । क्षणेनमस्मसात् कर्तुं क्षमोऽहमतिथिचिना
 ई गच्छ गृहं गच्छ मत्कोपं नैव वर्द्धय । पुत्रदारादिकं पश्य दैवबाधित पामर ॥४८॥
 नेस्तद्वचनं ध्रुत्वा चुकोप स नराधिपः । नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिबाधितः
 त्या सैन्यसकारं स कोपप्रस्फुरिताधरः । विह्वलान् प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात्
 पिलासन्निधिं गत्वा रुरोद मुनिपुङ्गवः । कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१॥
 न्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह । साक्षात्तुर्ध्माः स्वरूपा सा भक्तानुग्रहकातरा
 सुरभिरुवाच ।

श्रोयाद्दालिकोषापिस्वयस्तुदातुमीश्वरः । शास्ता पालयितादातास्वयस्तूनाञ्चसन्ततम्
 वेच्छया चेन्नुपेन्द्राय मां ददासि तपोधन । तेन सार्द्धं गमिष्यामि स्वेच्छया च तया तया
 । पथा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात् । मत्तोदत्तेन सैन्येन दूरीभूतं नृपं कुरु ॥
 यं रोदिपि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः । संयोगश्च प्रियोगश्च कालसाध्यो नचात्मनः
 र्धपा कोमे तथाहं का सम्यग्धः कालयोजितः । यावदेव हि सम्यग्धो मम तथ्यतायदैष हि
 नो जानाति यदुद्भव्यमात्मनश्चापिकेवलम् । दुःखञ्च तस्य विच्छेदात्पापस्त्वरघञ्च तत्र वै
 त्युत्पाकामधेनुश्चतुपावयिचिधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानि सूर्यतुल्यप्रभाणि च
 निर्गताः कपिलावक्त्रास्त्रिकोटिबद्धधारिणः । विनिःसृतानासिकायाः शूलिनः पञ्चकोटयः
 विनिःसृतालोचनाभ्यां शतकोटिधनुर्दराः । कपालान्निःसृतायीरास्त्रिकोटिबद्धधारिणः
 शतकोटिगदाहस्ताः पृष्ठदेशात् विनिर्गताः
 विनिःसृताः पादतलाद्वायमाण्डाः सहस्रशः । जङ्घदेशान्निःसृताश्च त्रिकोटिराजपुत्रकाः
 विनिर्गता गुह्यदेशास्त्रिकोटि श्लेच्छजातयः । दत्त्वा सैन्यानि कपिलामुनये निर्मयं ददौ
 युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न यासीत्युवाच ह ॥ ६४ ॥

मुनिः सम्भृतसम्पत्तेर्हर्षगुको बभूव ह । नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह ॥ ६५ ॥
 कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् । तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः पातरमानसः

दूतद्वारा च सैन्यानि चाजहार स्वदेशतः ॥ ६६ ॥
 रति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनाम्न संवादे एकदश-
 प्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निर्कार्तवीर्ययुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

जमदग्नि-कार्तवीर्याङ्गुनपुङ्गवम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मरन् पाशंर्याप्यो हृदयेन विदूयता । दूतं प्रव्यापयामास कुपितामुनिसन्निधौ ॥

युद्धं देहि मुनिधेष्ठ किं वा धेनुञ्च पाप्मिष्ठम् ।

महां भृत्यायातिथये सुविचार्यं यथोचितम् ॥२॥

दूतस्य पचनं धृत्या जहास मुनिपुङ्गवः । दिनं सन्धं नीतिसारं सर्वं दूतमुपाय ह ॥३॥

मुनिरुवाच ।

दूष्टो नृपो निराहारः समानीतो मया गृहम् ।

विधिष्वञ्च यथा शक्त्या भोजितञ्च यथोचितम् ॥४॥

कपिलो वाचते राजा मम प्राणाधिकां बलात् ।

तां दातुमक्षमो हूत युद्धं दास्यामि निश्चितम् ॥५॥

मुनेस्तद्वचनं धृत्या दूतः सर्वमुपाय ह । नृपेन्द्रञ्च सभामध्ये सन्नाहसंयुक्तं मिया ॥६॥

मुनिश्च कपिलामाह साम्प्रतंकिङ्करोम्यहम् । कर्णधारंविनानौकातपासैन्यंमयाविना ॥

कपिला बद्धदीप्तस्मैशस्त्राणिविविधानिव । युद्धशास्त्रोपदेशञ्चसन्धानमौपयोगिकम् ॥

जयं भवतु ते विप्र युद्धेजेप्यसिनिश्चितम् । त्वमृत्युर्नमयितावाव्यर्थास्त्रंविना ध्रुवम् ॥

नृपेण साद्धं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च । दत्तात्रेयस्यशिष्येणैवाव्यर्घशक्तिधारिणा ॥

इत्युत्तवा कपिला ब्रह्मन् विरराम मनस्विनी ॥१०॥

मुनिर्मनस्वी सैन्यञ्च सर्जामृतञ्चकार ह । गृहीत्वा सर्वसैन्यञ्च प्रजगामरणस्थलम् ॥११॥

राजा जगाम युद्धाय ननाम मुनिपुङ्गवम् । उभयोः सैन्ययोर्युद्धं बभूव बहु दुष्करम् ॥

राजसैन्यं जितं सर्वं कपिलासेनया बलात् । विचित्रञ्च रथं राहो बभूव लालया रणे ॥

धनुश्चिच्छेद् सन्नाहं सा सेना कापिली मुदा ।

नृपेन्द्रः कापिलेयानि सैन्यानि जेतुमक्षमः ॥१४॥

सैन्यानि तंशस्त्रवृष्ट्यान्यस्तशस्त्रञ्चकार ह । शस्त्रवृष्ट्याशस्त्रवृष्ट्याराजामूर्च्छामवाप ह ॥
किञ्चित् सैन्यं मृतं राक्षःकिञ्चिदेवपलायितम् । मुनीन्द्रोमूर्च्छितं दृष्ट्वा नृपेन्द्रमतिश्रिमुने ॥
रूपानिधिश्च रूपया तत्सैन्यं सञ्जहार च । गत्वासैन्यं विलीनञ्चकपिलायाञ्च कृत्रिमम् ॥
नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्त्वा चरणरेणयः । आशीर्वादं प्रदत्तञ्च जयोऽस्तिथितृपालुना ॥

कमण्डलुजलं दत्त्वा कारयामास चेतनाम् ॥१८॥

राजा चेतनां प्राप्य समुत्थाय रणाजिरे । मूर्च्छानन्तामभवत्प्रायमुनिश्रेष्ठं पुटाञ्जलिः ॥

मुनिः शुभाशिरं दत्त्वा राजानमालिलिङ्गः च ।

पुनस्तं आपयिरवा च भोजयामास यक्षतः ॥२०॥

नायनीतञ्च हृदयं ब्राह्मणानाञ्च सन्ततम् । अन्येषां धुरधाराभमसाध्यं दारुणं तदा ॥

उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ नृपाधिप ।

राजोपाच ।

रणं देहि महाबाहो धेनुं किंवा मयेप्सिताम् ॥२२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे नृपमुनियुद्ध-

कथनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

पुनः जमदग्निकार्तवीर्यार्जुन युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

वर्हि स्मरन् मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा स मूढतः । हितं सत्यं नीतिसार्धवत्सुपचक्रममे ॥

मुनिरुवाच ।

गृहं गच्छ मदामाग रक्ष धर्मसनातनम् । सर्वसम्पत्स्विराशब्दस्त्वितेधमे मुनिधिनम् ॥

त्याञ्च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप । तव पूजामकरयं यथाशक्त्या विधानतः ॥२॥

साग्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणुं शुभाशिरम् । अददं चेतनां हृत्वा धनुमेवोचिनं न च ॥

नृपस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । रथमन्यमारुहो ह युद्धं देहीत्युवाच ॥ ५ ॥
मुनिः कृत्वा च सन्नाहं तं योद्धुमुपचक्रमे । राजा तं युयुधे तत्र कोपेनाहृतचेतनः ॥ ६ ॥
कपिलादत्तशस्त्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम् । कपिलादत्तयाशतयापुनर्मूर्च्छां चकार च ॥ ७ ॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य राजा राजीवलोचनः । मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च ॥ ८ ॥
बहिश्च योजयामास समरे मुनिपुङ्गवः । मुनिर्निर्घापयामास धारुणेनावलीलया ॥ ९ ॥
नृपेन्द्रो धारुणास्त्रञ्च चिक्षेप समरे मुनी । धायव्यास्त्रेण स मुनिः शमयायामास लीलया ॥ १० ॥
धायव्यास्त्रं नृपथ्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा । गान्धर्वेण मुनिथ्रेष्ठः शमयायामास तत्क्षणम् ॥ ११ ॥
नागास्त्रञ्च नृपथ्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्धनि । गारुडेन मुनिथ्रेष्ठो जघान तत्क्षणं मुदा ॥ १२ ॥
माहेश्वरं महास्त्रञ्च शतसूर्यसमप्रभम् । चिक्षेप नृपतिथ्रेष्ठो द्योतयन्तं दिशोदश ॥ १३ ॥
वैष्णवास्त्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च । मुनिर्निर्घापयामास बहुयज्ञेन नारद ॥ १४ ॥
मुनिनारायणास्त्रञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । शस्त्रं दृष्ट्वा महाराजो ननाम शरणं ययौ ॥ १५ ॥
ऊरुर्ध्वञ्च घ्नमणं कृत्वा क्षणं दीप्तया दिशोदश । प्रलयाग्निसमन्तत्र स्वयमन्तरधीयत ॥ १६ ॥
जुम्भणान्ध्रञ्च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्धनि । निद्रां प्राप तेन राजा सुष्याप च मृतोपया ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा नृपं निद्रितञ्च भर्द्वाग्द्रेण तत्क्षणम् । चिच्छेद सारथिं यानं धनुर्षाणं मुनिस्तदा ॥ १८ ॥
मुपृष्टञ्च ध्रुव्येण उग्रं सप्राहमेव ॥ ॥ अस्त्रं तूष्णं याजिगणं विविधेन च भूभृतः ॥ १९ ॥
मुनिमन्त्रसचिवान् सर्वान् नागास्त्रेणापलीलया । निवध्यस्थापयामास प्रहस्य समस्वले ॥ २० ॥
मुनिमन्त्रबोधयामास मुमन्त्रेणापलीलया । निबद्धान् सचिवान् सर्पान् दशायामास भूमिपम् ॥ २१ ॥
दशान्विता नृपं तांश्च मोक्षयामास तत्क्षणम् । नृपेन्द्रमाशिरं कृत्वा गृहं गच्छेत्पुष्यध्वज ॥ २२ ॥
राजा बाणान् समुत्थाप्य शूलमुग्रमयदहनः । चिक्षेप तं मुनिथ्रेष्ठं मुनिः शतवाजघान तम् ॥ २३ ॥
एतन्मित्रघ्नने प्रह्लादं समागम्य रणस्थानम् । सुप्रीतिं कारयामास सुनीत्याचपरस्परम् ॥ २४ ॥
मुनिर्ननाम प्रह्लादं सन्तुष्टञ्च रणस्थले । राजा नत्वा चिधिं विप्रं स्थानदं प्रययौ तदा ॥ २५ ॥
मुनिर्षयो च त्र्यगूर्धं स्वगूर्धं चमत्कोद्वहः । इत्येवं कथितं किञ्चिदपरं पश्ययामिते ॥ २६ ॥
इति धर्मप्रदीपवर्णे महापुराणे नागायननारदमहायज्ञे गणपतिस्मरणे जमदग्नि-
कार्त्तव्याशंभुन युद्धविषयमकथनं नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ।

मागधेय उवाच ।

हरि स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः । पुनर्जगामात्पयश्च जमदग्न्याश्रमं तदा ॥
 एषानाञ्च चतुर्लक्षं रथीनां दशलक्षकम् । अश्वेन्द्राणागजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥
 राजेन्द्राणां सहस्रञ्च महाबलपराक्रमम् । महासमृद्धियुतञ्च शैलोष्यं जेतुमीश्वरः ॥३॥
 समृद्ध्या घेष्टयामास जमदग्न्याश्रमं मुदा । श्वर्योवर्मयुक्तश्चकार्षीर्वाप्यांजुनः स्वयम् ॥
 सैन्यशार्ङ्गैर्वाघशार्ङ्गैर्महाकोलाहलैर्मने । जमदग्न्याश्रमस्थोऽथ मूर्च्छामाप्सुर्मथैव च ॥५॥
 पुत्रीं प्रविश्य बलवान् गृहीत्वा कपिलो शुभाम् । गृहं गन्तुं मनश्चक्रे दुर्बुद्धिरसदाश्रयः ॥
 समुत्सर्षौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः । एकाकी मुक्ताग्रश्च धेनुं न त्याहरिस्मरन् ॥
 आश्रमस्थान् जनान् सर्षान् समाश्रयास्य च यदनः ।

आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः ॥८॥

अकार शरजालञ्च स मुनिर्मन्त्रपूर्यकम् । सच्छादं स्याश्रमं तैश्च मानयं वर्मणा यथा ॥
 अपरं शरजालञ्च अकार मुनिपुङ्गवः । तीरेष वाग्यामास सर्वमैन्यं यथावत् ॥ १० ॥
 मुनिना शरजालेन सर्वमैन्यं समावृत्तम् । तानिसर्षाणि गुप्ताणि पत्राणि पत्रे यथा ॥११॥
 राजा हृष्टा मुनिश्रेष्ठमयच्छ रथान् पुरः । सार्द्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम पुराव्रज्जिः ॥
 न त्या वरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाश्रितम् । भाररोह नृपेन्द्रश्चम्ययानं हृष्टमानसः ॥
 नृपेः सार्द्धं नृपश्रेष्ठश्चिषेव मुनिपुङ्गवम् । अस्त्रं शस्त्रं गदा शक्तिः अधान्दीप्तयामुनिः ॥
 मुनिश्चिषेव दिव्यास्त्रं चिच्छेद सीलया नृपः । शूलश्चिषेव नृपनिर्जपान ननदामुनिः ॥
 अपरं शरजालञ्च विशेष मुनिपुङ्गवः ॥१५॥

आश्रमेषु निपाप्यैश्च रणदण्डं नृपा ययुः । निबद्धाशरजालेन यशस्व पलापिनु ॥
 हम्मणास्त्रेण मुनिना ते वसथे विजृम्भिताः । हस्यत्यरथपादात्तद्विहं सर्वमैन्यवत् ॥

राजानं निद्रिनं दृष्ट्वा न जगान् मुनीन्धराः ।

गृहीत्वा कपिला हृष्टो रुदन्ती शोकमुन्निद्रताम् ।

धोधयित्वा पुनः कृत्वा म्यगृहं गन्तुमुद्यतः ॥१८॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा जेतनां प्राप्य नारद । निवास्यामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः ।
जगामकपिलाग्रस्तास्यस्थानञ्चरणम्यलात् । मुनिभक्तम्यानिशार्द्रो गृहीत्वा सशरं धनुः ।
ब्रह्मास्त्रञ्च नृपश्रेष्ठः प्रविक्षेप मुनीं तदा । ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणनागम् ।
दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः । त्र्यञ्च सारथिस्त्रीय चिच्छेदपमं दुर्गम् ।
अथ राजा महापुलो ददरां स्वसमीपतः । दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपुरस्तात्तिनीम् ।
जग्राह नत्वा दत्तं तं प्रणम्य शक्तिमुत्थयाम् । घूर्णयामास तत्रैव शतमूर्त्यसमप्रभाम् ।
यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च । शम्भोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ।
तत्रैवाद्याहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम् । तेजसा घातयामास गगनञ्च दिशोदरा ॥२॥
दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारं चकार ह । भाकारास्थाश्च समरं पश्यन्तो दुःखिता इव ।
विक्षेपतां घूर्णयित्वा कार्त्तवीर्यां जुनः स्वयम् । सद्यः पपात साराकिर्ज्यलक्ष्मीमुनिवक्षसि ।
विदाप्योरो मुनेः शक्तिं जगाम हरिसन्निधिम् । दत्ताय हरिणा दत्तादत्तेनैव नृपायसा ।

मूर्च्छां सम्प्राप्य स मुनिः प्राणां स्तत्याज तत्क्षणम् ।

तेजोऽम्बरे समित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ॥३०॥

युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः । हे तात तातेत्युच्चार्य गोलोकं सा जगाम ॥
सर्वं सा कथयामास गोलोके कृष्णमीश्वरम् । रत्नासिंहासनस्थं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ।
कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा । सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन् भृगुणा जमदग्नये ।
नत्वा च कामधेनूनां समूहं सा जगाम ह । तदध्रुविन्दुना मर्त्ये रत्नसङ्घो धमूव ह ॥

अथ राजा तं निहत्य धोधयित्वा स्वसैन्यकम् ।

प्रायश्चित्तं चिनिर्वर्त्य जगाम स्थाल्यं मुदा ॥३५॥

प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रैणुकासती । मुनिवक्षसि संस्थाप्य क्षणं मूर्च्छामवाप सा ।

जनां प्राप्य न रुरोद पतित्वता । एहि घत्स भृगोराम राम रामेत्युवाच ह ॥

सर्विशतितमोऽध्यायः] * परशुरामस्य मातृसमीपे क्षत्रियवधाद्वीकारश्च * ४५३

राजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणेन पुष्करादहो । ननाम मातरं भक्त्या मनोयायीचयोगवित् ॥

दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्त्ता जननीं सतीम् ।

आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्ती कपिलां शुचा ॥३६॥

विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च । चिताञ्चकार योयीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ॥

रेणुका राम मादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि । चुचुम्ब गण्डेशिरसि रुतोदोद्यैर्भृशंमुहुः ॥

राम राम महाबाहो क यामि त्वां विहाय च । वत्सवत्सेतिरुत्थैर्विललापभृशंमुहुः ॥

मत्प्राणाधिक हे घत्स मदीयं घचनं शृणु । पित्रोःशेषक्रियांकृत्वापुत्र युद्धे न यास्यसि

युद्धे तिष्ठ सुखं घत्स तपस्यां कुरु शारवतीम् । समरं नैव सुखं दारुणैः क्षत्रियैःसह ॥

मातुर्यचनमधुरया प्रतिज्ञां तां वकार ह । त्रिःसप्तरुत्योनिर्भूपांकरिष्यामिध्रुवंमहीम् ॥

कार्तवीर्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम् । पितृंश्चतारिष्यामिक्षत्रियक्षतजेन च ॥

इत्युदीर्य पुरो मातु विललाप मुहुर्मुहुः । हितं तर्ध्वं नीतिसारं बोधयामास मातरम् ॥

राम उवाच ।

पितुः शासनं हन्तारं पितुर्वधविधायकम् । यो न हन्ति महामूढोरीरखंसत्रजेद्बुधम् ॥

अग्निदो गरुडश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः ॥४६॥

सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुधावकः । एकादशैते पापिष्ठा वधाह्रां वैदसम्मताः ॥

द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति । वपनं ताडनञ्चैववधमाहुर्मनीषिणः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भाग्नगाम भृगुः स्वयम् । अतिव्रस्तो मनस्थी च हृदयेनपिदूयता ॥

दृष्ट्वा तं रेणुका रामो विनयञ्च वकार ह । सतायुषाश्च वैदोक्तं परलोकहिताय च ॥५३॥

भृगुरवाच ।

महंश जातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसेसुत । जल्युदुधुदधत् सर्वं संसारे च चराचरम् ॥

सत्यसारं सत्यवीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक । यद्वतं तद्वतं घत्स गतं मा पुनरागतम् ॥५५॥

यद्वेत्तद्वद्वेयं भविता यद्विष्यति । सत्यं नैपेकिं कर्म निपेकः केन धार्यते ॥५६॥

भूतं भव्यं भविष्यञ्च यत् कृष्णेन निरूपितम् । निरूपिनयत्तत्कर्मकेनघत्सनिर्वाप्यते ॥

मायावीजं मायिनाञ्च शरीरं पाञ्चमीतिकम् । सङ्केतपूर्वकं नाम प्रातःम्यप्रसप्तं सुत ॥५८॥

श्रुधा निद्रा दया शान्ति क्षमा कान्त्यादयः स्तथा ।

यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ॥५६॥

बुद्धिश्च शक्तयः सर्वा राजेन्द्रमिव किङ्कराः । सर्वे तमनुगच्छन्तितंद्रुष्णमज यत्नतः ॥
केवा केवाञ्च पितरः केवा केवां सुताः सुत । कर्मोर्मिप्रेरिताः सर्वे मवान्धो दुस्तरे परम् ॥
ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम् । रोदनाध्रुप्रपतनान्मृतानां नरकं ध्रुवम् ॥
संयैतामिधमुच्चार्य यद् रुदन्ति च यान्धवाः । शतयपैरुदित्वा तं प्राप्नुवन्ति निश्चितम् ॥
पार्थिवांश्च पृथिवी गृह्णाति च त्वचादिकम् ॥६३॥

तोयांश्च तथा तोयं शून्यांश्च गगनं तथा । वाय्वंश्च तथा वायुस्तेजस्तेजांश्च तथा ॥
सर्वे विर्लिनाः सर्वे पुकोवाऽऽयास्यति रोदनात् । नामध्रुतियशः कर्म कथामात्राय शेषिताः ॥
वेदोक्तञ्चैव यत् कर्म कुतः तत् पारलौकिकम् । स च यन्धुः स पुत्रश्च परलोकाहिताय यः ॥
भृगोस्तद्वचनं धृत्या शोकं सत्याजः सत्क्षणम् । रैणुका च महासाध्वी तं यत्तुमुपचक्रमे
इति श्रीमद्भगवद्गीता महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिसण्डे परशुरामप्रति
भृगोः प्रबोधवचनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

भृगु रैणुका संवादः ।

रैणुकोवाच ।

इहाननुगमिष्यामि प्राणनाथस्य साम्प्रतम् । कर्मोऽधुनार्थदिवसे मृतोऽयं मयं मानवः ॥
कर्तव्या वा ध्यायन्त्याश्च यद् येदयिदां पर । त्वमागतो मे सहसा पुण्येन कति जन्मनाम्
भृगुरवाच ।

अहो पुण्यवती भर्तुस्तुमवत् महासति । यत्तुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सत्यं कर्म तु ॥१॥
... न शुद्धा देवैः प्रयोः । देवे कर्मणि यत्र च यज्ञमेऽहि विगुहयति ।

व्यालप्रादीपपाव्यालं विलादुद्धरते यत्नतः । नृणां म्यामि प्रादण्य साध्वीस्वर्गप्रयाति च
मोदते स्वामिना तत्र यावदिन्द्राक्षनुदंशः । अत ऊर्ध्वं कर्मभोगं मुहश्च साध्विशुभाशुभम्
स पुत्रो भक्तिदाता यः सावली यानुगच्छति । स कं दुर्दानदाना यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्
सोऽमीष्टदेवो यो रक्षेत् सराजापालयेत् प्रजा । ॥ न म्यामी प्रियाधर्मे मर्तिदानुमिहेश्वरः
स गुरुर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः । ॥ न प्रशान्त्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम् ॥

रेणुकोवाच ।

गन्तुं स्वस्वामिना साद्वंका शकाभागे मुने । का वाप्यशक्तः नार्यश्च तन्मे ब्रूहि तपोधन
भृगुस्त्वाच ।

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टतथस्तथा । रजस्वला च कुलटा गलितव्याधिसंयुता ॥
पतिसेवाविहीनाया अमककादुषावकाः । पतागच्छन्ति चेद्देवात् न कान्तं प्राप्नुयन्ति ताः
संस्कृताग्निं पुरो दृष्ट्वा चितासु शशिर्न पतिम् ।

कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत् प्राप्नुयन्ति ताः ॥ १३ ॥

अनुगच्छन्ति याः कान्तं तमेव प्राप्नुयन्ति ताः । साद्वंकृत्यापुण्यभोगं प्रतिजग्मनिजग्मनि
इत्यन्ते कथितासाधिव्ययस्या गृहिणां ध्रुवम् । तीर्थे हानमृतालाञ्च वैष्णवानाञ्च ध्रुवताम्
यासाध्वी वैष्णव्यकान्तं यत्र यत्रानुगच्छति । प्रयाति स्वामिना साद्वं वैकुण्ठे हरिस्निधिम्
विशेषो नास्ति भक्तानां तीर्थेष्वप्यत्र नारद । मरणे च समफलं मुक्तानां कृष्णभाविनाम्
तयोः पातो नास्ति तस्मान्महति प्रलये सति । नारायणं तं भजेत् पुमांस्त्री कमलालयाम्
तीर्थे हानमृतापि वैकुण्ठं याति निश्चितम् । सभाष्यो मोदते तत्र यावद्वैष्णवः शतम्
इत्युक्त्या रेणुकां तत्र पशुराममुवाच ह । वैदोक्तवचनं सर्वं स भृगुः समयोचितम् ॥ २० ॥
एहि घटस महाभाग त्यज शोभं मम हृलम् । उत्तानं कुरु तातञ्च दक्षिणाशिरसं भृगो ॥
पत्रं यज्ञोपवीतञ्च नूतनं परिधापय । अनधुन यनो भूत्वा सन्तिष्ठ दक्षिणामुखः ॥ २१ ॥
अरणीसंभवाग्निञ्च गृहाण भक्तिपूर्वकम् । पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वाणि स्मरणं कुरु
गयादीनि च तीर्थानियेव पुण्याः शिल्लोत्रयाः । कुरक्षेत्रञ्च गङ्गाञ्च यमुनाञ्च सपिडिरामं
कौशिको चन्द्रमागाञ्च सर्वपापप्रणाशिनीम् । गण्डकीमवकाशीञ्च पनसां सरयूं तथा ॥

पुष्पभद्राञ्च भद्राञ्च नर्मदाञ्च सरस्वतीम् । गोदाचरीञ्च कावेरीं स्वर्णरेखाञ्च पुष्करम्
 रेवतञ्च वराहञ्च धीशैलं गन्धमादनम् । हिमालयञ्च कैलासं सुमेरुं रत्नपर्वतम् ॥२७॥
 वाराणसीं प्रयागञ्च पुण्यं घृन्दावनं वनम् । हरिद्वारञ्च घदरीं स्मरं स्मरं पुनः पुनः ।
 चन्द्रनागुरकस्तूरीं सुगन्धिकुसुमं तथा । प्रदाय वासमाच्छाद्य स्थापयेनं चितोपरि ।
 कर्णाशिनासिकास्येपुशलाकाञ्चहिरण्मयीम् । कृत्वा निर्मलं चतुर्लोकं तात देहि विप्राय सादृशम्
 सतिलं ताम्रपात्रञ्च धेनुञ्च रजतन्तया । सदक्षिणं सुवर्णञ्च दद्यान्नि देहकातरम् ॥३१॥

ओं कृत्वा तु कुण्डलं कर्म जानता धाप्यजानता ।

मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्यमागतम् ॥ ३२ ॥

धर्माधर्मसमायुक्तं लोभलोहसमावृतम् । दहेयं सूर्यगात्राणि दिव्यान् लोकान्सगच्छतु
 इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम् । मन्त्रेणानेन देहान्नि जनकाय हरिस्मरन् ।

ओं अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयं जायतां पुनः ।

असौ लोकाय स्वर्गाय स्वाहेति यद् साम्प्रतम् ॥ ३५ ॥

अग्निं देहि शिरस्थाने हे भृगो भ्रातृभिः सह । तद्यकार भृगुः सर्वं सगोत्रैराह्वया भृगोः
 अथ पुत्रं रेणुका सा कृत्वा तत्र स्वयक्षसि । उवाच किञ्चिद्वचनं परिणाममुखायहम् ॥
 अपिरोधो भवान्धो च सर्वमङ्गलमङ्गलम् । विरोधो नाशधीजञ्च सर्वोपद्रवकारणम् ॥
 अकर्त्तव्यो विरोधो वै वारुणेः क्षत्रियैः सह । प्रतिज्ञा चैव कर्त्तव्या मदीये वचनेऽधुते ।
 शालोष्य ब्रह्मणासादं भृगुणादिव्यमन्त्रिणा । यथोचितञ्च कर्त्तव्यं सद्भिरालोचनं शुभम्
 इत्युसया तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्वयक्षसि ।

सा सुप्त्वाप वितायाञ्च पश्यन्ती तं हरिं स्मरन् ॥ ४१ ॥

३१ ददौ चितायाञ्च स रामो भ्रातृभिः सह ।

पितृशिष्यैश्च सादं स विललाप च ॥ ४२ ॥

३२ सा सती । पुरस्तात् पुरुषरामस्य मस्मीभूता यभूयसा ।

तत्राश्रमु हरेध्वजः । स्थस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥

३३ यश्मालिनः । किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयपाससः ॥ ४५ ॥

ये हृत्पा रेणुकां तां गन्धानं ब्रह्मलोककम् । जमदग्नि समादाय प्रजम् हुंस्त्रिभिर्हिम्
 तां दम्पती च येनृष्टे तन्मनुदं गिरिभिर्धो । कृत्वा दाम्प्यं हरेः शशवत् सर्वमङ्गलमङ्गलम्
 मय रामो ब्राह्मणेभ्य भृगुणा सह नाम्द । पित्रोः शोषकियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥
 गोभूदिरण्यपासांसि दिव्यशय्या मनोहराम् । सुषणांभारसहिनां जलमग्नश्च चन्दनम् ॥
 रत्नदीपं रौप्यरीडं सुषणांसनमुत्तमम् । सुषणांभारसहितं ताम्बूलश्च सुपासितम् ॥
 उग्रश्च पादुकाञ्चैव फलं माल्यं मनोहरम् । फल मूलं जलञ्चैव मिष्टान्नश्च मनोहरम् ॥
 ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः ॥ ५१ ॥

ददौ ब्रह्मलोकं स शातनुज्मभिनिर्मितम् । स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम् ॥
 ददौ तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मनेजसा । रत्नसिंहासनम्यञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ ५२ ॥
 विद्वेद्रेभ्य मुनोन्द्रेभ्य ऋषीन्द्रेः परिषेष्टितम् । विद्याधरीणां नृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितमुदा
 सङ्गीतं धृतपातञ्च गीयमानञ्च गायनेः । चन्दनागुरुकस्नूरीकृङ्कुमेन विराजितम् ॥ ५५ ॥
 तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । दातारं सर्वजगतां कर्त्तारमीश्वरं परम् ॥ ५६ ॥
 परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम् । गुरावीरं प्रगदन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम् ॥ ५७ ॥
 इहा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः । उद्यैश्च रोदनं कृत्वा स्वबुक्तान्तमुवाच ह
 भृगुरवाच ।

ब्रह्मं स्वपदं राजातोऽहं जमदग्निसुतो विधे ।

पितामह स्त्वमस्माकं त्वां विना कथयामि किम् ॥ ५८ ॥

भृगुयामागतं भूपमुपोषन्तं पिता मम । पारणां कारयामास कपिलादत्तयस्तुता ॥

स राजा कपिलालोभात् कर्त्तव्यीर्ष्याजुनः स्वयम् ।

पातयामास मत्तातमित्युत्तयोद्यै हरोद सः ॥ ६१ ॥

नेरुध्यवार्णस पुनरवाच करुणानिधिम् । मातामेऽनुगता साध्वीमां विहाय जगदुगुरो

स्तुताहमनायश्च त्वमे माता पिता गुरुः । कर्त्ता पालयिता दाता पाहिमां शरणागतम्

मागतोऽहं तव समां प्रमातुर्मानुराज्ञया । उपायेन जगन्नाथ मद्द्वैस्त्रिद्वं कुरु ॥ ६४ ॥

राजा सच धर्मिष्ठः स दयालुर्यशस्करोः । स पूज्यः स स्थिरश्रोत्रयो दीनं परिपालयेत्

उपेनीचं समं दृष्ट्वा यः प्रजां न च पादयेत् । तदेहादुयातिरुपार्थाः न मयेऽप्युपपन्नदमकः
 श्रुत्याधिप्रपटोर्पाक्यं करुणासागरो विधिः । दृष्ट्वागुमाशिरनम्यं वासुगामामगमि
 श्रुत्वा भृगोः प्रतिज्ञां च विस्मिन्नधनुराननः । मर्ताय नृपकर्मयोगं बहुजीविविद्यानिर्मा
 नित्येकेन गयेन् सर्वमिति हृत्वा ॥ मानसे । उपायं परांगमं न परिणाममुवाच हन् ।
 ब्रह्मोपायम् ।

प्रतिज्ञां दुर्लभां पत्स बहुजीविविद्यानिर्मा । सृष्टिरेव भगवतः सम्मयं दीप्यरेच्छया ।
 सृष्टिः सृष्टा मया पुत्र ह्येतेनैवेभ्यराजया । सृष्टिलुभां प्रतिज्ञानं दातुणा करुणा पपा
 त्रिःसप्तदृष्टयोनिर्मूपां फलं मिच्छसि मेदनीम् । एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि
 ब्रह्मक्षत्रियपिदृष्टाद्वैर्नित्या सृष्टिधनुर्विधेः । भाविर्मृता तिराभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥ ७१ ॥
 अन्यथा रघुप्रतिज्ञा च भविता प्राटनेन च । ब्रह्मायासेन ते कार्यनिदिर्मपितुमर्हति ॥
 शिष्यलोकं गच्छ यत्स शङ्करं शरणं प्रज । पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शङ्करकिङ्करा
 पिनाक्षया महेशस्य फो धा तान् हन्तुमीश्वरः ।

विघ्नतः कथंच दिव्यं शक्तोऽथ शङ्करस्य च ॥ ७२ ॥

उपायं कुरु यत्नेन जयधीजं शुभावहम् । उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्धन्त्युपक्रमाः ॥
 करुणस्य मन्त्रं कथंचं ब्रह्मणं कुरु शङ्करान् । दुर्लभं वीर्ययं तेजः शैवं शाक्तं विज्ञेयति ॥
 गुरुस्तेजगतां नाथः शिष्यो जन्मनिजन्मनि । मन्त्रो मत्तो न युक्तस्तेषो युक्तः समवेद्विधिः ।
 निवेकाह्वयते मन्त्रः कान्तः कान्ता गुरुः सुरुः । स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये देवां तेषु नेब्रुवन्
 त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कथंचं वरम् ।

त्रिःसप्तदृष्टो निर्मूपां करिष्यसि महीं भृगो ॥ ८१ ॥

दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शङ्करः । तेन देयेन मन्त्रेण क्षत्रसङ्घं विज्ञेयसि ॥
 इति ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायण नारद संवादे गणपतिखण्डे
 परशुरामप्रति ब्रह्मवाक्यं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

उत्तमत्रिंशत्तमाऽध्यायः

परशुरामस्य शिवसमीपे गमनम् तपस्योद्योगश्च ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मणो पचनं ध्रुवा प्रणम्य च जगद्गुरुम् ।

स्पीतस्तस्माद्भरं प्राप्य शिवलोकं जगाम स ॥ १ ॥

लक्षयोजनमूर्ध्वं ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् । अस्यनिर्वचनीयञ्च वाग्धाधारं मनोहरम् ॥
 वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकश्च धामतः । यद्भो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकात् परस्मृतः
 तेषामूर्ध्वं गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनम् । अत ऊर्ध्वं लोकश्च सर्वोपरि च स स्मृतः
 मनोपायी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह । उपमानोपमेयाभ्यां रहितं महद्भुतम् ॥५॥
 योगीन्द्राणाञ्च प्रहरैः सिद्धविद्यापिशारदैः । कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यबद्धिनिषेधितम् ॥
 वेष्टितं कल्पवृक्षाणां समूहैर्वाञ्छितप्रदैः । समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम् ॥
 परिजाततरुणाञ्च वनराजिपिराजितम् । पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदाचातिसुशोभितम् ॥
 मणीन्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः । राजमार्गशतैर्द्व्यैरभ्यन्तरविभूषितम् ॥६॥
 मणीन्द्रसारनिर्माणशतकोटिगृहैर्युतम् । नानावित्रविचित्राढ्यैर्मणीन्द्रकलसोऽञ्जलैः ।
 तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शङ्करालयम् । मणीन्द्रसारनिर्माणकपाटैः सुमनोहरम् ॥११॥
 अत्यूर्ध्वमम्बरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम् । षोडशद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरेः ॥१२॥
 ममूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूषितैः । रत्नस्तम्भकपाटैश्च द्वीरकेष्वपरिपूतैः ॥ १३ ॥
 पाणिषयजालमालाभिः सद्मलकलसोऽञ्जलैः । नानावित्रविचित्रेण चित्रितैः सुमनोहरैः
 गालयस्य पुरतस्तत्र सिंहद्वारं ददर्श सः । रत्नेन्द्रसारनिर्माणकपाटैश्च विराजितैः ॥१५॥
 शोभितं वेदिकामिश्च पाद्याभ्यन्तरतः सदा । रविताभिः पञ्चरामैर्महामरकतीरुण्डम् ॥१६॥
 नाप्रकारविशेषेण चित्रितं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तं ददर्श द्वारपालो मयद्गुरो ॥१७॥
 शकपालदन्तास्यो विरूढो रक्तलोचना । दग्धशैलप्रतीकाग्रो महाबलपराक्रमो ॥१८॥

विभूतिभूषिताङ्गौ च व्याघ्रचर्माम्बरीचरौ । पिङ्गलाक्षौ विशालाक्षौ जटिलौ च त्रिलाचनौ ।
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा । तौ दृष्ट्वा मनसा मोतस्त्रस्तः किञ्चिदुवाच ह ।
यिनयेन विनीतश्च दुर्विनीतो महाबली । आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामास तत्पुट ॥२१॥
विप्रस्य धचनं धृत्य। कृपायुक्तो यभूवतुः । गृहीत्वानाञ्चरद्वारा शङ्करस्य महात्मनः ॥२२॥
प्रवेष्टुमाज्ञां ददसु रीभ्यरानुचरौ धरौ । भृगुस्तदाज्ञामादाय प्रविवेश हरिस्मरन् ॥२३॥

प्रत्येकं षोडशद्वारान्ददर्श सुमनोहरान् ।

द्वारपालान्नियुक्तांश्च नानाचित्रचित्रितान् ॥२४॥

दृष्ट्वा तान्महदाध्यक्ष्यं ददर्श शूलिनः सभाम् ।

नानासिद्धगणाकीर्णा महर्षिगणसेविताम् ॥२५॥

पारिजातप्रसूनाकषायुना सुरभीकृताम् । ददर्श तत्र देवेशं शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥२६॥

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम् । विभूतिभूषिताङ्गं तं नागपद्मोपवीतितम् ।

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥२७॥

महाशिवं शिवकरं शिवबीजं शिवाध्ययम् । आत्मारामं पूर्णकामं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।

ईषदास्थं प्रसन्नास्थं भक्तानुग्रहकातरम् ॥२८॥

शम्भुः प्रयोतिः स्वरूपञ्च लोकानुग्रहविग्रहम् । धृतवन्तं जटाजालं दक्षकन्यास्त्रिभूषितम् ।

तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।

गुरां ब्रह्म प्रयोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्समुद्रया ।

न्यूयमानञ्च योगान्द्रेः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम् ।

पार्यदप्रवरैः शम्भुं सेवितं श्वेतचामरैः ॥२९॥

ध्यायमानं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं परम् । स्येच्छामयं गुणातीतं जरामृत्युहरं परम् ॥३०॥

उद्योतीरूपञ्च सर्वाद्यं श्रीरूपं प्रकृतैः परम् । ध्यायन्तं परमानन्दं पुण्ड्रकाक्षितविग्रहम् ।

सुख्यं साधुनेत्रञ्च उद्गायन्तं गुणार्णवम् ॥३१॥

भयेन्द्रैश्च रुद्रगणैः क्षेत्रपालैश्च घेष्टितम् । मुदुर्ध्नां ननाम तं दृष्ट्वा परशुरामोऽतिसादरम् ।

रुद्राग्ने कर्त्तव्येयञ्च दक्षिणे च गणेश्वरम् । नन्दीश्वरं महापालं धीरमग्रञ्च तत्पुटः ।

भोद्रे ददशं कान्तं तां गोमं जेन्द्रवज्रकाम ॥३६॥

ननाम सपांग्मुदध्नां न मनया न परया मुदा ।

इदा हरे परं सारं नं नानुमुपचयम् ॥३७॥

सगद्गदपदं दीनं साधुनेत्रोऽनिकान्तः । पुटाञ्जलियुतः शान्तः शोफार्त्तःशोकनाशनम् ॥

पञ्चगुराम उवाच ।

ईश त्वां स्तौनुमिच्छामि सर्वथा स्तौनुमशमः ।

महाराष्ट्रपवीजञ्च किं वा स्तौमि निरुदयम् ॥३८॥

न योजनीयत्तुर्मयोद्देशेऽस्तौमिमुदध्नां । वेदानशक्त्यस्तौतुं कस्त्वांस्तौतुमिहेश्वरः ॥

पुष्टेर्पाङ्गनसोः पारं सारात्सारं परात्परम् ।

मानयुद्धेरसाध्यञ्च सिद्धं सिद्धैर्निषेपितम् ॥३९॥

यमाकाशमिषार्त्तानमनन्तमादिमव्ययम् । विश्वनन्त्रमतन्त्रञ्च स्वतन्त्रं सन्त्रवीजकम् ॥

ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं ह्यनधिम् ।

त्रादि मां कदनासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम् ॥४०॥

मय मे सखलं जन्म जीयितञ्चमुजीयितम् । स्वप्नादृष्टञ्चमक्तानां पश्यामिषधुपाधुना ॥

शृङ्गादयः सुरगणाः कलया यस्य सम्भवाः । वरावराः कलांशेन तं नमामि महेश्वरम् ॥

यं मास्कारस्वरूपञ्च शशिक्रियं द्रुताशनम् । जलरूपं चायुरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥४१॥

मनन्तपिश्यवर्षाणां संहसारं भयङ्करम् । क्षणेन ह्रीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम् ॥

यः कालः कालकालश्च कालवीजञ्चकालजः । भक्तप्रज्जन्मः सर्वस्त्वं नमामि महेश्वरम् ॥

इत्येष मुक्त्वा स भृगुः पपात खरणाग्र्युजे । आश्रितञ्च ददौ तस्मै सुप्रसन्नो वभूय सः ॥

नामद्वन्द्ववृत्तं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिः संयुतः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥

इति धीमतायैवैतत् महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे

शिवस्तोत्रकथनं नामोत्तमोऽध्यायः ।

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

शिवशिवा समीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ।

शङ्कर उवाच ।

क स्त्वं पटो कस्य पुत्रः क वासः स्तवनं कथम् ।

किं वा तेऽहं करिष्यामि वाञ्छितं वद साम्प्रतम् ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम् ।

ययसातिशिशुं शान्तं गुणेन गुणिनां वरम् ॥२॥

भृगुरवाच ।

जमदग्निसुतोऽहञ्च भृगुर्वंशसमुद्भवः । माता मे रेणुका साध्वी परशुरामश्च नामतः ॥३॥

प्रीतीति मां दयासिन्धो विद्यापत्रेण किङ्कृतम् । मदीशशरणापन्नं रक्ष मां दीनयत्सल ॥४॥

भृगवामागतं भूपमुपोषन् पितरं मम । यकारातिथ्यमानीय कपिलादसपत्नुना ॥५॥

राजा तं कपिलालोभाद् धातयामास मन्दधीः ।

कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकञ्च जगाम सा ॥६॥

मातानुगमनं वन्दे भगवोदञ्च साम्प्रतम् ।

त्वं ॥ पिता त्रिषा माता रक्ष मां पुत्रयन् प्रभो ॥७॥

मया कृता प्रणिजा वशोऽनेपातिदुष्करा । त्रिःसप्तहृत्पौनिर्मूपां करिष्यामि महीमिति ॥

बालैर्दीप्यं हनिष्यामि रामरे तानघातकम् । इत्थेयं परिपूर्णं त्वं भगवान् कर्तुमर्हति ॥

ब्रह्मसहस्रं वयः धृत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुत्तं हरः । कभूयानम्रयक्त्रभ्रसान् शुष्कीष्ठनादृका ॥

पार्वत्युवाच ।

नानिदं विदुश्चरन्त्वं निर्मूपां कर्तुमिच्छसि । त्रिःसप्तहृत्पौकोपेनमाहसान्नेमहादण्डो ॥

त्रिःशतः सप्तशतं तमोऽस्वम् । धूमदूग्धोदवायभ्यरापणस्य पराजयः ॥

इमेऽर्धशतैः कथं वर्यो । शक्तिरप्यसंख्याय मया मे विमिश्रः पिता ॥१॥

रैर्मन्त्रञ्च स्तवनं ध्यायते स दिवानिशम् । को वा शक्तोऽस्ति तं हन्तुं न पश्यामीदृभूतले ॥
रे विम गृहं गच्छ किङ्करीष्यति शङ्करः । अन्येभूपाश्च मदभृत्याः कामीस्तेषां मयि स्थिते ॥

१:

भद्रकाल्युषाच ।

१ विप्रद्यो ज्ञातम निर्भूषाम् कर्तुं मिच्छसि । यथा हि वामनश्चन्द्रं करेणाहर्तुं मिच्छति ॥
नायककृतः पुण्यान् महायलपराक्रमान् । दिगम्बरसहायेन मदभृत्यान् हन्तुं मिच्छसि ॥
तद्योर्ययनं धृत्वा हरो दोषैश्च शोकतः । सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ॥
प्रस्य रोदनं धृत्वा शङ्करः कठणानिधिः । पश्यन् दुर्गाञ्च कालीञ्च रुन्वाति विनयं चिभुः ॥
तेषु मतिं प्राप्य सर्वेषां भक्तयत्सलः । जमदग्निमुनं सयः प्रयक्तुमुपचक्रमे ॥ २० ॥

शङ्कर उवाच ।

मय प्रभृति हे यत्स त्वं मे पुत्रसमो महान् ।

दास्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २१ ॥

भूतञ्च कथंच दास्यामि परमाद्भुतम् । लीलया मत्प्रसादेन कार्त्तवीर्य्यं हनिष्यसि ॥
उत्तमकृत्यो निर्भूषां करिष्यसि महीं द्विज । जगत्ते यशसा पूर्णं भविष्यति न संशयः ॥
तथा शङ्करस्तस्मै वदो मन्त्रं सुदुर्लभम् । त्रैलोक्यविजयं नाम कथंच परमाद्भुतम् ॥
पूजाविधानञ्च पुराश्चरणपूर्वकम् । मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्निप्रयमनमम् ॥ २५ ॥
त्स्यात्कालसंलयं कथयामास भारद् । वेदवेदाङ्गनिसिलं पाठयामास सत्क्षणम् ॥
गणपारां पाशुपतं ब्रह्मास्त्रञ्च सुदुर्लभम् । वह्निं नाटयणास्त्रञ्च वायव्यं धारयन्तया ॥
गान्धर्वं गारुडञ्चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च । गदां शक्तिं तथा पशुं शूलमप्यर्थमुत्तमम् ॥

नानाप्रकारास्त्रास्त्रमन्त्रञ्च विधिपूर्वकम् ।

शस्त्रास्त्राणाञ्च संहारं विशेष मक्षयं धनुः ॥ २६ ॥

नात्मरक्षणसन्धानं संप्राप्तविजयकमम् । मायायुद्धञ्च विविधं हृद्भारं मन्त्रपूर्वकम् ॥ ३० ॥
रणञ्च ससैन्यानां परसैन्यविमर्दनम् । नानाप्रकारमनुत्तमं रणसङ्कटे ।

संहारमोहिनीं विद्यां जन्ममृत्युहरां हयः ॥ ३१ ॥

स्थित्यागिरंगुरोर्षासेसर्वविद्यांविबोध्यसः । तीर्थेष्ट्यामन्त्रसिद्धिनामनायाजगामसः ॥

इति श्रीमहादेवसं महापुण्ये नागगणनारत्नमयादे गणपतिपाठे परशुरामाय
मानाविद्यान्त्रप्राप्तिर्नाम त्रिशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

तुष्टेन शिवेन स्वकवचादि दानम् ।

नारद उवाच ।

भगवन् श्रोतुं मिच्छामि किं मन्त्रं भगवान् हतः ।

कृपया परशुरामाय किं स्तोत्रं कथयं ददौ ॥१॥

को वास्य मन्त्रस्याराध्यः किं फलं कथयस्य च ।

स्तवतस्य फलं किं वा तद्वचान् वक्तुमर्हति ॥२॥

नारायण उवाच ।

मन्त्राराध्योहिभगवान्परिपूर्णतमःस्वयम् । गोलोकनाथःश्रीकृष्णोमोपगोपीदधत् प्रः
त्रैलोक्यविजयं नाम कथयं परमाद्भुतम् । स्तवराजं महापुण्यं विभूतियोगसम्भवम् ॥
मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलफलप्रदम् । प्रददौ परशुरामाय रत्नपर्वतसन्निधौ ॥५॥
स्वयंप्रमानदीतीरे पारिजातवनान्तरे । आश्रमे लोकदेवस्य माधवस्य च सन्निधौ ॥६॥

महादेव उवाच ।

घत्सागच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भवम् । पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कथयप्रहर्षकुरु ।
शृणु राम प्रपश्यामि ग्रहाण्डे परमाद्भुतम् । त्रैलोक्यविजयं नामश्रीकृष्णस्य जयावहम् ।
ध्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे । रासमण्डलमध्येचमहान्वृन्दावने घने ॥ ६ ॥
अति गुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रीघविग्रहम् । पुण्यात् पुण्यतरञ्चैव परं स्नेहाद्ब्रूयामि ते ॥
पठनाद्देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । शुभं निशुभं महिषं रक्तबीजं जघानह ॥११॥

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः] ॐ त्रैलोक्यविजयं नाम कवचम् ॐ

४६५

यदधृत्वाऽहञ्च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्वविन । अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमवलीलया ॥

यदधृत्वा पठनाद् ब्रह्मा समृद्धे सृष्टिमुत्तमाम् ।

यदधृत्वा भगवान् योगो विधत्ते विजयमेव च ॥१३॥

यदधृत्वाकूर्मराजश्चशेषं धत्तेऽवलीलया । यदधृत्वाभगवान्वायुर्विश्वाधारोविभुःस्वयम्

यदधृत्वा धरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः । यदधृत्वा पठनादिन्द्रोदेवानामधिपःस्वयम्

यदधृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः । यदधृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः

अगस्त्यः सागरान् सप्त यदधृत्वा पठनात् पर्वो ।

चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम् ॥१४॥

यदधृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा धनुन्धरा । यदधृत्वा पठनात् पूता यङ्गाभुवनपाषाणी ॥

यदधृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां धरः । सर्वविद्याधिदेवीसा यदधृत्वा सरस्वती

यदधृत्वा जगतां लक्ष्मीरत्नदात्री परान्परा । यदधृत्वा पठनाद्देवान् सावित्री प्रसुराष व

दाध धर्म्मयकारो यदधृत्वा पठनाद्भृगो । यदधृत्वापठनाच्चन्द्रस्तेजस्वी हव्ययाहनः

सनत्कुमारो भगवान् यदधृत्वा प्राप्नोति धरः ॥१५॥

तथ्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने । शठाय परशिष्याय क्षत्यामृत्युमपान्नुयान्

लोक्यविजयास्यास्य कवचस्य प्रज्ञापतिः । ऋषिश्छन्दश्भगायत्रीदेवीरामेश्वरःस्वयम्

लोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः । परान्परश्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्

तपो मे शिष्टः पातुश्रीकृष्णायनमःसदा । सदापायान्कपालंकृष्णायम्यादेतिपञ्चाक्षरः

कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्णस्याहेति सारकम् ।

हराय नम इत्येयं मूलतां पातु मे सदा ॥१६॥

ओं गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु सन्ततम् ।

गोपालाय नमो गण्डो पातु मे सर्वतः सदा ॥१७॥

ओं नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णो पातु सदा मम ।

ओं कृष्णाय नमः शङ्खं पातु मेऽधरयुग्मकम् ॥१८॥

ओं गोविन्दाय स्वाहेति दन्तावलि मे सदापतु ।

मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतलं मुने । शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्तुमीश्वरः ।

पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः ॥ ५ ॥

तस्य संस्पर्शमात्रेण पादपङ्कजरेणुना । पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुन्धरा ॥ ६ ॥
 ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणुमन्मुखतो मुने । सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च ॥
 नवानजलदश्यामं नीलेन्द्रीपरलोचनम् । शरत्पार्यणचन्द्रास्यग्रीवद्व्यास्यं मनोहरम् ॥ ८ ॥
 कोटिकन्दर्पलाघण्यलीलाघाम मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ९ ॥
 चन्द्रनोक्षितसर्पाङ्गं धीताम्रवरधरंवरम् । धीक्ष्यमाणञ्च गोपीभिः सस्मिताभिश्चसन्तम् ॥
 प्रफुल्लमालतीमालायनमालाविभूषितम् । दधतङ्कन्दपुष्पाढ्यां चूडां चन्द्रकचञ्चिताम् ॥
 प्रभां क्षिपन्तीं नमसश्चन्द्रतारान्वितस्य च । रत्नभूषणसर्पाङ्गं राधायक्षःस्थलस्थितम् ॥
 सिद्धेन्द्रैश्च मुर्तन्दैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम् । ब्रह्मयिष्णुमहेशैश्च धृतिभिश्च स्तुतं भजे ॥
 ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा चोपचाराणि योइश ।

दद्यात् भक्त्या च संपूज्य सर्वश्रेष्ठं लभेत् पुमान् ॥ १४ ॥

भायं पाद्यमासनञ्च वसनं भूषणं तथा । गामर्घ्यं मधुपर्कञ्च यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ॥ १५ ॥
 भूपर्वाणां च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम् । नानाप्रकारपुष्पञ्च ताम्बूलञ्च सुधासितम् ॥ १६ ॥
 चन्दनागुदकास्फूर्तिदिव्यकणं मनोहरम् । भक्त्या भगवते देयं मादयं पुष्पाञ्जलिप्रयम् ॥
 ततः पङ्कजं संपूज्य पश्चात् सङ्पूजयेद्गणम् । श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च ॥ १८ ॥
 हविर्मानुं चन्द्रमानुं सूर्यमानुं सुमानुकम् । पार्यदप्रवरान् सप्त पूजयेद्भक्तिभाषतः ॥ १९ ॥
 गोर्गायत्रीं गायिकाञ्च भृशप्रकृतिमीश्वरीम् । कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम् ॥
 गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणञ्च पार्यताम् । लक्ष्मीं सरस्वतीं पूर्यांसर्वदेयसविप्रम् ॥
 देवार्कं समन्वर्त्य पुनः पञ्चोपचारतः । पञ्चादेयं क्रमेणैव धीकृष्णं पूजयेत् सुधी ॥
 गणेशञ्च दिनेशञ्च षड्विं विष्णुं शिवं शिषाम् । समन्वर्त्य देवार्कमिष्टदेवञ्च पूजयेत् ॥

गणेशं विप्रतन्त्राय ध्यानिप्राय मात्मकम् ।

भात्मनः गुह्ये षड्विं धीविष्णुं मुक्तिदत्तये ॥ २४ ॥

सर्वं दद्यात् पारमेष्ठ्यहेतवे । साधनेन पश्यन्ति विपरीतमपूजने ॥ २५ ॥

ततः कृत्वा परीहारमिष्टदेवञ्च भक्तिः । स्तोत्रञ्च सामवेदोक्तं पठेद्वक्त्या च तच्छृणु ॥
महादेव उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम् । निर्लिप्तं परमात्मानं नमामि सर्वकारणम् ॥
सूलात्स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम् । सर्वदृश्यमदृश्यञ्च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम्
साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम् । सर्वाधारञ्च सर्वञ्च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम्
अतीयकमनीयञ्च रूपं निरूपमं विभुम् । करालरूपमन्यन्नं विभ्रतं प्रणमाम्यहम् ॥३०॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणः । फलञ्च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥

छाया पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः ।

नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम् ॥ ३२ ॥

स्वयं प्रकृतिरूपञ्च मायया च स्वयं पुमान् । तयोः परं स्वयं शश्वत् तं नमामि परात्परम्
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपं यो विमर्ति स्वमायया । स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम्
तारणं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारणं सर्वविश्वनां सर्ववीजं नमाम्यहम् ॥
तेजस्विनां रचिर्यो हि सर्वजातिषु ब्राह्मणः । नक्षत्राणाञ्च यश्चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम्
रूपाणां वैष्णवानाञ्च हानिनां यो हि शङ्करः । नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम्
प्रजापतीनां यो ब्रह्मासिद्धानां कपिलः स्वयम् । सनत्कुमारो मुनिपुत्रं तं नमामि जगद्गुरुम्
देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम् । स्वायम्भुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः

नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम् ॥ ३६ ॥

अनूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः । एकादशी निर्धनाञ्च नमामि सर्वरुचिणीम्
सागरः सरिता यश्च पर्यतानां हिमालयः । वसुन्धरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम्
पत्राणां तुलसीपत्रं शारकरूपेण चन्दनम् । वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम्
पुष्पाणां पारिजातश्च शस्यानां धान्यमेव च । अमृतं मत्स्यश्च तूनां नानारूपं नमाम्यहम्
पेरायतो गजेन्द्राणां घनतेयश्च पक्षिणाम् । कामधेनूश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥
नेत्रसानां सुवर्णञ्च धान्यानां यमप्येव च । यः केशरी पशूनाञ्च घोररूपं नमाम्यहम् ४१॥
पक्षाणाञ्च कुबेरो यो ब्रह्माणाञ्च बृहस्पतिः । दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं धरम्

वेदसङ्गः भाव्यानां पण्डितानां सार्वभौमः । अक्षराणांकारो यस्मै प्रणतं नमाम्यहम्
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाङ्गली स्यम् ।

इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वधेष्टु नमाम्यहम् ॥ ५८ ॥

सुदर्शनश्च शब्दाणां व्याधिनां यैः पयोः उदरः । नेत्रयोः दृष्टनेतश्च शीतश्च नमाम्यहम्
निर्येकश्च यन्त्रयोः मनश्च शीघ्रगामिनाम् । कालः कल्पयोः यो हि नं ममामि विद्यान्तम्
मानदाता गुरुणाञ्च मातृरूपश्च यन्त्रुषु । मित्रेषु जन्मदाता यस्मै भावं प्रणमाम्यहम् ।
शिल्पीनां विश्वकर्मायः कामदेवश्च रुषिणाम् । पतिपत्न्या च पत्नीनां नमाम्यहम् नमाम्यहम्
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपकपो नरेषु च । शालग्रामश्च यन्त्राणां नं विगिष्टं नमाम्यहम् ॥
धर्मः धन्याणर्थीजानां वेदानां सामग्र्यदेवः । धर्माणां सार्वभौमो यो विदितं नमाम्यहम्
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु । शब्दरूपश्च गगने नं प्रणम्यं नमाम्यहम् ॥
वस्तूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसाञ्च यः । गन्धर्वाणां विररध्वन् गरुडं नमाम्यहम्
क्षीरस्वरूपो गध्यानां पवित्राणाञ्च पावकः । पुण्यदानाञ्च यः स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम्
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च घैरिणाम् । गुलानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम्
तेजो रूपो हानरूपः सर्वरूपश्च यो महान् । सर्वानिर्वचनीयञ्च ॥ नमामि स्यं विष्णुम्
सर्वाधारेषु यो पायुर्वधारमा नित्यरूपिणाम् ।

आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम् ॥ ६० ॥

वेदानिर्वचनीयं यन्न स्तोतुं पण्डितः क्षमः । यदनिर्वचनीयञ्च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः
वेदा नशक्त्यस्तोतुं जङ्गीभूतासरस्थी । तच्च वाङ्मनसोः पारंकोपिद्वान्स्तोतुमीश्वरः
शुद्धतेजःस्वरूपश्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकर्मनीयञ्च श्यामरूपं नमाम्यहम् ॥ ६३ ॥
द्विभुजं मुरलीधरं किशोरं सस्मितं मुदा । शश्वद्वोपाङ्गनाभिश्च घीक्ष्यमाणं नमाम्यहम्
राधया दत्ताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥ ६५ ॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः । पार्यद्प्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम् ॥ ६६ ॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोद्भाससमुत्सुकम् । रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम् ।
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते । विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम् ॥ ६८ ॥

रिपूतं तमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम् । सत्यं ब्रह्मस्वरूपञ्च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम् ।
 गीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । धर्मार्थकाममोक्षाणां सदाता भारते भवेत् ।
 विदास्यं हरौ भक्तिलभेत् स्तोत्रप्रसादतः । इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुर्तुल्यो भवेद्बुधम् ।
 त्वंसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम् । तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले ।
 विष्णुमुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः । अरोगी गुणवान् विद्वान् पुत्रवान् धनवान् सदा ।
 इमं शो दशबलो मनोवायी भवेद्बुधम् । सर्वज्ञः सर्वदक्षैव स दाता सर्वसम्पदा ॥

कल्पवृक्षस्तमः शश्वद्वचेत् कृष्णप्रसादतः ॥ ७३ ॥

इत्येयं कथितं स्तोत्रं त्वं वरस गच्छ पुष्करम् ।

तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात् प्राप्स्यसि वाञ्छितम् ॥ ७५ ॥

त्रिःसप्तहृत्पत्रो निर्मूपां कुरु पृथ्वीं यथा सुखम् । ममाशिषा मुनिधेष्ट धीकृष्णस्य प्रसादतः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे स्तवप्रदानं

नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामस्य तपश्चरणम् ।

नारायण उवाच ।

शिवं प्रणम्य स भृगुर्दुर्गां कालीं मुदान्वितः । गत्वा पुष्करतीर्थञ्च मन्त्रसिद्धिश्चकार ह ।
 स भूय निराहारो मासं भक्तिसमन्वितः । ध्यायन् कृष्णपदाम्भोजं घायुरो धञ्चकार सः ।
 ददर्श सञ्जुह्वमीत्य गगनं तेजसा वृतम् । दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिपाकरम् ॥ ३ ॥
 तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह । ददर्श तत्र पुरयमतीव सुन्दरं वरम् ॥ ४ ॥
 ईयदास्य प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् । मूर्ध्नि प्रणम्य दण्डयद्गरं पथे तर्मादवरीम् ॥
 त्रिःसप्तहृत्पत्रो निर्मूपां करिष्यामि महीमिति । पदारविन्दे सुदृढां तां भक्तिमनपायिनीम् ॥

स्यं सुदुर्लभं शश्वत् त्वं पादाब्जे च देहि मे । कृष्णस्तस्मै परंदत्त्वा तत्रैवान्तरर्षीयत
गुः प्रणम्य भवनं जगाम तत्परात्परम् । पस्पन्द दक्षिणाङ्गञ्च परं मङ्गलसूचकम् ॥८॥
गच्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नञ्च ददर्श ह । मनः प्रसन्नं स्फोतञ्च तदुबभूव दिवानिशम्

संभाष्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्यो मुदान्वितः ॥ ९ ॥

स्वशिष्यान् पितृशिष्यांश्च भ्रातृपर्णांश्च बान्धवान् ।

भानीयानीय विविधान् मन्त्रांश्च स चकार ह ॥ १० ॥

तेषांपर्यं स्ववृत्तान्तं तानेयोत्तया शुभक्षणे । तैरेव साद्वं बलवान् बभूव गमनोन्मुखः ॥

दर्शं मङ्गलं रामः शुभाय जयसूचकम् । युयुधे मनसा सयं स्वजयं धैरिसंक्षयम् ॥११॥

गत्राकाले च पुरतः शुभाय सहसा मुनिः । हरिराष्ट्रं सिंहराष्ट्रं घण्टादुन्दुमिवादनम् ॥

ताकाशपर्णी सङ्गीतं जयस्ते भवितेति च । नवेङ्गितञ्च कल्याणं मेघराष्ट्रं जयावहम् ॥

कार यात्रां भगवान् धृत्यैवं विविधं शुभम् । ददर्श पुरतो विप्रयन्दिदैवभिक्षुकान् ।

बलप्रदीपं विघ्नन्तीं पतिपुत्रवतीं सतीम् । पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम् ॥

पर्यं शिवां पूर्णकुम्भं वासञ्च नकुलन्तया । गच्छन्ददर्शं रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम् ॥१३॥

ज्जन्सारं गजं सिंहं तुरगं गण्डकं द्विपम् । चमरीं राजहंसञ्च चक्रवाकं शुक्रं पिकम् ॥

यूरं छजनं चैव शङ्खचक्रं चकोरकम् । पारावतं बलाकाञ्च कारण्डं चातकं चट्टम् ॥

सौदामिनीं शक्रवापं सूर्यं सूर्यशोभां शुभम् ।

सद्योमांसं सग्रीवञ्च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम् ॥ २० ॥

शणिकयं रजतं मुक्तां मर्णान्द्रञ्च प्रथालकम् । दधि लाजं शुक्रधान्यं शुकपुष्पञ्च कुङ्कुमम्

पुष्पं पताकां छत्रञ्च दर्पणं श्वेतवामरम् । धेनुं घटसप्रयुक्ताञ्च रघम्यं भूमिपं तथा ॥२२॥

दुग्धमाष्यं तथा पूगममृतं पापसन्तथा । शालग्रामं पञ्चकलं स्वस्तिकं शार्ङ्गं तथा ॥

साङ्गारञ्च घृपेन्द्रञ्च मेघं पर्यन्तमूषिकम् । मेघाच्छन्नस्य च खेरुदयं चन्द्रमण्डलम् ॥२४॥

कम्बूरीपञ्चनं तोयं हरिद्रां तोयमृत्तिकाम् ।

सिद्धार्थं सर्वार्थं दूषीं विप्रबान्धुञ्च बालिकाम् ॥ २५ ॥

मृगं वैश्याञ्च क्षमरं कर्पूरं रत्नवाससम् । गोमूत्रं गोपुरीयञ्च गोधूलिं गोपदाद्वितम् ॥

गोष्ठं गद्यां घर्म्मरम्यां गोशालां गोगति शुभाम् ।

भूपणं देवप्रतिमां ज्वलदग्निं महोन्सवम् ॥ २७ ॥

प्रश्नं स्फटिकं चैवं सिन्दूरं माल्यचन्दनम् । गन्धश्च हांगकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम् ।

सुगन्धिचायोराघ्राणं प्राप विप्राशियं शुभम् ॥ २८ ॥

येवं मङ्गलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदन्वितः । अस्मिन् गते दिनकरे नर्मदातोरसन्निधौ ॥

तत्पश्यन् दिव्यं ददर्श सुमनोहरम् । अत्यूढश्च विन्नूनमनि पुण्याश्रमपदं परम् ॥ ३१ ॥

तस्यतपसः स्थानं सुगन्धिचायुनान्वितम् । कान्तैर्वर्त्याजुनाभ्यासे तत्रतर्प्यौगणैः स ह

पाप पुण्यशान्त्यायां किङ्करीः परितेपितः । निद्रां ययौ परिध्रान्तः परमानन्दसंयुतः

निशातीते च सभृगुश्चाह स्वप्नं ददर्श ह ।

न चिन्तितं यन्मनसा पायुषितकफं विना ॥ ३४ ॥

गङ्गायरीलप्रासादगोवृक्षकलितेषु च । आख्यामाणमात्मानं रदन्तं हृमिमक्षितम् ॥ ३५ ॥

आख्यामाणमात्मानंनौकायां कन्दनोक्षितम् । धृतयन्तं पुष्पमालां शोभितं पीनपाससा

विष्णुबोक्षितसर्वाङ्गं पशूपूयसमन्वितम् । घीणां परां वादयन्तमात्मानञ्च ददर्श ह ॥

विस्तीर्णपद्मपद्मैश्च स्य ददर्श सत्तिष्ठे । दध्याश्रमधुनं पुनः भुक्तयन्तञ्च पायसम् ॥

भुक्तयन्तञ्च ताम्बूलं लभन्तं ब्राह्मणाशिरम् । कल्पपुष्पप्रदीपञ्च पश्यन्तं स्य ददर्श ह ॥

परिपूरकत्वं क्षीरमुष्णान्नं शर्करान्वितम् । स्वस्तिकं भुक्तयन्तं स्य ददर्श च पुनः पुनः ॥

गङ्गाकसा वृद्धिजेन मीनेन भुजगेन च । भक्षितं भीतमान्मानं पलायन्तं ददर्श ह ॥

तो ददर्श आत्मानं मण्डलं चन्द्रमूर्त्ययोः । पतिपुत्रवतीं नागं पश्यन्तं सस्मिन्निजम्

पुत्रेणैव कन्यकया सस्मिन्नेन द्विजेन च । ददर्श श्लिष्टमात्मानं नृपेन परितुष्टया ॥ ४३ ॥

कलितं पुष्पितं वृक्षं देयताप्रतिमां नृपम् । गजस्थञ्च रथस्थञ्च पश्यन्तं स्य ददर्श ह ॥

नैवत्रपरिधानां रत्नालङ्कारभूषिताम् । विशन्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्य ददर्श ह ॥

द्विजं स्फटिकं श्वेतमालां मुक्ताञ्च चन्दनम् । सुवर्णं रत्नं स्य पश्यन्तं स्य ददर्श ॥

वं वृषञ्च सर्पञ्च श्वेतञ्च श्वेतचामरम् । नीलोत्पलं दर्पणञ्च मार्गणैः स्य ददर्श ह ॥

पश्यं नयरसस्थं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नसिंहासनस्थं स्य भृगुः स्वप्ने ददर्श ह ॥

पद्मध्रेणीं पूर्णकुम्भं दधि लाजं गूढं मधु । पर्णछत्रं छत्रिणञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श ह ॥
 वक्रपङ्क्तिं हंसपङ्क्तिं कन्यापङ्क्तिं घनान्विताम् । पूजयन्तीं वटं शुभं भृगुः स्वप्ने ददर्श ह
 मण्डपस्थं द्विजगणं पूजयन् हं हरिम् । जयोऽस्मिन् युतजलं न भृगुः स्वप्ने ददर्श ह
 सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिञ्च शाश्वतीम् । पुण्यचन्दनवृष्टिञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श
 सद्यो मांसं जीवमत्स्यं मयूरं ज्वेतगजजम् । मृगेष्वञ्च तीर्थाणि भृगुः स्वप्ने ददर्श
 पारावतं शुक्रं चासं शङ्खचिह्नञ्च चातकम् । ध्यायं सिंहञ्च सुग्रीं भृगुः स्वप्ने ददर्श
 गोरोचनां हरिद्राञ्च शुकुधान्याचलं घग्म् । जलदमि तथा दूर्वां भृगुः स्वप्ने ददर्श
 देपालयसमुद्भञ्च शिपलिङ्गञ्च पूजितम् । भर्चितां मृण्मयीं शीयां भृगुः स्वप्ने ददर्श
 ययगोधूमचूर्णानां पिष्टानि लङ्कुफानि च । मृगुर्ददर्श स्वप्ने च युमुजे च पुनः पुनः
 दिव्यचक्रपरीधाना रत्नभूषणभूषिताः । मगम्यामनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः ॥५८॥
 ददर्श नर्तकीं वेश्यां रुधिरञ्च सुरां पपी । रुधिराक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने च भृगुनन्दनः
 पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणाञ्च नारद । मांसानि युमुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरुणोर्द
 भक्तस्मान्निगडैर्ध्वं क्षतं शस्त्रेण स्वं भृगुम् । दृष्ट्वा च युयुधेप्रातः समुत्तर्याहरिस्मत्
 अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःकृत्यञ्चकार सः । मनसा युयुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुव
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे परशुरामस्वप्नदर्श
 नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

परशुरामेण राजसमीपे दूतप्रेषणम् ।

नारायण उवाच ।

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह । दूतप्रस्थापयामास कार्तवीर्याश्रमंभृ
 स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्तं राजसंसदि । वेष्टितं सचिवैः सार्द्धमुवाच नृपतीश्वरम् ।

रामदूत उवाच ।

नर्मदातीरसान्निध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके । स भृगुर्मातृभिः समं त्वं तत्र गन्तुमर्हसि ॥
युवं कुरु महाराज जातिभिर्जातिभिः सह । त्रिः सप्तहन्वो निर्भूपां करिष्यतिमहीमिति
इत्युक्त्वा रामदूतश्च जगाम रामसन्निधिम् । राजा विधाय सन्नाहं समरं गन्तुमुद्यतः ।
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा । तमेव वारयामास वासयामास सन्निधी ॥
राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः । तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ॥

कार्तवीर्यार्जुन उवाच ।

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निपुत्रो महान् । स तिष्ठन्नमर्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ॥
सम्प्राप्य शङ्कराच्छस्त्रं मन्त्रञ्च कथञ्च हरेः ।
त्रिःसप्तहन्वो निर्भूपां कर्तुमिच्छति मेदिनीम् ॥ १ ॥

मान्दोलयति मे प्राणान्मनःसंभ्रमितं मुहुः । शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दृष्टस्वप्नंभृणुप्रिये
तैलान्मृद्वितमारमानमदर्शं गर्दभोपरि । विघ्नन्तमोद्गुण्यस्य माल्यञ्च रजचन्दनम् ॥ ११ ॥
रक्तस्त्रपरीधानं लौहालङ्कारभूषितम् । हसन्तञ्चैव क्रीडन्तं निर्वाणाङ्गराशिना ॥

भस्माच्छन्नाञ्च पृथिवी जयापुष्पान्वितां सति ।

रहितं चन्द्रसूर्याभ्यां रक्तसंध्यान्वितं नभः ॥ १३ ॥

मुक्तकेशाञ्चनृत्यन्तीं विधयां छिन्ननासिकाम् । रक्तस्त्रपरीधानामदर्शमदृष्ट्वातिनीम
सशरामग्निरहितां चितां भस्मसमन्विताम् । भस्मवृष्टिमत्सृष्टिमङ्गरवृष्टिमीश्वरि ॥
पङ्कतालफलाकीर्णां पृथिवीमस्थिसंयुताम् । अदर्शं कर्पराशिञ्च छिन्नकेशानवान्वितम्
पर्यन्तं लयणानाञ्च राशीभूतं कपर्दकम् । सूर्णानाञ्चैव तैलानामदर्शं कम्दरं निशि ॥ १७ ॥
मदर्शं पुष्पितं वृक्षमशोककरवीरयोः । तालवृक्षञ्च फलितं तत्र एव पतन् फलम् ॥ १८ ॥
स्यकात् पूर्णकलसः पपात च वमञ्च च । इत्यदर्शञ्च गगनात् सम्पतच्चन्द्रमण्डलम् ॥
अदर्शमभ्यरात् सूर्यमण्डलं सम्पतद्भुवि । उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणञ्चन्द्रसूर्ययोः ॥
विहताकारपुरुषं विकटास्थं दिगम्बरम् । जागच्छन्तश्चाप्रतस्तु अदर्शञ्च भयानकम् ॥
बाला द्वादशवर्षीया वस्त्रभूषणभूषिता । संलुष्टा याति मद्देहादित्यदर्शमहं निशि ॥ २२ ॥

विदायं देहि राजेन्द्र त्वद्गुणेहाहू यामि काननम् ।

पदसि त्वं मामिति च निश्यदर्शमहं शुभा ॥ २३ ॥

एतो पिप्रो मां शपने सन्यासीचतयाशुः । मिर्त्ता पुत्तलिकाभिधानृत्यमतीत्यदर्शं परम्
चञ्चलानाञ्च गृध्राणां काकानां निकरैः सदा । पाद्विनं महिषाणाञ्चम्यमदर्शमहं निशि
तैलं पीडितयन्प्रञ्च तैलकारेण भ्रामिणम् । दिग्भ्यस्तान् पाशादन्तानदर्शमहमीदृशं ॥

नृत्यन्ति गायनाः सर्वे गानं गायन्ति मे गृहे ।

विषाहं परमानन्दमित्यदर्शमहं निशि ॥ २४ ॥

रमणं कुर्वतो लोकान् केशाकेशीति कुर्वतः । मदशं समरं रात्रौ काकानाञ्च शुभामिति
मोदकानि च पिण्डानि श्याशानं शवन्मयुतम् ।

रक्तयस्त्रं शुक्रवस्त्रमदर्शं निशि कामिनि ॥ २५ ॥

कृष्णाम्बराकृष्णयणां नग्राच मुक्तकेशिनी । विषया शिष्यतिच मामदर्शनिशिप्रोमने ॥
नापितो मुण्डितो मुण्डं श्मश्रुध्रेणीं मम प्रिये । वक्षःस्थलञ्च नखरमित्यदर्शमहं निशि ॥
पातुकाचर्मरज्जुनामदर्शं राशिमुत्थणम् । चक्रं भ्रमन्तं भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि ॥
घात्यया घूर्णमानञ्च शुष्कवृक्षं तमुत्थितम् । घूर्णमानं कवचञ्चैवादशं निशि सुप्रते ॥
प्रघितां मुण्डमालाञ्च चूर्णमानाञ्च घात्यया । अतीव घोरदशनमित्यदर्शमहं परे ॥
भूतप्रेता मुक्तकेशा धमन्तञ्च द्रुताशनम् । मां भीषयन्ति सततमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३५ ॥
दग्धजीवं दग्धवृक्षं व्याधिप्रस्तं नरं परम् । अङ्गहीनञ्च वृणलमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३६ ॥
गेहपर्वतवृक्षाणां सहस्रा पतनं परम् । मुहुर्महुर्वज्रपातमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३७ ॥
कुङ्कुराणां शृगालानां रोदनञ्च मुहुर्महुः । गृहे गृहे च नियतमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३८ ॥

अधोमस्तमूदुर्ध्वपादं मुक्तकेशं दिग्भ्यस्त्वं ।

भूमौ भ्रमन्तं गच्छन्तमित्यदर्शमहं नरम् ॥ ३९ ॥

विशृङ्गाकारशब्दञ्च ग्रामाधिदेवरोदनम् । प्रातः श्रुत्वैवावबोधञ्च कमुपायं वदाधुना ॥
नपनेर्वचनं श्रुत्या हृदयेन विदूयता । रूढतो तं सगद्गदमुपाच सा नपेद्वरम् ॥ ४१ ॥

मनोरमा उवाच ।

हे नाथ रमणधेष्ट श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम् । प्राणानिरेक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभाषदम् ॥
नारायणांशोभगवान् जामदग्न्योमहाबली । मृष्टिर्महर्तुर्गिरिशस्य शिष्योऽयं जगतःप्रभोः
त्रिःसतहृत्को निर्मूपां करिष्यामि महीमिति ॥ प्रतिज्ञायस्य रामस्य तेन सादररन्त्यज
पापिनं राषणं जित्वा शूरं स्वमपि मन्यसे । सन्ध्या न जिनो नाधम्यपापेन पराजितः
यो न रक्षति धर्मञ्च तस्यको रक्षिता भुवि । सनश्नति स्वयं मृदो जीयन्नपि मृतोहिः

शुभाशुभस्य सतनं साक्षी धर्मस्य मर्मणः ।

भारमारामः स्थितः स्यान्तः मूढस्यं न हि पश्यति ॥ ४३ ॥

गुणदारादिकं यद्वयत् सर्वैश्वर्यं सुधर्मिणाम् । जलमुदुदयन् सर्वमनित्यं मय्यं नृप
नसारं स्वप्रसूरां मत्पा सन्तोऽत्र मारणे । ध्यायन्ते सतनं धर्मं तपः कुर्यन्ति भक्तिः

दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं तत् सर्वं विम्वृतं त्वया ।

भस्ति चेत् विप्रहिंसायां कुयुद्धे त्यग्नः कथम् ॥ ४४ ॥

सुखार्थं मृगयां गत्वा तत्रोपोष्य द्विजाधमे । भुजगमिष्टमयूषं हनो विप्रो निरर्थकम्
गुरुपिप्रसुराणाञ्च यः करोति परामयम् । मर्माष्टदेयत्वं शृणो विपस्विस्तस्य सन्निधौ ॥
स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम् । गुणी भक्तिञ्च सर्वेषां सर्वपिप्रपिनाशिनी ॥
गुरदेवं समन्यक्यं तं भृगुं शरणं प्रज । विप्रे देवे प्रसन्ने न शत्रिपाणां न हि शक्तिः ॥
विप्रस्य किङ्करोभूषो घैर्यो भूषस्य भूमिष । सर्वैराकिङ्कुरः शूद्रा ब्राह्मणस्य पित्रोः
भयशः शरणं शरणं शत्रियस्य च शत्रिये । महद् यशस्तच्छरणं गुरदेयजिज्ञेयुः ॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयानं सुरादपि । ब्राह्मणे यन्निष्ठे च सन्तुष्टः सर्वदेयताः ॥ ४५ ॥
शयेपमुनया राजेन्द्रं क्रोडे हृत्वा महासर्पा । मुहुर्मुहुर्मुहं हृद्वा पित्रोः गरीद यः ॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेषमुवाच सा । दानं कुरु महाराज मौजविष्यामि वाप्तिम्
चन्दनागुल्बस्तूरीकुङ्कुमाद्यामुत्तमम् । अनुदेवं करिष्यामि सर्पाङ्गे रूप मुन्दरे ॥ ४६ ॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं यदस्ति मे प्रभो । समायां रविनेतये पश्यामि जगत्तोषणम्
रत्नपुत्राधिकः प्रेम्णा शशीनाञ्च दत्तिन्व । निरदिनो मय्यदा देदेषु हरिणा ॥ ४७ ॥

मनोरमावचः घयः ध्रुत्वा राजा परमपण्डितः । चोद्यवामाम्मनो गर्भी दृष्ट्वाप्रभुत्तरपुनः
कार्तवीर्यार्जुन उवाच ।

शृणु कान्ते प्रदक्ष्यामि धृतं सर्वं त्वयेगितम् । शोकात्तानाञ्च घयनं नप्रांस्यं ममासुखं
सुखं दुःखं मयं शोकं फलदः प्रातिरेव च । कर्ममोहार्दकालेन सर्वं भवति सुन्दरि ॥
कालो ददाति राजत्यं कालो मृत्युं पुनर्भवम् । कालः मृत्युनिमित्तं सारं कालः संहर्तुपुनः
फनेति पालनं कालः कालरुपी जनार्दनः । कालस्यकालः धीरुष्णो विधानुधिधिरैव
संहसुंघापि संहर्ता पातुः पाता निषेकहृन् । न निषेको निषेकेण ददाति तपसां फलम्
फः फेन हन्यते जन्तुनिषेकेण पिना मति ॥ ६८ ॥

स्रष्टावृजति सृष्टिञ्चसंहर्ता संहरेन् पुनः । पाता पानि च भूतानि यस्यानां परिपालयेत्
यस्याज्ञया घाति घातः सन्ततं भयचिह्नलः । शयत् सञ्चरने मृत्युः सूर्यस्तपति सन्ततम्
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवन् ।

तिष्ठन्ति स्यावराः सर्वे चरन्ति सन्तनं चराः ॥ ७१ ॥

वृक्षाश्च पुष्पिताःकाले फलिताःपल्लवान्विताः । शुष्यन्ति कालतःकाले धर्द्धन्तेचतदाज्ञया
भाविर्भूता तिरोभूतासृष्टिरेषतदाज्ञया । तस्याज्ञयामयेत् सर्वंनकिञ्चिन् स्येच्छयानृणाम्
नारायणांशो भगवान् पर्शुरामो महाबलः । त्रिःस्रत इत्यो निर्मूपां करिष्यतिमहीमिति
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन । निश्चितं तस्य वध्योऽहमिति जानामिमुप्रते
हात्वासार्वं भविष्यञ्च शरणं यामितत्कथम् । प्रतिष्ठितानां व्याकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते
इत्येवमुक्त्या राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः । धाद्यञ्च धादयामास कारयामास मङ्गलम् ॥
शतकोटिर्नृपाणाञ्च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम् । अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम् ॥
अश्वानाञ्च गजानाञ्च पदातीनां तथैव च । असंख्यकं रथानाञ्च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः ॥
यभूव स्तम्भिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम् । धृतवन्तञ्च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः ॥

क्रीडागारे क्षणं तस्यो कृत्वा फान्तं स्वयश्नसि ।

पश्यन्ती तन्मुखाम्मोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥

इति धीप्रलयैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे कार्तवीर्ययुद्धप्रस्थानं
नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

राज्ञो युद्धयात्रा ।

नागयण उवाच ।

नोरोमा प्राणनाथं क्षणं हृत्या स्वयं क्षसि । भविष्य मनसा चक्रे यदयमुभयामिमुखाच्छृणु ॥
प्रांश्च पुरतः हृत्या बान्धवांश्च मयि किङ्कुरान् । सामगमाग हास्यते मेने सस्य भये मुने
गेन भित्त्वा पदचक्रं धायुं संस्थाप्य मूर्धनि । प्रह्लादश्च मयि कर्मले सहस्रदन्तमयुने ॥३॥
पान्तमाह्वय विषयाज्जलबुद्बुदसन्निभान् । संस्थाप्य च भयानानेन तलोत्प्रवृत्तानि निष्कले
विधं कर्म संन्यस्य निमूलमपुनर्भयम् । तत्र प्राणाध्यातव्याज न न प्राणाधिक प्रियम्
राज्ञा तां मृतां हृद्वा विललाष करोद् य । सन्नाहं सपत्न्यस्य हृत्या यशस्युपायताम्
राज्ञोवाच ।

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरे । पश्य मां चेतनां प्राप्य विलग्नं मृदुमंहुः ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सादं गृहं यज । न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भाषिणि ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ धीशैलं यज सुन्दरि । तत्र कीदां करिष्यामि स्थवानादं यथापुरा ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ यज गोदावरीं प्रिये । जलतीर्थां करिष्यामि त्वया सादं यथा पुरा
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं यज सुन्दरि । पुष्पमद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निजने ॥ ११ ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं यज सुन्दरि । त्वया सादं रमिष्यामि तत्र चन्दनकानने ॥ १२ ॥
राज्ञेन गन्धयुक्तेन पायुना सुरभीहृते । समरपथनिसंयुक्ते पुंस्त्वोत्कलितधिते ॥ १३ ॥
यशसागुणकसूरी ममाङ्गे लेपनं कुरु । चन्दनोक्षितमयाङ्गं पश्य मां रत्नमते रानि ॥
युधानुलं सुमधुरं पचनं रचय प्रिये । कुटिलसूचिकारश्च कथं न कुर्येऽपुना ॥ १४ ॥
यस्य रोदनं धृत्या पागं कभूयप्रासीरिणी । स्थितो मय महागज करोति रोदनं बध्म
यं महामानिनां धेष्टो दत्तात्रेयप्रसादतः । जलबुद्बुदपङ्क सपथं संसारं वन्य रोमनम्
कमलांशा य हा साध्या जगाम कमलादपङ्क ।

रूपमेव गच्छ वैकुण्ठं रणं कृत्वा रणाजिरे ॥ १८ ॥

इत्येषं वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं मराधिपः । ततश्चन्दनकाष्ठेन त्रिंशं दिव्याशुकारं ह
संस्काराग्निकारयित्वा पुत्रद्वाराददाह ताम् । नानाविधानि गद्यानि ग्राहणेभ्योर्ददीमुः
नानाविधानि दानानि यस्त्राणि विविधानि च ।

मनोरमायाः पुण्येन ग्राहणेभ्यो ददी मुदा ॥ २१ ॥

भुज्यतां भुज्यतां शश्वदीयतां दीयतामिति । शब्दो यमूय सर्वत्र कार्त्तवीर्याग्रमे मुने ।
कोपेषु स्वाधिपारेषु स्थितं यद् यद्धनं तदा । मनोरमायाः पुण्येनग्राहणेभ्यो ददीमुद
राजा जगाम समरं हृदयेन विदूयता । साहं सैन्यसमूहैश्च बाधभाण्डैरसंख्यकैः ॥२४॥
ददर्शामङ्गलं राजा पुरो घर्त्मनि घर्त्मनि । ययौ तथापि समरं नाजगाम गृहं पुनः ॥२५॥
मुक्केशीं छिन्ननाशं रुदतीञ्च दिग्गम्यराम् । कृष्णचक्रपरिधानामपरा विधवामपि ॥२६॥
मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्ताञ्च कुट्टनीम् । पतिपुत्रविहीनाञ्च डाकिनीं पुंश्चलीं तथ
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनम् । कुचैलमतिकृक्षाङ्गं ननं काषायवासिनम् ।
यसाविक्रयिणश्चैव कन्याविक्रयिणस्तथा । चितादग्धं शवं मस्म निर्वाणाङ्गारमेव च ॥
सर्पक्षतनरं सर्पं गोधाञ्च शराकं धियम् । धादपाकञ्च पिण्डञ्च मोटकञ्च तिलांस्तथा
देयलं वृषयाहञ्च शूद्रभ्राह्मभोजिनम् । शूद्राग्रपाचकं शूद्रयाजकं ग्रामयाजकम् ॥३१॥
कुशपुत्तलिकाञ्चैव शवदाहनकारिणम् । शून्यकुम्भं भग्नकुम्भं तैलं लघणमस्थि च ॥
कार्पासं कच्छपं चूर्णं कुङ्कुरं शम्भकारिणम् । दक्षिणे च शृगालञ्च कुर्यन्तं मैरयं रूपम्
कपर्दकञ्च क्षीरञ्च छिन्नपेशं नलं मलम् । कलहञ्च विलापञ्च विलापकारिणं जनम् ॥

अमङ्गलं रुदन्तञ्च रुदन्तं शोककारिणम् ॥ ३५ ॥

मित्र्यासाक्ष्यप्रदातारं चौरञ्च नरघातिनम् । पुंश्चलीपतिपुत्रो च पुंश्चल्योदनमोजिनम् ।
देयतागुरुविप्राणां घस्तुचित्तापहारिणम् । दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलम् ॥
पितृमातृविरक्तञ्च द्विजाश्वत्थविघातिनम् । सत्यघ्नञ्च वृत्ताञ्च स्थाप्यापहारिणं जनम्

विप्रद्रोहं मित्रद्रोहं क्षतं विश्वासघातकम् ॥ ३६ ॥

गल्देघद्विजानाञ्च निन्दकं स्वाङ्गघातकम् । जीवानां घातकञ्चैव स्वाङ्गहीनञ्च निर्दयम्

अत्रिंशत्तमोऽध्यायः] * रणस्थलेरामकार्तवीर्ययोः कथोपकथनम् *

४८१

तोषवासहीनञ्च दीक्षाहीनं नपुंसकम् । गलितव्याधिगात्रञ्च क्वाणं बधिरमेव च ॥ ४१ ॥
 कृतं छिन्नलिङ्गञ्च सुरामत्तं सुरां तथा । क्षितं धमन्तं रुधिरं मदियं गर्दभं तथा ।

‘मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रुक्षिणं नृकपालकम् ॥ ४२ ॥

भ्माघातं रक्तवृष्टिं घातञ्च वृक्षपातनम् । धृक्ञ्च शूकरं गृध्रं श्येनं कङ्कञ्च भल्लुकम् ।

पाशञ्च शुष्ककाष्ठञ्च घायसं गन्धकं तथा ॥ ४३ ॥

तदानीम्राक्षणञ्च सन्नमन्त्रोपजीविनम् । यैश्चञ्च रत्नपुष्पञ्च औषधं तुषमेव च ॥ ४५ ॥

शर्सा’ मृतवास्ताञ्च विप्रशापञ्च दारुणम् । दुर्गन्धिवातं दुःशब्दं राज्ञा सम्प्रापयत्तमनि

मन्त्रं कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम् । वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो यभूय ह

तथापि राजा निःशङ्को ददर्श युद्धमङ्गलम् । सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम् ॥

अथवा रथातूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृशम् । ननाम दण्डयद् भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तिः ॥

भाशिपं युयुजे रामः स्वर्गं याहीतिषाञ्छितम् । तेषां सहातदयभूषदुर्लभ्या ब्राह्मणाशिरः

भृशं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तत्क्षणात् । आस्तोह रथं तूर्णवानासज्जसमन्वितम्

नानाप्रकारपाद्यञ्च दुन्दुभि मुरजादिकम् । धाद्यामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्

यथाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणाञ्च संसदि । हितं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदां परः

परशुराम उवाच ।

अये राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भय । विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः

स्वयं विद्वांश्च वेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुक्तात् । कथं दुर्बुद्धिरधुनासज्जनानां विद्वन्मना

पूर्णमहनस्त्वं लोभाक्षिरीहं ब्राह्मणं कथम् । ब्राह्मणी शोकसन्तता भर्त्रासाहं गता, सती

किं भविष्यति ते भूप परत्रैवानयोर्वधात् । सर्वं मिथ्यैव संसारं पश्यत्रे यथा जलम् ॥

सत्कीर्त्तिश्चाथ दुष्कीर्त्तिः कथा मात्रावशेषिता ।

विद्वन्मना वा किमतो दुष्कीर्त्तिश्च सतामहो ॥ ५८ ॥

गता कपिला त्वं क क विवाधो मुनिःकुतः । यत्कर्त्तुं विदुषा राजा न कर्त्तुं दालिजेततन्

धामुपोऽन्तमीशं हि दृष्ट्वा तातो हि धार्मिकः । पारणां कारयामासदत्ततत्स्यफलं त्वया

मयीतं विधिवदत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिनेदिने । जगत् ते यशसा पूर्णमपरो धार्दके कथम्

दाता धर्मिष्ठो धर्मिष्ठो यशस्यान्पुण्यवान् सुधीः ।

कार्त्तवीर्याजुंगसमो ॥ भूतो न भविष्यति ॥ ६२ ॥

पुरातना पदन्तीनि धन्दिनो धरर्णातदे । यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्त्तिरीदृशो

दुर्षावयं दुःसहं राजन् तांक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम् ।

सद्गुणेषु सनां यवप्रादु द्विरुक्तिर्न विनिर्गता ॥ ६४ ॥

न ददामि द्विरुक्तिन्ते प्रहृष्टं कथयाम्यहम् । उत्तरं देहि राजेन्द्र मातं राजेन्द्रमंसदि ॥

सूर्यचन्द्रमनूनाञ्च वंशाः सन्त्यत्र संसदि । सत्यं पद समायाञ्च शृण्वन्तु पितरः सुतः

शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसद्गुणमीश्वराः । पश्यन्तां हि समंसन्तःपाक्षिकंनपदन्तिच

इत्युत्तया पर्शुरामश्च धिरराम रणस्थले । राजा वृहस्पतिसमः प्रयत्नुमुपचक्रमे ॥ ६८ ॥

कार्त्तवीर्याजुंग उवाच ।

अये राम हरेरंशो हरिभक्तो जितेन्द्रियः । धृतो धर्मो मुन्वात्येषां त्वञ्च तेषां गुरोर्गुरु

कर्मणा ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनम् ।

स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद् ब्राह्मण उच्यते ॥७०॥

अन्तर्बहिश्च मननात् करोति कर्म जन्मनि ।

मौनी शब्दद्वदेत् काले यो हि स मुनिरुच्यते ॥७१॥

स्वर्णे लोद्रे गृहेऽरण्ये पङ्के सुखिग्धचन्दने । समता भावना यस्य सयोगीपरिकीर्त्तितः

सर्वजीयेषु यो बिष्णुं भावयेत् समताधिया ।

हरीं करोति भक्तिञ्च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥ ७३ ॥

तपो धनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतरुर्वया । तपस्या कामधेनुश्च सन्तर्तं तपसि स्पृष्टा ॥

ऐश्वर्यं क्षत्रियाणाञ्च वाणिज्ये च तथा विशाम् ।

क्षत्रियाणाञ्च तपसि स्पृष्टाऽतीचाऽप्रशंसिता ॥७५॥

ब्राह्मणानां विवादे च स्पृष्टाऽतीवविनिन्दिता ॥७६॥

रागी राजसिक्कं कार्यं कुर्वन् कर्मरागतः । रागान्धश्च राजसिक्कस्तेन राजा प्रकीर्त्तितः

रागतः कामधेनुश्च मया मिश्रा कृतामुने । को दोष एष मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिनः

इतः कस्य मुनेरस्ति कामधेनुस्त्वयाविना । स्पृहारणेवा भोगेवायुष्माकश्चव्यक्तिमः

त्रिशदशोहिर्णी सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम् ।

निहत्यायान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने ॥८०॥

आत्मानं हन्तुं मायान्तमपि चेदाङ्गपारयाम् । न दोषो हनने तस्य न तेन ब्रह्महा भवेत्

प्रापश्चित्तं हिंसकानां न चेदेषु निरूपितम् । यद्यः समुचितस्तेषामित्याह कमलोद्भवः ॥

पित्रा ते निहता भूपा महायत्नपराक्रमाः । श्वानी राजपुत्राश्च शिशवोऽथ समागताः ॥

त्रिःसप्त कृत्यो निर्मूपां कृत्स्नां कर्तुं महीमिति ।

त्वया हता प्रतिष्ठा या तस्याश्च पालनं कुतः ॥८१॥

सत्रियाणां रणो धर्मो रणे कृत्युर्न गर्हितः । रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोकेष्वेव विद्वन्मना

व्योधनानां विप्राणां धाम्यलानां युगे युगे । शान्तिः स्वस्त्ययनं कर्मविप्रधर्मो न सङ्गतः

सत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्च बलं विशाम् । भिक्षाचलं भिक्षुकाणां शुद्राणां विप्रसेवनम्

हो भक्तिर्होरास्यं वैष्णवानां बलं हरिः । हिंसा बलं खलानाञ्च तपस्याच तपस्विनाम्

बलं वेशश्च वैश्यानां योषितां यौवनं बलम् । बलं प्रतापो भूपानां बालानां रोदनं बलम्

सतां सत्यं बलं मिथ्या बलमेव सतां सदा । अनुगानामनुगमः स्वल्पस्यानाञ्च सञ्क्षयः

विद्या बलं पण्डितानां गाम्भीर्यं साहसीबलम् ॥८२॥

धनं बलञ्च धनिनां शुचीनाञ्च विशेषतः । बलं विवेकः शान्तानां गुणिनां बलमेव ततः

गुणो बलञ्च गुणिनां वीराणां धीर्यमेव च । प्रियवाक्पञ्चकापट्यमधर्मः पुण्डलीबलम्

हिंसा च हिंस्रजन्तूनां सतीनां पतितेयनम् । धन्यापी सुराणाञ्च शिष्याणां गुरुसेवनम्

बलं धर्मा गृहस्थानां भूतयानां राजसेवनम् । बलं स्तवः स्तावकानां ब्रह्मचर्यप्रचारिणाम्

यतीनाञ्च सदाचारो न्यासः सन्यासिनां बलम् ।

पापं बलं पातकीनामशक्तानां हरिर्वलम् ॥८६॥

पुण्यं बलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्वलम् । फलं वन्द्यं वृक्षाणां जलौकानां जलं बलम्

जलं बलञ्च शस्यानां मत्स्यानाञ्च जलं बलम् ।

शान्तिर्वलञ्च भूपानां विप्राणाञ्च विशेषतः ॥८८॥

विप्रः शाकतो रजोघोती मैव द्रव्यो मम क्षुतः । विप्रं नारायणोऽपि धर्मपुत्रं निगम्य
 शरणं मुनयः राजेन्द्रो विप्रं गम्य रक्षातिथे । तस्य मज्जनं भुङ्क्वा मार्गं भूमीं वसुधाम् ॥
 गमस्य घ्राणतः शरणं शुभीष्टं हस्तगतम् । मारिचो रजं कर्तुं मत्स्यराजमुपासनाम् ॥
 रजोन्मुखाश्च तादृशं मत्स्यराजो महात्मनः । ममारिचो रजं कर्तुं मत्स्यराजमुपासनाम् ॥
 राजान्तेम राजेन्द्रो पातयामास तानपि । निष्पिडतुः शस्त्रात् ॥ जमदग्निमुपासनाम् ॥
 राजा शिरोप दिव्यास्त्रं शस्त्रं प्रथमं मुने । मारिचो रजं कर्तुं मत्स्यराजमुपासनाम् ॥
 दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः । शस्त्रं मत्स्यराजमुपासनाम् ॥
 न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो दर्शयिहन्तः । दद्यात् शस्त्रिनः शूलं मत्स्यराजमुपासनाम् ॥
 शूलनिःशेषसमये पापभूषणरीरिणी । शूलं स्वजग पिबेन्द्राः शिष्याभ्यर्चयेत् ॥
 शिष्यस्य कथंच दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा । मत्स्यराजमुपासनाम् सत्पापघरक्षकम् ॥

प्राणानाञ्च प्रदातारं कथंच याचतं नृपम् ।

तदा निक्षिप्य शूलञ्च जघान नृपताम्रवरम् ॥१०१॥

तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने । शूलं पापघरक्षणीञ्च शूलं सग्न्यासयेत् शूलं
 यथाचे कथंच भूषणं जमदग्निमुतो महान् । राजा ददौ च कथंच मत्स्यराजे पित्रयं पदम् ॥
 गृहीत्वा कथंच तच्च शूलेनैव जघान ह । पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमानतः ।

महाबलिष्ठो गुणवान् चन्द्रवंशसमुद्भवः ॥११२॥

नाराद उवाच ।

शिष्यस्य कथंच ब्रूहि मत्स्यराजेन यदुभूतम् । नारायण महामाण श्रोतुं कौतूहलं मम
 नारायण उवाच ।

कथंच शृणु विप्रेन्द्र शङ्करस्य महात्मनः । प्रह्लाण्डविजयं नाम सर्वपापघरक्षकम् ॥
 पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते । दत्त्वा पङ्कजं मन्त्रं सर्वपापघरक्षकम् ॥
 स्थिते च कथंच देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम् ।

अस्त्रे शस्त्रे जले वही सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः ॥११६॥

यदुभूत्वा पठतादुवाच शिष्यत्वं प्राप लीलया । कथंच शिष्यतुल्यश्च यदुभूत्वा नन्दिकेश्वरः

धीरध्रेष्ठो धीरमद्रो बभूव धारणाद् यतः । त्रैलोक्यविजयो राज्ञा हिरण्यकशिपुः स्वयम्
हिरण्याक्षश्च विजयी बभूव धारणाद् यतः । यदधृत्वापठनात्सिद्धोदुर्वासा विश्वपूजितः
जैगीरव्यो महायोगी पठनात् धारणाद् यतः । यदधृत्वायामदेवश्चदेवलश्चयनः स्वयम्

अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च बभूव विश्वपूजितः ॥१२०॥

ओं नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदावतु । ओं नमः शिवायेति च स्वाहाभालंसदावतु

ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदावतु ।

ओं ह्रीं ह्रौं ह्रं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२२॥

ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदावतु ।

ओं ह्रीं श्रीं ह्रं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदावतु ॥१२३॥

ओं ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदावतु ।

ओं ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥१२४॥

ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदावतु ।

ओं ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदावतु ॥१२५॥

ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं ऐं रुद्राय स्वाहा नाभिं सदावतु ।

ओं ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदावतु ॥१२६॥

ओं ह्रीं ह्रौं मृत्युञ्जयाय स्वाहा भ्रूश्च सदावतु ।

ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदावतु ॥१२७॥

ओं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा ।

ओं श्रीं ह्रौं मृत्युञ्जयाय स्वाहा बाहू सदावतु ॥१२८॥

ओं ह्रीं श्रीं ह्रौं ईश्वराय स्वाहा पातु करौ मम । ओं महेश्वराय रुद्राय नितम्बं पातु मे सदा
ओं ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदावतु । ओं सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा सार्धं सदावतु
मां पातु भूतेश मान्नेय्यां पातु शङ्करः । दक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां न्याणुरेपच
पश्चिमे सण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः । उत्तरे गिरिः पातु ऐशान्यार्माक्षरः स्वयम् ॥
उर्ध्वं मृङ्गः सदा पातु मधो मृत्युञ्जयः स्वयम् । जले स्थले चान्तरीक्षे स्थज्जेतागणैः सदा

विप्रः शासतो रणोद्योगी मीव द्रुपदो नम धृमः । स्थिते नारायणेनैव कथं नमः निर्यस्य
 इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विराम्य स्वान्तिः । तस्य मृदुमनो वृत्त्या नारीश्वरणी कथम् ।
 रामस्य स्यात्तरः सर्वे सुगीदृशस्तथापणयः । भारेतिह रणे कर्तुं शक्नोतीति तदा
 रणोन्मुखाश्च तादृक्का मत्स्यराजो महाकथः । रामादेभ्य रणे कर्तुं मन्त्रतोमन्त्रतया ।
 शत्रुजान्तेन राजेन्द्रो धारयामास माननि । निर्विघ्नः शत्रुजान्तेन जयप्रसिधुनाम्भसा ।
 राजा निक्षेप दिव्यास्त्रं शतमूर्त्यप्रभं मुने । भारेभ्यो न मुनयश्चिरिदृशवर्जिताः ।
 दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिरिदृशः रक्षारं धनुः । रथञ्च नारायणेन राजः सन्नाहमेव ।
 स्वस्त्यशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो दर्शयिहन्ताः । दध्या शूलिनः शूलं मत्स्यराजत्रिषामया ।
 शूलनिक्षेपसमये धामधूपाशरीरिणि । शूलं त्यज्य विज्रम्भः शिष्यव्याख्यानमेव ॥
 शिष्यस्य कथंच दिव्यं दत्तं दुर्पाससा पुरा । मत्स्यराजमन्देऽस्तीति सर्पापयपरक्षणम् ।
 प्राणानाञ्च प्रदातारं कथंच वाचनं नृपम् ।

तदा निक्षिप्य शूलञ्च जघान नृपतीश्वरम् ॥१०६॥

तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतपण्डं गतं मुने । ध्रुवैवाकाशपाणीञ्च शूलीं सग्न्यासयेत्तरु
 ययाचे कथंच भूयं जमदग्निमुतो महान् । राजा वदो य कथंच दृष्ट्वाण्डे विजयं परम् ।
 गृहीत्या कथंच तच्च शूलेनैव जघान ह । पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः ।
 महाबलिष्ठो गुणयान् चन्द्रयशसमुद्रयः ॥११२॥

नारद उवाच ।

शिष्यस्य कथंच ब्रूहि मत्स्यराजेन यदुभूतम् । नारायण महाभाग धोतुं कीदृहलं मम
 नारायण उवाच ।

कथंच शृणु विजेत्र शङ्करस्य महात्मनः । प्रह्लाण्डविजयं नाम सर्पापयपरक्षणम् ।
 पुरा दुर्पाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते । दध्या यदृक्षरं मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ।
 स्थिते य कथंचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम् ।
 मन्त्रे शस्त्रे जले ध्वनी सिद्धिभोगास्ति संशयः ॥११६॥
 शिष्यस्य प्राप स्त्रीलया । कथम् ।

तिथ्रेष्ठो धीरमद्रो बभूव धारणाद् यतः । त्रैलोक्यविजयो राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम्
 ऐरण्याक्षश्च विजयी बभूव धारणादुद्यतः । यदुधृत्वापठनात्सिद्धोदुर्वासा विश्वपूजितः
 गीपव्यो महायोगी पठनात् धारणाद् यतः । यदुधृत्वावामदेवश्चदेवलश्च्यवनः स्वयम्

अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च बभूव विश्वपूजितः ॥१२०॥

१ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदावतु । ओं नमः शिवायेति चस्वाहामालं सदावतु

ओं हीं श्रीं ह्रीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदावतु ।

ओं हीं ह्रीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२१॥

ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदावतु ।

ओं हीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदावतु ॥१२२॥

ओं हीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदावतु ।

ओं हीं महेशाय स्वाहा बाधरं पातु मे सदा ॥१२३॥

ओं हीं श्रीं ह्रीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदावतु ।

ओं हीं ऐं महादेवाय स्वाहा घक्षः सदावतु ॥१२४॥

ओं हीं श्रीं ह्रीं ऐं रुद्राय स्वाहा नाभिं सदावतु ।

ओं हीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा वृष्टं सदावतु ॥१२५॥

ओं हीं ह्रीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा भ्रूश्च सदावतु ।

ओं हीं श्रीं ह्रीं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदावतु ॥१२६॥

ओं हीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा ।

ओं श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा बाहू सदावतु ॥१२७॥

ओं हीं श्रीं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा पातु करौ मम । ओं महेश्वराय रुद्राय निनाम्बं पातु मे सदा
 ओं हीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदावतु । ओं सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा सार्धं सदावतु
 प्राच्यां मां पातु भूतेश मान्नेय्यां पातु शङ्करः । दक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां म्याणुरेव च
 पश्चिमे खण्डपरशुरायां चन्द्रशेखरः । उत्तरे गिरिः पातु पेशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥
 ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु अघो मृत्युञ्जयः स्वयम् । जले स्थले चान्तरीक्षे स्थने जागरणे सदा

पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तञ्च भक्तघत्सलः ॥१३४॥

इति ते कथितं घत्स कवचं परमाद्भुतम् । दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवतिनिश्चितम् ॥१३५॥
यदि स्यात्सिद्धकवचोद्धतुल्योभवेद्भुयम् । तवस्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।
कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् । अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥
सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१३८॥

सर्वज्ञः सर्वसिद्धीशो मनोयायी भवेद्भुयम् । इदं कवचमज्ञात्वा भजेदुपशङ्करं प्रभुम् ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१३९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शङ्करकवच-
प्रकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

पट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

सुचन्द्रेण नृपतिना सह रामस्य युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

मत्स्यराजे निपतिने राजा युद्धविशारदः । राजेन्द्रान् प्रेषयामास युद्धशास्त्रपिशारदान् ।
वृद्धदुष्यन्तं सोमदत्तं विद्वन्मिथिलेश्वरम् । निग्धाधिपतिञ्चैव मगधाधिपतिस्तथा ॥
भाषयुः समरे योऽसुं परारामं महागन्धः । त्रिमिरहोर्हिर्णमिध सेनाभिः सह नाद ॥
रामस्य स्यात्ततः सर्वे वीरास्तीक्ष्णालक्षणयः । धारयामासुरस्त्रैश्च सानेव रणमूर्धनि ॥
ते वीराः शरजालेन दिव्यास्त्रेण प्रयत्नतः । धारयामास सुरैर्येकं स्यात्पुर्णान् भृगोस्तथा ।
भाषयाममरे शीघ्रं दृढा लाभ पराजितान् ।

पिनाकदम्नः सम्भृगुर्ध्वलक्ष्मिनिर्गन्धर्वः ॥६॥

विद्वेष नागपाशान् परांरामो महाययः । विच्छेद न गारुडेन सोमदत्तो महाययः ॥७॥

भृगुः शङ्खपूलेन सोमदत्तं जघान ह । बृहद्वलञ्च गदया विदर्भं मुष्टिभिस्तथा ॥८॥
मैथिलं मुद्गरेणैव शतया च नैपथं तथा । मागधं चरणोद्धातैरखजालेन सैनिकान् ॥९॥

निहत्य निखिलान् भूयान् संहाराग्निसमो रणे ।

दुद्राव कार्तवीर्य्यञ्च पशुं रामो महाबलः ॥१०॥

इति तं योद्धमायान्तं राजानञ्च महारथाः । आययुः समरं कर्तुं कार्तवीर्य्यनियार्थ्य च
तान्यकुलजाञ्च शतशः सौराष्ट्राः शतशस्तथा । राक्षीया शनशाश्चैव पारैन्द्राः शतशस्तथा

सौम्या चाङ्गान्च शतशो महाराष्ट्रास्तथा दश ।

कतिधा गुर्जजातीयाः कालिङ्गाः शतशस्तथा ॥११॥

कृत्या ॥ शरजालञ्च भृगुश्छिच्छेद तत्क्षणम् ।

तं छित्त्वाभ्युत्थितो रामो नीहारमिव मास्करः ॥१४॥

विराट्रं युयुधे रामस्तैः सार्द्धं समराजिरे । द्वादशाक्षीहिणीं सेनां ततश्छिच्छेद पशुना ॥

रमास्तम्भसमूहञ्च यथा कङ्गेन लीलया । छिरया सेनां भूपवर्गं जघान शिचशूलतः ॥

सर्पांस्तान्निहतान् दृष्ट्वा सूर्य्यवंशसमुद्भवः । भाजगाम सुचन्द्रञ्च लक्षराजेन्द्रसंयुतः ॥

द्वादशाक्षीहिणीमिञ्च सेनाभिः सह संयुगे । कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथारणे ॥

भृगुः शङ्खपूलेन नृपलक्षं निहत्य च । द्वादशाक्षीहिणीं सेनां जघान पशुना बली ॥१६॥

निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली । नापास्त्रं प्रेरयामास निहंतं भृगुः स्ययम्

नागपाशञ्च विच्छेद गाच्छेन नृपेश्वरः । जहास च भृगुं राजा समरे च पुनः पुनः ॥२१॥

भृगुर्नारायणास्त्रञ्च विश्लेष रणमूर्धनि । अस्त्रं ययौ तं निहन्तुं शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥२२॥

दृष्ट्वा च नृपशार्दूलश्चापरह्य रथात् क्षणान् ।

न्यस्तशस्त्रः प्रणनाम स्तुरधा नारायणं शिवम् ॥२३॥

तमेव प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिकम् । अस्त्रराजो भगवतोरामः संप्रापविस्मयम्

भृगुः शक्तिञ्च मुपलं तोमरं पट्टिं तथा । गदां पशूंश्च कोपेन विश्लेष नृपहस्तया ॥२५॥

जग्राह काली तान् सर्वान् सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता ।

विश्लेष शिवशूलं स नृपमाल्यं यभूय तन् ॥२६॥

दर्शो पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम् । बहन्तों मुण्डमालाञ्च विकटास्यां मयद्व
विहाय शस्त्रमस्त्रञ्च पिनाकञ्च भृगुस्तदा । तुष्टाय तां महामायां भक्तिनम्रात्मक
परशुराम उवाच ।

नमः शङ्करकान्तायै सारायै ते नमो नमः । नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो ।
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कश्यपै नमो नमः । नमोऽस्तुतेजगन्मात्रेकारणायै नमोना
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि । त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्धकं कु
त्सयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः । त्वं प्रसन्ना भव शुभेर्मांभक्तं भक्तवत्
युष्माभिः शिष्यलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा । तं वरं सकलं कर्तुं त्वमर्हसि वरा
पशुं रामस्तथं श्रुत्वा प्रसन्नामघदम्बिका । मामैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत ॥
एतद् भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । महामयात्समुत्तीर्णः स भवेदलीलय
स पूजितश्च त्रैलोक्ये त्रैलोक्यविजयी भवेत् । ज्ञानिधेष्टो भवेच्चैव वैरिपक्षयिर्न
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे भृगुकृतं कालीस्तोत्रम् ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भृगुं धर्मभृतां धरम् । आगत्य कथयामास रहस्यं राममेव च ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु राम महामाग रहस्यं पूर्वमेव च । सुचन्द्रजयहेतुञ्च प्रतिज्ञासार्धकाय च ॥३॥
दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा । सुचन्द्रायैव कथञ्च भद्रकाल्याः सुदुर्ला
भकथञ्च भद्रकाल्याश्च देवानाञ्च सुदुर्लभम् । कथञ्च तद्गलेयस्य सर्वशत्रुविमर्दकम्
मतीय पूषं शस्तश्च त्रैलोक्यत्रयकारणम् । तस्मिन् स्थिते च कथञ्चैकस्त्यंजेतुमलं शु
भृगो गच्छतु मिश्रायं करोतु प्रार्थनां नृप । सूर्यवंशोद्भवो राजा दाता परमधार्मि
प्राणांश्च कथञ्च मन्त्रं सयं दास्यति निश्चितम् ॥४॥

भृगुः सन्न्यासियेणेन गत्वा राजान्तिकं मुने । मिश्राञ्चकार मन्त्रञ्चकथञ्चपरमाद्भु
राजा ददौ च मन्त्रञ्च कथञ्च परमादरात् । ततः शङ्करपूजेन जघान तं नृपं भृगुः ॥५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कालीस्तोत्रं नाम
पञ्चविंशत्तमोऽध्यायः

[illegible]

पञ्चैन्द्रः शरजालेन छेदयामास लीलया । चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराश्चावलील
चिच्छिदुः स्यन्दनं राक्षस्ते धीराः पञ्चवाणत । सारथि पञ्चवाणेन रथाग्रं दशवा
तद्वतुः सप्तवाणेन तूर्णञ्च पञ्चवाणतः । चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान् विप्राः शङ्करशूल
ते च प्रयक्षोहिणींसेनां निजघ्नुश्चावलीलया । हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीरा शिवशूलं निचिधि

गले बभूव तत् शूलं राक्ष. पुष्करमालिका ॥ ८ ॥

प्रविष्ट परिघञ्चैव भुशुण्डीं मुद्वरन्तथा । गदाञ्च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलद्ग्नयः ॥
नि शस्त्राणि चूर्णानि नृपेन्द्रदेहयोगतः । विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरैव महामुने
पञ्चभुशुशस्त्राणिचास्त्राणिविविधानिच । सेनांप्रस्थापयामास कार्तवीर्यार्जुन स्वय
जा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः । चकार शरजालञ्च महाघोरतरं मुने ॥ ९ ॥
चिच्छिदुः शरजालञ्च ते धीराः शस्त्रपाणयः । राजा प्रस्थापनेनैव निद्रितास्तां चका
तुं च निद्रितान्द्रष्टुं पशुरामो महाबलः । क्षतविक्षतसर्वाङ्गान् बोधयामास तत्पतः
पयित्वा ताद्विचार्य जगाम रणमूर्धनि । चिक्षेप पशुं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसय
त्वा राक्षः किरीटञ्च पशुंभूमौ पपात ह । जग्राह पशुं शीघ्रं पशुरामो महाबलः
शङ्करशूलञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगाम शिवसन्निधि
ता निहन्तुं तं रामं शरजालञ्चकार ह । विच्छेद शरजालञ्च पशुरामश्च लीलया
पि राजा नानास्त्रं चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । तच्छिच्छेद क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतां वर
भूधिवैव नानास्त्रं महासन्धानपूर्वकम् । तच्छिच्छेद महाराजः सन्धानेनावलीलय
चिक्षेप प्रह्वालं सन्धानमन्त्रपूर्वकम् । राजा निर्वापणञ्चक्रे सन्धानेनावलीलया
पिण्यस्त्राणिशस्त्राणिरामः पाशुपतं विना । चिक्षेपकोपविभ्रान्तो भूपध्वञ्छेदतानिच
स्तुत्या शिवं नत्वा ददे पाशुपतं मुने । नारायणश्च भगवानुपाच विप्रकरभूक् ॥

प्राज्ञेन उवाच ।

तुोपि भृगो वत्स त्वमेवजानिनां वरः । नरं हन्तुं पाशुपतं कोपात्किक्षिपसिन्नमात्
वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सत्त्वम् । सर्वज्ञञ्च शस्त्रमिदं विना ध्रीरुष्णमाश्चरम्
। पाशुपतं जेतुमलमेव सुदर्शनम् । हरेः सुदर्शनञ्चैव सर्वास्त्रपरिमर्दकम् ॥ १० ॥

आं हीं कालिकायै स्वाहा । कवीजानिनायिने स्वाहा ६

आं हीं कौं मुन्दमानिने स्वाहा पादौ सदावतु ।

आं हीं वासुदेवायै स्वाहा सर्वाङ्गे मे सदावतु ॥ १६ ॥

आनन्दोपायमहाकालीअनन्दोपायकन्दनिका । दक्षिणोपायवासुदेवोपायै स्वा

द्यामान वाक्योपाय वाक्योपायै चण्डिका । उत्तरीवक्रास्त्राजोपायै स्वा

उद्वेगोपायै ललिता मायापावरणायः सदा । अद्वेष्टादे चान्तर्दिष्टोपायै

स्ति वै कथितं वरस सर्वमन्त्रोपायप्रदम् । सर्वेषां कवचानाम् सारभूतं

सर्वोपायते पुनः सुबन्दीत्य प्रसादतः । कवचस्य प्रसादेन मान्यता

प्रवता लोभमन्त्रेण एतः सिद्धौ कथं नृ । एतौ हि योगिनो भूयः सौमसि

पतिर्याम सिद्धकथयः सर्वसिद्धिप्रवतोभवेत् । महादानानि सर्वाणितापानि

निमित्तं कवचस्यास्य कलां गार्हति दीदृशीम् ॥ २३ ॥

इदं कवचमग्राह्य भजेन काली अस्त्यसम् । शतलक्षप्रसादोऽपि न मन्यः ।

इति श्रीलक्ष्मीवर्मा महापुत्राण्ये माणवलिखते नारायणनामस्तोत्रेण

कालीकवचं नाम सर्वविघ्नहर्त्रोऽध्यायः ।

अष्टविंशतिसौऽध्यायः

गुणन्दं प्रतिबं दृष्ट्वाऽपरेः शिविभिः सह राममुद्वम

नामधेय उवाच ।

पुनरेव गच्छिं महादेवोऽन्वेषातिशयोक्ता । मानसान् पुष्कराण्यः संनाम्न

गुणैर्गच्छन्तुवत् एतां सुकन्दमण्डपामृतम् । महालक्ष्मीसंपदम् नृपतीपायम्

महादेव्याम् कवचं गच्छं गुणम् भवेत्तम् । पण्डितोपायैर्गुणैर्गच्छन्तुवत्

न नृप भवेत् सर्वं पुण्यमस्य धीमते । भाग्यः समस्तं कर्मा नानाशक्त्यते

राजेन्द्रः शरजालेन छेदयामास लीलया । चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराश्चावली
चिच्छिदुः स्यन्दनं राजस्ते वीराः पञ्चवाणतः । सारथिं पञ्चवाणेन ग्राह्यं दश
वदनुः सप्तवाणेन तूर्णञ्च पञ्चवाणतः । चिच्छिदुस्तद्वानवगानं विप्राः शङ्करा
ते च त्र्यक्षोर्हिर्षीसेनां निजघ्नुश्चावलीलया । हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीराः शिवशूलं निनि

गले बभूव तत् शूलं राज्ञः पुष्करमालिका ॥ ८ ॥

शक्तिञ्च परिघञ्चैव भुशुण्डीं मुद्गरन्तथा । गदाञ्च त्रिशुपुर्विप्राः कोपेन उचलदप्रय
तानि शस्त्राणि चूर्णानि नृपेन्द्रदेहयोगतः । चिस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महा
रणधनुश्चशस्त्राणिचास्त्राणिविविधानिच । सेनाप्रस्थापयामासकार्ष्णीध्यांजुनं
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः । चकार शरजालञ्च महाघोरतरं मुने ।
चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराः शस्त्रपाणयः । राजा प्रस्थापनेनैव निद्रितांस्तां च
प्रानुञ्च निद्रितान्द्रष्टुं पशुरामो महाबलः । क्षतविस्तसर्वाङ्गान् पोंधयामास तस्य
पोंधयित्वा ताप्रियास्यं जगाम रणमूर्द्धनि । विश्लेष पशुं कोपेन शीघ्रं राजजिघां
उत्त्या राज्ञः किरीटञ्च पशुभूमो पपात ह । जग्राह पशुं शीघ्रं पशुरामो महाबल
रा शङ्करशूलञ्च विश्लेष मन्त्रपूर्वकम् । नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगामशिवसन्नि
रा निहन्तुं तं रामं शरजालञ्चकार ह । चिच्छेद् शरजालञ्च पशुरामश्च लीलया
मेव राजा नानास्त्रं विश्लेष मन्त्रपूर्वकम् । तच्छिच्छेद् ममेपीव भृगुः शस्त्रभृतां
गुब्धिक्षेप नानास्त्रं महासन्धानपूर्वकम् । तच्छिच्छेद् महाराजः सन्धानेनापलीलया
मग्निक्षेप प्रप्लाव्य सन्धानमन्त्रपूर्वकम् । राजा निषांपण्यग्र्यः सन्धानेनापलीलया
पाण्यस्त्राणिशस्त्राणिरामः पाशुपतं विना । विश्लेषकोपविभ्रामो भूपधिच्छेदना
मः स्तुत्या शिवं नत्वा ददे पाशुपतं मुने । नारायणश्च भगवानुपाय विप्रकरपूव

प्राज्ञस्य उपायः ।

तूरोपि भृगो पत्स त्वमेवज्ञानिनो परः । नरं हन्तुं पाशुपतं कोपात्किरितिरहितम्
दत्तं पाशुपतेनैव भवेद्द्रुम्य च सत्वरम् । सर्वग्रन्थं शस्त्रमिदं विना धोष्टापमाप्य
तो पाशुपतं जेतुमलमेव सुदर्शनम् । ददोः सुदर्शनञ्चैव सर्वास्त्रपणिरिवम् ॥ ९ ॥

महालक्ष्म्याश्च मन्त्रश्च शृणु तं कथयामि ते ।

ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेते परमाहुतम् ॥ ४१ ॥

रात्रञ्च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने । दत्तं तस्मै कुमारैण पुष्कराक्षाय धीमते ॥
हस्तदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम् । पद्मालयां पद्मचक्रां पद्मपत्रामलोचनाम् ॥
शुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पविशायिनीम् । पद्मिनीं पद्महस्ताञ्च पद्ममालाविभूषिताम् ॥ ४८
भूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाचिषडङ्गीम् । पद्मकाननं पश्यन्ती सम्मितां तां भजे मुदा ॥
द्विनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत् । गणं सम्पूज्य दन्वाचैवोपचाराणि वोढुः ॥ ५० ॥
स्तुत्वा च प्रणमेत् साधको भक्तिपूर्वकम् । कवचं धूयतां ब्रह्मन् सर्वसां यदामितै
नारायण उवाच ।

१ विघ्नेन्द्र पद्मायाः कवचं परमं शुभम् । पद्मनाभेन यदत्तं नाभिपद्मे च ब्रह्मणे ॥ ५२ ॥

राज्यं कवचं ब्रह्मा तत् पद्मे ससृजे जगत् । पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको यभूय सः

। लयावरं प्राप्य पादञ्च जगतां प्रभुः । पाद्रेण पद्मकल्पे च कवचं परमाहुतम् ॥ ५४ ॥

दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते । कुमारैण च यदत्तं पुष्कराय च नारद ॥ ५५ ॥

यदृत्वा पद्मनाभब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तः सर्वसम्पत्समन्वितः ॥

यदृत्वा च धनाध्यक्षः कुबेरश्च धनाधिपः । स्वायम्भुवो मनुर्धृमान् पटनाद्वारणादुपतः

प्रियमतोत्तानपादौ लक्ष्मीपन्ती यतो मुने । पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो यभूव धारणादुपतः

कवचस्य प्रसादेन स्वयं वृक्षः प्रजापतिः । धर्म्मश्च कर्म्मणां साक्षी पातायस्य प्रसादतः

यदृत्वा दक्षिणे पादौ विष्णुः क्षीरोदशाधिकः ।

भक्त्या विधत्ते कण्ठे च शेषो नारायणांशकः ॥ ६० ॥

यदृत्वा धामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः । सर्वदेवाधिपः धीमान्महेन्द्रो धारणादुपतः

राजा मरुतो भगवान् यभूव धारणादुपतः ।

त्रैलोक्याधिपतिः धीमात्रहुपो यस्य धारणात् ॥ ६२ ॥

विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्गः पटनाद्वारणादुपतः । मुचुकुन्दो यतर्धमान्मान्धातृत्तनयो महान्

सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिः शुन्दश्च वृहती देवी पद्मालयास्ययम्

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

[illegible]

॥ ४४ ॥ १७५५-१७५६ ॥ १७५७-१७५८ ॥ १७५९-१७६० ॥

I have the pleasure to inform you

[illegible]

1. മലയാളം പദപുസ്തകം എൻ പാല

[illegible]

1. உருக்கிய பித்தம் கொடுக்க உதவியாகும்.

॥ १० ॥

1. ഉപരികാലം മുതൽ താഴെ കാണുന്നവർക്കു മാത്രം

106 THE LIFE OF SAMUEL JOHNSON

[illegible]

11 32 11 Enthalpe rechnet mit Wärmehinhalte in der Flüssigkeit

1. Explain each of the following in its own

|| 24 || **E**ntes natus es de matre Maria

1. **Explain why the following is a fallacy:**

የጥቅም ሆኖ የሚያገለግል ሲሆን፣

[illegible]

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

Yours faithfully,
 [Signature]

[illegible]

देवेन्द्रेध्वासुरेन्द्रेश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥ ७६ ॥

। सर्वपुण्यपान्धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । सन्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥
सै कस्मै न दातव्यं लोभमोह भयैरपि । गुरुभक्ताय शिष्याय शरणाय प्रकाशयेत् ॥
। कवचमज्ञात्वा जपेत्तस्माज्जगत्प्रसूम् । कोटिसंख्यप्रज्ञतोऽपि नमन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
ते ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे लक्ष्मीकवचं नामाष्टात्रि-
शत्तमोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

दुर्गाकवचम् ।

नारद उवाच ।

कवचं कथितं ब्रह्मन् पद्मायाश्च मनोहरम् । परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभो ॥
पद्माक्षप्राणतुल्यञ्च जीवनं बलकारणम् । कवचानाञ्च यत् सारं दुर्गासेवनकारणम् ॥२॥
नारायण उवाच ।

अथु नात्वं वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम् । धीरुष्णेनैव यद्वत्तं योलोके ब्रह्मणे पुरा ॥
पद्मा त्रिपुरसंग्रामे शङ्कराय ददौ पुरा । जघान त्रिपुरं रद्वो यद्वत्स्या भक्तिपूर्वकम् ॥३॥
हो वदौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः । यतो बभूव पद्माक्षः सप्तर्षिपेक्षरो जयी ॥४॥
पद्मत्वापठनाद् ब्रह्माज्ञानवान् शक्तिमान् भुवि । शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनाञ्चगुरुर्यतः ॥५॥
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥ ६ ॥

पद्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्रीदेवी दुर्गतिनाशिनी ॥
पद्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः । पुण्यतीर्थञ्च मद्वत्तं कवचं पद्मादुतम् ॥८॥

ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पानु मस्तकम् ॥

ओं ह्रीं मे पानु कपालञ्च ओं ह्रीं धीमिति लोचने ॥ ६ ॥

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सहस्राक्षभरणानन्तरं कार्तवीर्यस्य युद्धागमनम् ।

नारायण उवाच ।

। गृहीत्वा तदा विष्णौ वैकुण्ठञ्च गते सति । सपुत्रञ्च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः ॥
। त्वा युवन्तु सप्तार्हं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः । राजा कवचहीनोऽपि सपुत्रञ्च पपात ह ॥
। पतिते तु सहस्राक्षे कार्तवीर्याङ्गुनः स्वयम् । आजगाममहावीरोद्विग्लेशार्क्षोद्विगीयुतः
। सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम् । नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्धनि ॥४॥
। पर्युरामञ्च समरे तं राजेन्द्रं ददर्श ह । रत्नालङ्कारभूषाढ्यं राजेन्द्रकोदिभिः सह ॥५॥
। रत्नातपत्रभूषाढ्यं रत्नालङ्कारभूषितम् । चन्द्रनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम् ॥६॥
। राजा ब्रह्मा मुनीन्द्रं तमवस्था रथादहो । प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सह ॥ ७ ॥
। दशै शुभाशिरं तस्मै रामञ्च समयोचितम् । प्रोवाच च गतार्थञ्च स्वयं गच्छेत्तिसानुगः
। ज्ञेयोः सैनयोर्पुण्यं बभूव तत्र नारद । पलायिता रामशिष्या भ्रातरञ्च महापलाः ।
। क्षतपिस्तसर्पाङ्गाः कार्तवीर्य्यप्रपीडिताः ॥ ८ ॥

नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां घरः । न ददर्श स्वसैन्यञ्च राजसैन्यं स्वमेव च ॥९॥
। विशेषं वह्निं रामञ्च बभूवाग्निमयं रणे । निर्वापयामास राजा घोरपेनापलीलया ॥१०॥
। विशेषं रामो गान्धर्वं शीलसर्पसमन्वितम् । वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥
। विशेषं रामो नागास्त्रं दुर्निवार्यं भयङ्करम् । गारुडेन महाराजः प्रेरयामास लीलया ॥
। माहेश्वरञ्च भगवांश्चिशेषं भृगुनन्दनः । निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया ॥
। भृगुश्चिशेषं ब्रह्मास्त्रं नृपनाशाय नारद । ब्रह्मास्त्रेण च भूपस्य प्राप निर्वापयं रणे ॥
। दत्तदत्तञ्च यच्चतूलमव्ययं मन्त्रपूर्वकम् । जग्राह राजा समरे पराक्रमवधाय च ॥१६॥
। शूलं ददर्श रामञ्च शतसूर्य्यसमप्रभम् । प्रलयाग्निशिखोद्विग्लं दुर्निवार्यं सुरैरपि ॥ १७॥
। पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद । मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन् ॥८॥

तुं पुनः न ह्यं देवा भगवतः । भगवः समं त्वं अविष्णुर्देवतः ।

तव मन्त्रादि मन्त्रादिन ईश्वरः । अष्टावक्रो विष्णुमात्रं त्वं भगवन्मात्रम् ॥ २०

तुं ईश्वरं मन्त्रं देवतं तुतः पुनः । भगवान् त्वं भगवः न भगवन्मात्रः ।

॥ २१ ॥ पुनश्च भगवन्मात्रः । भगवः विष्णुः भगवः भगवः भगवन्मात्रः ।

तव भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २२ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २३ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २४ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २५ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २६ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २७ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २८ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ २९ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ ३० ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ ३१ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ ३२ ॥

तुं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं । भगवन्मात्रं देवतं त्वं त्वं त्वं ॥ ३३ ॥

सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वीपद्मांशसम्भवा । यज्ञेषु पत्नी मातेवस्नेहेकीडृतिसङ्गिनी
मायात्यातुसङ्गिनी शश्वत्शयनेभोजने रणे । तां विना प्राणहीनोऽहंविपहीनोयधोरागः
यथा न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता । द्वितीयशोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च
घले सिंहः शृगालश्च शृगालः सिंहमेवच । काले व्याघ्रं हन्ति मृगोगजेन्द्रहरिणस्तथा
हिमं मक्षिका काले गरुडश्च तथोरगः । किङ्कटस्तोतिराजेन्द्रं कालेराजा च किङ्कटम्
द्रुश्च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति । तिरोभूत्वाच प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे
रिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थाश्चराचराः । सर्वे कालैर्लययान्तिकालोद्दिदुरतिक्रमः

कालस्य कालः श्रीकृष्णः स्रष्टुः स्रष्टा ययेच्छया ।

संहर्त्ताचैव संहर्तुः पातुः पाता परात्परः ॥ ४७ ॥

महान् स्थूलतमः (स्थूलात्) सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमः ह्यः । परमाणुपरः कालः कालश्च कालभेदकः
यस्य लोमानिषिष्यानि स पुमांश्चमहाविषाद् । तेजसा वोढृशांशश्चकृष्णस्यपरमात्मनः
ततः क्षुद्रविराड् जातः सर्वेषां कारणपरम् । यः स्रष्टा च स्वयं ब्रह्मायन्नाभिकमलोद्भवः
नामेः कमलदण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः । स्रमणद्वयवर्षश्च ततः स्वस्थानसंस्थितिः
तपश्चक्रे ततस्तत्र लक्षवर्षश्च वायुमुक् । ततो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णश्च सपार्यदम् ॥
गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीकरम् । रत्नसिंहासनस्थश्च राधावदः स्थलस्थितम् ॥
इहानुहां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः । ईश्वरेच्छाश्च विनाय स्रष्टुं सृष्टिं मनो दधे
यः शिष्यः सृष्टिसंहर्त्ता ॥ च स्रष्टुर्ललाटजः । विष्णुः पाताक्षुद्रविराद् श्वेतद्वीपनिवासरत्न
सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः

तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविषाद् ।

सर्वप्रसृतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥ ५७ ॥

॥ शकः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना ।

सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना ॥ ५८ ॥

सा च कृष्णे तिरोभूत्वा सृष्टिसंहारपालके । साविर्भूता सृष्टिकाले सान्वनित्यामहेभ्यरी
कुलालश्च घटं कर्तुं यथा शक्तो मृद् विना । स्वर्णं विना स्वर्णकाटकुण्डलं कर्तुं मक्षमः

पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतमः परः । जनको जन्मदानत्वात् पालनाच्च पितास्मृतः
 गरीयान् जन्मदातुश्च सोऽन्मदाता पिता मुने । विनान्नं नश्चरो देहो नित्यञ्च पितृद्वयः
 तयोः शतगुणो मातापूज्यामान्या च वन्दिता । गर्भधारणपोषाभ्यां सान्वताभ्यां गरीयसी
 तेभ्यः शतगुणे पूज्योऽभीष्टदेवः धृतो धुतः । ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः
 गुरुवद् गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी ततोऽधिका । देवे रुष्टे गुरु रक्षेद्गुरो रुष्टे न कश्चन ॥ ८८ ॥
 गुरुं ह्यग्रा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुर्देव परं ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः ॥ ८९ ॥
 गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानञ्च हरिभक्तिदम् । हरिभक्तिप्रदाता यः को वा यन्धुस्ततः परः ॥

भक्षानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यतो लभेत् ।

लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत् को वा यन्धुस्ततः परम् ॥ ९१ ॥

गुरुत्तममन्त्रञ्च जप्त्वा ज्ञानं ततो लभेत् । सर्वस्य च सिद्धिञ्च को वा यन्धुस्ततोऽधिकः
 सुखं जयति सर्वत्र विद्या गुरुदत्तया । यया पूज्योऽपि जगति को वा यन्धुस्ततोऽधिकः
 विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मृदो न भजेद् गुरुम् ।

ब्रह्महत्याधिकं पापं लभते नात्र संशयः ॥ ९४ ॥

दक्षिणं पतितं क्षुद्रं नरबुद्ध्या चरैर्दुःखम् । सोऽगुर्विस्तीर्य स्नातोऽपि नाधिकारी च कर्मसु
 भर्ताष्टदेवः धीरुष्णो गुरुस्ते शङ्कुरः स्वयम् । शरणं गच्छ हे पुत्र देवात्पूज्यतमं गुरुम्
 त्रिः सप्तहस्त्यो निर्मूपा त्वया पृथ्वी कृता यतः । प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिष्यं शरणं व्रज
 शिष्यश्च शिष्यरूपश्च शिष्यं शिष्यकारणम् । शिष्याराध्यं शिष्यं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज
 गोलोकनाथो भगवानंशेन शिष्यरूपधृक् । य इष्टदेवः स गुरुस्त्वमेव शरणं व्रज ॥ ९६ ॥
 माताकृष्णः शिष्यो ज्ञानमनोऽहं सर्वजीविषु । प्राणा विष्णोश्च प्रकृतिः सर्वशक्तियुता सुत
 ज्ञानं ज्ञानरूपश्च ज्ञानवीजं सनातनम् । मृत्युञ्जयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज ॥ ९७ ॥
 ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम् ॥
 प्रकृतिर्लक्ष्मणश्च तपस्तप्या यमीश्वरम् । कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज ॥
 इत्युक्त्वा मुनिभिः सार्द्धं जगाम कमलोद्भवः । रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद ।
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनाम्न संवादे कार्तवीर्यवधवर्णनं
 नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकवर्गादिनामोऽप्ययः

भाषास्य कलाशुभमम् ।

मातृपुत्र उवाच ।

इदं कथयिष्यामि तव भ्रातृभ्यः । एतं नाम कलसं नमस्कृत्य विष्णु-
मुदं पूर्वा विद्यामभ्यास्यं मुदं मुदमुदं च तं । गुणानां राधावासमां कारिष्येयमाशीर्यते
मनोवादी महारामा च शीघ्रं संप्राप्य तदर्थमायम् । इदं नगरं स्वामतीव सुमनोहरम् ॥
शुद्धस्फटिकमण्डपमण्डपानिः सुमनोहरैः । सुवर्णमण्डपमण्डपानिः राजमण्डपमण्डपानिः ॥
विष्णुस्फटिकमण्डपमण्डपानिः । संयुक्तं मुक्तानिभ्यः । पुरितं मणिमण्डपः ॥
यस्यालामाख्यमण्डपः संयुक्तं शालकोटिभिः । अष्टादशमण्डपानिः शोभितमण्डपानिभिः ॥
सुवर्णकलसैर्विभूतैः पानिभिः श्वेतवामरैः । स्वकाञ्चनपुष्पाञ्चन मण्डपमण्डपानिः ॥ ७ ॥
रामायणमण्डपमण्डपानिः सुन्दरीमण्डपानिः । पालिकाभिषयकञ्चन विष्णुचलिकाकाः ॥ ८ ॥
कौटिल्यैः सविभूतैः शम्भुवैः स्वच्छन्दस्य विद्याविभूतैः ।
पारिजातमण्डपानिः स्वर्णदीपिकाकाः ॥ ९ ॥
आशीषं पुष्पाञ्चलं पुष्पाञ्चलमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः विभूतैः कामधेयपुष्पाञ्चलैः
विहविद्याविहविद्याः पुष्पाञ्चलमण्डपानिः । पञ्चदशमण्डपानिः विभूतैः कामधेयपुष्पाञ्चलैः ॥
शतपञ्चमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः ॥ १२ ॥
नानापुष्पाञ्चलमण्डपानिः सुमनोहरमण्डपानिः । कलियुतैः शोभायानं मण्डपानिः सुगन्धिभूतं ।
पुष्पाञ्चलमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः ॥ १४ ॥
रामायणमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः ॥ १५ ॥
सुवर्णमण्डपमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः ॥ १६ ॥
अष्टादशमण्डपमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः ॥ १७ ॥
अष्टादशमण्डपमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः । अष्टादशमण्डपानिः ॥ १८ ॥

तदक्षिणे गृहेन्द्रश्च घामे सिद्धश्च नारद । नन्दीश्चरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयङ्करम् ॥
 पिशाचाक्षश्च घाणश्च विरूपाक्षं महाबलम् । चिकटाक्षं भास्कराक्षं रक्षाक्षं चिकटोदरम्
 संहारभैरवं फालभैरवश्च भयङ्करम् । रुद्रभैरवमीशाक्षं महाभैरवमेव च ॥ २१ ॥
 कुम्भाक्षभैरवश्चैव मोधभैरवमुत्थलम् । कपालभैरवश्चैव रुद्रभैरवमेव च ॥ २२ ॥

सिद्धेन्द्राक्ष रुद्रगणान् विद्याधराक्ष गुह्यकान् ।

भूतान् प्रेतान् पिशाचाक्ष कुम्पाण्डान् प्रलराक्षसान् ॥ २३ ॥

वेतालान्दानयाक्षैव योगान्द्राक्ष जटाधरान् । यक्षान् किम्पुल्याक्षैव किन्नराक्ष ददर्श ह
 तान्द्रा नन्दिनेशान् गृहीत्याभृगुनन्दनः । तं सम्भाष्याभ्यन्तरश्च जगामानन्दमानसः
 एन्द्रसारनिर्माणं ददर्श शतमन्दिरम् । भमूल्यरत्नकलसैर्ज्वलद्विधं विराजितम् ॥
 भमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्ममलदर्पणैः । हरीसारविकारैश्च कपादैश्च विराजितम् ॥ २७ ॥
 गौरीवनाभिर्मणिभिर्भूतं स्तम्भसहस्रकैः । मणिसारविकारैश्च खोपानैः परिसेवितम्
 ददर्श भ्यन्तरं द्वारं नानाविधेण विभूतम् । मुक्तामाणिक्यप्रथितैर्मालाजालैर्विराजितम्
 ददर्श कार्तिकं घामे दक्षिणे च गणेश्वरम् । वीरभद्रं महाकार्यं शिवतुल्यपराक्रमम् ॥
 प्रधानपार्षदगणान् क्षेत्रपालाक्ष नारद । रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ ३१ ॥
 तान् सम्भाष्य भृगुः शीघ्रं महाबलपराक्रमः । पशूहस्तः पशूरामो गमनङ्कतुमुद्यतः ॥ ३२ ॥
 गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्पुत्राच्च ॥ निद्रितो निद्रया युक्तो महादेश्योऽधुनेति च
 शिवराष्ट्रं गृहीत्याहमन्त्रागत्य क्षणान्तरे । त्वया सार्द्धं गमिष्यामि भ्रातस्तिष्ठेति साम्प्रतम्
 धृत्वा गणेशवचनं पशूरामो महाबलः । बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३५ ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिलखण्डे नारायणनारदसंवादे कैलासवर्णनं
 नामैकव्यत्यार्षितमोऽध्यायः ।

परशुराम उवाच ।

हो धृतं किं पचनमपूर्णं नोतिमुत्तमम् । इदमेवमथो नैवं धृतमीश्वरध्वजतः ॥ १६ ॥

धृतं धृतो पाप्मयमिदं कामिनाश्च विकारिणाम् ।

निर्यिकारस्य च शिरो न दोषः कश्चिदेव हि ।

यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक ॥ १७ ॥

श इष्टिकरिष्यामि कार्यं च समयोचितम् । तवैव तातो माता च पृथं नैव निरूपितम् ।

तां पितरौ तौ च पार्यंतीपरमेश्वरौ । पार्यंती स्त्री पुमान् शम्भुरितिकैर्न निरूपितः ॥ १८ ॥

रूपः शङ्खश्च सर्धारूपा च पार्यंता । गुणार्तातस्यका कीडा तद्गङ्गोवाकुतो बिभो ॥ १९ ॥

कीडा लज्जा भीतिमङ्गो ग्राम्यस्य नेश्वरस्य च ।

स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत् ॥ २० ॥

लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य च कतकुतः ।

लज्जा लज्जामवाप्नोति तापं किंवा हुताशनः ॥ २१ ॥

शीतं शीतमहो भ्रातर्निदाघो दाहमेव च । भीतिर्भीतिमवाप्नोति मृत्योर्भृत्युर्बिभेति किम् ॥

कुनोऽयरोज्यरहन्ति ध्याधिभ्याधिध्वजीर्यति । संहर्तानाश्च संहर्ताकालः कालाद्बिभेति च

अष्टाष्टजतिन्नष्टारं पातास्वपातिस्त्यग्मते । ध्रुवध्रुवं समवाप्नोति तुष्णा तुष्णां प्रयाति किम्

निद्रा निद्राश्च धीः शोभा शान्तिः शान्तिश्च तन्मते ।

पुष्टिः पुष्टिमवाप्नोति तुष्टिस्तुष्टि क्षमा क्षमाम् ।

भात्मनः परमात्मास्ति शक्तिः शक्त्या बिभेति किम् ॥ २६ ॥

लौममोहकामक्रोधाः स्यात्प्रमानादिवाधिताः । दयान धृष्टादययानेच्छाद्वेच्छयाप्रभो ॥

ज्ञानबुद्धयोः को विकारो जगामावाधते जरा । चिन्तानचिन्त्याप्रस्ताचक्षुः स्वज्ञानपश्यति

ह्यंमुदं किं प्राप्नोति शोकं शोको न वाधते । कावपत्तिर्विपत्तेश्च सम्पत्तिः सम्पदः कुतः ॥

मेधायाधारणाशक्तिः स्मृतेर्वा स्मरणं कुतः । न दग्धः स्वप्रतापेन विवस्वानिव सम्मतः ॥

विपरीतमतो भ्रातस्त्वयैवाचरितोऽधुना । न धृतोऽयं गुस्मस्वाचक्षुः धृतो धृतः ॥ ३१ ॥

त्युक्त्वा परशुरामश्च प्रहस्य च पुनः पुनः । शीघ्रं गन्तुं मनश्चक्रे गुरोरभ्यन्तरं मुदा ॥ ३२ ॥

सर्वशक्तिमतीदुर्गाप्रकृत्यासाञ्च शैलजा । तस्यान्तर्जादयःसन्ति सर्वदा सर्वसम्भवाः ॥५५॥

पञ्चधा वाच प्रकृतिः धीरुष्णस्य यन्महत् । राधापञ्चा त सावित्री दुर्गादेर्षी सरस्वती ॥

प्राणाधिष्ठात्री या देवी रुष्णस्य परमात्मनः ।

प्राणाधिका प्रिया सा न राधास्ति तस्य वध्वसि ॥५७॥

विद्याधिष्ठात्रीयादेर्षीसावित्रीद्रव्येण प्रिया । लक्ष्मीनारायणस्यैव सर्वसम्पन्नरूपिणी ॥

सरस्वतीद्विधा भूषा रुष्णस्य मूर्धनर्गता । सावित्रीद्रव्येण कान्ताम्बयनारायणस्य च

बुद्ध्याधिष्ठात्री या देवी प्रानवः शक्तिर्न्युता ।

सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा दुर्गा गता ॥६०॥

प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातृगोलोके च यन्महत् । त्माः प्रधानाः कलया यन्महानेकधापि सा ॥

विन्दन्निस्त्वयैकुण्ठं प्रज्ञाणद्वारमुच्यते । भविताशील्यलंशव्यन्त्रयेप्रकृतिके ध्रुवम् ॥

तत्र नारायणो देवः रुष्णाङ्गं शश्वत्भुजः । वनमाली रतयासाः शक्त्या च पद्मया सह ॥

सर्वरुष्णधगोलोकेद्विभुजः श्यामसुन्दरः । सम्मितामुरलीहस्तोराधावक्षःस्थलस्थितः ॥

गोमापमापीभिः शश्वत् संयुक्तो गोपकपधुक् ।

परिपूर्णतमः श्रीमान् निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥६५॥

स्यैवामयः स्वतन्त्रस्तु परमानन्दरूपधुक् । सुराकलोद्भवायस्यवोद्भवांशोमहाविराट् ॥

पतो भयन्तिविद्यानिस्त्रूलसूक्ष्मादिकानि च । पुनस्तत्र प्रलीयन्ते एवमेव मुहुर्मुहुः ॥

गोलोफमूर्द्ध्वं यैकुण्ठात् पञ्चाक्षरकोटियोजनम् ।

नास्ति लोकस्तदूर्द्ध्वं च नास्ति रुष्णात्परः प्रभुः ॥६८॥

एवं धृतं शम्भुपत्रात्मयातेकधितं द्विज । क्षणं तद्विधुता भ्रातरीश्वरः सुरतोः मुखः ॥६९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे पशु राम संवादे

ज्ञाननिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

॥ ३॥ अथ चर्चं श्रुत्वा प्रवृत्तः पुनर्युतः । पृथुं क्षेमं महाशक्तं प्रपन्नं गच्छत् हृदि ॥ ३॥
 युं विपुलं कपोतं पृथुं गजाननः । दृष्ट्वा प्रपुं देवयो धर्मं कृतवान् सन्निधौ ॥
 कालस्तं गोपीनं स भद्रं कथिष्योत्तमम् । गोपीनदेवस्य सन्निधौ प्रपित्वा पुनः पुनः
 तथा वृष्टित्वा तु प्रपित्वा तु वरदम् । ऊर्ध्वमुखोत्पन्नं गोपीनं श्रुत्वा गच्छत् यथा
 तद्विषयं श्रुत्वा कश्चित् स भगवान् । क्षेमं दृष्ट्वापि स गच्छत् सन्निधौ ॥ ३॥

File info

[illegible]

॥ ५ ॥ अथ भगवत्पूजाविधिः ॥

। अथ नमः शिवाय ॥

[illegible]

1. Find the value

የፌዴራል ጋዜጣዊ ሰነድ ቁጥር ፻፲፱፻፲፱

विचित्रादिभिरप्युक्तैः

हस्तापादाद्यनाथं तं जडं सर्वाङ्गकम्पितम् । पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः ॥१८॥
भूलोकञ्च भुवोलोकं स्वर्लोकञ्च सुरेश्वरः । जनलोकं तपोलोकं ध्रुवलोकञ्च तत्परम् ॥
गौरीलोकं शम्भुलोकं दर्शयामास नारद । दर्शयित्वा ॥ ब्रह्माण्डं स पपी सप्तसागरान्
पुनस्त्रीरणं चक्रे सनकसागरोदकम् । तत्र स्मर्पयामास गभीरे सागरोदके ॥ २१ ॥

मुमूर्षुं तं सन्तरन्तं पुनर्जग्राह लीलया ।

पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादुद्धर्षमुत्तमम् ॥ २२ ॥

वैकुण्ठदर्शयामास सलक्ष्मीकं चतुर्भुजम् । क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगीन्द्रो योगमायया
पुनः कञ्च योगेन धर्षयामास लीलया । गोलोकं दर्शयामास विरजाञ्च नरीश्वरीम् ॥
वृन्दावनं शतशृङ्गशैलेन्द्रं रासमण्डलम् । गोपीगोपादिभिः सार्द्धं श्रीकृष्णं श्याममुत्तरम्
द्विभुजं मुखलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ २६ ॥
तेजसा कोटिस्पर्शमं राधापक्षः स्थलस्थितम् । पञ्चकृष्णं दर्शयित्वा प्रणम्य पुनः पुनः
क्षणेन लम्बमानस्य भ्रामयित्वा पुनः पुनः । इष्ट्वा कृष्णमिष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम् ।

भूषणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह ॥ २८ ॥

न भवेद्दुःपातना नष्टा बिनाभोगेन पापजा । स्वल्पाञ्च बुभुजेरामो गतान्या कृष्णदर्शनात्
क्षणेन चेतनां प्राप्य पपात वेगतो भुवि । यभूष दूरीभूतञ्च गणेशस्तम्भनं भृगोः ॥ ३० ॥
सत्समार कथत्वं स्तोत्रं शुद्धत्वं सुदुर्लभम् । धर्मीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम्
चिक्षेप पशुमध्यथं शिवतुल्यञ्च तेजसा । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ॥ ३२ ॥
पितुरव्ययमस्त्रञ्च इष्ट्वा गणपतिः स्वयम् । जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थञ्चकार ह ॥
निपत्य पशुर्धमेन छित्वा दन्तं समूलकम् । जगाम रामहस्तञ्च महादेवबलेन च ॥ ३४ ॥
हाहेति शब्दमाकाशे देपाञ्चकुर्महामिया । धीरभद्रः कात्तिकेयः क्षेत्रपालाञ्च पारंगदाः ॥
पपात भूमौ दन्तञ्च सरक्तः शब्दमुच्चरन् । पपात गैरिकयुक्तञ्च महास्फाटिकपर्यन्तः ॥ ३६ ॥

शब्देन महता विप्र चक्रम्ये पृथिवीं मिया ।

केलासस्था जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं मिया ॥ ३७ ॥

निद्रा यमञ्च निद्राया निद्रेशस्य जगत्प्रभोः ।

आजगाम धृतिः शम्भुः गार्धरा सह सन्ध्याम् ॥ ३८ ॥

॥ इत्येवैतन् श्रीविष्णवे स्तुतं भवम् । भगवन् विष्णोर्वै सविमं त्रिविधं भूम् ॥

गणेश गार्धरी शम्भुं चन्दं विजिति कुक्क ।

स च तं कथयामास धार्मी गार्धरीयै विभू ॥ ३९ ॥

कोप इमां कथया दरीत्य मुमुक्षुः ॥ उवाच शम्भुः । कृतः कृतं इत्येव स्तुतिम् ॥
स्त्वेष्वैव शम्भुं शम्भुन विभू विभूयुर्ध्वम् । उवाच भगवान्मासाय्यां प्रजापतिर्ब्रह्मर्षिम् ।
ति श्रीमहादेवस्तं महाविष्णुना आराधयन्नामस्तुतार्थं गणपतिस्तोत्रं गणेशपूजार्थम् ॥

गण विष्णवार्तिप्राप्तमोऽव्यायः

चतुश्चरत्प्राप्तिप्राप्तमोऽव्यायः

गणेशस्तुतमस्तुं इत्येवा रामं प्रति गीर्षा उपसृतम् ।

पार्थक्यवत् ।

॥ अत्रानि अगति इमां शङ्कितकृत्याम् । अथैवादिता दासो सत्यान्व जीवन् भूया
पश्येव समाः सप्तविष्णुपद्विभवायः । दासीपुत्रस्य विष्णुस्य कल्प येष विजयो ॥
वार्तं कर्तुमिति त्वं च यमविशेषः । धीरमदः कर्त्तव्येभ्यः पार्थक्यः सन्नि सप्तविष्णुः
इत्ये विष्णोर्का पश्येतां द्रविणं सप्तविष्णुं समा । सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं पार्थक्येव

सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं ।

कामतः कौशलीयं धार्मि जीवन् च यमो च ॥ ५ ॥

स धार्मि कौशलीयकश्च विष्णुस्य सप्तविष्णुः ।

विष्णुं सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं ॥ ६ ॥

विष्णोर्निबुं शक्ता निर्वाही च द्रविणः । धार्मि सप्त सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं
॥ इत्येवैतन् सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं सप्तविष्णुं ॥

चतुस्त्वार्शित्तमोऽध्यायः] *रोपादन्तुमुद्यतायां गौर्यांरामस्यविष्णुस्मरणम् ० ५११

मुचिरं तपसा प्राप्तं त्वदीयं चरणाभ्युज्जम् । परित्यागमयेनैव सन्ततं भीतया मया ॥६॥

यत्किञ्चित् कोपशोकाभ्यामुक्तं मोहन तत्परम् ।

तत् क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रस्नेहाच्च दाहणात् ॥ १० ॥

व्यापदि परित्यक्ता तदा पुत्रेणतेनकिम् । साध्व्याः सद्दंशजायाश्च शतपुत्राधिक पतिः
सद्दंशप्रसूताया दुःशीला ज्ञानवर्जिता । स्वामिनं मन्यने नास्तीं पित्रोर्दोषेण कुन्तिता
स्तितं पतितं मूढं दृष्टिं रोगिणंजङ्गम् । कुलजा विष्णुतुल्यश्च कान्तं पश्यतिसन्ततम्
ताशनोधा सूर्यो वा सर्षतेजस्विनां परः । पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्तिरोडशीम्
हादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशानिच । तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्तिरोडशीम्
त्रोषापिपिताघापिबान्धवोऽप्य सहोदरः । योपितांकुलजातानां कञ्चित्स्वामिनं समः
इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गां ददर्श पुरतो भृगुम् । शम्भोः पदाब्जं सेवन्तं निर्भयं तमुवाचह

पार्वत्युवाच ।

अयेराममहाभाग ब्रह्मवंशोऽसिपण्डितः । पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽस्ययोगिनांगुरोः
माताते रैणुकासाध्वी पद्मांशासत्कुलोद्भवा । मातामहो वैष्णवधम्मानुलब्ध ततोऽधिकः
त्वञ्च रैणुकभूपस्य मनुष्यशोद्वयस्य च । दीहित्रो मानुलः साधुः शूरो विष्णुयशा नृपः
कस्य दोषेण दुर्दैवं स्त्वं न जानेऽथशुद्धतः । येषां दोषैर्जनेषु दुष्टस्तथ ते शुद्धमानसाः
भगवन् प्राप्य पर्युञ्ज गुरुञ्च कदणानिधिम् । परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा बभूवाम्य तुनेपुनः
गुरवे दक्षिणां दातुमुचितञ्च धृतीं श्रुतम् । भग्नोदन्तस्तनूस्तुतस्य छेदयस्वच मस्तकम् ॥

गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितधेदावयोःपुरः ।

मा त्वं लब्ध्याशिषो भूत्वा पूजितोऽभूजंगत्त्रये ॥२४॥

पर्युनाऽमोघवीर्येण शङ्करस्य घरेण च । हन्तुं शक्तः शृगालश्च सिंहं शार्ङ्गमागुभुक्
त्वद्विधं लक्ष्मकोटिञ्चहन्तुं शक्तो गणेश्वरः । जितेन्द्रियाणां प्रचरोनहि हन्तिचमक्षिकाम्
तेजसा कृष्णतुल्योऽयंकृष्णांशश्च गणेश्वरः । देवाभ्यान्ते कृष्णकन्दायूजास्य पुरतस्ततः
मत्प्रभायतः प्राप्तः शङ्करस्य घरेण च । शोकेनाति कठोरेण नहिसम्यद्विपदिना ॥२८॥

इत्युक्त्वा पार्वती रोपात्तं रामं हन्तुमुद्यता ।

॥ ३८ ॥ हेतुः प्रकृत्यैव तत्त्वज्ञानं न भवेत्तद्विनाशः ।

[illegible][illegible]

। हेतुः प्रमाणः ।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । कल्याणप्रसादात् ॥

1950-1951

[illegible]

1993-1994

... ..

॥ अथ श्रीमद्भगवत्पूजाविधिः ॥

नरे नृणां वृक्षो भूतानां विजय । अतीव धामनि चरते

ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मि वप्रदायकः ॥ ४६ ॥

मित्रद्रोही रुतघ्नश्च वृषघाहश्च स्पृहन् र.वर्दाही ग्रामयात्री ब्राह्मणं वृषलापतिः ॥
 शूद्रधात्राप्रभोजी च शूद्रधात्रेषु भोजकः । कन्या विक्रयकारि च धात्रेर्नामा . . . ।
 लाक्षा मांस लौह रस तिलानां लवणस्य च । विवेता ब्राह्मणश्चैव तुग्गणा गवा तथा
 एकादशीहृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भाग्ये । एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु तिन्दिताः ॥
 कालसूत्रे च नरकै पतन्तिब्रह्मणःशतम् । एतेभ्योऽप्यधिकं सांऽपिपञ्चानिधिपराडमुग
 नागयण उवाच ।

शङ्कुस्य पचः धृत्वा सन्तुष्टःश्रीहरिः स्वयम् । मेघगम्भीरया धाम्ना तमुवाचजगन्पति,
 विष्णुरुवाच ।

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलञ्च वः । परारामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्यसाम्प्रतम्
 नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विधत्ते क्वचित् । रक्षामि तान्चक्रहस्तो गुरुमन्युं विनाशाय
 नाहं पाता गुरो रुष्टे बलवद् गुरुहेलनम् । तत्परः पातकी नास्ति सेवाहीनो गुरोश्च य
 मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषांजनको भवेत् । भवो यस्यप्रसादेन सर्वान्पश्यतिमानय
 जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम् ।

ततो विस्तीर्णकरणात् कलया स प्रजापतिः ॥ ६० ॥

पितुः शतगुणैर्माता पोषणाद्गर्भधारणात् । धन्या पूज्या च मान्या च प्रमुरुपायमुन्धरा
 मातुः शतगुणैर्वन्द्यः पूज्योमाम्योऽन्नदायकः । यद्विनाशश्चरोदेहो विष्णुश्चकलयान्नद
 मानदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः । गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायक
 भवानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा । यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परः कोऽपि गान्धर्व
 गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत् । सर्वंश्रुत्वं सर्वसिद्धिं तत्परः कोऽपि गान्धर्व ॥
 सर्वं जपतिसर्वप्रविधया गुरुदत्तया । तस्मात् पूज्योहिजगति कोपायन्धुस्तनोऽधिक
 विद्यान्धो वा धनान्धोषायोमूढो न भवेद्गुरुम् । ब्रह्महत्यादिभि पापैः सन्निभोनाप्रमशयः
 इष्टिं पतितं क्षुद्रं न खुद्रमाचरेद्गुरुम् । सोऽमुचिस्तीर्थयातोऽपि नाधिकारीचकर्मसु
 पितरं मातरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरुं परम् । यो न पुष्पाति कापटजप्रसन्नायतकीरिय

विपत्तिवाचको विष्णोर्नायकः सण्डनार्थकः । विपत्तिसण्डनकारकं नमामि विष्णोर्नायकम् ।
 विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरञ्च तम् ॥
 शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विष्ण्वारणकारणौ । सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम् ।
 विष्णुप्रसादपुष्पञ्च यन्मूर्द्धनि मुनिदत्तकम् । तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम् ॥
 गुरुस्वामे च जातोऽयमाविर्भूतो ह्यलये । वन्दे गुहाप्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम् ॥ १४ ॥
 रत्ननामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम् । पुत्रस्य पश्य वेदे-च तदा कोपं यथा कुरु ॥
 रत्ननामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतं शुभम् । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी ।
 तो विष्णाः पलायन्ते घनतेयाद् यथोरमाः । गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम् ॥
 प्रार्थीलभते पुत्रं भार्ग्यार्थी विपुलांस्त्रियम् । महाजडः कपोन्द्रश्च विद्यायाश्च भवेद् ध्रुवम् ।
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गणेश-
 स्तोत्रकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

गौरीं बोधयित्वा रामप्रति स्तवादिकरणे विष्णोरुपदेशः ।

नारायण उवाच ।

पार्थवीं बोधयित्वा तु विष्णुराममुवाच ॥ हितं सारं नीतिसारं परिणामसुखायहम्
 विष्णुरुवाच ।

रामत्वमधुना सत्यमपराधी श्रुतेर्मते । कोपात्कृत्वा दन्तभग्नं गणेशस्य स्थितोऽशिधे
 मयोक्तेनैवस्तोत्रेणस्तुत्यागणपतिं परम् । काण्वशास्त्रोक्तस्तोत्रेण स्तोत्रं हि दुर्गां जगत्प्रधम्
 श्रीकृष्णस्य परा शक्तिं बुद्धिरूपा जगत्प्रभोः । अस्याञ्च तव कृपायां हताबुद्धिर्भविष्यति
 सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जगत् । अनया शक्तिमान् कृष्णो निर्गुणः प्रहृतेः परः ।
 सृष्टिं कर्त्तुं न शक्नोति ब्रह्मा शक्त्याऽनया विना । धर्मस्यां प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

तत्र धर्मजलेनैव पुण्याय विश्वगोलोचम् । स विराड् विश्वनिलयोऽलराशिर्यभूवह ॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्चमूर्त्तिश्च विघ्नती । प्राणाधिष्ठात्री यामूर्त्तिः कृष्णस्य परमात्मनः
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः ॥२७॥

वैशाधिष्ठात्री या मूर्त्तिर् वैदशास्त्रप्रसूरपि । तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

पेश्यदर्याधिष्ठात्री मूर्त्तिः शान्तिश्च शान्तरूपिणी ।

लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सन्धस्वरूपिणीम् ॥२८॥

रागाधिष्ठात्री या देवी शुक्लमूर्त्तिः सतां प्रसूः ।

सरस्यतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ॥२९॥

बुद्धिर्घियासर्वशक्तेर्या मूर्त्तिरधिदेयता । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३०॥

सर्वमङ्गलवीजस्य शिवस्य मन्दिरेऽधुना ॥३१॥

शिषे शिवस्वरूपा त्वं लक्ष्मीनारायणान्तिके ।

सरस्यती च सावित्री वैदसू ग्रंहाणः प्रिया ॥३२॥

राधा राशेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च । परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥३३॥

त्यक्तकलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥३४॥

त्वद्विधायोषितः सर्वास्त्वंसर्ववीजरूपिणी । छायासूर्यस्यचन्द्रस्यरोहिणीसर्वमोहिनी

शक्ती शक्तस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । वरुणानी जलेशस्यवायोः स्त्रीप्राणवत्तुभा

वहोः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुसीलाचनेभूतस्यचक्रेडभी

शानस्य शशिकला शतरूपा मनोःप्रिया । देवहूती कर्दमस्य वशिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥३६॥

अद्वितीर्द्धमाता या मुद्रागस्त्यमुनेः प्रिया । अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारावसुन्धरा

गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां याः सद्भिदा ।

एताः सर्वाश्च याः हन्याः सर्वास्त्वत्कलयाम्बिके ॥३७॥

गृहलक्ष्मीं गृहे नृणां राजलक्ष्मींश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वंगायात्री ब्राह्मणस्य च

सतां सत्यस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्गुरा । ज्योतीरूपानिर्गुणस्यशसिस्त्वंसगुणस्य च

सूर्यं प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभाकरा निशाकरे

तत्र पद्मं जनेनेष पुराण विद्मगोन्तोषम् । स विराड् विश्वनिलयो जलराशिर्वभूवह ॥

तस्मिन् पञ्चपा भूय पञ्चमूर्तिः चित्रती । प्राणाधिष्ठात्री यामूर्तिः कृष्णस्य परमात्मनः

कृष्णप्राणाधिकी राधा तां पदन्ति पुराविदः ॥२५॥

वैद्यधिष्ठात्री या मूर्ति र्देवताग्रप्रभृति । सा सावित्री शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

पेदयस्याधिष्ठात्री मूर्तिः शान्तिः शान्तकृषिणी ।

लक्ष्मी पदन्ति सन्मन्नां शुद्धां सत्यस्वरूपिणीम् ॥२६॥

रागाधिष्ठात्री या देवी शुद्धमूर्तिः सतां प्रभुः ।

सरस्वती तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ॥२७॥

बुद्धिर्बिद्यासर्वशक्तेयां मूर्तिरधिदेवता । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥२८॥

सर्वमङ्गलपीठस्य शिष्यस्य मन्दिरेऽधुना ॥२९॥

शिवे शिवस्वरूपा त्वं लक्ष्मीनारायणान्तिके ।

सरस्वती च सावित्री र्देवगू प्रह्वणः प्रिया ॥३०॥

राधा रासेश्वरस्यै परिपूर्णतमस्य च । परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥३१॥

त्यक्तकलांशशकलयः देवानामपि योयितः ॥३२॥

त्वद्विद्यायोयितः सर्वास्त्वं सर्वयाजकृषिणी । छायासूर्यस्य चन्द्रस्य रोहिणी सर्वमोहिनी

शर्वा शक्तस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । धरुणानी जलेशस्य वायोः स्त्रीप्राणवत्तुभा

पद्मे प्रिया हि स्याद्वा च कुवेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुशीला च नैर्ऋतस्य च कैटभी

ईशानस्य शशिकला शतरूपा मनोःप्रिया । देवहूती कर्दमस्य वशिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥३६॥

धनिति र्देवमाता या मुद्रागस्त्यमुनेः प्रिया । भक्त्या गोतमस्यापि सर्वाधारावसुन्धरा

गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां याः सखिद्रा ।

पताः सर्वाश्च याः हान्याः सर्वास्त्वत्कलयाम्बिके ॥४१॥

गृहलक्ष्मी गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वं गायत्री ब्राह्मणस्य च

सतां सत्यस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्गुष । ज्योतीरूपानिर्गुणस्य शशिस्त्वं सगुणस्य च

सूर्य्यं प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे

तस्य तुष्टः समायात्रेऽनारक्षो महान् सुखी । तस्य विद्याकरिष्यन्तिदृष्टाभृत्याध्वदुर्वलाः
त्युक्त्वा पार्यती तुष्टा इत्या रामं गुर्भाजम् । जगामान्तःपुरं नृपं हरिश्चन्द्रोऽबभूवह ॥

काण्वराधोऽस्तोत्रञ्च गूत्राकान्ते यः पठेत् ।

यात्रा काले च प्राप्तं यां चाश्रितार्थं लभेत् ध्रुवम् ॥६॥

पुत्रार्थो लभते पुत्रं कन्यार्थो कन्यकां लभेत् ।

पिपाार्थो लभते पिपां प्रजाार्थो चाप्नुयान् प्रजाम् ।

घृष्टराज्यं लभेद्राज्यं धनघ्नो धनं लभेत् ॥७॥

तस्य दृष्टो गुह्यो राजा या वान्धवोऽधवा । तस्य तुष्टश्चरदः स्तोत्रराजप्रसादतः ॥

इत्युग्रस्तोऽहिप्रस्तश्च शत्रुप्रस्तोभयानकः । व्याधिप्रस्तोभवेन्मुक्तस्तोत्रस्मरणमात्रतः

पञ्चदारे शम्भाने च कारागारे च बन्धने । जलराशौ निमग्नश्च मुक्तोभवति स्तोत्रतः

त्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दाहने । स्तोत्रस्मरणमात्रेण चाश्रितार्थं लभेद्बुधम् ॥

त्या इषिष्यं वर्षञ्च स्तोत्रराजं शृणोति वा । भक्त्यादुर्गाञ्चसम्पूज्यमहाबन्ध्याप्रसूयते

लभते सा दिव्यपुत्रंभानिर्भचिरजीविनम् । असीमापदाचसीभाग्यं वप्नोतिध्वजाह्वनेत्

नयमासं फाफयन्ध्या मृतपत्न्या च भवितः ।

स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥८॥

कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति वा ।

घटे सम्पूज्य दुर्गाञ्च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥९॥

इति धीप्रद्वयैषर्षे महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे दुर्गास्तोत्रं

नाम पञ्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

पदेचत्वारिंशोऽध्यायः

गोपीनाथ तुलसीदास निषेधकथनम् ।

नारायण उवाच ।

वदन्त्या दूताः पश्यन्त्या दृष्टवित्तमानसः । दक्षिणोक्तं क्षीञ्जय प्रहृष्टय गोपीधरम् ॥ २

प्राज्ञकार भवया च वैचैविविधैरेषु । पूर्वैरेषेभ्य गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं पिना कथम् ॥ ३

समृद्ध्यं शतं भक्त्या च साकः शङ्कयन्धवा । गुरुवतीं गुरुं नत्वा गमनं कर्षुं मुच्यते ॥ ४

नारद उवाच ।

पूजां भगवत्पूजकं रामो गणपतेर्धवा । वैचैविविधैः पुष्पैस्त्रिलोचनं पिना कथम् ॥ ५

तुलसीं सर्ववृक्षाणां मातुषा यन्मातुः । कथं पूजां सात्त्विकं न गृह्णाति गोपीधरः ॥ ६

नारायण उवाच ।

ऋतुं नारदं वन्द्येदमितोदसं प्रयत्नम् ।

प्रह्लादस्यैव पूजान्तं निर्गुह्यं मनोहरम् ॥ ७ ॥

पूजया तुलसीं देवाः प्राप्नुवन्मनुष्याणां । किंच भूमतीं शयसि नारायणपरमायाम् ॥ ८ ॥

देव्यां गङ्गादेरे सा गोपीनाथपूजिता । अतीव सुन्दरं गुरुं सन्निवर्तयित्वा कथम् ॥ ९ ॥

सर्ववर्तमानि सर्वाङ्गे समृद्धयर्थाणि । नारायणं वन्द्यमात्रं नमस्यन्मुखापराधम् ॥ १० ॥

निर्गुह्यमाणां मन्दं वर्णमिदमाणां गुरुं हि । भक्त्यद्वैतं चित्कामं सकलमात्मिण्याम् ॥ ११ ॥

तुलसीदास ।

मन्दं हि नारायणं देव गान्धर्व गजानन । कथं दम्भीपुत्रः देवैः नारायणं कथं नम ॥ १२ ॥

वन्द्यमानः कथं पश्येद्वन्द्यम् च कथाम् । एतत् नारायणं मन्त्रिणां सायङ्कालत्रयपरिचरम् ॥ १३ ॥

तस्मिन्मया तुलसीं देवां प्रकृतस्य पुनः पुनः । परं चेन्नैव देव्या सा कामदात्रीः सुखादौ ॥ १४ ॥

मन्दं नमस्तु नमस्तु नमस्तु नमस्तु । नमस्तु नमस्तु नमस्तु नमस्तु नमस्तु नमस्तु ॥ १५ ॥

नारायण उवाच ।

नमस्तु नमस्तु नमस्तु नमस्तु ॥ १६ ॥

तस्योदरस्य तां दृष्ट्वा परं दिनपर्वकम् ।

उवाच सस्मितः शान्तः शान्त्य कामानुरां पशी ॥१७॥

गणेश्वर उवाच ।

का त्वं पत्से कस्य कस्य मातमां ब्रूहि किं शुभे ।

पापदोऽशुभदः शश्वत् ध्यानभङ्ग स्तपस्विनाम् ॥१८॥

कृष्णः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नंरुपानिधिः । मद्भुध्यानभङ्गजो दोषोनाशुभघतुते शुभे
गणेशवनं ध्रुत्वा तमुवाच स्मरानुरा । सस्मितं सकटाक्षञ्च देवं मधुरया गिरा ॥२०॥

तुलस्युवाच ।

धर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढा च तपस्विनी ।

तपस्या मे स्यामिनोऽर्थे त्वं स्वामी भव मे प्रभो ॥ २१ ॥

तुलसी वचनं ध्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन् । तामुवाच महाप्राज्ञः प्राज्ञो मधुरयागिरा ॥

गणेश उवाच ।

हे मातर्नास्ति मे घाञ्छा घोरेदारपत्निहे । दारप्रहोहि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥

हरिमर्कोर्षयायश्च तपस्यानामहेतुकः । मोक्षद्वारकपादञ्च भयवन्धनपाशकः ॥ २४ ॥

गर्भवासकरः शश्वत् तत्त्वज्ञाननिवृत्तनः । संशयावां समारम्भोयस्स्याज्यो वृषभैरपि ॥

गोदोऽयं करणानाञ्च सर्वमायाकरण्डकः । साहसनां समूहश्च दोषाणाञ्च विशेषतः ॥

नियर्त्तस्य महाभागे पश्यान्त्यं कामुकं पतिम् ।

कामुकैर्नैव कामुन्या सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ २७ ॥

स्त्वैयं वचनं ध्रुत्वा कोपात्तु सा श्रष्टापह । दातृप्रहस्तेभविता सा साध्वीतिगणेश्वरम् ॥

हृषाकर्ण्य सुरध्रेष्ठ स्तांशशापशिवात्मजः । देवित्त्वमसुखस्ता भविष्यति न संशयः ॥

तपस्यानमहतां शापादुवृक्षत्वं भवितेति च । महातपस्वीत्युक्तवैव विरराम च नारद ॥

शापं ध्रुत्वा तु तुलसीप्रहरोद पुनःपुनः । तुष्टावच सुरध्रेष्ठं स प्रसन्न उवाच ताम् ॥३१॥

गणेश्वर उवाच ।

पुण्यानां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे । कलांशेन महाभागेत्यं नारायणप्रिया ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराणस्थ ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डानां शुद्धिपत्रम्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६	१६	रक्षसः परमात्मानः	वक्षसः परमात्मानः
१०	१५	सम्पुटाञ्जलिः	सम्पुटाञ्जलिः
१३	५	जृम्भणम्	जृम्भणम्
"	६	कादि	कोदि
१६	२२	कृष्णाङ्घ्रि	कृष्णाङ्घ्रि
१८	१४	द्वानि	द्वानानि
"	२२	तपस्विनां	तपस्विनां
२०	१०	स्नेहात्	स्नेहात्
"	१२	ध्रुवं	ध्रुवं
२२	२०	श्वके	श्वके
२४	७	तस्थौ	तस्थौ
२५	१६	यौवनः	यौवनः
२७	१३	पार्श्वदाः	पार्श्वदाः
"	१५	प्रियापाञ्च	प्रियापाञ्च
२८	१७	दुर्दंष्ट्रं	दुर्दंष्ट्रं
३०	१०	प्रणयद्वयम्	प्रणयद्वयम्
३२	७	गौतमाञ्जले	गौतमाञ्जले
३४	१२	पुण्याञ्च	पुण्याञ्च

१८	१२३	प्राविष्णुणो	प्राविष्णुणो
१९	५	सेवेत्	सेवेत्
"	११	क्वक्व	क्वक्व
२०	३	धोत्रेभिः	धोत्रिभिः
"	६	निष्ठति	निष्ठति
"	१४	हरिरेति	हरिरेति
"	२०	फलम्	फलम्
"	१५	प्रकाश	प्रकारेण
"	२०	प्रभ्याह	मभ्याह
"	२	प्राय	प्राय
"	६	प्रीप्य	प्रीप्य
२१	२३	मक्तानुह	मक्तानुप्रह
"	२५	मर्पिता	भूंपिता
२२	१०	स्वरूप	स्वरूप
२३	११	योगिन्द्राणां	योगीन्द्राणां
"	१६	परिमहार्थ	परिमहार्थ
२४	२	साध्या	साध्याः
"	३	वरस	वरस
२५	२१	प्रभात्	पभात्
२६	१३	हृदुपदुमे	हृत्पदुमे
"	१५	ध्यायेद्विष्टं	ध्यायेद्विष्टं
२७	१६	प्रज्ञाया	प्रज्ञाय
२८	१३	गुरुवर्षिष्टं	गुरुवरिष्टं
"	१५	पार्थ	पार्थ

	१४	दशगुणं	दशगुणं
	३	शततं	सततं
	१०	मन्दकिनी	मन्दाकिनी
	१०	भगीरथी	भगीरथी
	११	पाक्यान्न	पाक्यान्न
	२१	शुभद्रा	शुभद्रा
	१३	स्वरूपायै	स्वरूपायै
११६	१२	परमात्मन	परमात्मान
१५४	१०	दास्यमी	दास्यामी
१५७	१०	पद्येर्षा	पद्येर्षा
"	१६	परमात्मन	परमात्मान
१५८	६	वृषध्वज	वृषध्वज
१६१	१३	किञ्च	किञ्चि
"	२१	न यीधनम्	न यीधनम्
"	२५	परायणः	परायणः
१६५	२०	शाप	शापा
१६६	७	विवर्जितः	वर्जितः
१७०	२	मुमुक्षुणा	मुमुक्षुणा
"	१६	वास्तुवञ्च	वास्तवञ्च
१७५	२५	तच्छ्रुत्वा	तच्छ्रुत्वा
१७७	१०	स्पर्श	स्पर्श
१७८	२५	खड्गं	खड्गं
१८०	२४	सुप्रातो	सुप्रातो
१८१	१५	ग्रीहृष्णं	धीहृष्णं

ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੪੨	੩੧੨
ਮਾਧਵੀ	ਮਾਧਵੀ	੫	੫੧੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੨੨	੪੧੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੨੨	੩੦੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੬	"
ਮਾਧਵੀ	ਮਾਧਵੀ	੪	੩੦੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੧੧	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੨	੫੦੨
ਮਾਧਵੀ	ਮਾਧਵੀ	੭	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੨	੧੦੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੪੧	੦੦੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੩	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੩	੨੧੨
ਮਾਧਵੀ	ਮਾਧਵੀ	੨੦	੧੧੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੭	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੪	੩੧੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੨੨	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੫੫	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੨੨	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੧੧	੫੧੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੧੧	੪੧੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੨੩	"
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੫੫	੧੨੨
ਮਾਧਵ	ਮਾਧਵ	੧੪	੧੨੨

२१७	५	वैष्णवानां	वैष्णवानां
"	६	पवित्राण	पवित्राणा
"	१०	सौभाग्य	सौभाग्या
२२०	८	सिद्धियोगीभि	सिद्धयगिभि
२२१	२२	शुद्ध्य	शुद्ध
२२२	२१	मये	मवेद्
२२३	४	लौहेण	लौहेन
"	७	मयेत्	मवेन्
"	१५	विधि	विधि
"	२२	वसेत्	वसेद्
२२४	२	गोलकुण्डं	गोलकुण्डं
२३०	१०	शृन्दाधने	शृन्दाधने
२३१	२४	अतुर्दश	अतुर्दश
२३३	२४	दुरिताति	दुरितामि
२३७	५	विस्तीर्णं	विस्तीर्णं
२४२	१२	जगतामपि	जगतामपि
२४३	३	तद्गुणं	तद्गुणं
"	२१	यद्गुणान	यद्गुणान
२४७	१५	गृह्णी	गृह्णी
२४८	१५	दुर्वासमः	दुर्वाससः
"	१६	दुःस्थिता	दुःस्थिता
२५०	७	विशुद्धेत	विशुद्धेत
२५१	६	प्रदर्शयेत्	प्रदर्शयेत्
२५२	२	नाशयत्येष	नाशयत्येष

२७३	१३	निष्ठुरं	निष्ठुरं
२७४	६	परिदृश्यते	पतिदृश्यते
२७५	६	स्थलोज्जलाम्	स्थलोज्जलाम्
२७८	८	दोषीनां	दोषीनां
२७९	६	बालकं	बालकं
१८०	३	तद्वारा	तद्वारा
"	२२	यत्प्रभुतं	यत्प्रभुतं
८३	२	नारद	नारद
"	६	कोमलाङ्गी	कोमलाङ्गी
"	२१	सम्मङ्गलम्	सम्मङ्गलम्
"	२३	नृपेन	नृपेन
२८४	१२	वैष्णवी	वैष्णवी
२८६	८	यद्यत्रतः	यद्यत्रतः
२८८	६	भयकपिता	भयकपिता
"	१८	मुदन्विता	मुदन्विता
"	१६	गमो	गमो
२८९	१४	धीरुष्णवरा	धीरुष्णवरा
"	२०	यथा	यथा
२९१	१०	भूयः	भूयः
२९२	६	संक्रान्ता	संक्रान्ता
"	१५	गृहीत्वा	गृहीत्वा
"	२०	देये	देये
२९६	१२	कल्पिता	कल्पिता
२९७	१५	देवा	देवा

सादे	सादे	१८	४५१
सावरेबावरे	सावरेबावरे	२१	"
महाबाही	महाबाही	७	४५३
अलवरेवरे	अलवरेवरे	२१	"
निवायरे	निवायरे	२४	"
बाव	बाव	३	४५४
शोक	शोक	१२	"
अतरेय	अतरेय	३	४५५
कौशिकी	कौशिकी	२५	"
जोमोह	जोमोह	१०	४५६
कर्मन	कर्मन	१२	४५७
बावरी	बावरी	२२	"
हेवापरेवरे	हेवापरेवरे	८	४५८
मंदीम	मंदीम	३	"
विमर	विमर	४१	"
विजोवनी	विजोवनी	२	४६०
विजिबिबन	विजिबिबन	८	"
अनापोहरे	अनापोहरे	१५	४६२
विअपुएपुए	विअपुएपुए	१६	४६५
मज्य	मज्य	२०	४६७
पाजोमोहिक	पाजोमोहिक	३	४६८
बुवरी	बुवरी	३	"
बापिनामाप	बापिनामाप	२३	"
विअना	विअना	१३	४६९

४६६	२३	कामधेनुञ्च	कामधेनुञ्च
४७२	२०	पणं	पणं
४७५	१२	संक्षमितं	संक्षुमितं
४७६	१०	श्याशानं	शमशानं
"	२४	नपेक्षरम्	नृपेक्षरम्
४८३	१२	शुद्धाणां	शुद्धाणां
"	२३	र्वलम्	र्वलम्
४८७	१०	श्चिच्छेद	श्चिच्छेद
४८८	१६	त्रैलोक्य	त्रैलोक्य
४९१	१२	परारामो	परारामो
"	१७	तच्छिच्छेद	तच्छिच्छेद
"	१८	श्चिच्छेद	श्चिच्छेद
४९२	१८	तच्छिच्छेद	तच्छिच्छेद
४९३	६	प्राज्ञा	प्राज्ञा
"	६	पद्मिनी	पद्मिनी
४९४	०	विषद्वर्तनम्	विषद्वर्तनम्
"	८	सदायतु	सदायतु
४९६	२१	पातुर्ध्वं	पातुर्ध्वं
४९७	५	विनाशिन्यै	विनाशिन्यै
५०२	२०	वधाय	वधाय
५०६	७	सङ्गुहो	सङ्गुहो
५०८	२१	विमो	विमो
५१२	८	मध्यर्थ	मध्यर्थ
	६	रज्ज	रज्ज

३५५	१२	सय	स षष
"	१५	योधनस्थाञ्च	योधनस्थाञ्च
"	१७	दग्धो	दग्धो
३५६	२३	मेधसात्	मेधसान्
"	१४	लोकाञ्च	लोकाश्च
३५७	२१	पृथक्	पृथक्
३६२	१४	वन्धाति	वन्धाति
३६३	१६	चञ्चिताम्	चञ्चिताम्
३६६	१७	जन्म	जन्म
३६८	७	ताम्रपिष्टै	ताम्रपृष्टै
३७०	३	प्राकृति	प्रकृति
"	४	सिद्धानां	सिद्धानां
३७१	१४	मृतकवत्सा	मृतकवत्सा
३७३	१०	धार्मिकः	धार्मिकः
३७४	१७	शृणु	शृणु
"	४	नारद	नारद
३७७	१०	धित्त	धित्त
३७८	३	केवलम्	केवलम्
"	४	रस्नञ्च	रस्नञ्च
"	४	यथा	यथा
३८६	२२	अक्षरा	अक्षरा
"	४	मूर्ति	मूर्ति
"	५	वदिः	वदिः
"	१३	पुद्गल	पुद्गल

		22	442
	ᲙᲗᲗᲗ	8	682
ᲙᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗ	21	282
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗ	21	682
ᲙᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗ	2	222
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	3	222
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗ	22	622
ᲙᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗ	22	322
ᲙᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗ	62	222
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	4	222
ᲙᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗ	82	222
ᲙᲗ	ᲙᲗ	2	222
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	42	-
ᲙᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗ	22	222
ᲙᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗ	42	222
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	4	-
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	22	222
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	22	222
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	2	422
ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗᲗ	22	-
ᲙᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗ	2	222
ᲙᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗ	2	222
ᲙᲗᲗᲗᲗ	ᲙᲗᲗᲗᲗ	22	222

४१७	२५	विनाकस्य	विनायकस्य
४२०	८	ब्रह्मणा	ब्रह्मणा
४२१	५	विश्वाग्रथ	विश्वाग्रथ
४२४	११	व्योप्यञ्च	व्याप्यञ्च
"	२४	मिथ्यैव	मिथ्यैव
४२५	१०	क्षुद्रा	क्षुद्रा
"	२२	वर्द्धयितुं	वर्द्धयितुं
४२७	५	श्वेतचामरम्	श्वेतचामरम्
४२८	२२	कुम्भपतकैः	कुम्भपतकैः
४३३	२	विघ्नतो	विघ्नतो
४३४	८	पठेन्नित्यं	पठेन्नित्यं
"	११	व	वा
४३५	२५	तवाधना	तवाधुना
४४०	१५	लक्ष्यै	लक्ष्यै
"	१७	लक्ष्यै	"
"	१८	"	"
४४३	८	गृहस्थाणां	गृहस्थानां
"	२०	कर्म	कर्म
"	२४	मूर्धुजि	मूर्धुजि
४४४	१०	इत्येष	इत्येष
४४८	"	विविधञ्च	विविधञ्च
४४६	८	प्राप्त्य	प्राप्त्य
४५०	७	शमयायामास	शमयायामास
४५१	२	राजः	राजो

ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୨୧	"
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୧୧	୨୦୫
୧୫	୧୫	୦୧	୫୦୫
ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	୨୧	୫୦୫
୧୫	୧୫	୦୧	"
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୦	୧୦୫
୧୫	୧୫	୦୧	"
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୨	୧୦୫
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୧୧	୧୦୫
ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	୦	୨୧୧
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୧	୦୧୧
ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	୦୧	"
୧୫	୧୫	୫୧	"
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୧୧	"
ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	୧	୫୧୧
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୦୧	"
ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	୧୧	୫୧୧
୧୫	୧୫	୧	୧୧୧
ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	୧୧	୧୧୧
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୧୧	"
୧୫	୧୫	"	"
ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	ନିର୍ଦ୍ଦେଶ	୦୧	୧୧୧
୧୫	୧୫	୫୧	"
ସମାପ୍ତ	ସମାପ୍ତ	୧୧	୧୧୧

४१७	२५	विनाकस्य	विनायकस्य
४२०	८	ब्रह्मणा	ब्रह्मणा
४२१	५	विश्वाग्रश्च	विश्वासग्रश्च
४२४	११	व्योप्यञ्च	व्याप्यञ्च
"	२४	मिष्यैव	मिष्यैव
४२५	१०	क्षुद्रा	क्षुद्रा
"	२२	वर्द्धयितुं	वर्द्धयितुं
४२७	५	श्वेतचामरम्	श्वेतचामरम्
४२८	२२	कुम्भपतकैः	कुम्भशतकैः
४३३	२	विघ्नतो	विघ्नतो
४३४	८	पठेन्नित्यं	पठेन्नित्यं
"	११	व	वा
४४	२५	तथाधना	तथाधुना
४४०	१५	लक्ष्यै	लक्ष्यै
"	१७	लक्ष्यै	"
"	१८	"	"
४४३	८	गृहस्थानां	गृहस्थानां
"	२०	कृत्स्न	कृत्स्न
"	२४	मूढुर्जि	मूढुर्जि
४४४	१०	इत्येव	इत्येव
४४८	"	विविधञ्च	विविधञ्च
४४९	८	प्राप्त्य	प्राप्य
४५०	७	शमयायामास	शमयायामास
४५१	२	राजः	राजो

४६६	२३	कामधेनुश्च	कामधेनुश्च
४७२	२०	एष	एष
४७५	१२	संक्षमितं	संक्षुमितं
४७६	१०	श्याशानं	शमशानं
"	२४	नपेशपरम्	नृपेशपरम्
४८३	१२	शुद्राणां	शूद्राणां
"	२३	र्वलम्	र्वलम्
४८७	१०	शिच्छेद	धिच्छेद
४८८	१६	त्रैलोक्य	त्रैलोक्य
४९१	१२	परारामो	परारामो
"	१७	तच्छिच्छेद	तद्धिच्छेद
"	१८	क्षिप्तेषु	क्षिप्तेषु
"	१८	तच्छिच्छेद	तद्धिच्छेद
४९२	६	ब्राह्मणं	ब्राह्मणं
४९३	६	पद्मिनीं	पद्मिनीं
"	७	विचर्दनीम्	विचर्दिनीम्
४९४	८	सदायतु	सदायतु
"	२१	पातूर्द्ध	पातूर्द्ध्व
४९६	५	दिनाशन्यै	दिनाशिन्यै
४९७	२०	वधाय	वधाय
५०२	७	शङ्काशौ	सङ्काशौ
५०६	२१	विभो	विभो
५०८	८	अन्यथ	अन्यथ
५१२	६	खल	खल

